॥ श्रीः ॥

चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला
९८

महाभारत-कोशः

(महाभारतस्य नाम्नां विषयाणां च व्याख्यात्मिका अनुक्रमणिका)

रामकुमाररायः

प्रथमो भागः

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
WORK NO. 98

MAHABHARATA-KOSHA

(A Descriptive Index to the Names and Subjects in the Mahābhārata)

Ramkumar Rai

PART ONE
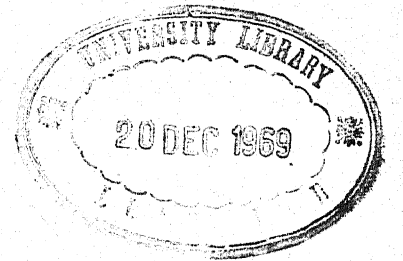
THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Post Box 8. VARANASI-1 (India) Phone : 3145
1964

प्राक्कथनम्

सुविदितमेतन्महाभारत-भा-रतानां विद्वद्वराणां कियदुपादेयत्वं महाभारतकोशस्येति महता परिश्रमेणायं मया विरच्य प्रस्तूयते। महाभारतीयप्राचीनेतिहासचिन्तकानामनुसन्धित्सूनाञ्च कृतेऽयं परमोपयोगीति नास्त्यत्र कोऽपि सन्देहलेशः। महाभारतञ्च प्रकाशितः पूर्वमनेकप्रकाशनसाहसरसिकैस्तेषु चित्रशालाप्रेस-प्रकाशितसंस्करणं तु दुर्लभप्रायं न भवति नयनपथगोचरमपरं क्रिटिकलसंस्करणमपूर्णत्वाद्बहुमूल्यत्वाच्च न सार्वजनीनमुपयोगित्वमावहत्यतोऽयं महाभारतकोशश्चित्रशालाप्रेसप्रकाशितनीलकण्ठीयुतसंस्करणाधारेणैव विर-चितो यस्मिंश्च तदनुसारेणैव प्रत्येकसन्दर्भसङ्केतो निर्धारितः। गीताप्रेससंस्करणादपि यद्भेदस्तन्निर्देशः कृतः। क्रिटिकलसंस्करणोपयुयुक्षूणामपि न किमपि काठिन्यमेतेन तदन्तर्यितरसंस्करणाध्यायश्लोकानां तुलनात्मकानुक्रमसत्त्वात्।

चित्रशालाप्रेस-गीताप्रेस-संस्करणयोरप्यस्ति किञ्चिदन्तरम्, यथोभयसंस्करणयोरध्यायसंख्यासादृश्यं नास्ति, भवतु नाम, न कापि क्षतिर्यतो हि श्लोकसंख्या न भिद्यते। अध्यायसंख्यापि केवलमेकेनैवाधिका न्यूना वेति तत्रापेक्षितसन्दर्भोऽन्वेषणीयः। यत्र यत्र गीताप्रेससंस्करणे दाक्षिणात्यपाठा उपलभ्यन्ते तत्र तत्रास्मिन् संस्करणे तदनुसारमेव सन्दर्भसङ्केताः कृता यतो हि चित्रशालाप्रेससंस्करणे ते (दाक्षिणात्यपाठाः) न सन्ति।

सत्यामप्यकारादिक्रमव्यवस्थायां केचन प्रमुखाभिधेया अर्जुनेन्द्रादयोऽकारादिक्रमाः सपर्यायाः मूलशब्द-सम्बद्धमेव विषयमनुगच्छन्ति।

ग्रन्थेऽस्मिन् कीदृशी सन्दर्भाङ्कानां व्यवस्थेत्युदाहरणैः स्पष्टयते—१. ६४, २४ इत्येतेनादिपर्वणश्चतुः-षष्टितमाध्यायस्य चतुर्विंशतितमश्लोकोऽवगम्यते। १. ६४, १६–२० इत्येतेन तत्रैव षोडशतमतो विंशतितम-पर्यन्तं श्लोका अवगम्यन्ते। १. ६४, १६. १७. २० इत्येतेन च तत्रैव षोडशः, सप्तदशः, विंशश्च श्लोका अव-गम्यन्त इति।

सन्दर्भग्रन्थस्य पारिभाषिकशब्दस्य वा कस्यापि संक्षिप्तरूपं विरलमेव प्रयुक्तम्, केवलं 'तु० की०' (तुलना कीजिए—तुलनां कुर्वन्तु), 'विष्णु पु०' (विष्णुपुराणम्) एत्येतादृशाः स्ववगमाः प्रतीकाः प्रयुक्तास्ते-नानावश्यकत्वान्न ग्रन्थादौ प्रतीकपरिचयो दत्तः।

ग्रन्थोऽयमतिप्राचीनदुर्लभग्रन्थसम्मुद्रणबद्धपरिकरैश्चौखम्बासंस्कृतग्रन्थमालाध्यक्षैः प्राकाश्यमानीतः, शीघ्रमेव चैभिर्नीलकण्ठीयुतं चित्रशालीयसंस्करणानुरूपं सुलभं नवीनं महाभारतसंस्करणमपि प्रकाशयिष्यते। एतस्मिन् करालकालेऽप्येतादृशव्ययसाध्यबृहद्ग्रन्थप्रकाशनार्थं सहर्षतत्पराः प्रकाशकमहोदयाः सविशेषं धन्यवादार्हाः। एतैरेव नियुक्तः श्रीशिवचरणशर्मापि सन्दर्भान्वेषणादौ मम साहाय्यमारचितवानतस्सोऽपि धन्यवादार्हः। अतिविलम्बेनायं प्रकाशमायात इत्यहमेवानेककार्यव्यापृतत्वाद् दोषभागिति क्षन्तव्यः।

उपसंहारेण च निवेद्यन्ते पाठका यज्जटिलतां कार्यस्याल्पज्ञताञ्च मदीयामवधार्य त्रुटयस्तैः सहानुभूति-पूर्वकं क्षन्तव्या अथ च सम्भवेत्तदार्हं विशेषपरामर्शैरनुगृहीतव्य इति।

रामकुमारराय:

प्राक्कथन

महाभारत कोश का प्रथम भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस भाग को स्वर अक्षरों से आरम्भ होनेवाले शब्दों तक सीमित रक्खा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह भाग ही पर्याप्त विलम्ब के बाद प्रकाशित किया जा सका है, किन्तु विषय-वस्तु की जटिलता, तथा पाण्डुलिपि तैयार करने से लेकर प्रूफ आदि का संशोधन करने तक केवल एक व्यक्ति का ही परिश्रम इस विलम्ब का कारण रहा है। फिर भी, अब कार्य-योजना व्यवस्थित हो चुकी है, जिससे आशा है कि अगले भाग अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से प्रस्तुत होते रहेंगे।

कोश में शब्दों की अकारादि क्रम से व्यवस्था की गई है; किन्तु कुछ प्रमुख नाम, जैसे अर्जुन, इन्द्र, आदि, के जो अनेक अन्य नाम महाभारत में मिलते हैं, उन्हें मूल शब्द के ही अन्तर्गत अकारादि क्रम से रक्खा गया है, जिससे पाठकों को मूल शब्द से सम्बद्ध समस्त सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध हो सके।

सन्दर्भ संकेतों के संख्या की व्यवस्था इस प्रकार है : किसी भी सन्दर्भ संकेत में प्रथम संख्या पर्व की द्योतक है और उसके बाद एक बिन्दु से पृथक् दूसरी संख्या पर्वान्तर्गत अध्याय की। अध्याय की संख्या के बाद कामा से पृथक् की हुई अन्तिम संख्या अध्यायान्तर्गत श्लोक की द्योतक है। इस प्रकार, १. ६४, २४ का अर्थ आदिपर्व के चौंसठवें अध्याय का चौबीसवाँ श्लोक हुआ। एक श्लोक की संख्या के बाद यदि अन्य श्लोकों का भी उल्लेख अभीष्ट रहा है तो उस दशा में दो प्रकार की व्यवस्था का अनुसरण किया गया है। यदि क्रमानुसार एकाधिक श्लोकों का उल्लेख अभीष्ट रहा है तो क्रम के प्रथम और अन्तिम श्लोकों की संख्या को छोटे डैश से पृथक् करके लिखा गया है। एक के बाद कई पृथक्-पृथक् श्लोकों का उल्लेख होने की दशा में प्रथम श्लोक की संख्या के बाद अन्य श्लोकों की संख्याओं को बिन्दु से पृथक् किया गया है। इस प्रकार १६–२० से किसी अध्याय के सोलहवें से बीसवें श्लोकों का तात्पर्य है, और १६. १७. २०, का किसी अध्याय के सोलहवें, सत्रहवें और बीसवें श्लोकों से। कोश में किसी सन्दर्भ-ग्रन्थ या पारिभाषिक शब्द का संक्षिप्त रूप कदाचित ही प्रयुक्त हुआ है। केवल एक ही संक्षिप्त शब्द, तु० की०, मिलेगा जिसका अर्थ 'तुलना कीजिये' है। विष्णुपुराण आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों का यदि संक्षिप्त रूप प्रयुक्त भी हुआ है तो वह ऐसा नहीं कि समझा न जा सके, जैसे विष्णु पुराण के लिए 'विष्णु पु०' रूप यत्र-तत्र व्यवहृत हुआ है। अतः ग्रन्थ के आरम्भ में संक्षेप सारिणी नहीं दी गई है।

कोश मुख्यतः चित्रशाला प्रेस से प्रकाशित नीलकण्ठी-युक्त संस्करण पर आधारित है, अतः प्रत्येक सन्दर्भ-संकेत इसी के अनुसार रक्खा गया है। गीता प्रेस के संस्करण को भी सामने रक्खा गया है, और जहाँ इसमें तथा चित्रशाला प्रेस के संस्करण में भिन्नता है वहाँ उसका तदनुरूप निर्देश कर दिया गया है। इस सम्बन्ध में अपनी स्थिति कुछ और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। कुछ लोगों का सुझाव था कि कोश को भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट से छपे महाभारत के 'क्रिटिकल संस्करण' पर आधारित किया जाय। किन्तु एक तो यह संस्करण अभी पूरा नहीं हो सका है, और दूसरे अत्यधिक मँहगा होने के कारण सर्वसाधारण के लिये कदाचित् ही सर्वत्र सुलभ हो। ऐसी स्थिति में कोश को सर्वोपयोगी बनाने के लिए कुछ प्रचलित तथा सर्वत्र सुलभ संस्करणों को ही आधार बनाने का निश्चय किया गया। फिर

भी, इससे उन पाठकों को कोई कठिनाई नहीं होगी जो 'क्रिटिकल संस्करण' का ही उपयोग करना चाहते हैं क्योंकि उस संस्करण के अन्त में अन्य संस्करण के अध्यायों और श्लोकों की एक तुलनात्मक सूची दी हुई है जिसके आधार पर प्रस्तुत कोश के किसी सन्दर्भ सङ्केत को 'क्रिटिकल संस्करण' में भी ढूँढ़ा जा सकता है। यहाँ कुछ सज्जन चित्रशाला संस्करण की दुर्लभता की भी चर्चा कर सकते हैं, किन्तु चौखम्बा के सञ्चालकगण शीघ्र ही नीलकण्ठी युक्त चित्रशाला जैसा महाभारत का एक नवीन संस्करण यथाशक्ति कम से कम मूल्य पर प्रकाशित करने जा रहे हैं, जिससे यह कठिनाई दूर हो जायगी। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये यह निश्चय किया गया कि कोश को इन्हीं संस्करणों पर आधारित किया जाय।

चित्रशाला प्रेस और गीता प्रेस के संस्करणों में भी थोड़ा अन्तर है। उदाहरण के लिये, कुछ पर्वों में दोनों संस्करणों की अध्याय संख्या समान नहीं है। फिर भी, ऐसी स्थिति में केवल एक ही अध्याय का हेर फेर होने से यदि पाठकों को गीता प्रेस संस्करण में कोई सन्दर्भ न मिले तो वे एक अध्याय पहले या बाद के उसी स्थल पर उस सन्दर्भ को पा सकते हैं। जहाँ गीता प्रेस के यत्र-तत्र दाक्षिणात्य पाठों का सन्दर्भ है वहाँ तदनुसार संकेत कर दिया गया है क्योंकि चित्रशाला प्रेस के संस्करण में ये पाठ सम्मिलित नहीं हैं।

कोश की पाण्डुलिपि तैयार करने और सन्दर्भों को ढूँढ़ने में पं० शिवचरण शर्मा से बहुत अधिक सहायता मिली है, जिन्हें चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस ने मेरी सहायता के लिये नियुक्त कर रक्खा है। अतः उन्हें धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

आज के कठिन समय में भी इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ सहर्ष तत्पर होने के लिये चौखम्बा संस्कृत सीरीज संस्था के संचालक-द्वय, श्री मोहनदास और श्री विट्ठलदास भी विशेष बधाई के पात्र हैं। ये लोग प्रचुर व्यय के विपरीत भी जिस मनोयोग से इस कार्य को पूर्ण कराने के लिये प्रयत्नशील हैं, वह इनकी ही क्षमता की बात है।

अन्त में, पाठकों से मेरा निवेदन है कि कार्य की जटिलता और मेरी अल्पज्ञता को देखते हुये मेरी त्रुटियों को सहानुभूतिपूर्वक ग्रहण, और यदि हो सके तो, अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित करें।

रामकुमार राय

महाभारत-कोश

(महाभारत के नामों और विषयों की व्याख्यात्मक अनुक्रमणिका)

अंश, कश्यप के द्वारा अदिति के गर्भ से उत्पन्न बारह आदित्यों में से एक का नाम है (१. ६५, १५)। यह अर्जुन के जन्मोत्सव के समय उपस्थित हुये थे (१. १२३, ६६)। खाण्डव-वन दाह के समय इन्द्र की ओर से युद्ध करते हुये इन्होंने अपने हाथ में शक्ति धारण की थी (१. २२७, ३५)। इन्होंने स्कन्द को पाँच पार्षद प्रदान किये थे (९. ४५, ५. ३५)। अन्य आदित्यों के साथ इनके नाम की भी गणना कराई गई है (१२. २०८, १५; १३. १५०, १४)। नवजात स्कन्द को देखने के लिये आये हुये लोगों में से एक यह भी थे (१३. ८६, १६)। तु० की० **सूर्य।**

अंशावतरण (म्)—देवताओं के अंशावतार ग्रहण करने का विस्तृत वर्णन आदिपर्व के ६५–६७ अध्यायों में इस प्रकार मिलता है : "इन्द्र और नारायण के परस्पर परामर्श के अनुसार देव-गण समस्त लोकों के हित तथा राक्षसों, दुष्ट गन्धर्वों, सर्पों तथा मनुष्य-भक्षी जीवों इत्यादि के संहार के लिये, पृथ्वी पर आकर ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों के वंश में अवतीर्ण होने लगे। जनमेजय ने, देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, मनुष्य, यक्ष, तथा राक्षस आदि की उत्पत्ति का वर्णन सुनने की इच्छा प्रगट की, जिसका वैशम्पायन ने इस प्रकार वर्णन किया : ब्रह्मा के छः मानस पुत्र; दक्ष की तेरह कन्यायें; आदित्य-गण (इनमें विष्णु सबसे छोटे किन्तु गुणों में सर्वश्रेष्ठ हैं); दिति का पुत्र हिरण्यकशिपु तथा उसके पाँच पुत्र; हिरण्यकशिपु का ज्येष्ठ पुत्र प्रह्लाद; प्रह्लाद के तीन पुत्र—विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ; विरोचन का पुत्र बलि और उसका पुत्र बाण (जो रुद्र का पार्षद और महाकाल के नाम से विख्यात हुआ); दनु के चालीस पुत्र (जिनमें से केवल चौंतीस के नामों की गणना कराई गई है और इन्हीं के अन्तर्गत वह सूर्या-चन्द्रमासौ भी आते हैं जो सूर्य और चन्द्रमा नामक देवताओं से भिन्न हैं); दनुपुत्रों में से दस अन्य के वंशों का उल्लेख; सिंहिका के चार पुत्र; क्रूरा के असंख्य पुत्र; दनायु के चार पुत्र; काला के पुत्र; असुरों के उपाध्याय, महर्षि भृगु के पुत्र शुक्राचार्य, जिन्हें उश्ना भी कहते हैं; उश्ना के चार पुत्र जो असुरों के पुरोहित थे; (असुरों और देवों की इस वंशावली का पुराणों में भी वर्णन है); छः विनतेय, छः काद्रवेय, देवगन्धर्व जाति के मुनि के गर्भ से उत्पन्न सोलह वंशज; प्राधा की आठ पुत्रियाँ, और दस देवगन्धर्व प्राधेयायें; देवर्षि कश्यप और प्राधा की तेरह अप्सरा-पुत्रियाँ; चार गन्धर्वसत्तमाः, जो कि प्रत्यक्षतः प्राधा के ही पुत्र थे;—इस प्रकार सभी प्राणियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सर्पों, सुपर्णों, रुद्रों और मरुतों इत्यादि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है (१. ६५)"। 'ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः' से आरम्भ होने वाले ६६ वें अध्याय में महर्षियों तथा कश्यप-पत्नियों की संतान-परम्परा का वर्णन है : "ब्रह्मा के सातवें पुत्र स्थाणु; स्थाणु के पुत्र ग्यारह रुद्र; छः महर्षियों (मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु) का नाम; अङ्गिरा के तीन पुत्र (बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त); अत्रि के अनेक पुत्र (जिनकी गणना नहीं करायी गयी है) जिन्हें सिद्ध महर्षि कहा गया है; पुलस्त्य मुनि के पुत्र राक्षस, वानर, किन्नर, तथा यक्ष; पुलह के शरभ, सिंह, किंपुरुष, व्याघ्र, रीछ और ईहामृग जाति के पुत्र; और क्रतु के पुत्र, साठ हजार वालखिल्य ऋषियों का, जो सूर्य के आगे चलते हैं, वर्णन; ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से दक्ष की तथा बाँये से दक्ष के पत्नी की उत्पत्ति; दक्ष के पुत्र तो नष्ट हो गये किन्तु उनके पचास पुत्रियाँ भी थीं जिनको उन्होंने पुत्रिका बना लिया : दक्ष ने अपनी दस कन्यायें धर्म को, सत्ताईस चन्द्रमा को और तेरह कश्यप को समर्पित कीं; धर्म की दस पत्नियों (कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति) की गणना; सोम (चन्द्रमा) की सत्ताईस स्त्रियाँ जो नक्षत्र-वाचक नामों से युक्त हैं (नक्षत्र योगिन्यो); माता, पुत्र और पौत्रों सहित वसुओं का, तथा मुख्यतः कुमार, प्रभास, विश्वकर्मन् आदि का वर्णन; ब्रह्मा के दाहिने स्तन को विदीर्ण करके मनुष्य के रूप में धर्म की उत्पत्ति, तथा उनके तीन पुत्रों और पुत्र-वधुओं का वर्णन; मरीचि के पुत्र कश्यप तथा कश्यप से सम्पूर्ण देवताओं और असुरों की उत्पत्ति का वर्णन; अश्वी के रूप में सवितृ की पत्नी त्वाष्ट्री द्वारा अन्तरिक्ष में अश्विनीकुमारों को जन्म देना; अदिति के बारह पुत्रों का वर्णन जिनमें से विष्णु सबसे छोटे किन्तु जिनमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं; इसी प्रकार आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति, और वषट्कार, ये सब तैंतीस मुख्य देवता हैं, जिनके पक्ष, कुल, वंश और गण आदि का इस प्रकार वर्णन किया गया है : 'तेषाम् अहं तव। अन्वयं संप्रवक्ष्यामि पक्षैश्च कुलतो गणान्। रुद्राणामपरः पक्षः साध्यानां मरुतां तथा। वसूनां भार्गवं विद्याद्विश्वेदेवांस्तथैव च॥ वैनतेयस्तु गरुडो बलवानरुणस्तथा। बृहस्पतिश्च भगवानादित्येष्वेव गण्यते॥ अश्विनौ गुह्यकान्विद्धि सर्वौषध्यस्तथा पशून्। एते देवगणा राजन्कीर्तितास्तेऽनुपूर्वशः॥ यान्कीर्तयित्वा मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते।' भृगु, ब्रह्मा के हृदय का भेदन करके प्रकट हुये; भृगु के पुत्र कवि, और कवि के पुत्र शुक्रग्रह हुये जो स्वयंभू की आज्ञा से तीनों लोकों में भ्रमण करते हुये प्राणियों के जीवन की रक्षा के लिये वृष्टि, अनावृष्टि, भय तथा अभय उत्पन्न करते हैं; यही शुक्र योगाचार्य और दैत्यों के गुरु हुये, और यही योग बल से बृहस्पति के रूप में प्रगट होकर देवताओं के भी गुरु होते हैं; ब्रह्मा द्वारा शुक्र को इस प्रकार जगत् के योग-क्षेम के कार्य में नियुक्त कर दिये जाने पर भृगु ने एक दूसरे निर्दोष पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम च्यवन था : अपनी माता को संकट से

बचाने के लिये यह रोषपूर्वक गर्भ से च्युत हो गये जिससे ही च्यवन कहलाये; मनु की पुत्री आरुषी च्यवन की पत्नी थी; इनके पुत्र और्व अपनी माता आरुषि की जाँघ (उरु) फाड़कर प्रगट हुये थे इसलिये और्व कहलाये। यह वंशावली इस प्रकार और आगे बढ़ती है :
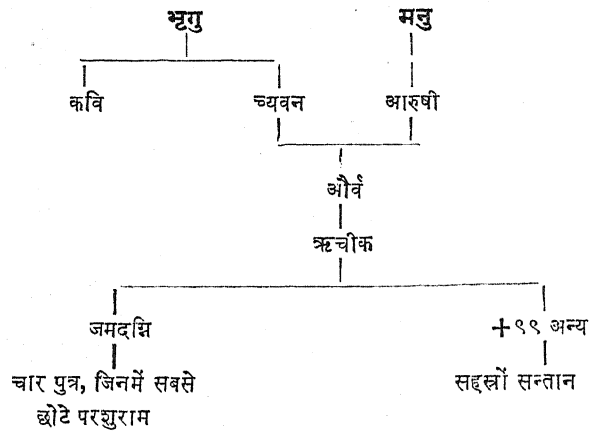
ब्रह्मा के दो पुत्र धाता और विधाता जो मनु के साथ रहते थे, और एक पुत्री लक्ष्मी हुई; शुक्र की पुत्री देवी, वरुण की ज्येष्ठ पत्नी थीं, और इनकी सन्तान बल और सुरा। अधर्म का जन्म उस समय हुआ जब भोजन के अभाव में प्राणी एक दूसरे का भक्षण करने लगे; अधर्म की पत्नी निर्ऋति हुई जिससे नैर्ऋत नामक तीन भयंकर राक्षस-पुत्र उत्पन्न हुये, जिनके नाम भय, महाभय और मृत्यु हैं; मृत्यु के पत्नी या पुत्र कोई नहीं। ताम्रा की सन्तानों का इस प्रकार वर्णन है :
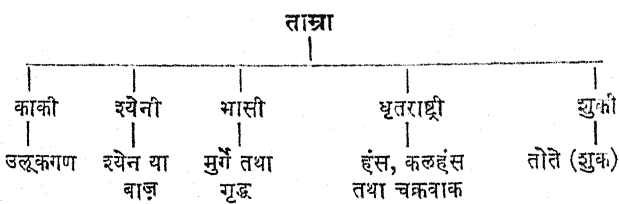
क्रोधवशा के नौ प्रकार की क्रोध-जनित कन्यायें हुई : १. मृगी (जिसकी सन्तानें मृग हैं); २. मृगमन्दा (जिसकी सन्तानें रीछ और समर हैं); ३. हरी (बन्दर, अश्व, गोलाङ्गूल हैं) ४. भद्रमनस (ऐरावत हाथी की माता); ५. मातङ्गी (जिसकी सन्तानें हाथी हैं); ६. शार्दूली (सिंह, व्याघ्र, तेंदुये तथा अन्य बलशाली जीव हैं); ७. श्वेता, जिसने शीघ्रगामी दिग्गज श्वेत को जन्म दिया; ८. सुरभि, जिसकी चार पुत्रियाँ थीं : (क) रोहिणी, जिससे गायें उत्पन्न हुयीं, (ख) गन्धर्वी जिससे अश्व उत्पन्न हुये, (ग) विमला और (घ) अनला, जिनसे सात प्रकार के ऐसे वृक्ष हुये जिनमें पिण्डाकार फल लगते हैं और शुकी नाम की एक कन्या; ९. सुरसा, जो एक बड़े पंखों वाले कङ्क पक्षी की माता हुई; अरुण की पत्नी श्येनी ने सम्पाति और जटायु को उत्पन्न किया; सुरसा ने नागों, कद्रू ने पन्नगों, और विनता ने गरुड़ तथा अरुण को जन्म दिया; (१. ६६)"। जनमेजय की इच्छा के अनुसार वैशम्पायन ने उन देवों और दानवों का वर्णन किया जो मनुष्यों के बीच अवतीर्ण हुये और यह भी बताया कि कौन मनुष्य किसका अवतार है : "यहाँ भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, धृतराष्ट्र के सौ पुत्र इत्यादि, जिनके अंशावतार थे उनका वर्णन करते हुये यह बताया गया है कि दुर्योधन कलि का अंशावतार था; नकुल और सहदेव, जो अश्विनों के अंश थे, जीवों में सर्व-सुन्दर थे; अभिमन्यु के रूप में सोम के पुत्र वर्चस अवतरित हुये; द्रौपदी के पाँच पुत्रों के रूप में पाँच विश्वेदेव-गण प्रगट हुये। इसी प्रकार कुन्ती और कर्ण का भी वर्णन करते हुये कृष्ण को नारायण का, बलदेव को शेष का, प्रद्युम्न को सनत्कुमार का अवतार बताया गया है। वासुदेव की १६००० रानियाँ, रुक्मिणी, द्रौपदी और गान्धारी आदि भी जिनके अंशों से उत्पन्न हुई थीं उनका वर्णन है (१. ६७)"।

अंशावतरण-पर्व, आदिपर्व के अन्तर्गत ५९ से ६४ अध्याय तक आनेवाले उस उपपर्व का नाम है जो आदिपर्व के ही सम्भवपर्व तक के अन्तर्गत ६५ से ६७ वें अध्याय तक चला गया है। देखिये १. २, ९३; २. ३६, १२ भी।

अंशु = शिव (सहस्र नामों में से एक।)

१. अंशुमत्, कृष्णा के स्वयंवर में आने वाले राजाओं में से एक का नाम है (१. १८६, ११)।

२. अंशुमत्, राजा सगर के पौत्र तथा असमञ्जस के पुत्र का नाम है (३. १०७, ३५ : 'असमञ्जस-सुतम्')। यह राजा सगर के यज्ञ-अश्व को वापस ले आने में सफल हुये (३. १०७, ४६, ४९. ५२. ५८. ६२. ६४. ६६)।

३. अंशुमत्, एक भोज-राजा का नाम है जिसका द्रोण ने वध किया था (८. ६, १४)।

४. अंशुमत्, विश्वेदेवों में से एक का नाम है (१३. ९१, ३२।)

५. अंशुमत् = सूर्य।

६. अंशुमत् = सोम।

अकम्पन, सत्ययुग के एक राजा का नाम है (७. ५२, २०. २६)। "प्राचीनकाल में इस नाम के राजा हुये। एक बार यह युद्ध में शत्रुओं से घिर गये थे। इनके पुत्र का नाम हरि था जो उस समय शत्रुओं के हाथ रणक्षेत्र में मारा गया। अकम्पन दिन-रात अपने इसी पुत्र के शोक में मग्न रहने लगे। उस समय देवर्षि नारद ने उनके पास आकर मृत्यु की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनाया (७. ५३, २६-५३)"। मृत्यु की कथा सुनाने के पश्चात् नारद ने राजा अकम्पन से कहा कि धीर पुरुष मृत्यु को ब्रह्मा का विधान समझकर मरे हुये प्राणियों के लिये कभी शोक नहीं करते; यह सुनकर अकम्पन का शोक दूर हो गया (७. ५४, ५०-५२)। देखिये १२. २५६ भी।

अकर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अकर्कर—एक नाग का नाम ('कर्कराकर्करौ नागौ', १. ३५, १६।)

अकर्त = ईश्वर (१२. ३४३, १२६)

अकल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अकार—वर्णमाला का प्रथम अक्षर। कृष्ण ने अपने सम्बन्ध में 'अक्षराणाम् अकारोऽस्मि' (६. ३४, ३३) कहा है।

अकाल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अकूपार, इन्द्रद्युम्न सरोवर में रहने वाले एक चिरञ्जीवी कच्छप का नाम है (१. १८, ११; ३. १९९, ८-९)।

अकृतव्रण, परशुराम के एक अनुचर का नाम है (३. ११५, ३. ५. ९. २६)। वनपर्व के ११५-११६ अध्यायों में अकृतव्रण द्वारा युधिष्ठिर से परशुराम जी के उपाख्यान के प्रसङ्ग में ऋचीक मुनि का गाधि-कन्या के साथ विवाह, और भृगु ऋषि की कृपा से जमदग्नि मुनि की उत्पत्ति तथा मृत्यु का वर्णन है। कृष्ण के हस्तिनापुर जाते समय मार्ग में उनसे मिलने वाले ऋषियों में यह भी थे (५. ८३, ६४ के बाद, महाभारत के गीताप्रेस संस्करण में)। तापसों के आश्रम में राजर्षि होत्रवाहन द्वारा अम्बा से वार्त्तालाप के समय इनका आगमन तथा होत्रवाहन को परशुराम जी के विषय में बताना (५. १७६, ३५. ३९. ४०. ४१-४३)। अकृतव्रण और परशुराम का अम्बा से वार्त्तालाप (५. १७७, १-९)। इन्होंने परशुराम जी के सारथि का कार्य किया था ('सारथ्यं कृतवांस्तत्रयुयुत्सोरकृतव्रणः। सखा वेद विदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥' ५. १७९, ९)। परशुराम के सखा के रूप में इनका उल्लेख (५. १८०, १७; १८४, १४)।

वाणशय्या पर पड़े हुये भीष्म के पास आने वाले ऋषियों में यह भी थे (१३. २६, ८)।

अकृतश्रम, वानप्रस्थ धर्म का पालन करनेवाले एक ऋषि का नाम है (१२. २४४, १७)।

अकृति, भोजराज भीष्म के भ्राता का नाम है जो मगधराज जरासन्ध का भक्त था। इसे शौर्य में राम जामदग्न्य के समान बताया गया है, (२. १४, २२)। **आकृति**—सुराष्ट्र देश के अधिपति, कौशिकाचार्य आकृति को सहदेव ने अपने अधीनस्थ किया था (२. ३१, ६१)।

१. अक्रूर—एक वृष्णि-वंशी राजा (१. १८६, १८; २१९, १०)। यह वृष्णि वीरों के सेनापति थे (१. २२१, २९)। मय द्वारा निर्मित सभा-भवन में युधिष्ठिर के प्रवेश करने के समय उपस्थित राजाओं में यह भी थे (२. ४, ३०)। एक वृष्णि योद्धा के रूप में (३. १८, २०; ५१, २८)। अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर यह भी उपप्लव्य नगर में पधारे थे (४. ७२, २२)। आहुक और अक्रूर आपस में बैर रखते थे किन्तु यह दोनों ही श्रीकृष्ण को अपने विरोधी का पक्षपाती समझते थे, जिससे श्री कृष्ण अत्यन्त चिन्तित थे (१२. ८१,९–११. १४)। वासुदेव ने यादवों के सर्वनाश के लिये इनकी निन्दा करना उचित नहीं समझा (१६, ६, १०)। इनकी पत्नियाँ वज्र के बहुत रोकने पर भी वन में तपस्या करने के लिये चली गई (१६. ७, ७२)। यह विश्वेदेवों के स्वरूप में मिल गये (१८. ५, १६)।

२. अक्रूर=विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अक्रूरकर्मन्=शिव (१४. ८, २५)।

अक्रोधद्रोहमोह=कृष्ण (१२. ४७, ८२)।

अक्रोधन, अयुतनायिन् और कामा के पुत्र उस पुरुवंशी का नाम है जिसने कलिङ्ग देश की राजकुमारी करम्भा से विवाह किया था; इसके पुत्र का नाम देवातिथि था (१. ९५, २१. २२)।

अक्रोश, महोत्थ देश के अधिपति उस राजर्षि का नाम है जिसको नकुल ने विजित किया था (२. ३२, ६)।

१. अक्ष, स्कन्द के योद्धाओं में एक थे (९. ४५, ५७)।

२. अक्ष=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अक्षप्रपतन क्षेत्र के अन्तर्गत नेमिहंसपथ नामक स्थान पर कृष्ण ने गोपति और तालकेतु नामक असुरों का वध किया था (२. ३८, २९ के बाद गी० सं० के पृ० ८२४ पर देखिये)।

अक्षमाला—वसिष्ठ की पत्नी जिसे अरुन्धती के साथ समीकृत किया गया है ('वसिष्ठश्चाक्षमालया', ५. ११७, ११)। देखिये **अरुन्धती** भी।

अक्षमालिन्=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अक्षयवट, गया-तीर्थ में स्थित विख्यात अक्षयवट का नाम है जिसके समीप जाकर पितरों के लिये दिया हुआ सब कुछ अक्षय बताया जाता है (३. ८४, ८३; ९५, १४)।

अक्षर (अनश्वर) = **कृष्ण** अथवा परमेश्वर (१२. ४७, ३७. ४६)। 'ऊर्ध्वरेताः प्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरसात्मताम्' (१२. ६१, ५. ९)। 'निराशिषो वर्दान्यस्य लोका ह्यक्षरसंमिताः' (१२. ६२, ७)। = हिरण्यगर्भ (१२. ३०२, १९)। = हरि (१२. ३४०, १०७)। = ईश्वर (१२. ३४२, १२५)। = शिव (१३. १७, ८०)। = विष्णु (१३. १४९,१५.६४)। = अक्षर पुरुष (६. ३९, १६)।

अक्षहृदयप्राप्ति (द्यूत-रहस्य की प्राप्ति)—'तथाऽक्षहृदयप्राप्तिस्तस्मादेव महर्षितः' (१. २, १६२)।

अक्षीण, महर्षि विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम है (१३. ४, ५०)।

अक्षोभ्य=विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अक्षौहिणी, चतुरङ्गिणी सेना की एक निश्चित संख्या का वाचक है। इसके अन्तर्गत रथों, अश्वों, गजों और पदातियों की संख्या निर्धारित होती थी (१. २, १४. १७. १८)। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के सैनिकों की संख्या के लिये देखिये १. २, १९–२६।

आगम=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अगस्त्य—वसिष्ठ के भ्राता और मित्रावरुण के पुत्र एक ब्रह्मर्षि। इन्हें मित्रावरुणि और कुम्भयोनि भी कहते हैं। "एक बार इन्होंने एक स्थान पर अपने पितरों को एक गड्ढे में नीचे मुख किये लटकता देखा। इन पितरों ने उस नरक से छुटकारा पाने के लिये इनसे सन्तान उत्पन्न करने का आग्रह किया। इन्होंने उनकी इच्छा पूर्ण करने का आश्वासन दिया और एक-एक जन्तु के उत्तमोत्तम अङ्गों का भावना द्वारा संग्रह करके एक सुन्दर स्त्री का निर्माण किया। इन्होंने इस स्त्री को विदर्भराज की पुत्री बना दिया। विदर्भराज की इस कन्या का नाम लोपामुद्रा रक्खा गया। जब यह कन्या बड़ी हुई तो अगस्त्य ने उसके साथ विवाह किया। विवाह के पश्चात् लोपामुद्रा के आग्रह पर अगस्त्य अपनी पत्नी के लिये धन-संग्रहार्थ तीन राजाओं, तथा उसके पश्चात् इल्वल दानव के पास गये। इल्वल ने अपने वातापि नामक भाई को बकरा बनाकर अगस्त्य मुनि को उसका मांस खिला दिया। किन्तु अगस्त्य ने उसे पचा लेने के बाद अन्त में इल्वल का भी वध कर दिया। लोपामुद्रा से अगस्त्य ने दृढस्यु अथवा इध्मवाह नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। अगस्त्य ने अपने दक्षिण से लौटने तक विन्ध्य पर्वत को ऊँचा उठने से रोक दिया था। इन्होंने कालकेयों पर देवों की विजय को सम्भव बनाने के लिये समुद्र का शोषण भी कर लिया था (३. ९६–९८; ३. १०१–१०५)"। इन्होंने यज्ञ में विघ्न-उत्पन्न करने वाले पशुओं पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला था (१. ११८, १४)। द्रोण के गुरु अग्निवेश ने अगस्त्य से ही धनुर्वेद की शिक्षा ली थी (१. १३९, ९)। इनके समुद्रपान का उल्लेख (१. १८८, १५)। यह दक्षिण दिशा के प्रतीक हैं ('अगस्त्यशास्तामभितो दिशं', १. १९२, ९)। यह यम की सभा में धर्मराज की उपासना करते हैं (२. ८, २९)। यह ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित होते हैं (२. ११, २२)। इनके द्वारा वातापि नामक राक्षस के भक्षण का उल्लेख (३. ११, ३७)। प्रयाग में इनके आश्रम का उल्लेख (३. ८७, २०)। दक्षिण में गोकर्णतीर्थ में इनके शिष्य के आश्रम का उल्लेख (३. ८८, १७)। दक्षिण के वैदूर्य पर्वत पर इनके आश्रम का उल्लेख (३. ८८, १८)। गयातीर्थ में स्थित उस ब्रह्म सरोवर का उल्लेख जहाँ यह वैवस्वत-यम से मिलने के लिये पधारे थे (३. ९५, ११; तु० की० १३. ६८, ६)। 'अगस्त्य', तथा 'अगस्त्यस्याश्रमम्' (३. ९६, १–३. १४; ९७, १. ६–८. १२; ९८, १. १२; ९९, ४. ६. ८. ११. १८. २९. ३०; १००, १–२; १०३, ११. १२; १०४, ८. १५–१६. २४)। इनके द्वारा वातापि के भक्षण का सन्दर्भ (३. १०९, २१)। लोपामुद्रा द्वारा इनकी सेवा का उल्लेख (३. ११३, २३)। सिन्धु के उस महान् तीर्थ का उल्लेख जहाँ लोपामुद्रा ने अपने पति के रूप में अगस्त्य का वरण किया था (३. १३०, ६)। अगस्त्य द्वारा कुबेर तथा उसके सखा मणिमत् नामक राक्षस को शाप देना तथा कुबेर द्वारा उससे मुक्ति पाने की कथा का वर्णन (३. १६१, ५०. ५२. ५५–६३; १६२, ३७)। अगस्त्य द्वारा नहुष को शाप देने का उल्लेख (३. १७९, १४; १८०, १४–१५; १८१, ३७)। वातापि के विनाश का उल्लेख (३. २०६, २८)। इनकी पत्नी लोपामुद्रा का उल्लेख (४. २१, १४)। इन्द्र की अनुपस्थिति में देवों के राजा नहुष को इन्होंने १०,००० वर्षों तक सर्प बने रहने का शाप दिया था (५. १७, २. २२; १८, १३; तु० की० १३. ९९–१००)। 'अगस्त्यश्चापि वैदर्भ्या' (५. ११७, १२)। दक्षिण दिशा के प्रतीक (५. १४३, ४४)। अगस्त्य ने द्रोणाचार्य को ब्रह्मास्त्र की शिक्षा दी थी (१०. १२, १३)। अगस्त्य द्वारा वातापि के भक्षण का

उल्लेख (१२. १४१, ७१)। वसिष्ठ और गौतम तथा अन्य ऋषियों के साथ अगस्त्य, ब्रह्मा की आज्ञा के अधीन रहकर, सनातन धर्म का पालन करने लगे (१२. १६६, २३)। मित्रावरुण के प्रतापी पुत्र अगस्त्य, जो दक्षिण के सप्तर्षियों में से एक हैं (१२. २०८, २९)। यह वानप्रस्थ धर्म के प्रसारकों में से एक हैं (१२. २४४, १६)। 'कुम्भयोनिर् मैत्रावरुणिः ऋषिवरो', (१२. ३४२, ५१)। अन्य ऋषियों के साथ अगस्त्य भी बाणशय्या पर पड़े भीष्म पितामह को देखने आते हैं (१३. २६, ४)। हिमालय पर देवों के यज्ञ में पधारते हैं (१३. ६६, २३)। क्षत्रियों का विनाश कर लेने के बाद परशुराम ने अपने को पवित्र करने के लिये अगस्त्य तथा अन्य ऋषियों से परामर्श किया और इन ऋषियों ने उन्हें स्वर्ण-दान करने का आदेश दिया था (१३. ८४, ३८)। ब्रह्मसर-तीर्थ में अगस्त्य जी का धर्मोपदेश सुनने के लिये इन्द्र ने इनका एक कमल पुष्प चुरा लिया था (१३. ९४, ४. ८-९. ४६)। नहुष का ऋषियों पर अत्याचार तथा उसके प्रतिकार के लिये महर्षि भृगु और अगस्त्य की बातचीत, तथा अगस्त्य के शाप से नहुष का पतन (१३. ९९-१००)। 'प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना। आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रेक्षितास्तपसा मृगाः॥' (१३. ११५, ५९; देखिये ११६, १७)। 'निमीराष्ट्रं च वैदर्भिः कन्यां दत्वा महात्मने। अगस्त्याय गतः स्वर्गं सपुत्रपशुबान्धवः॥' (१३. १३७, ११)। मित्रावरुणि के पुत्र दक्षिण के सात धर्मराज ऋत्विजों में से एक हैं (१३. १५०, ३५); 'शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिर्ब्रह्मर्षिभिः', (१३. १५०, ७९)। "प्राचीनकाल में असुरों ने देवताओं को परास्त करके उनका उत्साह नष्ट कर दिया था। इन दानवों ने देवताओं के यज्ञ, पितरों के श्राद्ध, तथा मनुष्यों के कर्मानुष्ठान को भी लुप्त कर दिया। ऐसी दशा में देवता-गण पृथ्वी पर इधर-उधर फिरते हुये ब्राह्मण मुनि अगस्त्य से मिले। देवताओं के निवेदन पर अगस्त्य ने दानवों को भस्म करना आरम्भ किया, जिससे सभी दानव दोनों लोकों (पृथ्वी और आकाश) का परित्याग करके दक्षिण दिशा की ओर भाग गये। उस समय राजा बलि अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। अतः जो दैत्य उनके साथ पृथ्वी पर थे वह, तथा जो पाताल में थे, दग्ध होने से बच गये; क्योंकि उन्हें दग्ध करने से अगस्त्य की तपस्या क्षीण हो जाती। 'अतः तुम अगस्त्य मुनि से श्रेष्ठ यदि किसी क्षत्रिय को जानते हो तो बताओ' (१३. १५५, १. ४. ७. ९. १३-१४)"। मित्रावरुण के पुत्र, दक्षिण के एक ऋषि (१३. १६५, ४०)। "प्राचीन समय में सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहनेवाले अगस्त्य मुनि ने एक समय बारह वर्षों में समाप्त होने वाले यज्ञ की दीक्षा ली। इस कार्य के लिये उन्होंने अनेक होतृ पुरोहितों को बुलाया। अगस्त्य ने यथाशक्ति आवश्यक अन्न का संग्रह किया। इनके सिवाय और भी मुनियों ने उस समय बड़े-बड़े यज्ञ किये थे। फिर भी, जब अगस्त्य ने यज्ञ आरम्भ किया तब इन्द्र ने वर्षा बन्द कर दी। यज्ञ-कर्म के बीच में अवकाश मिलने पर मुनि-गण इसी विषय पर वार्त्तालाप करने लगे। मुनियों के ऐसा कहने पर अगस्त्य ने कहा, 'यदि इन्द्र बारह वर्षों तक वर्षा नहीं करते तो मैं चिन्तन मात्र के द्वारा मानसिक यज्ञ, अथवा स्पर्श-यज्ञ, अथवा अन्य प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा।' तब अगस्त्य ने अपने शब्दों द्वारा तीनों लोकों की समस्त सम्पत्ति, समस्त अप्सराओं, गन्धर्वों, किन्नरों, विश्वावसुओं, उत्तरकुरु के समस्त धन, स्वर्ग, स्वर्गवासी देवता, और धर्म आदि, सबको अपने यज्ञ स्थल पर बुला लिया। उन मुनियों ने अगस्त्य के तपोबल की प्रशंसा करते हुये कहा कि 'हम आपकी तपस्या का व्यय नहीं होने देना चाहते'। जब ऋषि-गण ऐसी बातें कह रहे थे उसी समय इन्द्र ने महर्षि का तपोबल देखकर वर्षा आरम्भ कर दी, तथा बृहस्पति के साथ स्वयं आकर अगस्त्य मुनि को मनाया। तदनन्तर यज्ञ समाप्त होने पर हर्षित अगस्त्य मुनि ने उन महामुनियों की विधिवत् पूजा तथा विदाई की (१४. ९२, ४-३८)"। तु० की० **कुम्भयोनि, मैत्रावरुणि, मित्र-वरुणयोः पुत्र।**

२. अगस्त्य—यद्यपि यहाँ 'अगस्त्यं गोत्रतश्चापि नामतश्चापि शर्मिणम्' (१३. ६८, ६) से अगस्त्य-गोत्री शर्मिन् नामक ब्राह्मण का तात्पर्य है; तथापि ३. ९५, ११, में इसके साथ 'भगवान्' उपाधि संयुक्त होने से इसे स्वभावतः अगस्त्य मुनि मानना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

अगस्त्यतीर्थ—दक्षिण-समुद्र के समीप स्थित एक तीर्थ जो पाँच नारीतीर्थों में से एक है (१. २१६, ३; तु० की० १. २१७, १७)। पाण्ड्यदेश में अगस्त्यतीर्थ के स्थित होने का उल्लेख (३. ८८, १३; ११८, ४)।

अगस्त्यपर्वत—इसे अत्यन्त रमणीय, श्रेष्ठ, पवित्र, और कल्याणस्वरूप बताया गया है (३. ८७, २१)।

अगस्त्यवट, हिमालय के पास स्थित एक पुण्यक्षेत्र है, जहाँ अर्जुन का आगमन हुआ था (१. २१५, २)।

अगस्त्यशिष्य, अगस्त्य का एक शिष्य है जिसके नाम का उल्लेख नहीं मिलता (३. ८८, १७)।

अगस्त्याश्रम—पञ्चवटी के पास का एक पुण्यक्षेत्र (३. ९९, १७; ३. ९६, १; देखिये ३. ८७, २०)।

अगस्त्योपाख्यान—"प्राचीनकाल में मणिमती नगरी में इल्वल नामक एक दैत्य रहता था। उसके छोटे भाई का नाम वातापि था। एक ब्राह्मण से इल्वल ने अपने लिये इन्द्र के समान एक पुत्र की याचना की किन्तु उस ब्राह्मण ने उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं की। परिणाम स्वरूप इल्वल क्रुद्ध होकर समस्त ब्राह्मणों की हत्या करने लगा। इल्वल की वाणी में यह शक्ति थी कि वह जिस किसी प्राणी को उसका नाम लेकर बुलाता था वह यमलोक तक से वापस चला आता था। अपनी इस शक्ति का उपयोग करते हुये इल्वल अपने भ्राता वातापि को माया से बकरा बनाकर उसका मांस किसी ब्राह्मण को खिला देता था। तदुपरान्त वह अपने भाई का नाम लेकर पुकारता था जिसको सुनकर वह वातापि नामक ब्राह्मण-शत्रु दैत्य उस ब्राह्मण की पसली को फाड़कर हँसता हुआ बाहर निकल आता था। इस प्रकार दुष्ट-हृदय इल्वल बार-बार ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने भाई द्वारा उनकी हिंसा करा देता था। इन्हीं दिनों अगस्त्य मुनि कहीं चले जा रहे थे। मार्ग में एक स्थान पर उन्होंने अपने पितरों को देखा जो गड्ढे में नीचे मुँह किये लटक रहे थे। उन पितरों ने अगस्त्य से सन्तान उत्पन्न करने का आग्रह किया जिससे उनको उस नरक से छुटकारा मिले। अगस्त्य ने पितरों की इच्छा पूर्ण करने का आश्वासन देते हुये सन्तानोत्पादन के लिये अपने योग्य पत्नी का अनुसन्धान किया, किन्तु उन्हें कोई स्त्री नहीं मिली। तब उन्होंने एक-एक जन्तु के उत्तमोत्तम अङ्गों की भावना द्वारा संग्रह करके उन सबसे एक परम सुन्दरी का निर्माण किया और उसे उस विदर्भराज की पुत्री के रूप में उत्पन्न कराया जो सन्तान प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहे थे। इस कन्या का नाम लोपामुद्रा रक्खा गया। जब यह विवाह के योग्य हुई तो यौवन, शील, तथा सदाचार से सम्पन्न होते हुये भी अगस्त्य के भय से किसी ने इसका वरण नहीं किया (३. ९६)"। "जब अगस्त्य को यह मालूम हो गया कि विदर्भ-कुमारी उनकी गृहस्थी चलाने के योग्य हो गई है तब उन्होंने विदर्भराज के पास जाकर उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। अगस्त्य की इस इच्छा को सुनकर विदर्भराज तथा उनकी रानी बहुत दुःखी हुई किन्तु स्वयं लोपामुद्रा के आग्रह पर उन लोगों ने उसे अगस्त्य को समर्पित कर दिया। लोपामुद्रा को पत्नी-रूप में पाकर अगस्त्य ने उससे वस्त्र तथा आभूषण का परित्याग करके फटे पुराने वस्त्र, वल्कल और मृगचर्म धारण करने के लिये कहा। लोपामुद्रा ने भी मुनि की आज्ञानुसार ही आचरण किया। तदनन्तर अगस्त्य मुनि अपनी अनुकूल पत्नी के साथ गङ्गाद्वार में

आकर घोर तपस्या में संलग्न हो गये। लोपामुद्रा बड़ी प्रसन्नता और आदर के साथ पति-सेवा करने लगी। कुछ समय के पश्चात्, एक दिन अगस्त्य ने, ऋतुस्नान से निवृत्त हुई पत्नी लोपामुद्रा को देखा जो तपस्या के तेज से प्रकाशित हो रही थी। महर्षि ने उसके रूप-सौन्दर्य से प्रसन्न होकर उसे मैथुन के लिये अपने पास बुलाया। इस पर लोपामुद्रा ने हाथ जोड़कर अगस्त्य से कहा, 'मैं अपने पिता के घर जैसी शय्या पर शयन करती थी वैसी ही शय्या पर आप मेरे साथ समागम करें। मैं यह भी चाहती हूँ कि हम दोनों ही सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत हों। साथ ही मेरी यह भी इच्छा है कि आप अपने तप और धर्म की रक्षा करते हुये ही जैसे संम्भव हो उस प्रकार मेरी इच्छा पूर्ण करें, (३. ९७)"। "अगस्त्य मुनि राजा श्रुतर्वन के पास गये और उनसे धन की याचना की। किन्तु जब उन्होंने यह देखा कि श्रुतर्वन का व्यय उनकी आय के बराबर है तो उन्होंने उनसे कुछ नहीं लिया। फिर भी, वह श्रुतर्वन को साथ लेकर राजा ब्रध्नश्व के पास गये किन्तु वहाँ भी वही परिणाम निकला। तब तीनों मिलकर इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रसदस्यु पौरुकुत्स के पास गये, किन्तु वहाँ भी वही परिणाम हुआ। तब इन राजाओं के परामर्श के अनुसार चारों मिलकर इल्वल नामक दानव के पास गये (३. ९८)"। "इल्वल ने महर्षि सहित उन राजाओं को आता जानकर अपने मंत्रियों के साथ अपने राज्य की सीमा पर उपस्थित हो उनका स्वागत किया। उस समय इल्वल ने अपने भाई वातापि का मांस पकाकर उसके द्वारा ही इन सबका आतिथ्य किया। इसे देखकर अगस्त्य के साथ के तीनों राजर्षियों का हृदय खिन्न हो गया और वे अचेत से हो गये। इस पर उन्हें आश्वासन देते हुये अगस्त्य ने अकेले ही वातापि का सारा मांस खा लिया। जब अगस्त्य मुनि भोजन कर चुके तब इल्वल ने वातापि का नाम लेकर पुकारा। उस समय अगस्त्य की गुदा से गजरते हुये मेघ की भाँति भीषण शब्द करती हुई अधोवायु निकली, क्योंकि अगस्त्य ने उस असुर को पचा लिया था। तब दुःखी होकर इल्वल ने उन राजर्षियों तथा अगस्त्य से कहा कि 'यदि आप लोग यह जान लें कि मैं कितना धन देना चाहता हूँ तो मैं आपको अवश्य धन दूँगा।' इस पर अगस्त्य ने कहा कि 'तुम इन प्रत्येक राजाओं को दस-दस सहस्र गायें तथा इतनी ही सुवर्ण-मुद्रायें, तथा मुझे इन राजाओं की अपेक्षा दूनी गायें और स्वर्ण-मुद्रायें देना चाहते हो। साथ ही तुम मुझे एक स्वर्ण-रथ भी देना चाहते हो जिसमें विराव और सुराव नामक दो तीव्रगामी घोड़े लगे हुये हैं। वह रथ अगस्त्य सहित राजाओं को अगस्त्य आश्रम की ओर ले चला। उस समय इल्वल असुर ने मुनि के पीछे जाकर उन्हें मारने की चेष्टा की किन्तु मुनि ने उस महादैत्य को हुँकार से ही भस्म कर दिया। तदनन्तर उन वायु के समान वेगवान घोड़ों ने मुनि सहित इन राजाओं को मुनि के आश्रम पर पहुँचा दिया। तब अगस्त्य की आज्ञा लेकर राजर्षि-गण अपनी-अपनी राजधानी को चले गये तथा अगस्त्य ने भी लोपामुद्रा की समस्त इच्छायें पूर्ण कर दीं। अगस्त्य ने लोपामुद्रा से कहा कि 'मैं तुम्हारे गर्भ से एक सहस्र, अथवा प्रत्येक दस-दस के समान सौ, अथवा प्रत्येक सौ-सौ के समान केवल दस, अथवा एक सहस्र के समान केवल एक पुत्र ही, उत्पन्न कर सकता हूँ; अतः तुम जैसा पुत्र चाहती हो वह मुझसे कहो। लोपामुद्रा ने अनेक की अपेक्षा केवल एक श्रेष्ठ पुत्र की ही इच्छा प्रकट की। तदुपरान्त गर्भाधान करके अगस्त्य मुनि पुनः वन में चले गये। वह गर्भ सात वर्षों तक लोपामुद्रा के पेट में ही पलता और विकसित होता रहा। सात वर्ष व्यतीत हो जाने पर लोपामुद्रा ने उस दृढस्यु को जन्म दिया जो जन्मकाल से ही अङ्ग और उपनिषदों सहित सम्पूर्ण वेदों का स्वाध्याय-सा करता जान पड़ा। पिता के घर में रहते हुये तेजस्वी दृढस्यु बाल्यकाल से ही इध्म (समिधा) का भार वहन करके लाने लगे; अतः वह इध्मवाह नाम से विख्यात हो गये। अपने पुत्र से अगस्त्य अत्यन्त प्रसन्न हुये और उनके पितरों ने भी मनोवांछित लोक प्राप्त कर लिया (३. ९९)"। "कृतयुग में वृत्रासुर की अध्यक्षता में कालकेय नामक दैत्यों ने विविध प्रकार के आयुधों से सुसज्जित हो इन्द्र तथा अन्य देवताओं पर आक्रमण किया। तब वह सब देव-गण ब्रह्माजी के परामर्श के अनुसार भगवान नारायण को आगे करके सरस्वती के तट पर स्थित दधीच के आश्रम में आये। सब देवताओं ने महर्षि के चरणों में अभिवादन करके उनसे अपना शरीर त्यागने का निवेदन किया। यह सुनकर देवों की इच्छा के अनुसार महर्षि दधीच ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया। महर्षि के निर्जीव शरीर से अस्थियों को एकत्र कर देवों ने त्वष्टा से एक अत्यन्त भयङ्कर वज्र का निर्माण कराया। इन्द्र को वह वज्र समर्पित करते हुये स्वयं त्वष्टा ने उनसे वृत्र का वध करने का आग्रह किया (३. १००)"। "तदुपरान्त, कालकेयों के साथ जो युद्ध हुआ उसमें देव-गण पराजित होने लगे। तब नारायण तथा अन्य ब्रह्मर्षियों ने इन्द्र को अपने-अपने तेजों से युक्त कर दिया। देवताओं सहित विष्णु तथा महर्षियों के तेज से पूर्ण होकर इन्द्र अत्यन्त बलशाली हो गये। तब उन्होंने अपने वज्र से वृत्रासुर पर प्रहार किया जो उससे आहत होकर उसी प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ा जिस प्रकार पूर्वकाल में विष्णु के हाथ से छूटकर मन्दराचल पर्वत पृथ्वी पर गिर पड़ा था। महादैत्य वृत्र के मारे जाने पर भी इन्द्र भय से पीड़ित होकर छिपने की इच्छा से एक तालाब में प्रवेश करने के लिये भागे। भय के कारण उन्हें यह विश्वास नहीं हुआ कि वज्र उनके हाथ से छूट चुका है और वृत्रासुर भी अवश्य मारा गया है। इधर देवताओं ने भी अन्य दैत्यों को पराजित किया जिससे वह सब भागकर समुद्र में प्रवेश कर गये। मत्स्यों और मगरों से भरे हुये उस अपार महासागर में प्रविष्ट होकर वे सब दानव तीनों लोकों का विनाश करने के लिये बड़े गर्व से मंत्रणा करने लगे। उन्होंने यह निश्चय किया कि यतः सम्पूर्ण लोक तप के प्रभाव से ही टिके हुये हैं, अतः समस्त तपस्वियों और धर्मज्ञों का वध कर डालने से सारा जगत् स्वयं नष्ट हो जायगा (३. १०१)"। "दिन में समुद्र के गर्भ में छिपे रह कर रात्रि के समय वह दैत्य-गण आश्रमों तथा पुण्य स्थानों में रहने वाले मुनियों का वध करने लगे। उन्होंने वसिष्ठ के आश्रम के १९७, च्यवन के आश्रम के १००, तथा भरद्वाज के आश्रम के २० तपस्वियों का बिना दिखाई दिये ही वध कर दिया। प्रतिदिन प्रातःकाल लोग मुनियों के मृत और भग्न शरीरों तथा बिखरी हुई अग्निहोत्र की सामग्रियों को देखते थे। इस प्रकार प्रतिदिन नष्ट होनेवाले मनुष्य भयभीत हो अपनी रक्षा के लिये चारों दिशाओं में भाग ने लगे, और कुछ के तो भय से ही प्राण निकल गये। कुछ महान धनुर्धर इन कुकृत्यकारी दानवों के स्थान का भी पता लगाने का प्रयास करने लगे, किन्तु उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। तब इन्द्र सहित देव-गण नारायण के पास गये (३. १०२)"। "उन्होंने विष्णु को बताया कि न जाने कौन रात में आकर ब्राह्मणों का वध कर जाता है। विष्णु ने इस विनाश का कारण बताते हुये देवताओं से अगस्त्य मुनि के पास जाकर समुद्र का शोषण करने के लिये निवेदन करने का परामर्श दिया। उन्होंने बताया कि अगस्त्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य को नहीं कर सकता। विष्णु की आज्ञा से समस्त ऋषि-गण अगस्त्य के आश्रम पर आये। देवताओं ने अगस्त्य से कहा कि 'पूर्वकाल में राजा नहुष के अन्याय से सन्तप्त लोकों की आपने ही रक्षा की थी। पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्य जब सूर्य पर क्रोध करके सहसा बढ़ने लगा था और उसने समस्त जगत को अन्धकार से आच्छादित कर दिया था, तब आपने ही उसे बढ़ने से रोका था' (३. १०३)"। "देवताओं की बात सुनकर अगस्त्य मुनि देवताओं तथा ऋषियों

के साथ समुद्र तट पर गये। उस समय मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर सभी उस अद्भुत दृश्य को देखने के लिये महात्मा अगस्त्य के पीछे चल पड़े (३. १०४)"। "समुद्रतट पर जाकर अगस्त्य मुनि ने लोगों के देखते-देखते ही समुद्र का पान कर लिया। तब देवताओं ने विधातृ के रूप में उनकी स्तुति की। उस समय चारों ओर गन्धर्वों के वाद्यों की ध्वनि फैल रही थी और अगस्त्य पर दिव्य पुष्पों की वर्षा हो रही थी। उन दैत्यों को, जिन्हें मुनियों ने अपनी तपस्या द्वारा पहले से ही दग्ध कर रक्खा था, देवताओं ने अपने विविध आयुधों से मार डाला। कुछ दैत्य, जो वसुन्धरा को विदीर्ण करके पाताल में चले गये, मारे जाने से बच गये। तदुपरान्त देवों ने अगस्त्य मुनि से समुद्र को पुनः जल से परिपूर्ण कर देने का आग्रह किया, किन्तु उस समय तक अगस्त्य ने समुद्र के जल को पचा लिया था। तब विष्णु सहित देव-गण समुद्र को भरने का उपाय जानने के लिये ब्रह्मा जी के पास गये (३. १०५)"। ब्रह्मा जी ने उनको बताया कि दीर्घकाल के पश्चात् उस समय समुद्र पुनः अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जायगा जब महाराज भगीरथ अपने पूर्वजों के उद्धार के उद्देश्य से समुद्र को अगाध जल से भर देंगे।

अगावह, एक वृष्णि योद्धा का नाम है (७. ११, २७)।

अग्नि—पञ्चमहाभूतों में से एक तथा उसके अभिमानी देवता, जो भगवान् के मुख से उत्पन्न हुये। तीन अग्नियों का दृष्टान्त (१. १, ९५)। अर्जुन द्वारा खाण्डव दाह के समय अग्नि को तृप्त करना (१. १, १५२)। इन्द्र और अग्नि राजा शिवि के धर्म की परीक्षा लेने के लिये आये थे (१. २, १७३)। अर्जुन द्वारा अपना दिव्य गाण्डीव धनुष अग्नि को अर्पित करना (१. २, ३६६)। 'यः पुरुषः स पर्जन्यो योऽश्वः सोऽग्निर्यः' (१. ३, १६७)। भगवान् शौनक का अग्नि की उपासना में संलग्न होना (१. ४, ४)। "भृगु की पत्नी पुलोमा का पहले एक पुलोमन् नामक राक्षस ने वरण किया था, किन्तु बाद में भृगु के साथ उसका विवाह हो गया। एक दिन जब स्नान करने के लिये भृगु आश्रम से बाहर चले गये थे तब पुलोमा का अपहरण करने के उद्देश्य से वह राक्षस वहाँ आया। उस समय उसने अग्निहोत्र-गृह में प्रज्वलित पावक से पूछा, 'हे अग्निदेव! मैं सत्य की शपथ देकर पूछता हूँ कि यह किसकी पत्नी है, मेरी अथवा भृगु की?' अग्नि ने उत्तर दिया कि 'इसमें सन्देह नहीं कि पहले तुमने ही पुलोमा का वरण किया था, किन्तु उसके पश्चात् महर्षि भृगु ने मुझे साक्षी बनाकर वेदोक्त क्रिया द्वारा विधिवत् उसका पाणिग्रहण किया है।' अग्नि का यह वचन सुनकर उस राक्षस ने वराह का रूप धारण करके पुलोमा का अपहरण किया। उस समय पुलोमा की कुक्षि में निवास कर रहा गर्भ अत्यन्त रोष के कारण माता के उदर से च्युत होकर बाहर निकल आया जिसको देखते ही वह राक्षस तत्काल जलकर भस्म हो गया। ब्रह्मा ने पुलोमा के नेत्र-जल से वधूसरा नदी का निर्माण किया। भृगु ने अग्नि को यह कहते हुए शाप दिया कि 'तुम सर्वभक्षी हो जाओगे।' उस शाप से क्रुद्ध होकर अग्निदेव ने द्विजों के अग्निहोत्र, यज्ञ, सूत्र, तथा संस्कार सम्बन्धी क्रियाओं से अपने को समेट लिया जिसके फलस्वरूप समस्त प्रजाजन अत्यन्त दुःखी हो गये। तब ब्रह्मा ने मधुर वाणी में अग्नि को यह आश्वासन देते हुए प्रसन्न किया कि उनका समस्त शरीर सर्वभक्षी नहीं होगा वरन् उनके अपान देश में स्थित ज्वाला तथा उनकी क्रव्याद मूर्त्ति ही सब कुछ भक्षण करेगी। साथ ही उनकी ज्वाला से दग्ध होने पर सब कुछ शुद्ध हो जायगा (१. ५, २१. २२. २७. ३१; ६, १. १२. १४; ७, १४–१८. २२–२५. २८. २९)"। समुद्र वडवानल के प्रज्वलित मुख में सदा जलरूपी हविष्य की आहुति देता रहता है (१. २१, १६: 'वडवामुखदीप्ताग्नेस्तोयहव्यप्रदं शिवम्')। गरुड़ प्रज्वलित अग्नि-पुञ्ज के समान भयंकर जान पड़ते थे (१. २३, ७)। देवताओं द्वारा गरुड़ के रूप में अग्नि की स्तुति (१. २३, १०. १७)। कुपित ब्राह्मण, अग्नि, सूर्य, विष और शस्त्र के समान भयंकर होता है (१. २८ ४. ६)। पूर्वकाल में देवताओं द्वारा गुफा में छिपे हुये अग्नि को खोज निकालने का उल्लेख (१. ३७, ९)। अग्निदेव द्वारा अर्जुन को गाण्डीव धनुष इत्यादि प्रदान करना (१. ६१, ४७)। यज्ञकर्म के अनुष्ठान के समय प्रज्वलित अग्नि से धृष्टद्युम्न का प्रादुर्भाव (१. ६३, १०८)। कुमार के पिता अग्नि (१. ६६, २३)। धृष्टद्युम्न को अग्नि का भाग कहा गया है (१. ६७, १२६)। अग्नि के तपने की शक्ति का उल्लेख (१. ८८, १३)। ब्रह्मा जी के पास अन्य देवताओं सहित अग्नि की उपस्थिति का उल्लेख (१. २११, ४)। धनञ्जय द्वारा अग्निहोत्र सम्पन्न करने से अग्निदेव का सन्तुष्ट होना (१. २१४, १५)। अग्निदेव से सम्बद्ध कृत्तिका नक्षत्र में कृष्ण ने सहदेव से एक पुत्र उत्पन्न किया (१. २२१, ८५)। खाण्डव वन को भस्म करते हैं (१. २२२–२३४: १. २२३, १२; २२६, १०; २२८, ४०; २२९, २१. २३. २७; २३२, ६. ९–१०. १२–१४. २५; २३३, ९; २३४, १–२)। 'दीप्यमाना इवाग्नयः' (२. ७, ९)। 'त्रय इवाग्नयः' (२. १५, १३; २०, ३)। 'रविसोमाग्निवपुषम्' (२. २०, २३)। अर्जुन विशाल सेना के साथ अग्नि के दिये हुये रथ द्वारा प्रस्थान करते हैं (२. २५, ८)। नील की कन्या अग्निहोत्र में अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये उपस्थित हुआ करती थी (२. ३१, २८)। सहदेव के विरुद्ध नील की सहायता और नील की पुत्री से विवाह करते हैं; सहदेव द्वारा इनकी स्तुति; सहदेव को अभयदान देते हैं; इनके (अग्नि के) नामों की गणना (२. ३१, ३६. ३८–३९. ४५–४६. ४९)। युधिष्ठिर द्वारा अग्नि के रूप में सूर्य की उपासना, जहाँ अग्नि को सूर्य के एक सौ आठ नामों में से एक बताया गया है (३. ३, ६०)। लोकपाल-गण अग्नि के साथ देवराज के समीप आये (३. ५४, २४)। अग्नि, इन्द्र, यम और वरुण, दमयन्ती के स्वयंवर में आये और नल के द्वारा इन लोगों ने दमयन्ती को अपने आने की सूचना भेजी; किन्तु दमयन्ती ने इन लोगों को अस्वीकृत कर दिया (३. ५५, ४. ६. २३; ५७, ३३. ३६)। अग्नितीर्थ का उल्लेख (३. ८३, १३८)। 'ऋषयस्तत्र देवाश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः' (३. ८५, ४९)। 'आज्यभागेन तत्राग्निं तर्पयित्वा यथाविधि' (३. ८५, ५२)। 'पितरो हुताशनश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा' (३. ९९, ५७)। 'अग्निर्मित्रो योनिरापोऽथ देव्यो विष्णोरेतस्त्वममृतस्य नाभिः।......अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः।' (३. ११४, २७–२८)। काश्मीर मण्डल का उल्लेख जहाँ उत्तर के समस्त ऋषि, नहुष-कुमार, ययाति, अग्नि और काश्यप का संवाद हुआ था (३. १३०, ११)। राजा उशीनर की परीक्षा लेने के लिये अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया था (३. १३०, २३)। मित्रों की भाँति सदा साथ विचरने वाले इन्द्र और अग्नि (३. १३४, ९)। 'ततो देवा वरं तस्मै ददुरग्निपुरोगमाः' (३. १३८, २०)। 'देवाग्निपुरोगमान्' (३. १३८, २३)। गङ्गा की सात धाराओं से सुशोभित रजोगुण रहित पुण्यतीर्थ का उल्लेख, जहाँ अग्निदेव सदैव प्रज्वलित रहते हैं (३. १३९, २)। 'शिक्ष मे भवनं गत्वा सर्वाण्यस्त्राणि भारत। वायोरग्नेर्वसुभ्योऽपि वरुणात् समरुद्गणात्॥' (३. १६८, २९)। 'यस्मिन्नग्निमुखा देवाः' (३. १८६, ३०)। अग्नि को नारायण का मुख बताया गया है, तथा वडवावक्त्र और समवर्त्तक अग्नि को नारायण के साथ समीकृत किया गया है (३. १८९, ७. १२)। अग्नि और इन्द्र का राजा शिवि की परीक्षा लेने के लिये उद्यत होना और अग्निदेव द्वारा कबूतर का रूप धारण करके अपना प्राण बचाने के लिये राजा के पास भागते हुये जाना (३. १९७, १–२)। सुवर्ण को अग्नि की प्रथम सन्तान कहा गया है (३. २००, १२८)। 'इन्द्रसोमाग्निवरुणा' मधुसूदन की स्तुति करते हैं (३. २०१, १८)। 'अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपि श्रूयते श्रुतिः'

(३. २०८, ११; गी० सं० में यह श्लोक नहीं है)। शरीर में रहने वाले अग्नि (३. २१३, १)। पूर्वकाल में अङ्गिरस मुनि अपने आश्रम में रहकर अग्नि से भी अधिक तेजस्वी बनने के लिये श्रेष्ठ तपस्या करने लगे। अपने उद्देश्य में सफल होकर उन्होंने सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित कर दिया। तब अग्नि ने सोचा कि सम्भवतः ब्रह्मा ने जगत के लिए किसी अन्य देवता का निर्माण कर लिया है। अतः यह विचार करते हुये कि 'मैं पुनः किस प्रकार अग्नि हो सकता हूँ' अग्निदेव अङ्गिरस ऋषि के पास गये। अङ्गिरस ने अग्निदेव से निवेदन किया कि 'आप स्वयं ही अग्निपद पर प्रतिष्ठित होकर मुझे अपना प्रथम पुत्र स्वीकार कर लीजिये'। अङ्गिरस की सन्तान के रूप में अनेक प्रकार के अग्नि; बृहस्पति की भी अनेक अग्नि रूपी सन्तान; पाञ्चजन्य अग्नि की उत्पत्ति तथा उसकी सन्तति इत्यादि का वर्णन (३. २१७–२२२ : विशेषतः इन श्लोकों को देखिये ३. २१७, १२–१७; २१९, २–६. १२–१४. १७; २२०, १. ७. १६. १९; २२१, १३. १५; २२२, २०. २९)। "सप्तर्षियों की पत्नी पर आसक्त होकर अग्नि उनके गार्हपत्य अग्नि में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार बहुत देर तक वहाँ टिके रहने पर उनका हृदय कामाग्नि से संतप्त हो उठा। वे उन ब्रह्मर्षियों की पत्नियों के न मिलने से अपने शरीर को त्याग देने का निश्चय कर चुके थे, अतः वन में चले गये। दक्षपुत्री स्वाहा अग्नि को अपना पति बनाना चाहती थी, अतः अरुन्धती को छोड़कर अन्य सप्तर्षि-पत्नियों के रूप में अग्नि के साथ समागम करने की इच्छा से सर्वप्रथम वह अङ्गिरा की पत्नी शिवा के रूप में अग्नि के सम्मुख उपस्थित हुई। शिवा के रूप में अग्निदेव के साथ समागम करके उसने उनके वीर्य को हाथ में ले लिया। अपने रहस्य को गुप्त रखने के लिये स्वाहा गरुड़ी का रूप धारण करके उस महान् वन से बाहर निकल गई। मार्ग में उसने दुर्गम श्वेत पर्वत पर जाकर एक सुवर्णमय कुण्ड में शीघ्रतापूर्वक उस वीर्य (शुक्र) को डाल दिया। इसी प्रकार स्वाहा बारी-बारी से अरुन्धती को छोड़ कर शेष सप्तर्षि–पत्नियों के रूप में अग्नि के साथ समागम करती और प्रत्येक बार के वीर्य (शुक्र) को उक्त सरोवर में डालती रही। इस प्रकार वह केवल छः बार ही अग्नि के वीर्य को वहाँ डालने में सफल हुई। यह घटना अमावस्या के दिन घटित हुई और प्रतिपदा के दिन उस स्खलित (स्कन्दित) वीर्य ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह स्कन्दित होने के कारण स्कन्द कहलाया। चतुर्थी को कुमार स्कन्द सभी अङ्गों-उपाङ्गों से सम्पन्न हो गये। सप्तर्षियों ने जब यह सुना कि उनकी छः पत्नियों के संग से अग्नि के एक महातेजस्वी पुत्र हुआ है, तब उन्होंने अरुन्धती देवी के अतिरिक्त अन्य छः पत्नियों को त्याग दिया। ब्राह्मण लोग अग्नि को रुद्र का स्वरूप बताते हैं इसलिये स्कन्द रुद्र के ही पुत्र हैं। रुद्र ने जिस वीर्य का त्याग किया था, वही श्वेत पर्वत के रूप में परिणत हो गया। रुद्र ने ही अग्नि में प्रवेश करके इस शिशु को जन्म दिया था; इसलिये रुद्र स्वरूप अग्नि से उत्पन्न होने के कारण स्कन्द को रुद्र का पुत्र कहते हैं। अग्निदेव ने स्कन्द के लिये कुक्कुट के चिह्न से अलंकृत ऊँचा ध्वज प्रदान किया, जो उनके रथ पर अरुण प्रभा से प्रलयाग्नि के समान उद्भासित होता था। सप्तर्षियों की छः त्यक्त पत्नियों ने स्कन्द के पास आकर उन्हें अपना पुत्र मान लिया। इन्द्र के निवेदन पर यह त्यक्त पत्नियाँ नक्षत्र बनकर छः कृत्तिकाओं के रूप में अभिजित् के स्थान की पूर्त्ति के लिये आकाश में चली गईं, वहाँ अग्निदेवता से सम्बद्ध कृत्तिका नक्षत्र सात शिरों की आकृति में प्रकाशित हो रहा है। ब्रह्मा जी ने धनिष्ठा से ही काल-गणना का क्रम निश्चित किया, जब कि पूर्वकाल में रोहिणी को ही युगादि नक्षत्र माना जाता था। स्वाहा ने स्कन्द से यह इच्छा प्रगट की कि 'मैं निरन्तर अग्निदेव के साथ ही निवास करूँ।' इस पर स्कन्द ने कहा कि 'आज से सन्मार्ग पर चलने वाले सदाचारी तथा धर्मात्मा मनुष्य देवताओं तथा पितरों के लिये अग्नि में जो कुछ भी आहुति देंगे, वह सब स्वाहा का नाम लेकर ही अर्पण करेंगे" (३. २२३–२२६; विशेषतः देखिये (३. २२२, २०. २९; २२३, १; २२४, २०. ३८; २२५, २. ४. ७. १५. २४; २२६, २५. २९; २२८, ५; २२९, २७. ३३; २३१, ४. ४७)। ब्रह्मर्षियों की ओर से ब्रह्मा के सम्मुख निवेदन करने वाले के रूप में अग्नि (३. २७९, २)। जब रामदाशरथि ने रावण के घर रहने के कारण सीता की अग्नि परीक्षा लेना चाहा था, तो उस समय ब्रह्मा, शक्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण और कुबेर, तथा राम के मृत पिता दशरथ ने भी सीता के निर्दोष होने का प्रमाण दिया था (३. २९१, १८. २८)। अग्नि (हुताशन) ने जल में प्रवेश करके और वहीं छिपे रहकर देवताओं के कार्य को सिद्ध किया (३. ३१५, १६)। श्रीकृष्ण के साथ बैठे हुये अर्जुन के पास खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से ब्राह्मण का रूप धारण करके साक्षात् अग्निदेव पधारे थे (४. २, ११)। 'अग्निवद्' (४. ४, २२)। जब अर्जुन ने मन ही मन अग्निदेव के प्रसाद-स्वरूप प्राप्त हुये अपने सुवर्णमय ध्वज का चिन्तन किया, तब अग्निदेव ने अर्जुन का मनोभाव जानकर उस ध्वज पर स्थित रहने के लिये भूतों को आदेश दिया (४. ४६, ४) और अर्जुन और कृपाचार्य का युद्ध देखने के लिये देवताओं के साथ अग्नि भी आकाश में विमान पर आये (४. ५६, ११)। 'एकश्चाग्निमतर्पयत्' (४. ४९, ५)। 'अग्निर्वडवामुखः' (४, ५०, २६)। 'अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः' (४. ६१, ३१)। जब इन्द्र के स्थान पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् नहुष ऋषियों को अपना वाहन बनाकर शची के पास आये, तब बृहस्पति ने इन्द्र का पता लगाने के लिये अग्नि से निवेदन किया। मन के समान तीव्र गति वाले अग्निदेव सम्पूर्ण दिशाओं, पर्वतों, वनों तथा भूतल और आकाश में इन्द्र की खोज करके पलभर में बृहस्पति के पास लौट आये। उन्होंने बृहस्पति से कहा 'मैं देवराज को इस संसार में कहीं नहीं देख पाया। केवल जल ही शेष रह गया है, जहाँ मैंने उनकी खोज नहीं की; किन्तु मैं जल में प्रवेश नहीं कर सकता।' परन्तु बृहस्पति ने उनसे जल में प्रवेश करने का भी आग्रह किया (५. १५, २७–३४)। बृहस्पति ने अग्नि की स्तुति करते हुये कहा कि 'आप समस्त देवताओं के मुख हैं। आप ही देवताओं को हविष्य पहुँचाते और समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में साक्षी की भाँति गूढ़भाव से विचरते हैं। आप के त्याग देने पर यह सम्पूर्ण जगत् तत्काल नष्ट हो जायगा। ब्राह्मण लोग आपकी पूजा और वन्दना करके अपनी पत्नियों तथा पुत्रों के साथ अपने कर्मों द्वारा प्राप्त चिरस्थायी सुख का लाभ करते हैं। आप ही सृष्टि के समय इन तीनों लोकों को उत्पन्न तथा प्रलयकाल में पुनः प्रज्वलित हो इन सबका संहार करते हैं। मनीषी पुरुष आपको ही मेघ और विद्युत कहते हैं। आप से ही निकल कर ज्वालायें सम्पूर्ण भूतों को दग्ध करती हैं। आप में ही सारा जल संचित तथा सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है। तीनों लोकों में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो आपको ज्ञात न हो' (५. १६, १-७; १. २२९, २३–३१)। बृहस्पति द्वारा ऐसी स्तुति करने पर अग्नि ने जल में प्रवेश करना भी स्वीकार कर लिया और अन्त में उन्होंने उस सरोवर का पता लगा लिया, जिसमें खिले हुये कमल-पुष्प की नाल में इन्द्र छिपे हुये थे (५. १६, १–१२)। अग्नि द्वारा पता लग जाने पर बृहस्पति ने इन्द्र के पास जाकर नहुष द्वारा देवताओं का राजा बन जाने की कथा का वर्णन किया। तदुपरान्त इन्द्र ने महायज्ञ में अग्नि को भी भागी बनाया (५. १६, १४–३२)। 'पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः। पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥' (५. ३३, ७४)। 'तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः।' (५. ४६, ११)। एक समय बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्मा की सेवा में उपस्थित हुये थे; उस समय उनके साथ इन्द्र, मरुद्गण, अग्नि, वसुगण, आदित्य, साध्य, सप्तर्षि, विश्वावसु, गन्धर्व, और श्रेष्ठ अप्सरायें भी वहाँ उपस्थित थीं (५. ४९, २)। 'त्रयस्त्रिंशत्समाऽऽहूय खाण्डवेऽग्निमत-

पंयत ।' (५. ५२, १०)। 'अग्निः साचिव्यकर्त्ता स्यात् खाण्डवे तत्कृतं स्मरन् ।' (५. ६०, ८)। 'यदा ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि । कामयोगात् प्रवर्त्तेरन्' (५. ६१, ६)। जिनसे दुर्योधन द्वेष रखता था उनके सम्बन्ध में उसका कथन था कि उनकी रक्षा का साहस अश्विनी-कुमार, वायु, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म में भी नहीं है (५. ६१, १८)। 'अग्नि 'हुताग्निः' (५. ९४, ६)। 'अत्रासुरोऽग्निः' (५. ९९, ३)। 'अग्नि जुहोतु वै धौम्यः' (५. १४०, १६)। 'उभे चाप्यग्नि मारुते' (५. १४२, ६)। 'अग्निदत्तं च ते' (५. १६०, १०५)। = कृष्ण (६. ३५, ३९; देखिये ६०, २५ भी)। 'यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम्' (७. २५, २०)। "आदि सृष्टि के समय महातेजस्वी ब्रह्मा ने जब प्रजा की सृष्टि की तो उस समय संहार की कोई व्यवस्था नहीं थी। बहुत विचार करने पर भी ब्रह्मा को प्राणियों के संहार का कोई उपाय ज्ञात नहीं हो सका। उस समय क्रोधवश ब्रह्मा जी की इन्द्रियों से अग्नि प्रगट हो गये। वह अग्नि इस जगत् को दग्ध करने की इच्छा से सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गये। दाह करने में समर्थ एवं अत्यन्त शक्तिशाली अग्निदेव महान् क्रोध के वेग से सबको त्रस्त करते हुये सम्पूर्ण चराचर जगत् को दग्ध करने लगे। इससे अनेक स्थावर, जंगम प्राणी नष्ट हो गये। तब रुद्र के समझाने पर प्रजा के हित के लिये ब्रह्मा ने पुनः अपनी अन्तरात्मा में उस तेज को धारण कर लिया। क्रोधाग्नि का उपसंहार करते समय ब्रह्मा जी की सम्पूर्ण इन्द्रियों से एक नारी प्रगट हुई जो काले और लाल रंग की थी और जिसकी जिह्वा, मुख और नेत्र पीले तथा लाल थे। ब्रह्मा ने उस नारी को अपने पास बुलाकर उसे सान्त्वना देते हुये मधुर वाणी में कहा 'मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति'" (७. ५२–५४)। 'तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत्' (७. ८२, १३)। 'नभसोऽग्नि-समप्रभाम्' (७. १६६, ५४)। 'सुरा इव निरग्नयः' (७. १८२, ३८)। 'अग्नावग्निरिव न्यस्तो' (७. २००, ३)। 'गच्छेद्वह्निविभोरास्यं तथाऽस्त्रं भीममावृणोत् ॥ सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाग्निं दिवाकरः ।' (७. २००, ६. ७)। 'तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च' (७. २०१, ६७)। 'शृंगमग्निर्बभूवास्य' (८. ३४, १८)। 'अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं' (८. ३४, ४९)। 'शक्राग्निभ्यमिव' (८. ६०, ७)। 'अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो-दश । धनञ्जयस्य ते पक्षे' (८. ८७, ४७)। 'भगवानग्निर्जगद्दग्ध्वा चरा-चरम्' (९. १४, २०)। 'अग्निरिव' (९. १७, ४९. ५७)। 'यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्' (९. २१, ३६)। 'खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः' (९. ३३, ३३)। 'आनयध्वं द्वारकायामग्नीन्' (९. ३५, १७)। 'बृह-स्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि' (९. ४५, १)। 'शक्त्या विभेद भगवान् कार्त्तिकेयोऽग्निदत्तया' (९. ४६, ८४)। 'अग्निः प्रनष्टो भगवान्' (९. ४७, १५. १६)। 'इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन्' (९. ५४, १५)। 'हन्तारुद्रस्तथा स्कन्दः शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः' (१२. १५, १६)। 'वाराहोऽग्निर्बृहद्भानुर्वृषभस्तार्क्ष्यलक्षणः' (१२. ४३, ८)। 'अन्तर्भूतः पचत्यग्निः' (१२. ४७, ७२)। अर्जुनकार्त्तवीर्य से भिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अग्निदेव ने अर्जुन के वाणों के अग्रभाग से गाँवों, गोष्ठों, नगरों, राष्ट्रों तथा आपव के सुरम्य आश्रम को जलाकर भस्म कर दिया (१२. ४९, ३८)। 'भवत्यग्निस्तथाऽऽदित्यो' (१२. ६८, ४१)। 'अजोऽग्निर्वरुणोमेषः……न विक्रेयाः कथञ्चन' (१२. ७८, ६ = १३. ८४, ८७)। 'भगवानिन्द्रादग्निर्विभावसुः' (१२. १२२, ४३)। 'असेर-ग्निश्च दैवतम्' (१२. १६६, ८२)। 'विश्वेदेवाः सपितरः साग्नयः' (१२. १७१, १५)। 'सलिलादग्निमारुतौ । अग्निमारुतसंयोगात्' (१२. १८२, १४)। 'अग्नीषोमौ तु चन्द्रार्कौ नयने तस्य' (१२. १८२, १८)। 'आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम्' (१२. २२४, ५२)। वृत्रासुर का वध कर देने पर इन्द्र को उससे लगी ब्रह्महत्या से मुक्त करने के लिये ब्रह्मा ने उस ब्रह्महत्या को चार भागों में विभक्त किया और उसके चतुर्थांश को अग्निदेव को भी यह कहते हुये दे दिया कि 'यदि तुम किसी स्थान पर प्रज्वलित हो रहे हो तो वहाँ पहुँच कर यदि कोई मानव तमोगुण से आवृत्त होने के कारण बीज, ओषधि अथवा रसों से स्वयं ही तुम्हारा पूजन नहीं करेगा तो उस पर तत्काल यह ब्रह्महत्या चली जायगी और उसीके भीतर निवास करने लगेगी ।' (१२. २८२)। = शिव के सहस्रनामों में से एक (१२. २८२, ३४)। 'भवच्छरीरे पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्' (१२. २८४, ८०)। 'अग्निषोमाविदं सर्वम्' (१२. २८८, ३३)। 'रुद्रास्तथैवाग्न्यश्विमारुताः' (१२. २९५, १६)। यदि मृत्यु के समय नेत्रों से प्राणों का उत्क्रमण हो तो व्यक्ति अग्नि देवता को प्राप्त होता है (१२. ३१७, ६)। 'तवाग्निर् आस्यम्', (१२. ३३८, ३)। 'किं च ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्च बलभित्प्रभुः । सूर्यस्ताराधिपो वायुरग्निर्वरुण एव च। आकाशं जगती चैव ये च शेषा दिवौकसः ॥ प्रलयं च विजानन्ति आत्मनः परिनिर्मितम्' (१२. ३४०, १०–१२)। अग्नि सोम के साथ संयुक्त होकर एक योनि को प्राप्त हुये, इसलिये सम्पूर्ण चराचर जगत् को अग्नि-सोम मय कहा गया है। पुराण में भी ऐसा कथन है कि अग्नि और सोम एक-योनि हैं, और अग्नि समस्त देवताओं के मुख हैं। एक-योनि होने के कारण ये एक दूसरे को आनन्द प्रदान करते हैं (१२. ३४१, ५८–५९)। अर्जुन ने मधुसूदन से पूर्वकाल में सोम और अग्नि के एक योनि हो जाने की कथा का वर्णन करने का आग्रह किया (१२. ३४२, १)। मधुसूदन ने इस कथा का इस प्रकार वर्णन किया : "प्रलयकाल के समय न दिन था न रात, न सत् था न असत्, केवल तम ही सर्वत्र व्याप्त था। उस समय माया-विशिष्ट ईश्वर से प्रगट हुये ब्रह्मयोनि पुरुष से जब ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ तब उस पुरुष ने प्रजा-सृष्टि की इच्छा से अपने नेत्रों द्वारा अग्नि और सोम को उत्पन्न किया। इस प्रकार भौतिक सर्ग की सृष्टि हो जाने पर प्रजा की उत्पत्ति के समय क्रमशः ब्रह्म और क्षत्र का प्रादुर्भाव हुआ। जो सोम है, वही ब्रह्म है, और जो ब्रह्म है वही ब्राह्मण। जो अग्नि है वही क्षत्र या क्षत्रिय जाति है। क्षत्रिय से ब्राह्मण जाति अधिक प्रबल है। यदि पूछा जाय कि कैसे ? तो इसका उत्तर यह है कि ब्राह्मण की इस प्रबलता का गुण सब लोगों को प्रत्यक्ष है। ब्राह्मण से बढ़कर कोई प्राणी कभी उत्पन्न नहीं हुआ। जो ब्राह्मण के मुख में भोजन देता है वह मानो प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करता है। यही सोचकर मैं यह कहता हूँ। ब्रह्मा ने भूतों की सृष्टि की और सम्पूर्ण भूतों को यथास्थान स्थापित करके वे तीनों लोकों को धारण करते हैं। (१२. ३४२, ८–९)" इन्द्र ने अपनी ब्रह्महत्या को स्त्री, अग्नि, वृक्ष और गो—इन चार स्थानों में विभक्त कर दिया (१२. ३४२, ५३)। महर्षि भृगु के शाप से अग्निदेव सर्वभक्षी हो गये (१२. ३४२, ५५)। यह जो अग्नि और सोम सम्बन्धी ब्रह्म है उसीके द्वारा सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है (१२. ३४२, ६५)। अग्नि और सोम द्वारा किये गये कर्मों द्वारा भगवान् 'हृषीकेश' कहलाते हैं (१२. ३४२, ६७)। सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, इन्द, अग्नि, इत्यादि काल के द्वारा ही रचे जाते हैं, और काल ही इनका संहार कर देता है (१३. १, ५५)। राजकन्या सुदर्शना (दुर्योधन और नर्मदा द्वारा महिष्मती में उत्पन्न पुत्री) पर अग्निदेव आसक्त हो गये और ब्राह्मण का वेश धारण करके उन्होंने उस राजा से उस कन्या को माँगा (१३. २, २१)। अग्नि-पुत्र सुदर्शन (१३. २, ४९)। = शिव (१३. १४, २१. ४०८. ४१०; १६, ९)। 'साग्नि-मुनिभिर्' (१३. १८, ८)। 'नानिलोऽग्निर्न वरुणो न चान्ये त्रिदशा द्विज । प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो' (१३. १९, ९१)। पृथ्वी, काश्यप, मार्कण्डेय और अग्नि का मत : "जो ब्राह्मण अध्ययन करके अपने को बहुत बड़ा पण्डित मानता है, अपनी विद्वत्ता पर गर्व करने लगता है और जो अपनी विद्या के बल से दूसरों के यश का नाश कर देता है; वह धर्म से भ्रष्ट होकर सत्य का पालन नहीं करता; अतः उसे नाशवान् लोकों की प्राप्ति होती है" (१३. २२, १०. १३–१५)। अग्निपुर तीर्थ में स्नान करने से

अग्निकन्यापुर का निवास प्राप्त होता है (१३. २५, ४३)। 'अयोनीन-ग्नियोर्नीश्च ब्रह्मयोर्नीस्तथैव च। सर्वभूतात्मयोर्नीश्च तान्नमस्थाम्यहं सदा॥' (१३. ३१, २४)। अग्नि और सोम शरीर के वीर्य की सृष्टि और पुष्टि करते हैं (१३. ६३, ४०)। जो मनुष्य दूध देने वाली सुलक्षणा और कृष्ण वर्ण की गाय को वस्त्र ओढ़ाकर कृष्ण वर्ण के बछड़े के साथ दान करता है वह अग्नि लोक में प्रतिष्ठित होता है (१३. ७९, १२)। "मयाऽभिपन्ना देवाश्च मोदन्ते शाश्वतीः समाः। इन्द्रोस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च। (१३. ८२, ७)"। 'अग्नीषोमात्मकमिदं सुवर्णं विद्धि निश्चये॥ अजोऽग्नि-र्वरुणो मेषः सूर्योऽश्च इति दर्शनम् (१६. ८४, ४६-४७; देखिये १२. ७८, ६ भी)। "ब्रह्मा ने तारकासुर को यह वरदान दे दिया था कि वह देवताओं, असुरों अथवा राक्षसों में से किसी के हाथ भी मारा नहीं जा सकेगा। पूर्वकाल में जब देवताओं ने रुद्राणी की सन्तति का उच्छेद कर दिया था उस समय रुद्राणी ने भी समस्त देवताओं को निःसतान हो जाने का शाप दिया था। ऐसी स्थिति में जब तारकासुर से पीड़ित देव-गण ब्रह्मा की शरण में गये तब ब्रह्मा ने उनसे बताया कि रुद्राणी के शाप के समय अग्निदेव वहाँ उपस्थित नहीं थे, अतः देव-द्रोहियों के वध के लिये वही सन्तान उत्पन्न करेंगे। इसी सन्दर्भ में ब्रह्मा ने आगे कहा कि 'सनातन संकल्प को ही काम कहते हैं; उसी काम से रुद्र का जो तेज स्खलित होकर अग्नि में गिरा था उसे अग्नि ने धारण कर रखा है। उसी महान् तेज को वह गङ्गा में स्थापित करके द्वितीय अग्नि के समान एक बालक उत्पन्न करेंगे जो देव-शत्रुओं के वध का कारण होगा। अतः ब्रह्मा ने देवताओं से अग्निदेव की खोज करने का आग्रह किया। उन्होंने बताया कि अग्निदेव इस जगत् के पालक, अनिर्वचनीय, सर्वव्यापी, सबके उत्पादक, समस्त प्राणियों के हृदय में शयन करने वाले, सर्व समर्थ तथा रुद्र से भी ज्येष्ठ हैं। ब्रह्मा के आदेश के अनुसार देवताओं ने अग्निदेव की खोज प्रारम्भ की। किन्तु अग्निदेव छिपकर अपने आप में ही लीन थे, अतः देव-गण उनके पास तक न पहुँच सके। तब अग्नि का दर्शन करने के लिये उत्सुक और भयभीत उन देवताओं से एक जलचारी मेढ़क ने, जो अग्नि के तेज से दग्ध एवं क्लान्तचित्त होकर रसातल से ऊपर आया था, इस प्रकार कहा : 'देवताओ! अग्नि रसातल में निवास कर रहे हैं और मैं उनके सन्ताप से घबड़ाकर ही ऊपर आया हूँ। अतः यदि आप लोगों को अग्निदेव का दर्शन अभीष्ट हो तो आप उनसे वहीं जाकर मिलें'। इतना कहकर वह मेढक पुनः जल में चला गया। अग्निदेव ने अपना भेद खोल देने के कारण समस्त मेढकों को शाप दिया और अपने आपको प्रगट किये बिना ही अन्यत्र चले गये। देवता जब पुनः अग्निदेव की खोज के लिये इस पृथ्वी पर विचरने लगे तब उनसे एक हाथी ने यह बताया कि 'अश्वत्थ अग्नि-रूप है'। यह सुनकर क्रोध से विह्वल अग्निदेव ने समस्त हाथियों को शाप दे दिया और बिना प्रगट हुये शमी वृक्ष के भीतर जा बैठे। तदनन्तर एक तोते ने अग्निदेव का पता बता दिया जिससे कुपित होकर अग्निदेव ने तोतों को भी वाणी रहित हो जाने का शाप दिया। देवताओं ने भी मेढ़कों, हाथियों, तथा तोतों को अपनी ओर से वरदान दिये और शमी के गर्भ में अग्निदेव का दर्शन करने के लिये शमी वृक्ष को ही अग्नि का पवित्र स्थान नियत किया। तभी से अग्निदेव शमी के भीतर दृष्टि गोचर होने लगे। मनुष्यों ने अग्नि को प्रगट करने के लिये शमी का मन्थन करने का उपाय जाना। रसातल में अग्नि ने जिस जल का स्पर्श किया था वह अग्निदेव के तेज से सन्तप्त हो गया था, और वह जल पर्वतीय झरनों के रूप में अपनी ऊष्मा को बाहर निकालता है। अग्निदेव से मिलकर सम्पूर्ण देवता और महर्षियों ने उनसे तारकासुर का वध करने का उपाय करने के लिये आग्रह किया। देवताओं के ऐसा कहने पर 'तथास्तु' कहकर दुर्धर्ष भगवान् हव्यवाहन (अग्नि) भागीरथी गङ्गा के तट पर गये। और वहाँ उन्होंने शिव के तेज को गंगा में स्थापित किया। जिस प्रकार सूखे तिनकों अथवा लकड़ियों के ढेर में रक्खी हुई अग्नि प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार वह तेजस्वी गर्भ गंगा के भीतर बढ़ने लगा। अग्नि के दिये हुये उस तेज से गंगा अत्यन्त सन्तप्त हो उठी थीं और उसे सहन करने में असमर्थ हो गईं। उसी समय किसी असुर ने वहाँ आकर सहसा अत्यन्त भयङ्कर गर्जना की। उस आकस्मिक सिंहनाद से भयभीत हुई गंगा अचेत हो गईं। अतः वह उस गर्भ को और अपने आपको भी सँभाल न सकीं। देवताओं तथा अग्नि के मना करने पर भी गंगा ने उस गर्भ को गिरिराज मेरु के शिखर पर छोड़ दिया। वह गर्भ स्वर्ण के समान और तेज में अग्निवत् ही था। उस पर्वत की भूमि तथा उसके सम्पर्क में आने वाले सभी द्रव्य स्वर्णमय दिखाई देने लगे। गंगा ने अग्नि से उस गर्भ का वर्णन किया और वहाँ से अन्तर्धान हो गईं। अग्नि देव भी देवताओं का कार्य सिद्ध करके उसी समय वहाँ से अभीष्ट देश को चले गये। इन्हीं समस्त गुणों के कारण देवता तथा ऋषि अग्नि को हिरण्यरेतस् के नाम से पुकारते हैं। अग्नि-जनित हिरण्य (वसु) धारण करने के कारण पृथिवी देवी वसुमती नाम से विख्यात हुईं। अग्नि के अंश से उत्पन्न हुआ गंगा का वह महा तेजस्वी गर्भ सरकन्डों के वन में पहुँच कर बढ़ने और अद्भुत दिखाई पड़ने लगा। उस अरुण कान्ति वाले तेजस्वी बालक को कृत्तिकाओं ने देखा और उसे अपना पुत्र बनाकर अपना स्तनपान कराया। इसलिये वह परम तेजस्वी कुमार 'कार्त्तिकेय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिव के स्कन्दित वीर्य से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम स्कन्द हुआ, और पर्वत की गुहा में निवास करने के कारण 'गुह' कहलाया। इस प्रकार अग्नि से सन्तान रूप में सुवर्ण की उत्पत्ति हुई और तभी से सुवर्ण का नाम जातरूप हुआ। वह रत्नों में श्रेष्ठ रत्न और आभूषणों में श्रेष्ठ आभूषण है; वह पवित्रों में भी अधिक पवित्र तथा मंगलों में अधिक मंगलमय है : जो सुवर्ण है, वही अग्नि हैं वही ईश्वर और प्रजापति हैं। इस सुवर्ण को अग्नि और सोम रूप बताया गया है (१३. ८५, १-८६)। इसके पश्चात इसी अध्याय में वसिष्ठ ने पूर्वकाल में सुने ब्रह्मदर्शन नामक वृत्तान्त को सुनाया : "एक समय की बात है कि सर्वेश्वर, महान देवता, भगवान रुद्र, वरुण का स्वरूप धारण करके वरुण के साम्राज्य पर प्रतिष्ठित थे। उस समय उनके यज्ञ में अग्नि आदि समस्त देवता और ऋषि पधारे। पिनाकधारी महादेव ने अनेक रूप वाले उस यज्ञ में स्वयं अपने ही द्वारा अपने आपको आहुति प्रदान की। इस यज्ञ में अनेक देवाङ्गनायें भी उपस्थित थीं जिन्हें देखकर स्वम्भू ब्रह्मा जी का वीर्य स्खलित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब ब्रह्माजी के वीर्य से संसिक्त धूलि कणों को भूमि से उठाकर पूषा ने उसी अग्नि में फेंक दिया। तदनन्तर ब्रह्मा का वीर्य पुनः स्खलित हुआ जिसे स्रुवे में लेकर पूषा ने मंत्र पढ़ते हुये घृत की भाँति अग्नि में डाल दिया। ब्रह्मा के उस त्रिगुणात्मक वीर्य से चतुर्विध प्राणि समुदाय उत्पन्न हुये उसके रजोमय अंश से जगत में तैजस प्रवृत्ति प्रधान जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई; तमोमय अंश से स्थावर वृक्ष आदि प्रगट हुये; और उसका सात्विक अंश राजस और तामस दोनों में अन्तर्भूत हो गया। अग्नि की ज्वाला से उत्पन्न होने के कारण एक पुरुष का नाम भृगु हुआ। अग्नि के अङ्गारों से द्वितीय पुत्र अङ्गिरा, और अङ्गारों की आश्रित स्वल्प मात्र ज्वाला से कवि नामक तृतीय पुत्र का प्रादुर्भाव हुआ। मरीचियों से मरीचि, और कुशों के ढेर से वालखिल्य नामक ऋषि प्रगट हुये। अग्नि की भस्म से ब्रह्मर्षियों द्वारा सम्मानित वैखानसों की उत्पत्ति हुई, अग्नि के अश्रु से अश्विनद्वय प्रगट हुये, श्रवणादि इन्द्रियों से शेष प्रजा-पति-गण उत्पन्न हुये, तथा रोमकूपों से ऋषि, स्वेद से छन्द, और मन से वीर्य की उत्पत्ति हुई। इस कारण महर्षियों ने अग्नि को सर्वदेवमय बताया है। उस यज्ञ की समिधाओं से जो रस निकले वह सब मास, पक्ष, दिन, रात मुहूर्त्त हो गये। अग्नि के पित्त से तेज की उत्पत्ति हुई जिसे लोहित कहते हैं। अग्नि की जो लपटें थीं वही एकादश रुद्र और अत्यन्त तेजस्वी द्वादश आदित्य हुये तथा उस यज्ञ में जो अन्य अङ्गारे थे वही

आकाश-स्थित नक्षत्र-मण्डलों में ज्योति-पुंज के रूप में स्थित हैं। सर्वप्रथम जो तीन पुरुष प्रगट हुये उनमें से भृगु वरुण के, अङ्गिरा अग्नि के, और कवि ब्रह्मा के पुत्र नियत हुये, जिसके फलस्वरूप भृगु वारुण नाम से, अङ्गिरा आग्नेय नाम से, तथा कवि ब्राह्म नाम से विख्यात हुये। इस प्रकार पूर्वकाल में सृष्टि के प्रारम्भ के समय वरुण-शरीरधारी सुर-श्रेष्ठ रुद्र के यज्ञ में यह वृत्तान्त घटित हुआ। अग्नि ही ब्रह्मा, पशुपति, शर्व, रुद्र और प्रजापति रूप हैं। सुवर्ण अग्नि की सन्तान है और श्रुति के दृष्टान्त के अनुसार अग्नि के अभाव में वेद-ज्ञानी पुरुष सुवर्ण का उपयोग करता है। ब्रह्मा से अग्नि की और अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति हुई। इसीलिये जो धर्मदर्शी पुरुष सुवर्ण का दान करते हैं वे समस्त देवताओं का ही दान करते हैं। सुवर्ण-दाता को परमगति, और अन्धकार रहित ज्योतिर्मय लोक मिलते हैं। सूर्योदय काल में जो सुवर्ण का दान करता है वह अपने पाप और दुःस्वप्नों को नष्ट कर डालता है, जो मध्याह्न के समय सुवर्ण-दान करता है वह अपने भावी पापों का नाश करता है, और सायंकाल सुवर्ण-दान करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा, वायु, अग्नि और चन्द्रमा के लोकों में जाता है; इन्द्र सहित सभी लोकपालों के लोकों में उसे शुभ सम्मान प्राप्त होता है और उसकी गति का कहीं भी गतिरोध नहीं होता। सुवर्ण अक्षय द्रव्य है, अतः उसके दान-कर्त्ता को पुण्य लोकों से नीचे नहीं आना पड़ता; संसार में उसे महान यश की तथा परलोक में पुण्यलोक की प्राप्ति होती है (१३. ८५, ८७–१६०)"। अग्नि ने स्कन्द को एक गुणवान बकरा प्रदान किया (१३. ८६, २४)। 'कृत्वाऽग्नौकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन। ततोऽग्नयेऽथ सोमाय वरुणाय च नित्यशः॥ विश्वेदेवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः' (१३. ९१, २३–२४)। 'उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः। ततोऽग्निश्चैव सोमश्च अप्याय्याविह तेऽनघ' (१३. ९१, २६)। 'विश्वे चाग्निमुखा देवाः' (१३. ९१, २९)। "निमि ने अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् अशौच की निवृत्ति के लिये एक श्राद्ध का आयोजन किया जिसके बाद सभी महर्षि भी शास्त्र विधि के अनुसार पितृ यज्ञ का अनुष्ठान करने लगे। धीरे-धीरे चारों वर्णों के लोग श्राद्ध में देवताओं और पितरों को अन्न देने लगे जिसके कारण देवों और पितरों को अजीर्ण हो गया। अजीर्ण से पीड़ित पितृ-गण अपने कष्ट का निवारण कराने के लिये सर्व प्रथम सोम के पास गये, और तदुपरान्त ब्रह्मा, और वहाँ से भी अग्नि के पास। अग्नि ने देवताओं और पितरों से कहा कि अब से श्राद्ध का अवसर उपस्थित होने पर उन लोगों के साथ वह भी भोजन करेंगे। अग्नि के साथ रहने से वह सभी लोग अन्न को पचा सकने में समर्थ हो जायेंगे। यही कारण है कि श्राद्ध में सर्वप्रथम अग्नि को ही भाग अर्पित किया जाता है। अग्नि में हवन करने के बाद जो पितरों को पिण्डदान दिया जाता है उसे ब्रह्म राक्षस दूषित नहीं करते और उस स्थल से दूर भाग जाते हैं (१३. ९२, १–१३)"। 'प्रश्नमेतं मया पृष्टो भगवानग्निसम्भवः' (१३. १०६, १०)। इन्द्र की सभा में अग्नि ने यह घोषणा की कि 'जो दुर्बुद्धि मनुष्य पैर उठाकर उससे गौ का, महाभाग ब्राह्मण का, अथवा प्रज्वलित अग्नि का स्पर्श करता है उसके पितृ-गण भयभीत हो उठते हैं, देवता भी उसके प्रति वैमनस्य रखते हैं और वह सौ जन्मों तक नरक में पकाया जाता है (१३. १२६, २९–३२)। अग्नि और ब्रह्मा भी ब्राह्मण हैं (१३. १५३, १३. १५)। कृष्ण ने एक बार अग्नि-स्वरूप होकर खाण्डव वन की सूखी लकड़ियों में व्याप्त हो पूर्णतः तृप्ति का अनुभव किया था ('स एकदा कक्षगतो महात्मा तुष्टो विभुः खाण्डवे धूमकेतुः', १३. १५८, २५)। भगवान शिव ने त्रिपुर में दैत्यों का वध करते समय अग्नि को बाण की शल्य बनाया था ('विष्णु शरोत्तमं, शल्यमग्निं तथा कृत्वा पुङ्खं वैवस्वतं यमम्। वेदान् कृत्वा धनुः सर्वान् ज्यां च सावित्रिमुत्तमाम्॥', १३. १६०, २८–२९)। शिव ही रुद्र हैं, वही अग्नि हैं, और वही सर्वरूप तथा सर्वविजयी हैं; १३. १६०, ३९; १६१, २। "त्रेता युग में राजा मरुत्त ने, जो बल में इन्द्र के समान थे, हिमवत् पर्वत के उत्तर-स्थित मेरु पर्वत पर एक महान यज्ञ का आरम्भ किया। बृहस्पति ने अपने भ्राता संवर्त्त को अत्यन्त सन्तप्त कर रखा था, जिसके फलस्वरूप सम्वर्त घर छोड़कर वन में रहने लगे। बृहस्पति को इन्द्र ने अपना पुरोहित बना लिया था। राजा मरुत्त देवराज इन्द्र से स्पर्धा रखते थे इसलिये बृहस्पति ने उनका यज्ञ कराना अस्वीकृत कर दिया था। राजा मरुत्त ने जब यह सुना कि बृहस्पति ने मनुष्यों का यज्ञ न कराने की प्रतिज्ञा कर ली है तब उन्होंने एक महान यज्ञ का आयोजन किया और बृहस्पति से अपना यज्ञ कराने का पुनः आग्रह किया। किन्तु अमरों का यज्ञ कराने के पश्चात् बृहस्पति मनुष्यों का यज्ञ करने के लिये प्रस्तुत नहीं हुये। उनके उत्तर से निराश मरुत्त जब लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें देवर्षि नारद का दर्शन हुआ। मरुत्त की व्यथा को सुनकर नारद ने उनको अङ्गिरा के द्वितीय पुत्र सम्वर्त्त से यज्ञ कराने का परामर्श दिया। नारद जी से संवर्त्त का पता जानकर राजा मरुत्त ने वाराणसी नगरी में आकर पागलों के वेश में भ्रमण कर रहे संवर्त्त का दर्शन किया। मरुत्त ने संवर्त्त को यह भी बताया कि नारद जी स्वयं अग्नि में प्रवेश कर गये हैं। मरुत्त के अत्यन्त आग्रह के पश्चात् संवर्त्त उनका यज्ञ कराने के लिये प्रस्तुत हो गये किन्तु उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उन्हें धन अथवा यजमानों के संग्रह की इच्छा नहीं है, वह तो केवल बृहस्पति और इन्द्र दोनों के विरुद्ध कार्य करना चाहते हैं। राजा मरुत्त ने संवर्त्त के परामर्श के अनुसार शिव की कृपा से कुबेर की भांति उत्तम धन प्राप्त करके मुञ्जवत पर्वत पर यज्ञ-शालाओं तथा अन्य सब सम्भारों का आयोजन किया। बृहस्पति ने जब सुना कि राजा मरुत्त को देवताओं से भी बढ़कर सम्पत्ति प्राप्त हुई है तब उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ और वह चिन्ता के कारण पीले पड़ गये। तब इन्द्र ने अग्निदेव को मरुत्त के पास यह कहने के लिये भेजा कि बृहस्पति उनका यज्ञ करायेंगे तथा उनको अमर कर देंगे। किन्तु मरुत्त ने अग्नि का प्रस्ताव ठुकराते हुये संवर्त्त से ही अपना यज्ञ कराने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया और संवर्त्त ने भी अग्नि को यह धमकी दी कि यदि वह पुनः बृहस्पति को मरुत्त के पास पहुँचाने के लिये आयेंगे तो उन्हें अपनी दारुण दृष्टि से भस्म कर देंगे। अन्ततोगत्वा स्वयं इन्द्र ने ही मरुत्त के यज्ञ का सञ्चालन किया। इन्द्र ने मरुत्त से अग्नि को लाल रंग की, और विश्वेदेवों को अनेक रूप-रङ्ग वाली वस्तुयें प्रदान करने के लिये कहा।" (१४. ३–१०); देखिये १४. ९, ९. १२. १४. १७. २२. २५. २८. ३१ भी। 'यत्र तद्ब्रह्म निर्द्वन्द्वं यत्र सोमः सहाग्निना। व्यवायं कुरुते नित्यं धीरो भूतानि धारयन्॥', १४. २०, १०। शरीर में सञ्चार करने वाले अन्योन्याश्रयी पाँचों प्राणवायुओं के मध्य भाग में जो समान वायु का स्थान नाभि-मण्डल है उसके बीच में स्थित होकर वैश्वानर अग्नि सात रूपों में प्रकाशमान है, १४. २०, १८। 'स वै विष्णुश्च मित्रश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः।', १४. ४२, ६५। 'अग्निर्भूतपतिर्नित्यम्', १४. ४३, ८। उत्तङ्क ने नागलोक में जिस अश्व को देखा था वह अग्नि ही थे, १४. ५८, ४५. ५६। 'अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम्', १५. ३१, १५। अग्नि द्वारा प्रदत्त विष्णु का चक्र दिव्यलोक में चला गया, १६. ३, ४। वृष्णियों के वध और कृष्ण की मृत्यु का समाचार सुनकर, द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवों ने एक कुत्ते को साथ लेकर संसार का परित्याग करने के लिये प्रस्थान किया। चलते-चलते जब वह लोग लाल सागर ('लौहित्यं सलिलार्णवम्', श्लोक ३३) के तट पर पहुँचे तो उन्होंने पर्वत की भाँति मार्ग रोककर सामने खड़े हुये पुरुष रूपधारी साक्षात् अग्निदेव को देखा। अग्निदेव ने पाण्डवों से कहा—'अर्जुन को चाहिये कि वह अपने उत्तम आयुध गाण्डीव धनुष को त्याग कर ही वन में जायें। इसे पहले मैं ही अर्जुन के लिये वरुण से माँगकर लाया था और अब पुनः इसे वरुण को वापस कर देना चाहिये।' (१७. १, २४. ३३. ३५. ३८–४१. ४३)।

तु० की० **अग्नि** के निम्नलिखित नाम (*) :—

* **अनिलसम्भव** (वायु से उत्पन्न) : २. ३१, ४८।

* **अनिलसारथि** (वायु जिसके सारथि हों) : १. १५, १; ३. ८२, ५९ ।

* **अपां गर्भ** (जलों का गर्भ) : २. ३१, ४६ ।

* **कुमारसू** ('कुमार' के पिता) : २. ३१, ४४ ।

* **कृष्णवर्त्मन्** (जिसका पथ काला है) : १. ५५, १०; २३२, १९; २. ३१, ४१

* **गृहपति** (गृहस्वामी) : ३. २२२, ४ ।

* **चित्रभानु** (उज्ज्वलप्रकाश वाले) : १. ५५, १०; २. ३१, ४३; १२. ४९, ३९; १३. २, ३१ ।

* **जातवेदस्** : १. ५, २१. २६. २९; २३२, १६. २०; २. ३१, ४२ (वेदास् त्वदर्थं जाता वै जातवेदास् ततो ह्य असि). ४६; ५. २२, १३; ४९, १७; १२. १२२, ३१ (ईशं वसूनां); १३. ३१, ६; ५५, ५; ८४, ४२–४३ (अपत्यं जातवेदसः⋯⋯सुवर्णम्); ८५, ८३; ८६, ६ (जातवेदसः गर्भम्, अर्थात् स्कन्द); ८६, ८; १०६, ३५; १०७, ७, इत्यादि; १२५, २६, इत्यादि; १४. ९, ८. २१. २७; ५८, ४५; १५. ३७, २५; १६. ७, ७३ ।

* **ज्वलन** (ज्वलामय) : १. २३१, १८; २३३, ९; २३४, १; २. ३१, ४३; ३. ८२, ५९; ५. १६, ३२; ८. ३४, ४९; ८९, १९ (ज्वलनाखम् उद्यतम्); ९. ४७, १९–२१ ।

* **तिग्मांशु** (ऊष्ण ज्वालाओं वाले) : १. २३२, १८; २३३, १; २३४, ५ (भगवान्) ।

* **दहन** (जलते हुये) : १३. २, २८ ।

* **धूमकेतु** (जिनकी ध्वजा धूम है) : २. ३१, ४८; १४. ९, १०. १३. २० ।

* **पाञ्चजन्य** (यतः पाँच मुनिजनों ने महाव्याहृति संज्ञक पाँच मन्त्रों द्वारा ज्वालाओं से प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान एक पुरुष को उत्पन्न किया था अतः उस देवोपम पुरुष का नाम पाञ्चजन्य हो गया। यही पाञ्चजन्य इन पाँच ऋषियों के वंश का प्रवर्त्तक हुआ) : ३.२२०, ५ ।

* **पापहन** (पाप का हनन करने वाला) : २. ३१, ४८ ।

* **पावक** : १. ५, २२–२३; २२३, ५; २२५, २. ६. २३–२४. २९. ३२; २२७, ११; २२८, ४२. ४५; २२९, २४. ३१; २३४, ६. १५. १८; २. १, २; ३१, ४०–४२ (पावनात् पावकश् चासि); ३१, ५८; ३. २१९, ८ (भरतो भरतस्याग्नेः पावकस्तु प्रजापतेः । महानत्यर्थमाहितस्तथा भरतसत्तम); २१९, १६ (यस्तु विश्वस्य जगतो बुद्धिमाक्रम्य तिष्ठति । तं प्राहुरध्यात्मविदो विश्वजिन्नाम पावकम् ॥); २१९, २३–२४ (अतुलत्वात् कृतो देवैर्नाम्ना कामस्तु पावकः ॥ संहर्षाद्धारयन् क्रोधं धन्वी स्रग्वी रथे स्थितः । समरे नाशयेच्छत्रूनमोघो नाम पावकः ॥); २२४, ४१; २२५, २. ८; २२६, ४. ११; २२७, ११; २३१, ४; ४. २, १३; ४५, ४०; ४६, ४; ५. १६, ७; १८, २; ८३, २६; १३०, ४९; १५८, ६. ३२; ७. ६, ५ (रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः); ९. ४१, १२; ४४, ३५. ४०. ४३; १०. ६, ११ (पावको वडवामुखः); ८, १४५ (युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः); १८. २१ (स जलं पावको भूत्वा शोषयति); १२. २९, ११३; ६८, ४२; ३२१, ६२; ३२७, २३; १३. २, ३४. ४२. ५९; १४, ३२२; ८४, ७६; ८५, ४६; १४. ९, १९; १५. ३१, १५; १७. १, ३६; १८. ५, २१ ।

* **पिङ्गाक्ष** (पीले नेत्रों वाले) : १. २३२, १९ ।

* **पिङ्गेश** : २. ३१, ४४ ।

प्रदक्षिणावर्तशिख (बायें से दाहिने ओर ज्वालाओं को घुमाते हुये) : १. ५५, १० ।

* **प्रदीप्त** : १. ५५, १० ।

* **प्लवङ्ग** : २. ३१, ४४ ।

* **भगवत्** : २. ३१, ४४. ४९ ।

* **भुवनभर्तृ** : ३. २२२, २ ।

* **भूरितेजस** : २. ३१, ४४ ।

* **महासत्त्व** : २. ३१, ४६ ।

* **रुद्रगर्भ** (पूना संस्करण में °धर्म और गीता प्रेस संस्करण में °गर्भ है) : २. ३१, ४४ ।

* **लोहितग्रीव** : १. २३२, १९ ।

* **वह्नि** : १. ७. १. १२. २६; २२३, ६७. ७४; २३०, १; २. ३१, २६. ३३. ३६. ५३; ३. २२१, १९ (स वह्निः स प्रजापतिः । प्राणानाश्रित्य यो देहं प्रवर्तयति देहिनाम् ।); २२४, २९. ३३. ३७. ४०; २२९, ३०–३१; ४. ३०, २५; ५. १६, १०; ११७, ८ (स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः); ७. १७५, ८८; ८. ८९, १९; ९. ४६, ३९; ४७, १८; ४८, २८; ६५, ३३ (यथा वह्निर्जगत्क्षये); १२. २९, ११२; २८२, २९. ३३. ३७; ३१३, ५; १३. ६५, ७. १६; ८५, २०. २६. ३६. ४३. ६६. १३५; ९२, ९; १४. ९, ११. २९; १०, १५; ४२, २९ (= वाच्) ।

* **वातसारथी** (वात जिसके सारथि हैं) : १. २२८, ४०–४१ (तमग्निः प्रार्थयामास दिधक्षुर्वातसारथिः ॥ शरीरवाञ्जटी भूत्वा नदन्निव बलाहकः) ।

* **विभावसु** (वैभव के आगार) : १. ५५, १०; २. ३१, ३४. ४३; ३. २७६, ४ ।

* **वैश्वानर** : १. ३, १४९; २. ७, १८ (मुनिः); ३१, ४४; ३. १४५, ३३; १९७, २५; २२१, १६; २३३, २२ (सूर्य-वैश्वानर-सोमौ); ७. १०२, ३२; ८. ९१, ४१ (°आर्कप्रतिमम्); १२. २४५, २७; ३२३, २३; १३. ८५, ७० (°प्रभं); ८५, ७६ (सूर्य °समः); १०७, १२५ (°समप्रभः); १४. २०, १८; २०, १९ (घ्राणं जिह्वा च⋯⋯सप्तैता जिह्वा वैश्वानरार्चिषः ।)

* **शिखिन्** : १. ७, २२; २. ३१, ४३. ४८; ५. ५३, १३ (लाक्षणिक रूप से = पाण्डव) ।

* **सप्तार्चिस्** (सात ज्वालाओं वाले) : १. ५, ३०; २२५, ३५ ।

* **सर्वप्राणिषु नित्यस्थ** (सभी प्राणियों में नित्य रूप से वर्त्तमान) : २. ३१, ४८ ।

* **सुरेश** : २. ३१, ४३ ।

* **सुरेश्वर** : २. ३१, ४६ ।

* **स्वर्गद्वारस्पृश** : २. ३१, ४३ ।

* **हव्यकव्यभुज्** : १२. २८२, ३५; ३४४, १२; ३४७, ३ ।

* **हव्यवह्** : १. २२९, २३; ३. १३१, २९; ४. २, २३; ५. १६, १. ९; १५६, १३ (वसुओं में सर्वश्रेष्ठ); १३. १४, ३२४ (शक्रोऽसि मरुतां देव पितॄणां हव्यवाडसि) ।

* **हव्यवाह** : १. ५५, १७; २३२, १३; ३. २१७, ८; २२०, १५; २२२, ११; २७६, १; ५. १६, ४–५; ७. १९०, ३२; १२. २८२, ३४; १४. ९, २०. २७ ।

* **हव्यवाहन** : १. ३, १८३; २२३, १३. ७३; २२४, १. ४. १२; २२९, ३४; २. ८, ३१; ३१, २३. २७. ३२. ४२; ३. ११०, ५; १४२, २२; २१७, १०; १३. २, २३; ८५, २५. ५५ ।

* **हिरण्यकृत्** : २. ३१, ४४ ।

* **हिरण्यरेतस्** : १. ५५, १०; १३. ८५, ७९; १४. ५, २७ (=सूर्य) ।

* **हुतभुज्** : १. ७, १८; ५५, १०; ३. २१७, ९ ।

* **हुतवह** : ३. २१७, ६; २२४, २८; १२. २९२, १२ ।

* **हुतहव्यवह** : १. ६६, २१ (धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा) ।

* **हुताश** : १. २३४, ३; २. ३१, ४३; ३. ५६, ९ ।

* **हुताशन** : १. ७, २१; ६६, २० (पुत्रः शाण्डिल्याश्च हुताशनः); २१४, १५; २२३, ६८; २२५, १ (भगवान्धूमकेतुर्हुताशनः); २२५, २०;

२२८, ३८; २३२, १९; २३४, १४; २. ४८, ६; ३. ८४, ५८; २१७, १५; २२१, २० (शुक्लकृष्णगतिर्देवो यो बिभर्ति हुताशनम्) २२२, २९. ३१; २२४, ३०. ३२; ५. १५, २९; १६, २; ७. ११, २१; ९. ४५, ३३; ४७, १४; १२. २९, ११३; १२२, २९; १३. ६२, ४८; ८५, ८. १८. २२. २८. ३४. ६५. ९९. १३७; १४०, १४ ।

अग्निकन्यापुर, एक तीर्थ का नाम। इसे वह लोक भी माना गया है जो अग्निपुर-तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होता है ('अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा अग्निकन्यापुरे वसेत्', १३. २५, ४३)।

अग्निज्वाल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अग्नितीर्थ सरस्वती के तट पर स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम है। भृगु के शाप से भयभीत होकर अग्निदेव इसी स्थान पर शमी वृक्ष के गर्भ में छिपे थे। (९. ९७, १३. १९–२१)

अग्निधारा, एक तीर्थ का नाम है (३. ८४, १४६)।

अग्निपराभव—आदिपर्व के अन्तर्गत खाण्डवदहनपर्व का एक भाग (२२३ वाँ अध्याय)। जनमेजय के यह पूछने पर कि अग्नि ने खाण्डव दाह की इच्छा क्यों की, वैशम्पायन से इस प्रकार वर्णन किया : "प्राचीन काल में इन्द्र के समान बल और पराक्रम से सम्पन्न श्वेतकि नामक एक राजा थे। उस समय उनके जैसा यज्ञ करने वाला और बुद्धिमान दूसरा अन्य कोई नहीं था। वह सदैव ऋत्विजों के साथ यज्ञ ही किया करते थे। यज्ञ करते करते उनके ऋत्विजों की आँखें धूयें से व्याकुल हो उठीं जिससे वह सभी ऋत्विज् राजा को छोड़कर चले गये। राजा के अत्यन्त आग्रह पर भी जब वे ऋत्विज् नहीं लौटे तब राजा ने उनकी अनुमति से दूसरे ब्राह्मणों को ऋत्विज् बना कर अपना यज्ञ सम्पन्न किया। तदुपरान्त राजा के मन में सौ वर्षों तक चलने वाले एक यज्ञ-सत्र का आरम्भ करने की इच्छा जाग्रत हुई; किन्तु उन्हें वह यज्ञ आरम्भ करने के लिये ऋत्विज् ही नहीं मिले। ऋत्विजों ने राजा को अपना यज्ञ कराने के लिये रुद्र के आश्रय में जाने का परामर्श दिया। ब्राह्मणों का यह आक्षेप युक्त वचन सुनकर राजा श्वेतकि कैलाश पर्वत पर जाकर उग्र तपस्या में लीन हो गये। अन्ततोगत्वा भगवान शंकर (रुद्र) ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। राजा का मनोरथ सुनने के पश्चात रुद्र ने राजा से यह कहा कि यदि वह एकाग्रचित्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये बारह वर्षों तक घृत की निरन्तर अविच्छिन्न धारा द्वारा अग्नि में आहुति देते रहेंगे तब वह (रुद्र) उनका मनोरथ पूर्ण करेंगे। रुद्र के ऐसा कहने पर राजा ने तदनुसार कार्य किया। बारह वर्ष पूर्ण होने पर भगवान महेश्वर (रुद्र) ने उनके सम्मुख उपस्थित होकर सन्तोष प्रगट करते हुये यह कहा : 'शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ कराने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है, अतः मैं तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकता। फिर भी, मैं अपने ही अंशभूत दुर्वासा नामक एक श्रेष्ठ द्विज से तुम्हारा यज्ञ पूर्ण कराऊँगा।' तदनन्तर राजा ने दुर्वासा से अपना यज्ञ पूर्ण कराया। दीर्घकाल के पश्चात, समय आने पर, अपने सम्पूर्ण सदस्यों तथा ऋत्विजों सहित राजा श्वेतकि स्वर्गलोक में चले गये। राजा के यज्ञ में अग्नि ने लगातार बारह वर्षों तक घृतपान किया था जिसके कारण उनके उदर में विकार हो गया। अपने को तेज से हीन देखकर अग्निदेव ने ब्रह्मा की शरण में जाकर अपने को स्वस्थ करने की याचना की। अग्निदेव की यह बात सुनकर ब्रह्मा ने अग्नि से कहा : 'तुमने बारह वर्षों तक वसुधारा की आहुति के रूप में प्राप्त घृतधारा का उपभोग किया है जिससे तुम्हें ग्लानि प्राप्त हुई है। फिर भी तुम पूर्णतः स्वस्थ हो जाओगे। पूर्वकाल में देवताओं के आदेश से तुमने दैत्यों के जिस अत्यन्त घोर निवास स्थान, खाण्डव वन, को जलाया था वहाँ इस समय अनेक प्रकार के जीव-जन्तु आकर निवास करते हैं। उन्हीं जीवों के मेद से तृप्त होकर तुम स्वस्थ हो सकोगे। अतः तुम उस वन को भस्म करने के लिये शीघ्र प्रस्थान करो।' ब्रह्मा की आज्ञा से अग्नि ने जाकर खाण्डव वन को भस्म करना चाहा। किन्तु वायु की सहायता से अग्नि ने खाण्डव वन को सात बार भस्म करने का प्रयास किया, फिर भी, प्रत्येक बार वहाँ के निवासियों ने अग्नि को बुझा दिया (अग्नि को बुझाने के लिये सहस्रों की संख्या में हाथी अपनी सूँड़ों में तथा नाग अपने मस्तकों में जल ले आते थे और अग्नि बुझा देते थे) (१. २२३)"। अग्नि पुनः ब्रह्मा की शरण में गये, किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें नर और नारायण (अर्जुन और कृष्ण) की सहायता प्राप्त करने का परामर्श दिया (१. २२४, १–५. ८–९)।

अग्निपुत्र = स्कन्द (९. ४५, ४८–५२)।

अग्निमत्, एक अग्नि का नाम है (३. २२१, ३१)।

अग्नियोनयः, एक ऋषि का नाम है (१२. १६६, २५)।

अग्निवेश, अग्नि के पुत्र का नाम है, जिन्होंने भरद्वाज से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया था। यह द्रुपद और द्रोणाचार्य के अस्त्रविद्या-गुरु थे (१. १३०, ३९–४०; १३१, ४०; १३९, ९)। इन्होंने पूर्वकाल में महर्षि अगस्त्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी (१. १३९, ९)। भारत के एक जनपद का नाम (६. ५०, ५२)।

१. अग्निवेश्य = अग्निवेश (१. १७०, ३०)। युधिष्ठिर का आदर करने वाले ब्रह्मर्षियों के अन्तर्गत इनकी भी गणना कराई गई है (३. २६, २३)। देखिये ७. ९४, ६७-६८ भी, जहाँ द्रोणाचार्य ने इन्हें अपना गुरु कहा है।

अग्निशिरस्, यमुना तट पर स्थित एक तीर्थ का नाम, जहाँ सहदेव ने यज्ञ किया था (३. ९०, ५–७)।

अग्निष्वात्त, यमलोक में रहने वाले सात पितरों में से एक का नाम है (२. ८, ३०; ११, ४६)।

अग्निसुत = स्कन्द (७. १५६, ९३)।

अग्नीषोम (अग्नि और सोम को दी जाने वाली हवि) १३. ९७, १० (अग्नाषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्यमनन्तरम् । प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ॥)।

अग्नीषोमीय (अग्नि और सोम का) १२. ३४२, ६५।

अग्नी-षोमौ (अग्नि और सोम) २. ७, २१; ३. २२१, १५।

अग्रज = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अग्रणी = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

२. अग्रणी मनु की तृतीय पत्नी निशा के गर्भ से उत्पन्न पाँचवें पुत्र हैं जिनके द्वारा मनुष्य आदि, समस्त भूतों के लिये अन्न का अग्रभाग अर्पित करते हैं (३. २२१, १५. २२)।

अग्रयायी धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से ७७ वें पुत्र का नाम है जिसे अनुयायी भी कहते हैं (१. ११७, ११)।

अग्रवर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अग्रह चातुर्मास्य यज्ञों में नित्य विहित अग्नेय आदि आठ हविष्यों का उद्भव स्थान, अग्रह नामक यह अग्नि, मनु की सुप्रजा और बृहद्भासा नामक पत्नियों के गर्भ से उत्पन्न होने वाले छः पुत्रों में से पाँचवाँ है (३. २२१, १४)।

१. अग्राह्य, भगवान् नारायण के दो सौ नामों में से १७१ वाँ नाम है (१२. ३३८, ३)।

२. अग्राह्य = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अघण्ट = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अघण्टिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अघमर्षण = वानप्रस्थ धर्म का प्रवर्त्तन करके वाले एक ऋषि का नाम है (१२. २४४, १६)।

अघोरघोररूप = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अङ्ग—'अङ्ग' देश के निवासियों को इस नाम से पुकारा गया है। दुर्योधन ने कर्ण को इसी देश के राजा के पद पर अभिषिक्त किया था (१. १३६, ३६. ३८; १३७, ४. ७. १७. २३)। वङ्ग और कलिङ्ग देशों के साथ इसका उल्लेख है (१. २१५, ९)। 'वङ्गाङ्गविषयाध्यक्षम्',

(२. ४४, ९)। युधिष्ठिर को धन समर्पित करने वाले राजकुमारों के अन्तर्गत इसका उल्लेख है (२. ५२, १६)। राजा दशरथ के मित्र लोमपाद का अङ्गदेश के राजा के रूप में उल्लेख है (३. ११०, ४१)। 'ततोऽङ्गपतिर्' = लोमपाद (३. ११०, ५०)। 'अङ्गाधिपतेः' = लोमपाद (३. ११३, ८)। 'अङ्गराजम्' = लोमपाद (३. ११३, १५)। 'अङ्गपतिम्' = लोमपाद (३. ११३, १८)। 'अङ्गराजानं' = कर्ण (३. २४७, १६)। 'अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च शुण्डिकान् मिथिलानथ', (३. २५४, ८)। 'सूतस्य ववृधेऽङ्गेषु श्रेष्ठः पुत्रः स वीर्यवान्', (३. ३०९, १५)। भारतवर्ष के अनेक अन्य देशों के साथ इसका उल्लेख है (६. ९, ४६)। 'अङ्गपतिना' = कर्ण (६. १७, २८)। कृष्ण द्वारा अङ्ग, वङ्ग आदि देशों पर विजय (७. ११, १५)। परशुराम द्वारा अङ्ग, वङ्ग आदि अनेक देशों के क्षत्रियों का संहार (७. ७०, १२)। अङ्गदेश के सहस्रों गजरोही योद्धाओं द्वारा महाभारत युद्ध के चौदहवें दिन अर्जुन को घेरना और अर्जुन द्वारा पराभूत होना (७. ९३, ३१)। 'सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च', (८. ८, १९)। कलिङ्ग, अङ्ग, वङ्ग और निषाद देशों के वीरों द्वारा हाथियों पर सवार होकर युद्ध के सोलहवें दिन अर्जुन को घेरना (८. १७, १२)। युद्ध के १६ वें दिन अङ्गों का धृष्टद्युम्न के विरुद्ध युद्ध (८. २२, २)। युद्ध के १७ वें दिन भीम द्वारा अङ्ग, वङ्ग, आदि, लोगों का वध (८. ७०, ९)। कर्ण अङ्ग देश का तो राजा हुआ ही, साथ ही जरासन्ध का वध करके चम्पा नगर पर भी शासन करने लगा (१२. ५, ६)। मुञ्जपृष्ठ नामक तीर्थ में अङ्गराज वसुहोम और मान्धातृ के बीच वार्तालाप (१२. १२१, १)। रुचि की बड़ी बहन के साथ अङ्गराज चित्ररथ का विवाह हुआ था (१३. ४२, ७–९)। 'त्यक्त्वा महीत्वं भूमिस्तु स्पर्धयाङ्गनृपस्य ह। नाशं जगाम तां विप्रो व्यस्तंभयत कश्यपः ॥', (१३. १५३, २)। 'काशीनंगान्कोसलांश्च किरातानथ तंगणान् ।', (१४. ८३, ४)।

२. अङ्ग प्राचीन युग के एक राजा का नाम (१. १, २३३)।

३. अङ्ग (= २. अङ्ग) दीर्घतमस् के पुत्रों में से एक (१. १०४, ५३–५४)।

यह यम की सभा में उपस्थित थे (२. ८, १५)।

४. अङ्ग (= २. अङ्ग ?), एक पौरव का नाम है (७, ५७, ११)। = बृहद्रथ (१२. २९, ३१. ३५. ८८)।

५. अङ्ग, मनु के पुत्र के रूप में अवतरित श्रीकृष्ण का नाम है ('समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः। अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः ॥', १३. १४७, २३)।

६. अङ्ग—पहले की बात है, अङ्ग नामक एक नरेश ने इस पृथ्वी को ब्राह्मणों के हाथ में दान कर देने का विचार किया था (१३. १५४, १)।

७. अङ्ग, युधिष्ठिर के समय का एक अङ्ग राजा था जो मयदानव द्वारा निर्मित सभा भवन में युधिष्ठिर के प्रवेश करने के समय उपस्थित था (२. ४, २४. २५)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित महिपालों में से एक (३. ५१, २२)। इसे एक म्लेच्छ राजा कहा गया है जिसका युद्ध के बारहवें दिन भीमसेन ने वध किया था (७. २६, १४)। एक म्लेच्छ राजा जिसका युद्ध के १६ वें दिन नकुल ने वध किया था (८. २२, १२. १६. १७)।

८. अङ्ग, एक अङ्ग देश का नाम अथवा विशेषण है ('अङ्गस्याङ्गोऽभवद् देशो', १. १०४, ५४)।

९. अङ्ग, प्राचीन काल के किसी न किसी अङ्गराज का नाम ('अङ्गवङ्गादयः राजानः', २. २१, ७) है।

१०. अङ्ग, क्ली०, बहु० (°आनि) = वेदाङ्गानि : १. १, ६२ (साङ्गोपनिषदां चैव वेदानाम्)। १. २, ३८२ : ('वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः')। १. ७५, १५ : (साङ्गं वेदम्)। १००, ३५ : (वेदानधिजगे साङ्गान्वसिष्ठादेष वीर्यवान्)। १. १००, ३८ : (साङ्गोपाङ्गम्)। १०३, ५ : (वेदाङ्गानि)। १०४, १२ : (षडङ्गं)। १७७, १२ : (षड्भिरङ्गैरलंकृतम्)। १७९, ४ : (षडङ्गश्चाखिलो वेद)। २. ५, ३ : (षडङ्गविद्)। ३. ६४, १७ : (साङ्गोपाङ्गाः वेदाः)। ७. १९८, १ (साङ्गावेदाः)। २०२, १०९ : (वेदाङ्गाः सोपनिषदः)। १२. ३७, ११ : (वेदान् अङ्गोपबृंहितान्)। ४६. १७ : (चतुरो वेदान् साङ्ग)। १९९, ४. ५ : (षडङ्ग)। १९९, ६६ : (वेदास्तथाऽङ्गानि)। २३१, ७ : (वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदः)। ३३५, १ : (अङ्गतः)। २३८, १८ : (सृजते सर्वतोङ्गानि तथा वेदा युगे-युगे)। २८४, १९२ : (वेदात्षडङ्गाद्)। २९७, ४० : (वेदाश्च षडङ्गानि)। ३१८, ५० : (साङ्गोपाङ्गान्)। ३२७, ३५ : (साङ्गेष्वपि तपस्विनः)। ३३४, २५ : (साङ्गोपाङ्गेषु वेदेषु)। ३३५, ५४ : (साङ्गोपनिषदं)। ३४०, ९२ : (साङ्ग वेदान्)। ३४१, ५५ : (वेदान् साङ्गोपाङ्गान्)। ३४३, ६१ : (वेदान् साङ्गः)। ३४९, १३ : (वेदान् साङ्ग)। १३. २२, १२ : (षड्भिरङ्गैः)। २२, ३६ : (साङ्ग चतुरो वेदाः)। ९०, २६ : (षडङ्गविद्)। १४. ८८, २६ : (नाषडङ्गविद्)।

अङ्गक (°आः) एक जाति के लोगों का नाम है, जो सम्भवतः = अङ्ग (८. ४५, ३० यहाँ युद्ध के १६ वें दिन शल्य के सम्मुख कर्ण ने इनकी प्रशंसा की है)।

१. अङ्गद, वालिन् के पुत्र एक वानर राजा का नाम (३. २८२, २८) है। वालि की पत्नी तारा इनकी माता थीं (३. २८०, १८)। इन्होंने राम की सेना की रक्षा की थी (३. २८३, १९)। राम ने इन्हें अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा था (३. २८३, ५४)। राम की आज्ञा से इनका लङ्का में प्रवेश, रावण के पास जाकर राम का संदेश सुनाना और वहाँ से लौटना (३. २८४, ७–२२)। इन्होंने इन्द्रजित के साथ युद्ध किया था (३. २८८, १४. १६)। इन्होंने रावण पर आक्रमण किया था (३. २९०, ३)। इन्द्रजित के विरुद्ध युद्ध के समय राम और लक्ष्मण को घेरकर उनकी रक्षा करने वाले लोगों में से एक यह भी थे (३. २८९, ४. १३)। इन्हें किष्किन्धा के युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था (३. २९१, ५९)।

२. अङ्गद, कौरव पक्ष के एक वीर योद्धा का नाम है जिसने महाभारत-युद्ध के बारहवें दिन उत्तमौजों के विरुद्ध युद्ध किया था (७. २५, ३८)।

अङ्गपुत्र = ७. अङ्ग, जिसका नकुल ने वध किया था (८. २२, १९)।

अङ्गलुब्ध = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अङ्गविधि (चन्द्रमा के विभिन्न अङ्गों की स्थिति), १३. ११०।

१. अङ्गार एक राजा का नाम है जिसे मान्धातृ ने पराजित किया था (१२. २९, ८८. ८९)।

२. अङ्गार एक प्राचीन जनपद का नाम है (६. ९, ६०)।

१. अङ्गारक, मङ्गल ग्रह का नाम है (१. १३४, २०), जो ब्रह्मा जी की सभा में नित्य उपस्थित होते हैं (२. ११, २९)। इसके द्वारा एक शकुन के व्यक्त होने का उल्लेख है (५. १४३, ९; ६. ३, १४)। 'समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव', (६. ४५, ४१)। 'शुक्राङ्गारकयोरिव', (६. ४५, ५७)। 'भूमावङ्गारकं यथा', (७. १०९, ३४)। 'अङ्गारकबुधाविव', (८. १५, १६)। 'अङ्गारक इव ग्रहः', (८. १९, १)। तु० की० **भौम**।

२. अङ्गारक = सूर्य (३. ३, १७ : धौम्यों की गणना में)।

३. अङ्गारक, एक सौवीर राजा का नाम है जो जयद्रथ के अनुगामियों में से एक था (३. २६५, १०)।

अङ्गारपर्ण, एक गन्धर्व राजा = चित्ररथ (इसके वन का भी यही

नाम है) का नाम है (१. २, १११)। अर्जुन ने इसे पराजित किया था (१. १७०, १३. १४. २५. ३८)।

अङ्गावह, युधिष्ठिर के राजसूय में पधारने वाले एक वृष्णिवंशी राजा का नाम (२. ३४, १६)।

१. अङ्गिरस्, ब्रह्माजी के छः मानस पुत्रों में से एक महर्षि का नाम है (१. ६५, १०; ६६, ४)। यह बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त्त के पिता हैं (१. ६६, ५)। इनके पुत्र, बृहस्पति का देवताओं ने अपने पुरोहित के पद पर वरण किया (१. ७६, ६)। इनके पौत्र कच का उल्लेख (१. ७६, १९. ४९; ७७, २. ३)। 'तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः' (१. १००, ३७)। अर्जुन के जन्म के समय पधारने वाले लोगों में से एक यह भी थे (१. १२३, ५२)। 'अङ्गिरसः कुले', (१. १३०, ५५)। ब्रह्माजी की सभा में इनके उपस्थित रहने का उल्लेख (२. ११, १९)। 'श्रेयान्सुधन्वा त्वत्तो वै मत्तः श्रेयांस्तथाङ्गिराः', (२. ६८, ८६)। 'मुनेरङ्गिरसः सुतः', (३. ८५, ४७)। प्रयाग तीर्थ में इनके निवास का उल्लेख ('अङ्गिरः प्रमुखाः ब्रह्मर्षयः', ३. ८५, ७१)। इन्होंने सूर्य की रक्षा की थी (३. ९२, ६)। यह आकाश गङ्गा के तट पर अपना दैनिक जप करते हैं (३. १४२, ६)। यह अग्नि बनकर अपनी प्रभा से अन्धकार का निवारण करते हुये जगत को ताप देने लगे और अन्त में अग्नि ने इन्हें अपना प्रथम पुत्र स्वीकार किया (३. २१७, २. ७. ८. १२. १७, १८. २०)। 'देवी भानुमती नाम प्रथमाऽङ्गिरसः सुता', (३. २१८, ३)। 'रागाद्रागेति यामाहुर्द्वितीयाऽङ्गिरसः सुता', (३. २१८, ४)। इनकी अन्य पुत्रियों के नाम सिनीवाली, अर्चिष्मती, हविष्मती, महिष्मती, महामती और कुहू हैं (३. २१८, ५-८)। 'भानुरङ्गिसो धीरः पुत्रो', (३. २२०, ९)। 'असुरान् जनयन् घोरान् मर्त्यांश्चैव पृथग्विधान्। तपसश्च मनुं पुत्रं भानु चाप्यङ्गिराः सृजत ॥', (३. २२१, ७-८)। 'भृग्वङ्गिरादिभिर्भूयस्तपसोत्थापितस्''''''शिखी।' (३. २२२, १७)। 'एक एवैष भगवान् विज्ञेयः प्रथमोऽङ्गिराः', (३. २२२, ३१)। 'शिवा भार्या त्वङ्गिरसः', (३. ३. २२५, १. ३)। इन्होंने इन्द्र देवता से वरदान प्राप्त किया था (५. १८, ५-७)। 'सखा चाङ्गिरसो नृपः', (५. १५१, १७)। नारायण को समर्पित एक सूक्त में इनका उल्लेख (६. ६८, ६)। 'सोमोऽङ्गिरा यथा', (७. ६३, १०)। दुर्योधन को अभेद्य कवच से सुसज्जित करते हुये द्रोणाचार्य ने इनका आवाहन किया था (७. ९४, ४५)। इन्द्र ने वृत्रासुर का वध करने के पश्चात् इस कवच तथा इसे बाँधने की मन्त्र-युक्त विधि अङ्गिरा को दी थी और अङ्गिरा ने उसे अपने पुत्र बृहस्पति को (७. ९४, ६६. ६७)। 'इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम्' (७. १०३, १९)। 'अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः', (८. ३४, ४४)। 'भृग्वंगिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम्', (८. ३४. ५१)। कार्तिकेय के अभिषेक के समय आने वाले लोगों में एक यह भी थे (९. ४५, १०)। वाणशय्या पर पड़े हुये भीष्म को घेरकर खड़े होने वाले लोगों में एक यह भी थे (१२. ४७, १०)। इनके पुत्र बृहस्पति द्वारा दो श्लोकों का गायन (१२. ६९, ७१)। विष्णु ने इन्हें एक दण्ड दिया जिसको इन्होंने इन्द्र और मरीचि को दिया (१२. १२२, ३७)। ब्रह्मा ने लौकिक शरीर धारण करके मुनियों के रूप में जिन पुत्रों को उत्पन्न किया उनमें एक यह भी थे (१२. १६६, १६)। सनातन धर्म का पालन करने वाले लोगों में से एक यह भी थे (१२. १६६, २३)। ब्रह्मा के सात मानस-पुत्रों में से एक (१२. २०७, १७)। भीष्म द्वारा इस जगत में जो प्रजापति रहे हैं तथा सम्पूर्ण दिशाओं में जिन-जिन ऋषियों की स्थिति मानी गई है उनका वर्णन करते हुये ब्रह्मा के सात महात्मा पुत्रों की गणना में इनका भी उल्लेख है—इन सात पुत्रों को भीष्म के अनुसार पुराणों में सात ब्रह्मा निश्चित किया गया है (१२. २०८, ४. ५)। अङ्गिरस् को अपनी पुत्री प्रदान करके करन्धम का पुत्र मरुत स्वर्गलोक चला गया (१२. २३४, २८; तु० की० १३. १३७, १६)। मेरु पर्वत पर शिव और पार्वती की उपासना करने वाले देवर्षियों में एक यह भी थे (१२. २८३, १०)। आरम्भ में अङ्गिरस्, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु नामक चार गोत्र ही उत्पन्न हुये (१२. २९६, १७)। प्रथम उत्पन्न इक्कीस प्रजापतियों में से एक यह भी थे (१२. ३३४, ३५)। उन प्रसिद्ध सात ऋषियों में से एक यह भी हैं जिन्होंने मेरुपर्वत पर एक मत होकर उस शास्त्र का प्रवचन एवं निर्माण किया जो चारों वेदों के समान आदरणीय और प्रमाणभूत है (१२. ३३५, २९)। 'अङ्गिरसः सुते', अर्थात् बृहस्पति (१२. ३३६, १)। ब्रह्मा द्वारा रचे गये पञ्च महाभूतों से जो आठ मूर्तिमान् प्राणी उत्पन्न हुये उनमें एक यह भी थे (१२. ३४०, ३४)। ब्रह्मा के उन सात मानस पुत्रों के अन्तर्गत इनकी भी गणना है जो प्रधान वेद-वेत्ता और प्रवृत्ति धर्मावलम्बी हैं (१२. ३४०, ६९-७०)। उन व्यक्तियों में एक यह भी थे जिन्हें कृष्ण ने भगवान शिव को नमस्कार करते हुये देखा था (१३. १४, ३९६)। पूर्वकाल में इनके द्वारा तीर्थ समुदाय के वर्णन का उल्लेख (१३. २५, ३. ४. ७)। इन्होंने तीर्थों के इस महात्म्य का ज्ञान कश्यप जी से प्राप्त किया था (१३. २५, ६९. ७१)। वाणशय्या पर पड़े भीष्म को देखने के लिये आने वाले महर्षियों में एक यह भी थे (१३, २६, ४)। ब्रह्मा के वीर्य की जब अग्नि में आहुति दी गई तब उससे प्रगट होने वाले तीन शरीरधारी पुरुषों में एक यह भी थे (१३. ८५, १०५)। अङ्गारों से उत्पन्न इनके नाम की व्युत्पत्ति (१३. ८५, १०७)। इन्हें अग्नि की सन्तान निश्चित किया गया है। (१३. ८५, १२४)। तेजस्वी अङ्गिरा आग्नेय तथा महा यशस्वी कवि ब्राह्म नाम से विख्यात हुये; भृगु और अङ्गिरा को दोनों लोकों में जगत की सृष्टि का विस्तार करने वाला बताया गया है (१३. ८५, १२६)। वारुण के नाम से विख्यात इनके आठ पुत्रों का उल्लेख (१३. ८५, १३०)। 'एवमङ्गिरसश्चैव कवेश्च प्रसवान्वयैः। भृगोश्च भृगुशार्दूल वंशजैः सततं जगत् ॥', १३. ८५, १३५; 'जग्राहाङ्गिरसं देवः शिखी तस्माद्धुताशनः। तस्मादाङ्गिरसा ज्ञेयाः सर्व एव तदन्वयाः ॥', १३. ८५, १३७। योग-वेत्ताओं के अन्तर्गत इनकी गणना (१३. ९२, २१)। प्रभास तीर्थ में एकत्र ऋषियों में एक यह भी थे (१३. ९४, ४)। इन्होंने यह शपथ खाई कि कमल पुष्प की चोरी से यह सर्वथा अनभिज्ञ हैं (१३. ९४, २०)। अङ्गिरा द्वारा पूर्वकाल में महर्षियों को बताये गये व्रतों के जिन फलों को अङ्गिरा ने भीष्म से बताया था उनका भीष्म द्वारा वर्णन (१३. १०६, ९. ११. ४८. ७०. ७१)। इन व्रत-फलों का और अधिक वर्णन (१३. १०७, ५. ५९)। इनके द्वारा एक वर्ष तक करञ्ज वृक्ष के नीचे दीप दान करने और ब्राह्मी बूटी की जड़ हाथ में लिये रहने के फल का वर्णन (१३. १२७, ८)। 'करन्धमस्य पौत्रस्तु मरुत्तोऽविक्षितः सुतः। कन्यामाङ्गिरसे दत्वा दिवमाशु जगाम सः ॥', (१३. १३७, १६; तु० की० १२. २३४, २८)। मानवों के अन्तर्गत इनके पुत्र बल का उल्लेख (१३. १५०, ३०)। 'उन्मुचुः प्रमुचुश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान्। दृढव्यश्चोर्ध्वबाहुश्च तृणसोमाङ्गिरास्तथा ॥', १३. १५०, ३४। 'वृद्धैः काश्यपगौतमप्रभृतिभिर्भृग्वङ्गिरोऽत्र्यादिभिः। शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिर्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम्''''''सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः कृत्स्ना जिता दानवाः ॥', १३. १५०, ७९। "ब्राह्मण इस मर्त्यलोक और स्वर्गलोक में भी अजेय हैं। पूर्वकाल की बात है, महात्मा अङ्गिरस् मुनि जल को दूध की भाँति पी गये थे। उस समय उन्हें पीने से तृप्ति ही नहीं हो रही थी अतः अपने तेज से वह पृथ्वी का सारा जल पी गये, और तत्पश्चात् उन्होंने जल का महान् स्रोत प्रवाहित कर पृथ्वी को जल से पूर्ण कर दिया। वह अङ्गिरस् मुनि एक बार जब वायु पर कुपित हो गये तब उनके भय से इस जगत् का परित्याग कर वायु को दीर्घकाल तक अग्निहोत्र की अग्नि में निवास करना पड़ा था। अग्नि का वर्ण पहले सुवर्ण के समान था, उसमें से धुआँ नहीं निकलता था, और उसके लपटें सदैव ऊपर की ओर ही उठती थीं, किन्तु क्रोध में भरे हुये अङ्गिरस् ऋषि के शाप से उसमें अब यह

गुण नहीं रह गये (१३.१५३, ३. ५. ८)।" पूर्व क्षेत्र के विद्वान् ब्राह्मणों के अन्तर्गत इनका उल्लेख (१३.१६५, ३८)। अविक्षित् कारन्धम के पुरोहित के रूप में इनका उल्लेख (१४. ४, २२)। इनके बृहस्पति और संवर्त्त नामक पुत्रों का उल्लेख (१४. ५, ४)। 'पुत्रमङ्गिरसो ज्येष्ठं विप्रज्येष्ठं बृहस्पतिम्। याज्यस्त्वङ्गिरसः पूर्वमासीद्राजा करन्धमः ॥', १४. ५, ८। 'गतोऽस्म्यङ्गिरसः पुत्रं देवाचार्यं बृहस्पतिम्।', १४. ६, १५। 'राजन्नङ्गिरसः पुत्रः संवर्तो नाम धार्मिकः।', १४. ६, १८।

२. अङ्गिरस् (सः), बहु०—अङ्गिरस् के वंशज (१. १३२, ७१)। 'अङ्गिरसां वरः', अर्थात् द्रोण (१. १३३, ११)। द्वैतवन अङ्गिरसों से परिपूर्ण हो गया (३. २६, ७)। लोमश द्वारा युधिष्ठिर से परिचित कराये गये तपस्वियों में यह भी एक थे (३. ११५, २)। 'भृगुभिश्चाङ्गिरोभ्यश्च हुतं', (३. २२४, १४)। 'भृग्वङ्गिरोभिः', (३. २३१, ४२)। 'अङ्गिरसां वरिष्ठे बृहस्पतौ', (५. १६, २७)। 'द्रोणमङ्गिरसां वरम्', (५. १९३, १५)। 'भृगवोऽङ्गिरसश्चैव', (७. १९०, ३४) । 'अङ्गिरसां वरिष्ठः' = अश्वत्थामा (८. १७, २३)। स्कन्द के अभिषेक के समय पधारने वालों में यह लोग भी थे (९. ४५, ८)। 'चकाराङ्गिरसां श्रेष्ठाद्धनुर्वेदं गुरोस्तदा', अर्थात् कर्ण और द्रोण (१२. २, ५. १४)। 'अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ। स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥', (१२. २०८, २४)। 'अङ्गिरसां वरम्', = बृहस्पति (१२. ३३६, ४९)। 'बृहस्पतिं अङ्गिरसां वरम्' (१८. ५, १२)।

३. अङ्गिरस् = बृहस्पति। 'देवा वव्रिरेऽङ्गिरसं मुनिम्', (१. ७६, ६)। 'बृहस्पतेरङ्गिरसः', (५. ११, २६; १८, ५–७)। इनके और वसुमना के बीच वार्तालाप (१२. ६८, ६१)। "अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति ने अमृत उत्पन्न करने के समय पुरश्चरण आरम्भ किया। उस समय जब वह आचमन करने लगे तब भी जल स्वच्छ नहीं हुआ, इस पर कुपित होकर उन्होंने जल को मत्स्य, मकर, और कच्छप आदि जन्तुओं द्वारा कलुषित बने रहने का शाप दिया (१२. ३४२, २७)।" इन्द्र ने इन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी प्रदान की (१३. ६२, ९३)।

४. अङ्गिरस् = सारस्वत। 'यत्र सारस्वतो यातः सोऽङ्गिरास्तपसो निधिः', (३. ८३, १८७)।

५. अङ्गिरस् = उतथ्य। मान्धातृ यौवनाश्व को अङ्गिरस् उतथ्य द्वारा राजाओं के कर्त्तव्य का उपदेश देना (१२. ९०, १)। सोम की पुत्री भद्रा के साथ इनके विवाह का उल्लेख (१३. १५४, २३)।

६. अङ्गिरस् = विष्णु। 'विष्णुर्नामेह योऽग्निस्तु धृतिमान्नाम सोऽङ्गिराः', (३. २२१, १२)।

अङ्गिरस (म्) (अङ्गिरा की सन्तति का वर्णन)—युधिष्ठिर के पूछने पर मार्कण्डेय ने एक कथा का वर्णन किया : "राजन् इस विषय पर लोग उस प्राचीन इतिहास को दुहराया करते हैं जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार अग्निदेव कुपित हो तपस्या के लिये जल में प्रविष्ट हुये थे, और किस प्रकार स्वयं महर्षि अङ्गिरा भगवान् अग्नि बनकर अपनी प्रभा से अन्धकार का निवारण करते हुये जगत् को ताप प्रदान करने लगे। प्राचीन काल की बात है, महर्षि अङ्गिरा अपने आश्रम में ही रहकर उत्तम तपस्या करते हुये अग्नि से भी अधिक तेजस्वी होने के अपने उद्देश्य में सफल होकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने लगे। उस समय अग्नि, यह सोचकर अत्यन्त दुःखी हुये कि कदाचित् ब्रह्मा ने इस जगत् के लिये एक दूसरे अग्निदेवता का निर्माण कर लिया है; किन्तु अङ्गिरा मुनि ने उनसे कहा, 'हे देव ! ब्रह्मा ने आपको ही अन्धकारनाशक प्रथम अग्नि के रूप में उत्पन्न किया है, अतः आप शीघ्र ही अपना स्थान ग्रहण कीजिये।' इस पर अग्नि ने अपने को द्वितीय, प्राजापत्य नामक अग्नि बने रहने देने का निवेदन किया, किन्तु अङ्गिरा ने आग्रह करते हुये उनसे इस प्रकार कहा : 'हे अग्निदेव आप प्रजा को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने वाला पुण्यकर्म सम्पन्न करते हुये स्वयं ही अन्धकार-निवारक अग्नि-पद पर प्रतिष्ठित हों, तथा साथ ही, मुझे अपना पहला पुत्र स्वीकार करें।' अङ्गिरा का यह वचन सुनकर अग्निदेव ने वैसा ही किया। तदुपरान्त अङ्गिरा को भी बृहस्पति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अङ्गिरा को अग्नि का प्रथम पुत्र जानकर सब देवता उनके पास आये और इसका कारण पूछने लगे। देवताओं के पूछने पर अङ्गिरा ने उन्हें कारण बताया और देवताओं ने अङ्गिरा के उस कथन पर विश्वास करके उसे यथार्थ मान लिया (३. २१७)।" अङ्गिरा की सन्तति का इस प्रकार वर्णन है : "अङ्गिरा ब्रह्माजी के तृतीय पुत्र हैं और उनकी पत्नी का नाम सुभा है। सुभा के गर्भ से जो सन्तानें उत्पन्न हुईं उनके अन्तर्गत बृहस्पति आदि सात पुत्र और भानुमती, रागा, सिनीवाली (जिसे इसलिये कपर्दिसुता भी कहते हैं कि अत्यन्त कृश होने के कारण वह कभी दृश्य और कभी अदृश्य प्रतीत होती थी), अर्चिष्मती, हविष्मती, महिष्मती, महामती और कुहू नामक आठ पुत्रियाँ आती हैं (३. २१८)।" आगे बृहस्पति की सन्तति का इस प्रकार वर्णन है (३. २१९) :
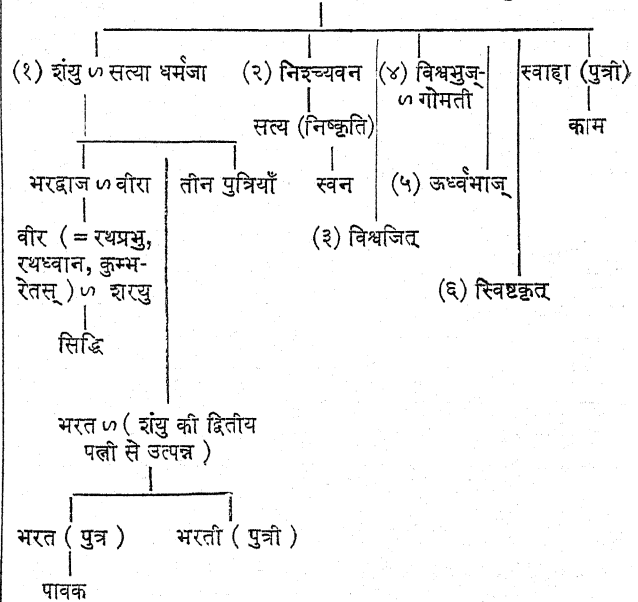
"कश्यप-पुत्र काश्यप, वसिष्ठ-पुत्र वासिष्ठ, प्राण-पुत्र प्राण, अङ्गिरा-पुत्र च्यवन और त्रिवर्चा, यह पाँच अग्नि हैं। इन्होंने पुत्र-प्राप्ति के हेतु अनेक वर्षों तक तीव्र तपस्या की। इनका उद्देश्य ब्रह्मा के समान यशस्वी और धर्मिष्ठ पुत्र प्राप्त करना था। इन पाँच अग्नि-स्वरूप ऋषियों ने महाव्याहृति-संज्ञक पाँच मंत्रों द्वारा परमात्मा का ध्यान किया जिससे उनके समक्ष अत्यन्त तेजमय, पाँच वर्णों से विभूषित, एक पुरुष प्रकट हुआ जो ज्वालाओं से प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा था। उसका मस्तक प्रज्वलित अग्नि के समान जगमगा रहा था, दोनों भुजायें सूर्य की प्रभा के समान थीं, दोनों नेत्र तथा त्वचा सुवर्ण के समान प्रदीप्त हो रहे थे, और उसकी पिण्डलियाँ कृष्ण वर्ण दिखाई पड़ रही थीं। पाँच मुनियों द्वारा अपनी तपस्या के प्रभाव से पाँच वर्ण वाले उस पुरुष को प्रगट करने के कारण उसका नाम पाञ्चजन्य पड़ा। यह पाञ्चजन्य नामक पुरुष ही उन पाँचों ऋषियों के वंश का प्रवर्त्तक हुआ। इस पाञ्चजन्य ने अपने पितरों का वंश चलाने के लिये दस सहस्र वर्षों तक महान् तपस्या करके घोर दक्षिणाग्नि को उत्पन्न किया। उन्होंने मस्तक से बृहत् तथा मुख से रथन्तर साम को, नाभि से रुद्र को, बल से इन्द्र को, प्राण से वायु और अग्नि को, तथा दोनों भुजाओं से प्राकृत और वैकृत भेद वाले दोनों अनुदात्तों, मन, ज्ञानेन्द्रियों के समस्त देवताओं और पञ्चमहाभूतों को उत्पन्न किया। इन सबकी सृष्टि

करने के पश्चात् उन्होंने अपने पाँचों पितरों के लिये पाँच पुत्र और उत्पन्न किये जिनके नाम इस प्रकार हैं : वासिष्ठ बृहद्रथ के अंश से प्रणिधि, काश्यप के अंश से महत्तर, अङ्गिरस् च्यवन के अंश से भानु, वर्चा के अंश से सौभर, और प्राण के अंश से अनुदात्त। इस प्रकार पाञ्चजन्य के पच्चीस पुत्र हुये। तत्पश्चात् 'तप' नामधारी पाञ्चजन्य ने यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले पन्द्रह उत्तर देवों (विनायकों) को उत्पन्न किया जिनके नाम इस प्रकार हैं : सुभीम, अतिभीम, भीम, भीमबल, अबल; सुमित्र, मित्रवत्, मित्रज्ञ, मित्रवर्धन, मित्रधर्मा; सुर प्रवीर, वीर, सुरेश, सुवर्चा, तथा सुरहन्ता (सुराणामपि हन्तारं)। इस प्रकार पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न यह पन्द्रह देवोपम विनायक पृथक्-पृथक् पाँच-पाँच व्यक्तियों के तीन दलों में विभक्त हैं। (३.२२०)।" "इसके बाद अनेक अग्नियों का वर्णन है जिनमें तपस् के पाँच ऊर्जस्कर पुत्रों (पुरन्दर, उष्मन्, मनु, शम्भु, और आवसथ्य) का; और, सुप्रजा तथा बृहद्भासा सूर्यजा नामक पत्नियों से छः पुत्रों (बलद, मन्युमत्, विष्णु = धृतिमत् = अङ्गिरस्, आग्रयण, अग्रह, स्तुभ) का उल्लेख है। इसी प्रकार निशा भी भानु की पत्नी थी। उसने एक कन्या और दो पुत्रों को जन्म दिया। कन्या का नाम रोहिणी और पुत्रों का नाम अग्नि तथा सोम था। इनके अतिरिक्त निशा ने वैश्वानर, विश्वपति, सन्निहित, कपिल, और अग्रणी नामक पाँच अन्य अग्निस्वरूप पुत्रों को उत्पन्न किया। चातुर्मास्य यज्ञों में प्रधान हविष्य द्वारा पर्जन्य सहित जिसकी पूजा की जाती है वही कान्तिमान् वैश्वानर नामक अग्नि है। जिसे वेदों में सर्वलोकों का पति' कहा गया है वह विश्वपति नामक अग्नि, मनु (भानु) का द्वितीय पुत्र है। इत्यादि। (३. २२१)।"

अग्नि के वंश-क्रम का अगले अध्याय में भी वर्णन है—"मरे हुए प्राणियों के शव का दाह करने वाले अपने भरत (भर, नियत) नामक पौत्र के भय से सह नामक अग्नि समुद्र में प्रवेश कर गये। तब देवता लोग सब दिशाओं में उनकी खोज करते हुए वहाँ भी पहुँचने लगे। एक दिन अग्नि ने अथर्वा (अङ्गिरा) से इस प्रकार कहा, 'तुम देवताओं के पास उनका हविष्य पहुँचाओ। मैं अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ, अतः अब तुम अग्निपद पर प्रतिष्ठित होकर मेरा यह प्रिय कार्य सम्पन्न करो।' अथर्वा को इस प्रकार भेजकर अग्निदेव दूसरे स्थान पर चले गये; किन्तु मत्स्यों ने उनके स्थान को प्रगट कर दिया। इस पर कुपित होकर अग्नि (सह) ने मत्स्यों को यह शाप दे दिया कि वह नाना प्रकार के जीवों के भक्ष्य बन जायेंगे। तदुपरान्त सह नामक वह अग्नि अपने शरीर का परित्याग कर धरती में प्रवेश कर गये। वहाँ भूमि का स्पर्श करके उन्होंने पृथक्-पृथक् अनेक धातुओं की सृष्टि की : उन्होंने अपने पीब और रक्त से गन्धक और तैजस धातुओं को उत्पन्न किया; उनकी अस्थियों से देवदारु वृक्ष प्रगट हुये; उनके कफ से स्फटिक, तथा पित्त से मरकत मणि का प्रादुर्भाव हुआ; उनका यकृत् काले रङ्ग का लोहा बनकर प्रगट हुआ; उनके नख से मेघ उत्पन्न हुये; उनकी नाड़ियाँ मूँगा बन कर प्रगट हुईं; इत्यादि। इस प्रकार सह अग्नि शरीर त्याग कर अत्यन्त भारी तपस्या में लग गये। तब भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषियों ने उन्हें तपस्या से उपरत किया। किन्तु महर्षि अङ्गिरा को सामने देख वह अग्नि भय के कारण पुनः महासागर के भीतर प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार अग्नि के अदृश्य हो जाने पर समस्त संसार भयभीत होकर अथर्वा (अङ्गिरा) की शरण में आया तथा देवताओं ने भी इन अथर्वा का पूजन किया। तब अथर्वा ने समस्त प्राणियों के देखते-देखते ही समुद्र को मथ डाला और अग्निदेव का दर्शन करके स्वयं ही सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि की। इस प्रकार पूर्वकाल में अदृश्य हुये अग्निदेव को भगवान् अङ्गिरा ने पुनः बुलाया, जिससे प्रगट होकर वह (अग्नि) सदा समस्त प्राणियों का हविष्य-वहन करते हैं। समुद्र के भीतर नाना स्थानों पर विचरण करते हुए सह अग्नि ने इसी प्रकार अनेक वेदोक्त अग्नि-देवों तथा उनके स्थानों को उत्पन्न किया। इसके बाद अग्नियों के उत्पत्ति-स्थान के रूप में अनेक नदियों की गणना कराई गई है। अद्भुत की पत्नी प्रिया तथा उनका पुत्र विभूरसि हुआ। अग्नियों की जितनी संख्या बताई गई है उतनी ही सोमयागों की भी संख्या है। ये सब अग्नि ब्रह्मा जी के मानसिक संकल्प से अत्रि के वंश में उनकी संतान के रूप में उत्पन्न हुए। अत्रि को जब प्रजा-सृष्टि की इच्छा हुई तब उन्होंने इन अग्नियों को ही अपने हृदय में धारण किया और फिर उन ब्रह्मर्षि के शरीर से विभिन्न अग्नियों का प्रादुर्भाव हुआ। वेदों में अद्भुत नामक अग्नि के माहात्म्य के समान ही इन अग्नियों का भी माहात्म्य है क्योंकि इन सबमें एक ही अग्नि-तत्त्व वर्तमान है। प्रथम अग्नि को अङ्गिरा भी कहते हैं, और जिस प्रकार ज्योतिष्टोम यज्ञ अनेक रूपों में प्रगट हुआ है उसी प्रकार यह एक ही अग्नि-तत्त्व प्रजापति के शरीर से विभिन्न रूपों में उत्पन्न हुआ। (३.२२२)।"

अङ्गिरसिक : 'केन सङ्कल्पितं श्राद्धं कस्मिन्काले किमात्मकम्। भृग्वङ्गिरसिके काले मुनिना कतरेण वा ॥', (१३. ९१, १)। तु० की० 'आङ्गिरसे युगे', (१२. ३३५, ५४)।

अङ्गिरःसुत = बृहस्पति (१२.२८१, २९)।

अङ्ग्रिक, विश्वामित्र का पुत्र था ('आंग्रिको नैकदृक्चैव', १३.४, ५४)।

१. अचल, धृतराष्ट्र का साला और शकुनि का भाई (२.३४,७ : 'अचलो वृषकश्चैव कर्णश्च रथिनां वरः') जो युधिष्ठिर का राजसूय देखने आया था। दुर्योधन का एक महारथी ('अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरा-वुभौ…गान्धारमुख्यौ', ५.१६८, १.२)। 'वृषकाचलौ', ७.३०,२.९ (इयालौ तव); महाभारत युद्ध के १२ वें दिन अर्जुन ने इसका वध किया (७.३०, ११)। 'वृषकाचलौ' (८.५, ४१)। युद्ध में मारे गये अन्य लोगों के साथ इसका भी अग्नि-संस्कार किया गया (श्राद्धपर्व : ११.२६, ३५)। युद्ध में मृत अन्य लोगों के साथ इसे भी व्यास ने गंगा से बुला कर उस समय धृतराष्ट्र और गान्धारी को दिखाया था जब यह दोनों अपने जीवन के अन्तिम दिनों में व्यास के आश्रम में पधारे थे (पुत्र-दर्शनपर्व : १५.३२,१२)।

२. अचल, स्कन्द का एक पार्षद (गदायुद्धपर्व : ९.४५,७४)।

३. अचल, विष्णुसहस्रनाम में आने वाला भगवान् का नाम (दान-धर्मपर्व : १३.१४९, ९२)।

४. अचल, नारद द्वारा स्तुत्य भगवान् के दो सौ नामों में से १७२ वाँ नाम (मोक्षधर्मपर्व : १२.३३८)।

अचला : स्कन्द की अनुचरी मातृका (९.४६, १४)।

अचलेन्द्र (=स्कन्द) : (मार्कण्डेयसमस्यापर्व : ३.२३२, १६)।

अचलोपम = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अचिन्त्य = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. अचिन्त्य = विष्णु : १३.१४९, १०२ (सहस्र नामों में से एक)।

अच्युत : (क) भगवान् श्रीकृष्ण का एक नाम : १.२३४, १६ (अच्युतार्जुनौ); २.२४, २७; ५.१३७, ६; ७.८४, ९ (युयुधानाच्युतार्जुनाः); १५०,९; १७२,२०; ८.३०,४१ (अच्युतार्जुनौ); १२.५०, ५ (अच्युत-युधिष्ठिरौ); १३.१४७, ६०। विष्णु को कृष्ण के साथ समीकृत किया गया है (तु० की०, केशवः, यथा, ३.१४९, ३४); ३.१४९, २४; १३.१४९, २४. ४८.७२।

(ख) एक विशेषण (जहाँ इससे उद्दिष्ट व्यक्ति का प्रसंग में स्पष्ट और विशेषतः अक्सर सम्बोधन के रूप में, उल्लेख है) के रूप में अनेक व्यक्तियों के लिये व्यवहृत हुआ है, जैसे : कृष्ण, विष्णु, बलराम, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, दुर्योधन, द्रोण, अश्वत्थामा, भीष्म, जनमेजय, अयोध्या के राजा परिक्षित (३.१९२,२८), आपव (११.४९,४२), शिव (१०. ७,५५ : रुद्रं), स्कन्द (९.४४,३१ : 'कुमारवरम् अच्युतं'), उच्चतम देवता (१२.३०१,१०४ : 'ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमच्युतम्'; ३४८, ६६ : 'देवं परमकं ब्रह्म श्वेतं चन्द्राभमच्युतम्')।

अच्युतस्थल—वर्णसंकरजातीय अंत्यजों के निवास-स्थान, एक प्राचीन ग्राम, का नाम (३.१२९,९)।

अच्युतानुज—भीमसेन : (४.८,६)।

अच्युतायुस्, एक योद्धा जिसका सदैव श्रुतायुस् के साथ साथ उल्लेख है : यह लोग अर्जुन पर आक्रमण (७.९३, ७.११) और उनको घायल (७.९३,१२) करते हैं; किन्तु अन्त में अर्जुन इनका वध कर देते हैं (७.९३,२४); इनके पुत्रों (नियतायुस् और दीर्घायुस्) ने अर्जुन से इनका प्रतिशोध लेना चाहा किन्तु अर्जुन ने इन दोनों का भी वध कर दिया (७.९३,२८); ७.९४,३० (जयद्रथवधपर्व); ८.७२,२० (कर्णपर्व); ९.२,१९.३५ (शल्यपर्व) ।

१. अज (अजन्मा) = कृष्ण २.१३,३७;३.१२,२२;५.७०,८ (न जायते जनित्राऽयम्, अजस् तस्माद्); ५.१७१, १२ (अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ); १२.४७, ५८; ३४२, ७४; ३४६, २१ ।

२. अज = सूर्य (३.३,१६) ।

३. अज = शिव (१०.७,३; १४.८,२१.३१;१३.१७,४६) ।

४. अज = ब्रह्मा (१२.२३२,२६;२३९,३३;२४०,३५) ।

५. अज = विष्णु (१२.३४०,१०१;१३.१४९,२४.३५.६९, विष्णु के सहस्र नामों में से एक) ।

६. अज—जह्नु का पुत्र (१२.४९, ३) ।

७. अज—एक राजा (१३.११५, ७५) ।

८. अज (विशेषण)—१२.२३६, २० (तस्मिन्नुपरतेऽजोऽस्य पीतशस्त्रः प्रकाशते); १२.३०२, १८; ३२१, २; ३३४, २५; ३३८, ४ ।

९. अज (**जाः**), बहु०—ऋषियों के एक वर्ग का नाम (१.२११, ५; १२.२६, ७) ।

अजक, शाल्व के रूप में अवतरित एक असुर का नाम है (१.६७, १६.१७ : 'अजकस्त्ववरो राजन्य आसीद्वृषपर्वणः । स शाल्व इति विख्यातः पृथिव्यामभवन्नृपः ॥' ; (१.६५,२४) ।

अजगर, एक विशालकाय सर्प का नाम है जो पूर्व जन्म में नहुष था और अगस्त्य के शाप से सर्प बनकर भूमि पर गिर पड़ा था । इसी ने भीम को पकड़ा था (३.१७८, २८; १७९, १०-२४) । इसका युधिष्ठिर के साथ संवाद (३.१८० और १८१) ।

अजनाभ, एक पर्वत का नाम है (१३.१६५, ३२) ।

१. अजमीढ एक प्राचीन राजा का नाम (१.५५, ५ : 'अजमीढस्य यज्ञः') । यह सुहोत्र द्वारा ऐक्ष्वाकी के गर्भ से उत्पन्न सोमवंशी क्षत्रिय थे (१.९४, ३०.३१) ।

२. अजमीढ—यह विकुण्ठन और सुदेवा दाशार्ही के पुत्र थे (१.९५, ३६.३७) । देखिये १३.४, २; १८, १९, भी । १.७५, १ में **आजमीढ** = अजमीढ ।

३. अजमीढ = युधिष्ठिर : १.५५, ६; १९१,२०; २.४५, ४१; १३५, ६; ५.२, १०; २२, ६; ६.८५, ३१; ८.६५, ३; १०.१०, २९; १३.१८, ७६; ७७, ३४ ।

४. अजमीढ = धृतराष्ट्र : २.७५, ६ (?); ५.३६, ७३; ६७, ६; ७.१४०, २२.२४; ८.८३, १२ ।

अजवक्त्र, स्कन्द का एक सैनिक था (९.४५, ७५) ।

अजविन्दु, सुवीरों के वंश में उत्पन्न एक कुलाङ्गार राजा का नाम (५.७४, १४) ।

अजातशत्रु = युधिष्ठिर : ६.८५, १९; २.१३, ९ ।

१. अजित, एक प्राचीन राजा का नाम है (१.१, २२६) ।

२. अजित = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अजितशत्रु—२.११, २४ (ब्रह्मा की सभा में) ।

अजेय, एक प्राचीन राजा का नाम है (१.१, २३४) ।

अजैकपाद्, स्थाणु के पुत्र, रुद्रों में से एक का नाम है (१.६६, २; १२३, ६८) । 'अजैकपादहिर्बुध्न्यौ रक्ष्यते धनदेन च', (५.११४, ४) । तीन लोकों के अधिपति देवताओं के अन्तर्गत इसका उल्लेख है (१२.२०८, १९) । = शिव के सहस्र नामों में से एक (१३.१७, १०३) । तीन लोकों के अधिपति, ग्यारह रुद्रों में से एक (१३.१५०, १२) ।

अजोदर, स्कन्द का एक सैनिक था (९.४५, ६०) ।

१. अञ्जन, एक पर्वत का नाम है (२.७८, १५) ।

२. अञ्जन, पातालवासी एक हाथी का नाम है जो सुप्रतीक नामक हाथी के वंश में उत्पन्न हुआ था (५. ९९, १५) । घटोत्कच के साथी राक्षस की सवारी में प्रयुक्त एक दिग्गज (६.६४, ५७) । किरातों के पास अञ्जन के कुल में उत्पन्न हुए ऐसे हाथी थे जिनका स्वभाव अत्यन्त कठोर था; इन्हें युद्ध की अच्छी शिक्षा मिली थी । इनके गण्डस्थल और मुख से मद की धारा बहती रहती थी, और यह सब सुवर्णमय कवचों से विभूषित थे; (७.११२, ३३-३४) । अञ्जन कुल के अनेक हाथियों के वध का उल्लेख (७.१२१, २५) ।

अञ्जनक— ७.११२, १७ : 'कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः । आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥'

अञ्जनपर्वन्, घटोत्कच के पुत्र का नाम है जो युधिष्ठिर के मित्रों में था (५.१९४, २०) । 'पौत्रेण भीमसेनस्य' (७.१५६, ८१; देखिये १५६, ८३.८७ : घटोत्कचसुतम् ; १५६, ८९) अश्वत्थामा द्वारा इसका वध (७.१५६, ९०) ।

अञ्जनाभ एक ऐसे पर्वत का नाम है जिसके नाम का प्रातःकाल के समय उच्चारण करने से पाप दूर हो जाता है (१३.१६६, ३२) ।

अञ्जलिकावेध, गजराज को वश में करने की उस विद्या का नाम है जिससे भीमसेन परिचित थे (७.२६, २३) ।

अञ्जलिकाश्रम, एक ऐसे तीर्थ का नाम है जहाँ शाक का भोजन करते हुए चीरवस्त्र धारण कर कुछ समय तक निवास करने से कन्याकुमारी तीर्थ के दस बार सेवन का फल प्राप्त होता है (१३.२५, ५२) ।

अटविक (**काः**), बहु०—९.३२, ४ (पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका) ।

अटवी, सहदेव द्वारा विजित एक नगर का नाम है (२.३१, ७२) ।

अटवीशिखर, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६.९, ४८) ।

अठिद, दक्षिणदिशा में स्थित एक जनपद का नाम है (६.९, ६४) ।

अडम्बर, स्कन्द के एक सखा का नाम है (९.४५, ३९) ।

अणिमत्, वरुण के राजप्रासाद के नागों में से एक का नाम है (२.९, ९) ।

अणिमन् (सूक्ष्मता)—शम्भु के गुणों के अन्तर्गत इसका उल्लेख (१२.३०२, १६) । शम्भु प्रजापति के गुणों के अन्तर्गत इसका उल्लेख (१२.३१२, १३) ।

अणी, शूल के अग्रभाग का नाम है । इसको अपने शरीर के भीतर धारण किये हुए विचरने के कारण ही माण्डव्य ऋषि का नाम 'अणीमाण्डव्य' पड़ गया (१.१०८, ८) ।

अणीमाण्डव्य एक ऋषि का नाम है । 'धर्मस्य नृपु संभूतिरणीमाण्डव्यशापजा', (१.२, १००) । "पूर्वकाल की बात है, वेदार्थों के ज्ञाता और महान् यशस्वी महर्षि भगवान् अणीमाण्डव्य चोर न होते हुए भी चोरी के संदेह से शूली पर चढ़ा दिये गये । परलोक में जाने पर उन महायशस्वी महर्षि ने पहले धर्म को बुलाकर इस प्रकार कहा, 'धर्मराज ! पहले मैंने कभी बाल्यावस्था के कारण सींक से एक पक्षी के बच्चे का भेदन कर दिया था । मुझे केवल एक यही पाप स्मरण है । अपने किसी दूसरे पाप का मुझे स्मरण नहीं । मैंने अगणित तप किया है, फिर उस तप ने मेरे छोटे से पाप को क्यों नष्ट नहीं कर दिया ? ब्राह्मण का वध समस्त प्राणियों के वध से बड़ा है । तुमने मुझे शूली पर चढ़वाकर यही पाप किया है, अतः तुम पापी हो और तुम्हें पृथ्वी पर शूद्रयोनि में जन्म लेना पड़ेगा ।' अणीमाण्डव्य के इस शाप से धर्म भी शूद्रयोनि में उत्पन्न हुए (१.६३, ९२-९६) ।" युधिष्ठिर द्वारा मय-निर्मित सभा भवन में प्रवेश करने के समय उपस्थित महर्षियों में यह भी थे (२.४, १२) ।

अणीमाण्डव्योपाख्यान (म)—"प्राचीनकाल में माण्डव्य नामक एक धैर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ, और तपस्वी ब्राह्मण थे। वह अपने आश्रम के द्वार पर अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाये मौन व्रत धारण करके तपस्या करते थे। एक दिन कुछ लुटेरे चोरी किया हुआ सामान महर्षि के आश्रम में रखकर भय के कारण प्रजा-रक्षक सेना के आने के पहले ही भाग कर कहीं छिप गये। उनके छिप जाने पर जब रक्षक सेना वहाँ पहुँची तो उसने महर्षि को देखकर उनसे चोरों के भागने का मार्ग पूछा। रक्षकों के इस प्रकार पूछने पर भी महर्षि ने भला बुरा कुछ भी नहीं कहा। तब उन राज-पुरुषों ने उस आश्रम में ही चोरों को खोजना आरम्भ किया और वहाँ छिपे हुये चोरों तथा चोरी के माल को भी देख लिया। इस पर रक्षकों को इन महर्षि पर भी चोरी का सन्देह हुआ जिससे उन्होंने महर्षि को राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा की आज्ञा से रक्षकों ने महर्षि माण्डव्य को शूली पर चढ़ा दिया। धर्मात्मा महर्षि माण्डव्य उस शूल के अग्रभाग पर बैठे रहे और भोजन न मिलने पर भी उनकी मृत्यु नहीं हुई। शूली की नोक पर तपस्या करने वाले उन महात्मा से प्रभावित होकर तपस्वी मुनियों को अत्यन्त सन्ताप हुआ और वे रात में पक्षियों का रूप धारण करके वहाँ उड़ते हुये आये और माण्डव्य से इस प्रकार शूल पर बैठकर कष्ट सहन करने का कारण पूछा (१.१०७)।" "माण्डव्य के जीवित रहने का समाचार सुनकर राजा ने शूली पर बैठे हुये उन मुनिश्रेष्ठ को प्रसन्न करने का उपाय किया। राजा ने उनसे विधिवत् क्षमा माँगी; उन्हें शूली से नीचे उतरवाकर शूल के अग्रभाग के सहारे उनके शरीर के भीतर से शूल को निकालने के लिये खींचा। खींच कर निकालने में असमर्थ होकर राजा ने उस शूल को मूलभाग में ही काट दिया। तब से वह मुनि शूलाग्र भाग को अपने शरीर के भीतर धारण किये हुये ही विचरने लगे। इस अत्यन्त घोर तपस्या के द्वारा महर्षि ने ऐसे पुण्यलोकों पर विजय पाई जो दूसरों के लिये दुर्लभ हैं। शूल के अग्रभाग को शरीर में धारण किये रहने के कारण ही मुनि का नाम अणीमाण्डव्य पड़ गया, क्योंकि शूल के अग्रभाग को अणी कहते हैं। अणीमाण्डव्य ने यह व्यवस्था दी कि धर्मशास्त्र के अनुसार जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालक जो कुछ भी करेगा उसमें अधर्म नहीं होगा क्योंकि उस समय तक बालक को धर्मशास्त्र के आदेश का ज्ञान नहीं हो सकेगा; और चौदह वर्ष की आयु तक किसी को भी पाप नहीं लगेगा। (१.१०८)।"

अणीयसाम् अणीयान् = कृष्ण।

अणु = शिव (सहस्र नामों में से एक), और विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अणुह, प्राचीन काल के एक व्यक्ति का नाम है (१.१, २३२)।

अण्ड = शिव (सहस्र नामों में से एक), सूर्य।

अण्डज—ब्रह्मा का छठा जन्म ब्रह्माण्ड से हुआ था अतः उसे अण्डज कहते हैं ('अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम्', १२.३४७, ४२; देखिये ३४८, ४४ भी)।

अण्डजाः = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अण्डधर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अण्डनाशन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतन्द्रित = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतपन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतिकाल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतिकृच्छ्र = महापुरुष।

अतिदीप्त = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतिधूम्र = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अतिबल—वायु ने कार्त्तिकेय को इस नाम का एक सेवक प्रदान किया था (९.४५, ४४)।

२. अतिबल, अनङ्ग के पुत्र का नाम है जो नीतिशास्त्र का ज्ञाता होते हुये भी विशाल साम्राज्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् इन्द्रियों का दास बन गया था (१२.५९, ९२)।

अतिबाहु, प्राधा के चार गन्धर्वसत्तमाः पुत्रों में से एक का नाम है (१.६५, ५१)।

अतिभीम, तप नामधारी पाञ्चजन्य अग्नि के पुत्र हैं जो पन्द्रह उत्तरदेवों अथवा अग्नि विनायकों में से एक थे (३.२२०, ११)।

अतियम, वरुण द्वारा स्कन्द को प्रदत्त दो पार्षदों में से एक का नाम है (९.४५, ४५)।

अतियशस् = कृष्ण (१२.३४१, ११)।

अतिरथ, पुरुवंशी राजा मतिनार के तृतीय पुत्र का नाम है (१.९४, १४)।

अतिलोमा, एक असुर का नाम है जिसका कृष्ण ने वध किया था (२.३८, २९ के बाद गीता प्रेस संस्करण में दाक्षिणात्य पाठ, पृ० ८२५ के प्रथम कॉलम में)।

अतिवर्चस्, हिमवान् द्वारा अश्विकुमार को प्रदत्त दो पार्षदों में से एक का नाम (९.४५, ४६)।

अतिवृद्ध = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अतिशृङ्ग, विन्ध्य द्वारा अश्विकुमार को प्रदान किये गये दो पार्षदों में से एक का नाम है (९.४५, ४९)।

अतिषण्ड, बलराम जी के मुख से निकले हुए श्वेत-वर्ण विशालकाय सर्प का स्वागत करनेवाले नागों में से एक का नाम है (१६.४, १६)।

अतिसार—देखिये **अभिसार**।

अतिस्थिर मेरु द्वारा कार्त्तिकेय को प्रदत्त दो पार्षदों में से एक का नाम (९. ४५, ४८)।

१. अत्रि, एक ब्रह्मर्षि का नाम है (१.२१, १३)। यह ब्रह्मा के मानस पुत्र, छः महर्षियों में से एक थे (१.१६५, १०; ६६, ४)। इनके अनेक पुत्र हुए जो सभी सिद्ध और महर्षि थे (१.६६, ६)। नीलकण्ठी के अनुसार इनके पुत्र इस लोक में विदुर के रूप में उत्पन्न हुए (१.६७, ८६ पर नीलकण्ठी)। 'यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रणष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम', (१.१२३, ५१)। पराशर के राक्षस-सत्र की समाप्ति कराने की इच्छा से यह पराशर के पास आये थे (१.१८१, ८)। ब्रह्मा की सभा में उपस्थित ऋषियों के अन्तर्गत इनका भी उल्लेख है (२.११, १९)। 'वसिष्ठभृग्वत्रिसमैस्तापसैरुपशोभितम्', (३.६४, ६२)। ब्राह्मण की महिमा के विषय में अत्रि मुनि की प्रशंसा, गौतम और अत्रि का संवाद तथा महाराज पृथु से अत्रि के उपहार आदि ग्रहण करने का उल्लेख (३.१८५)। अत्रि को जब प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा हुई तब उन्होंने अग्नियों को ही अपने हृदय में धारण किया, जिससे उनके शरीर से विभिन्न अग्नियों का प्रादुर्भाव हुआ (३.२२२, २८)। 'अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः', (७.१४४, ४)। द्रोणाचार्य को ब्रह्मलोक ले जाने की इच्छा से पधारने वाले लोगों में से एक यह भी थे (७.१९०, ३३)। पूर्वकाल में सोम ने जो राजसूय यज्ञ किया था उसमें अत्रि ने ही होता का कार्य सम्पन्न किया था (९.४३, ४७)। स्कन्द के अभिषेक के समय पधारने वाले लोगों में एक यह भी थे (९.४५, १०)। ब्रह्मा के पुत्रों में से एक के रूप में इनका उल्लेख (१२.१६६, १६)। वैदिक धर्म का पालन करने वाले लोगों के अन्तर्गत इनका उल्लेख (१२.१६६, २३)। ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक के रूप में इनका उल्लेख (१२.२०७, १७; २०८, ४)। 'अत्रिवंशसमुत्पन्नो ब्रह्मयोनिः सनातनः', (१२.२०८, ६)। 'अत्रेः पुत्रश्च भगवांस्तथा सारस्वतः प्रभुः', (१२.२०८, ३१)। 'महर्षिभगवानत्रिर्वेद तच्छुकसंभवम्', (१२.२१४, २३)। वेद की ऋचाओं द्वारा विष्णु की स्तुति करके सिद्धि प्राप्त करने वाले महर्षियों में एक यह भी थे (१२.२९२, १६)। इक्कीस प्रजापतियों में से एक (१२.३३४, ३५)। चित्रशिखण्डी सात प्रसिद्ध ऋषियों में से एक यह भी थे (१२.३३५,२९)।

उन आठ प्रकृतियों में से एक यह भी हैं जिन पर सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं (१२.३४०, ३४)। ब्रह्मा के मानस पुत्रों के अन्तर्गत इनका उल्लेख (१२.३४०, ६९)। अत्रि की पत्नी अनसूया ने एक समय रुष्ट होकर अपने पति का परित्याग कर दिया और मन में यह संकल्प करके कि 'मैं किसी प्रकार पुनः अत्रि के वशीभूत नहीं होऊँगी', महादेव की शरण में चली गई; महादेव ने अनसूया को यह वर दिया कि उसे अत्रि के सहयोग के बिना ही एक पुत्र प्राप्त होगा (१३.१४, ९५, ९८)। भीष्म को देखने के लिये उपस्थित महर्षियों में एक यह भी थे (१३.२६, ४)। 'इत्येवं भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत्', (१३.६५, १)। 'इमं तु देशं मुनयः पर्युपासन्ति नित्यदा। ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगुरत्रिर्वृषाकपिः ॥', (१३.६६, २३)। कुश-समूहों से उत्पन्न ब्रह्मर्षियों में से एक यह भी थे (१३.८५, १०८)। 'स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान्', (१३.९१, ४)। 'ततः सञ्चिन्तयामास वंशकर्त्तारमात्मनः। ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः॥ अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम्। भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥' (१३.९१, १८–१९)। 'इत्येवमुक्त्वा भगवान्स्ववंश्यं तमृषिं पुरा। पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥', (१३.९१, ४५)। समाधि द्वारा सनातन ब्रह्मलोक प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विचरण करने वाले ऋषियों के अन्तर्गत इनका उल्लेख (१३.९३, २१)। 'गुरूणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत्', (१३.९३, ४१)। 'अथात्रिप्रमुखा राजन् वने तस्मिन्महर्षयः। व्यचरन् भक्षयन्तो वै मूलानि च फलानि च ॥' (१३.९३, ६२)। 'अत्रिरुवाच' (१३.९३, ६६)। 'अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो वचनमब्रवीत्' (१३.९३, ८५)। 'अत्रिरुवाच' (१३.९३, ८६.११७)। पश्चिम दिशा में रहने वाले वरुण के सात ऋत्विजों में से इनके पुत्र भी एक थे (१३.१५०, ३७)। उत्तरदिशा में रहने वाले कुबेर के सात ऋत्विजों में एक यह भी थे (१३.१५०, ३८)। सदैव गायत्री मंत्र का सेवन करने वाले ब्रह्मर्षियों के अन्तर्गत इनका भी उल्लेख है (१३.१५०, ७९)। अत्रि ने उतथ्य को बुलाकर अपनी यशस्विनी पौत्री भद्रा का हाथ उनके हाथ में दे दिया (१३.१५४, १२)। वायु ने अत्रि के महान् कर्म का वर्णन करते हुये कहा कि, "प्राचीनकाल में एक बार देवता और दानव सब घोर अन्धकार में परस्पर युद्ध कर रहे थे क्योंकि राहु ने अपने बाणों से चन्द्रमा और सूर्य को आहत कर दिया था। तब असुरों से त्रस्त देवताओं की प्राणशक्ति क्षीण हो चली और वे भागकर अत्रि मुनि के पास गये। अत्रि ने देवताओं के निवेदन पर चन्द्रमा और सूर्य का रूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् को अन्धकार-शून्य और आलोकित करते हुये अपने तेज से ही असुरों को दग्ध कर दिया जिससे देवताओं ने अपने पराक्रम से दैत्यों को मार डाला। अतः 'तुम बताओ कि अत्रि से श्रेष्ठ कौन क्षत्रिय है'। (१३.१५६, १.४.७–१३.१४)।" 'अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः। उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ॥ अत्रिर्वसिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान्।' (१३.१६५, ४३.४४)। 'वसिष्ठः कश्यपश्चैव विश्वामित्रोऽत्रिरेव च। मार्गान्सर्वान्परिक्रम्य परिश्रान्ताः स्वकर्मभिः ॥' (१४.३५, २६)।

२. अत्रि, शुक्र के चार असुरयाजक पुत्रों में से एक का नाम है (१.६५, ३७)।

३. अत्रि = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अत्रिभार्या, महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया के लिये प्रयुक्त हुआ है (१३.१४, ९५)।

अत्रिसुत = चन्द्रमा।

अतीन्द्र = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अतीन्द्रिय = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अतुल्य = शिव (सहस्र नामों में से एक), = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अत्युग्र = शिव (१०.७, ९)।

अत्र्यानमस्कर्तृ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अथर्व = शिव (१३.१४, ३०९)। बहु० = अथर्ववेद (१३.९८, ३०)।

१. अथर्वन्, एक ऋषि का नाम है जिन्होंने समुद्र में छिपे हुये अग्नि का पता लगाया था (३.२२२, ८.११.१८.१९.२०; ५.४३, ५०)। 'अथर्वाङ्गिरसौ', (८.३४, ४४)। 'स-बृहस्पतिः', (१३.१४, ३९७)।

२. अथर्वन् = अथर्ववेद। 'ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु' (१२.३४१, ८)। 'पञ्चकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम्', (१२.३४२, ९९)। 'अथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत यः पुष्करमाददाति', (१३.९४, ४४)।

३. अथर्वन् (बहु०) = अथर्ववेद। 'ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वणः', (३.१८९, १४)। 'नैवर्क्षु तत्र यजुष्षु नाप्यथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु', (५.४४, २८)। 'ऋक्सामवर्णाक्षरतो यजुषोऽथर्वणस्तथा', (१२.२३५, १)।

अथर्ववेद—'अथर्ववेदप्रवराः पूगयज्ञियसामगाः', (१.७०, ४०)। 'अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह', (२.११, ३२)। 'अथर्ववेदप्रोक्तैश्च याश्चोपनिषदि क्रियाः', (३.२५१, २४)। 'अथर्ववेदमन्त्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयत्', (५.१८, ५)। 'अथर्ववेदे वेदे च बभूवर्षिः सुनिष्ठितः', (१३.१०, ३८)।

१. अथर्वशिरस् एक उपनिषद् का नाम है (१.७०, ३९; ३.३०५, २०; १३.९०, २९)।

२. अथर्वशिरस्, नारद द्वारा भगवान् नारायण की दो सौ नामों से की गई स्तुति के अन्तर्गत यह ११३ वाँ नाम है।

अथर्वशीर्ष = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अथर्वाङ्गिरस् = अङ्गिरस् (५.१८, ६.८)।

अथर्वाङ्गिरस् = अङ्गिरस् (२.११, २०)। 'अथर्वाङ्गिरसो नाम वेदोऽस्मिन् वै भविष्यति', (५.१८, ७)। 'अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः', (८.६९, ८५)। 'कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां', (८.९१, ४८; ९.१७, ४४)।

अथर्वाङ्गिरसः (बहु०) ऋषियों के एक वर्ग का नाम है (२.११, २०)।

अथर्वाङ्गिरसाः 'यजुर्ऋक्सामभिर्जुष्टमथर्वाङ्गिरसैस्तथा' (१२.३३५, ४०)।

अथर्वाण = अथर्ववेद (१२.३४२, १००)।

अथिद—देखिये **अलिन्द**।

अदम्भ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अदान्तनाशन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अदिति, कश्यप को विवाहित, दक्ष की १३ कन्याओं में से एक का नाम है—इसके पुत्र बारह आदित्य हुये जो लोकेश्वर हैं (१.६५, १२.१४; १.६६, १३)। इसके इन्द्र आदि बारह पुत्रों का उल्लेख (१.६६, ३६)। 'अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाभूदभिवर्धिता', (१.१२३, ३९)। 'पाञ्चाली सुषुवे वीरानादित्यानदितिर्यथा', (१.२२१, ८०)। ब्रह्मा की सभा में इसके उपस्थित होने का उल्लेख (२.११, ३९)। 'अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन', (३.१२, २५)। पूर्वकाल में मैनाक पर्वत के कुक्षि भाग में स्थित विनशन नामक तीर्थ में अदिति ने पुत्रप्राप्ति के हेतु साध्य देवताओं के उद्देश्य से ब्रह्मौदन तैयार किया था (३.१३५, ३; तु० की० 'अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्', तैत्तिरीय संहिता ६.५, ६, १; और महाभारत १२.३४२, ५६)। 'अदिताः', अर्थात् विष्णु (३.२५४, २७)। इसने एक सहस्र वर्ष तक गर्भवती रहने के पश्चात् विष्णु को जन्म दिया (३.२७२, ६२)। 'विष्णुनाश्वशिरः प्राप्य तथाऽदित्यां निवत्स्यता', (३.३१५, १४)। प्राग्ज्योतिषपुर में निवास करने वाले भूमिपुत्र महाबली नरकासुर ने अदिति के सुन्दर मणिमय कुण्डल का अपहरण कर लिया था जिसे श्रीकृष्ण ने पुनः प्राप्त कर अदिति को समर्पित कर दिया (५.४८, ८०.८५)। 'अदित्याश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः', (५.९८, १३)। 'अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः', (५.१०५, १६)। 'यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा', (५.११७,

१२)। 'तुल्यो महात्मा तव कुन्तिपुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता', (८.६८, १४)। 'अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती', (९.४५, १३)। 'अदित्याः सप्तधा त्वं तु पुराणो गर्भतां गतः। पृश्निगर्भस्त्वमेवैका-स्त्रियुगं त्वां वदन्त्यपि। (१२.४३, ६), जिसकी व्याख्या करते हुये नीलकण्ठी में यह वक्तव्य मिलता है: "सप्तधा विष्णवाख्य आदित्यो वामनश्चेति द्वेधा अदित्यामेव जन्म। ततोऽदिते रूपान्तरेषु पृश्निप्रभृतिषु क्रमात् पृश्निगर्भः परशुरामः दाशरथी रामः यादवौ रामकृष्णौ चेति सर्वेषु गर्भेषु एकएव त्वं न तु प्रतिगर्भं भिन्नः। त्रिषु वर्तमानाद्युगात् पूर्वेषु भवं त्रियुगम्। अन्ये तु धर्मज्ञाने वैराग्यैश्वर्ये श्रीयशसी चेति त्रीणि युग्मानि तद्वन्तमित्याहुः। (१२.४३, ६ पर नीलकण्ठी)।" 'हिरण्यवर्णं यं गर्भमदितेर्दैत्यनाशनम्। एकं द्वादशधा जज्ञे तस्मै सूर्यात्मने नमः॥' (१२.४७, ३८)। 'आदित्यान-दितिर्जज्ञे देवश्रेष्ठान्महाबलान्।', (१२.२०७, २६)। 'अदित्यां द्वादशादित्यः संभविष्यामि काश्यपात्।', (१२.३३९, ८१)। 'पुर्यामदितेर्विप्रियंकरम्', (१२.३३९, ९१)। "अदिति ने देवताओं के लिये इस उद्देश्य से भोजन तैयार किया था कि उसे खाकर देव-गण असुरों का वध करने में समर्थ होंगे। इसी समय बुध अपनी व्रतचर्या समाप्त करके अदिति के पास गये और बोले, 'मुझे भिक्षा दीजिये।' अदिति ने ऐसा विचार करके कि उसके पकाये हुए अन्न को पहले देवताओं को ही खाना चाहिये अन्य को नहीं, उसने बुध को भिक्षा नहीं दी। भिक्षा न मिलने से रोष में भरे हुए उस बुध नामक ब्राह्मण ने अदिति को यह शाप दिया: 'अण्ड नामधारी विवस्वान् के द्वितीय जन्म के समय अदिति के उदर में पीड़ा होगी।' माता अदिति के पेट का वह अण्ड उस पीड़ा द्वारा मारा गया। मृत अण्ड से प्रगट होने के कारण श्राद्धदेवसंज्ञक विवस्वान् मार्तण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुये। (१२.३४२, ५६; तु० की० १३.८३, २६ भी।" 'वसवो अदितिः', (१३.१, ५५)। 'अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः।', (१३.१४६, ६)।

२. अदिति को बालकों को कष्ट देने वाला महाभयंकर रेवती ग्रह कहा गया है ('अदितिं रेवतीं प्राहुर्ग्रहस्तस्यास्तु रैवतः। सोऽपि बालान् महाघोरो बाधते वै महाग्रहः॥', (३.२३०, २९)।

३. अदिति = शिव का एक व्यक्त रूप (सहस्र नामों में से एक)।

अदितिनन्दनौ (= अदिति के दो पुत्र, अर्थात् इन्द्र और विष्णु; 'शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ', १३.१४, ३९२)।

अदितेः पुत्र = वरुण (९.४९, १२)।

अदितेः सुत = सूर्य (सूर्य के १०८ नामों में से ९६ वाँ नाम: ३.३, २५)।

अदीन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अदृढ, जरासन्ध के पुत्र का नाम है (८.७, १८)।

अदृश्य = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अदृश्यन्ती, महर्षि वशिष्ठ की पुत्र-वधू, शक्ति की पत्नी, और पराशर की माता का नाम है। "महर्षि वशिष्ठ जब नाना प्रकार के पर्वतों और बहुसंख्यक देशों में भ्रमण करते हुए पुनः अपने आश्रम के समीप आये तब उस समय उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती भी उनके पीछे हो चली। मुनि को पीछे की ओर से सङ्गतिपूर्वक छहों अङ्गों से अलङ्कृत तथा स्फुट अर्थों से युक्त वेदमंत्रों के अध्ययन का शब्द सुनाई पड़ा। तब मुनि को अदृश्यन्ती के गर्भ में अपने पौत्र की स्थिति को जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ। अपनी वंशपरम्परा का इस प्रकार लोप न होता हुआ देखकर मुनि वसिष्ठ मरने के संकल्प से विरत हो गये और अपनी पुत्रवधू के साथ अपने आश्रम की ओर लौटने लगे। मार्ग में उनका राक्षस रूपी कल्माषपाद से साक्षात्कार हुआ। उस समय अदृश्यन्ती के आग्रह पर वसिष्ठ ने अपनी हुंकार मात्र से उस राक्षस को रोकते हुए अपने योग-प्रभाव द्वारा उसे शाप-मुक्त कर दिया (१.१७७, ११.१३.१९)।" "वसिष्ठ के आश्रम में रहते हुए अदृश्यन्ती ने शक्ति के वंश की वृद्धि करने वाले एक पुत्र को जन्म दिया जिसका महर्षि वसिष्ठ ने पराशर नाम रक्खा। एक दिन ब्रह्मर्षि पराशर ने अपनी माता अदृश्यन्ती के सामने ही वसिष्ठ को 'तात' कह कर पुकारा। अपने पुत्र के मुख से परिपूर्ण अर्थबोधक 'तात' शब्द सुनकर अदृश्यन्ती के नेत्रों में अश्रु भर आये और उसने बालक से इस प्रकार कहा: पुत्र! ये तुम्हारे पिता के भी पिता हैं। तुम इन्हें तात कहकर मत पुकारो (१.१७८, १.५-७)।" 'अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो' (५. ११७, ११)।

१. अद्भुत अग्नि का एक नाम है। 'अद्भुतस्य प्रिया भार्या तस्य पुत्रो विभूरसि', (३. २२२, २७)। 'अद्भुतस्य तु माहात्म्यं यथा वेदेषु कीर्तितम्' (३.२२२, ३०)। 'समाहूतो हुतवहः सोऽद्भुतः सूर्यमण्डलात्', (३.२२४, २८)।

२. अद्भुत = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अद्रि, एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, विश्वगश्व, के पुत्र का नाम है (३. २०२, ३)।

अद्रिका एक अप्सरा का नाम है जो ब्रह्मा के शाप से मछली बनकर यमुना नदी में रहती थी। यमुना के प्रवास काल में इसने बाज पक्षी द्वारा गिराये हुये उपरिचर के वीर्य को ग्रहण कर लिया था। तत्पश्चात् १०वाँ मास आने पर मत्स्य-जीवी मल्लाहों ने उस मछली को जाल में फँसा लिया और उसके उदर को चीर कर एक कन्या और एक पुरुष को बाहर निकाला (१.६३, ५८-६०)। अन्य अप्सराओं के साथ यह भी अर्जुन के जन्म के समय नृत्य और गायन करती है (१.१२२, ६१)।

अद्रिजा एक नदी का नाम है (१३.१६५, २२)।

अधन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अधर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अधर्म की उत्पत्ति उस समय हुई जब प्रजा भूख से पीड़ित हो भोजन की इच्छा से एक दूसरे को मारकर खाने लगी। यह समस्त प्राणियों का नाश करने वाला है। इसकी स्त्री निर्ऋति हुई जिससे सदैव पापकर्म में रत रहने वाले भय, महाभय, और मृत्यु नामक तीन भयंकर राक्षस-पुत्र उत्पन्न हुये (१.६६, ५३-५५)। 'अधर्मेण न नो धर्मः संयुज्यति कथंचन', (१.१२२, ४१)। 'दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मा-दिति श्रुतिः', (१२.९०, २६)। 'स यथा दर्पसहितमधर्मं नानुसेवते', (१२.९०, २८)।

अधर्महन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अधर्षण = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अधिदेव = कृष्ण (१३.१५८, ३०)।

अधिदैव (देवताओं के अधिपति)—'अधिदैवे नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेश्वरेश्वर', (१२.२५७, ११)।

अधिरथ, चम्पा के निकट रहनेवाले और धृतराष्ट्र के मित्र एक सूत का नाम है। "यह राधा का पति और कर्ण का पालक पिता था। यह कर्ण को वसुषेण के नाम से पुकारता था और उसे द्रोण द्वारा शिक्षित कराने के लिए हस्तिनापुर भेजा था (१.१११, २३-२४)।" कर्ण के अभिषेक के समय यह कर्ण को पुकारता हुआ रङ्गभूमि में आया और स्नेहविह्वल होकर कर्ण को हृदय से लगा लिया; इसे देखकर पाण्डुकुमार भीमसेन यह समझ गये कि कर्ण एक सूत-पुत्र है (१.१३७, १-५)। इसकी और धृतराष्ट्र की मित्रता का उल्लेख (३.३०९, १)। इसके तथा इसकी पत्नी राधा द्वारा बालक कर्ण की प्राप्ति, राधा द्वारा कर्ण का पालन, तथा हस्तिनापुर में द्रोण के पास कर्ण को शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख (३.३०९)। 'सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद्गृहान्' (५.१४१, ५)। 'तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम्' (५.१४१, ८)। 'कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता', (५.१४५, २; ६.१२२, ९)।

अधिरथि = कर्ण: ३.३१०, २; ५.१४५, १; ६.१२२, ९; ७.३, ८; ३२, ५१.५४.५९; १०५, १२; १३२, ४.२३; १३४, ११.१३.१५.२१; १३५, १.३८; १३७, ८-९.१२; १३८, २७; १३९, ५१.५४.५६-५९.८२. ८९.९५; १४७, ३०; १६७, ११; १८८, १६; ८.८, १०; ९, १५, ६९;

२१, १७; २४, ३६; ३२, ४१; ३६, १८; ४१, १; ४२, १; ४६, ४०; ४८, २; ४९; ३१. ४४; ५१, ६८; ५६, ४३.५०.५४.६२.६७; ६५, २२; ६६, ४६; ६८, १६; ७३, २०१; ७८, २१; ८१, ५४; ८२, ९.११.२०; ८३, १८; ८८, ५; ८९, २.६७.७४.८२.८८; ९०, ५.७५.७८; ९१, ३७; ९२, १; ९४, १३.३२; ९५, ६; ९६, ५९; ११.२३, २।

अधिराज्य, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६.९, ४४)।

अधिरोह = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अधिवङ्ग एक तीर्थ का नाम है, जहाँ पहुँचकर तीर्थयात्री इस शरीर के अन्त में गुह्यलोक में पहुँच कर आनन्द का भागी होता है (३.८४, ११५)।

अधिष्ठान = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अधृत = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अधृष्या एक नदी का नाम है (६.९, २४)।

१. अधोक्षज = कृष्ण (१.२, २४७)। 'ततस्तं निश्चितात्मानं युद्धाय यदुनन्दनः। उवाच वाग्मी राजानं जरासन्धमधोक्षजः॥ (२.२३, १)।' 'नूनमेतत्समादातुं पुनरिच्छत्यधोक्षजः।', (२.४०,११)। 'अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः।', (५.७०, १०)। 'मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भयादर्चति मामिति।', (५.८८, ३)। 'अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः।' (५.१५३, ९)। 'ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः।', (९.६३, ३७)। 'यमेकं बहुधाऽऽत्मानं प्रादुर्भूतमधोक्षजम्।', (१२.४७, ३३)। 'पृथिवी-नभसी चोभे विश्रुते विश्वतोमुखे। तयोः सन्धारणार्थं हि मामधोक्षजमञ्जसा॥', (१२.३४२, ८२, और ८३–८४ वाँ श्लोक भी)। 'इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षजः।', (१३.१४, ६९)। 'प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षय-मधोक्षजः।', (१६.६, ५७)।

२. अधोक्षज = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अधःशिरा, एक दिव्य महर्षि का नाम है जिसने कृष्ण के हस्तिनापुर जाते समय उनसे मार्ग में भेंट की थी (५.८३, ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ में, देखिये गीता प्रेस संस्करण, पृ० २२८८)।

अध्यक्ष—'जगतोऽध्यक्षः', अर्थात् श्रीकृष्ण, १२.४७, ३७।

अध्यात्मानुगत = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनघ एक प्राचीन काल के व्यक्ति का नाम है (१.१, २३४)।

२. अनघ, एक देव गन्धर्व का नाम है जो अर्जुन के जन्मोत्सव में सम्मिलित हुआ था (१.१२३, ५५)।

३. अनघ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

४. अनघ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

५. अनघ = स्कन्द (३. २३२, ५)।

६. अनघ, गरुड़ के पुत्र, एक सुपर्ण का नाम है (५.१०१, १२)।

७. अनघ एक राजा का नाम है (२.८, २१)।

८. अनघ एक देश या जनपद का नाम है (२.३०, ९)।

१. अनङ्ग, कर्दम के एक पुत्र का नाम है जो प्रजारक्षक, साधु तथा दण्डनीति में निपुण था (१२. ५९, ९१–९२)।

२. अनङ्ग = काम, शिव।

अनङ्गा, एक नदी का नाम है (६.९, ३५)।

अनङ्गाङ्गहर = शिव।

१. अनन्त, एक पर्वत का नाम है जो असंख्य चमकीले रत्नों से व्याप्त तथा अपनी विशालता के कारण आकाश के समान अनन्त जान पड़ता था (१.१७, ९)।

२. अनन्त, शेषनाग का नाम है (१.१८, ७–८; ३६, २३–२४)। यह कद्रू के पुत्र थे (१.६५, ४१)। पश्चिम दिशा में इनके निवासस्थान का उल्लेख (५-११०, १८)। कृष्ण ने अपने सम्बन्ध में 'अनन्तश्चास्मि नागानाम्' कहा है (६. ३४, २९)। 'शेषं चाकल्पयद्देवमनन्तं विश्वरूपिणम्। यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम्॥', (६.६७, १३)। रणभूमि में अनेक नागों से घिरे हुये इरावान् ने विशाल शरीर वाले शेषनाग की भाँति बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया (६.९०, ७४)। 'पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च॥', (१३.१४, ३२२) 'नमोऽस्त्वनन्ताय महोरगाय', (१३.१५०, १०)। 'धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च। अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः॥', (१३.१५०, १४१)। बलराम के रूप में अवतरित शेषनाग अनन्त का रसातल प्रवेश (१८.५, २३)।

३. अनन्त स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९.४५, ५७)।

४. अनन्त भगवान् सूर्य का नाम है (३.३, २४)।

५. अनन्त भगवान् श्री कृष्ण का नाम है (५.७०, १४)।

६. अनन्त भगवान् श्री विष्णु का नाम है (१३. १४९, ८३)।

७. अनन्त भगवान् शिव का नाम है (१३.१७, १३५)।

अनन्तगति = महापुरुष।

अनन्तपरिमेय = कृष्ण।

अनन्तभोग, से सम्भवतः अनन्त ही उद्दिष्ट है ('अनन्तभोगो भुजगः क्रीडन्निव महार्णवे', ४.५५, २२)। देखिये महापुरुष भी।

अनन्तरूप = शिव (सहस्र नामों में से एक); विष्णु (सहस्र नामों में से एक); स्कन्द।

अनन्तविजय, युधिष्ठिर के शङ्ख का नाम है (६.२५, १६; ५१, २६; और देखिये महाभारत गी० सं० में ९.६१, ७१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

अनन्तश्री = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनन्ता एक माधव राजकुमारी का नाम है, जो पूरुवंशी जनमेजय की पत्नी थी (१.९५, १२)।

अनन्तात्मन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनन्ताख्य = महापुरुष।

अनभिज्ञेय = कृष्ण।

अनरकतीर्थ एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने से दुर्गति दूर होती है, और जहाँ नारायण आदि के साथ ब्रह्मा नित्य निवास करते हैं (३.८३, १६८)।

अनरण्य, इक्ष्वाकुवंशी एक प्राचीन नरेश का नाम है (१.१, २३६)। यह उन प्राचीन राजाओं में से एक हैं जिन्होंने कार्त्तिक मास में मांस भक्षण का निषेध किया था (१३.११५, ६८)। यह उन राजाओं में से एक हैं जिनके नामों का प्रातः सायं स्मरण करना चाहिये (१३.१६५, ५९)।

अनर्थ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनल (अग्नि) आठ वसुओं में से एक का नाम है, जो शाण्डिली के पुत्र थे : यह स्कन्द के पिता थे (१.६६, १८–२०)।

२. अनल गरुड़ की प्रमुख सन्तानों में से एक का नाम है (५.१०१, ९)।

अनलपुत्र = स्कन्द।

अनलसूनु = स्कन्द।

१. अनला के गर्भ से सात प्रकार के ऐसे वृक्ष उत्पन्न हुये जिनमें पिण्डाकार फल लगते थे। यह क्रोधवशा की नौ पुत्रियों में से एक, सुरभि, की रोहिणी नामक पुत्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी (१.६६, ६१.६७–६९)।

२. अनला, नाग माता सुरसा की पुत्री का नाम है जो वनस्पतियों, वृक्षों, और लतागुल्मों की जननी हुई (महाभारत गी० सं० १.६६, ७० के आगे दाक्षिणात्य पाठ)।

अनलात्मज = स्कन्द।

अनवद्या, कश्यप की पत्नी, दक्षकन्या प्राधा की सात पुत्रियों में से एक का नाम है (१.६५, ४५)। यह स्वर्ग की एक अप्सरा थी जो अर्जुन के जन्मोत्सव के समय अन्य अप्सराओं के साथ नृत्य करने आई थी (१.१२३, ६१)।

अनश्वन्, महाराज कुरु के पौत्र तथा विदुर के पुत्र का नाम है; इन्होंने मगध की राजकुमारी अमृता के गर्भ से परीक्षित को उत्पन्न किया था (१.९५, ४०–४१)।

१. अनादि = कृष्ण।

२. अनादि = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

३. अनादि = महापुरुष (१२.३३८, ४ के बाद १३३ वाँ नाम)।

अनाद्दिनिधन = ब्रह्मा, कृष्ण, पुरुषोत्तम, विष्णु।

अनादि-मध्य-निधन = विष्णु।

अनादि-मध्य-पर्यन्त = कृष्ण।

अनाद्य = कृष्ण।

१. अनाधृष्टि, रौद्राश्व द्वारा मित्रकेशी अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न 'ऋचेयु' अथवा 'अन्वग्भानु' का नाम (१.९४, ८-१२)।

२. अनाधृष्टि, कृष्ण के एक सखा का नाम है (१. २२१, ३०)। यह सात वृष्णिवंशी महारथियों में से एक थे (२.१४, ५८)। यह उपप्लव्य नगर में अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर उसकी माता सुभद्रा के साथ पधारे थे (४.७२, २२)। कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण और अर्जुन को घेर कर चलने वाले अनेक वीरों में एक यह भी थे (५.१५१, ६७)।

३. अनाधृष्टि, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम जिसको आहत करके भीमसेन ने रथ से नीचे गिरा दिया था (६.९६, २७)।

४. अनाधृष्टि, वृद्धक्षेम के उदारचित्त पुत्र का नाम है जिसने युद्धस्थल में कलिङ्गराज की कन्या का अपहरण किया था (७.१०, ५५)। देखिये ७. २५, ५१-५२ भी।

अनाधृष्टिसुत—'अनाधृष्टिसुतस्त्वासीद्राजसूयाश्वमेधकृत्। मतिनार इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः॥' (१. ९४, १३)।

अनाधृष्य, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१.६७, १०४; ११७, १३)।

अनामय = विष्णु (सहस्र नामों में से एक); स्कन्द।

अनालम्ब, एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने से पुरुषमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है (१३.२५, ३२-३३)।

अनिकेत, कुबेर की सभा में उनकी सेवा के लिये सदैव उपस्थित रहनेवाले एक यक्ष का नाम है (२.१०, १८)।

अनिन्दित = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनिमिष, गरुड़ की सन्तानों में से एक का नाम है (५.१०१,१०)।

२. अनिमिष = शिव (सहस्र नामों में से एक); विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनिरुद्ध, प्रद्युम्न के पुत्र का नाम है (२.२, ३५)। युधिष्ठिर के अपनी सभा में प्रवेश करने के समय उपस्थित राजाओं में से एक यह भी थे (२.४, २८)। इन्होंने अर्जुन से शस्त्रविद्या सीखी थी (२.४, ३५)। 'यथाऽनिरुद्धस्य यथाऽभिमन्योर्यथा सुनीथस्य यथैव भानोः।' (३. १८३, २८)। इनकी विष्णुरूपता तथा इनके द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति (६.६५, ७१)। धृतराष्ट्र द्वारा यह कथन कि 'यदि अनिरुद्ध तथा अन्य बलवान् और प्रहार-कुशल वृष्णिवंशी योद्धा महात्मा केशव के बुलाने पर पाण्डव सेना में आ जायँ और समरभूमि में खड़े हो जायँ तो हमारा सारा उद्योग संशय में पड़ जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है', (७.११, २७-३०)। 'अस्मदर्थे च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः। रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः॥' (७. ११०, ५९)। प्रद्युम्न अथवा मन से अनिरुद्ध= अहंकार = ईश्वर की उत्पत्ति (१२.३३९, ३८-४१)। अनिरुद्ध के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति (१२.३३९, ७४)। "जगत् की सृष्टि के लिये इन्हीं महापुरुष और अव्यक्त से व्यक्त की उत्पत्ति हुई जिन्हें सम्पूर्ण लोकों में अनिरुद्ध एवं महान् आत्मा कहते हैं; व्यक्त भाव को प्राप्त हुये इन्हीं अनिरुद्ध ने पितामह ब्रह्मा की सृष्टि की; यह ब्रह्मा सम्पूर्ण तेजोमय हैं और इन्हीं को अहंकार कहा गया है; पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज, ये पाँच महाभूत अहंकार से उत्पन्न हुये; (१२. ३४०, ३०-३२)।" लोकों की सृष्टि करनेवाले प्रभावशाली पुरुष को अनिरुद्ध कहा गया है, (१२. ३४०, ७१)। अनिरुद्ध भगवान् श्रीहरि ने हयग्रीव-रूप धारण करके ब्रह्मा को दर्शन दिया (१२. ३४०, ९१)। "आदि पुरुष ही अनिरुद्ध है। जब प्रलय-रात्रि व्यतीत हुई तब उन अमित तेजस्वी अनिरुद्ध की कृपा से एक कमल प्रकट हुआ, उसी कमल से ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। ये ब्रह्मा भगवान् अनिरुद्ध के प्रसाद से ही उत्पन्न हुये। ब्रह्मा का दिन व्यतीत होने पर क्रोध के आवेश में आये हुये इस देव के ललाट से इनके पुत्र-रूप में संहारकारी रुद्र प्रकट हुये। (१२. ३४१, १४-१८)।" शौनक ने यह पूछा कि अनिरुद्ध-विग्रह में स्थित हुये जगन्नाथ का दर्शन करने के पश्चात् भी नारद जी शीघ्रतापूर्वक नर और नारायण के पास क्यों गये ? (१२. ३४३, ६-७)। "संसार में जो लोग पुण्य और पाप से रहित एवं निर्मल हैं वे मुक्त होकर परमाणु के रूप में सूर्य में प्रवेश कर जाते हैं; फिर उनसे भी मुक्त होकर वे अनिरुद्ध में स्थित होते हैं; फिर मनोमय होकर प्रद्युम्न में प्रवेश करते हैं; इत्यादि; (१२. ३४४, १३-१६)।" "जनमेजय ने यह जानना चाहा कि श्रीहरि ने ब्रह्मा को अनिरुद्ध-रूपी हयग्रीव के रूप में क्यों प्रकट किया था ? इस प्रश्न के उत्तर में वैशम्पायन ने बताया कि प्रलय के समय इस पृथिवी का जल में लय हो गया। उस समय सब ओर अन्धकार ही अन्धकार छा गया। तब तम से जगत् का कारणभूत ब्रह्म (परम व्योम) प्रकट हुआ। तम का मूल अधिष्ठानभूत अमृततत्त्व है। वही मूलभूत अमृत तम से युक्त होकर समस्त नाम-रूपों को प्रकट करता है और विराट शरीर का आश्रय लेकर रहता है। उसी विराट पुरुष को अनिरुद्ध = प्रधान = त्रिगुणात्मक अव्यक्त कहते हैं। इस अवस्था में विद्याशक्ति से सम्पन्न सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि ने योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल में शयन किया और नाना गुणों से उत्पन्न होनेवाली जगत् की अद्भुत सृष्टि के विषय में विचार करने लगे। सृष्टि के विषय में विचार करते हुये उन्हें अपने महत्तत्त्व का स्मरण हो आया जिससे अहङ्कार प्रकट हुआ। यह अहङ्कार ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं जो सम्पूर्ण लोकों के पितामह और भगवान् हिरण्यगर्भ के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह ब्रह्मा अनिरुद्ध की नाभि से निकले कमल से जन्म लेते हैं। (१२. ३४७, १०-२२)।" "मधु और कैटभ नामक दानवों ने चन्द्रमा के समान विशुद्ध, उज्ज्वल प्रभा से विभूषित और गौरवर्ण पुरुष को अनिरुद्ध के रूप में योग-निद्रा में प्रसुप्त देखा। उस समय शेषनाग के शरीर की शय्या निर्मित थी जो ज्वालमालाओं से आवृत प्रतीत होती थी। उसी के ऊपर विशुद्ध सत्त्वगुण से सम्पन्न मनोहर कान्तिवाले नारायण शयन कर रहे थे। उन्हें देख कर वे दोनों दानव अट्टहास करते हुये बात करने लगे, जिससे नारायण की निद्रा भंग हो गई; तदुपरान्त नारायण ने उन दानवों का वध कर दिया; इसी कारण इन्हें मधुसूदन भी कहते हैं (१२. ३४७, ६१-७०)।" ब्रह्म-रुद्र-संवाद : विद्वान् ब्राह्मण महापुरुष को अनिरुद्ध के नाम से पुकारते हैं (१२. ३५१, १९)। "विष्णु ही विश्व के निवासस्थान और निर्गुण हैं। इन्हीं को वासुदेव, जीवभूत, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कहते हैं। (१३. १५८, ३९)।" 'साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः। प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत।' (१६. ३, ४४-४५)।

२. अनिरुद्ध, वृष्णिवंशी एक क्षत्रिय का नाम है जो प्रद्युम्न-पुत्र से भिन्न था; द्रौपदी के स्वयंवर के समय इन दोनों का आगमन हुआ था (१. १८६, १७-१९)।

३. अनिरुद्ध, आश्विन मास में मांस-भक्षण का निषेध करनेवाले राजाओं में से एक (१३. ११५, ६९; गी० सं० में १३. ११५, ६०)।

४. अनिरुद्ध = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनिर्देश्यवपुस् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनिर्विण्ण = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनिल, आठ वसुओं में से एक का नाम है जो प्रजापति (?) अथवा धर्म (?) और श्वासा का पुत्र था (१. ६६, १८)। इसकी भार्या का नाम शिवा है और मनोजव तथा अविज्ञातगति नामक इसके दो पुत्र हैं (१. ६६, २५)। 'पार्थिवं धातुमासाद्य शरीरोऽग्निः कथं भवेत्। अवकाश-विशेषेण कथं वर्तयतेऽनिलः॥' (३. २१३, १)। अनिलानलौ स्कन्द के

अभिषेक के समय पधारे थे (९. ४५, ४)। आठ वसुओं में से एक का नाम (१३. १५०, १६)। तु० की० **वायु।**

२. अनिल = शिव, विष्णु, (सहस्र नामों में से एक)।

३. अनिल, गरुड़ की प्रमुख सन्तानों में से एक का नाम है (५.१०१,९)।

अनिलप्रभव = भीम (देखिये व० स्था०)।

अनिलसम्भव—देखिये अग्नि।

अनिलसारथि—देखिये अग्नि।

१. अनिलात्मज = भीम (देखिये व० स्था०)।

२. अनिलात्मज = हनूमत् (देखिये व० स्था०)।

अनिलाभ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अनिवर्तिन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनीकजित् = कृष्ण (५. ७०, ८)।

अनीकविदारण, जयद्रथ के भ्राता का नाम है (३. २६५, १२)। अर्जुन द्वारा इसके वध का उल्लेख (३. २७१, २७)।

अनीकसाह = कृष्ण (१२. ४३, ८)।

अनीति = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अनील एक नाग का नाम है (१. ३५, ७)।

अनीश = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनु, शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति के मझले पुत्र का नाम है (१. ७५, ३४-३५)। इन्होंने अपने पिता की वृद्धावस्था को ग्रहण नहीं किया (१. ७५, ३८-४४)। शर्मिष्ठा के गर्भ से इनके जन्म का उल्लेख (१. ८३, १०)। ययाति द्वारा अपनी वृद्धावस्था को ले लेने के लिये इनसे प्रस्ताव, इनके द्वारा इस प्रस्ताव की अस्वीकृति, और ययाति द्वारा इन्हें यह शाप देना कि यह भी वृद्धावस्था के समस्त दोषों को प्राप्त करेंगे, इनकी सन्तान जवान होते ही मर जायगी, और यह वृद्ध होकर अग्निहोत्र का त्याग कर देंगे (१. ८४, २३-२६)। शर्मिष्ठा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति का, तथा इनकी सन्तानों से म्लेच्छ जाति की उत्पत्ति का उल्लेख (१. ८५, २१. ३४)। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु, तथा पूरु की उत्पत्ति का उल्लेख (१. ९५, ९)।

अनुकम्पक = **अकम्पन** (देखिये व० स्था०)।

अनुकर्मन्, एक विश्वेदेव हैं (१३. ९१, ३२)।

अनुकारिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अनुकूल = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनुक्रमणिकाध्याय (यः)—'अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम्। इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम्॥' (१. १, १०४)। 'अनुक्रमणिकाध्यायं भारतस्येममादितः। आस्तिकः सततं शृण्वन् न कृच्छ्रेष्ववसीदति॥' (१. १. २६२)।

अनुक्रमणिकापर्वन्, आदिपर्व में प्रथम अध्याय-पर्यन्त एक अवान्तर-पर्व का नाम है। लोमहर्षण के पुत्र सूत उग्रश्रवा (सौति) ने व्यास द्वारा रचित महाभारत का परिक्षित्-पुत्र जनमेजय के नाग-यज्ञ के समय स्वयं व्यास (द्वैपायन) के निर्देशन में ही व्यास के शिष्य वैशम्पायन से श्रवण किया था। तदुपरान्त इन्होंने पवित्र तीर्थों का भ्रमण आरम्भ किया तथा समन्तपञ्चक पहुँचे। इसके पश्चात् यह नैमिषारण्य में चल रहे शौनक के बारह-वर्षीय यज्ञ-सत्र में पधारे, जहाँ इन्होंने परम् ब्रह्म विष्णु की आराधना से आरम्भ करके परम ब्रह्म से उत्पन्न ब्रह्मा, २१ प्रजापतियों, देवों आदि की सृष्टि से लेकर कुरुओं की उत्पत्ति तक के सृष्टि-क्रम का वर्णन करते हुये महाभारत का प्रवचन किया। इन्होंने बताया कि महाभारत का लघु और विस्तृत दोनों ही रूप है। कुछ लोग इस ग्रन्थ का 'मनु' आदि से (अर्थात् १. ७५, १८) से, कुछ लोग आस्तीक पर्व (अर्थात् १. १३, १) से, और कुछ उपरिचर वसु की कथा (अर्थात् १. ६३, १) से आरम्भ मानते हैं। व्यास ने अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्य की शक्ति से इस लोकपावन महाकाव्य (महाभारत) का निर्माण किया तथा ब्रह्माजी के परामर्श से इसे गणेश जी द्वारा लिखवाया। इसके वर्णन के बाद ८८ से ९१ वें श्लोक में महाभारत के १६ पर्वों की गणना कराई गई है। व्यास द्वारा रचित साठ लाख श्लोकों की संहिता में से १,००,००० श्लोकों का आद्यमहाभारत मनुष्य-लोक में प्रतिष्ठित है। इस महाकाव्य को व्यास ने वैशम्पायन को पढ़ाया। वैशम्पायन जी ने जनमेजय के नाग-यज्ञ के बीच-बीच में इसका प्रवचन किया। इन्होंने (वैशम्पायन ने) सर्वप्रथम मुख्यतया धृतराष्ट्र और संजय के बीच संवाद के रूप में महाभारत की अनुक्रमणिका का वर्णन किया—धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के लिये संजय ने आरम्भ में पुत्र शोक करने वाले २४ राजाओं की उस कथा का वर्णन किया जिसे पूर्वकाल में नारद ने शैब्य को सुनाया था, तथा इसके बाद उन अन्य ६६ राजाओं की कथा का वर्णन किया जो सब मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। जो महाभारत के इस अध्याय (प्रथम : अनुक्रमणिकाध्याय) का श्रवण या अध्ययन करता है वह संकटकाल में दुःख से अभिभूत नहीं होता। यह अध्याय (अथवा अनुक्रमणिकापर्व) महाभारत का मूल शरीर है। जो इसे श्रवण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है (१. १, १-२७५)।

अनुक्रमणी, महाभारत के आदिपर्व के प्रथम अध्याय को कहते हैं ('अनुक्रमण्या यावत्स्यादह्ना राज्या च संचितम्', १. १. २६३)।

अनुगीता—'अनुगीता ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम्'; (१. २, ७९)। तु० की० **अनुगीतापर्वन्।**

अनुगीतापर्वन्, महाभारत के आश्वमेधिकपर्व के अन्तर्गत १६वें से ९२वें अध्याय में आने वाले एक अवान्तरपर्व का नाम है। जनमेजय ने कहा: "शत्रुओं का नाश करके जब श्रीकृष्ण तथा अर्जुन सभाभवन में रहने लगे, तब इन दोनों में क्या वार्तालाप हुआ? वैशम्पायन ने बताया: अपने राज्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने पर अर्जुन अपने दिव्य सभाभवन में श्रीकृष्ण के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन स्वजनों से घिरे हुये ये दोनों मित्र स्वेच्छा से घूमते हुये सभामण्डप के एक ऐसे भाग में पहुँचे जो स्वर्ग के समान सुन्दर था। उस समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, 'देवकीनन्दन! युद्ध के समय आपने मुझे जो ज्ञानोपदेश दिया था वह इस समय विचलित चित्त हो जाने के कारण नष्ट हो गया है। उसी को एक बार पुनः श्रवण करने की मेरी उत्कट इच्छा है। आप शीघ्र ही द्वारका जाने वाले हैं, अतः वह सब विषय मुझे पुनः सुना दें।' अर्जुन का यह कथन कि वह उस ज्ञानोपदेश को भूल गये हैं, श्रीकृष्ण को अप्रिय लगा। श्रीकृष्ण ने उस उपदेश को दुहराने में असमर्थता प्रकट करते हुये भी उस विषय का ज्ञान कराने की दृष्टि से एक प्राचीन इतिहास का वर्णन करना आरम्भ किया: 'एक दिन एक दुर्धर्ष ब्राह्मण ब्रह्मलोक से उतर कर स्वर्गलोक में होते हुये मेरे पास आये। उनका विधिवत् पूजन करने के बाद मैंने उनसे मोक्षधर्म के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने मेरे प्रश्न का जो उत्तर दिया, मैं उसे ही तुमको बताऊँगा जिसे ध्यान से सुनो।' तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण के वचन को बताया। ब्राह्मण ने कहा कि प्राचीन समय में काश्यप नाम के एक धर्मज्ञ और तपस्वी ब्राह्मण एक अन्य सिद्ध ब्राह्मण के पास गये जो धर्मविषयक सम्पूर्ण शास्त्रों को जानने वाला, भूत-भविष्य के ज्ञान में प्रवीण, लोक-तत्त्व ज्ञान में कुशल, सुख-दुःख के रहस्य को समझने वाला, जन्म-मृत्यु के तत्त्वों से परिचित, पाप-पुण्य का ज्ञाता, मुक्त की भाँति विचरने वाला, सिद्ध, शान्तचित्त और अन्तर्ध्यान हो जाने की विद्या का ज्ञाता था। यह ब्राह्मण चक्रधारी सिद्धों के साथ विचरता और उन्हीं के साथ एकान्त में बैठता था। काश्यप इस ब्राह्मण को अपना गुरु मानकर सेवा करने लगे। काश्यप की सेवा से प्रसन्न होकर इस ब्राह्मण ने अपना दृष्टान्त देते हुये परासिद्धि के सम्बन्ध में उपदेश दिया। उसने बताया कि इस लोक में बार-बार जन्म लेने और मृत्यु को प्राप्त होने से घबरा कर उसने परमात्मा की शरण ली तथा लोक-व्यवहार का त्याग कर दिया। अब उसे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गई है, जिसके कारण वह पुनः इस संसार में न आकर ब्रह्मलोक में चला

जायेगा। काश्यप के उत्तम आचरण से सन्तुष्ट होकर उस ब्राह्मण ने काश्यप के अभीष्ट प्रश्नों का उत्तर देना भी स्वीकार कर लिया। (१४. १६)।" श्रीकृष्ण ने कहा : "तदनन्तर काश्यप ने उन सिद्ध महात्मा से अनेक धर्मविषयक प्रश्न पूछे जिनके उत्तर में उन्होंने बताया कि संसारी जीव किस प्रकार दुःखमय संसार से मुक्त होता है; शरीर से छूट कर वह किस प्रकार दूसरे शरीर में प्रवेश करता है; मनुष्य अपने किये हुये शुभाशुभ कर्मों का फल किस प्रकार भोगता है; और शरीर न रहने पर उसके कर्म कहाँ रहते हैं; मृत्यु किस प्रकार होती है; जीव किस प्रकार गर्भ में आकर जन्म धारण करता है (१४. १७)।" "उन्होंने यह बताया कि ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम स्वयं ही शरीर धारण करके स्थावर-जङ्गम, सबकी कर्मानुसार रचना की; उन्होंने प्रधान नामक तत्त्व की उत्पत्ति की जो देहधारी जीवों की प्रकृति कहलाता है; जो व्यक्ति सुख और दुःख दोनों को अनित्य, शरीर को अपवित्र वस्तुओं का समूह, तथा मृत्यु को कर्म का फल समझता है वह घोर और दुस्तर संसार-सागर से पार हो जाता है (१४. १८)।" "फिर उन्होंने यह बताया कि 'किस प्रकार के व्यक्ति संसार-बन्धन से मुक्त होते हैं, योग-विद्या क्या है, जीव किस प्रकार मुक्त होता है, इत्यादि।' श्रीकृष्ण ने बताया कि 'इतना प्रसङ्ग सुना कर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण वहीं अन्तर्ध्यान हो गये; हे अर्जुन! युद्ध के समय भी तुमने रथ पर बैठे-बैठे इसी तत्त्व को सुना था; इस जगत् में कभी किसी भी मनुष्य ने इस रहस्य का श्रवण नहीं किया है; इस धर्म का आश्रय लेकर स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप-योनि के मनुष्य भी परमगति प्राप्त कर लेते हैं; जो छः मास तक निरन्तर योग का अभ्यास करता है उसका योग अवश्य सिद्ध हो जाता है (१४. १९)।" "तदुपरान्त इसी विषय पर पति-पत्नी के संवाद के रूप में एक प्राचीन इतिहास का दृष्टान्त दिया गया है जिसका आश्वमेधिक पर्वान्तर्गत अनुगीतापर्व में 'ब्राह्मणगीता' (देखिये व० स्था०) के नाम से उल्लेख है (१४. २०-३४)।" "ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में अर्जुन द्वारा प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण ने इस विषय पर 'गुरु-शिष्य संवाद' (देखिये व० स्था०) की एक प्राचीन कथा का वर्णन किया। अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने बताया कि वह स्वयं गुरु हैं और मन उनका शिष्य। उन्होंने यह भी बताया कि युद्धकाल में उन्होंने अर्जुन को यही उपदेश दिया था। तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने इन शब्दों द्वारा अर्जुन से विदा लेना चाहा : 'हे अर्जुन! अब मैं पिता का दर्शन करना चाहता हूँ। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं उनके दर्शन के लिये द्वारका जाऊँ।' श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने कहा, 'श्रीकृष्ण! अब हम लोग यहाँ से हस्तिनापुर चलें। वहाँ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से मिलकर और उनकी आज्ञा लेकर आप अपनी पुरी को पधारें।' (१४. ३५-५१)।" वैशम्पायन ने कहा—"श्रीकृष्ण ने दारुक को रथ तैयार करने की आज्ञा दी और जब रथ जुतकर तैयार हो गया तब वह अर्जुन को साथ लेकर हस्तिनापुर के लिये चल पड़े। रथ पर बैठे हुये अर्जुन ने श्रीकृष्ण की विविध प्रकार से स्तुति करते हुये कहा, 'मैंने देवर्षि नारद, देवल, श्रीकृष्णद्वैपायन, तथा पितामह भीष्म के मुख से आपके माहात्म्य का ज्ञान प्राप्त किया है, इत्यादि।' हस्तिनापुर पहुँचने पर इन लोगों ने धृतराष्ट्र के महल में प्रवेश कर, धृतराष्ट्र, विदुर तथा युधिष्ठिर इत्यादि का दर्शन किया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कक्ष में ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल यह लोग मन्त्रियों के साथ बैठे युधिष्ठिर के पास गये। श्रीकृष्ण को विदा देते हुये युधिष्ठिर ने कहा, 'महाबाहु केशव! मुझे आपका जाना इसलिये उचित प्रतीत हो रहा है कि आपने मेरे मामा वसुदेव तथा मामी देवकी (कृष्ण के माता-पिता) को बहुत दिनों से नहीं देखा है। फिर भी द्वारका जाकर आप हम सब को स्मरण रक्खें तथा अपने बन्धु-बान्धवों से मिलने के पश्चात् मेरे अश्वमेध यज्ञ में अवश्य पधारें।' युधिष्ठिर ने इस अवसर पर श्रीकृष्ण को प्रचुर उपहार तथा धन आदि देना चाहा, किन्तु श्रीकृष्ण ने ऐसा कुछ ग्रहण नहीं किया। तदुपरान्त कुन्ती से भली भाँति अभिनन्दित हो तथा विदुर आदि सब से सत्कारपूर्वक विदा लेकर चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण अपने दिव्य रथ पर बैठ कर सुभद्रा सहित हस्तिनापुर से बाहर निकले। उस समय श्रीकृष्ण के पीछे अर्जुन, सात्यकि, नकुल-सहदेव, विदुर तथा भीम आदि भी कुछ दूर तक पहुँचाने के लिये गये। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने समस्त पाण्डवों तथा विदुरजी को लौटा कर दारुक तथा सात्यकि से कहा—'अब घोड़ों को जोर से हांको।' इस प्रकार श्रीकृष्ण आनर्तपुरी द्वारका की ओर उसी प्रकार चल पड़े, मानों प्रतापी इन्द्र अपने शत्रु समुदाय का संहार करके स्वर्ग जा रहे हों (१४. ५२)।" "इस प्रकार द्वारका जाते हुये श्रीकृष्ण को अर्जुन ने बार-बार हृदय से लगा कर विदा किया और तब तक उनकी ओर देखते रहे जब तक रथ आंखों से ओझल नहीं हो गया। इसके बाद श्रीकृष्ण की यात्रा के समय प्रकट हुये अनेक शकुनों का वर्णन है। श्रीकृष्ण ने मरुभूमि के समतल प्रदेश में पहुँच कर मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्क का दर्शन किया। कौरवों के विनाश की बात सुन कर उत्तङ्क का कुपित होना; श्रीकृष्ण का उन्हें शान्त करना; श्रीकृष्ण का उत्तङ्क से अध्यात्मतत्त्व का वर्णन करना; तथा दुर्योधन के अपराध को कौरवों के विनाश का कारण बताना; श्रीकृष्ण का उत्तङ्क मुनि को विश्वरूप का दर्शन कराना और मरुदेश में जल प्राप्त होने का वरदान देना; उत्तङ्क की गुरुभक्ति; गुरुपुत्री के साथ उत्तङ्क का विवाह; गुरुपत्नी की आज्ञा से उत्तङ्क का दिव्य कुण्डल लाने के लिये राजा सौदास के पास जाना; फिर राजा सौदास के कहने से उत्तङ्क का रानी मदयन्ती के पास जाना, और कुण्डल लेकर लौटना; मार्ग में कुण्डलों का अपहृत हो जाना, तथा इन्द्र और अग्निदेव की कृपा से उसे पुनः प्राप्त करके गुरुपत्नी को देना; (१४. ५३-५८)।" जनमेजय के यह पूछने पर कि उत्तङ्क को वरदान देने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने क्या किया, वैशम्पायन ने कहा, "उत्तङ्क को वर देकर श्रीकृष्ण सात्यकि के साथ अपने रथ पर पुनः द्वारका की ओर चल पड़े। मार्ग में अनेकानेक सरोवरों, सरिताओं, वनों और पर्वतों को पार करते हुये वह परम रमणीय द्वारका नगरी में जा पहुँचे। उस समय वहाँ रैवतक पर्वत पर एक अत्यन्त भारी उत्सव मनाया जा रहा था। सात्यकि को लेकर श्रीकृष्ण उसी उत्सव में पधारे। उत्सव के कारण वह पर्वत अद्भुत शोभा पा रहा था। सोने की सुन्दर मालाओं, भाँति-भाँति के पुष्पों, वस्त्रों और कल्पवृक्षों से घिरे हुये उस महान् पर्वत की अपूर्व शोभा थी—इस प्रकार पर्वत की शोभा का विस्तार से वर्णन है। वहाँ दीनों, नेत्र-हीनों, और अनाथों के लिये सुरा-मैरेयमिश्रित भोजन दिये जाते थे। उस समय देवता, गन्धर्व, और ऋषि अदृश्य रूप से श्रीकृष्ण के निकट आकर उनकी स्तुति करने लगे। इन सब से सम्मानित होकर श्रीकृष्ण ने अपने सुन्दर भवन में प्रवेश किया और अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया। विश्राम कर लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने पिता के पूछने पर महायुद्ध की समस्त घटना का वर्णन किया (१४. ५९)।" "वसुदेव ने पूछा कि कौरवों तथा पाण्डवों में किस प्रकार युद्ध हुआ; इत्यादि।" वैशम्पायन ने कहा : अपनी माता की उपस्थिति में भी श्रीकृष्ण ने विस्तारपूर्वक यह बताया कि किस प्रकार कौरव योद्धा युद्ध में मारे गये। वैशम्पायन ने बताया, कि रोंगटे खड़े कर देने वाली इस युद्ध-वार्ता को सुन कर वृष्णिवंशी लोग दुःख तथा शोक से व्याकुल हो गये (१४. ६०)। "पिता के सामने महाभारत युद्ध का वृत्तान्त सुनाते समय श्रीकृष्ण ने अभिमन्युवध का वृत्तान्त जान-बूझ कर छोड़ दिया। परन्तु सुभद्रा ने जब देखा कि उसके पुत्र के निधन का समाचार श्रीकृष्ण ने नहीं सुनाया तो उसकी याद दिलाती हुई वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। अपनी पुत्री को मूर्च्छित होते देख वसुदेव जी भी अचेत होकर धरती पर गिर पड़े। तदनन्तर दौहित्र-वध के शोक से आहत वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण से अभिमन्यु-वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने का आग्रह किया। पिता को इस प्रकार अत्यन्त दुःखी देख कर श्रीकृष्ण ने उन्हें सान्त्वना देते हुये यह वृत्तान्त सुनाया (१४. ६१)।" "वसुदेव तथा

श्रीकृष्ण इत्यादि ने अभिमन्यु का उत्तम श्राद्ध किया। श्रीकृष्ण ने साठ लाख ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन कराया और उन्हें वस्त्र पहना कर इतना धन दिया जिससे उन सब की धनविषयक तृष्णा दूर हो गई। जिस प्रकार श्रीकृष्ण, बलदेव तथा अन्य लोग अत्यन्त दुःखी थे, उसी प्रकार हस्तिनापुर में वीर पाण्डव भी अभिमन्यु से रहित होकर शान्ति नहीं पाते थे। उत्तरा ने पति के दुःख से व्याकुल होकर बहुत दिनों तक भोजन ही नहीं किया, जिससे उसके सम्बन्धियों को उसके गर्भस्थ बालक की चिन्ता होने लगी। उस समय व्यास जी ने वहाँ आकर पृथा, उत्तरा, अर्जुन, और युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुये यह बताया कि उत्तरा का पुत्र श्रीकृष्ण के प्रभाव तथा उनके (व्यास के) आशीर्वाद से पाण्डवों के बाद सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करेगा। उन्होंने यह भी बताया कि वीर अभिमन्यु अपने पराक्रम से उपार्जित किये हुये देवताओं के अक्षय लोक में चला गया है। व्यास के इस प्रकार समझाने पर अर्जुन ने शोक त्याग कर संतोष का आश्रय लिया। उत्तरा का गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति यथेष्ट वृद्धि पाने लगा। तदनन्तर युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा देकर व्यास जी वहाँ से अदृश्य हो गये। व्यास जी का वचन सुन कर युधिष्ठिर ने धन लाने के लिये हिमालय-यात्रा करने का विचार किया (१४. ६२)।" "जनमेजय ने कहा : 'व्यास के इस वचन को सुन कर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में क्या किया? उन्होंने मरुत्त के रत्नों को किस प्रकार प्राप्त किया?' वैशम्पायन ने कहा : व्यास का वचन सुन कर युधिष्ठिर ने अपने सब भ्राताओं को बुला कर उन्हें मरुत्त के स्वर्ण के सम्बन्ध में व्यास, भीष्म, और श्रीकृष्ण के हितकारक वचनों का स्मरण दिलाया। युधिष्ठिर की बात से सहमत होते हुये भीम ने देवाधिदेव महादेव तथा उनके अनुचरों की आराधना करके मरुत्त के धन को लाने का परामर्श दिया, क्योंकि उस धन की रक्षा करने वाले किन्नर भगवान् शङ्कर के प्रसन्न हो जाने पर अधीनता स्वीकार कर लेंगे। भीम का यह कथन सुन कर युधिष्ठिर प्रसन्न हुये। अर्जुन आदि ने भी उन्हीं की बात का समर्थन किया। इस प्रकार रत्न लाने का निश्चय करके पाण्डवों ने ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (ज्योतिष के अनुसार तीनों उत्तरा तथा रोहिणी ही ध्रुव-संज्ञक नक्षत्र हैं। रविवार को ध्रुव बताया गया है। उत्तरा और रविवार का संयोग होने पर अमृत सिद्धि नामक योग होता है; कदाचित् इसी योग में पाण्डवों ने प्रस्थान किया) और दिन में सेना को यात्रा के लिये तैयार होने की आज्ञा दी। तदनन्तर मिष्ठान्न, अपूप, आदि से महेश्वर को तृप्त करने के पश्चात् उनका आशीर्वाद तथा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर और युयुत्सु को राजधानी में छोड़ कर पाण्डवों ने यात्रा आरम्भ की (१४. ६३)।" "यात्रा करते हुये—यात्रा का विस्तृत वर्णन है—युधिष्ठिर उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ मरुत्त का उत्तम द्रव्य संचित था। वहाँ एक सुखद स्थान पर युधिष्ठिर ने तप, विद्या और इन्द्रिय-संयम से युक्त ब्राह्मणों तथा वेद-वेदाङ्ग के पारङ्गत राजपुरोहित अग्निवेश्य (धौम्य) मुनि को आगे रख कर सैनिकों के साथ पड़ाव डाला। अनेक राजाओं, ब्राह्मणों और पुरोहितों ने यथोचित रीति से शान्तिकर्म करके युधिष्ठिर तथा उनके मन्त्रियों को विधिपूर्वक बीच में रख कर छावनी बनाई। उस छावनी में पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण को जाने वाले छः मार्ग तथा नौ खण्ड थे। युधिष्ठिर ने मतवाले गजराजों के रहने के लिये भी पृथक् व्यवस्था की। तदुपरान्त युधिष्ठिर द्वारा कार्यसिद्धि की शुभ लग्न पूछने पर ब्राह्मणों ने उस समय के नक्षत्र तथा उसी दिन को शुभ बताते हुये अपने को केवल जल पीकर रहने तथा युधिष्ठिर आदि को भी उपवास करने का परामर्श दिया। श्रेष्ठ ब्राह्मणों का यह वचन सुन कर समस्त पाण्डव रात में उपवास करके कुश की चटाइयों पर निर्भय होकर सोये। निर्मल प्रभात का उदय होने पर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा (१४. ६४)" : "ब्राह्मण बोले, 'नरेश्वर, अब आप भगवान् शङ्कर का पूजन कीजिये।' ब्राह्मणों की बात सुन कर युधिष्ठिर ने भगवान् शङ्कर को विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पित किया और उनके राजपुरोहित ने विधिपूर्वक संस्कार करते हुये—संस्कारों का विस्तृत वर्णन है—शिव के पार्षदों को उत्तम बलि चढ़ाई। इसके पश्चात् यक्षराज कुबेर, मणिभद्र, तथा अन्यान्य यक्षों और भूतों के अधिपतियों की पूजा की गई। इसके बाद राजा ने ब्राह्मणों को सहस्रों गौयें देकर निशाचारी भूतों को भी बलि अर्पित की। भगवान् शिव तथा उनके पार्षदों की सब प्रकार पूजा करके महर्षि व्यास को आगे किये हुये युधिष्ठिर उस स्थान को गये जहाँ वह रत्न और सुवर्ण-राशि संचित थी। वहाँ उन्होंने कुबेर इत्यादि का एक बार पुनः पूजन करके धन को खुदवाना आरम्भ किया। शीघ्र ही बहुसंख्यक सुवर्णमय पात्र निकल आये जिनमें सुराही, कठौते, कड़ाहियाँ, कलश, आदि अनेक प्रकार के पात्र थे। इन सब को लकड़ी की बड़ी-बड़ी सन्दूकों में रक्खा गया। उस समय युधिष्ठिर के वाहन भी वहाँ उपस्थित थे जिनमें ६०,००० ऊँट, १,२०,००,००० अश्व, १,००,००० हाथी, इतने ही रथ, छकड़े और हथिनियाँ इत्यादि थीं। इन सब वाहनों पर धनराशि लदवा कर युधिष्ठिर ने पुनः महादेव जी का पूजन किया, और तब व्यास जी की आज्ञा लेकर पुरोहित धौम्य को आगे करके हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। उस समय वाहनों पर अत्यधिक बोझ लदा होने के कारण वह प्रतिदिन दो-दो कोस चलकर विश्राम करते चलते रहे (१४. ६५)।" "वैशम्पायन ने कहा : इसी बीच श्रीकृष्ण भी वृष्णिवंशियों को साथ लेकर द्रौपदी, उत्तरा और कुन्ती आदि से मिलने तथा युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये हस्तिनापुर पधारे, जहाँ धृतराष्ट्र तथा विदुर ने उनका स्वागत किया। उत्तरा ने परिक्षित् को जन्म दिया किन्तु ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होने के कारण परिक्षित् चेष्टाहीन और मृतवत् उत्पन्न हुये जिसके फलस्वरूप कुन्ती तथा अन्य सभी स्वजन विलाप करने लगे। उसी समय युयुधान के साथ श्रीकृष्ण भी अन्तःपुर में जा पहुँचे, जहाँ कुन्ती ने उनसे परिक्षित् को जीवित करने का निवेदन किया और यह भी स्मरण दिलाया कि अभिमन्यु ने उत्तरा से कहा था कि उनका पुत्र वृष्णि एवं अन्धकों से धनुर्वेद, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तथा नीतिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करेगा। इस वचन को सुनकर श्रीकृष्ण ने कुन्ती को सहारा देकर बैठाया और उसे सान्त्वना देने लगे (१४. ६६)।" "तदुपरान्त परिक्षित् को जीवित करने के लिये सुभद्रा ने भी विलाप करते हुये श्रीकृष्ण से प्रार्थना की (१४. ६७)।" "सुभद्रा की प्रार्थना के पश्चात् श्रीकृष्ण ने प्रसूति-गृह में प्रवेश किया—प्रसूति-गृह का विस्तृत वर्णन करते हुये यह कहा गया है कि वहाँ सब ओर राक्षसों का निवारण करनेवाली नाना प्रकार की वस्तुयें रक्खी हैं। प्रसूति-गृह में श्रीकृष्ण को देखकर उत्तरा ने भी विलाप करते हुये श्रीकृष्ण से अपने पुत्र को जीवित करने के लिये प्रार्थना की (१४. ६८)।" "विलाप करती हुई उत्तरा उन्मादिनी-सी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसे पृथ्वी पर पड़ी देखकर दुःख से आतुर कुन्ती देवी तथा भरतवंश की अन्य स्त्रियाँ भी फूट-फूटकर रोने लगीं। इस करुण विलाप को सुनकर श्रीकृष्ण ने आचमन करके अश्वत्थामा के चलाये हुये ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने उस बालक को जीवित करने की प्रतिज्ञा करते हुये कहा, 'मैंने कंस और केशी का धर्म के अनुसार वध किया है, इस सत्य के प्रभाव से यह बालक पुनः जीवित हो जाय।' श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर उस बालक में चेतना आ गई और वह धीरे-धीरे अङ्ग-सञ्चालन करने लगा। (१४. ६९)।" "जब श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया तब वह सूतिका-गृह परिक्षित् के तेज से देदीप्यमान होने लगा; समस्त राक्षस भी वहाँ से भाग गये; उसी समय आकाशवाणी ने कृष्ण को साधुवाद दिया; ब्रह्मास्त्र ब्रह्मलोक चला गया; श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्राह्मणों ने स्वस्ति वचन कहे। बालक जीवित देखकर कुन्ती, इत्यादि, अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन सब ने कृष्ण का गुणगान किया। तदनन्तर मल्ल, नट, ज्योतिषी, सूतों और मागधों के समुदाय इत्यादि ने भी कृष्ण का गुणगान किया। श्रीकृष्ण तथा अन्य यदुवंशियों ने उस बालक को नाना प्रकार की बहुमूल्य

भेंट दीं। श्रीकृष्ण ने बालक का नाम परिक्षित्—यहाँ परिक्षित् नाम की व्युत्पत्ति दी गई है—रक्खा। जब परिक्षित् एक मास का हो गया तो उसी समय पाण्डव लोग प्रचुर रत्न-राशि लेकर हस्तिनापुर लौटे। वृष्णिवंशी के प्रमुख वीरों तथा नागरिकों ने उनका स्वागत किया तथा विदुरजी ने पाण्डवों के हित की दृष्टि से देव-मन्दिरों में विविध प्रकार से पूजा करने की आज्ञा दी। उस समय हस्तिनापुर के समस्त राजमार्ग पुष्पों से अलंकृत किये गये थे। नर्तन करते हुये नर्तकों, और गानेवाले गायकों के शब्दों से नगर की अनुपम शोभा हो रही थी। इस प्रकार हस्तिनापुर उस समय कुबेर की अलकापुरी के समान प्रतीत होने लगा—नगर की शोभा का विस्तृत विवरण (१४. ७०)।" "पाण्डवों के समीप आने का समाचार सुनकर श्रीकृष्ण भी अन्य वृष्णिवंशियों के साथ आगे बढ़कर उनकी अगवानी करने के लिये गये। श्रीकृष्ण तथा वृष्णियों से मिलने के पश्चात् पाण्डवों ने उन सब के साथ ही हस्तिनापुर में प्रवेश किया। नगर में आने के पश्चात् पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र का पूजन किया। उन लोगों ने परिक्षित् के पुनरुज्जीवित किये जाने की कथा सुनी और श्रीकृष्ण का पूजन किया। कुछ दिनों के बाद व्यास जी हस्तिनापुर पधारे। पाण्डवों ने उनका भी यथोचित पूजन किया तथा वृष्णि एवं अन्धकवंशी वीरों के साथ उनकी सेवा में बैठ गये। व्यास ने युधिष्ठिर को समस्त पापों का नाश करनेवाला अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा दी। तब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से यज्ञ सम्पन्न कराने का आग्रह किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से स्वयं ही यज्ञ करने का निवेदन करते हुये अपने को किसी भी अन्यकाम पर नियुक्त करने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने यह भी बताया कि युधिष्ठिर द्वारा यज्ञ करने पर भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को भी यज्ञानुष्ठान का फल मिल जायगा (१४. ७१)।" "युधिष्ठिर ने व्यासजी से यज्ञारम्भ के उपयुक्त अवसर पर दीक्षा देने के लिये कहा। व्यास ने कहा कि यज्ञ का समय आने पर वह स्वयं, तथा पैल और याज्ञवल्क्य यज्ञ को सम्पन्न कर देंगे। युधिष्ठिर को दीक्षा के लिये उन्होंने (व्यास ने) चैत्र मास की पूर्णिमा का दिन निश्चित करते हुये कहा कि अश्वविद्या के ज्ञाता सूत और ब्राह्मणों को यज्ञार्थ सिद्धि के लिये पवित्र अश्व की भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। व्यास का आदेश पाकर युधिष्ठिर ने समस्त आवश्यक सामग्री एकत्र कर दी। व्यास ने कहा कि 'स्फ्य' तथा 'कूर्च' स्वर्ण का होना चाहिये, और आज ही शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ-अश्व को सारी पृथ्वी पर घूमने के लिये छोड़ना चाहिये। युधिष्ठिर के पूछने पर व्यास ने अश्व की रक्षा के लिये अर्जुन की, राज्य की रक्षा के लिये नकुल की सहायता से भीमसेन की, और आमन्त्रित व्यक्तियों तथा कुटुम्बीजनों की देख-रेख के लिये सहदेव की नियुक्ति की। यज्ञ-अश्व के साथ भेजते हुये युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, 'जो राजा तुम्हारे सामने आयें उनके साथ तुम पहले यथाशक्ति युद्ध न करना और उन्हें हमारे यज्ञ में पधारने का आग्रह करना (१४. ७२)।" "दीक्षा का समय आने पर ऋत्विजों ने युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ की विधिवत् दीक्षा दी, और व्यासजी ने अश्वमेध के लिये चुने गये अश्व को शास्त्रीय विधि के साथ छोड़ा। अपना गाण्डीव धनुष लेकर अर्जुन उस अश्व के पीछे चले। उस समय समस्त हस्तिनापुर अर्जुन को देखने के लिये उमड़ पड़ा—भीड़ का वर्णन। याज्ञवल्क्य के एक विद्वान् शिष्य, जो यज्ञकर्म में कुशल तथा वेदों में पारङ्गत थे, विघ्न की शान्ति के लिये अर्जुन के साथ गये। इनके अतिरिक्त भी अनेक ब्राह्मण और क्षत्रिय युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन के पीछे चल रहे थे। अश्व के विचरण-काल में अनेक महान् तथा अद्भुत युद्ध लड़े गये। पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता हुआ वह अश्व सर्वप्रथम उत्तर दिशा को गया और फिर पूर्व की ओर मुड़ गया: महाभारत युद्ध में जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये, ऐसे जिन-जिन क्षत्रियों ने उस समय अर्जुन से युद्ध किया उनकी गणना नहीं कराई जा सकती। महाभारत युद्ध में पाण्डवों द्वारा परास्त अनेक किरात, यवन, और म्लेच्छ, और आर्य नरेशों ने भी, अर्जुन से युद्ध किया। इस प्रकार जो युद्ध हुये उनमें से कुछ प्रमुख का आगे वर्णन करने के लिये कहा गया है। (१४. ७३)।" "कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये त्रिगर्त वीरों के महारथी पुत्रों और पौत्रों ने अर्जुन पर आक्रमण किया। पहले तो अर्जुन ने उन्हें समझाते हुये युद्ध से विरत करना चाहा, किन्तु उन सब ने अर्जुन की बातों की उपेक्षा करते हुये बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। त्रिगर्तराज सूर्यवर्मा का अर्जुन के साथ युद्ध और पराजय। सूर्यवर्मा के छोटे भ्राता केतुवर्मा का अर्जुन से युद्ध और अर्जुन द्वारा उसका वध। धृतवर्मा का अर्जुन के साथ युद्ध; अर्जुन का गाण्डीव छूट जाना, किन्तु शीघ्र ही उसे उठाकर अट्ठारह प्रमुख योद्धाओं का वध करना। पराजित होकर त्रिगर्तों का पलायन और अर्जुन की अधीनता स्वीकार करना। (१४. ७४)।" "भगदत्त के पुत्र, प्राग्ज्यौतिषपुर के राजा वज्रदत्त (विस्तृत वर्णन) का अपने हाथी पर आरूढ़ होकर अर्जुन पर आक्रमण करना, किन्तु तीन दिनों के भयंकर युद्ध' (१४. ७५), "के पश्चात् अर्जुन द्वारा उसके हाथी का वध तथा पराजित होकर उसका (वज्रदत्त का) अश्वमेध यज्ञ में पधारने का वचन देना (१४. ७६)।" "जयद्रथ का स्मरण करते हुये सैन्धवों ने अपने रथों पर बैठकर पैदल चल रहे अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। उस समय प्रचण्ड वायु चलने लगी और राहु ने एक ही समय सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों को ग्रस लिया; महापर्वत कैलास भी प्रकम्पित हो उठा; सप्तर्षियों तथा देवर्षियों को भी भय होने लगा और वह दुःख तथा शोक से सन्तप्त होकर अत्यन्त गरम गरम श्वास छोड़ने लगे। उस समय आकाश में इन्द्र-धनुष प्रकट हुआ तथा मेघ पृथिवी पर मांस तथा रक्त की वर्षा करने लगे। सैन्धवों के बाण-समूह से आच्छादित अर्जुन के हाथ से गाण्डीव धनुष तथा हस्तत्राण गिर पड़ा। अर्जुन की यह दशा देखकर सम्पूर्ण देवता मन ही मन सन्त्रस्त हो गये; सप्तर्षि, समस्त देवर्षि और ब्रह्मर्षि मिलकर अर्जुन की विजय के लिये मन्त्र-जप करने लगे। तदनन्तर देवताओं के प्रयत्न से अर्जुन का तेज पुनः उद्दीप्त हो उठा और उन्होंने सैन्धवों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जिससे वे सब रणभूमि से भाग गये (१४. ७७)।" "किन्तु सिन्धु-देशीय योद्धा पुनः संघटित होकर खड़े हो गये। उस समय अर्जुन ने उनसे आत्मसमर्पण करने के लिये कहा, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला, क्योंकि वह सब जयद्रथ-वध का स्मरण करके अर्जुन पर पुनः आक्रमण करने के लिये उद्यत थे। फलतः जो युद्ध हुआ उसमें अनेक सैन्धव-योद्धा मारे गये। उसी समय धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला अपने पुत्र सुरथ के वीर बालक को, जो उसका पौत्र था, साथ लेकर अर्जुन के पास आयी और आर्तस्वर में फूट-फूटकर विलाप करने लगी। धनुष त्यागकर अर्जुन ने अपनी बहन दुःशला का सत्कार करते हुये सुरथ के सम्बन्ध में पूछा। दुःशला ने बताया: 'मेरे पुत्र सुरथ ने पहले से सुन रक्खा था कि अर्जुन के हाथ से ही मेरे पिता जयद्रथ की मृत्यु हुई है। जब उसने यह सुना कि यज्ञ-अश्व के पीछे-पीछे तुम युद्ध के लिये यहाँ तक आ पहुँचे हो, तो पिता की मृत्यु से आतुर होकर उसने प्राणों का परित्याग कर दिया।' दुःशला ने सुरथ के पुत्र की अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् के साथ तुलना की। दुःशला के इस प्रकार करुणायुक्त वचन को सुनकर अर्जुन ने धृतराष्ट्र और गान्धारी का स्मरण किया, तथा शोक से पीड़ित होकर क्षत्रिय धर्म की निन्दा करते हुये उसे सान्त्वना दी। तब दुःशला ने अपने समस्त योद्धाओं को युद्ध भूमि से पीछे लौटा दिया तथा स्वयं भी अर्जुन की प्रशंसा करती हुई अपने घर को लौट गई। अन्त में विचरण करता हुआ यज्ञ-अश्व मणिपुर नरेश के राज्य में जा पहुँचा (१४. ७८)।" "मणिपुर-नरेश बभ्रुवाहन ने जब सुना कि उसके पिता अर्जुन (बभ्रुवाहन, अर्जुन की पत्नी चित्राङ्गदा का पुत्र था) आये हैं तो वह ब्राह्मणों को आगे करके और प्रचुर धन लेकर विनय पूर्वक नगर से बाहर उनका (अर्जुन का) दर्शन करने आया। किन्तु बभ्रुवाहन को इस प्रकार उपस्थित देखकर अर्जुन ने कुपित होकर उस पर क्षत्रिय-धर्म का उल्लङ्घन करने का आरोप किया। जब अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहन की

इस प्रकार भर्त्सना कर रहे थे, तो उसी समय नाग-कन्या उलूपी धरती के गर्भ से निकल कर ऊपर आ गई। उलूपी ने देखा कि उसका पुत्र बभ्रुवाहन नतमस्तक हो विचार में पड़ा है, तब उसने बभ्रुवाहन से कहा, 'बेटा मैं तुम्हारी विमाता नागकन्या उलूपी हूँ। तुम अपने पिता अर्जुन के साथ युद्ध करो।' माता द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित किये जाने पर बभ्रुवाहन ने अर्जुन से युद्ध आरम्भ किया—यहाँ बभ्रुवाहन के रथादि का वर्णन है—और यज्ञ-अश्व को भी पकड़ लिया। उस समय गम्भीर रूप से आहत अर्जुन ने अपने पुत्र की अत्यन्त प्रशंसा की। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के रथ की तालवृक्ष के समान ऊँची स्वर्ण-ध्वजा को काट गिराया, तथा साथ ही रथ के विशालकाय अश्वों का भी वध कर दिया। अन्ततोगत्वा बभ्रुवाहन के बाणों द्वारा आहत अर्जुन मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। अर्जुन के धराशायी होने पर बभ्रुवाहन भी मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार पति तथा पुत्र की मृत्यु हुई देख कर चित्राङ्गदा ने सन्तप्त हृदय से समराङ्गण में प्रवेश किया (१४. ७९)।" "पति-वियोग के दुःख से सन्तप्त चित्राङ्गदा विलाप करती हुई मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। होश आने पर चित्राङ्गदा ने नागकन्या उलूपी को सामने देख कर उस पर ही बभ्रुवाहन द्वारा अर्जुन का वध कराने का दोषारोपण करते हुये उससे अर्जुन को जीवित करने का आग्रह किया। चित्राङ्गदा ने कहा, 'मैं अपने पुत्र की मृत्यु पर नहीं वरन् अपने पति की मृत्यु पर ही शोक कर रही हूँ। यदि तुम इन्हें जीवित न करोगी तो मैं आमरण उपवास करके प्राण त्याग दूँगी।' थोड़ी देर के बाद चेतना लौटने पर बभ्रुवाहन ने इस प्रकार विलाप करना आरम्भ किया: 'मुझ क्रूर और पितृघाती के लिये यहाँ यही प्रायश्चित्त है कि मैं अपने पिता के चर्म से अपने शरीर को आच्छादित करके रहूँ और अपने पिता के मस्तक एवं कपाल को धारण किये बारह वर्षों तक विचरता रहूँ; अन्यथा मैं भी अपने शरीर को त्याग दूँ।' इस प्रकार विलाप करते हुये बभ्रुवाहन ने आचमन किया और कहा, 'यदि अर्जुन जीवित होकर पुनः उठकर खड़े नहीं हो जाते तो मैं इस रणभूमि में ही उपवास करके शरीर त्याग दूँगा। पिता के वध के पाप से पीड़ित होकर मैं निश्चय ही नरक में जाऊँगा। किसी वीर क्षत्रिय का वध करके विजेता सौ गायों का दान करने से उस पाप से मुक्त हो जाता है, किन्तु पिता का वध करने के पाप से मुक्ति पाना मेरे लिये सर्वथा दुर्लभ है।' तब उलूपी ने संजीवन मणि का स्मरण किया और स्मरण करते ही वह मणि वहाँ आ गई। मणि को हाथ में लेकर उलूपी ने कहा 'बेटा बभ्रुवाहन! अर्जुन तुम्हारे द्वारा परास्त नहीं हुये हैं। यह तो अर्जुन का हित करने के लिये मैंने ही मोहिनी माया दिखाई है।' इतना कहकर उलूपी ने बभ्रुवाहन से उस संजीवन मणि को अर्जुन के वक्ष पर रखने के लिये कहा। मणि के रक्खे जाते ही अर्जुन सोकर जगे हुये मनुष्य की भाँति अपनी लाल आँखें मलते हुये पुनः जीवित हो उठे। अर्जुन के पुनः उठने पर इन्द्र ने उन पर दिव्य पुष्पों की वर्षा की। पुनः जीवित हो जाने पर अपनी दोनों पत्नियों तथा शोकपूर्ण वातावरण को देख कर अर्जुन ने अपने पुत्र से पूछा: 'यह समस्त समराङ्गण शोक, विस्मय, और हर्ष से युक्त क्यों प्रतीत होता है?' पिता के इस प्रकार पूछने पर बभ्रुवाहन ने अर्जुन को माता उलूपी से सारा वृत्तान्त पूछने के लिये कहा (१४. ८०)।" "अर्जुन के पूछने पर उलूपी ने कहा: 'महाभारत युद्ध में आपने (अर्जुन ने) भीष्म को अधर्मपूर्वक, अर्थात् शिखण्डिन् की ओट से मारा था। उस पाप का प्रायश्चित्त किये बिना ही यदि आप प्राणों का परित्याग करते तो नरक में पड़ते। अतः यह उसी पाप का प्रायश्चित्त है। पूर्वकाल में गङ्गा जी तथा वसुओं ने इस पाप की इसी रूप में शान्ति निश्चित की थी, जिसे आपने अपने पुत्र से पराजय के रूप में प्राप्त किया है। पूर्वकाल की बात है, भीष्म के मारे जाने के बाद, वसुओं ने गङ्गा तट पर आकर आपके सम्बन्ध में जो यह बात कही थी उसे मैंने अपने कानों से सुना था। उस समय गङ्गा की सम्मति से वसुओं ने आपको भीष्म के अधर्मपूर्वक वध के कारण शाप दिया था। उनके शाप को सुन कर मैंने पिता से यह सारा वृत्तान्त बताया। उसे सुन कर मेरे पिता ने वसुओं के पास जाकर उन्हें प्रसन्न किया और आपके लिये क्षमायाचना की। तब वसुओं ने बताया कि बभ्रुवाहन के बाणों से आहत होकर भूमि पर गिर पड़ने पर अर्जुन उनके शाप से मुक्त हो जायँगे। यही सुन कर मैंने आपको उस शाप से मुक्त कराया है।' अर्जुन ने उलूपी के कार्य की अत्यन्त सराहना की और बभ्रुवाहन को अपनी माताओं और मन्त्रियों के साथ अश्वमेध यज्ञ में आने के लिये कहा। यज्ञ में आने का वचन देते हुये बभ्रुवाहन ने कहा कि वहाँ आकर वह ब्राह्मणों को भोजन परोसने का कार्य करेगा। उसने अर्जुन से अपनी दोनों पत्नियों के साथ अपने नगर में ही रात्रि व्यतीत करने का आग्रह किया; किन्तु यज्ञ-अश्व का अनुसरण करते रहने की दीक्षा लिये होने के कारण अर्जुन बभ्रुवाहन का निवेदन स्वीकार नहीं कर सके। अतः उन सबसे विदा लेकर अर्जुन वहाँ से चल दिये (१४. ८१)।" "सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर लेने पर अश्व हस्तिनापुर की दिशा में मुँह करके लौट पड़ा। राजगृह में सहदेव के पुत्र मगधराज मेघसन्धि ने अपने रथ पर बैठ कर पैदल अश्व का अनुसरण कर रहे अर्जुन पर आक्रमण किया, किन्तु अर्जुन से पराजित हो गया। अर्जुन ने उसे मुक्त करते हुये अश्वमेध यज्ञ में आने के लिये कहा। तदनन्तर वह अश्व पुनः अपनी इच्छा के अनुसार चलते हुये समुद्र के किनारे-किनारे वङ्ग, पुण्ड्र, और कोसल आदि देशों में गया। इन देशों में अर्जुन ने केवल गाण्डीव धनुष की सहायता से म्लेच्छों की अनेक सेनाओं को पराजित किया (१४. ८२)।" "मगधराज से पूजित हो अर्जुन ने अपने अश्व सहित दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। उनका यज्ञ-अश्व विचरते हुये चेदियों की रमणीय राजधानी शुक्ति-पुरी में आया। यहाँ शिशुपाल के पुत्र शरभ ने पहले तो अर्जुन से युद्ध किया, किन्तु बाद में स्वागत-सत्कार द्वारा अश्व का पूजन किया। तदुपरान्त वह अश्व काशी, कोसल, किरात और तङ्गण आदि जनपदों में गया, जिनमें से सभी राज्यों में पूजा ग्रहण करके अर्जुन दशार्ण देश में आये। यहाँ चित्राङ्गद नामक राजा राज्य करते थे, जिनके साथ अर्जुन का भयङ्कर युद्ध हुआ। चित्राङ्गद को वश में करके अर्जुन निषादराज एकलव्य के राज्य में गये, जहाँ एकलव्य के पुत्र के साथ उनका घोर संग्राम हुआ; किन्तु अन्त में अर्जुन ने एकलव्य कुमार को भी पराजित कर दिया। तदुपरान्त अर्जुन अपने अश्व सहित दक्षिण समुद्रतट की ओर गये जहाँ उन्होंने द्रविड़ों, आन्ध्रों, माहिषकों और कोल्लगिरेयों को पराजित किया। इसके बाद अर्जुन सौराष्ट्र, गोकर्ण, प्रभास आदि क्षेत्रों में गये, और यहाँ से द्वारवती, जहाँ यदुवंशी वीरों के बालकों ने अश्व को बलपूर्वक पकड़ कर युद्ध करने का यत्न किया, किन्तु महाराज उग्रसेन ने उन्हें रोक दिया। तदनन्तर अर्जुन के मामा वसुदेव को साथ लेकर वृष्णिराज उग्रसेन नगर के बाहर आकर अर्जुन से मिले। वहाँ से पश्चिम के समुद्र-तटवर्ती देशों में विचरण करता हुआ यज्ञ-अश्व समृद्धिशाली पञ्चनद देश में पहुँच गया। फिर वहाँ से वह अश्व गान्धार देश में गया जहाँ शकुनि के पुत्र गान्धारराज के साथ अर्जुन का घोर संग्राम हुआ (१४. ८३)।" "गान्धारराज अपने पिता शकुनि के वध का प्रतिशोध लेना चाहता था। इस युद्ध में अनेक गान्धार योद्धा मारे गये। अन्त में अर्जुन की शान्तिपूर्ण बातों की उपेक्षा करते हुये गान्धारराज ने अकेले ही अर्जुन के साथ युद्ध किया। अर्जुन ने उस शकुनि-पुत्र गान्धारराज के शिरस्त्राण को एक अर्धचन्द्राकार बाण से काट गिराया, जिससे वह तथा उसके साथी अन्य गान्धार योद्धा भाग गये। तदनन्तर गान्धारराज की माता अत्यन्त भयभीत होकर बूढ़े मन्त्रियों को आगे कर रणभूमि में आई और अपने रणोन्मत्त पुत्र को युद्ध करने से रोका तथा अर्जुन को प्रसन्न किया। अर्जुन ने भी गान्धारराज की माता का सत्कार करते हुये कहा कि उन्होंने गान्धारी और धृतराष्ट्र का विचार करके ही उसके पुत्र को

छोड़ दिया। तदुपरान्त अर्जुन ने गान्धारराज से अश्वमेध यज्ञ में आने के लिये कहा (१४. ८४)।" "तदनन्तर वह अश्व लौट कर हस्तिनापुर की ओर चला। गुप्तचरों द्वारा यह समाचार सुन कर महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये। उस दिन माघ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी थी। उसमें पुष्य नक्षत्र का योग पाकर युधिष्ठिर ने अपने समस्त भ्राताओं को बुलाकर भीमसेन से कहा कि अब वेद के पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणों को भेज कर अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिये उपयुक्त स्थान निश्चित करना चाहिये—यहाँ उपयुक्त स्थान का वर्णन है। स्थान की व्यवस्था हो जाने पर भीम ने युधिष्ठिर की आज्ञा से विभिन्न राजाओं को बुलाने के लिये अनेक दूत भेजे। निमन्त्रण पाकर वे सभी नरेश युधिष्ठिर का हित करने के लिये अनेकानेक रत्न, दासियाँ, अश्व, तथा भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र लेकर वहाँ उपस्थित हुये। ब्राह्मणों में जो श्रेष्ठ पुरुष थे वह सब भी अपने-अपने शिष्यों को साथ लेकर वहाँ पधारे। यज्ञ आरम्भ होने पर अनेक प्रवचन-कुशल और एक दूसरे को विजित करने की इच्छा रखने वाले युक्तिवादी विद्वान् वहाँ आकर तर्क की बातें करने लगे। यज्ञस्थल पर सब कुछ स्वर्ण का बना हुआ था। वहाँ प्रति दिन एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था; अन्न के अनेक पर्वताकार ढेर लगे रहते थे; दही की नहरें तथा घृत के तालाब भरे हुये थे। राजा युधिष्ठिर के उस यज्ञ-स्थल पर सारा जम्बूद्वीप एकत्र हो गया था (१४. ८५)।" "युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ में आये राजाओं का सत्कार करने के लिये भीम को नियुक्त किया। इसके बाद वृष्णियों तथा बलदेव आदि को लेकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा, 'अर्जुन अनेक युद्धों में शत्रुओं का सामना करने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। एक विश्वासपात्र मनुष्य ने मेरे पास आकर यह समाचार दिया, और यह भी बताया कि अर्जुन अब निकट आ गये हैं। उस व्यक्ति ने मुझ से अर्जुन का यह संदेश आप तक पहुँचाने का निवेदन किया कि राजसूय यज्ञ में अर्घ्य देते समय जो दुर्घटना हो गयी थी उसकी इस बार पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये। अर्जुन ने यह भी संदेश भेजा है कि इस यज्ञ में उनका पुत्र बभ्रुवाहन आयेगा जिसका विधिपूर्वक विशेष सत्कार करना चाहिये।' श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन का संदेश सुन कर युधिष्ठिर ने उसका हृदय से अभिनन्दन किया (१४. ८६)।" "युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से यह जानना चाहा कि अर्जुन को जीवन में इतने दुःख क्यों सहन करने पड़े। श्रीकृष्ण ने बताया कि पिण्डलियाँ औसत से कुछ अधिक मोटी होने के कारण ही अर्जुन को इतना अधिक चलना तथा दुःख सहन करना पड़ता है। उस समय द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की ओर क्रोधपूर्वक देखा, किन्तु श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के उस प्रेमपूर्ण उपालम्भ को सानन्द ग्रहण किया। उस समय भीम तथा अन्य कौरव, आदि अर्जुन के सम्बन्ध में यह शुभ एवं विचित्र बात सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। जब उन लोगों में इस प्रकार बातें हो रही थीं, तो उसी समय अर्जुन का भेजा हुआ दूत वहाँ आ पहुँचा। दूत से अर्जुन के आगमन का समाचार जान कर युधिष्ठिर ने उसे पुरस्कार-स्वरूप प्रचुर धन दिया। दूसरे दिन अर्जुन ने नगर में प्रवेश किया—नगर-प्रवेश का विस्तृत विवरण है। अर्जुन को देख कर नगरवासियों ने उन्हें पराक्रम में महाराज सगर आदि से भी श्रेष्ठ माना। अर्जुन ने युधिष्ठिर, आदि के चरणों में प्रणाम किया। इसी समय राजा बभ्रुवाहन भी अपनी दोनों माताओं के साथ वहाँ आये और कुरुकुल के वृद्ध पुरुषों तथा अन्य राजाओं को विधिवत् प्रणाम करके कुन्ती के महल में गये (१४. ८७)।" "चित्राङ्गदा और उलूपी ने कुन्ती का चरणस्पर्श किया; बभ्रुवाहन ने धृतराष्ट्र, आदि, का चरण-स्पर्श किया। श्रीकृष्ण ने राजा बभ्रुवाहन को एक बहुमूल्य रथ प्रदान किया जिसमें दिव्य अश्व सन्नद्ध थे। तत्पश्चात् युधिष्ठिर, भीम, आदि ने भी बभ्रुवाहन का सत्कार करके प्रचुर धन और उपहार दिये। तीसरे दिन महर्षि व्यास ने युधिष्ठिर से यज्ञ आरम्भ करने के लिये कहते हुये बताया कि ब्राह्मणों को उस यज्ञ में तिगुनी दक्षिणा देनी चाहिये। व्यास जी के ऐसा कहने पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिये उसी दिन दीक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त उस यज्ञ का विधिवत् समापन हुआ—यज्ञ का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस यज्ञ में जो यूप खड़े किये गये थे उनमें तीन सौ पशु बाँधे गये थे जिनमें प्रधान वही अश्व रत्न था। देवर्षियों, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, किम्पुरुषों, और सिद्धों की उपस्थिति से उस यज्ञ की शोभा अनुपम हो गई थी। व्यास के शिष्य, श्रेष्ठ ब्राह्मण, भी उस यज्ञसभा में सदैव उपस्थित रहते थे (१४. ८८)।" "अन्य पशुओं का विधिवत् श्रपण करने के पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने उस अश्व का भी शास्त्रीय विधि के अनुसार आलभन किया। तत्पश्चात् याजकों ने विधिपूर्वक अश्व का श्रपण करके उसके समीप द्रौपदी को बैठाया। इसके बाद ब्राह्मणों ने शान्त-चित्त हो उस अश्व की चर्बी निकाल कर उसका श्रपण करना आरम्भ किया। अपने भ्राताओं सहित युधिष्ठिर ने उस चर्बी के धूम की गन्ध को सूँघा जो समस्त पापों का नाश करने वाली थी। उस अश्व के जो शेष अङ्ग थे उनको सोलह ऋत्विजों ने अग्नि में होम कर दिया। इस प्रकार यज्ञ को समाप्त करके शिष्यों सहित व्यास ने युधिष्ठिर को बधाई दी। युधिष्ठिर ने भी ब्राह्मणों को सहस्र कोटि स्वर्ण-मुद्रायें दक्षिणा में देकर व्यास को सम्पूर्ण पृथिवी दान कर दी। किन्तु व्यास ने दान में दी हुई पृथिवी को पुनः लौटाते हुये उसके बदले उसके मूल्य की याचना की क्योंकि ब्राह्मण धन के ही इच्छुक होते हैं। तब युधिष्ठिर ने उन ब्राह्मणों से कहा, 'अश्वमेध यज्ञ में पृथिवी की दक्षिणा देने का ही विधान है। अब मैं वन में चला जाऊँगा और आप लोग चातुर्होत्र यज्ञ के प्रमाणानुसार पृथिवी का चार भाग करके उसे आपस में बाँट लें।' युधिष्ठिर के इस कथन का उनके भ्राताओं तथा द्रौपदी ने भी अनुमोदन किया। उसी समय आकाशवाणी ने भी युधिष्ठिर के इस निश्चय की सराहना की। किन्तु व्यास तथा श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को पृथिवी अपने ही अधिकार में रखने तथा ब्राह्मणों को स्वर्ण-दान करने के लिये सहमत कर लिया। इस प्रकार युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को यज्ञ के लिये एक-एक करोड़ की तिगुनी दक्षिणा दी। महाराज मरुत्त के मार्ग का अनुसरण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने उस समय जैसा महान् त्याग किया, वैसा इस संसार में दूसरा कोई राजा नहीं कर सकेगा। व्यास ने वह सम्पूर्ण स्वर्ण-राशि लेकर ब्राह्मणों को दे दी और उन सब ने उसे चार-चार भाग में विभक्त करके आपस में बाँट लिया। ब्राह्मणों के ले लेने के पश्चात् जो धन वहाँ शेष रह गया उसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा म्लेच्छ जाति के लोग ले गये। व्यास ने अपने अंश की स्वर्णराशि को अत्यन्त आदर-पूर्वक कुन्ती को भेंट कर दिया जिसे उसने बड़े-बड़े सामूहिक पुण्य कार्यों में व्यय किया। अन्त में अवभृथ स्नान करके युधिष्ठिर ने यज्ञ में आये हुये राजाओं को भी अन्यान्य प्रकार के रत्न, हाथी, घोड़े, आभूषण, स्त्रियाँ, वस्त्र, तथा स्वर्ण आदि देकर विदा किया। इस प्रकार युधिष्ठिर का यज्ञ पूर्ण हुआ। उसमें अन्न, धन, और रत्नों के ढेर लगे हुये थे; विभिन्न प्रकार की सुराओं का सागर लहराता था; इत्यादि। अनेक देशों के निवासी उस यज्ञोत्सव की बहुत दिनों तक चर्चा करते रहे। इस प्रकार पाप-रहित और कृतार्थ होकर युधिष्ठिर ने अपने नगर में प्रवेश किया (१४. ८९)।" "जनमेजय ने कहा, 'मेरे प्रपितामह युधिष्ठिर के यज्ञ में यदि कोई आश्चर्यजनक घटना हुई हो तो उसे बताने की कृपा करें।' वैशम्पायन ने बताया कि उस यज्ञ में किस प्रकार एक नेवले ने यज्ञ में व्यवधान उत्पन्न किया था। वैशम्पायन ने इस प्रसंग में सम्पूर्ण नकुलोपाख्यान का वर्णन करते हुये बताया कि किस प्रकार नेवला अन्तर्धान हो गया और ब्राह्मण घर लौट आये। वैशम्पायन ने कहा—'हे नरेश्वर! उस यज्ञ के सम्बन्ध में ऐसी घटना सुन कर तुम्हें किसी प्रकार विस्मय नहीं करना चाहिये। सहस्रों कोटि ऐसे ऋषि हो गये हैं जो यज्ञ न करके केवल तपस्या के बल से दिव्य लोक प्राप्त कर चुके हैं। किसी भी प्राणी

से द्रोह न करना, मन में संतोष रखना, शील और सदाचार का पालन करना, सब के प्रति सरलतापूर्ण बर्ताव करना, तपस्या करना, मन और इन्द्रिय को संयमित रखना, सत्य बोलना, और न्यायोपार्जित वस्तु का श्रद्धापूर्वक दान करना—इनमें से प्रत्येक गुण बड़े-बड़े यज्ञों के समान हैं।' (१४. ९०)।" "जनमेजय ने कहा, 'राजा लोग यज्ञ में, महर्षि तपस्या में, और ब्राह्मण मनोनिग्रह में तत्पर अथवा रत रहते हैं। अतः यज्ञफल की समानता करने वाला कोई कर्म यहाँ मुझे दृष्टिगत नहीं होता। यज्ञों का अनुष्ठान करके ही इन्द्र ने देवताओं का समस्त साम्राज्य प्राप्त किया था। भीम और अर्जुन को आगे रख कर राजा युधिष्ठिर भी समृद्धि और पराक्रम की दृष्टि से देवराज इन्द्र के ही समान थे। तब उस नेवले ने युधिष्ठिर के उस अश्वमेध यज्ञ की निन्दा क्यों की ?' वैशम्पायन ने कहा : प्राचीन काल में जब इन्द्र का यज्ञ हो रहा था तब पशुओं के आलम्भ का समय आने पर ऋषियों ने उन पशुओं पर दया दिखाते हुये इन्द्र से कहा कि यज्ञ में पशुवध का विधान शुभकारक नहीं है क्योंकि यज्ञ में इस प्रकार के पशुवध का शास्त्रों में विधान नहीं देखा गया है। 'उन्होंने यह भी बताया कि तीन वर्ष के पुराने जौ, गेहूँ, आदि अनाजों से यज्ञ करना महान् गुणकारक और फल की प्राप्ति कराने वाला है। किन्तु ऋषियों के कहे हुये इस वचन को इन्द्र ने अभिमानवश स्वीकार नहीं किया, और उस यज्ञ में पधारे हुये तपस्वियों में इस प्रश्न को लेकर महान् विवाद छिड़ गया। इस विवाद से खिन्न होकर ऋषियों ने इन्द्र के परामर्श से इस विषय पर राजा उपरिचर वसु से पूछा, 'महामते! हम लोग धर्म विषयक सन्देह में पड़े हैं। आप हमें बतायें कि मुख्य-मुख्य पशुओं द्वारा यज्ञ करना चाहिये अथवा बीजों एवं रसों द्वारा।' राजा वसु ने, उन दोनों पक्षों के कथन में कितना सार था इसका विचार किये बिना ही, बताया कि जो वस्तु मिल जाय उसी से यज्ञ कर लेना चाहिये। इस प्रकार असत्य निर्णय देने के कारण चेदिराज वसु को रसातल में जाना पड़ा। अतः कोई सन्देह उपस्थित होने पर स्वयं ब्रह्मा को छोड़ कर अन्य किसी बहुज्ञ पुरुष को अकेले कोई निर्णय नहीं देना चाहिये। अशुद्ध बुद्धि वाले पापी पुरुष के दिये हुये दान कितने ही अधिक क्यों न हों, वे सब अनाहत होकर नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्यायोपार्जित धन का संग्रह करके जो धर्म-विषयक संशय रखते हुये यजन करता है उसे धर्म का फल नहीं मिलता। इसके विपरीत, तपस्या के धनी धर्मात्मा पुरुष उञ्छ (बीना हुआ अन्न), फल, मूल, शाक और जलपात्र का ही यथाशक्ति दान करके स्वर्गलोक में चले जाते हैं। प्राणियों पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, धृति, और क्षमा—ये सनातन धर्म के मूल हैं। पूर्वकाल में विश्वामित्र आदि नरेश इसी से सिद्धि प्राप्त करने में सफल हुये थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, जो भी तपस्या का आश्रय लेते हैं दान धर्मरूपी अग्नि से तप कर स्वर्ण के समान शुद्ध हो स्वर्ग लोक को जाते हैं (१४. ९१)।" "जनमेजय ने कहा, 'धर्म के द्वारा प्राप्त धन का दान करने से यदि स्वर्ग मिलता है तो यह समस्त विषय मुझे स्पष्ट रूप से बताइये। उञ्छवृत्ति धारण करने वाले ब्राह्मण को न्यायतः प्राप्त हुये सत्तू का दान करने से जिस महान् फल की प्राप्ति हुई इसका आपने मुझ से वर्णन किया, किन्तु सभी यज्ञों में यह निश्चय किस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है, इसका मुझे पूर्णतः वर्णन कीजिये।' वैशम्पायन ने अगस्त्य के महायज्ञ के समय जो कुछ हुआ था उस प्राचीन वृत्तान्त का वर्णन किया। जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन ने बताया कि वह नेवला साक्षात् धर्म था जो पितरों के शाप से नेवला बन गया था। उसके इस शाप का अन्त करने के उद्देश्य से पितरों ने उससे कहा कि धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्षेप करके ही वह इस शाप से मुक्त हो सकेगा। इसीलिये वह नेवला उस यज्ञ में आया और युधिष्ठिर पर आक्षेप करते हुये सेर भर सत्तू के दान का माहात्म्य बताकर शाप से मुक्त हो वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गया (१४. ९२)।"

अनुगोप्तृ, एक विश्वेदेव का नाम है (१३. ९१, ३७)।

अनुचक्र, त्वष्टा द्वारा स्कन्द को दिये गये दो पार्षदों में से एक का नाम है (९. ४५, ४०)।

अनुचर (बहुवचन)—अनुचरों के लिये प्रयुक्त हुआ है (९. ४५, १५. १७)। अंश ने स्कन्द को पाँच अनुचर प्रदान किये (९. ४५, ३५)। विष्णु ने स्कन्द को चक्र, विक्रमक तथा संक्रमक नामक तीन अनुचर प्रदान किये (९. ४५, ३७)। देवताओं की आज्ञा से तीनों लोकों के वायु-तुल्य, वेगशाली तथा पराक्रमी पार्षद स्कन्द के अनुचर हुये (९. ४५, ११५)। 'चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम्', (९. ४५, २५)। 'ततः प्रादादनुचरौ यमकालोपमावुभौ', (९. ४५, ३०)। 'सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च', (९. ४५, ३२) 'ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ', (९. ४५, ३३)। 'चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलोत्कटौ। ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरावुभौ॥' (९. ४५, ४०)। 'ददावनुचरौ मेरुरग्निपुत्राय भारत। स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ॥' (९. ४५, ४८)। 'शृणु मातृगणान् राजन् कुमारानुचरानिमान्' (९. ४६, १)।

अनुत्तम = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनुदात्त (स्वर)—पाञ्चजन्य अग्नि द्वारा अपनी दोनों भुजाओं से उत्पन्न किया गया प्राकृत और वैकृत भेदों वाला 'अनुदात्त' स्वर (३. २२०, ८)। पाञ्चजन्य द्वारा पितरों के लिये उत्पन्न किये गये पाँच पुत्रों में से एक जिसकी 'प्राण' के अंश से उत्पत्ति हुई थी (३. २२०, १०)।

अनुद्यूत से उस द्यूत का तात्पर्य है जिसे कौरवों तथा पाण्डवों ने वनवास की बाजी लगाकर दूसरी बार खेला था। इसका सभापर्व के इसी नाम के एक अवान्तर पर्व में उल्लेख है जो ७४ से ८१ अध्यायों में आता है। 'द्यूतपर्व ततः प्रोक्तमनुद्यूतमतः परम्' (१. २, ४९)। देखिये अनुद्यूतपर्वन् भी।

अनुद्यूतपर्वन्, सभापर्व में ७४-८१ अध्यायों में आनेवाले एक अवान्तर पर्व का नाम है। "जब पाण्डवगण अपने रथादि तथा धन के संग्रह सहित हस्तिनापुर से चले गये तब दुःशासन ने दुर्योधन से कहा कि जिस धनराशि को अत्यन्त कष्ट से प्राप्त किया गया था उसे धृतराष्ट्र ने शत्रुओं के अधीन कर दिया। यह सुनकर दुर्योधन, कर्ण, तथा शकुनि ने पाण्डवों से प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। इन लोगों ने धृतराष्ट्र के पास जाकर उन्हें बृहस्पति द्वारा इन्द्र को दिये गये नीतिविषयक उपदेश दिलाते हुये बताया कि पाण्डवगण कौरवों से अवश्य बदला लेंगे। इन लोगों ने धृतराष्ट्र को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि वह युधिष्ठिर को शकुनि के साथ जूआ खेलने के लिये एक बार पुनः आमन्त्रित करें। इस जूये की शर्त यह रखने के लिये कहा कि पराजित पक्ष को मृगचर्म धारण करके बारह वर्ष तक वन में निवास करना होगा और तेरहवें वर्ष किसी नगर में जाकर अज्ञातवास करना होगा। यदि तेरहवें वर्ष की अज्ञातवास की अवधि में उन्हें कोई पहचान लेगा तो पुनः बारह वर्ष वन में रहना होगा। दुर्योधन ने कहा, 'पराजित पाण्डवगण जब तक वनवास करते रहेंगे उसी बीच हम लोग अनेक मित्रों का संग्रह करके बलशाली सेना का निर्माण कर लेंगे, जिससे वनवास के बाद यदि पाण्डव लौटे भी तो उन्हें पराजित करना सरल होगा।' दुर्योधन का वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को जूआ खेलने के लिये आमन्त्रित करने की स्वीकृति दे दी। उस समय द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्म तथा महारथी विकर्ण आदि ने एक स्वर से धृतराष्ट्र के इस निश्चय का विरोध किया किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला (२. ७४)।" "गान्धारी ने धृतराष्ट्र को दुर्योधन के जन्म के समय विदुर द्वारा दिये गये परामर्श का स्मरण दिलाते हुये कहा, 'महाराज विदुर का परामर्श मान कर जन्म के समय ही दुर्योधन का परित्याग कर देना चाहिये था। किन्तु उस समय आपने पुत्र-स्नेह के कारण जो नहीं किया उसे अब कर दें, और कपट-द्यूत की आज्ञा न दें अन्यथा समस्त कुरुवंश का विनाश हो जायगा।'

किन्तु धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की इच्छा का विरोध करने के लिये सहमत नहीं हुये (२. ७५)।" वैशम्पायन ने कहा, "युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में अत्यन्त दूर तक चले गये थे, फिर भी धृतराष्ट्र की आज्ञा से प्रतिकामी ने उनके पास जाकर उन्हें आमन्त्रित किया। यह जानते हुये भी कि धृतराष्ट्र की आज्ञा से जूये के लिये आमन्त्रण कुल के विनाश का कारण है, युधिष्ठिर यह कहते हुये कि 'यद्यपि किसी पशु का शरीर स्वर्णमय नहीं हो सकता, तथापि श्रीराम स्वर्णमय प्रतीत होनेवाले मृग पर लुब्ध हो गये, क्योंकि जिसका पतन या पराभव निकट होता है उसकी बुद्धि भी अत्यन्त विपरीत हो जाती है,' भाइयों सहित पुनः लौट आये। तदुपरान्त उपरोक्त शर्तों पर जूआ खेला गया जिसमें युधिष्ठिर की पराजय हुई (२. ७६)।" "तदनन्तर जूये में पराजित कुन्ती के पुत्रों ने वनवास की दीक्षा ली और सबने मृगचर्म धारण किया। पाण्डवगण जब इस प्रकार मृगचर्म धारण करके वनवास के लिये प्रस्थित हुये तब दुःशासन ने उनको लक्ष्य करके अपमानजनक बातें कहते हुये द्रौपदी से पराजित और पराभूत पाण्डवों का परित्याग करके कौरवों में से किसी को अपना पति चुन लेने के लिये कहा। तब क्रुद्ध भीम ने दुःशासन के पास जाकर कहा, 'जिस प्रकार तू अपने वचन रूपी बाणों से हम लोगों के मर्मस्थान में पीड़ा पहुँचा रहा है, उसी प्रकार जब मैं युद्ध में तेरा तथा तेरे साथियों का हृदय विदीर्ण करने लगूँगा उस समय तेरी कही इन बातों का स्मरण दिलाऊँगा।' भीम की बातें सुनकर निर्लज्ज दुःशासन कौरवों के बीच उनका उपहास करते हुये नाचने और 'ओ बैल ! ओ बैल !' कह कर उन्हें पुकारने लगा। उस समय भीम ने दुःशासन का रक्तपान तथा समस्त धार्तराष्ट्रों का वध करने की शपथ को दुहराया। जब पाण्डव सभाभवन से निकले तो उस समय हर्ष में भरे दुर्योधन सिंह के समान मस्तानी चाल से चलने वाले भीमसेन की खिल्ली उड़ाते हुये उनकी चाल की नकल करने लगा। यह देखकर भीम ने कहा: 'जब कौरवों तथा पाण्डवों में युद्ध होगा उस समय मैं दुर्योधन का वध करूँगा; अर्जुन कर्ण का संहार करेंगे, और शकुनि को सहदेव मारेंगे। साथ ही अपनी गदा से दुर्योधन को मार गिराने के पश्चात् मैं उसके मस्तक को पैरों से ठुकराऊँगा, और दुःशासन की छाती के रक्त का उसी प्रकार पान करूँगा जिस प्रकार सिंह किसी मृग का रक्तपान करता है।' अर्जुन तथा सहदेव ने भीम की इस बात का अनुमोदन किया। पुरुषों में सर्वसुन्दर नकुल ने भी द्रौपदी का अपमान करनेवाले समस्त धार्तराष्ट्रों का वध करने की शपथ ली (२. ७७)।" "तब युधिष्ठिर ने भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, द्रोण, कृपाचार्य, युयुत्सु और सञ्जय इत्यादि से विदा ली। कुन्ती को अपने घर में ही सत्कारपूर्वक रखने का आग्रह करते हुए विदुर जी ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुये कहा: 'पूर्वकाल में मेरुसावर्णि ने तुम्हें हिमालय पर्वत पर धर्म और ज्ञान का उपदेश दिया था; वारणावत नगर में श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी ने, भृगुतुङ्ग पर्वत पर परशुरामजी ने, तथा दृषद्वती के तट पर साक्षात् भगवान् शङ्कर ने तुम्हें अपने सदुपदेशों से कृतार्थ किया था। अञ्जन पर्वत पर तुमने असित का उपदेश सुना था। कल्माषी नदी के तट पर निवास करने वाले महर्षि भृगु ने भी तुम्हें उपदेश देकर अनुगृहीत किया था। देवर्षि नारद सदा तुम्हारी देख-भाल करते हैं और तुम्हारे पुरोहित धौम्यजी तो सदैव तुम्हारे साथ ही रहते हैं।......तुम इन्द्र से मन में विजय का उत्साह प्राप्त करो। क्रोध को अपने वश में रखने का पाठ यमराज से सीखो। दान में कुबेर का और संयम में वरुण का आदर्श ग्रहण करो।' इस प्रकार विदुर के उपदेश के पश्चात् युधिष्ठिर, भीष्म तथा द्रोण को नमस्कार करके, वहाँ से प्रस्थित हुये (२. ७८)।" "जब द्रौपदी (कृष्णा) ने कुन्ती के पास जाकर वन में जाने की आज्ञा माँगी तब कुन्ती ने अत्यन्त शोकाकुल वाणी से द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए सहदेव की विशेष रूप से देख-भाल करने के लिये कहा। जब कुन्ती ने अपने पुत्रों को हर्ष से भरे शत्रुओं के बीच मृगचर्म धारण किये देखा तो वह अत्यन्त विलाप करती हुई बोली, 'हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण तुम कहाँ हो ! तुम इन पाण्डवों को इस दुःख से क्यों नहीं बचाते ? तुम तो आदि-अन्त से रहित हो, जो मनुष्य तुम्हारा नित्य स्मरण करते हैं उन्हें तुम संकट से अवश्य बचाते हो। अतः तुम पाण्डवों पर दया करो।...... हे माद्रीनन्दन सहदेव ! तुम मुझे अपने शरीर से भी प्रिय हो, अतः लौट आओ।' इस प्रकार विलाप करती हुई माता कुन्ती को सान्त्वना देते हुये उनका अभिवादन करने के पश्चात् पाण्डव वन को चले गये। तदुपरान्त विदुरजी कुन्ती को अपने घर ले गये। उस समय धृतराष्ट्र के महल की स्त्रियाँ भी कौरवों को धिक्कारती हुई विलाप करने लगीं। अपने पुत्रों के अन्याय का चिन्तन करके राजा धृतराष्ट्र का हृदय भी अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। चिन्ताकुल हो कर उन्होंने विदुर जी को बुलाने के लिये संदेश भेजा (२. ७९)।" "धृतराष्ट्र के पूछने पर विदुर जी ने वन जाते हुये पाण्डवों की मनःस्थिति और दृष्टिकोण का वर्णन किया। विदुर जी ने यह भी बताया कि उस समय नगर तथा देश के लोग कौरवों की भर्त्सना करते हुये अत्यन्त शोक सन्तप्त हो गये थे। उस समय अनेक प्रकार के अपशकुन हुये। विदुर के कथन और पुरवासियों की बातों को सुन कर महाराज धृतराष्ट्र शोक से मूर्च्छित हो गये। तब दुर्योधन, कर्ण, और शकुनि ने द्रोण को अपना आश्रय मानते हुये सम्पूर्ण राज्य उनके चरणों में समर्पित कर दिया। उस समय द्रोणाचार्य ने बताया: 'देवताओं के पुत्र होने के कारण पाण्डवगण अवध्य हैं। मैं यथाशक्ति सम्पूर्ण हृदय से तुम्हारे अनुकूल प्रयत्न करता हुआ तुम्हारा साथ दूँगा। वन में रहते हुये पाण्डव बारह वर्ष तक पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करके जब क्रोध और अमर्ष के वशीभूत होकर लौटेंगे तो वह प्रतिशोध अवश्य लेंगे। उस समय मैं अपनी शक्ति भर तुम सब की रक्षा करने का प्रयास करूँगा। किन्तु महाराज द्रुपद ने याज और उपयाज की तपस्या द्वारा अग्नि से जिस धृष्टद्युम्न तथा वेदी के मध्यभाग से सुन्दरी द्रौपदी को प्राप्त किया था वही धृष्टद्युम्न मेरा वध करेंगे। धृष्टद्युम्न ही द्रोण का वध करेगा, यह बात सर्वत्र प्रचलित हो चुकी है।' द्रोणाचार्य की बात सुन कर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को लौटाने के लिये, और यदि वह न लौटें तो उन्हें रथ, शस्त्र तथा सेना आदि के साथ ससम्मान विदा करने के लिये विदुर जी को भेजा (२. ८०)।" "संजय ने धृतराष्ट्र को उनके कृत्यों की अनैतिकता बतायी। धृतराष्ट्र ने भी शोकमग्न होकर बताया कि जिस समय कृष्णा (द्रौपदी) को घसीट कर सभा में लाया गया उस समय समस्त ब्राह्मण इतने कुपित हो उठे थे कि उन्होंने सायंकाल अग्निहोत्र तक नहीं किया। धृतराष्ट्र ने उस समय घटित अपशकुनों, इत्यादि, का भी वर्णन किया (२. ८१)।"

अनुपावृत्त, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६. ९. ४८)।

अनुमति, एक देवी का नाम है जो स्कन्द के अभिषेक के समय उपस्थित हुई थी (९. ४५, १३)।

अनुयायिन्, धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६७, १०२)। इसका भीम ने वध किया था (७. १५७, १८)। इसका ही एक दूसरा नाम 'अग्रयायी' है (१. ११७. ११)।

अनुराधा, एक नक्षत्र का नाम है (५. १४३, ९; १३. ६४, २२; ८९, ८)। मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को मूल नक्षत्र से चन्द्रमा का योग होने पर चान्द्र-व्रत का आरम्भ करना चाहिये। इस व्रत में चन्द्रमा के स्वरूप का चिन्तन करते हुये उनके नेत्रमण्डल में रेवती, पृष्ठ भाग में धनिष्ठा, अनुराधा तथा उत्तरा को स्थापित करें (१३. ११०, ५)।

अनुरुद्ध, कार्तिक मास में मांस-भक्षण का निषेध करनेवाले राजाओं में से एक का नाम है (१३. ११५, ६९)।

अनुरूप = कृष्ण।

अनुवाकाः = कृष्ण।

१. अनुविन्द, एक राजा का नाम है जिसे सहदेव ने अपनी दिग्विजय के समय पराजित किया था (२. ३१, १०; २. ४४, २०)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ' (५. ६६, ६; १६६, ६; १९५, ५)। 'विन्दानुविन्दौ' (६. १६, १५)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ' (६. १७, ३७; ४५, ७२; ५१,

१७; ५६, ७)। 'विन्दानुविन्दौ', (६.५९,७६)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (६. ८१, ३. २७)। 'इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः', (६. ८३, १६)। 'त्यक्त्वाऽनुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः', (६. ८३, १८)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (६. ८६, ३३) । 'विन्दानुविन्दौ', (६. ८६. ३७) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (६. १०२, २४; १०८, ५८; ११३, १. ६) । 'विन्दानुविन्दौ', (६. ११३, १०)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (६. ११३, २२; ११४, २२)। 'चेकितानोऽनुविन्देन', (७. १४, ४८)। 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (७. २५, २०; ३२. ३९; ७४, १७)। 'विन्दानुविन्दयोः', (७. ८५, १६) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (७. ९५, ४३; ९६, ४) । 'अनुविन्दः प्रतापवान्' (७. ९९, २६) । 'अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम्', (७. ९९, २८) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (८. ५, १०; ७२, १९; ११. २५, २८)।

२. अनुविन्द, केकय राजकुमार का नाम है जो कौरव-पक्ष का एक योद्धा था (८. १३, ६) । इसका सात्यकि ने वध किया था (८. १३. २१)।

३. अनुविन्द, धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६७, ९४; ११७, ३) । घोषयात्रा के समय दुर्योधन सहित यह भी गन्धर्वों द्वारा वन्दी बनाया गया था (३. २४२, ८)। द्रोण की सेना का भेदन करते समय भीम इसके तथा दुःशल इत्यादि के सामने से होते हुये गये थे (७. १२७. ३४)। इसका भीम ने वध किया था (७. १२७, ६६) ।

अनुशासन—'विज्ञेयमनुशासनमुत्तमम्' (१. २, ३३१) । 'एतत्सुबहुवृत्तांतमुत्तमं चानुशासनम्' (१. २, ३३६)।

अनुशासनिक—(अनुशासन से सम्बद्ध)—'ततः पर्व परिज्ञेयमानुशासनिकं परम्' (१. २, ७८)।

अनुशासनपर्व—देखिये **आनुशासनिकपर्वन्।**

अनुष्टुभ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अनुष्णा, भारतवर्ष की नदियों में से एक का नाम है (६. ९, २४)।

अनुह्लाद, हिरण्यकशिपु के तृतीय पुत्र का नाम है (१. ६५, १८)। शिशुपाल के पुत्र, धृष्टकेतु, के रूप में यही अवतरित हुआ था (१. ६७, ७) ।

अनूचाना, एक अप्सरा का नाम है जिसने अन्य अप्सराओं के साथ अर्जुन के जन्मोत्सव के समय नृत्य किया था (१. १२३, ६१)।

अनूदर, धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६७, ९९; ११७, ८)।

अनूप, एक प्राचीन जनपद का नाम है (२. ५१, २४)।

अनूपक, अनूप देशवासी योद्धाओं का नाम है (६. ५०, ४८)।

अनूपदेश, एक सागर तटवर्ती प्रदेश का नाम है जिसे वेन-पुत्र राजा पृथु ने सूत को प्रदान किया था (१२. ५९, ११३)।

अनूपपति, समुद्र तटवर्ती अनूपदेश के राजा अर्जुन कार्तवीर्य के लिये प्रयुक्त हुआ है (३. ११६, १९)।

अनूपराज, उन राजाओं में से एक थे जो युधिष्ठिर के सभाभवन में प्रवेश के समय उपस्थित हुये थे ('अनूपराजो दुर्धर्षः क्रमजिच्च सुदर्शनः' २. ४, २८)।

अनृशंस = शिव ।

अनेकमूर्ति = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अनेनस्, पुरूरवा के पुत्र राजा आयु के द्वारा स्वर्भानु के गर्भ से उत्पन्न पाँचवें पुत्र का नाम है (१. ७५, २५)।

२. अनेनस् इक्ष्वाकुवंशी महाराज ककुत्स्थ के पुत्र का नाम है (३. २०२, २)।

अनौपम = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अनौषध = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अन्त (:) देवानाम् = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

१. अन्तक, चौदह यमों में से एक जो पितरों की ओर से पृथ्वी-दोहन के समय दोग्धा थे (७. ६९, २६) । 'महादेवान्तकाभ्यां च कामात्क्रोधाच्च भारत', (१. ६७, ७२) । 'चेदीनामधिपोवीरो बलवानन्तकोपमः', (१. १८७, २४) । 'सन्धिं कृत्वैव कालेन ह्यन्तकेन पतत्रिणा', (३. ३५, १) । 'तदस्त्रं पाण्डव श्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवान्तकम्', (३. ४०, २०)। 'सृष्टोन्तकः सर्वहरो विधात्रा', (३. ४८, १८)। 'उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः', (४. २२, ६६; २३, २२) । 'अन्तकः पवनो मृत्युस्तथाऽग्निर्वडवामुखः', (४. ५०, २६) । 'अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर । विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धौ तौ तु यथान्तकौ ।', (५. ९०, ८०) । 'चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवान्तकम्', (६. ५४, २) । 'दण्डपाणिरिवान्तकः', (६. ६३, १; ८२, ६२) । 'दण्डहस्त इवान्तकः', (६. १०२, ३६) । 'दण्डहस्तमिवान्तकम्', (६. १०७, ७४) । 'न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवान्तकम्', (६. १०७, ९९) । 'प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः', (६. ११३, १५) । 'अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम्', (६. ११४, ३९) । 'ततोन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः । दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः', (७. ८८, १५)। 'के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम्', (७. ११९, २५) । 'व्यादितास्यमिवान्तकम्', (७. १४५, ४५) । 'व्यात्तानन इवान्तकः' (७. १६९, १२)। 'पार्शैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम्', (७. १७९, ५४) । 'व्यात्ताननमिवान्तकम्', (७. १८३, १५)। 'अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये', (७. १९५, २) । 'कालान्तकयमोपमौ', (८. १५, ३१) । 'क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम्', (८. २०, ३१) । 'समाददे चान्तकदण्डसन्निभानिषून्मित्रार्तिकरांश्चतुर्दश', (८. २०, ४१) । 'समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम्', (८. २३, १७) । 'भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम्', (८. ५१, २०)। 'यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम्', (८. ५६, १७) । 'कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत', (८. ७८, ५८) । 'आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ', (८. ८७, १९) । 'न्यवधीत्तावकान्सर्वान्दण्डपाणिरिवान्तकः', (९. ३, २६) । 'विनेदुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम्', (९. ३, २८) । 'सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि', (९. ६, ७) । 'अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः', (९. १०, २६) । 'प्राच्छादयदरीन्संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः', (९. ११, २७)। 'तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम्', (९. १२, २) । 'तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः', (९. १४, ३३) । 'तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्यु मिवान्तकम्', (९. १७, ७)। 'तं चापि राजानमथोत्पतन्तं क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम्', (९. १७, ३१) । 'अवधीत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवान्तकः', (९. १९, ४८) । 'यदा शूरं च भीरूं च मारयत्यन्तकः सदा', (९. १९, ६१) । 'अथाप्लुत्यरथात्तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः', (९. २५, ३१) । 'दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम्', (९. २६, २)। 'वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ', (९. ५८, २५) । 'सुप्तान्जघान सुबहून्वायसान्वायसान्तकः', (१०. १, ४०)। 'रुधिरोक्षितसर्वाङ्ग कालसृष्ट इवान्तकः', (१०. ८, ४२) । 'कालसृष्ट इवान्तकः', (१०. ८, ७७) । 'एवं तेषां तथा द्रौणिरन्तकः समपद्यत', (१०. ८, ७९) । 'प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन्कालान्तकयमोपमः', (१०. १३, ५२)। 'पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम्', (१०. १५, १७)। 'अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ', (११. ६, ८) । 'यथाऽन्तकमनुप्राप्य जीवन्कश्चिन्न मुच्यते', (११. १२, २६) । 'शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि', (११. १५, २३) । 'सपुत्रपौत्रान्सामात्यांस्तदा भवति सोऽन्तकः', (१२. ६८, ४४)। 'क्रूरकाल इवान्तकः', (१२. ११६, ११)। 'कालान्तक इवोद्यतः', (१२. १६६, ४५) । 'जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनं', (१२. १७५, २४) । 'सत्यागमः सदादान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत्', (१२. १७५. २९) । 'न यमोनान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः', (१२. ३००, २५) । 'रसायनप्रयोगैर्वा कैर्नाप्नोति जरान्तकौ',

(१२. ३१९, २)। 'केन वृत्तेन भगवन्नतिक्रामेज्जरान्तकौ', (१२. ३१९, ५)। 'त्वमन्तकाय दारुणैः प्रयत्नमार्जवे कुरु', (१२. ३२१, ३५)। 'मरुतोऽन्तकः', (१२. ३२१, ३८)। 'पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसारथिः', (१२. ३२१, ४२)। 'पुरा करोति सोऽन्तकः प्रमादगोमुखां चमूम्', (१२. ३२१, ६४)। 'कालान्तकोपमाः' (१३. ३, ४)। 'पाशहस्तमिवान्तकम्', (१३. १४, २७०)। 'नान्तक सर्वभूतानां', (१३, ३८, २५)। 'अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्', (१२. ३८, २९)। 'स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि च', (१३. १६०, ४०)। 'कालान्तकयमोपमम्', (१४. ७४, २७)।

२. **अन्तक** = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अन्तकज्वलन, प्रलय-कालीन अग्नि के लिये प्रयुक्त हुआ है : 'तदन्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा', (१. १९, २३)।

अन्तकाल, प्रलयकाल के लिये प्रयुक्त हुआ है (९. ४६, ७१)।

अन्तकृत्, स्कन्द के सैनिकों में से एक का नाम है (९. ४५, ५८)।

अन्तचार, एक प्राचीन भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ६८)।

अन्तर्गिरि, हिमालय की भीतरी शृङ्खला का एक जनपद (६. ९, ५४)। अर्जुन ने इसे विजित किया था (२. २७, ३)।

अन्तरद्वीप—'द्वीपाश्च सान्तरद्वीपा नानाजनपदाश्रयाः' (१२. १४, २५)।

अन्तरात्मन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्तरिक्षचर, अन्तरिक्ष में विचरण करने वालों के लिये प्रयुक्त हुआ है (९. ५०, २६)।

अन्तर्धान, कुबेर द्वारा अर्जुन को प्रदत्त एक दिव्यास्त्र का नाम है (३. ४१, ३८)।

अन्तर्धामन्, अङ्ग नामक मनुवंशी राजा के पुत्र का नाम है (१३. १४७, २३)। अन्तर्धामन् से अनिन्द्य प्रजापति हविर्धामन् के उत्पन्न होने का उल्लेख (१३. १४७. २४)।

अन्तर्याग, कान, त्वचा, नेत्र, इत्यादि दस होताओं द्वारा साध्य एक आध्यात्मिक यज्ञ का नाम है (१३. २१–२७)।

अन्तर्वृत्ति, स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली एक आन्तरिक वृत्ति का नाम है (१३. १४४, ४–१७. २९–४०)।

अन्तर्हितात्मन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्तवास, एक प्राचीन देश का नाम है (२. ५१, १७)।

अन्तेवसायिन्, चाण्डाल द्वारा निषादी से उत्पन्न पुत्र को कहते हैं : 'निषादी चापि चाण्डालात्पुत्रमन्तेवसायिनम्, श्मशानगोचरं सूते बाह्यैरपि बहिष्कृतम्', (१३. ४८. २८)।

१. **अन्ध,** एक जाति के लोगों, सम्भवतः अन्धकों, का नाम है (५. १९, १७)।

२. **अन्ध,** एक नाग का नाम है (५. १०३, १६)।

३. **अन्ध,** एक नेत्र हीन हिंसक पशु के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस पशु ने पूर्व जन्म में तप करके सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर डालने के लिये वर प्राप्त किया था; इसीलिये ब्रह्माजी ने इसे अन्धा बना दिया। बलाक नामक व्याध इसको मार कर स्वर्ग का अधिकारी हुआ था (८. ६९, ३९–४५)।

१. **अन्धक,** एक जाति के लोगों का नाम है। 'अन्धकवृष्णिषु', (१. ६३, १०४)। 'वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नाना देश्याश्च पार्थिवाः', (१. १६२, ११)। 'वृष्ण्यन्धकाश्च', (१. १८७, ८)। 'वृष्ण्यन्धकानाम्', (१. २१८, १८, १९)। 'वृष्ण्यन्धकानाम्' (१. २१९, १. २; २२०, १२. १४. ३२; २२१, २७. ३३. ३८. ४२. ५८. ५९. ६२)। 'कुकुरान्धकैः', (२. १९, २८)। 'क्षितावन्धकवृष्णीनाम्', (२. ३६, १७)। 'सर्व्येनान्धकवृष्णयः', (२. ५२, ४९)। 'अन्धका यादवा भोजाः समेता कंसमत्यजन्', (२. ६२, ८)। 'वृष्णयश्चान्धकैः', (३. १२, १)। 'वृष्ण्यन्धकपुरे', (३. १५, १९)। 'सात्यकिं बलदेवं च ये चान्येऽन्धकवृष्णयः', (३. १८, २८)। 'सवृष्णिभोजान्धकयोधमुख्या', (३. १२०, २०)। 'कुकुरान्धकाश्च', (३. १८३, ३२,)। 'भजन्त्यन्धकवृष्णयः', (३. २३५, १५)। जनार्दनः सान्धकवृष्णिवीरो महेष्वासाः केकयाश्चापि सर्वे', ३. २६८, १६)। 'वृष्ण्यन्धकाश्च', (४. ७२, २५)। 'सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा', (५. ७, ३)। 'अन्धकवृष्णि राज्ये', (५. २७, २)। 'चेद्यश्चान्धकाश्च', (५. २८, ११)। 'वृष्ण्यन्धकानाम्' (५. ४८, ७८)। 'नयेनान्धकवृष्णयः', (५. ५१, ३९)। 'मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम्', (५. ५७, २)। 'संमतोऽन्धकवृष्णिषु', (५. ६५, ७)। 'वृष्ण्यन्धकाः', (५. ८६, ४)। 'भारतान्धकवृष्णयः', (५. १२८, ४०)। 'अन्धकवृष्णयः', ५. १३१, ३)। 'अन्धका वृष्णयश्च', (५. १३१, ९)। 'अन्धकवृष्णयः', (५. १४०, १३. २४)। 'द्रविडान्धकाञ्चैः', (५. १६०, १०३; १६१, २१)। 'संभावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ', (६. ५९, ९८)। 'वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ', (७. १०४, १)। 'वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं', (७. १४२, ५३. ६४)। 'वृष्ण्यन्धकाः', (७. १४३, १५)। 'अन्धकवृष्णि', (७. १९८, १२. ५४)। 'वृष्ण्यन्धकवृतो महान्', (७. १९९, २६)। 'रुद्रोऽन्धकायान्तकरं यथेषुम्', (९. १७, ४८)। 'वृष्ण्यन्धक महारथौ', (९. २१, १२)। 'वृष्ण्यन्धकमहारथैः', (१०. १२, ३४)। 'वृष्ण्यन्धकपुरे वयम्', (१२. ७, ३)। 'नारदान्धकवृष्णयः', (१२. ८१, ८)। 'भोजवृष्ण्यन्धकास्तथा', (१४. ५९, १८)। 'वृष्ण्यन्धककुलं', (१४. ६६, २४)। 'सह वृष्ण्यन्धकव्याघ्रैरुपासाञ्चक्रिरे तदा', (१४. ७१, १२)। 'वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा', (१४. ८३, १५; ८६, १३)। 'कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह', (१६. १, १२)। 'क्षयं वृष्ण्यन्धका गताः', (१६. १, १४)। 'वृष्ण्यन्धकविनाशाय', (१६. १, १९)। 'येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात्कृताः', (१६. १, २६)। 'वृष्ण्यन्धककुलेष्विह', (१६. १, २९)। 'वृष्णीनामन्धकैः' (१६. २, १)। 'वृष्ण्यन्धकविनाशाय', (१६. २, ४)। 'वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोतः व्यचरंस्तदा', (१६. २, ८)। 'वृष्ण्यन्धकनिवेशने', (१६. २, १७)। 'वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः', (१६. ३, २)। 'वृष्ण्यन्धकमहारथाः', (१६. ३, ७)। 'चान्धकवृष्णयः', (१६. ३, ८)। 'वृष्ण्यन्धकमहारथाः', (१६. ३, १३)। 'भोजान्धका', (१६. ३, ३०)। 'सात्यकिश्चान्धकैः', (१६. ३, ३४)। 'ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा', (१६. ३, ३७)। 'कुकुरान्धकाः', (१६. ३, ४२)। 'स चिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं', (१६. ४, १९)। 'सभोजान्धककौकुरान्', (१६. ५, २)। 'वृष्ण्यन्धकजलां', (१६. ५, ८)। 'शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम्', (१६. ७, १०)। 'वृष्ण्यन्धककुमारकाः', (१६. ७, २७)। 'भृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये', (१६. ७, ३४)। 'पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां', (१६. ७, ३७)। 'भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां', (१६. ७, ३९) 'वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः', (१६. ७, ६३)। 'भोजवृष्ण्यन्धका', (१६. ८, १०)। 'वृष्ण्यन्धकमहारथाः', (१६. ८, २६)। 'वृष्ण्यन्धककुलं', (१६. ८, ३८)। 'वृष्ण्यन्धककुले', (१७. १, १)। 'वृष्ण्यन्धकमहारथान्', (१८. ४, १८)।

२ **अन्धक,** एक असुर का नाम है, जिसका रुद्र ने वध किया था। 'पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ', (७. ४९, ११; ५९, ६)। 'यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः', (७. १५५, ४४)। 'महेश्वर इवान्धकम्', (७. १५६, ९०)। 'अन्धकनिपातिने', (७. २०१, ७१)। 'यथा रुद्रेण चान्धकः', (८. ७, ५७)। 'त्र्यम्बकेनान्धको यथा', (८. २०, १९)। 'अन्धकस्याथ शुक्रस्य दुन्दुभेर्महिषस्य च ॥ यक्षेन्द्रबलरक्षःसु निवातकवचेषु च। वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात् ॥', (१३. १४, २१४. २१५)।

३. **अन्धक**—एक राजा का नाम है जो पाण्डव पक्ष की ओर से युद्धमें सहयोगार्थ निमन्त्रित किया गया था (५. ४, १२)।

४. **अन्धक,** एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने से पुरुषमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है (१३. २५, ३२. ३३)।

अन्धक-घातिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्धक-भोज, जरासन्ध के आक्रमण के समय गोमन्त पर्वत के दुर्ग की रक्षा करने वाले महारथियों में से एक का नाम है (२. १४, ५९)।

अन्धकार, एक पर्वत का नाम है : 'क्रौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः । अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥' (६. १२, १८)।

अन्धकारक, क्रौञ्चद्वीप के एक जनपद का नाम है : 'उष्णात् परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः । अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥' (६. १२, २२)।

अन्ध्र (ध्राः), दक्षिण भारत की एक जाति का नाम है (२. ३१, ७१)। कलियुग में छल से शासन करने वाले एक राजा का उल्लेख (३. १८८, ३५)। भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्ण को समझाते हुये बताया कि द्रविड, कुन्तल, अन्ध आदि उसके सेवक होंगे (५. १४०, २६)। 'द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः' (५. १६०, १०३; १६१, २१) । 'आन्ध्राश्च बहवो राजन्' (६. ९, ४९) । कलिङ्ग और अन्ध्रकों को कर्ण ने परास्त किया (७. ४, ८)। क्षत्रियों का धर्म बताते हुये इन्द्र द्वारा उल्लिखित विभिन्न जाति के लोगों में इसका भी उल्लेख है (१२. ६५, १३) । निषाद स्त्री और वैदेहक पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न एक मिश्रित जाति का नाम है (१३. ४८, २५) । दक्षिण समुद्रतट पर स्थित एक जाति के लोगों का नाम है, जिनके साथ अर्जुन का युद्ध हुआ था (१४. ८३, ११)।

अन्ध्रक—युधिष्ठिर द्वारा सभाभवन में प्रवेश करने के समय उपस्थित राजाओं में एक यह भी था (२. ४, २४)।

अन्ध्रकाः—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पधारने वाले राजाओं में इनकी भी गणना है (२. ३४, ११) । 'चोलद्रविडान्ध्रकाः' (३. ५१, २२)। कर्ण की सेना में पाण्ड्य ने जिनका वध किया था उनमें पुलिन्द, खस, वाह्लीक, निषाद आदि के साथ इनका भी उल्लेख है (८. २०, १०)। दुर्योधन-पक्ष की ओर से युद्ध करते हुये योद्धाओं में इनका उल्लेख है (८. ७३, २०)। दक्षिण क्षेत्र में उत्पन्न पृथिवी के पापी जीवों के अन्तर्गत इनका भी उल्लेख है (१२. २०७, ४२)।

अन्न = शिव (सहस्र नामों में से एक)। विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नद = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नपति = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नभुज् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नभोक्तृ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नस्रष्टृ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अन्नाद = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अन्यगोचरी, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, २७)।

अन्वग्भानु, मिश्रकेशी अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न रौद्राश्व के १० पुत्रों में से एक का नाम है (१. ९४, ८)।

अपचयंकर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अपगा, मद्रदेश में स्थित एक नदी का नाम है (८. ४४, १०)। देखिये 'आपगा' भी।

अपगासुत = भीष्म, देखिये व० स्था०।

अपगेय = भीष्म, देखिये व० स्था०।

अपर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अपरकाशि, भारत वर्ष के एक जनपद का नाम है (६. ९, ४२)।

अपरकुन्ति, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६. ९, ४३)।

अपरनन्दा, एक नदी का नाम है, जिसका अर्जुन ने दर्शन किया था (१. २१५, ७)। युधिष्ठिर भी इस नदी के तट पर पधारे थे (३. ११०, १)। देववंश और ऋषिवंश के साथ कीर्तनीय पुण्यकारक नदियों की गणना में इसका भी नाम आता है (१३. १६५, २८)।

अपरम्लेच्छ, एक भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ६५)।

अपरवल्लव, एक भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ६२)।

अपरसेक, दिग्विजय के समय सहदेव द्वारा विजित एक जाति का नाम है (२. ३१, ९)।

१. अपराजित, एक नाग का नाम है (१. ३५, १३; ५. १०३, १५)।

२. अपराजित, कालेय नामक आठ दैत्यों में से द्वितीय के अंश से अवतरित एक राजा का नाम है (१. ६७, ४९)। इन्हें पाण्डवों की ओर से रणनिमन्त्रण प्राप्त हुआ था (५. ४, २१)।

३. अपराजित, धृतराष्ट्र के पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६७, १०१; ११७, १०) । भीष्म ने इसका वध किया था (६. ८८, १५. १९. २२)।

४. अपराजित, कुरु-पौत्र जनमेजय-कुमार धृतराष्ट्र के कुण्डिक आदि ९ पुत्रों में से एक का नाम है (१. ९४, ५९)।

५. अपराजित, ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम है (१२. २०८, २०)।

६. अपराजित=महापुरुष (विष्णु के सहस्र नामों में से एक : १३. १४९, ८९)।

अपराजिता—'षष्ठीं यां ब्राह्मणाः प्राहुर्लक्ष्मीमाशां सुखप्रदाम् । सिनीवालीं कुहूँ चैव सद्वृत्तिमपराजिताम् ॥', (३. २२९, ५०)।

अपरान्त, भारतवर्ष के एक प्राचीन जनपद का नाम है (६. ९, ४७)। यह शूर्पारक-क्षेत्र का एक द्वितीय नाम है (१२. ४९, ६७)।

अपरिमित, अपरिनिर्मित, अपरिनिन्दित : महापुरुषस्तवे ।

अपवर्ग—'अपवर्गस्थभूतानां पञ्चानां परतः स्थितः', अर्थात् श्रीकृष्ण (१२. ४७, ८४)।

अपांगर्भ—देखिये अग्नि।

अपां निधि = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अपां पति = वरुण (१. १८, १०; ९. ४७, ४. १०. १६)।

अपां प्रपतन, एक तीर्थ का नाम है (१३. २५, २८)।

अपां ह्रद, एक तीर्थ का नाम है, जहाँ स्नान करने से अश्वमेध जैसा फल प्राप्त होता है (१३. २५, १४)।

१. अपान, एक प्राणवायु का नाम है जो जठरानल, मूत्राशय, और गुदा का आश्रय होकर मल एवं मूत्र को निकालता हुआ ऊपर से नीचे को घूमता रहता है (१२. १८५, ६)। तु० की० **प्राण** । पृथ्वी और आकाश में अदृश्य रूप से निवास करने वाले साध्यों के दुर्जय पुत्र का नाम 'समान' है; समान के पुत्र 'उदान'; उदान के पुत्र 'व्यान'; और व्यान के पुत्र 'अपान' थे; अपान से ही प्राण की उत्पत्ति हुई है (१२. ३२८, ३३)।

२. अपान = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अपान्तरतमस्—जगत के स्रष्टा ने सम्पूर्ण दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुये सरस्वती का उच्चारण किया, जिससे वहाँ सारस्वत का आविर्भाव हुआ। सरस्वती अथवा वाणी से उत्पन्न हुये इसी शक्तिशाली पुत्र का नाम अपान्तरतमस् हुआ (१२. ३४९, ३९) । सरस्वती-पुत्र अपान्तरतमस् मुनि को इस प्रकार विदा देते हुये भगवान् बोले : 'जाओ अपना कार्य करो' (१२. ३४९, ५८) । इन्होंने बताया कि यह भगवान विष्णु की कृपा से ही अपान्तरतमस् नाम से उत्पन्न हुये थे (१२. ३४९, ५९)। अपान्तरतमस् वेदों के आचार्य बताये जाते हैं और यहाँ कुछ लोग इनको प्राचीनगर्भ भी कहते हैं (१२. ३४९, ६६)।

अपूरण—'नागश्चापूरणस्तथा', (१. ३५, ६)। 'मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः', (५. १०३, १०)।

अप्रतर्क्य : महापुरुषस्तवे ।

अप्रतिरथ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।
अप्रतिरूप = शिव (सहस्र नामों में से एक)।
अप्रमत्त = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।
अप्रमद = शिव (सहस्र नामों में से एक)।
अप्रमेय = विष्णु (सहस्र नामों में से एक), स्कन्द।
अप्रमेयात्मन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।
अप्रेच्य = कृष्ण (१२. ४७, ३७)।

१. अप्सरस्, प्रायः सर्वत्र बहुवचन में ही प्रयुक्त हुआ है : 'तत्रैव मोक्षयामास पञ्च सोऽप्सरसः शुभाः', (१. २, १२३) 'अप्सरा मेनका', (१. ८, ७. ८)। 'गन्धर्वाप्सरसोः सुताः', (१. ९, ८)। 'किन्नरैरप्सरोभिश्च देवैरपि च सेवितम्', (१. १८, २)। 'गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्', (१. २७, ८)। 'विद्याधरैरप्सरसां गणैश्च', (१. ५६, ९)। 'गन्धर्वाप्सरसो नृपम्', (१. ६३, ३४)। 'ब्रह्मशापाद्वराप्सराः', (१. ६३, ५८)। 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (१. ६४, ४१)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणान्', (१. ६४, ४९)। 'गन्धर्वाप्सरसां तथा', (१. ६५, ७)। 'इमं त्वप्सरसां वंशं', (१. ६५, ४८)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (१. ६५, ५२)। 'इति ते सर्वभूतानां सम्भवः कथितो मया। यथावत्परिसंख्यातो गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥', (१. ६५, ५३)। 'गणस्त्वप्सरसां यो वै मया राजन्प्रकीर्तितः', (१. ६७, १५४)। 'गन्धर्वाप्सरसां तथा', (१. ६७, १६१)। 'अंशावतरणं सम्यग्गन्धर्वाप्सरसां तथा', (१. ६८, १)। 'गन्धर्वाप्सरसांग णैः', (१. ७०, १५)। 'गुणैरप्सरसां दिव्यै', (१. ७१, २२)। 'षडेवाप्सरसां वराः', (१. ७४, ६८)। 'मेनकाऽप्सरसां श्रेष्ठा', (१. ७४, ७६)। 'सहाप्सरोभिर्विहरन्', (१. ८९, १९)। 'ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो', (१. १००, ९८)। 'अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः', (१. १०२, ३)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (१. १२३, ५०. ५२)। 'नृत्यन्तेऽप्सरसां गणाः', (१. १२३, ५३)। 'तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालङ्कारभूषिताः', (१. १२३, ६०)। 'ददर्शाप्सरसं साक्षात्', (१. १३०, ३५)। 'सहसाप्सरोभिः', (१. १८७, ७)। 'तास्तदाऽप्सरसो', (१. २१७, २२)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (२. ४, ३७)। 'तथैवाप्सरसो', (२. ७, २४)। 'सङ्घशश्चाप्सरोगणाः', (२. ८, ३८)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (२. ९, २६)। 'गणैरप्सरसां वृताः', (२. १०, ९)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (२. १०, १३. १४; ११, २८)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (२. ११. ५६)। 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव भगवान्', (२. १२, ३)। 'गन्धर्वाप्सरसामपि', (३. २४, ७)। 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (३. ४२, १३)। 'अप्सरोगणसंकीर्णे', (३. ४२, २८)। 'तथैवाप्सरसां गणान्', (३. ४२, ३७)। 'नन्दनं च वनं दिव्यमप्सरोगणसेवितम्', (३. ४३, ३)। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (३. ४३, ९. ३१ भी)। 'प्रहितोप्सरसां वराम्', (३. ४५, २)। 'प्रवराप्सरसां वरे', (३. ४६, २०)। 'सर्वाऽप्सरःसु मुख्यासु', (३. ४६, २८)। 'तथैवाप्सरसः सर्वा विशिष्टाः स्वगृहं गताः', (३. ४६, ३०)। 'दिवि शक्रमिवाप्सरा' (३. ७८, १४)। 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (३. ८२, २२)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (३. ८२, ९४)। 'गन्धर्वाप्सरसो', (३. ८३, ६)। 'वृतामप्सरसां गणैः', (३. ८५, २२) 'गन्धर्वाप्सरसोपि च', (३. ८५, ७२)। 'अप्सरोभिश्च सेवितम्', (३. ९०, २०)। 'सत्यवती कन्या रुपेणाप्सरसोप्यति', (३. ९६, २९)। 'अप्सरोभिश्च', (३. १०८, १०)। 'वने तु तस्य वसतः कन्या जज्ञेऽप्सरःसमा। ऋचीको भार्गवस्तां च वरयामास भारत॥', (३. ११५, २१)। 'गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्', (३. १४३, ६)। 'अप्सरो नूपुररवैः', (३. १४६, २४)। 'तदिहासाप्सरसस्तात', (३. १४८, २०)। 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (३. १५३, ८)। 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (३. १५४, ५)। 'गान्धर्वैरप्सरोभिश्च', (३. १५८, १००)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (३. १५९, १८)। 'अप्सरोभिः परिवृतः', (३. १५९, २६)। 'गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः', (३. १६१, ३९)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (३. १६६, ४)। 'गणाश्चाप्सरसां तत्र', (३. १६८, १०)। 'गन्धर्वाप्सरसां चैव प्रभावम्', (३. १६८, ४४)। 'पश्यंश्चाप्सरसः श्रेष्ठा', (३. १६८, ५९)। 'अप्सरसां गणा;', (३. १७५, १७)। 'अप्सरोगण सेवितान्', (३. १७८, ६)। 'अप्सरोभिः', (३. १८६, ७)। 'गन्धर्वाप्सरसो', (३. १८८, १२०)। 'अप्सरसां यथा', (३. २०१, ५)। 'सर्वैः अप्सरसां गणै', (३. २२९, ३९)। 'या जनित्री त्वप्सरसां गर्भमास्ते प्रगृह्य सा', (३. २३०, ३९)। 'अप्सरसस्तथा', (३. २३१, २६)। 'तथैवाप्सरसां गणाः', (३. २३१, ४४)। 'गणैरप्सरसां चैव', (३. २४०, २२)। 'सहाप्सरोभिः', (३. २४६, १७)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (३. २६१, ६)। 'वराप्सरा दैत्य वराङ्गना', (३. २६५, २)। 'गन्धर्वाप्सरसो', (३. २८१, १३)। 'यदि वाऽप्सराः', (४. ९, १४)। 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (४. ५८, ७१)। 'सोऽप्सरसः', (५. ९, ९)। 'संपूज्याप्सरसः शक्रो', (५. ९, १९)। 'अप्सरोभिः परिवृतः', (५. ११, १३)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (५. ११, १५)। 'चाप्सरसां गणाः', (५. १७, २१)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणैः', (५. १८, १)। 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (५. १८, ३)। 'गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च सूतः', (५ २९, १६)। 'रूपमप्सरसामभूत्', (५. ४४, २१)। 'अप्सरसो दश', (५. १११, २१)। 'सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा', (५. १२१, ५)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणैः', (५. १२३, ४)। 'गन्धर्वाप्सरस्तथा (५. १७६, ३१)। 'अप्सरोगणसंयुक्ता', (६. ६, १८)। 'स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः', (६. ६, ३३)। संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः', (६. ६, ३५)। 'स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः', (६. ७, ८)। 'अप्सरसोऽपि च', (६. ६६, २५)। 'नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट्सहस्राणि सप्तधा', (७. ६१, ६)। 'गन्धर्वाप्सरसोऽपि च', (७. ६९, १०)। 'पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्', (७. ६९, २५)। 'अप्सरोभिः समाकीर्ण', (७. ८०, ३३)। 'द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च', (७. १५६, १९०)। 'अप्सरसां गणाश्च', (७. १६३, १३. ३४)। 'तदप्सरोभिराकीर्ण', (७. १८८, ३८)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (७. २०२, १२५)। 'अप्सरसां गणाः', (८. ३४, ५९)। 'तथैवाप्सरसां वृन्दैः', (८. ३४, ६०)। 'तथैवाप्सरसां गणाः', (८. ३४, ८१)। 'विमानैरप्सरः सङ्घैः', (८. ४९, ७६)। 'आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः', (८. ४९, ७७)। 'सहाप्सरोभिः', (८. ५७, १३)। 'अप्सरसां गणाः', (८. ६१, ३२)। 'अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमाम्', (८. ६९, ४३)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (८. ८७, ५२)। 'अप्सरसां च सङ्घैः', (८. ८८, १)। 'अप्सरोगणैः', (८. ९०, १८)। 'अप्सरसां गणाः', (९. ५, ३७)। 'अप्सरोभिः', (९. ५, ३८)। 'तत्र अप्सरसः', (९. ३७, ३)। 'अप्सरसां गणः', (९. ३७, ५)। 'अप्सरसां शुभा', (९. ३७, ७)। 'अप्सरोगणाः', (९. ३८, ९)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तदा', (९. ४२. ४०)। 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (९. ४५, ७)। 'रूपेणाप्सरसां तुल्या', (९. ४६, ३८)। 'ननृतुश्चाप्सरोगणाः', (९. ४६, ५९) 'गन्धर्वाप्सरसश्च ह', (९. ४९, १९)। 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (९. ५१, १७)। 'दिवौकसामप्सरसां', (९. ५७, ६८)। 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (९. ५८, ६१)। 'जगुश्चाप्सरसो', (९. ६१, ५६)। 'नूनमप्सरसां स्वर्गे', (११. २०, २६)। 'अप्सरोभिः', (११. २०, २७)। 'अप्सरोभिः शचीपतिम्', (१२. २३, ७१)। 'जगुश्चाप्सरसां गणाः', (१२. ५२, २४)। 'वराप्सरः सहस्राणि', (१२. ९८, ४६)। 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (१२. १६६, १८)। 'ननृतुश्चाप्सरः संघास्तत्र' (१२. २००, १४)। 'अप्सरोभिः', (१२. २२१, १६)। 'अप्सरोभिः पुरस्कृतम्', (१२. २२८, १४)। 'जामयोऽप्सरसां लोके', (१२. २४३, १८)। 'पश्य ह्यप्सरसो दिव्या मया दत्तेन चक्षुषा', (१२. २७२, १५)। 'अप्सरोभिः समागमन्', (१२. २८१, १७)। 'आहूयाऽप्सरसो देवः', (१२. २८२, ४३)। 'अप्सरस ऊचुः', (१२. २८२, ४५)। 'अप्सरसां गणाः', (१२. २८२, ४७)। 'अप्सरोगणसंघाश्च', (१२. २८३, ११)। 'गन्धर्वाप्सरसाकीर्णे', (१२. २८४, ४)।

'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (१२. २८४, ७) । 'यथाऽप्सरोगणाः', (१२. ३२१, ५९) । 'सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा', (१२. ३२३, १९) । 'ननृतुश्चाप्सरोगणाः', (१२. ३२४, १४) । 'रूपेणाप्सरसां समाः', (१२. ३२५, ३५) । 'तमप्सरोगणाकीर्णं', (१२. ३२७, ४) । 'गन्धर्वाप्सरसां गणाः', (१२. ३३२, १५) । 'सर्वाप्सरोगणाः' (१२. ३३२, १८) । 'अप्सरसां गणाः', (१२. ३३३, १७. २८) । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (१२. ३५०, २१) । 'सेव्यमानोऽप्सरोभिश्च', (१३. १४, १७५) । 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (१३. १४, ३६५. ४०१) । 'नृत्येरन्नप्सरोगणा;', (१३. १९, ४२) । 'प्रनृत्ताप्सरसः शुभाः', (१३. १९, ४६) । 'अप्सरोभिरभिष्टुतः', (१३. २५, १०) । 'निवासेऽप्सरसां दिव्ये', (१३. २५, २३) । 'सोऽप्सरोगणैः', (१३. २५, २८) । 'अप्सरोभिरहिंसकः', (१३. २५, ४५) । 'अप्सरोभिश्च', (१३. ३२, ३२) । 'देवर्षैरप्सरोत्तमा', (१३. ३८, ७) । 'क्वचिदप्सरसां', (१३. ५४, १२) । 'अप्सरसां गणाः', (१३. ५४, २१) । 'शतमप्सरसश्चैव', (१३. ६२, ८८) । 'चरन्त्यप्सरसां लोके', (१३. ६४, १७) । 'अप्सरसां संघान्', (१३. ६४, ३०) । 'गन्धर्वाप्सरसां लोकान्दत्वा प्राप्नोति मानवः', (१३. ७९, २२) । 'गन्धर्वाऽप्सरसो', (१३. ८०, ५) । 'अप्सरसां गणाः' (१३. ८१, ३०) । 'अप्सरसो', (१३. ९३, १६) । 'अप्सरोभिश्च सततं', (१३. ९६, १९) । 'गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा', (१३. १०२, १८) । 'गन्धर्वाणामप्सरसां च', (१३. १०२, २३) । 'अप्सरसां', (१३. १०६, ३७) । 'शतं चाप्सरसः कन्या', (१३. १०६, ५५) । 'सोप्सरोभिर्', (१३. १०७, १२. १८) । 'तथैवाप्सरसामङ्के', (१३. १०७, २९) । 'अप्सरोगण सेवितम् (१३. १०७, ८८) । 'गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (१३. १०७, ९२) । 'पूज्यमानोप्सरोगणैः', (१३. १०७, १०१. १११) । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च', (१३. १०७, ११२) । 'अप्सरोगणसंपूर्णं', (१३. १०७, १२४) । 'अप्सरोभिश्च मोदते', (१३. १०९, ९) । 'अप्सरोगणसंकीर्णे', (१३. १४०, ३) । 'प्रनृत्ताप्सरसं' (१३. १४०, १०) । 'अप्सरसां गणैः' (१३. १४२, ४२) । 'सहाप्सरोभिर्मुदिता', (१३. १४५, ६) । 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (१३. १४६, ६१) । 'तं गन्धर्वाणामप्सरसां च', (१३. १५८, १५) । 'गन्धर्वाप्सरसस्तथा', (१३. १६१, १७) । उन नामों के अन्तर्गत इसका भी उल्लेख है जिनका पाप से मुक्ति के लिये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल उच्चारण किया जाता है (१३. १६५, १४) । 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (१४. ८, ५) । 'यत्र नृत्येरन्नप्सरसः समस्ताः', (१४. १०, २७) । 'स्त्रीणामप्सरसस्तथा', (१४. ४३, १६) । 'नागानप्सरसश्चैव', (१४. ५४, ४) । 'प्रनृत्तोप्सरसां गणैः', (१४. ८८, ३६) । 'दिव्याश्चाप्सरसां संघाः', (१४. ९२, २५) । 'गन्धर्वाप्सरसश्चैव', (१५. ३१, ६) । 'वृताश्चाप्सरसां गणैः', (१५. ३२, १६) । बलराम और श्रीकृष्ण जिनकी सदैव पूजा करते थे उन ताल और गरुड़ के चिह्नों से युक्त दोनों विशाल ध्वजों को अप्सरायें ऊँचे उठा ले गईं और दिन रात लोगों से यह बात कहने लगीं कि 'अब तुम लोग तीर्थ यात्रा के लिये निकलो', (१६. ३, ६) । 'सहाप्सरोभिः', (१६. ४, २५. २७) । 'दिव्याश्चाप्सरो दिवि', (१८. ३, २४) । श्रीकृष्ण की १६,००० पत्नियाँ अप्सरायें बन गईं (१८. ५, २६) । 'नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः', (१८. ६, ८) । 'अप्सरोगणसंकीर्णं', (१८. ६, २६) । 'कामगं साप्सरोगणम्', (१८. ६, ३३) । 'सेवितं चाप्सरः सङ्घैः', (१८. ६, ३९) । 'अप्सरोभिश्च शोभितम्', (१८. ६, ४३) ।

२. अप्सरस्, बहुधा एकवचन में और कहीं-कहीं विशेष अप्सराओं के नाम के रूप में आया है । = मेनका (१. ८, ६–८; ९, ८) । 'साप्सरामुक्तशापा च', (१. ६३, ६४) । 'तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद्वराप्सराः', (१. ६३, ५८) । 'उर्वशीपूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका । विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः', (१. ७४, ६८) । मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः', (१. ७४, ६९) । 'मेनकाऽप्सरसां श्रेष्ठा', (१. ७४, ७६) । 'अन्वग्भानुप्रभृतयो मिश्रकेश्यां मनस्विनः । रौद्राश्वस्य महेष्वासा दशाप्सरसि सूनवः ॥', (१. ९४, ८) । 'दैवी वा दानवी वा त्वं गन्धर्वी चाथ वाप्सराः', (१. ९७, ३१) । 'भूषयित्वाऽप्सरोपमाम्', (१. १०६, २४) । 'तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने । लोकेऽप्रतिमसंस्थानां प्रोत्फुल्लनयनोऽभवत्', (१. १३०, ८) । 'ददर्शाप्सरसं साक्षाद्धृताचीमाप्लुतामृषिः । रुपयौवनसंपन्नां मदहृष्टां मदालसाम्', (१. १३०, ३५) । 'ददर्शाप्सरसं तत्र धृताचीमाप्लुतामृषिः', (१. १६६, २) । 'अप्सराऽस्मि महाबाहो देवारण्यविहारिणी', (१. २१६, १५) । 'गन्धर्वराज गच्छाद्य प्रहितोप्सरसां वराम्', (३. ४५, २) । 'प्रवराप्सरसां वरे', (३. ४६, २०) । 'अन्यथा ध्यातुमप्सरः', (३. ४६. ४१) । 'शक्रमिवाप्सराः', (३. ७८, १४) । 'तस्य रेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम्', (३. ११०, ३५) । 'देवी नु यक्षी यदि दानवी वा वराप्सरा दैत्यवराङ्गना वा', (३. २६५, २) । 'दृष्ट्वामप्सरसमायान्तीम्', (९. ४८, ६५) । 'दिव्यामप्सरसं पुण्यां', (९. ५१, ७) । 'दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेते यत्स्कन्नं प्रागलंबुषाम्', (९. ५१, १३) । 'घृताचीं नामाप्सरसमपश्यद्भगवानृषिः', (१२. ३२४, २) । 'ऋषिरप्सरसं दृष्ट्वा सहसा काममोहितः', (१२. ३२४, ३. ५) । 'रम्भा नामाप्सराः शापाद्यस्य शैलत्वमागता', (१३. ३, ११) । 'ददर्शाप्सरसं ब्राह्मी पञ्चचूडामनिन्दिताम्', (१३. ३८, ३) । 'पप्रच्छाप्सरसं मुनिः', (१३. ३८, ४) । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा', (१३. ३८, ७) । 'इमां च देवीं पश्यामि वपुषाऽप्सरोपमाम्', (१३. ५३, ६१) ।

अप्सरोगणसेवित = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अप्सुजाता, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, ४) ।

अप्सुहोम्य, युधिष्ठिर द्वारा सभाभवन में प्रवेश करने के समय उपस्थित ऋषियों में से एक का नाम है (२. ४. १२) ।

अबल—अग्नि पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न किये गये उन पन्द्रह यज्ञमुषः देवों में से एक का नाम है जो हवि को चुराते हैं (३. २२०, ११) ।

अब्भक्षाः (पु० बहु०) (जो जल पर आश्रित रहते हैं) । देखिये राजध० । (१२. १७, ११ : एक प्रकार के तपस्वी) ।

अभग्नपरिसंख्यान, महापुरुष का ११९वाँ नाम है (१२. ३३८, ४) ।

अभग्नयोग, महापुरुष का ११८ वाँ नाम है (१२. ३३८, ४) ।

अभय—धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक । १. ६७, १०४ (८५ वाँ पुत्र) । १. ११७, १२ (८९ वाँ) । ७. १२७, ३५ (भीमसेन पर आक्रमण करता है) । ७. १२७, ६२ (भीमसेन इसका वध करते हैं) ।

अभासुर—देखिये **भासुर** ।

अभिगम्य = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अभिजित्—२८ नक्षत्रों में से २२ वाँ, जिसका पाश्चात्य नाम α लीरे (lyræ) है (देखिये ह्विटने : सूर्यसिद्धान्त ८. ९) । इस नक्षत्र को रोहिणी की छोटी बहन कहा गया है ('अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्या कन्यसी स्वसा । इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता', ३. २३०, ८) । अभिजित् नक्षत्र के योग में श्राद्ध करने वाला भिषक् सिद्धि प्राप्त करता है (१३. ८९, ११) ।

अभिजित—(क) दिन का आठवाँ मुहूर्त ('मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे दिवामध्यगते सूर्ये', १. १२३, ६) । युधिष्ठिर का जन्म इसी मुहूर्त्त में हुआ था (१. १२३, ६-७) । (ख) एक नक्षत्र (= **अभिजित**) जिसके योग में मधु और घृत का दान करने से धर्मपरायण व्यक्ति स्वर्गलोक में सम्मान प्राप्त करता है (१३. ६४, २७) ।

अभिभू—(क) काशि का एक राजा (काश्यस्याभिभुवः पुत्रं, ७. ९५, ३८; ७. २३, २६; और देखिये ५. १५१, ६३) । वसुदान के पुत्र ने इनका (काशिराजः) वध किया था (८. ६, २३) । (ख) = कृष्ण (तु० की० **विभु**, १२. ४३, ११) ।

अभिमन्यु, अर्जुन और कृष्ण की भगिनी सुभद्रा का पुत्र (१. ६३,

१२१; ९५, ७८; २२१, ६५)। यह सोम के पुत्र वर्चस् के अवतार थे (१. ६७, ११२-११३) और इसीलिये अपना कर्म समाप्त करके मृत्यु के पश्चात् इन्होंने सोम में प्रवेश किया (१८. ५, १९)। इनके नाम की (अशुद्ध) व्युत्पत्ति (१. २२१, ६७)। यह पाण्डवों के वंशकर हैं (१. ९५, ८२)। पाण्डवों का वनवास आरम्भ होने के समय इनकी माता सहित इन्हें श्रीकृष्ण द्वारका ले गये (३. २२, ४७), जहाँ रौक्मिणेय (रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न) इनके संरक्षक और शिक्षक हुये (३. १८३, २८–३०; तु० की० ३. २३५, १२)। वनवास समाप्त हो जाने पर यह सुभद्रा और कृष्ण के साथ उपप्लव्य में आकर पाण्डवों के साथ हो जाते हैं (४. ७२, २०–२२, तु० की० ७२, १४) और इसी स्थान पर विराट की पुत्री उत्तरा के साथ इनका विवाह होता है (४. ७२, ३३; १. २, २१४)। यह वीरतापूर्वक महाभारत-युद्ध करते हैं, किन्तु १३वें दिन युधिष्ठिर की आज्ञा से (७. ३५, २०) यह चक्रव्यूह भेदन की प्रतिज्ञा करते हैं और चक्रव्यूह के भीतर युद्ध करते हुये जयद्रथ और अन्य ६ महारथियों द्वारा घिरकर मारे जाते हैं (७. ४९)। इनकी मृत्यु के समय इनकी पत्नी उत्तरा गर्भवती थी जिसने बाद में उस परिक्षित नामक पुत्र को जन्म दिया जो पाण्डव वंश का एकमात्र प्रवर्तक हुआ। आरम्भ में युधिष्ठिर इन्हें स्वर्ग में नहीं देख पाये थे (१८. १, २६) किन्तु बाद में उन्होंने इन्हें स्वर्ग में सोम के साथ देखा (१८. ४, १९)।

अनुक्रमणिकापर्व : १. १, १९०-१९१; १. २, ५८ (अभिमन्योश्च वैराट्याः पर्व वैवाहिकं स्मृतम्); १. २, १२६. २१४ (सौभद्रम्); १. २, २५७. २५८। अंशावतरणपर्व : १. ६३, १२१। सम्भवपर्व : १. ६७, ११३; १. ९५, ७८. ८२। हरणाहरणपर्व : १. २२१, ६६. ६७। अर्जुनाभिगमनपर्व : ३. २२, ४७; ३. ३३, १२। तीर्थयात्रापर्व : ३. १२०, २१। मार्कण्डेयसमस्यापर्व : ३. १८३, १४; १८३, २८-३०। द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व : ३. २३५, १२। वैवाहिक पर्व : ४. ७२, ९. १५. २०. २२. ३३. ३५। सैनोद्योगपर्व : ५. १, १. ५। यानसन्धिपर्व : ५. ४८, ३२; ५०, ४३; ५९, ४। भगवद्यानपर्व : ५. ८२, २३. ३८; १४०, २२। सैन्यनिर्याणपर्व : ५. १५१, ४७। उलूकदूतागमनपर्व : ५. १६२, १५; १६३, ३५। रथातिरथसंख्यानपर्व : ५. १७०, २। अम्बोपाख्यानपर्व : ५. १९४, २१। (क) महाभारत युद्ध का प्रथम दिन : ५. १९६, ८ (युधिष्ठिर ने प्रथम सेनादल के साथ भेजा); १९६, १४। भीष्मवधपर्व : ६. ४५, १४-१६ (बृहद्बल से युद्ध); ६. ४७, ७ (पिङ्गलवर्ण के श्रेष्ठ घोड़ों से जुते हुये रथ पर बैठकर भीष्म पर आक्रमण; इनका यह रथ कर्णिकार के चिह्न से युक्त स्वर्णनिर्मित विचित्र ध्वज से सुशोभित था); ६. ४७, ६६ (भीष्म के विरुद्ध युद्ध में श्वेत की सहायता करते हैं)। (ख) युद्ध का दूसरा दिन : ६. ५०, ५० (धृष्टद्युम्न के क्रौञ्चव्यूह के पंख-भाग में स्थित थे); ६. ५२, ३० (भीष्म के विरुद्ध अर्जुन की सहायता करते हैं); ६. ५५, १० (लक्ष्मण से युद्ध)। (ग) युद्ध का तीसरा दिन : ६. ५६, १६ (अर्जुन के अर्ध-चन्द्रव्यूह के मध्य में स्थित थे); ६. ५८, ७ (गान्धारों से युद्ध); ५८, ९ (सात्यकि को अपने रथ में बैठाते हैं)। (घ) युद्ध का चौथा दिन : ६. ६०, २४ (भीष्म के विरुद्ध युद्ध में अपने पिता की सहायता करते हैं); ६. ६२, १३ (शल्य पर आक्रमण करते हैं); ६२, १८. २९; ६. ६३, १० (भीमसेन की सहायता करते हैं); ६. ६४, २४. ४५ (भगदत्त के विरुद्ध युद्ध में भीमसेन की सहायता करते हैं)। (ङ) युद्ध का पांचवाँ दिन : ६. ६९, २६ (द्रोण, भीष्म, और शल्य के विरुद्ध भीमसेन की सहायता); ६. ७३, ३७ (लक्ष्मण से युद्ध)। (च) युद्ध का छठवाँ दिन : ६. ७७, ५८ (केकय राजकुमारों का नायकत्व करते हैं); ७७, ६०. ६३. ७१ (धृष्टद्युम्न को अपने रथ में बैठा लेते हैं); ६. ७८, १३ (अन्य ग्यारह महारथियों के साथ भीमसेन का अनुगमन करने के लिये जाते हैं); ७८, १८. २१ (विकर्ण से युद्ध); ६. ७९, २१ (केकय राजकुमारों सहित युद्ध करते हैं); ७९, २३. २७. २८ (विकर्ण से युद्ध)। (छ) युद्ध का सातवाँ दिन : ६. ८४, ४१ (चित्रसेन, विकर्ण, और दुर्मर्षण के साथ युद्ध); ८४, ४४। (ज) युद्ध का आठवाँ दिन : ६. ८७, २१ (धृष्टद्युम्न के शृङ्गाटकव्यूह में रक्खे गये); ६. ८९, २०; ६. ९४, ७ (दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध में पाण्डवसेना के नायक भीमसेन की सहायता करते हैं); ९४, २८; ६. ९५, २३ (भगदत्त से युद्ध करते हैं); ९५, ४०. ७२; ६. ९६, १८ (इन पर अम्बष्ठक आक्रमण करते हैं); ९६, ३८। (झ) युद्ध का नवाँ दिन : ६. ९९, १३; ६. १००, २. १०; ६. १०१, ८. ९ (अलम्बुष से युद्ध); ६. १०१, १५. २०. २१, २४। (ञ) युद्ध का दसवाँ दिन : ६. १०९, २०; ६. ११०, १५ (भीष्म पर आक्रमण करने पर इन्हें सुदक्षिण ने रोका); ६. १११, १८; ६. ११२, ३७ (युधिष्ठिर की रक्षा करते हैं); ६. ११५, ३१ (कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिंदमः। प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः); ६. ११६, १ (दुर्योधन के साथ युद्ध करते हैं); ६. ११८, ४६ (भीष्म पर आक्रमण करते हैं); ६. ११९, २१ (छः अन्य महारथियोंके साथ अर्जुन की रक्षा करते हैं)। (ट) युद्ध का ग्यारहवाँ दिन : द्रोणाभिषेकपर्व ७. १०, ४९; ७. १४, ५१ (लक्ष्मण से युद्ध); १४, ५२. ५३। (ठ) युद्ध का बारहवाँ दिन : संशप्तकवधपर्व: ७. २३, ३३ (इनके अश्व पिशङ्ग-वर्ण हैं); ७. २३, ८९ (इनका ध्वज : 'शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः')। (ड) युद्ध का तेरहवाँ दिन : अभिमन्युवधपर्व : ७. ३३, १९ (यह कहा गया है कि इन्होंने द्रोण के चक्र-व्यूह का भेदन किया); ७. ३४, ८. ११; ७. ३५, १२ (द्रोणाचार्य का सामना करने का युधिष्ठिर ने इन पर दायित्व रक्खा); ७. ३५, १६. १८; ७. ३६, २. ५. १२; ७. ३७, २-९; ३७, २२. २७. ३१. ३५; ७. ३९, ४. १०. २८. २९; ७. ४०, १. १२. २३. २५. २७. ३०; ७. ४१ (अभिमन्यु पराक्रम); ७. ४४, ५. ७. १९; ७. ४५, १. २. ४. १२; ७. ४६ (अभिमन्यु द्वारा लक्ष्मण और क्राथपुत्र का वध और सेना सहित छः महारथियों का पलायन); ७. ४७. ३; ७. ४८, २५. ४०. ४१; ७. ४९, ४. १२-१३ (दुःशासन का पुत्र इनका वध करता है); ७. ५०, १५; ७. ५१, ३; ७. ५४, (मृत्यु के पश्चात् पुनः चन्द्रलोक चले गये); ७. ७१, १२. १६ (योगिगण अपनी तपस्याओं द्वारा जिस अक्षय गति को प्राप्त करते हैं, उसे ही अभिन्यु ने प्राप्त किया); ७१, १७; प्रतिज्ञापर्व : ७. ७२, १९. ५७. ६९. ७६. ८०. ८१; ७. ७४, ४; ७. ७५, ८; ७. ७८, १४; जयद्रथ बधपर्व : ७. ८५, १. ५०; ७. १४३, ४३। घटोत्कचवधपर्व : ७. १८३, ४१। द्रोणवधपर्व : ७. १९१, ४४। कर्णपर्व : ८. ५, २४, ८. ६, ९; ८. ५०, १६; ८. ७३, २५ (जयत्सेन को युद्ध में मार डाला था); ७३, ७७; ७. ७४, ४४; ७. ९१, ११। शल्यपर्वः ९. ५, १३. २२। गदायुद्धपर्व : ९. ३२, ५५. ५६. ५८; ९. ६१, ४६। जलप्रदानिकपर्व : ११. १२, ९। स्त्री विलापपर्व : ११. १६, २१. २८; ११. २०, ३. ३४। श्राद्धपर्व : ११. २६, ३२; ११. २७, २२। राजधर्मानुशासनपर्व : १२. २७, १. २०; १२. ४२, ४। अनुगीतापर्व : १४. ६१, २. ३०; १४. ६२, ६.८ (अभिमन्युविक्रताः), १४. ६६, २१. २२; १४. ६७, ६. ७. ८. १२. १५; १४. ६८, १२. २३; १४. ६९, २० (अभिमन्य के पुत्र, परिक्षित); १४. ७२, १८ (अभिमन्यु के पिता, अर्थात् अर्जुन); १४. ७८, ३५ (अभिमन्यु के पुत्र, परिक्षित)। आश्रमवासपर्वः १५. २१, १२; १५. २५, १५ (अभिमन्योर् भार्या, अर्थात् उत्तरा)। स्वर्गारोहणपर्व : १८. १, २६; १८. ४, १९ (सौभद्रम्); १८. ५, १८-२० (सोम के पुत्र वर्चस् का अवतार होने के कारण, यह मृत्यु के पश्चात् सोम में प्रवेश कर गये)। तु० की० **आर्जुनि, सौभद्र, कार्ष्णि, अर्जुनात्मज, अर्जुनावर, फाल्गुनि, शक्रात्मजात्मज।**

* **अभिमन्युज** (=परिक्षित), १. ४०, १९; १. ४१, ५; १४. ६७, १२. १५; ६९, २२; ७०, ११।

* **अभिमन्युजननी** (=सुभद्रा), ८. ८७, ११६।

अभिमन्युवध, १. २, ६९ (अभिमन्युवधः पर्व) = **अभिमन्युवध-पर्वन्**।

अभिमन्युवधपर्वन्—(यह महाभारत का ७३ वां उप-पर्व है; तु० की० **अभिमन्युवध**)। युद्ध के १३वें दिन : "(७. ३३) अर्जुन द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिये जाने तथा द्रोणाचार्य द्वारा युधिष्ठिर को बन्दी बना पाने में असफल हो जाने के फलस्वरूप कुरुओं को पराजित माना जाने लगा। इस समय चारों ओर अर्जुन और कृष्ण की ही प्रशंसा हो रही थी। तदनन्तर प्रातःकाल दुर्योधन ने युधिष्ठिर को पकड़ पाने की असफलता के लिये द्रोणाचार्य पर आक्षेप किया। इस पर द्रोणाचार्य ने कहा कि जहाँ जगत् के स्रष्टा भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन सेनानायक हों वहाँ भगवान् शंकर के अतिरिक्त, देवता असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षसों सहित सम्पूर्ण लोक भी विजय नहीं प्राप्त कर सकते। फिर भी द्रोण ने कहा कि वह आज पाण्डव पक्ष के किसी श्रेष्ठ महारथी को अवश्य मार गिरायेंगे। संशप्तकों ने दक्षिण दिशा में जाकर अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारा। संजय ने दुःशासन के पुत्र द्वारा अभिमन्यु के मारे जाने का उल्लेख किया। इस पर धृतराष्ट्र ने शोक प्रकट किया।" संजय द्वारा अभिमन्युवध कथन, "(७. ३४) : संजय द्वारा युधिष्ठिर इत्यादि की प्रशंसा। द्रोण द्वारा चक्रव्यूह के निर्माण का कथन : धृतराष्ट्र के पौत्र लक्ष्मण व्यूह के आगे थे, दुर्योधन मध्य भाग में, और अग्रभाग में स्वयं द्रोणाचार्य खड़े थे" "(७. ३५) : पाण्डवसेना के नायक भीमसेन और उनके साथ सात्यकि इत्यादि थे। उस समय सृञ्जयों सहित पाण्डव पक्ष के सम्पूर्ण पाञ्चाल वीर द्रोण के सम्मुख टिक नहीं सके। तब युधिष्ठिर ने चक्रव्यूह भेदन का दुःसह और महान भार अभिमन्यु पर रक्खा। भीमसेन इत्यादि अभिमन्यु के पीछे चले। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की सेना की प्रशंसा करते हुये यह कहते हैं कि उनकी सेना साध्य, रुद्र और मरुतों के समान बलवान, और वसुओं, अग्नि, एवं आदित्य के समान पराक्रमी है। इस पर अभिमन्यु ने अपने सारथि सुमित्र को अपने रथाश्वों को द्रोण की सेना की ओर ले चलने की आज्ञा दी।" "(७. ३६) : अभिमन्यु (सुमित्र सहित) द्वारा कौरवों की चतुरंगिणी सेना का संहार। अभिमन्यु ने कौरवों के वनायुज, पर्वतीय, कम्बोज तथा बाह्लिक, देशीय अश्वों का वध किया जिससे उनके अलंकार कट-कट कर गिर पड़े और इससे राक्षस-गण अत्यन्त हर्षित हुये।" "(७. ३७) : दुर्योधन और अभिमन्यु का युद्ध; द्रोण तथा अन्य महारथियों का अभिमन्यु पर आक्रमण; दुःशासन का अभिमन्यु पर आक्रमण; अभिमन्यु द्वारा अश्मक के पुत्र का, तथा सुषेण का वध; अभिमन्यु ने कर्ण को घायल और शल्य को पराजित किया; द्रोण की सेना का पलायन; पितृगण, देवता, चारण, सिद्ध तथा यक्ष, एवं भूतलवर्ती भूत समुदाय अभिमन्यु की प्रशंसा करते हैं।" "(७. ३८) : अभिमन्यु द्वारा शल्य के छोटे भाई का वध और उनकी सेना का पलायन; अर्जुन और कृष्ण द्वारा प्राप्त आयुधों से अभिमन्यु ने सामना करने वाले सभी योद्धाओं को पराजित किया; द्रोण की सेना का पलायन" "(७. ३९) : अभिमन्यु और द्रोण का युद्ध; द्रोणाचार्य द्वारा अभिमन्यु की वीरता की प्रशंसा; दुर्योधन ने कर्ण इत्यादि से अभिमन्यु का वध करने के लिये कहा; दुःशासन और अभिमन्यु का युद्ध।" "(७. ४०) : अभिमन्यु (द्यूत आदि का उल्लेख करते हुये) दुःशासन को फटकारता है; दुःशासन को उनका सारथि दूर भगा ले गया; पाण्डवों के सैनिक हर्ष से रणवाद्य बजाने लगे और एक साथ मिलकर द्रोणाचार्य के व्यूह पर टूट पड़े; दुर्योधन की आज्ञा से कर्ण और (द्रोण की ओर बढ़ने की इच्छा रखने वाले) अभिमन्यु का युद्ध; जब कर्ण घायल हो गया तब उसके छोटे भाई ने अभिमन्यु का सामना किया।" "(७. ४१) : अभिमन्यु द्वारा कर्ण के छोटे भाई का वध; कर्ण का पलायन; कौरव सेना का संहार; केवल सिन्धुराज जयद्रथ ही अभिमन्यु के सामने टिक सका।" "(७. ४२) : युधिष्ठिर इत्यादि का अभिमन्यु के पीछे जाने का प्रयास करना; जयद्रथ इन लोगों को दिव्यास्त्रों द्वारा रोक देता है; धृतराष्ट्र संजय से जयद्रथ की शक्ति का स्रोत पूछते हैं; संजय उस वरदान का वर्णन करते हैं जो जयद्रथ ने शिव से प्राप्त किया था।" "(७. ४३) : अपने सिन्धु-देशीय विशाल अश्वों सहित जयद्रथ, सभी पाण्डव वीरों को पराभूत करता है; सात्यकि के साथ जयद्रथ का युद्ध; भीम सात्यकि के रथ पर चढ़ जाते हैं; अभिमन्यु द्वारा बनाया हुआ मार्ग मत्स्यों के प्रयास के विपरीत भी बन्द हो जाता है और सभी पाण्डव-योद्धा जयद्रथ द्वारा रोक लिये जाते हैं।" "(७. ४४) : अभिमन्यु वृषसेन को पराजित करता है जिससे वह युद्धस्थल से भाग जाता है; अभिमन्यु द्वारा वसातियों इत्यादि का वध।" "(७. ४५) : अभिमन्यु ने सत्यश्रवस् को पकड़ लिया और कुरुओं को भी काल का ग्रास बनाया; अभिमन्यु और रुक्मरथ का युद्ध; रुक्मरथ तथा उनके मित्र और सौ राजकुमारों का अभिमन्यु द्वारा गन्धर्वास्त्र से वध, यद्यपि उन लोगों की रक्षा स्वयं दुर्योधन कर रहा था; तत्पश्चात् दुर्योधन का भी भयभीत होकर पलायन।" "(७. ४६) : द्रोण इत्यादि तथा अभिमन्यु का युद्ध; अन्य लोगों का पीछे हटना तथा अभिमन्यु द्वारा लक्ष्मण का वध; दुर्योधन अपनी सेना से अभिमन्यु का वध करने के लिये कहता है; द्रोण इत्यादि अभिमन्यु को घेर लेते हैं; क्राथ-पुत्र का अभिमन्यु द्वारा वध, और अन्य कौरवों का पलायन।" "(७. ४७) : जयद्रथ की सहायता करते हुये द्रोण और अभिमन्यु + युधिष्ठिर का युद्ध; अभिमन्यु कर्ण के एक कान को क्षति पहुँचाते और वृन्दारक तथा बृहद्बल का वध करते हैं।" "(७. ४८) : अभिमन्यु एक बार पुनः कर्ण के कान का भेदन और मगध-राज के पुत्र, अश्वकेतु तथा मार्त्तिकावतक के राजा भोज का वध करते हैं; दुःशासन के पुत्र और अभिमन्यु का युद्ध; अश्वत्थामा और अभिमन्यु का युद्ध; अभिमन्यु और शल्य का युद्ध; अभिमन्यु द्वारा शत्रुञ्जय इत्यादि का वध; अभिमन्यु और शकुनि का युद्ध; शकुनि द्वारा दुर्योधन से अभिमन्यु के वध का उपाय ढूँढ़ने के लिये द्रोण और कृपाचार्य से परामर्श लेने का आग्रह करना; कर्ण, द्रोण से अभिमन्यु के वध का उपाय पूछता है : यह स्वीकार करते हुये कि वह अभिमन्यु की वीरता से अत्यन्त प्रभावित हैं; द्रोण ने बाणों से अत्यन्त घायल कर्ण को अभिमन्यु का धनुष इत्यादि काट डालने के लिये कहा; कर्ण ने अभिमन्यु के धनुष को, कृतवर्मा ने घोड़ों को, और कृपाचार्य ने पार्श्वरक्षकों को मार डाला; तदनन्तर छः महारथियों द्वारा एक साथ प्रहार किये जाने पर अभिमन्यु तलवार से युद्ध करने लगा जिसे द्रोण ने काट दिया, जब कि कर्ण ने अभिमन्यु की ढाल को भी काट दिया।" "(७. ४९) : तब अभिमन्यु रथ के चक्र से और उसके बाद गदा से युद्ध करने लगे; अभिमन्यु और अश्वत्थामा का युद्ध; अभिमन्यु ने सुबल-पुत्र कालिकेय का और ७७ गान्धारों का वध किया; इसके बाद १० ब्रह्म-वसातीयों, ७ कैकयों, और १० हाथियों को भी मार डाला; अभिमन्यु और दुःशासन के पुत्र का युद्ध तथा दुःशासन के पुत्र द्वारा अभिमन्यु का वध; अदृश्य जीवों ने द्रोण और कर्ण के नेतृत्व में कुरुओं के इस कायरतापूर्ण कृत्य की भर्त्सना की; पाण्डव सेना भागती है किन्तु युधिष्ठिर उसे पुनः उत्साहित करते हैं।" "(७. ५०) : सन्ध्या समय कुरुगण अपने शिविरों में और राक्षस तथा पिशाच इत्यादि युद्ध-भूमि में चले जाते हैं।" "(७. ५१) : अभिमन्यु की मृत्यु पर युधिष्ठिर का विलाप।" "(७. ५२) : व्यास का आना और युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुये मृत्यु की प्रकृति का वर्णन और यह कथन कि देवता, दानव, गन्धर्व, कोई भी इससे नहीं बच सकता; व्यास द्वारा अकम्पन-नारद संवाद का वर्णन : 'यह कथा समस्त पापों का नाश करनेवाली है; व्यास द्वारा युधिष्ठिर से शोक का परित्याग करने का आग्रह।" "(७. ५३) शंकर और ब्रह्मा का संवाद, मृत्यु की उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजा के संहार का कार्य सौंपा जाना।" "(७. ५४) : मृत्यु की घोर तपस्या; ब्रह्मा द्वारा उसे वर की प्राप्ति, तथा नारद–अकम्पन संवाद का उपसंहार करते हुये व्यास का यह कथन कि 'अभिमन्यु पूर्वजन्म में सोम का पुत्र था, और वह पुनः समस्त दुःखों से रहित होकर सोम में विलीन हो

गया; व्यास द्वारा युधिष्ठिर से शोक का परित्याग करने का आग्रह ।" "(७. ५५-७०) व्यास द्वारा युधिष्ठिर को षोडशराजकीयोपाख्यान सुनाना ।" "(७. ७१) : व्यास द्वारा यह कहना कि जिन्होंने ध्यान के द्वारा पवित्र ज्ञानमयी दृष्टि प्राप्त कर ली है वे योगी, निष्काम भाव से उत्तम यज्ञ करने वाले पुरुष, तथा अपनी उज्ज्वल तपस्याओं द्वारा तपस्वी मुनि जिस अक्षय गति को प्राप्त करते हैं, वही गति अभिमन्यु ने भी प्राप्त की है; व्यास यह कहते हैं कि 'हमें इस संसार में जीवित पुरुषों के लिये ही शोक करना चाहिये, जो स्वर्ग चला गया उसके लिये शोक करना उचित नहीं, क्योंकि शोक करने से मृतात्मा का दुःख और बढ़ता है;' इतना कहकर व्यास अन्तर्धान और युधिष्ठिर भी शोक से रहित हो गये; किन्तु युधिष्ठिर दीन भाव से यह सोचने लगे कि 'मैं अर्जुन से क्या कहूँगा ।'

अभिमन्योर्भार्या = उत्तरा ।

अभिराम = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अभिरामा—देखिये **पूर्वाभिरामा** ।

अभिवाद्य = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अभिषाह (= **अभीषाह**) एक जाति का नाम है जो अन्य बर्बर जातियों के साथ महायुद्ध के १०वें दिन दुःशासन के कहने पर अर्जुन पर आक्रमण करती है (६. ११७, ३४) ।

अभिष्यन्त, कुरु और वाहिनी के पाँच पुत्रों में से द्वितीय का नाम है (सम्भवपर्व : १. ९४, ५०) ।

अभिसार, कश्मीर की सीमा के दक्षिण-पश्चिम में बसी एक जाति (तु० की० विष्णु पु०, २. १७४-१७५) का नाम है । = **अभीसार** । अन्य बर्बर जातियों के साथ-साथ यह भी महाभारत युद्ध के १४वें दिन अर्जुन के साथ युद्ध करते हैं (जयद्रथवधपर्वः ७. ९३, ४४ : 'दार्वातिसार' पाठ है) । महायुद्ध के १७वें दिन कृष्ण ने इनका भी दुर्योधन के सहायकों के अन्तर्गत उल्लेख किया है (कर्णपर्वः ८. ७३, १९ : 'दार्वाभिसार') ।

अभिसारी, एक प्राचीन नगर है, जिस पर दिग्विजय के समय अर्जुन ने विजय प्राप्त की थी (२. २७, १८; तु० की० विष्णु पु०, २. १७४) ।

अभीरु, एक राजा (राजर्षिसत्तम:) था । यह 'कालेयाः' परिवार के आठ असुरों में से छठवें का अवतार था (सम्भवपर्व : १. ६७, ५३) ।

अभीषाह (= गत शब्द) एक जाति : (क) यह लोग महायुद्ध के प्रथम दिन युद्ध के लिये प्रस्थान करते हुये धृतराष्ट्र के पुत्रों का अनुसरण करते हैं (भगवद्गीतापर्व : ६. १८, १२) । (ख) युद्ध के नवें दिन भीष्म की रक्षा करते हैं (भीष्मवधपर्व : ६. १०६, ८) । (ग) युद्ध के दसवें दिन यह लोग भीष्म की रक्षा कर सकने में असफल हो जाते हैं, क्योंकि इसी दिन अर्जुन ने भीष्म का वध कर दिया (भीष्मवधपर्व : ६. ११९, ८२) । (घ) युद्ध के चौदहवें दिन जयद्रथ का वध करने से अर्जुन को रोकने का प्रयास करते हैं (जयद्रथवधपर्व : ७. ९१, ३८); ये लोग अर्जुन द्वारा श्रुतायुध और सुदक्षिणा का वध कर देने पर क्रोध से अर्जुन पर आक्रमण करते हैं (७. ९३, २); दुर्योधन कहता है कि जयद्रथ की रक्षा करने में ही इनका वध हुआ (७. १५०, ३४); युधिष्ठिर इनका वध करते हैं (घटोत्कचवधपर्व : ७. १५७, २९); भीम इनका वध करते हैं (७. १६१, ४) । युद्ध के पन्द्रहवें दिन के बाद संजय, धृतराष्ट्र से इनके वध हो चुकने का वर्णन करते हैं (८. ५, ३८) ।

अभीसार (= गत शब्द) की संजय ने भारतवर्ष की एक जाति के रूप में गणना कराई है (जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व : ६. ९. ५४) ।

अमध्य, महापुरुष का १३४वाँ नाम है (१२. ३३८, ४) । = श्रीकृष्ण (१२. ३४२, ९०) ।

१. अमर, बहुवचन में देवों के लिये प्रयुक्त हुआ है । 'सामरानपि लोकान्', (९. ३३, २१) । 'उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते', (९. ४४, ९) । 'स्वाध्यायममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने वने', (९. ५१, ४५) । 'पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम्', (९. ५७, ६८) । 'प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि', (१०. १७, ७) । 'सोऽकल्पयमाने भागे तु कृत्तिकावासा मखेऽमरैः', (१०. १८, ४) । 'ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोऽच्छिनत्', (१०. १८, १९) । 'विहरन्त्यमरा इव', (११. ११, ७) । 'ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान् प्राप्स्यस्यमरवत्प्रभो', (११. १७, ८) । 'न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधने रणे । गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि हि ॥', (९. ३३, १२) ।

२. अमर = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अमरण = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अमरद्विषः, असुरों के लिये प्रयुक्त हुआ है (९. ६३, १७) ।

अमरपर्वत, एक प्राचीन स्थान का नाम है जिसे नकुल ने विजित किया था (२. ३२, ११) ।

अमरप्रभु = विष्णु (सहस्र नामों में से एक) ।

अमरराज = इन्द्र ।

अमरश्रेष्ठ = इन्द्र ।

अमरह्रद, एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है (३. ८३, १०६) ।

अमराधिप = इन्द्र ।

अमरावती, इन्द्र की पुरी का नाम है : 'शक्रेणेवामरावती', (१. १७७, ४२) । 'शक्रोऽमरावतीम्', (२. २, २६) । 'शक्रस्य पुरीं तामरावतीम्', (३. ४२, ४२) । 'अर्जुन ने सिद्धों और चारणों से सेवित रम्य अमरावती पुरी को देखा; अप्सराओं से सेवित नन्दनवन का भी उन्होंने सेवन किया; जिन्होंने तपस्या नहीं की है वे इस पुरी का दर्शन नहीं कर सकते, इत्यादि', (३. ४३) । 'शक्रस्य भवनमपश्यममरावतीम्' (३. १६८, ४५) । 'अमरावतिसङ्काशं तत् पुरं कामगं महत्', (३. १७३, २८) । 'देवराजस्य पुरीत्वर्याऽमरावती', (५. १०३, १) । 'वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम्', (७. ११, २२) । 'प्रविष्टोऽप्यमरावतीम्', (७. ७७, १९) । 'गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम्', (१३. ३०, १८) । 'उत्तरान्वा कुरुन्पुण्यानथवाऽप्यमरावतीम्', (१३. ५४, १६) । 'स गच्छत्यमरावतीम्', (१३. १४२, ४०) ।

अमरेश्वर = इन्द्र ।

अमानिन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक) ।

अमावसी, अमावस्या के लिये प्रयुक्त हुआ है : 'अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन्महाद्युतिः', (९. ३५, ७९) । 'अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः', (९. ३५, ८५) । 'अद्यापि क्षीयते सोमोऽमावास्यान्तरस्थः पौर्णमासी', (१२. ३४२, ५८) ।

अमावसु, पुरूरवस् द्वारा उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न एक राजा का नाम है (१. ७५, २४) ।

अमाहठ, धृतराष्ट्र नाग के कुल में उत्पन्न एक नाग का नाम है, जो जनमेजय के सर्पसत्र में भस्म हुआ था (१. ५७, १६) ।

अमित = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अमितध्वज, एक प्राचीन राजा का नाम है (१२. २२७, ५०) ।

अमितविक्रम = विष्णु (सहस्र नामों में से एक) ।

अमिताशन = विष्णु (सहस्र नामों में से एक) ।

अमिताशना, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, ७) ।

१. अमितौजस्, एक पराक्रमी पाञ्चाल्य क्षत्रिय का नाम है जो केतुमत् असुर के अंश से प्रगट हुआ था (१. ६७, १२) ।

२. अमितौजस, उन राजाओं में से एक का नाम है जिनके पास पाण्डवों की ओर से निमन्त्रण भेजा गया था (५. ४, १२) । पाण्डव पक्ष के महारथियों के अन्तर्गत इसकी गणना कराई गई है (५. १७१, ११) ।

अमित्रजित् = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

अमुख = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अमुख्य = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अमूर्तरयस्, एक प्राचीन राजा का नाम है (३. ९५, १७)।

१. **अमूर्तरयस**, एक प्राचीन राजा का नाम है (१२. १६६, ७५)।

२. **अमूर्तरयस** = गय।

अमूर्त्ति = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमूर्तिमत् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. **अमृत** से उस सुधा का तात्पर्य है जो देवों का पेय था और जिसे पीने से व्यक्ति अमर हो जाता था (९. ४६, ५०)। 'अमृतसमैर् वाक्यैर्', (११. २, १)। 'वागमृतम्', (११. ७, १)।

२. **अमृत** = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

३. **अमृत** = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

४. **अमृत**, महापुरुषस्तव (१२. ३३८, ४) में १३ वाँ नाम है।

१. **अमृतप**, एक दानव का नाम है (१. ६५, २९)।

२. **अमृतप** = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमृतपा = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अमृतमन्थन—"एक समय मेरुपर्वत पर अमृत-प्राप्ति के सम्बन्ध में विचार करने के लिये एकत्र देवताओं को सम्बोधित करते हुये भगवान् नारायण ने ब्रह्मा से देवों और असुरों को साथ लेकर अमृत-प्राप्ति के हेतु सागर-मन्थन का आदेश दिया (१. १७)।" "तदनन्तर सम्पूर्ण देवता मिलाकर पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल को उखाड़ने के लिये उसके समीप गये। इस पर्वत की ऊँचाई ११ सहस्र योजन थी और भूमि के नीचे भी वह इतने ही सहस्र योजनों तक प्रतिष्ठित था। जब देवगण उसे उखाड़ न सके तब उन्होंने भगवान् विष्णु और ब्रह्मा से उसे उखाड़ने का आग्रह किया। देवताओं के ऐसा कहने पर भगवान् विष्णु ने नागराज अनन्त को मन्दराचल उखाड़ने की आज्ञा दी। ब्रह्मा की प्रेरणा और भगवान् नारायण के आदेश से अतुल पराक्रमी अनन्त (शेषनाग) ने मन्दराचल को वन और वनवासी जन्तुओं सहित उखाड़ लिया। पर्वत को उखाड़ने के पश्चात देवों ने समुद्र से भी उसके मन्थन की आज्ञा प्राप्त की। तदुपरान्त देवों ने कच्छपराज से मन्दराचल का आधार बनने का निवेदन किया। कच्छपराज की स्वीकृति पाने पर देवराज इन्द्र ने उस पर्वत को वज्र द्वारा दबा रखा। इस प्रकार पूर्वकाल में देवताओं, दैत्यों, और दानवों ने मन्दराचल को मथनी और वासुकि को डोरी बनाकर अमृत के लिये जलनिधि समुद्र का मन्थन आरम्भ किया। असुरों ने नागराज वासुकि के मुखभाग को पकड़ा और उसकी पूँछ की ओर देवगण खड़े हुये। भगवान् अनन्त उस ओर खड़े थे जिधर भगवान् नारायण थे और वे वासुकि के सिर को बार-बार ऊपर उठाकर झटका देते थे। बार-बार खींचे जाते हुये वासुकि नाग के मुख से निरन्तर धूम और अग्नि की लपटों के साथ गरम श्वास निकलने लगी—यहाँ मन्थन के समय की स्थिति का विस्तृत वर्णन है। थोड़े मन्थन के पश्चात् बड़े-बड़े वृक्षों के भाँति-भाँति के गोंद तथा ओषधियाँ प्रचुर मात्रा में टपक-टपक कर समुद्र के जल में गिरने लगीं। उन उत्तम रसों के सम्मिश्रण से समुद्र का समस्त जल दूध बन गया और दूध से घृत भी बनने लगा, किन्तु बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी अमृत प्रगट नहीं हुआ। मन्थन करते हुये देव और असुरगण उस समय अत्यन्त श्रान्त हो गये थे। तब ब्रह्मा ने नारायण से देवों और असुरों को बल प्रदान करने का आग्रह किया। नारायण द्वारा बल प्राप्त करके उन लोगों ने पुनः वेगपूर्वक मन्थन करते हुये सागर की समस्त जलराशि को अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया। तब उस महासागर से श्वेतवर्ण और प्रसन्नात्मा चन्द्रमा प्रगट हुये। तदुपरान्त लक्ष्मी, सुरादेवी, श्वेत अश्व, (उच्चैःश्रवस्), और कौस्तुभमणि प्रगट हुयें। ये सब सूर्य के मार्ग का आश्रय लेकर देवलोक में चले गये। तदुपरान्त दिव्य शरीरधारी धन्वन्तरि प्रगट हुये जो अमृत से परिपूर्ण श्वेत कलश लिये हुये थे। तत्पश्चात् श्वेतवर्ण और चतुर्दन्त विशालकाय ऐरावत प्रगट हुआ। इसके बाद अत्यन्त वेग से मन्थन करने पर कालकूट उत्पन्न हुआ जो धूमयुक्त अग्नि की भाँति सहसा सम्पूर्ण जगत को आच्छादित करके भस्म करने लगा। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान् शङ्कर ने लोकरक्षा के लिये उस महाविष का पान कर लिया और तब से ही शङ्कर नीलकंठ के नाम से विख्यात हुये। यह सब अद्भुत बातें देखकर दानव निराश हो गये और अमृत तथा लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये उन्होंने देवताओं के साथ महान वैर-साधन किया। तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लेकर मनोहारिणी स्त्री के अद्भुत रूप में दानवों के पास पदार्पण किया। समस्त दैत्य और दानव उस मोहिनी पर आसक्त हो गये और उनका चित्त मूढ़ता से आच्छादित हो गया। अतः उन सब ने स्त्री रूपधारी विष्णु को वह अमृत सौंप दिया। भगवान् की उस मूर्त्तिमयी माया ने हाथ में कलश लेकर देवताओं को अमृत पिलाया और दैत्यों को उससे वंचित रक्खा जिससे वहाँ अत्यन्त कोलाहल मच गया (१. १८)।" "अमृत के हाथ से निकल जाने पर दैत्य और दानव संगठित हो गये और नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर देवताओं पर टूट पड़े। उधर अनन्त शक्तिशाली नर सहित भगवान् नारायण ने देवताओं को अमृत से तृप्त कर दिया। जिस समय देवगण उस अमृत का पान कर रहे थे ठीक उसी समय राहु नामक एक दानव ने भी देवता का रूप धारण करके अमृत पीना प्रारम्भ कर दिया। वह अमृत उस दानव के कण्ठ तक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूर्य ने उसको पहचान लिया। तब नारायण ने अपने चक्र से उस दानव का मस्तक काट दिया जो आज भी सूर्य और चन्द्रमा के साथ अपने वैर के कारण उनको ग्रसित करता रहता है। तदुपरान्त उस खारे समुद्र के समीप देवताओं और असुरों का अत्यन्त भयंकर संग्राम छिड़ गया—युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। जब वह भयंकर युद्ध हो रहा था तब वहाँ अपने चक्र सहित नारायण, तथा अपने दिव्य धनुष सहित नर भी देवों की ओर से युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार देवताओं के द्वारा पीड़ित दैत्यगण पृथिवी के भीतर और खारे पानी के समुद्र में प्रवेश कर गये। विजय प्राप्त करके देवताओं ने मन्दराचल को सम्मानपूर्वक उसके पूर्वस्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया, और इन्द्र के नेतृत्व में उन्होंने अमृत की वह निधि किरीटिन् (भगवान् नर) को रक्षा के लिये सौंप दी (१. १९)।"

अमृतवपुस् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमृतांशूद्भव = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमृता, मगध देश की राजकुमारी, जो अनश्वा की पत्नी और परिक्षित् की माता थी (१. ९५, ४१)।

अमृताक्ष, महापुरुषस्तव (१२. ३३८, ४) में १४ वाँ नाम है।

अमृताश = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमृतेशय = महापुरुष का (१२. ३३८, ४ के बाद) ८० वाँ नाम)।

अमृत्यु = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमेयात्मन् = शिव।

१. **अमोघ**, बृहस्पतिकुल में उत्पन्न एक अग्नि का नाम है (३. २१९, २४)।

२. **अमोघ**, भद्रवट-यात्रा के समय शङ्करजी के दाहिने भाग में चलने वाला एक यक्ष (३. २३१, ३५)।

३. **अमोघ**, स्कन्द का एक नाम है (३. २३२, ५)।

४. **अमोघ** = शिव (१०. ७, ६); सहस्र नामों में से एक (१३. १७, ११४)।

५. **अमोघ** = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अमोघा, स्कन्द की अनुचरी मातृका का नाम है (९. ४६, २१)।

अमोघार्थ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अम्बरावृत = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. अम्बरीष, एक राजा का नाम है, जिन्हें संजय ने अतीतकाल में हुआ बताया है (१. १, २२७)। यमराज की सभा में इनके उपस्थित रहने का उल्लेख है (२. ८, १२)। नाभाग-पुत्र अम्बरीष ने प्राचीन काल में यमुना तट पर यज्ञ किया था और इस यज्ञ के पूर्ण होने के पश्चात् उन्होंने सदस्यों को दस पद्म मुद्रायें दान करके यज्ञ और तपस्या द्वारा परम सिद्धि प्राप्त की थी (३. १२९, २)। 'स्मृत्वानुभावं राजर्षेरम्बरीषस्य धीमतः', (३. २६३, ३३)। 'अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च,' (५. ९०, १८; ६. ९, ६)। "नारद ने कहा कि उन्होंने सुना है कि अकेले ही दस लाख राजाओं से युद्ध करनेवाले नाभाग-पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्यु को प्राप्त हुये थे। शत्रुओं से घिर जाने पर राजा अम्बरीष ने शारीरिक बल, अस्त्रबल, और युद्ध सम्बन्धी शिक्षा के द्वारा शत्रुओं को पराजित करके सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त की, और शास्त्रानुसार सौ अभीष्ट यज्ञों का अनुष्ठान किया—यहाँ यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। इन यज्ञों में राजा अम्बरीष ने दस लाख यज्ञ-कर्त्ता ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दस लाख राजाओं को ही दे दिया था। यज्ञ में यजमान अम्बरीष ने उन मूर्द्धाभिषिक्त नरेशों और सैकड़ों राजकुमारों को दण्डों और कोशों के साथ ब्राह्मणों के अधीन कर दिया था। नारद ने सृञ्जय से बताया कि जब अम्बरीष जैसे पुण्यात्मा भी जीवित नहीं रह सके तब दूसरों की बात ही क्या है? (७. ६४)।" पूर्वकाल में समस्त पृथिवी इनके अधीन थी (१२. ८, ३४)। 'मांधाता अम्बरीषश्च', (१२. १४, ३८)। 'अम्बरीषं च नाभागं', (१२. २९, १००. १०२)। इन्द्र और अम्बरीष के संवाद में नदी और यज्ञ के रूपों का वर्णन तथा समरभूमि में युद्ध करते हुये शूरवीरों को उत्तम लोक की प्राप्ति का कथन (१२. ९८, २. ३, ६. १४. ५१)। प्रतापी राजा अम्बरीष ने ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गायें दान में देकर देशवासियों सहित स्वर्गलोक प्राप्त किया था (१२. २३४, २३)। इन्द्र को आगे करके यात्रा के लिये निकले हुये राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों में इनका भी उल्लेख है (१३. ९४, ५)। अगस्त्य के सम्मुख उनके कमल-पुष्प न चुराने के सम्बन्ध में इनकी शपथ (१३. ९४, २९)। अश्विनमास में मांस-भक्षण का निषेध करनेवाले राजाओं में इनकी भी गणना है (१३. ११५, ६८)। ऐश्वर्यशाली राजा अम्बरीष अमित तेजस्वी ब्राह्मण को अपना सारा राज्य सौंपकर देवलोक को प्राप्त हुये (१३. १३७, ८)। उन राजाओं के अन्तर्गत इनकी भी गणना है जिनके नामों का प्रातःकाल और सांयकाल पाठ करने से व्यक्ति धर्म के फल का भागी होता है (१३. १६५, ५३)। राजा अम्बरीष की गाई हुई आध्यत्मिक स्वराज्य-विषयक गाथा का उल्लेख (१४. ३१, ४. ५. १३)।

२. अम्बरीष, उन दिव्य नागों में से एक का नाम है जिसने बलराम जी के रसातल प्रवेश के समय उनके मुख से बाहर निकले हुये नाग का समुद्र में स्वागत किया था (१६. ४, १६)।

१. अम्बष्ठ, बहुवचन में एक जाति के लोगों का द्योतक है। पश्चिम के एक देश का भी नाम है जिसे नकुल ने विजित किया था (२. ३२, ७)। युधिष्ठिर को भेंट देने वाले लोगों में इनका भी उल्लेख है (२. ५२, १५)। भीष्म की रक्षा करने वाले राजाओं में यह भी थे (६. ८, १३)। भीष्म की सेना में इनकी उपस्थिति (६. २०, १०)। युद्ध के १० वें दिन अर्जुन द्वारा पराजित किये गये राजाओं में इनका भी उल्लेख है (६. ११७, ३४)। युद्ध के दसवें दिन भीष्म को युद्धभूमि में अकेला न छोड़ने वाले राजाओं में यह भी थे (६. ११९, ८२)। कर्ण के साथ इनका युद्ध (७. ४, ६)। द्रोण के पीछे चलने वाली सेना में यह भी थे (७. ७, १५)। युद्ध के बारहवें दिन द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित गरुड़व्यूह के पृष्ठभाग में इनके स्थित होने का उल्लेख है (७. २०, १०)। दुर्योधन के संरक्षण में रहकर शक, कम्बोज आदि के साथ इन्होंने भी सात्यकि पर आक्रमण किया था (७. १२१, १४)। १४ वें दिन के बाद रात्रियुद्ध में युधिष्ठिर ने अम्बष्ठों का वध करना आरम्भ किया (७. १५७, २८)। भीमसेन ने अन्य लोगों के साथ-साथ इन्हें भी यमलोक भेज दिया (७. १६१, ३)। ब्राह्मण आदि चार वर्णों से अनुलोम और विलोम वर्ण की स्त्रियों के साथ परस्पर संयोग होने से उत्पन्न क्षत्रियों के अन्तर्गत इनका भी उल्लेख है (१२. २९६, ८)।

२. अम्बष्ठ, अम्बष्ठ-देश के एक राजा जो 'श्रुतायु' नाम से प्रसिद्ध थे। यह अभिमन्यु द्वारा पराजित हुये थे (६. ९६, ३९)। चेदिराज ने इन्हें युद्ध में द्रोणाचार्य के पास आने से रोक दिया (७. २५, ४९)। इन्होंने अस्थिभेदी शलाका से चेदिराज को धराशायी बना दिया (७. २५, ५०)। इन्होंने सेना के भीतर जाते हुये अर्जुन को रोका (७. ९०, ६०)। अर्जुन के साथ युद्ध करते हैं (७. ९०, ६२. ६५)। अर्जुन द्वारा इनका वध (८. ५, १८)। अम्बष्ठपुत्र का दुर्योधनपुत्र-लक्ष्मण द्वारा मारा जाना (८. ६, ११)।

अम्बष्ठक, एक राजा का नाम है, जिसने युद्ध के ८ वें दिन अभिमन्यु के साथ युद्ध किया था (६. ९६, १८)।

अम्बष्ठपति (अम्बष्ठों के अधिपति)—युद्ध के तीसरे दिन अर्जुन पर इनका आक्रमण (६. ५९, ७६)। अर्जुन द्वारा इनकी पराजय का उल्लेख (६. ५९, १३६)।

अम्बा, काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री का नाम है जिसका सौभराजा शाल्व ने वरण किया था। अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य के साथ विवाह करने के उद्देश्य से भीष्म ने इसका अपहरण किया। परन्तु भीष्म ने शाल्व के साथ विवाह का निश्चय देखकर इसे मुक्त कर दिया। सौभराज के द्वारा अस्वीकृत होने पर इसका शिखण्डिन् के रूप में जन्म हुआ: 'ज्येष्ठां काशिपतेः सुतां', (१. १०२, ६४)। २. ४१, २२; ५. १७६, ९--१०; १७५, २. १०; १७६, १८. ४५. ५७; १७७, ५. २७. ३५; १७८, ५. ७; 'रामाम्बयोः', (५. १७८, ८)। भीष्म के वध के लिये अम्बा को कठोर तपस्या (५. १८६, १९–२९)। गंगा द्वारा नदी होने के शाप से इसका वत्सभूमि में नदी होना (५. १८६, ४०)। देखिये ५. १८८, २०; १९२, ६४; ६. १४, ४७; ७. ७२, २५, भी।

अम्बाजन्मन्, एक तीर्थ का नाम है (३. ८३, ८१)।

अम्बालिका—"सत्यवती के गर्भ से राजा शान्तनु के दो पुत्र हुये जिनका नाम विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद पड़ा। इनमें से चित्राङ्गद युवावस्था में पदार्पण करने के पूर्व ही एक गन्धर्व द्वारा मारे गये, परन्तु विचित्रवीर्य जीवित रहकर राजा हुये। विचित्रवीर्य ने काशिराज की दो पुत्रियों, अम्बिका और अम्बालिका, से विवाह किया। आम्बिका और अम्बालिका की माता का नाम कौसल्या था। विचित्रवीर्य की निःसन्तान ही मृत्यु हो गई, और तब उनकी माता सत्यवती की आज्ञा से महर्षि व्यास ने इनके वंश की रक्षा के लिये धृतराष्ट्र, पाण्डु, और विदुर नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये (१. ९५, ४९–५५)।" 'अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥', (१. १०२, ६५)। 'अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं', (१. १०६, १५)। 'अम्बां चैवाम्बिकां चैव तथैवाम्बालिकामपि', (५. १७३, ९. १०)। 'भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप। प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेभ्यो हि यवीयसे ॥', (५. १७५, १५)। 'इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता। अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन ॥', (५. १७६, ४५)।

१. अम्बिका, अम्बालिका की बहन का नाम है: 'विचित्रवीर्यः खलु कौसल्यात्मजेऽम्बिका बालिके काशिराजदुहितरावुपयेमे', (१. ९५, ५१)। 'अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥', (१. १०२, ६५)। 'ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः', (१. १०६, ४)। 'अम्बिके तव पौत्रस्य दुर्नयात्किल भारताः', (१. १२८, १०)। 'तथेत्युक्तात्वम्बिकया भीष्मम्', (१. १२८, १२)। 'रूपेणाप्रतिमाः, सर्वाः काशिराजसुतास्तदा। अम्बां चैवाम्बिकां चैव तथैवाम्बालिकामपि', (५. १७३, ९. १०)। 'भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप', (५. १७५, १५)। 'अम्बिकाम्बालिके कन्ये', (५. १७६, ४५)।

२. अम्बिका, उन अप्सराओं में से एक का नाम है जो अर्जुन के जन्मोत्सव पर नृत्य करने आई थीं (१. १२३, ६२)।

३. अम्बिका, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, १२)। उन मातृकाओं में इनका भी उल्लेख है जिनके नामोच्चारण से समस्त पापों का विनाश हो जाता है (१३. १५०, २८)।

अम्बिकाभर्तृ = शिव

अम्बिकासुत = धृतराष्ट्र

अम्बुजाल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अम्बुप = वरुण

अम्बुमती, एक नदी का नाम है (३. ८३, ५६)।

अम्बुवाहिनी, उन नदियों में से एक का नाम है जिनका प्रातः एवं सायंकाल जप किया जाता है (६. ९, २७; १३. १६५, २०)।

अम्बुवीच—कर्ण ने भीष्म और द्रोण से, 'प्रत्येक जीव की प्रसन्नतायें उसके भाग्य पर आधारित हैं न कि उसके सुहृदों पर' इत्यादि, बातें बताते हुये कहा कि राजगृह में मगधराज अम्बुवीच नामक एक राजा थे। उनका सम्पूर्ण राजकार्य उनके मन्त्री महाकर्णि के अधिकार में था और राजा स्वयं राजकार्यों पर कोई भी अंकुश नहीं रखते थे। राजा का वह मन्त्री, यद्यपि, राजा के उपभोग में आने योग्य स्त्री, रत्न, धन, तथा ऐश्वर्य का स्वयं ही भोग करता था तथापि राज्य प्राप्त करने में असफल रहा।

अम्बुशायिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अम्बोपाख्यान (अम्बा का आख्यान)—'अम्बोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम्', (१. २, ६६)। 'रथातिरथसंख्यानमम्बोपाख्यनमेव च', (१. २, २४१)।

अम्बोपाख्यानपर्वन्, उद्योगपर्व के अन्तर्गत आने वाले महाभारत के ६६वें अवान्तरपर्व का नाम है। "दुर्योधन के यह पूछने पर कि वह शिखण्डी का वध क्यों नहीं करेंगे, भीष्म ने कहा : 'शान्तनु की मृत्यु और चित्राङ्गद के भी स्वार्गवास के बाद माता सत्यवती की सम्मति से मैंने विचित्रवीर्य को राजा के पद पर सविधि अभिषिक्त कराया। तब मैंने योग्यकुल से कन्या लाकर उनका विवाह करने का निश्चय किया। उन्हीं दिनों मैंने सुना कि अम्बा, अम्बिका, और अम्बालिका नाम की काशिराज की तीन कन्याओं का स्वयंवर होने वाला है। ये तीनों कन्यायें 'वीर्यशुल्काः' नाम से विख्यात थीं। मैं स्वयंवर का समाचार पाकर एक ही रथ के द्वारा काशिराज के नगर में गया। वहाँ पहुँचकर मेरी दृष्टि आमन्त्रित होकर आये हुये सम्पूर्ण राजाओं पर पड़ी। युद्ध के लिये खड़े हुये उन समस्त राजाओं को ललकारते हुये मैंने उक्त तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बैठा लिया। पराक्रम ही इन कन्याओं का शुल्क है, यह जानकर उन्हें रथपर चढ़ा लेने के पश्चात मैंने उन राजाओं से बार-बार अपना नाम बताया। मैंने उन सब राजाओं पर विजय प्राप्त की, और तीनों कन्याओं को अपने साथ हस्तिनापुर ले आया। हस्तिनापुर पहुँच कर मैंने उन कन्याओं को अपने भ्राता से विवाहित करने के लिये माता सत्यवती को सौंप दिया (५. १७३)।" "मेरे पराक्रम को सुनकर माता सत्यवती अत्यन्त हर्षित हुईं। जब विवाह का मुहूर्त्त उपस्थित हुआ, तब काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा ने कुछ लज्जित होकर बताया कि उसने अपने मन से पहले ही शाल्वराज को अपना पति चुन लिया है, और उन्होंने भी उसका एकान्त में वरण कर लिया है। उसने यह भी बताया कि उसके पिता को यह बात ज्ञात नहीं है। इस बात को बताते हुये उसने अपने ऊपर कृपा करने का निवेदन किया (५. १७४)।" "तब मैंने माता सत्यवती से आज्ञा लेकर मन्त्रियों, ऋत्विजों, और पुरोहितों का परामर्श लिया, और राजकुमारी अम्बा को जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। आज्ञा पाकर राजकन्या अम्बा वृद्ध ब्राह्मणों के संरक्षण में और अपनी धाय के साथ शाल्वराज के नगर चली गई। जब उसने शाल्वराज से विवाह का प्रस्ताव किया तब उन्होंने उसे इसलिये अस्वीकृत कर दिया कि वह दूसरे के साथ विवाहित होने के लिये अपहृत की जा चुकी थी। शाल्वराज की बात सुनकर अम्बा ने बताया कि वह अपनी इच्छा से तथा प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के साथ नहीं गई थी बल्कि भीष्म ने बलपूर्वक अपहरण किया था और वह रोती हुई ही उनके साथ गई थी। किन्तु भीष्म से भयभीत होने के कारण शाल्वराज ने अम्बा को किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं किया। तब दीनभाव से रुदन करती हुई अम्बा उस नगर से निकल गयी। मार्ग में वह भीष्म, अपने पिता, स्वयं अपने को (इसलिये कि अपहरण के समय वह भीष्म के रथ से कूद क्यों नहीं गई), शाल्व, और विधाता को धिक्कारती रही। उसने भीष्म से प्रतिशोध लेने का भी निश्चय किया। नगर से बाहर निकल कर उसने तपस्वी महात्माओं के आश्रमपर रात्रि व्यतीत की। उसी आश्रम में कठोर व्रत का पालन करनेवाले शैखावत्य नाम से प्रसिद्ध एक तपोवृद्ध श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे जो शास्त्र और आरण्यक आदि के आचार्य थे (५. १७५)।" "तपस्वियों ने अम्बा से अपने पिता के घर लौट जाने का आग्रह किया किन्तु अम्बा ने बताया कि उसके लिये पुनः पिता के घर लौट जाना असम्भव है, क्योंकि वहाँ उसे अपने बन्धु-बान्धवों से अपमानित होकर रहना पड़ेगा। अतः उसने उसी आश्रम में रहकर तपस्या करने की इच्छा प्रगट की। अम्बा के इस प्रस्ताव से जब तपस्वीगण चिन्तित थे तब उसी समय अम्बा के नाना राजर्षि होत्रवाहन वहाँ आये और सारा वृत्तान्त सुनने के बाद अम्बा को तपस्या-परायण राम जामदग्न्य के पास जाने का परामर्श दिया और यह बताया कि यदि भीष्म उनकी (रामजामदग्न्य = परशुराम) बात नहीं मानेंगे तो वे उन्हें युद्ध में मार डालेंगे। होत्रवाहन ने बताया कि परशुराम जी सदैव महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं जहाँ वेदवेत्ता महर्षि, गन्धर्व, तथा अप्सरायें भी रहती हैं। राजा होत्रवाहन जब राजकन्या अम्बा से इस प्रकार कह रहे थे उसी समय परशुरामजी के प्रिय सेवक अकृतव्रण वहाँ प्रगट हुये। अकृतव्रण ने बताया कि दूसरे दिन प्रातःकाल परशुराम जी स्वयं उस आश्रम में आकर होत्रवाहन से मिलने वाले हैं। होत्रवाहन ने अकृतव्रण से अम्बा की सम्पूर्ण कथा का वर्णन किया (५. १७६)।" "दूसरे दिन रामजामदग्न्य अपने शिष्यों से घिरे और हाथों में धनुष धारण किये हुये सृञ्जयराज होत्रवाहन के सम्मुख उपस्थित हुये। परशुराम का सविधि स्वागत करने के पश्चात अम्बा ने उनसे भीष्म का वध करने का निवेदन किया (५. १७७)।" "परशुराम जी ने अम्बा से बताया कि वह केवल किसी वेदवेत्ता ब्राह्मण की आवश्यकता होने पर ही शस्त्र उठाते हैं। उस समय अकृतव्रण ने भी अम्बा के निवेदन की पुष्टि की। दूसरे दिन प्रातःकाल आश्रम के सब लोग अम्बा तथा परशुराम के साथ कुरुक्षेत्र आये और सरस्वती नदी के तट पर रात्रि व्यतीत की। तीसरे दिन परशुराम ने भीष्म के पास सन्देश भेजा, जिसे सुनकर ऋत्विजों तथा पुरोहितों के साथ भीष्म उनकी सेवा में उपस्थित हुये। परशुराम ने भीष्म से अम्बा को विचित्रवीर्य के साथ विवाहित कर देने का आग्रह किया किन्तु भीष्म ने इसे अस्वीकार कर दिया। तब क्रोध में आकर परशुराम ने युद्ध में भीष्म का वध कर देने की धमकी दी। भीष्म ने बताया कि उन्होंने (परशुराम ने) स्वयं ही उन्हें (भीष्म को) चार प्रकार के धनुर्वेद की शिक्षा दी है; अतः वे (परशुराम) उनके गुरु हुये। भीष्म ने मरुत्त द्वारा कहे हुये पुराण के इस श्लोक का उद्धरण दिया : 'गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥' तदुपरान्त परशुराम जी युद्ध की इच्छा से कुरुक्षेत्र में गये। भीष्म ने सर्वप्रथम हस्तिनापुर आकर सत्यवती से सारा समाचार बताया, और फिर अपने रथ पर आरूढ़ होकर कुरुक्षेत्र गये। उस समय गङ्गा ने इन दोनों को युद्ध से विरत करने का प्रयास किया किन्तु वह निष्फल रही (५. १७८)।" "भीष्म ने परशुराम से रथ पर आरुढ़ होकर युद्ध करने का आग्रह किया किन्तु परशुराम ने कहा कि पृथिवी उनका रथ है, चारों वेद ही उनके वाहन हैं, वायुदेव उनके सारथि हैं, और वेद-

मातायें ही उनके कवच हैं। यह कह कर परशुराम ने भीष्म को बाणों से आवृत्त कर दिया। उस समय भीष्म ने देखा कि परशुराम एक अद्भुत रथ—रथ का विस्तृत वर्णन किया गया है—में विराजमान हैं और अकृतव्रण उनका सारथि है। भीष्म ने पैदल जाकर परशुराम का समादर किया और उसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ, जो कई दिनों तक चलता रहा। अन्त में श्रद्धा और दया के कारण भीष्म ने परशुराम पर प्रहार करना बन्द कर दिया और सूर्यास्त हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो गया (५. १७९)।" "दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। परशुराम ने भीष्म के वायव्यास्त्र को गुह्यक, और आग्नेयास्त्र को वारुणास्त्र से निष्फल कर दिया। भीष्म की एक अल्पकालिक मूर्च्छा के कारण अकृतव्रण और अम्बा इत्यादि अत्यन्त प्रसन्न हुये, किन्तु मूर्च्छा समाप्त होने के बाद भीष्म ने बाणों के प्रहार से परशुराम को अचेत कर दिया। मूर्च्छित परशुराम के धरती पर गिर पड़ने पर तपस्वियों और अम्बा ने उनको सान्त्वना दी। तदुपरान्त भीष्म और परशुराम का पुनः घोर युद्ध हुआ। संध्या समय परशुराम रणभूमि से हट गये (५. १८०)।" "दूसरे दिन युद्ध पुनः आरम्भ हुआ और संध्यासमय तक चलता रहा (५. १८१)।" "प्रातःकाल युद्ध आरम्भ होने के पश्चात भीष्म का सारथि मारा गया और भीष्म भी बाण के आघात से घायल होकर धरती पर गिर पड़े। उस समय अग्नि के समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण समरभूमि में आये और भीष्म को घेर कर अपनी भुजाओं पर ही उनके शरीर को धारण करके खड़े हो गये। उन ब्राह्मणों से सुरक्षित होने के कारण भीष्म को धरती का स्पर्श नहीं करना पड़ा। उस समय गङ्गा भीष्म के सारथि के स्थान पर आसीन हो गयीं और रथ के अश्वों की बागडोर अपने हाथ में ले ली। रथ पर बैठने के पश्चात भीष्म ने हाथ जोड़कर माता गङ्गा को विदा किया और स्वयं ही संध्या समय तक युद्ध करते रहे। भीष्म के प्रहार से परशुराम कुछ क्षणों के लिये अचेत हो गये। उस समय राहु ने सूर्य को ग्रसित कर लिया, साथ ही पृथिवी पर अनेक उत्पातसूचक और भयंकर अपशकुन होने लगे। संध्यासमय युद्ध पुनः बन्द हो गया। इस प्रकार प्रतिदिन संध्या के समय बन्द होकर, प्रातःकाल पुनः युद्ध आरम्भ हो जाता था। यह युद्ध २३ दिनों तक चलता रहा (५. १८२)।" "रात्रि के समय उक्त आठ ब्राह्मण स्वप्न में भीष्म के सम्मुख उपस्थित हुये और उन्होंने सान्त्वना देते हुये भीष्म को बताया कि वे परशुराम पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। उन ब्राह्मणों ने भीष्म को उस प्रस्वाप नामक अस्त्र का भेद बताया जिससे स्वयं परशुराम भी अपरिचित थे, किन्तु जो भीष्म को पूर्व जन्म में ज्ञात था। उन लोगों ने यह भी बताया कि इस अस्त्र से परशुराम का विनाश नहीं होगा वरन् वह चुप-चाप प्रसुप्त हो जायेंगे। इस प्रकार इस अस्त्र के द्वारा युद्ध में विजयी होने के पश्चात सम्बोधनास्त्र के प्रयोग द्वारा परशुराम को पुनः जगाया जा सकेगा। इस प्रकार आदेश देने के पश्चात वे अष्टवसु अदृश्य हो गये (५. १८३)।" "प्रातःकाल पुनः युद्ध आरम्भ हुआ और परशुराम तथा भीष्म दोनो ने ही ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जिसके द्वारा प्रलयकाल का दृश्य उपस्थित हो गया। उन ब्रह्मास्त्रों के तेज से पीड़ित होकर ऋषि, गन्धर्व, तथा देवता अत्यन्त संतप्त हो उठे; पर्वत, वन और वृक्षों सहित सम्पूर्ण पृथिवी हिलने लगी, और देवता, असुर, तथा राक्षसों सहित सम्पूर्ण जगत में हाहाकार मच गया। उसी समय भीष्म ने प्रस्वापनास्त्र को छोड़ने का विचार किया और तत्काल ही अष्टवसुओं के कथनानुसार उस विचित्र अस्त्र के प्रयोग सम्बन्धी मन्त्र उन्हें स्मरण हो आये (५. १८४)।" "तदनन्तर प्रस्वापनास्त्र का प्रयोग न करने के लिये आकाशवाणी हुयी। देवर्षि नारद ने भी भीष्म से परशुराम पर इस अस्त्र का प्रयोग न करने का आग्रह किया। उक्त अष्टवसुओं ने भी नारद के आग्रह की पुष्टि की जिसके फलस्वरूप भीष्म ने प्रस्वापनास्त्र को धनुष से उतार दिया। प्रस्वापनास्त्र को धनुष से उतरते देख परशुराम ने सहसा अपने को भीष्म से पराजित घोषित किया। तदुपरान्त परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि तथा पितामह ऋचीक मुनि को देखा जिन्होंने उनसे क्षत्रियों, तथा विशेषकर भीष्म से, युद्ध न करने का आग्रह किया। उन लोगों ने यह भी बताया कि स्वयंभू ब्रह्मा ने भगवान् नर के अवतार अर्जुन के हाथों ही भीष्म के वध का विधान किया है। ऋचीक आदि मुनियों, नारद, गङ्गा, और पितरों की मध्यस्थता से युद्ध समाप्त हुआ। उक्त अष्टवसुओं ने भीष्म से अपने गुरु परशुराम के पास जाने के लिये कहा। तब परशुराम ने अम्बा को बुलाकर दीनतापूर्ण बाणी में कहा (५. १८५)।" "परशुराम ने अम्बा से कहा कि अब वे उसके लिये इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकते। यह सुनकर रोष भरे नेत्रों वाली वह राजकन्या भीष्म के वध के उपाय का चिन्तन करती हुई तपस्या का दृढ संकल्प लेकर वहाँ से चली गई। परशुराम महर्षियों सहित विदा लेकर महेन्द्र पर्वत पर चले गये। भीष्म भी हस्तिनापुर लौटे जहाँ माता सत्यवती ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त भीष्म ने कुछ गुप्तचरों को अम्बा की गतिविधि का पता लगाने के लिये नियुक्त कर दिया। जिस दिन वह कन्या तपस्या का निश्चय करके वन गई उस दिन भीष्म व्यथित, दीन, और अचेत से हो गये, किन्तु नारद और व्यास ने उन्हें सान्त्वना दी। अम्बा ने यमुना के तट पर अत्यन्त कठोर तपस्या आरम्भ की। उसने भोजन का परित्याग कर दिया जिसके कारण अत्यन्त दुर्बल और रूक्ष हो गई। वह तपोधना कन्या छः मास तक केवल वायु पीकर निश्चल भाव से खड़ी तपस्या करती रही। तदुपरान्त एक वर्ष तक यमुना के जल में प्रवेश कर निराहार तपस्या की। इसी प्रकार बारह वर्षों तक कठोर तपस्या में संलग्न होकर अम्बा ने पृथिवी और आकाश को संतप्त कर दिया। तदनन्तर वह सिद्धों और चारणों द्वारा सेवित वत्सदेश की भूमि में गयी और वहाँ पुण्यशील तपस्वी महात्माओं के आश्रमों में विचरण करने लगी। उस समय, भीष्म का वध करने की इच्छा से तपस्या करने वाली अम्बा पर क्रुद्ध होकर गंगा ने यह कहते हुये उसे शाप दिया कि मृत्यु के पश्चात वह एक टेढ़ी-मेढ़ी नदी हो जायगी जिसमें केवल वर्षा ऋतु में ही जल दिखाई देगा। जब अम्बा ने पुनः वत्सभूमि में प्रवेश किया तो उक्त नदी बन गयी जो केवल वर्षा में ही जल से पूर्ण रहती थी। फिर भी तपस्या के प्रभाव से अम्बा का केवल आधा शरीर ही नदी बन सका जब कि उसका आधा अङ्ग वत्सदेश में ही एक कन्या के रूप में प्रगट हुआ (५. १८६)।" "वत्सभूमि के तपस्वियों से अम्बा ने बताया कि वह पुरुष शरीर की प्राप्ति के लिये दृढ़ निश्चय लेकर तपस्या में प्रवृत्त हुई है जिससे वह भीष्म से प्रतिशोध ले सके। तब भगवान् शिव ने उन महर्षियों के बीच ही अपने साक्षातरूप से प्रगट होकर अम्बा को भीष्म का वध करने में समर्थ होने का वरदान दिया। शिव ने उससे बताया कि रणक्षेत्र में वह भीष्म का अवश्य वध करेगी और इसके लिये आवश्यकतानुसार पुरुषत्व भी प्राप्त कर लेगी। साथ ही दूसरे शरीर में प्रवेश करने पर भी उसे इन सब बातों का स्मरण बना रहेगा। शिव ने उसे बताया कि वह द्रुपदकुल में उत्पन्न होकर महारथी वीर बनेगी। तदुपरान्त शिव वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। इसके पश्चात उन महर्षियों के देखते-देखते ही अम्बा यमुना-तट पर भीष्म के वध का संकल्प लेकर अग्नि में भस्म हो गई (५. १८७)।" "दुर्योधन के यह पूछने पर कि पहले कन्या के रूप में उत्पन्न होकर शिखण्डी पुनः किस प्रकार पुरुष हो गया, भीष्म ने इस प्रकार कहा: राजा द्रुपद की महिषी पुत्र-विहीन थी। उसी समय महाराज द्रुपद सन्तान की प्राप्ति और भीष्म के वध के लिये घोर तपस्या कर रहे थे। शिव के प्रगट होने पर उन्होंने एक पुत्र की याचना की जिसे सुनकर शिव ने उन्हें एक ऐसी कन्या का वरदान दिया जो बाद में पुरुष हो जायगी। कुछ समय के पश्चात महाराज द्रुपद की पत्नी ने गर्भ धारण किया और एक सुन्दरी कन्या को जन्म दिया, जिसका द्रुपदराज ने पुत्र के रूप में प्रचलित करते हुये शिखण्डिन् नाम रक्खा। यह रहस्य सबको अज्ञात

रहते हुये भी गुप्तचरों के समाचार और नारद के कथन से भीष्म को ज्ञात हो गया (५. १८८)।" "धनुर्विद्या आदि के लिये शिखण्डी द्रोणाचार्य का शिष्य हुआ। यद्यपि शिखण्डिन् अब तक स्त्री ही था, तथापि भगवान् शिव के वचन में विश्वास करके द्रुपद ने दशार्णराज हिरण्यवर्मा की पुत्री का शिखण्डिन् के लिये वरण किया। विवाह के पश्चात पत्नी सहित शिखण्डी पुनः काम्पिल्य नगर में आया। कुछ समय के पश्चात दशार्णराज की कन्या ने यह जान लिया कि शिखण्डिन् स्त्री है। इस रहस्य के प्रगट हो जाने पर हिरण्यवर्मा के साथ भयंकर युद्ध का संकट उपस्थित हो गया (५. १८९)।" "स्वभावतः भीरु होने के कारण द्रुपद ने अत्यन्त भय का अनुभव किया और अपनी पत्नी से मिलकर संकट-निवारण का उपाय पूछा। यद्यपि राजा द्रुपद सब कुछ जानते थे, फिर भी, दूसरे लोगों में अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिये महारानी से शिखण्डिन् के विषय में प्रश्न पूछा (५. १९०)।" "महारानी ने कहा कि निःसन्तान होने के कारण उसे जब कन्या उत्पन्न हुयी तो उसने सौतों के भय से उसे पुत्र ही बताया। भगवान् शंकर के वरदान-वाक्य पर दृष्टि रखकर ही उसने इस पुत्री के पुत्र होने की घोषणा की। महारानी के इस कथन के पश्चात द्रुपदराज ने अपने नगर की रक्षा की विशेष व्यवस्था की और आसन्न युद्ध को टालने के लिये महारानी के साथ-साथ देवताओं की अर्चना आरम्भ कर दी। अपने माता-पिता को इस प्रकार शोकमग्न देखकर शिखण्डिनी शोक-लज्जित होकर अपने शरीर का अन्त करने के लिये निर्जन और गहन बन में चली गई। उसी वन में कुबेर के अनुचर, महान् शक्तिशाली यक्ष, स्थूणाकर्ण का निवास-स्थान था। शिखण्डिन् को देखकर स्थूणाकर्ण ने उससे वरदान मागने के लिये आग्रह किया। उसकी बात सुनकर शिखण्डिनी ने सारा वृत्तान्त बताते हुये केवल उतने ही समय तक पुरुष बन जाने की इच्छा प्रगट की जब तक राजा हिरण्यवर्मा उनके नगर से चले नहीं जाते (५. १९१)।" "शिखण्डिनी की यह बात सुनकर उस यक्ष ने थोड़े समय के लिये उसका स्त्रीत्व लेकर उसे अपना पुरुषत्व दे दिया। शिखण्डिनी ने हिरण्यवर्मा के लौट जाने पर उसके पुरुषत्व को लौटा देने का वचन दिया और इस प्रकार यक्ष का पुरुषत्व प्राप्त करके वह अत्यन्त हर्ष के साथ अपने पिता के नगर लौट आया। उसका वृत्तान्त सुनकर द्रुपद को अपार हर्ष हुआ और उन्हें भगवान् शिव के दिये हुये वरदान का स्मरण हो आया। तदनन्तर राजा द्रुपद ने दशार्णराज के पास दूत भेजकर यह कहलाया कि उसका पुत्र पुरुष है। इधर दुःख और शोक में डूबे हुये दशार्णराज ने पाञ्चालराज द्रुपद पर आक्रमण किया और काम्पिल्य नगर के निकट पहुँच कर एक ब्राह्मण से द्रुपद के पास यह संदेश भेजा कि वे मन्त्रियों और पुत्रों सहित द्रुपदराज का सर्वथा उन्मूलन कर देंगे। दूत से समाचार प्राप्त होने पर द्रुपदराज ने हिरण्यवर्मा के पास पुनः यह समाचार भेजा कि वे स्वयं आकर स्पष्ट रूप से परीक्षा कर लें कि उनका कुमार पुत्र है अथवा कन्या। द्रुपद का उत्तर सुनकर हिरण्यवर्मा ने अत्यन्त मनोहर रूपोंवाली कुछ श्रेष्ठ स्त्रियों को यह जानने के लिये भेजा कि शिखण्डी स्त्री है या पुरुष। उन युवतियों से वास्तविक बात जानकर राजा हिरण्यवर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुये और अत्यन्त उल्लास के साथ कुछ समय तक द्रुपदराज के पास ही रहे। उन्होंने अपने जामाता शिखण्डी को बहुत अधिक धन आदि दिया तथा मिथ्या समाचार भेजने के लिये अपनी पुत्री की भर्त्सना की। इधर कुछ काल के पश्चात नर वाहन कुबेर लोक में भ्रमण करते हुये स्थूणाकर्ण के निवास स्थान पर पधारे। अन्य यक्षों से स्थूणाकर्ण के स्त्री रूप का समाचार पाकर क्रोध में कुबेर ने शाप देते हुये कहा कि पापी स्थूणाकर्ण का स्त्रीत्व अब वैसा ही बना रहेगा। फिर भी यक्षों के अनुनय विनय करने पर यक्षराज ने अपने शाप की सीमा का निर्धारण करते हुये कहा कि शिखण्डी की मृत्यु के पश्चात ही स्थूणाकर्ण को पुरुषत्व पुनः प्राप्त हो सकेगा। जब शिखण्डी अपना वचन पूर्ण करने के लिये स्थूणाकर्ण के पास आया तब उसने इस शाप को बताते हुये शिखण्डिन् को उसी प्रकार वापस कर दिया। द्रुपद ने अपने पुत्र शिखण्डी को धार्तराष्ट्रों और धृष्टद्युम्न के साथ ही चतुष्पाद धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये द्रोणाचार्य के पास भेजा। इस प्रकार काशिराज की ज्येष्ठ कन्या अम्बा ही द्रुपद के कुल में शिखण्डी के रूप में उत्पन्न हुई। भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री हो, जो पहले स्त्री रह कर पुरुष हुआ हो, जिसका नाम स्त्री के समान हो, उस पर वे अस्त्र-प्रहार नहीं करेंगे (५. १९२)।" "दुर्योधन ने भीष्म से पूछा कि वे भीम आदि से युक्त पाण्डवसेना का कितने समय में विध्वंस कर सकते हैं। भीष्म ने बताया कि वे एक मास में यह कार्य कर सकते हैं; द्रोणाचार्य ने भी ऐसा ही कहा। कृपाचार्य ने दो मास की अवधि-निश्चित की, जब कि अश्वत्थामा ने दस रात्रियों और कर्ण ने पाँच रात्रियों में शत्रुसेना का विनाश करने के अपने सामर्थ्य की चर्चा की। उस समय कर्ण का उपहास करते हुये भीष्म ने कहा : 'जब तक तुम कृष्ण सहित अर्जुन को रथ पर आते हुये नहीं देखते, और जब तक उनके साथ तुम्हारा युद्ध नहीं होता तब तक ही तुम इस प्रकार की अभिमान भरी बातें कह सकते हो' (५. १९३)।" "कौरवसेना में जो वार्त्तालाप हुआ उसका समाचार पाकर युधिष्ठिर ने भी अर्जुन से यह प्रश्न किया कि वे कौरवसेना का कितने समय में संहार कर सकते हैं। अर्जुन ने बताया कि श्रीकृष्ण की सहायता से युक्त होकर वे देवताओं सहित तीनों लोकों, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों, तथा भूत, वर्त्तमान, भविष्य को भी पलक मारते-मारते नष्ट कर सकते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि किरात-वेष में भगवान् पशुपति ने उन्हें वह अस्त्र दिया है जिससे वे (पशुपति) प्रलयकाल में समस्त प्राणियों का संहार करते हैं। इस अस्त्र से भीष्म आदि कोई भी परिचित नहीं। तदुपरान्त अर्जुन ने युधिष्ठिर के मित्र महारथियों का उल्लेख करते हुये युधिष्ठिर को बताया कि वे (युधिष्ठिर) स्वयं भी तीनों लोकों का संहार करने में समर्थ हैं (५. १९४)।" "तदनन्तर निर्मल प्रभात-काल में कौरवसेना ने युद्धक्षेत्र के लिये प्रस्थान किया। अवन्ती देश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द आदि द्रोणाचार्य के नेतृत्व में चलने लगे। अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ आदि महारथी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ दूसरे सैन्यदल के रूप में सुसज्जित होकर निकले। कृतवर्मा आदि महारथी दुर्योधन को आगे करके तृतीय सैन्यदल के रूप में चले। दुर्योधन की इस विशाल सेना ने जहाँ अपना शिविर बनाया, वह द्वितीय हस्तिनापुर की भाँति प्रतीत हो रहा था (५. १९५)।" "इसी प्रकार युधिष्ठिर ने भी धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु इत्यादि महारथियों को युद्ध के लिये प्रस्थान का आदेश दिया। युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न को आगे करके उनके साथ अभिमन्यु आदि को प्रथम सैन्यदल के रूप में, और भीमसेन, अर्जुन, और सात्यकि आदि को द्वितीय सैन्यदल के रूप में भेजा। तत्पश्चात राजा विराट और द्रुपद को साथ लेकर अन्यान्य भूपालों सहित राजा युधिष्ठिर स्वयं चले। थोड़ी दूर जाने के पश्चात युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के पुत्रों को भ्रम में डालने के लिये अपनी सेना का पुनर्संगठन किया। उन्होंने अभिमन्यु आदि के साथ भीमसेन की अध्यक्षता में प्रथम दल का संगठन किया; बीच के दल में विराट आदि को रक्खा, और जिस दल में स्वयं राजा युधिष्ठिर थे उसी में अपनी विशाल सेना के साथ चेकितान और धृष्टकेतु भी थे। युधिष्ठिर के पीछे सुचित्र के पुत्र आदि चल रहे थे (५. १९६)।"

१. अम्भोनिधि = कृष्ण

२. अम्भोनिधि = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अम्भोरुह, महर्षि विश्वामित्र के पुत्र का नाम है (१३. ४, ५९)।

अयति, ययाति के भ्राता का नाम है (१. ७५, ३०)।

अयनम् = स्कन्द (३. २३२, १२)। (अर्द्धवर्ष)।

अयवाह, एक भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ४५)।

अयुतनायिन्—अयुत (दस हजार) पुरुषमेध यज्ञों का अनुष्ठान करने से इनका यह 'अयुतनायिन्' नाम हुआ (१. ९५, २०. २१)।

अयुताक्ष = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अयोग (एक जाति) उन जातियों में से एक का नाम है जो मुख्य चार जातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र—के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई (१२. २९६, ९)।

अयोध्या, इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी, एक नगरी का नाम है। 'ख्यातां पुरीम् इमां लोकेष्वयोध्यां', १. १७७, ३६; 'अयोध्यावासिनो जनाः', (१. १७७, ३९)। अयोध्या के महाबली नरेश दीर्घयज्ञ को भीम ने अपने वश में कर लिया था (२. ३०, २)। राजा भीम से बिदा लेकर वार्ष्णेय अयोध्या नगरी को चला गया (३. ६०, २४)। ऋतुपर्ण की नगरी (३.६६, २१; ३. ७०, २. १८)। 'गत्वा सुदेव नगरीमयोध्यावासिनं नृपम्। ऋतुपर्ण वचो ब्रूहि सम्पतन्निव कामगः', (३. ७०, २३)। 'अयोध्याधिपतिः', (३. ७१, २४)। 'योऽसावयोध्यां', (३. ७४, १७)। 'अयोध्यां जातं दाशरथिम्', (३. ९९, ४१)। 'रामस्त्वयोध्यामगमत्पुनः' (३. ९९, ४३)। दाशरथि राम की राजधानी (३. १४८, १५)। इक्ष्वाकुकुल के वीर राजा परिक्षित् यहाँ निवास करते थे (३. १९२, ३)। इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद यहाँ निवास करते हुये पृथिवी पर शासन करते थे (३. २०२, १)। सीता की खोज करके हनुमान के लौटने पर राम पुनः अयोध्या पर शासन करने की आज्ञा करते हैं (३. २८२, ३५)। 'पुरीं रम्यामयोध्यां', (३. २९१, ३७. ६०)। गालव इक्ष्वाकु राजा हर्यश्व के पास अयोध्या आये (५. ११५, १८)।

अयोध्याधिपति (अयोध्या का राजा) = राम दाशरथि (१२. २९, ६१)।

अयोनिज = विष्णु (१२. ३४७, ३९); सहस्र नामों में से एक (१३. १४९, ७४)।

अयोबाहु, धृतराष्ट्र के पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६७, ९८; ११७, ६)। भीमसेन द्वारा युद्ध करते हुये इनका मारा जाना (७. १५७, १७)।

अयःशङ्कु, केकय देश में उत्पन्न हुये महादैत्यों में से एक का नाम है (१. ६७, १०)

अयःशिरस्, कश्यप-पत्नी दनु के पुत्रों में से एक का नाम है (१. ६५, २३)। यह केकय देश में एक राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ था (१. ६७, १०)।

अरट्ट, उस देश का नाम है, जहाँ योद्धाओं को साथ लेकर द्रोण के मारे जाने के पश्चात कृतवर्मा ने पलायन किया था (७. १९३, १३)।

अरणीपर्वन् = आरणेयपर्वन् (१. १, ८९)। अरणीपर्व में पहुँचकर जल से भरे हुये घड़ों के दान का उल्लेख (१८. ६. ५९)।

अरणीसुत = शुक (१२. ३२७, ३१)।

१. अरण्यक से वेद के उपाङ्ग, उन आरण्यक ग्रन्थों का तात्पर्य है जिनमें अरण्य-जीवन सम्बन्धी नियमों का विधान है : 'आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा', (१. १, २६५)। 'दक्षोधृतव्रतो धीमान् शास्त्रे चारण्यके गुरुः', (१. ४, ६; ५. १७५, ३८)। 'वेदवादानतिक्रम्य शास्त्राण्यारण्यकानि च। विपाट्य कदलीस्तम्भं सारं ददृशिरे न ते ॥', (१२.१९, १७)। 'तत्रारण्यकशास्त्राणि समधीत्य स धर्मवित्। ऊर्ध्वरेताः प्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरसात्मताम् ॥', (१२. ६१, ५)। 'अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रो निराशीः कर्मसंस्तुतः। आरण्यकपदोद्भूता भागास्तत्रोपकल्पिताः ॥', (१२. ३३६, ११)। 'शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदान् गिरन्बहून्। आरण्यकं जगौ देवो हरिर्नारायणो वशी ॥', (१२. ३३९, ८)। गायन्त्यारण्यके विप्रा मद्भक्तास्ते हि दुर्लभाः', (१२. ३४२, ९८)। 'आरण्यकं च वेदेभ्यः', (१२. ३४३, १३)। 'आरण्यकेन सहितं नारायणमुखोद्भवम्। उपदिश्य ततो धर्मं ब्रह्मणेऽमिततेजसे ॥', (१२. ३४८, ३१)। 'एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च ॥ परस्पराङ्गान्येतानि पाञ्चरात्रं च कथ्यते (१२. ३४८, ८१-८२)। 'सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदारण्यकमेव च। ज्ञानान्येतानि ब्रह्मर्षे लोकेषु प्रचरन्ति ह ॥', (१२. ३४९, १)। 'तस्मै सर्वं विधिं राज्ञे राजाऽऽचख्यौ महामतिः। आरण्यकं महाराज व्यासस्यानुमते तदा ॥', (१५. १९, १३)। 'कच्चिद्बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् ।', (१५. २८, ४)।

२. अरण्यक = आरण्यकपर्वन् (१. २, ४९)। 'अतः परं तृतीयं तु ज्ञेयमारण्यकं महत्' = वनपर्वन् , (१. २, १४२)। अर्जुन को आरण्यक अर्थात् वनवास, के समय पर भगवान् शंकर का दर्शन और वरदान प्राप्त हुआ था, अतः आरण्यक = वनपर्वन् (७. ८१, २०)। आरण्यक (वनपर्व) में पहुँचकर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को फल मूलों से तृप्त करे (१८. ६, ५९)।

अरण्यकपर्वन्, वनपर्व के अन्तर्गत आने वाले महाभारत के ३०वें अवान्तर पर्व का नाम है : "जनमेजय के यह पूछने पर कि जूये में पराजित होने के पश्चात पाण्डवों ने किस प्रकार वन में विचरण किया, वैशम्पायन ने कहा : अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ पाण्डव-गण वर्धमानपुर की दिशा में स्थित नगर-द्वार से हस्तिनापुर से बाहर निकले, और कृष्णा के साथ उत्तराभिमुख होकर यात्रा आरम्भ की। इन्द्रसेन आदि चौदह से अधिक सेवक, स्त्रियों को शीघ्रगामी रथों पर बैठाकर, उनके पीछे चल पड़े। पाण्डवों को वन की ओर जाते हुये देखकर हस्तिनापुर के निवासियों ने भी उनके साथ वन में जाने का आग्रह किया, परन्तु युधिष्ठिर ने उन्हें लौटाते हुये भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, तथा कुन्ती आदि का यत्नपूर्वक पालन करने का आग्रह किया। पुरवासियों के लौट जाने पर पाण्डवगण रथों पर बैठकर गंगा के किनारे प्रमाणकोटि नामक महान् वट के समीप आये। संध्या होते-होते उस वट के निकट पहुँचकर पाण्डवों ने पवित्र जल का स्पर्श किया और रात्रि वहीं व्यतीत की। उस रात्रि में पाण्डव केवल जल पीकर ही रह गये। कुछ ब्राह्मण भी पाण्डवों के साथ स्नेहवश वहाँ तक चले आये थे जिनमें से कुछ साग्नि और कुछ निरग्नि थे। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को आश्वासन देते हुये रात्रि-पर्यन्त उनका मनोरंजन किया (३. १)।" "रात्रि व्यतीत होने के पश्चात जब प्रभात का उदय हुआ तब वे ब्राह्मण भी पाण्डवों के साथ वन की ओर जाने के लिये उद्यत हुये। युधिष्ठिर ने उन्हें फल-मूल और अन्न के आहार पर रहकर कष्ट उठाने की अपेक्षा वापस लौट जाने के लिये अत्यन्त प्रेरित किया, किन्तु उन ब्राह्मणों ने अपने अन्न आदि की स्वयं व्यवस्था करने तथा वन में जाने का ही निश्चय व्यक्त किया। उस समय सांख्य और योग में प्रवीण शौनक नामक एक ब्राह्मण ने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुये बताया कि संसार से सन्यास लेना मात्र ही पर्याप्त नहीं वरन् धन की चिन्ता का परित्याग भी आवश्यक है। युधिष्ठिर ने कहा कि उन्हें इसलिये धन की चिन्ता नहीं है कि वे उससे स्वयं भोग्य पदार्थों का सेवन कर सकें। वे केवल ब्राह्मणों के भरण-पोषण के लिये ही धन चाहते थे। युधिष्ठिर ने कहा कि 'गृहस्थ का यह धर्म है कि वह अपने हाथ से भोजन न बनाने वाले सन्यासियों को पका-पकाया अन्न दे। वह केवल अपने लिये ही अन्न को न पकाये और ऐसे किसी पशु का वध न करे जिसे देवों, पितरों के लिये अर्पित न किया गया हो। उसे स्वयं भी ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये जो देवताओं और पितरों को अर्पित न किया गया हो।' शौनक ने कहा कि यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, मन और इन्द्रियों का संयम, तथा लोभ का परित्याग, ये धर्म के आठ मार्ग हैं; जिनमें से प्रथम चार पितृयान के मार्ग में स्थित हैं, जब कि अन्तिम चार को देवयान मार्ग का स्वरूप बताया गया है। इन धर्मों का कर्त्तव्य-बुद्धि से और अभिमान का परित्याग करके पालन करना चाहिये। इन्हीं नियमों के पालन से देवगण ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं, और इससे ही रुद्र, साध्य, आदित्य, वसु, तथा अश्विनीकुमार ऐश्वर्य से युक्त होकर प्रजाजनों का धारण-पोषण करते हैं। उन्होंने युधिष्ठिर से भी मन से इन्द्रियों को वश में करके तपस्या

द्वारा सिद्धि तथा योगजनक ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये कहा। यज्ञ, युद्धादि कर्मों से प्राप्त होने वाली पितृ-मातृमयी सिद्धि युधिष्ठिर को प्राप्त हो चुकी थी, अतः शौनक ने उनसे तपस्या द्वारा योगसिद्धि प्राप्त करने का प्रयास करने के लिये कहा जिससे उनके मनोरथ पूर्ण हो सकें (३.२)।" "तब युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित धौम्य से परामर्श किया। धौम्य ने युधिष्ठिर को सूर्य की महिमा बताते हुये सूर्य के १०८ नाम बताये, जिनके उच्चारण द्वारा व्यक्ति को स्त्री, पुत्र, धन, रत्नराशि, पूर्व जन्म की स्मृति, धैर्य तथा उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। धौम्य से इस प्रकार उपदेश लेने के पश्चात युधिष्ठिर ने गंगा के जल में स्नान करके पुष्प और नैवेद्य आदि उपहारों द्वारा सूर्य का पूजन आरम्भ किया। वे चित्त को एकाग्र करके इन्द्रिय-संयम के साथ केवल वायु पीकर रहने लगे। गंगा-जल का आचमन करके पवित्र हो वाणी को वश में रखकर प्राणायाम पूर्वक युधिष्ठिर ने सूर्य की उपासना आरम्भ की। युधिष्ठिर के स्तवन से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें दर्शन देकर एक ताँबे का अक्षय पात्र दिया। सूर्य ने बताया कि युधिष्ठिर के रसोईघर में इस पात्र द्वारा फल, मूल, भोजन करने के योग्य अन्य पदार्थ, तथा शाकादि जो चार प्रकार की भोजन-सामग्री तैयार होगी वह तब तक अक्षय बनी रहेगी जब तक द्रौपदी स्वयं भोजन न करके परसती रहेंगी। सूर्य ने युधिष्ठिर को उस दिन से चौदहवें वर्ष में पुनः राज्य प्राप्त करने का आशीर्वाद भी दिया। तदुपरान्त सूर्य अन्तर्ध्यान हो गये। युधिष्ठिर गंगाजी के जल से बाहर निकले और धौम्य का चरण स्पर्श करने के बाद अपने भ्राताओं को हृदय से लगाया। तदुपरान्त उसी समय युधिष्ठिर ने उस पात्र में भोजन तैयार कराया। उसमें पकाया हुआ चार प्रकार का थोड़ा सा भी भोजन उस समय तक समाप्त नहीं होता था जब तक ब्राह्मण, युधिष्ठिर के भ्राता-गण, स्वयं युधिष्ठिर और अन्त में द्रौपदी भी भोजन नहीं कर लेती थीं। द्रौपदी के भोजन कर लेने के पश्चात उस पात्र का भोजन समाप्त हो जाता था। इस प्रकार तपस्या करने के पश्चात पाण्डवगण ब्राह्मण समुदाय से घिरे हुये और पुरोहित धौम्य के साथ काम्यक वन की ओर चले (३.३)।" "धृतराष्ट्र ने विदुर से पुरवासियों की सहानुभूति और स्नेह प्राप्त करने का उपाय पूछा। विदुर ने कहा: 'हे धृतराष्ट्र, आप धर्म के मार्ग पर स्थिर रहकर यथाशक्ति अपने तथा पाण्डु के पुत्रों का पालन कीजिये। आपने पाण्डवों को जो राज्य दिया था वह सब उन्हें मिल जाना चाहिये और शकुनि का तिरस्कार करना चाहिये। यदि आपका पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों को उनका राज्य देने के लिये प्रस्तुत न हो तो उसे विवश करके आप युधिष्ठिर को राज्यपद पर अभिषिक्त कर दीजिये, क्योंकि ऐसा होने पर भूमण्डल के समस्त राजा वैश्यों की भाँति उपहार लेकर हम कौरवों की सेवा में उपस्थित होंगे। हे राजन्! दुर्योधन, शकुनि, तथा कर्ण को चाहिये कि वे पाण्डवों को प्रेम पूर्वक अपनायें, दुःशासन भरी सभा में भीमसेन तथा द्रौपदी से क्षमा मागें। ऐसा करने पर आप कृत्य-कृत्य हो जायेंगे।' किन्तु विदुर की बात को न मानकर धृतराष्ट्र ने कहा, 'तुमने जो कुछ कहा है वह पाण्डवों के लिये तो हितकर है किन्तु मेरे पुत्रों के लिये अहितकर। अतः अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, तुम यहाँ रहो अथवा चले जाओ।' ऐसा कहकर धृतराष्ट्र सहसा उठकर महल के भीतर चले गये। विदुर भी यह कहकर कि इस कुल का नाश अवश्यम्भावी है, पाण्डवों के पास चले गये (३.४)।" "पाण्डवगण वनवास के लिये गंगा के तट से कुरुक्षेत्र गये। वहाँ से उन्होंने क्रमशः सरस्वती दृषद्वती, और यमुना नदियों का सेवन करते हुये एक अन्य वन में प्रवेश किया। इस प्रकार वे निरन्तर पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते चले गये। तदनन्तर वे सरस्वती तट पर स्थित काम्यक वन में पहुँचे। विदुर जी भी एक मात्र रथ के द्वारा काम्यक वन में आकर पाण्डवों से मिले। विदुर को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर को यह शङ्का हुई कि कहीं वे उनके आयुधों को जीतने के लिये शकुनि के कहने पर पुनः जूआ खेलने का निमन्त्रण तो नहीं ला रहे हैं। विदुर ने पाण्डवों से बताया कि राजा धृतराष्ट्र ने उनका (विदुर का) तिरस्कार किया है। तदुपरान्त विदुर ने सहायता प्राप्त करने के लिये पाण्डवों को उपदेश दिया (३.५)।" "विदुर के चले जाने के पश्चात धृतराष्ट्र को अत्यन्त पश्चाताप हुआ और वे अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़े। चेतना आने पर उन्होंने संजय से विदुर को लौटा लाने का आग्रह किया। विदुर के लौटने पर धृतराष्ट्र ने उनसे क्षमा याचना की (३.६)।" "विदुर के आने और धृतराष्ट्र द्वारा उनसे क्षमा याचना का समाचार सुनकर दुर्योधन संतप्त हो उठा। उसने शकुनि, कर्ण, और दुःशासन से इस विषय में परामर्श किया। यद्यपि इन तीनों ने दुर्योधन को बताया कि पाण्डवगण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार निर्धारित समय तक वनवास अवश्य करेंगे, तथापि दुर्योधन को विश्वास नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में कर्ण ने यह मत व्यक्त किया कि पाण्डवों का वन में ही वध कर देना चाहिये। कर्ण की बात सुनकर सभी उससे सहमत हो गये और पाण्डवों के वध का निश्चय करके एक साथ नगर से बाहर निकले। उस समय महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास दिव्य दृष्टि से सब कुछ देखकर सहसा वहाँ उपस्थित हुये। उन्होंने उन सबको रोका और प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र के पास शीघ्र आकर कहा (३.७)।" "व्यास जी ने धृतराष्ट्र से दुर्योधन के अन्याय को रोकने और पाण्डवों का वध न करने देने के लिये अनुरोध किया (३.८)।" "जब धृतराष्ट्र ने अपने अविवेकी पुत्र दुर्योधन का पुत्र-स्नेह के कारण परित्याग करने में असमर्थता प्रगट की तब व्यास ने कहा: 'राजन्! प्राचीनकाल में एक बार गोमाता सुरभि स्वर्गलोक में जाकर विलाप करने लगीं। उस समय इन्द्र को उन पर अत्यन्त दया आई। इन्द्र द्वारा कारण पूछने पर सुरभि ने कहा कि उसका एक पुत्र हल में जुतकर अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, क्योंकि उसके उस दुर्बल पुत्र को उसका किसान डंडों से मार-मार कर अत्यन्त त्रस्त कर रहा है। सुरभि ने यह भी बताया कि यद्यपि उसके सहस्रों पुत्र हैं और उसके हृदय में उन सब के प्रति समान भाव भी है, तथापि इस दीन-दुःखी पुत्र के प्रति उसकी दया अधिक उमड़ आई है। सुरभि की बात सुनकर इन्द्र ने किसान के कार्य में विघ्न डालते हुये सहसा भयंकर वर्षा की। इस प्रसंग में सुरभि ने जैसा कहा वह ठीक है। कौरव और पाण्डव दोनों ही तुम्हारे पुत्र हैं, परन्तु जो हीन हों उन पर ही अधिक कृपा होनी चाहिये। इसीलिये मैं पाण्डवों के लिये अधिक चिन्तित हूँ। यदि आप चाहते हैं कि समस्त कौरव यहाँ जीवित रहें तो आपके पुत्र दुर्योधन को पाण्डवों से मेल करके शान्ति पूर्वक रहना चाहिये' (३.९)।" "ऐसा कहकर व्यास जी ने धृतराष्ट्र को महर्षि मैत्रेय के आगमन की सूचना देते हुये बताया कि यदि मैत्रेय के आदेश की अवहेलना की गई तो वे दुर्योधनादि को शाप दे देंगे। मैत्रेय जी ने आकर धृतराष्ट्र और दुर्योधन से पाण्डवों के प्रति सद्भावना का अनुरोध किया, परन्तु दुर्योधन ने मैत्रेय के साथ अशिष्ट व्यवहार किया जिससे रुष्ट होकर उन्होंने उसे शाप दे दिया (३.१०)।"

अरन्तुक, कुरुक्षेत्र की एक सीमा का निर्धारण करने वाले एक द्वार-पाल का नाम है: 'तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च। एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते,' (३.८३, २०८; ९.५३, २४)। तु० की० ३.८३, ५२।

अरविन्दाक्ष = सूर्य, विष्णु (१२.३४८, ४०; सहस्र नामों में से एक)।

अरालि, विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक का नाम है (१३.४, ५८)।

अरिमेजय, एक वृष्णिवंशी योद्धा का नाम है (७.११, २८)।

अरिविन्दवक्त्र = स्कन्द।

अरिष्ट, एक वृषभरूपधारी असुर का नाम है, जिसे पशुओं के हित

की कामना से भगवान् श्री कृष्ण ने मारा था (देखिये गी० सं० २. ३८, २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०१ पर) (

१. अरिष्टनेमि (जिसकी चक्रधारा शुभ कारक है), एक ऋषि का नाम है, जिसका कभी-कभी तार्क्ष्य के साथ समीकरण और कभी-कभी उसी के साथ उल्लेख किया गया है। विनता के छः पुत्रों में इनका भी उल्लेख है (१. ६५, ४०; १२३, ७३)। यमराज की सभा में बैठने वाले ऋषियों में से एक यह भी थे (२. ८, ९. २२)। हैहयवंशी राजा परपुरञ्जय ने अज्ञानवश एक ब्राह्मण (अरिष्टनेमिके पुत्र) का वध कर दिया था। तब सभी हैहयवंशी क्षत्रिय मिलकर इन ब्रह्मर्षि के आश्रम पर आये (३. १८४, ८)। मरीचि के पुत्र कश्यप को कुछ लोग 'अरिष्टनेमि' नाम से भी सम्बोधित करते हैं (१२. २०८, ८)। भीष्म ने युधिष्ठिर से उस प्राचीन इतिहास का वर्णन किया जिसे तार्क्ष्य अरिष्टनेमि ने राजा सगर को सुनाया था (१२. २८८, २)।

२. अरिष्टनेमि —अज्ञातवास के समय सहदेव ने विराट नरेश से अपना परिचय देते हुये कहा कि 'मैं वैश्य हूँ, और मेरा नाम अरिष्टनेमि है' (४. १०, ५)।

३. अरिष्टनेमि, भगवान् श्री कृष्ण का एक नाम है (५. ७१, ५)।

अरिष्टसेन, कौरव पक्ष के एक राजा का नाम है, इन्होंने हिमालय की चौरसभूमि में शल्य, चित्रसेन आदि राजाओं के साथ रात्रि व्यतीत की थी (९. ६, ३)।

अरिष्टा, गन्धर्वराज हंस की माता का नाम है, जो कुरुवंश में व्यासपुत्र धृतराष्ट्र के नाम से पुनः उत्पन्न हुआ था (१. ६७, ८३)।

१. अरिह, अवाचीन के पुत्र का नाम है (१. ९५, १८. १९)।

२. अरिह, देवातिथि के पुत्र का नाम है (१. ९५, २३. २४)।

३. अरिह, (शत्रुओं का हनन करने वाला), धृतराष्ट्र का एक पुत्र प्रतीत होता है (९. २६, ५)।

अरुज, रावण के एक योद्धा राक्षस का नाम है (३. २८५, २)।

१. अरुण (सूर्य का सारथि), कश्यप और विनता के पुत्र का नाम है। इनकी माता ने शीघ्रतावश पुत्र-दर्शन की लालसा से अंडा फोड़ दिया था जिससे ये अपुष्टाङ्ग ही निकल पड़े और क्रोधित होकर अपनी माता को शाप दे दिया। तदनन्तर ये अन्तरिक्ष में उड़ गये, तभी से प्राची में इनका दर्शन होता है (१. १६, २२. २३)। पक्षी गरुड़ अपने भाई अरुण को पीठ पर चढ़ाकर पितृ-गृह से माता के समीप महासागर के दूसरे तट पर आये। किन्तु जब सूर्य ने सम्पूर्ण लोकों को दग्ध करने का विचार किया तो गरुड़ इनको पुनः पूर्व दिशा में सूर्य के समीप रख आये (१. २४, ३. ४)।" "जब सूर्य राहु द्वारा ग्रसित होने पर पीड़ित हुये और देवों से उन्हें कोई सहायता न मिली तो वे क्रुद्ध हो गये। और अस्ताचल पर जाकर अपने तेज से लोकों को दग्ध करने लगे। तब देवगण और ऋषिगण ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने अरुण को सूर्य का सारथि बनने तथा उनके तेज का अपहरण कर लेने की आज्ञा दी (१. २४, १६. १८-२०)।" "कश्यप ने विनता से बताया : 'बालखिल्यों की तपस्या तथा मेरे संकल्प से तुम्हें दो पुत्र प्राप्त होंगे, जो सम्पूर्ण पक्षियों के इन्द्र-पद का उपभोग करेंगे'। तदुपरान्त उन्होंने इन्द्र से कहा कि ये दोनों महापराक्रमी भ्राता उनके सहायक होंगे। कश्यप के ऐसा कहने पर इन्द्र निःशङ्क चले गये और विनता ने अरुण तथा गरुड़ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये (१. ३१, २७–३४)।" विनता के छः पुत्रों में इनकी गणना (१. ६५, ४०)। इनकी गणना आदित्यों में की जाती है (१. ६६, ३९)। इनकी पत्नी श्येनी ने सम्पाती और जटायु नामक दो पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया (१. ६६, ६९)। विनता के दो पुत्र–गरुड़ और अरुण ही विख्यात हैं (१. ६६, ७१)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर उपस्थित होने वाले वैनतेयों में यह भी थे (१. १२३, ७३)। 'कालिका-संगमे स्नात्वा कौशिक्यरुणयोर्गतः । त्रिरात्रोपोषितो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥', (३. ८४, १५६)। 'अरुणेन यथा रविः', (७. १७५, १६)। 'अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरः सरः। अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥', (७. १८६, २)। 'प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनारुणीकृतम् ।', (७. १८३, ३)। 'अरुणेन यथा सार्द्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।', (८. ३२, २४)। 'सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।', (८. ३२, २६)। कार्त्तिकेय के अभिषेक के समय ये भी उपस्थित थे (९. ४५, १६)। स्कन्द की बहुत सी अनुचरियों की कान्ति अरुण वर्ण की है (९. ४६, ३४)। पशुपति ने स्कन्द को जो पताका प्रदान की थी वह अरुण और सूर्य के समान प्रकाशमान थी (९. ४६, ४६)। इन्होंने स्कन्द को लाल शिखा वाले अपने पुत्र ताम्रचूड़ (मुर्ग) को समर्पित किया (९. ४६, ५१)। इन्होंने स्कन्द को अग्नि के समान वर्णवाला मुर्गा भेंट किया (१३. ८६, २२)।

२. अरुण = शिव (सहस्र नामों में से एक), इत्यादि।

३. अरुण (णाः) : 'अजाश्च पृश्नयश्चैव सिकताश्चैव भारत। अरुणाः केतवश्चैव स्वाध्यायेन दिवं गताः ॥', (१२. २६, ७ और इस पर नीलकण्ठीः 'अजादयो वालखिल्यवदृषीणां गण विशेषाः')।

४. अरुण, एक नाग का नाम है, जो परमधाम पधारने के समय बलराम जी के स्वागत में उपस्थित हुआ था (१६. ४, १५)।

१. अरुणा, कश्यप और प्राधा की तीस अप्सरा पुत्रियों में से एक का नाम है (१. ६५, ५०)।

२. अरुणा, एक नदी का नाम है। इस नदी में स्नान करके तीन रात्रि उपवास करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है : 'कालिकासंगमे स्नात्वा कौशिक्यरुणयोर्गतः। त्रिरात्रोपोषितो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥', (३. ८४, १५६)। दुर्योधन के योद्धाओं ने अरुणसलिला सरस्वती के तट पर जाकर स्नान और जलपान किया (९. ५, ५१)। महर्षियों की आज्ञा से राक्षसों को मुक्ति दिलाने के लिये सरिताओं में श्रेष्ठ सरस्वती अपनी ही स्वरूपभूता अरुणा को ले आईं, जिसमें स्नान करके वे सभी राक्षस अपने-अपने शरीर का परित्याग करके स्वर्गलोक चले गये (९. ४३, ३०)। अरुणा ब्रह्महत्या का निवारण करने वाली हैं, इस बात को जानकर देवराज इन्द्र भी श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करके ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हुये थे (९. ४३, ३१)। ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा, 'देवेन्द्र ! अरुणा तीर्थ पाप-भय को दूर करने वाला है। तुम वहाँ विधिपूर्वक यज्ञ सम्पादन करके अरुणा के जल में स्नान करो। महर्षियों ने इसके जल को परम पवित्र बना दिया है, तथा सरस्वती ने निकट आकर अरुणा को अपने जल से आप्लावित कर दिया है। सरस्वती और अरुणा का यह संगम महान पुण्यदायक तीर्थ है।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर इन्द्र ने सरस्वती के कुञ्ज में विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणा में स्नान किया और ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो स्वर्ग लोक चले गये (९. ४३, ३९. ४४)। उन नदियों में से एक यह भी है जिनका प्रातः सायं, और रात्रि को जप करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है (१३. १६५, २१)।

अरुणात्मज = जटायु (तु० की० सम्पाति)।

अरुणानुज = गरुड़।

अरुणासंगम, अरुणा और सरस्वती के पवित्र तीर्थ का नाम है, जहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है (९. ४३, ४२)।

अरुन्धती, महर्षि वसिष्ठकी पत्नी का नाम है : 'वसिष्ठे चाप्यरुन्धती', (१. १९९, ६)। "सप्तर्षियों में से एक, महर्षि वसिष्ठ पर उनकी पत्नी अरुन्धती ने शंका की। इस अशुभ चिन्तन के कारण अरुन्धती की अङ्ग-कान्ति धूम और अरुण के समान मन्द हो गई। ये कभी लक्ष्य और कभी अलक्ष्य रहकर प्रच्छन्न वेश में मानों कोई निमित्त देखा करती हैं (१. २३३, २८)।" ब्रह्मा की सभा में इनके उपस्थित रहने का वर्णन

(२. ११, ४२)। 'अरुन्धती वा सुभगा वसिष्ठं लोपामुद्रा वा यथा ह्यगस्त्यम्', (३. ११३, २३)। 'अरुन्धती सहायश्च वसिष्ठो भगवानृषिः', (३. १३०, १७)। सप्तर्षियों की पत्नियों में अरुन्धती ही केवल ऐसी थीं जिनकी तपस्या तथा पति-शुश्रूषा के कारण स्वाहा देवी उनका रूप धारण नहीं कर सकीं (३. २२५, १४)। सप्तर्षियों की पत्नियों में केवल एक यही ऐसी थीं जिनका परित्याग नहीं किया गया (३. २२६, ८)। 'अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चारुन्धती तथा', (५. १११, १४)। 'अरुन्धती तयाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः।', (६. २, ३१)। 'लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ', (७. ९४, ४४)। "इन्द्र ने श्रुतावती से अरुन्धती की कथा का इस प्रकार वर्णन किया : एक बार सप्तर्षियों ने इसी बदरपाचन तीर्थ में अरुन्धती को छोड़कर हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर कठोर व्रत का पालन करनेवाले ये महर्षि जीवन निर्वाह के निमित्त फल-मूल लाने के लिये वन में गये। जब वे हिमालय के वन में निवास कर रहे थे उस समय १२ वर्षों तक उस देश में वर्षा ही नहीं हुई। वे तपस्वी मुनी वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे। उस समय अरुन्धती भी प्रतिदिन तपस्या में लगी रहती थी। अरुन्धती की तपस्या से प्रसन्न होकर एक दिन भगवान शङ्कर ने ब्राह्मण के वेश में उसके पास आकर भिक्षा-याचना की। तब अरुन्धती ने, उन ब्राह्मण से अन्न का संग्रह समाप्त हो जाने के कारण बेर खाने का ही अनुरोध किया। शिव ने उन बेरों को पकाने के लिये कहा। यह आदेश मिलते ही उसने ब्राह्मण का हित करने की इच्छा से उन बेरों को प्रज्वलित अग्नि पर रखकर पकाना प्रारम्भ किया। उस समय उसे अत्यन्त मनोहर एवं दिव्य कथायें सुनायी देने लगीं। वह बिना खाये ही बेर पकाती और मङ्गल कथायें सुनती रही। इतने में ही बारह वर्षों की वह भयङ्कर अनावृष्टि इस प्रकार समाप्त हो गई जैसे उसकी अवधि एक दिन की ही रही हो। तदनन्तर सप्तर्षि-गण हिमालय पर्वत से फल लेकर वहाँ आये। उस समय शङ्कर ने प्रसन्न होकर अरुन्धती को आशीर्वाद और अपने स्वरूप का दर्शन दिया। तदुपरान्त उन्होंने उन सप्तर्षियों से कहा: 'आप लोगों ने हिमालय के शिखर पर जो तपस्या की है वह अरुन्धती की तपस्या से बड़ी नहीं है, क्योंकि इसने बिना भोजन और जल के ही केवल बेर पकाते हुये ही बारह वर्ष व्यतीत किये।' इसके बाद शिव ने अरुन्धती से वरदान माँगने के लिये कहा। अरुन्धती ने शिव से कहा: 'भगवान यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह स्थान बदरपाचन नाम से प्रसिद्ध होकर सिद्धों और देवर्षियों का प्रिय तीर्थ बन जाय। इस तीर्थ में तीन रात्रियों तक पवित्र भाव से निवास करने से मनुष्यों को बारह वर्षों के उपवास का फल प्राप्त हो।' तदनन्तर शिव अपने लोक चले गये। अरुन्धती भूख-प्यास से युक्त होने पर भी न तो थकी थी और न उसकी अङ्ग-कान्ति ही मलिन थी, अतः उसे देखकर सप्तर्षियों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ (९. ४८, ३३-५७)।" जिसने कभी पहले अरुन्धती (नक्षत्र) को देखा हो किन्तु बाद में न देख पाता हो तो उसके जीवन का केवल १ वर्ष ही शेष मानना चाहिये (१२. ३१७, ९)। 'कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः। विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥', (१३. ९३, २१)। 'अरुन्धत्युवाच', (१३. ९३, ४९)। 'ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुन्धत्यास्तथैव च।', (१३. ९३, ५९)। 'अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वाङ्गोपचितं शुभम्।', (१३. ९३, ६४)। 'अरुन्धत्युवाच', (१३. ९३, १००. १३१)। 'भरद्वाजोऽरुन्धती वालखिल्याः', (१३. ९४, ५)। 'अरुन्धत्युवाच', (१३. ९४, ३८)। 'अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते', (१३. १२३, २०)। एक बार अरुन्धती ने ऋषियों, पितरों, और देवताओं को धर्म का रहस्य बताया। सन्तुष्ट होकर इन्होंने अरुन्धती को साधुवाद दिया और ब्रह्मा ने इन्हें वरदान दिया कि इनकी तपस्या सदा बढ़ती रहे (१३. १३०, १. ३. १२. १३)।

अरुन्धतीपति = वसिष्ठ (१. १७४, ५)।

अरुन्धतीवट, एक तीर्थ का नाम है (३. ८४, ४१)।

अरूपा, दक्षकन्या प्राधा की एक पुत्री का नाम है (१. ६५, ४६)।

अरौद्र = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अर्क = सूर्य (१. १, ४२; ६७, १३६; १११, ८)—धौम्य द्वारा वर्णित सूर्य के १०८ नामों में से एक (३. ३, १६)। याज्ञवल्क्य ने इनसे (अर्क से) यजुर्वेद की पन्द्रह शाखायें प्राप्त कीं (१२. ३१८, २१)।

२. अर्क = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

३. अर्क, एक प्राचीन राजा का नाम है, जो पूर्व युग में हुये थे (१. १, २३६)।

४. अर्क, एक दानवराज का नाम है, जो राजर्षि ऋषिक के रूप में उत्पन्न हुआ था (१. ६७, ३२)।

अर्कज, बलीह कुल में उत्पन्न एक राजा का नाम है (५. ७४, १४)।

अर्कपर्ण, कश्यप-पत्नी 'मुनि' के गर्भ से उत्पन्न ६० देवगन्धर्वों में से एक का नाम है (१. ६५, ४३)।

अर्कपुत्र = कर्ण (१. १८७, २२)।

अर्घसम्वाद = अर्घाहरण पर्वन् : 'राजसूयेऽर्घ संवादे शिशुपालवधस्तदा', (१. २, १३५)।

अर्घाभिहरण = अर्घाहरणपर्वन् (१. २, ४८)।

अर्घाहरणपर्वन्, सभापर्व के अन्तर्गत आनेवाले महाभारत के २६ वें अवान्तरपर्व का नाम है। "अभिषेचनीय कर्म के दिन सत्कार के योग्य महर्षिगण तथा ब्राह्मण लोग राजाओं के साथ यज्ञ-भवन में गये। महाराज युधिष्ठिर के उस यज्ञभवन में राजर्षियों के साथ बैठे हुये नारद आदि महर्षि उस समय ब्रह्मा की सभा में एकत्र हुये देवताओं और देवर्षियों के समान सुशोभित हो रहे थे। यज्ञ सम्बन्धी कर्मों से अवकाश पाने पर बीच-बीच में प्रतिभाशाली विद्वान आपस में 'जल्प' (वाद-विवाद) करते थे। युधिष्ठिर की यज्ञशाला के भीतर अन्तर्वेदी के आस-पास उस समय न तो कोई शूद्र था और न कोई व्रतहीन द्विज। उस समय नारद यह जान कर कि राजाओं के उस समुदाय के रूप में वास्तव में देवताओं का ही समागम हुआ है, मन-ही-मन श्रीहरि का चिन्तन कर रहे थे। उन्हें स्मरण हो आया कि पूर्वकाल में सम्पूर्ण भूतों के उत्पादक भगवान नारायण ने ही देवताओं को आदेश दिया था कि वे सब भूतल पर जन्म ग्रहण करके अभीष्ट साधन करते हुये आपस में एक दूसरे को मारकर पुनः देव लोक में आ जायँ। देवों को आदेश देने के बाद नारायण ने स्वयं भी यदुकुल में अवतार लिया और इस समय यहाँ विराजमान हैं। ये स्वयम्भू महाविष्णु ऐसे बल सम्पन्न क्षत्रियों को पुनः उच्छिन्न करना चाहते हैं। नारद जी इसी पुरातन वृत्तान्त का स्मरण करते हुये श्रीकृष्ण को ही नारायण और समस्त यज्ञों के द्वारा आराधनीय मानकर वहाँ आदरपूर्वक बैठे रहे। तत्पश्चात् भीष्मजी ने युधिष्ठिर से वहाँ उपस्थित राजाओं का अर्घ्य देकर यथायोग्य सत्कार करने के लिये कहा। उन्होंने यह भी कहा कि जो राजा सब में श्रेष्ठ और शक्तिशाली हो उसको ही सर्वप्रथम अर्घ्य समर्पित करना चाहिये। युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म ने श्रीकृष्ण को भूमण्डल में सबसे अधिक पूजनीय बताया। भीष्म की आज्ञा मिल जाने पर सहदेव ने श्रीकृष्ण को विधिपूर्वक अर्घ्य समर्पित किया। उस समय राजा शिशुपाल और चेदिराज ईर्ष्या के कारण भीष्म और युधिष्ठिर को उलाहना देकर श्रीकृष्ण पर आक्षेप करने लगे। (२. ३६)।" "शिशुपाल ने भीष्म और युधिष्ठिर पर गम्भीर आक्षेप करते हुये कहा कि श्रीकृष्ण राजा नहीं वरन् एक साधारण व्यक्ति हैं अतः वे पूजा के अधिकारी ही नहीं हैं। वह श्रीकृष्ण की भर्त्सना करते हुये कुछ अन्य राजाओं के साथ युधिष्ठिर की सभा से जाने के लिये उद्यत हो गया (२. ३७)।" "उस समय राजा युधिष्ठिर दौड़कर शिशुपाल के समीप गये और उसे शान्तिपूर्वक समझाते हुये मधुरवाणी में अनुनय विनय करने लगे। फिर भी, भीष्म ने श्रीकृष्ण को ही सर्वश्रेष्ठ तथा अर्घ्य का सर्वप्रथम अधिकारी घोषित किया (२. ३८)।" "सहदेव और नारद ने श्रीकृष्ण की उपासना न करने को अत्यन्त अनुचित बताया।

उस समय शिशुपाल ने क्षुब्ध होकर कुछ अन्य नरेशों को भी युद्ध के लिये उद्यत करते हुये यज्ञ को समाप्त होने के पूर्व ही भङ्ग कर देना चाहा (२.३९)।"

अर्चयन्त्य अर्कम् अर्किणः = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्चित = विष्णु (सहस्र नामों से एक)।

अर्चिष्मत् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अर्चिष्मती, अङ्गिरस् की पुत्री का नाम है : 'पश्यत्यर्चिष्मती भाभिः', (३. २१८, ६)।

अर्चिष्मन्तः, पितरों की तीन संज्ञाओं में से एक है (१२. २६९, १५)।

१. अर्जुन कार्तवीर्य एक हैहय राजा का नाम है। इसका (हैहयाधिपति का) परशुराम ने वध किया था (१. १०४, १. २)। 'ख्यातिं यास्यसि धर्मेण कार्तवीर्यार्जुनो यथा', (३. ८५, १३०)। "अकृतव्रण ने युधिष्ठिर को बताया कि जमदग्निपुत्र परशुराम तथा हैहयराज कार्तवीर्य का चरित्र देवताओं के समान है। परशुराम जी ने अर्जुन नाम से प्रसिद्ध जिस हैहयराज कार्तवीर्य का वध किया था उसके एक सहस्र भुजायें थीं। दत्तात्रेय की कृपा से उसने (अर्जुन ने) एक सुवर्ण-विमान प्राप्त किया था और भूतल के समस्त प्राणियों पर उसका प्रभुत्व था। उस कार्तवीर्य के रथ की गति को कोई भी रोक नहीं सकता था। उस रथ और वर के प्रभाव से कार्तवीर्य अर्जुन समस्त दिशाओं में घूमता हुआ देवताओं, यक्षों, तथा ऋषियों को पददलित, और सम्पूर्ण प्राणियों को त्रस्त करने लगा। उसके अत्याचार को देखकर देवताओं और ऋषियों ने विष्णु से उसका वध करने का निवेदन किया। एक दिन हैहयराज ने दिव्य विमान द्वारा शची के साथ क्रीड़ा करते हुये देवराज इन्द्र पर आक्रमण किया। कार्तवीर्य अर्जुन का विनाश करने के सम्बन्ध में इन्द्र से परामर्श करने के पश्चात् विष्णु ने रमणीय बदरी तीर्थ की यात्रा की, जहाँ उनका अपना ही विस्तृत आश्रम था (३. ११५, ९-१९)।" "एक दिन जमदग्नि के सब पुत्र आश्रम से बाहर गये हुये थे। उसी समय अनूपदेश का वीर राजा कार्तवीर्य अर्जुन उधर आ निकला। आश्रम में आने पर ऋषि-पत्नी रेणुका ने उसका यथोचित सत्कार किया, किन्तु उसने उस सत्कार को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं किया और मुनि के आश्रम से होमधेनु गाय के बछड़े को बलपूर्वक हर ले गया। उसने आश्रम के बड़े-बड़े वृक्षों को भी तोड़ डाला। जब परशुरामजी आश्रम वापस आये तब स्वयं जमदग्नि ने उनसे सारा वृत्तान्त कहा। परशुरामजी ने क्रोध के वशीभूत होकर कार्तवीर्य अर्जुन पर आक्रमण किया और अपने बाणों से उसकी सहस्र भुजाओं को काट कर उसे मार डाला। पिता की मृत्यु से कुपित होकर अर्जुन के पुत्रों ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि पर आक्रमण किया और उन्हें बाणों से घायल करके मार डाला। जमदग्नि की मृत्यु के पश्चात् कार्तवीर्य-पुत्र आश्रम से चले गये। तदनन्तर परशुरामजी हाथों में समिधा लिये आश्रम में आये और अपने पिता को मृत देखकर विलाप करने लगे (३. ११६, १९-२९)।" "पिता की मृत्यु विलाप करने के पश्चात् परशुराम जी ने उनका समस्त प्रेतकर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियों के वध की प्रतिज्ञा की और शस्त्र लेकर अकेले ही कार्तवीर्य के समस्त पुत्रों को मार डाला (३. ११७, १-७)।" "परशुराम ने महादेव से अनेक प्रकार के अस्त्र और एक अत्यन्त तेजस्वी कुठार प्राप्त किया। उस कुठार के कारण परशुरामजी सम्पूर्ण लोकों में अप्रतिम वीर हो गये। इसी समय राजा कृतवीर्य का बलवान पुत्र अर्जुन हैहय वंश का राजा हुआ। दत्तात्रेय की कृपा से अर्जुन ने एक सहस्र भुजायें प्राप्त की थीं। इस राजा ने अपने बाहुबल से पर्वतों और द्वीपों सहित इस सम्पूर्ण पृथिवी को युद्ध में जीतकर अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को दान कर दिया था। एक समय भूखे प्यासे अग्निदेव ने अर्जुन से भिक्षा माँगी और अर्जुन ने अग्नि को वह भिक्षा दे दी। तत्पश्चात बलशाली अग्निदेव कार्तवीर्य अर्जुन के बाणों के अग्रभाग से गाँवों, गोष्ठों, और नगरों इत्यादि को भस्म कर डालने की इच्छा से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने कार्तवीर्य के प्रभाव से पर्वतों और वनस्पतियों को भस्म करना आरम्भ किया। इस प्रकार प्रज्वलित होते हुये अग्निदेव ने हैहयराज को साथ लेकर आपव (= वसिष्ठ) के आश्रम को भी जलाकर भस्म कर दिया जिस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने यह शाप दिया कि परशुरामजी उसकी समस्त भुजाओं को काट डालेंगे। अर्जुन अत्यन्त शान्तिपरायण, ब्राह्मण-भक्त, और दानी शूर वीर था, अतः उसने उस समय ऋषि के शाप पर ध्यान नहीं दिया। फिर भी, अर्जुन के बलवान पुत्र ही उसकी मृत्यु का कारण बन गये। उसके क्रूरकर्मा और घमण्डी पुत्र जमदग्नि की होमधेनु नामक गाय के बछड़े को चुरा लाये। यद्यपि हैहयराज कार्तवीर्य को उस बछड़े के चुराये जाने की बात ज्ञात नहीं थी, तथापि उसी के लिये परशुराम के साथ उनका घोर युद्ध हुआ, जिसमें परशुराम ने उनकी भुजाओं को काट डाला और होमधेनु के बछड़े को पुनः आश्रम ले आये। तदनन्तर अर्जुन के पुत्रों ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि के आश्रम पर आकर उनका वध कर दिया। अपने पिता जमदग्नि की इस प्रकार मृत्यु के कारण परशुराम ने क्रोध में सम्पूर्ण पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर देने की भीषण प्रतिज्ञा करके अपना शस्त्र उठाया और शीघ्र ही कार्तवीर्य के समस्त पुत्रों और पौत्रों का वध कर डाला। परशुराम ने सहस्रों हैहयों का वध किया और शीघ्र ही पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर दिया (१२. ४९, ३३-५४)।" "भीष्म ने युधिष्ठिर से इस प्राचीन कथा का वर्णन किया : महिष्मती नगरी में सहस्रभुजधारी कार्तवीर्य अर्जुन नामक एक हैहयवंशी राजा समस्त भूमण्डल पर शासन करता था। एक समय अर्जुन ने क्षत्रिय-धर्म को सामने रखते हुये बहुत दिनों तक श्रीदत्तात्रेय की आराधना की तथा किसी कारणवश अपना समस्त धन उनकी सेवा में अर्पित कर दिया। उससे सन्तुष्ट हो कर दत्तात्रेय ने उसे तीन वर माँगने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलने पर अर्जुन ने ये वर माँगे : 'मैं युद्ध में तो सहस्र भुजाओं से युक्त रहूँ; किन्तु घर पर मेरी दो ही बाहें रहें। रणभूमि में समस्त सैनिक मेरी एक सहस्र भुजायें देखें। मैं अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथिवी को विजित कर लूँ। इस प्रकार पृथिवी को धर्मानुसार प्राप्त करके मैं उसका पालन करूँ। इन तीन वरों के अतिरिक्त मैं एक चौथा वर यह भी चाहता हूँ कि यदि मैं कभी सन्मार्ग का परित्याग करके असत्य मार्ग का आश्रय लूँ तो श्रेष्ठ पुरुष मुझे राह पर लाने के लिये शिक्षा दें। वर प्राप्त कर लेने के पश्चात अर्जुन अभिमान वश अपने को धैर्य, वीर्य, यश, शौर्य, पराक्रम, और ओज में सर्वश्रेष्ठ मानने लगा। उस समय यह आकाशवाणी हुई कि ब्राह्मण क्षत्रिय से भी श्रेष्ठ हैं। अर्जुन ने इस आकाशवाणी का उत्तर देते हुये कहा : 'ब्राह्मण क्षत्रियों के आश्रय में रहते हैं। आज से मैं सब प्राणियों से श्रेष्ठ कहे जानेवाले ब्राह्मणों को अपने अधीन रक्खूँगा।' तब अर्जुन को चेतावनी देते हुये वायु देवता ने कहा : 'कार्तवीर्य! तुम इस कलुषित भाव का परित्याग कर ब्राह्मणों को नमस्कार करो, अन्यथा ब्राह्मण तुम्हें शान्त कर देंगे, और यदि तुम उनके उत्साह में बाधा डालोगे तो वे तुम्हें राज्य से भी निष्कासित कर देंगे, वायु की बात को सुनकर अर्जुन ने उनसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों का वर्णन करने का आग्रह किया (१३.१५२)।" "वायु द्वारा उदाहरण सहित ब्राह्मणों की महत्ता का वर्णन (१३. १५३; १३. १५६, १.१५; १५७, १.२३)।" "पूर्वकाल में कार्तवीर्य अर्जुन के नाम से प्रसिद्ध राजा था जिसकी एक सहस्र भुजायें थीं। उसने अपने धनुष और बाण की सहायता से समुद्रपर्यन्त पृथिवी को अपने अधिकार में कर लिया था। एक दिन जब वह समुद्र तट पर विचरण कर रहा था, उसने अपने बल के दर्प में समुद्र को सैकड़ों बाणों से आच्छादित कर दिया। तब समुद्र ने प्रगट होकर उसके सम्मुख नत मस्तक होकर यह कहा : 'तुम बाणों की वर्षा न करो क्योंकि इससे मेरे अन्दर रहने वाले प्राणियों की हत्या हो रही है।' तब कार्तवीर्य ने समुद्र से अपने समान किसी अन्य धनुर्धर का पता बताने पर समुद्र को छोड़ देने का वचन दिया। समुद्र ने अर्जुन से रामजामदग्न्य (परशुराम) का नाम बताया। तदनन्तर राजा कार्तवीर्य

अर्जुन परशुराम के पास आये और वहाँ अपने बन्धुओं के साथ परशुराम के प्रतिकूल व्यवहार करने लगे। उन लोगों ने अपने अपराधों से परशुराम को उद्विग्न कर दिया जिसके फलस्वरूप क्रुद्ध हो कर परशुराम ने अपनी कुठार से उस सहस्रभुज राजा को अनेक शाखाओं वाले वृक्ष की भाँति सहसा काट डाला। राजा को मृत देख उसके बन्धु-बान्धवों ने एकत्र हो कर परशुराम पर आक्रमण किया; किन्तु परशुराम ने जब उनका संहार आरम्भ किया तो वे सब भय से पर्वतों की गुफाओं में घुस गये। वहाँ बहुत समय तक ब्राह्मणों का दर्शन न कर सकने के कारण वे धीरे-धीरे अपने कर्म भूल कर शूद्र हो गये। इसी प्रकार द्रविड, आभीर, पुण्ड्र और शबरों के सहवास में रहकर वे क्षत्रिय होते हुये भी वृषल हो गये (१४. २९, १० १६)।" तु० की० **परशुराम;** और **अनूपपति, हैहय, हैहयेन्द्र, हैहयाधिपति, हैहयार्षभ, हैहयश्रेष्ठ,** तथा **कार्तवीर्य,** भी।

२. अर्जुन, एक पाण्डव का नाम है जो पाँच पाण्डवों में से तृतीय थे: १. १, १११. १२५. १२७. १२९. १३१. १५१. १५२. १५४. १६२. १६४. १६७. १७१. १७४. १८०. १८१. १८६. १८९. १९२. १९३. १९५. २१४; २, ४५. ५०. १११. ११४. १६३. १६४. १८३. २१८. २३०. २७५. ३५७; ६१, ३८. ४२. ४५। सुभद्रा नामक पत्नी से उत्पन्न इनके पुत्र का नाम अभिमन्यु था (१. ६३, १२१)। कृष्णा (द्रौपदी) नामक पत्नी से उत्पन्न इनके पुत्र का नाम श्रुतकीर्त्ति था (१. ६३, १२३)। ये इन्द्र के पुत्र थे (१. ६७, १११)। 'सोऽभिमन्युर्बृहत्कीर्त्तिरर्जुनस्य सुतोऽभवत्।', (१. ६७, ११३)। 'सोऽर्जुनेत्यभिख्यातः पाण्डोः पुत्रः प्रतापवान्', (१. ६७, ११६)। इन्द्र ने इनके हित के लिये ब्राह्मण का वेश धारण करके कर्ण से दोनों कुण्डल तथा उसके शरीर के साथ ही उत्पन्न कवच माँग लिया था (१. ६७, १४४)। कुन्ती से उत्पन्न इन्द्र के पुत्र के रूप में इनका उल्लेख (१. ९५, ६१)। कृष्णा से उत्पन्न इनके पुत्र का नाम श्रुतकीर्त्ति (१. ९५, ७५) और सुभद्रा से उत्पन्न पुत्र का नाम अभिमन्यु था (१. ९५, ७८)। "देवराज इन्द्र से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से महाराज पाण्डु ने महर्षियों से परामर्श लेकर शुभदायक सांवत्सर व्रत का उपदेश दिया और स्वयं भी इन्द्र की आराधना करने के लिये एक पैर से खड़े होकर तपस्या करने लगे। इस प्रकार इन्द्र को प्रसन्न करके उन्होंने कुन्ती से इन्द्र का आवाहन करने के लिये कहा। तदनन्तर देवराज इन्द्र कुन्ती के पास आये और उन्होंने अर्जुन को जन्म दिया। कुमार अर्जुन के जन्म लेते ही अत्यन्त नाद से समस्त आकाश को गुञ्जित करती हुई आकाशवाणी ने कुन्ती से इस प्रकार कहा: 'यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन के समान तेजस्वी, शिव के समान पराक्रमी, और इन्द्र के समान अजेय होकर तुम्हारे यश का विस्तार करेगा। यह वीर पुत्र मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशि, तथा करूष नामक देशों को वश में करेगा और उत्तर दिशा में जाकर वहाँ के राजाओं को विजित करके असंख्य धनराशि प्राप्त करेगा। इसके बाहुबल से खाण्डव वन में अग्निदेव समस्त प्राणियों के मेद का आस्वादन करके तृप्तिलाभ करेंगे। यह क्षत्रियों का नायक, और युद्ध में राजाओं को विजित करके अपने भ्राताओं के साथ तीन अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करेगा। युद्ध में शङ्कर को सन्तुष्ट करके उनसे पाशुपत नामक अस्त्र प्राप्त करेगा, और निवात-कवच नामक दैत्यों का इन्द्र की आज्ञा से संहार करेगा। यह सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों का पूर्णज्ञाता होगा और अपनी खोई हुई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करेगा।' आकाशवाणी को सुनकर शतश्रृङ्ग निवासी तपस्वी मुनियों तथा इन्द्र आदि समस्त देवताओं को अत्यन्त हर्ष हुआ। उस समय आकाश से पुष्पों की वर्षा तथा दुन्दुभियों का तुमुल नाद हुआ। तदनन्तर अनेक प्रकार के देवगण—इनके नामों की गणना कराई गयी है जिनमें देव गन्धर्व, अप्सरायें, आदित्य, रुद्र, वैनतेय प्रमुख थे—वहाँ आकर अर्जुन की प्रशंसा करने लगे (१. १२३, २५-७५)।" "तदनन्तर अश्विनों ने माद्री से नकुल और सहदेव नामक दो यमज पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार पाँच पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात पाण्डु ने अपने पुत्रों के नामकरण तथा उपनयन आदि संस्कार कराये। इन पाण्डव-कुमारों को शर्याति के वंशज पृषत के पुत्र शुक ने धनुर्वेद की शिक्षा दी। अर्जुन इस विद्या के पारगामी विद्वान हुये। जब शुक ने यह जान लिया कि अर्जुन उन्हीं के समान धनुर्वेद के ज्ञाता हो गये हैं, तब उन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुन को अनेक प्रकार के खड्ग, बाण, धनुष, क्षुर और नाराच आदि विविध अस्त्र प्रदान किये। इन अस्त्रों को पाकर अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुये और ऐसा अनुभव करने लगे कि भूमण्डल का कोई भी नरेश अब उनकी समानता नहीं कर सकता (१. १२४)।" "शतश्रृङ्ग पर्वत पर पाण्डु के लिये उत्पन्न पाँच पाण्डवों—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—को, पाण्डु की मृत्यु तथा उनकी चिता के साथ माद्री के सती हो जाने के पश्चात, महर्षिगण हस्तिनापुर ले आये (१. १२६)।" "द्रुपद से तिरस्कृत होकर द्रोणाचार्य भी हस्तिनापुर पधारे जहाँ भीष्म ने उन्हें धार्तराष्ट्रों तथा पाण्डवों की शिक्षा के लिये नियुक्त कर लिया (१. १३१)।" "द्रोणाचार्य ने जब इन राजकुमारों को अस्त्रविद्या की शिक्षा देना आरम्भ किया तब अर्जुन अत्यधिक अभ्यास करने के कारण अन्य की अपेक्षा अत्यधिक प्रवीण हो गये जिसके कारण सूतपुत्र कर्ण अर्जुन से अत्यन्त ईर्ष्या करने लगा। एक दिन द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों से कहा, 'मेरे मन में एक कार्य करने की इच्छा है। अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात तुम लोगों को मेरी वह इच्छा पूर्ण करनी होगी।' आचार्य की बात सुनकर सभी कौरव चुप रहे, परन्तु अर्जुन ने वह इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की। सतत अभ्यास के कारण अर्जुन अस्त्र-विद्या में अत्यन्त कुशल हो गये। शिक्षा के समय द्रोणाचार्य अपने समस्त शिष्यों को पानी लाने के लिये सँकरे मुह का कमण्डलु देते थे जिससे उसे भर कर लौटने में विलम्ब हो, जब कि अपने पुत्र अश्वत्थामा को चौड़े मुह का घड़ा देते जिससे उसके लौटने में विलम्ब न हो। इस प्रकार जब तक दूसरे शिष्य लौट नहीं आते तब तक की अवधि में वे अपने पुत्र अश्वत्थामा को अस्त्रविद्या की शिक्षा देते थे। अर्जुन ने इस बात को जान लिया, अतः वे वारुणास्त्र से शीघ्र ही अपना कमण्डलु भरकर आचार्यपुत्र के साथ ही गुरु के समीप आ जाते थे जिसके कारण वे आचार्यपुत्र से किसी भी बात में कम न रहे। अर्जुन को धनुषबाण के अभ्यास में निरन्तर रत देखकर द्रोणाचार्य ने रसोइये को एकान्त में बुलाकर अर्जुन को कभी भी अँधेरे में भोजन न परसने का आदेश दिया और यह भी कहा कि वह अर्जुन को इस आदेश की बात न बतायेगा। एक दिन जब अर्जुन भोजन कर रहे थे, अत्यन्त वेग से हवा के चलने के कारण वहाँ का दीपक बुझ गया, किन्तु उस समय भी अर्जुन भोजन करते रहे क्योंकि अभ्यास के कारण उनका हाथ अँधेरे में भी मुख से अन्यत्र नहीं जाता था। इसे अभ्यास का ही चमत्कार मानकर अर्जुन रात्रि के समय भी धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगे। उनके इस प्रकार अभ्यास से प्रभावित होकर द्रोणाचार्य ने उनको अनुपम धनुर्धर बनाने का वचन दिया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को घोड़ों, हाथियों, रथों तथा भूमि पर रहकर युद्ध करने की भी शिक्षा दी (१. १३२, १—२९)।" "तदनन्तर निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य के पास अस्त्रविद्या सीखने के लिये आया, किन्तु उन्होंने उसे शिष्य नहीं बनाया। एकलव्य इससे निराश नहीं हुआ और वन में जाकर द्रोणाचार्य की प्रतिमा के सम्मुख धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। द्रोणाचार्य ने यह जानकर कि एकलव्य उनको ही गुरु मानकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा है, एकलव्य के पास जाकर गुरु-दक्षिणा माँगी। जब एकलव्य ने दक्षिणा देने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तब द्रोणाचार्य ने उससे उसके दाहिने हाथ का अँगूठा दक्षिणा के रूप में माँग लिया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन के हित की दृष्टि से ही यह कार्य किया था, और अर्जुन को इससे अत्यन्त प्रसन्नता भी हुई। इस प्रकार अर्जुन युद्ध कलाओं में सबसे श्रेष्ठ हुये। अस्त्रों के अभ्यास तथा गुरु के प्रति अनुराग में भी अर्जुन का सर्वोच्च स्थान था। यद्यपि सभी को समान रूप से अस्त्र-विद्या का उपदेश प्राप्त होता था तथापि अर्जुन अपनी

विशिष्ट प्रतिभा के कारण समस्त कुमारों में अकेले अतिरथी हुये। धृतराष्ट्र के पुत्र भीमसेन को बल में अधिक और अर्जुन को अस्त्रविद्या में प्रवीण देखकर अत्यन्त ईर्ष्या करते थे (१.१३२, ४६-६६)।" "जब सम्पूर्ण धनुर्विद्या तथा अस्त्र-संचालन की कला में वे सब राजकुमार सुशिक्षित हो गये तब द्रोणाचार्य ने एक दिन उनकी परीक्षा लेने का आयोजन किया। उन्होंने एक कृत्रिम गिद्ध बना कर वृक्ष के अग्रभाग पर रखवा दिया, और राजकुमारों से उसी का वेधन करने के लिये कहा। सबसे पहले द्रोण ने युधिष्ठिर से उस कृत्रिम-पक्षी का वेधन करने के लिये धनुषबाण चढ़ाकर तत्पर होने के लिये कहा। जब युधिष्ठिर धनुष तान कर खड़े हुये तब द्रोणाचार्य ने उनसे पूछा कि वे क्या-क्या देख रहे हैं। युधिष्ठिर ने बताया कि वे वृक्ष को, आचार्य को, अपने भ्राताओं को, तथा गिद्ध को भी बार-बार देख रहे हैं। उनके उत्तर से अप्रसन्न होकर द्रोणाचार्य ने झिड़कते हुये उन्हें अलग हट जाने के लिये कहा। तदनन्तर द्रोणाचार्य ने उसी क्रम से दुर्योधन आदि धार्तराष्ट्रों को भी परीक्षार्थ बुलाया और सबसे उपर्युक्त बातें ही पूछीं। प्रश्न के उत्तर में सभी ने युधिष्ठिर की ही भाँति सब कुछ देखने का उत्तर दिया। यह सुनकर आचार्य ने उन सबको झिड़क कर हटा दिया (१.१३२, ६७-७९)।" "अन्त में अर्जुन की बारी आयी। जब अर्जुन लक्ष्य करके खड़े हुये तब उनसे भी द्रोणाचार्य ने वही प्रश्न किया। उत्तर में अर्जुन ने बताया कि वह केवल गिद्ध के मस्तक मात्र को ही देख रहे हैं, उसके सम्पूर्ण शरीर अथवा वृक्ष आदि को नहीं। उत्तर से प्रसन्न होकर जब द्रोणाचार्य ने उन्हें बाण चलाने की आज्ञा दी तब अर्जुन ने उस गिद्ध के मस्तक को अपने बाण से काट गिराया (१.१३३,१-१०)।" "तदन्तर द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ गंगास्नान के लिये गये। स्नान करते समय एक ग्राह ने द्रोणाचार्य का पैर पकड़ लिया जिससे मुक्त होने में अपने को असमर्थ देख उन्होंने सभी शिष्यों से ग्राह को मारकर अपने को बचाने के लिये कहा। द्रोणाचार्य का आदेश सुनते ही अर्जुन ने अमोघ बाणों से उस ग्राह का वध कर दिया जिससे आचार्य मुक्त हो गये। उस समय अन्य राजकुमार किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपने स्थानों पर ही खड़े रह गये थे। तब प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को इस निषेध के साथ ब्रह्मशिरस् नामक अस्त्र दिया कि वे इसका किसी अल्प तेज वाले पुरुष पर प्रयोग न करेंगे अन्यथा वह अस्त्र समस्त संसार को भस्म कर देगा। अर्जुन ने द्रोण की आज्ञा मान कर वह अस्त्र ग्रहण किया (१.१३३, ११-२२)।" "भीमसेन, दुर्योधन, तथा अर्जुन जब अस्त्रविद्या का प्रदर्शन करने के लिये उपस्थित हुये तब भीम तथा दुर्योधन के प्रदर्शन के पश्चात् द्रोणाचार्य ने अर्जुन के कौशल-प्रदर्शन की घोषणा की। तत्पश्चात् अर्जुन रङ्गभूमि में उपस्थित हुये और कुन्ती का वक्षस्थल दुग्ध मिश्रित अश्रुओं से भीग गया। उस समय रङ्गभूमि में हर्षोल्लास से कोलाहल की ध्वनि सुनकर धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछ कर अर्जुन के रङ्गभूमि में उतरने के समाचार को जाना। अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन करते हुये अर्जुन ने सर्वप्रथम आग्नेयास्त्र से अग्नि उत्पन्न करके वारुणास्त्र से बुझाया। फिर, वायव्यास्त्र से आँधी उत्पन्न करके पर्जन्यास्त्र से मेघों का सृजन किया। उन्होंने भौमास्त्र से पृथिवी, और पर्वतास्त्र से पर्वतों को उत्पन्न किया। अन्तर्धानास्त्र से वे स्वयं अदृश्य हो गये। इसी प्रकार अस्त्र-कौशल दिखाते हुये उन्होंने रङ्गभूमि में घूमते हुये लोहे के शूकर के मुख में एक साथ ही पाँच बाण मारे, और एक अन्य स्थान पर लटकती और हिलती हुयी गाय के सींग के छिद्र का इक्कीस बाणों से वेधन किया। इस प्रकार अर्जुन ने अपना अत्यन्त उत्कृष्ट अस्त्र-कौशल दिखाया (१.१३५, ७-२५)।" "अस्त्र-कौशल के प्रदर्शन के समय रङ्गभूमि में सहसा उपस्थित हो कर कर्ण ने अर्जुन से भी अधिक श्रेष्ठ अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन करने की घोषणा की और उसे कर भी दिखाया। तदुपरान्त उसने अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा। अर्जुन ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली। परन्तु युद्ध आरम्भ होने के पूर्व कृपाचार्य ने जब कर्ण के माता-पिता और वंश का नाम पूछा तब उसका मुख लज्जा से झुक गया क्योंकि वह राजा नहीं था (१.१३६, १-३४)।" "रङ्गशाला में भीम द्वारा कर्ण का तिरस्कार किये जाने के पश्चात् दुर्योधन ने कर्ण का अभिषेक और सम्मान किया। उस समय दर्शकों में कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की, और कोई दुर्योधन की प्रशंसा कर रहा था। कर्ण को मित्र के रूप में पाकर दुर्योधन के मन में अर्जुन का भय जाता रहा (१.१३७, २२.२४)।" "अर्जुन ने द्रुपद को बन्दी बनाने में द्रोणाचार्य की सहायता की, क्योंकि द्रोणाचार्य ने अर्जुन से यही गुरु-दक्षिणा माँगी थी (१.१३८, ४१.५०.५७-५९)।" "द्रोणाचार्य ने बताया कि उनके गुरु अग्निवेश ने पूर्वकाल में अगस्त्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने यह भी बताया कि अपने इसी गुरु से सीखे हुये ब्रह्मशिरस् अस्त्र को उन्होंने अर्जुन को इस आश्वासन पर प्रदान किया कि वे किसी मानव-शत्रु पर इसका प्रयोग नहीं करेंगे। साथ ही द्रोणाचार्य ने अर्जुन से इस बात का भी वचन लिया कि वे युद्धभूमि में उनसे भी युद्ध करने से विमुख नहीं होंगे। इस प्रकार समुद्रपर्यन्त पृथिवी पर यह बात प्रचलित हो गयी कि संसार में अर्जुन के समान दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है (१. १३९, ६-१६)।" "अर्जुन के नेतृत्व में पाण्डवों ने उस सौवीर राजा का वध किया जो गन्धर्वों के उपद्रवों के विपरीत भी निरन्तर तीन वर्षों तक बिना किसी विघ्न बाधा के यज्ञों का अनुष्ठान करता रहा। पराक्रमी राजा पाण्डु भी जिसे वश में न कर सके थे उस यवन देश के राजा को भी अर्जुन ने अपने आधीन कर लिया। सौवीर नरेश विपुल भी अर्जुन हाथ संग्राम में मारा गया। युद्ध के लिये सदैव दृढ़ संकल्प रखने वाला सौवीर निवासी सुमित्र भी अर्जुन के बाणों से मारा गया। अर्जुन ने केवल भीमसेन की सहायता से एकमात्र रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध में पूर्व दिशा के सम्पूर्ण योद्धाओं तथा दस सहस्र रथियों को जीत लिया। इसी प्रकार एकमात्र रथ से यात्रा करके उन्होंने दक्षिण विजय भी की। उस समय पाण्डवों के अत्यन्त विख्यात बल और पराक्रम की बात सुनकर उनके प्रति राजा धृतराष्ट्र का भाव अत्यन्त दूषित हो गया और इस चिन्ता के कारण उन्हें रात्रि में निद्रा भी नहीं आती थी (१. १३९, २०-२७)।" भीम अपने भाईयों सहित अर्जुन को भी भूमि पर पड़ा हुआ देखकर शोक प्रगट करते हैं (१. १५१, ३०)। अर्जुन ने हिडिम्ब से युद्ध कर रहे भीमसेन को सहायता देने की इच्छा प्रगट की थी और हिडिम्ब का शीघ्र वध करने का निवेदन किया; हिडिम्ब के वध के बाद अर्जुन ने पाण्डवों से वन के निकट स्थित नगर की ओर प्रस्थान करने का प्रस्ताव किया (१. १५४, १३. २१. २८. ३४)। "पृथिवीमखिलां जित्वा सर्वां सागरमेखलाम्। भीमसेनार्जुनबलाद्भोक्ष्यते नात्र संशयः॥", (१. १५६, १३)। "एक ब्राह्मण ने यह वर्णन किया कि किस प्रकार भीष्म ने द्रोणाचार्य को राजकुमारों की शिक्षा के लिये नियुक्त किया था। अर्जुन तथा अन्य राजकुमारों ने द्रोणाचार्य से कोई भी गुरुदक्षिणा देने की प्रतिज्ञा की (१. १६६, १९)।" तब सभी पाण्डव भ्राता द्रुपद के नगर की ओर जाने के लिये उद्यत हुये (१. १६८, १०)। "पाण्डवगण जब पञ्चाल देश की ओर जा रहे थे उस समय उनके आगे-आगे अर्जुन प्रकाश तथा रक्षा करने के लिये जलती हुयी मशाल लेकर चल रहे थे। उस समय गन्धर्वराज चित्ररथ ने गङ्गातट पर उन सब को रोका किन्तु अर्जुन के द्वारा पराजित हुआ। पराजित गन्धर्वराज ने अर्जुन को गन्धर्वों की माया से संयुक्त किया, जिस विद्या को चाक्षुषी कहते हैं। साथ ही गन्धर्वराज ने प्रत्येक पाण्डव को सौ-सौ गान्धर्व अश्व प्रदान किये और उन लोगों से एक ब्राह्मण पुरोहित भी रखने का निवेदन किया। गन्धर्वराज को अर्जुन ने भी प्रतिदान के रूप में आग्नेयास्त्र प्रदान किया (१. १७०, १६. २७. ३७. ३९. ५५)।" यतः चित्ररथ ने अर्जुन को ताप्त्य कहकर सम्बोधित किया था अतः अर्जुन ने उससे तप्त्य-उपाख्यान का वर्णन करने के लिये कहा (१. १७१, १)। गन्धर्वराज ने बताया कि संवरण ने तपती के गर्भ से ही कुरु को उत्पन्न किया था; इसीलिये उस वंश में जन्म लेने के कारण अर्जुन आदि ताप्त्य

कहलाये (१. १७३, ५०)। चित्ररथ ने अर्जुन को वसिष्ठ की महानता का वृत्तान्त सुनाया (१. १७४, १)। चित्ररथ ने अर्जुन से विश्वामित्र और वसिष्ठ के संघर्ष तथा विद्वेष का वर्णन किया (१. १७५, १. ११)। अर्जुन के पूछने पर चित्ररथ ने यह बताया कि कल्माषपाद ने अपनी पत्नी को वसिष्ठ के पास जाने की आज्ञा क्यों दी (१. १८२, १)। चित्ररथ के परामर्श के अनुसार पाण्डवों ने धौम्य को अपना गुरु निश्चित किया और कृष्णा के स्त्रयंवर में जाने का निश्चय किया (१. १८३, १. ३)। पाण्डवों की पाञ्चाल यात्रा और मार्ग में ब्राह्मणों से स्त्रयंवर और सौन्दर्य के सम्बन्ध में वार्त्तालाप (१. १८४)। "मार्ग में पाण्डवों ने व्यास का दर्शन और तदुपरान्त द्रुपद की राजधानी में जाकर एक कुम्हार के घर पर निवास किया। तदुपरान्त वहाँ रहते हुये वे ब्राह्मण-वृत्ति का आश्रय लेकर भिक्षा पर अपना निर्वाह करने लगे जिससे कोई उनको पहचान न सका। द्रुपद के मन में सदैव यही इच्छा रहती थी कि वे किरीटिन् (अर्जुन) के साथ ही द्रौपदी का विवाह करें। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक ऐसा दृढ़ धनुष बनवाया जिसे अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति झुका नहीं सकता था (१. १८५, १-९)।" जब दुर्योधन आदि धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने में असफल हो गये, और सफलता प्राप्त कर लेने पर भी जब सूतपुत्र होने के कारण कर्ण को द्रौपदी ने अस्त्रीकृत कर दिया, तब जिष्णु (अर्जुन) आगे आये (१. १८७)। "उस समय कुछ ब्राह्मण अर्जुन की प्रशंसा और कुछ भर्त्सना कर रहे थे। अर्जुन ने नतमस्तक होकर भगवान शङ्कर को प्रणाम किया और श्रीकृष्ण का मन ही मन चिन्तन करके धनुष को उठा कर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। तदुपरान्त कृष्णा ने अर्जुन के पास आकर उनका वरण किया। इस प्रकार अर्जुन ने उस स्वयंवर सभा में द्रौपदी को जीत लिया और उसे अपने साथ लेकर रङ्गभूमि से बाहर निकले। उस समय उनकी पत्नी द्रौपदी उनके पीछे-पीछे चल रही थी (१. १८८, १६-२८)।" "जब राजा द्रुपद ने ब्राह्मण रूपी अर्जुन को अपनी कन्या देना चाहा तब वहाँ उपस्थित राजाओं ने द्रुपद का वध करने और कृष्णा को आग में जला देने, किन्तु ब्राह्मण समझकर अर्जुन को मुक्त कर देने का निश्चय किया उस समय अर्जुन और भीमसेन ने उन सबको पराजित कर दिया। कृष्णा पाण्डवों को पहचान गयी थी (१. १८९, १५. २०)।" "ब्राह्म और पौरन्दरास्त्रों में पारङ्गत अर्जुन ने कर्ण को परास्त किया। भीम और अर्जुन कृष्णा को रङ्गभूमि से लेकर अपने निवास स्थान पर आये (१. १९०, २. १०. १४. १५. २०)।" "जब पाण्डवगण द्रौपदी के साथ घर पहुँचे तब उन्होंने माता कुन्ती से कहा, 'माँ हम लोग भिक्षा लाये हैं।' माँ ने अपने पुत्रों को देखे बिना ही उत्तर दिया कि 'तुम सब मिलकर उसका उपभोग करो।' पहले तो युधिष्ठिर ने अर्जुन को ही द्रौपदी के साथ विवाह करने के लिये कहा परन्तु बाद में इस बात के लिये सहमत हो गये कि वह समस्त पाण्डवों की पत्नी बने (१. १९१, १-११)।" "धृष्टद्युम्न ने गुप्त रूप से भीमसेन और अर्जुन का पीछा किया और उनके वार्त्तालाप से जान गये कि वे कौन हैं (१. १९२)।" "धृष्टद्युम्न ने लौटकर राजा द्रुपद से समस्त घटना का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि विशाल और लाल नेत्रों वाले जिस ब्राह्मण व्यक्ति ने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर लक्ष्य-वेधन किया था वह अर्जुन था। उसने यह भी बताया कि ब्राह्मणों के वेश में वे सभी पाण्डव थे जो लाक्षागृह से बच निकले थे (१. १९३, १९)।" "द्रुपद ने युधिष्ठिर को पुनः उनके राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करने की प्रतिज्ञा की, किन्तु पाँचों भाईयों के साथ कृष्णा का विवाह करने के प्रस्ताव पर वे (द्रुपद) कुछ हिचकिचाहट में पड़ गये। इसी बीच महर्षि व्यास वहाँ पधारे (१. १९५, ९. १८. २०)।" पाण्डवों द्वारा कृष्णा को प्राप्त कर लेने का समाचार सुनकर विदुर और धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न हुये; परन्तु दुर्योधन और कर्ण ने धृतराष्ट्र को पाण्डवों के विरुद्ध उकसाने का प्रयास किया (१. २००, २)। दुर्योधन ने पाण्डवों पर विजय प्राप्त करने के अनेक उपायों की चर्चा की (१. २०१, १३)। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कुन्ती और कृष्णा सहित खाण्डवप्रस्थ में रहने का प्रस्ताव किया और साथ ही उन्हें आधा राज्य भी देने का वचन दिया (१. २०७, ३. २४)। पाण्डवगण इन्द्रप्रस्थ में सुखपूर्वक रहने लगे। वहाँ एक दिन अर्जुन ने कृष्णा से सम्बन्धित एक नियम को भङ्ग कर देने के कारण बारह वर्ष के वनवास के लिये प्रस्थान किया (१. २१३, ३४)। "जब अर्जुन गङ्गाद्वार में निवास करते हुये एक दिन स्नान के पश्चात जल से निकलना चाहते थे तब नागराज की पुत्री उलूपी उन्हें जल के भीतर खींच ले गई। वहाँ अर्जुन ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया। उलूपी ने अर्जुन को यह वर दिया कि वह जल में भी सर्वत्र अजेय रहेंगे (१. २१४, २१. २९. ३६)।" "अर्जुन ने अनेक तीर्थों का भ्रमण, और मणिपुर में चित्राङ्गदा से विवाह करके तीन वर्ष तक निवास किया। उन्होंने चित्राङ्गदा के गर्भ से एक पुत्र भी उत्पन्न किया (१. २१५)।" अर्जुन ने दक्षिणवर्त्ती समुद्रतट पर स्थित तीर्थों का भी भ्रमण किया जहाँ उन्होंने वर्गा आदि अप्सराओं का उद्धार किया (१. २१६, १२)। अर्जुन का प्रभास तीर्थ में श्रीकृष्ण से मिलन और श्रीकृष्ण के साथ ही रैवत पर्वत के उत्सव में जाना, सुभद्रा पर आसक्त होना, और युधिष्ठिर की अनुमति से उसके हरण का निश्चय करना (१. २१८, ६. १०; २१९, १५. १८. २३. २४)। "अर्जुन द्वारा कृष्ण की बहन सुभद्रा का हरण और बलराम जी का अर्जुन के प्रति क्रोधोद्गार (१. २२०)। श्री कृष्ण ने अर्जुन और वृष्णिवंशी यादवों के बीच सन्धि कराई। अर्जुन ने सुभद्रा के साथ विवाह कर द्वारका में ही एक वर्ष व्यतीत किया। तदुपरान्त कृष्ण अर्जुन के साथ कुछ समय तक इन्द्रप्रस्थ में रहे। सुभद्रा ने अभिमन्यु को जन्म दिया। यह बालक कृष्ण को अत्यन्त प्रिय था और इसने अपने पिता अर्जुन से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। कृष्णा ने भी अर्जुन से पाँच पुत्र प्राप्त किये जिन्होंने वेदाध्ययन के पश्चात अर्जुन से समस्त दिव्यास्त्रों और मानवास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया (१. २२१, ७. २६. ७२. ७९. ८८)।" "कृष्ण और अर्जुन ने खाण्डव वन को भस्म करने में अग्नि की सहायता की; अग्नि ने वरुण से अर्जुन को गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तरकस और दिव्य रथ प्रदान कराये; अग्नि ने कृष्ण को भी सुदर्शन चक्र दिया; वरुण ने कृष्ण को कौमोदकी नामक गदा प्रदान की; इन्द्र ने खाण्डव वन को भस्म होने से बचाने के लिये अत्यन्त वर्षा की। एक आकाशवाणी ने यह घोषणा की कि कृष्ण और अर्जुन प्राचीन नर और नारायण ही हैं, अतः अविजेय हैं। इन्द्र वहाँ उपस्थित हुये और उन्होंने अर्जुन से महादेव को प्रसन्न करने के लिये कहा जिसके बाद उन्होंने अपने आग्नेय और वायव्यास्त्रों को अर्जुन को प्रदान करने का वचन दिया; उन्होंने कृष्ण और अर्जुन की मित्रता को अक्षय होने का भी वरदान दिया। वरुण ने अर्जुन को जो दिव्य रथ प्रदान किया था वह अनेक प्रकार के दिव्यास्त्रों से सुसज्जित तथा देवों और असुरों दोनों से ही अविजेय था। उसकी ध्वजा पर एक विशाल कपि आसीन था; उस रथ में रजत के समान श्वेत और गन्धर्व देशीय अश्व सन्नद्ध थे, जो स्वर्णालङ्कारों से सुसज्जित और वायु अथवा मन के समान वेगवान् थे; इस रथ का वैभव अत्यन्त अतुलनीय, और उसके चक्रों से भयङ्कर ध्वनि निकलती थी; इसका अत्यन्त तपस्या के पश्चात् प्रजापति भौमन् (विश्वकर्मन्) ने निर्माण किया था; कोई भी इसके वैभव पर दृष्टिपात नहीं कर सकता था; यह वही रथ था जिस पर बैठकर सोम ने दानवों को परास्त किया था; इस रथ का ध्वज-दण्ड अत्यन्त सुन्दर और सुवर्णमय था जिसके ऊपर सिंह और व्याघ्र के समान अत्यन्त भयंकर आकृतिवाला एक बानर इस प्रकार बैठा जान पड़ता था मानो वह शत्रुओं को भस्म कर डालना चाहता हो; उस ध्वज में और भी नाना प्रकार के भयङ्कर प्राणी रहते थे जिनके गर्जन को सुनकर शत्रुओं का साहस छूट जाता था (यह सम्पूर्ण कथा १. २२१ से २३४ अध्यायों में निहित है जिनमें अर्जुन का नाम इन स्थलों पर मिलता है : १. २२४, ९. १५; २२५, २९. ३१; २२७, ६. १३. १५. ४३. ४६. ५०; २२८, १५. १८. २४. २५. २६. २८. ३३. ३८. ४३; २३४, ६. १६. १८)।" "मयासुर ने अर्जुन से कहा,

'आपने खाण्डव वन में मेरी रक्षा की है, अतः बताईये मैं अब आपकी क्या सेवा करूँ।' अर्जुन ने मयासुर से अपने लिये नहीं वरन् श्रीकृष्ण के लिये ही कुछ करने का आग्रह किया किन्तु श्रीकृष्ण ने भी अपने लिये कुछ न कराकर मयासुर से युधिष्ठिर के लिये एक अत्यन्त उत्कृष्ट सभाभवन का निर्माण करने के लिये कहा (२. १, ३–११)।" "अभीषून्संप्रजग्राह स्वयं कुरुपतिस्तदा उपारुह्यार्जुनश्चापि चामरव्यजनं सितम् ॥", (२. २, १७) "मय ने अर्जुन को हिरण्यशृङ्ग पर स्थित विभिन्न प्रकार के रत्न भण्डारों आदि का विवरण बताया और उन्हें देवदत्त नामक उत्तम शङ्ख प्रदान किया; मय ने चौदह महीने में सभाभवन का निर्माण कर दिया (२. ३, १. २१)।" युधिष्ठिर के उस सभाभवन में युधिष्ठिर की उपासना करनेवालों में वे राजकुमार भी थे जिन्होंने अर्जुन के पास रहकर कृष्ण मृग-चर्म धारण किये धनुर्वेद की शिक्षा ली थी (२. ४, ३३)। इन्द्रप्रस्थ में आकर श्रीकृष्ण अर्जुन से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये (२. १३, ४५)। जरासन्ध का वध करने के सम्बन्ध में परामर्श (२. १५, ९)। युधिष्ठिर ने बताया कि भीम और अर्जुन दोनों उनके नेत्र हैं (२. १६, २)। श्रीकृष्ण ने बताया कि भरतवंश में उत्पन्न पुरुष और कुन्ती जैसी माता के पुत्र की जिस प्रकार की बुद्धि होनी चाहिये, अर्जुन ने उसी प्रकार की बुद्धि का परिचय दिया है (२. १७, १)। भीमसेन और कृष्ण को लेकर अर्जुन जरासन्ध का वध करने के लिये चले (२. २०, ७. ८. २०)। 'अङ्गवङ्गा-दयश्चैव राजानः सुमहाबलाः गौतमक्षयमभ्येत्य रमन्ते स्म पुरार्जुनः ॥', (२. २१, ७)। भीम और अर्जुन दोनों ही एक रथ पर बैठे हुये थे जिसके सारथि श्रीकृष्ण थे (२. २४, १६)। जरासन्ध के बन्दीगृह से छूटे हुये राजाओं ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये उनसे कहा कि भीमसेन और अर्जुन का भी बल उनके साथ था (२. २४, ३२)। जरासन्ध-वध के पश्चात् अपने नगर में पुनः लौटने पर युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन का प्रसन्नतापूर्वक आलिङ्गन किया (२. २४, ४९)। "श्रेष्ठ धनुष, दो विशाल अक्षय तूणीर, दिव्य रथ, ध्वज, और अद्भुत सभाभवन प्राप्त कर चुकने के पश्चात् अर्जुन ने युधिष्ठिर से उत्तर दिशा को विजित करने की आज्ञा माँगी। युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन ने अग्नि से प्राप्त अपने दिव्य रथ पर बैठकर उत्तर दिशा की यात्रा की और उसे विजित किया। उनके अन्य भ्राताओं ने अन्य दिशाओं को विजित किया जब कि युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में ही रहे (२. २५)।" "वैशम्पायन जी ने अर्जुन की दिग्विजय का वर्णन करते हुये बताया कि उन्होंने सर्वप्रथम कुलिन्द देश के भूपालों को अपने वश में किया। तदुपरान्त कालकूट और आनर्त्त देश के राजाओं को विजित कर अपनी सेना सहित सुमण्डल को भी विजित किया। सुमण्डल को मित्र बनाकर और उसके साथ जाकर उन्होंने शाकलद्वीप तथा राजा प्रतिविन्ध्य पर विजय प्राप्त की। तदुपरान्त उन्होंने प्राग्ज्योतिषपुर के प्रधान राजा भगदत्त पर आक्रमण किया जिनके साथ उनका आठ दिन तक भयंकर युद्ध हुआ। राजा भगदत्त, किरात, चीन, तथा समुद्र के टापुओं में रहने वाले अनेक योद्धाओं से घिरे हुये थे। अन्त में भगदत्त ने भी अर्जुन की आधीनता स्वीकार कर ली और अर्जुन के आदेश के अनुसार युधिष्ठिर को कर देने के लिये सहमत हो गये (२. २६)।" "भगदत्त को जीतकर अर्जुन ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया और उसके अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने उलूकवासी राजा बृहन्त पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध के पश्चात राजा बृहन्त ने अर्जुन की आधीनता स्वीकार कर ली। तदुपरान्त बृहन्त को साथ लेकर अर्जुन ने सेनाविन्दु पर आक्रमण करके उन्हें विजित किया। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन सेनाविन्दु की राजधानी देवप्रस्थ में ही रह गये, जब कि सेना ने मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल, उत्तरी उलूक देशों को विजित किया। इस प्रकार पर्वतीय महारथियों को परास्त करने के पश्चात् अर्जुन ने पौरव राजा विश्वगश्व को विजित किया और उनके बाद उत्सवसंकेत नाम से विख्यात सात दस्यु जातियों को अपने अधीन किया। इसके बाद लोहित, त्रिगर्त, दार्व, कोकनद, रोचमान, चित्रायुध, चोल, बाह्लीक, काम्बोज, दरद, ऋषिक, आदि राजाओं पर विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् हिमवान् और निष्कुट प्रदेश के अधिपतियों को विजित करते हुए अर्जुन श्वेतपर्वत पर आये (२. २७)।" "श्वेतपर्वत को पार करने के पश्चात अर्जुन ने किंपुरुषों के राजा द्रुमपुत्र को विजित और समझा-बुझाकर गुह्यकों के हाटक देश को अपने आधीन किया। तदुपरान्त उन्होंने समस्त ऋषि-कुल्याओं का दर्शन किया और मानसरोवर पर पहुँच कर गन्धर्वों द्वारा सुरक्षित प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया। गन्धर्व नगर से उन्होंने कर के रूप में तित्तिर, कल्माष और मण्डूक नामक अनेक उत्तम अश्व प्राप्त किये। तदुपरान्त आगे बढ़कर अर्जुन ने हरिवर्ष में पहुँचकर उसे विजित करने का विचार किया। उस समय विशालकाय महाबली द्वारपालों ने आकर अर्जुन से इस प्रकार कहा : 'पार्थ ! तुम इस नगर को किसी भी प्रकार विजित नहीं कर सकते। यहाँ तक आ गये यही तुम्हारे लिये बहुत बड़ी विजय है, अतः तुम यहाँ से लौट जाओ। इस नगर के भीतर प्रवेश करके भी तुम किसी वस्तुको देख नहीं सकोगे, क्योंकि यहाँ मानव-शरीर से कुछ भी नहीं देखा जा सकता। यदि यहाँ तुम युद्ध के अतिरिक्त और कोई मनोरथ सिद्ध करना चाहते हो तो बताओ जिससे हम स्वयं ही उसे पूरा कर दें।' उनके वचन को सुनकर अर्जुन ने उनसे महाराज युधिष्ठिर के लिये कर के रूप में कुछ धन माँगा। उन द्वारपालों ने अर्जुन को अनेक दिव्य वस्त्र, आभूषण, आदि दिये। इस प्रकार अनेक राजाओं को विजित करने के पश्चात् अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौटे और उन्होंने जो कुछ भी विजित किया था उसे युधिष्ठिर को समर्पित कर दिया (२. २८)।" "युधिष्ठिर के शासन के अन्तर्गत समस्त प्रजाजन अत्यन्त प्रसन्न थे और राजकोष में भी प्रचुर धन वर्त्तमान था। ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया। यज्ञ के लिये आवश्यक सामग्रियों को एकत्रित करने के लिये उन्होंने अनेक लोगों को नियुक्त करते हुये इन्द्रसेन, विशोक, और अर्जुन के सारथि पुरु को अन्नादि के संग्रह के लिये भेजा (२. ३३, १७. ३०)।" कृष्ण और शिशुपाल के युद्ध के समय शिशुपाल ने कहा कि श्रीकृष्ण ने जरासन्ध-वध के लिये भीमसेन और अर्जुन को साथ लेकर अत्यन्त हेय कर्म किये थे (२. ४२, २)। अर्जुन ने यज्ञसेन (द्रुपद) का अनुसरण किया (२. ४५, ४७)। "राजसूय के समय अनेक अपशकुन प्रगट हुये जिनकी व्याख्या करते हुये व्यास ने बताया कि उस दिन से तेरहवें वर्ष दुर्योधन के अपराध तथा भीम और अर्जुन के पराक्रम द्वारा क्षत्रियों का विनाश हो जायगा। इसे सुनकर जब युधिष्ठिर ने अपने जीवन का अन्त कर देने का निश्चय किया तब अर्जुन ने उन्हें इससे विरत किया (२. ४६, १२. २३)।" मयनिर्मित सभा भवन में भ्रम के कारण दुर्योधन की त्रुटियों पर भीमसेन, अर्जुन, और नकुल आदि द्वारा उसका उपहास करना (२. ४७, ९)। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को बताया कि उत्तर-समुद्र के समीप, जहाँ पक्षियों के अतिरिक्त मनुष्य नहीं जा सकते, वहाँ भी जाकर अर्जुन अपार धन कर के रूप में वसूल कर लाये (२. ४९, ३०)। दुर्योधन ने कहा कि अर्जुन श्रीकृष्ण से जो कहेंगे वह वे निःसन्देह पूर्ण करेंगे। श्रीकृष्ण अर्जुन के लिये स्वर्ग को भी त्याग सकते हैं (२. ५२, ३२)। "जूये में युधिष्ठिर अपने भ्राताओं, और द्रौपदी तथा स्वयं को भी दाँव पर हार गये। उस समय जब भीमसेन ने अपनी दोनों बाहें जला डालने का निश्चय किया तब अर्जुन ने उन्हें समझा कर शान्त किया (२. ६८, ७)।" "दुर्योधन ने द्रौपदी से कहा कि उसे दाँव पर रखने के अधिकार के प्रश्न का उत्तर उसके ही पति भीम, अर्जुन, आदि पर छोड़ दिया जाता है। भीम ने बताया कि बड़े भ्राता के गौरव की रक्षा, और अर्जुन के मना करने के कारण ही वे दुर्योधन का वध नहीं कर रहे हैं (२. ७०, ३. १६)।" "कर्ण ने कहा कि नकुल हार गये, भीमसेन, युधिष्ठिर, सहदेव, तथा अर्जुन भी पराजित होकर

दास बन गये। दुर्योधन ने कहा कि यदि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ऐसा कह दें कि वे युधिष्ठिर के अधीन नहीं तब वह द्रौपदी को मुक्त कर देगा। अर्जुन ने कहा कि युधिष्ठिर पहले तो उन्हें दाँव पर लगाने के अधिकारी थे किन्तु अपने शरीर को हार जाने के पश्चात् वे किसके स्वामी रहे, इस बात पर कौरव-गण विचार करें। उस समय भयंकर अपशकुन हुये। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से वर माँगने के लिये कहा और उसने (द्रौपदी ने) युधिष्ठिर तथा उनके भ्राताओं की मुक्ति का ही वरदान माँगा (२. ७१, ४. ९, २०. २१)।" भीम ने अपने समस्त शत्रुओं का तत्काल वध करने का निश्चय किया, किन्तु युधिष्ठिर और अर्जुन ने उन्हें ऐसा करने से रोका (२. ७२, ८)। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर, उनके भ्राताओं और द्रौपदी को उनके रथों पर इन्द्रप्रस्थ भेजा और बताया कि अर्जुन में धैर्य है (२. ७३, १५)। जूये में हारने के पश्चात् जब पाण्डवों ने तेरह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की दीक्षा ली तब उन्होंने कहा कि अर्जुन कर्ण का वध करेंगे (२. ७७, ३०. ३२. ३३)। "वनगमन के समय अर्जुन राजा के पीछे-पीछे बालू बिखेरते हुये चल रहे थे जिससे वे शत्रुओं पर बाणवर्षा की अभिलाषा व्यक्त कर रहे थे। उस समय भयंकर अपशकुन हुये और नारद ने बताया कि उस दिन से चौदहवें वर्ष भीम और अर्जुन कौरवों का विनाश करेंगे (२. ८०, १५. ३४. ४६)।" "विदुर ने धृतराष्ट्र को बताया कि क्रोध में भरे हुये भीम और अर्जुन अपने शत्रुओं की सेना में किसी को जीवित नहीं छोड़ेंगे (३. ४, १०)।" विदुर को निष्कासित कर देने के पश्चात राजा धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों के पास विदुर को लौटा लाने के लिये भेजा। उस समय पाण्डव-आश्रम पर भीम और अर्जुन ने संजय का स्वागत किया (३. ६. १४)। "युधिष्ठिर ने किर्मीर को बताया कि वे भीम और अर्जुन इत्यादि भ्राताओं के साथ वनवास करने के उद्देश्य से उसके (किर्मीर के) निवासस्थान, काम्यकवन में आये हैं। किर्मीर के आक्रमण करने पर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी परन्तु भीम ने अर्जुन को रोक कर स्वयं उस राक्षस पर आक्रमण किया (३. ११, २६. ४०)" "कुन्तीपुत्रों के अपमान को सुनकर श्रीकृष्ण जब अत्यन्त कुपित हुये तब अर्जुन ने उन्हें शान्त करने के लिये उनकी स्तुति की। श्रीकृष्ण की स्तुति करने के पश्चात श्रीकृष्ण के आत्मस्वरूप अर्जुन चुप हो गये। तब भगवान् जनार्दन ने कहा, 'पार्थ तुम मेरे ही हो और मैं तुम्हारा ही हूँ। जो मेरे हैं वह तुम्हारे भी हैं। जो तुमसे द्वेष रखता है वह मुझसे भी द्वेष रखता है। जो तुम्हारे अनुकूल है वह मेरे भी अनुकूल है।' तदुपरान्त द्रौपदी ने श्रीकृष्ण के पास जाकर कहा कि 'जब कौरवसभा में मेरा अपमान किया गया तब गाण्डीवधारी अर्जुन तथा भीम भी मेरी रक्षा न कर सके।' द्रौपदी ने और विविध प्रकार से विलाप करते हुये श्रीकृष्ण से अपने अपमान का बदला लेने के लिये कहा। तब श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को सान्त्वना देते हुये बताया कि एक दिन अर्जुन के बाणों से कर्ण आदि का वध होगा। श्रीकृष्ण के मुख से ऐसी बातें सुनकर द्रौपदी ने अर्जुन की ओर देखा (३. १२, ८. ११. ४४. ४५. ७७. १३२)।" कृष्ण ने अर्जुन को हृदय से लगाकर अन्य पाण्डवों से भी विदा ली और द्वारका के लिये प्रस्थान किया (३. २२, ४६)। "श्रीकृष्ण के चले जाने पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, आदि पाण्डवों ने द्रौपदी तथा अपने पुरोहित धौम्य के साथ रथ पर बैठकर द्वैतवन की यात्रा प्रारंभ की। उस समय अर्जुन ने प्रजाजनों को सम्बोधित करते हुये कहा कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर अपने शत्रुओं का यश अवश्य छीन लेंगे। उन्होंने अलग-अलग श्रेष्ठ ब्राह्मणों, तपस्वियों तथा धर्मज्ञों से इस मनोरथ की सिद्धि के लिये प्रार्थना करने का भी निवेदन किया। अर्जुन के ऐसा कहने पर ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों के लोगों ने एक स्वर से उनकी बात का अभिनन्दन किया (३. २३, १. १५)। वनवास की अवस्था में कष्ट सहते हुये पाण्डवों को देखकर युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुये द्रौपदी ने अर्जुन की सहस्रभुज कार्त्तवीर्य अर्जुन के साथ तुलना की (३. २७, २४. २७)। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा, 'मुझे विश्वास है कि आप मेरे सहित भीमसेन, अर्जुन, और नकुल, सहदेव को भी त्याग देंगे किन्तु धर्म का परित्याग नहीं करेंगे' (३. ३०, ७)। युद्ध में अर्जुन के समान धनुर्धर न तो कोई है और न कोई होगा (३. ३३, ६२)। "व्यास ने युधिष्ठिर से कहा कि अर्जुन को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये इन्द्र, रुद्र, वरुण, कुबेर तथा धर्मराज के पास जाना चाहिये। उन्होंने यह भी बताया कि नारायण जिनके सखा हैं वे पुरातन महर्षि नर ही अर्जुन हैं (३. ३६, ३१-३३)।" "युधिष्ठिर ने व्यास जी के सन्देश का स्मरण करते हुये अर्जुन से एकान्त में वार्तालाप किया और किञ्चित मुस्कराते हुये अर्जुन के शरीर को हाथ से स्पर्श किया। एकान्त में युधिष्ठिर ने अर्जुन को प्रतिस्मृति-विद्या सिखाई और दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये उन्हें इन्द्र के पास भेजा। इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचने पर अर्जुन को वृक्ष के मूलभाग में बैठे हुये एक वृद्ध तपस्वी का दर्शन हुआ। उस तपस्वी ने अर्जुन से धनुष का परित्याग करने के लिये कहा परन्तु अर्जुन ने धनुष न त्यागने का दृढ़ निश्चय कर रखा था (३. ३७, २. ४२-४८)।" इन्द्र के पास जाने के समय मार्ग में अर्जुन ने चार मास तक तपस्या की थी (३. ३८, ५. १२. १८, २१, २२)। अर्जुन का किरातवेशी शिव के साथ युद्ध, शिव का अर्जुन पर प्रसन्न होना और शिव का अर्जुन को 'चक्षुस्' प्रदान करना (३. ३९, ८. २६. ३२. ३४. ५१)। अर्जुन द्वारा भगवान् शंकर की स्तुति (३. ३९, ७४-८२)। "शिव ने अर्जुन से कहा : 'तुम पूर्व शरीर में नर नामक सुप्रसिद्ध ऋषि थे और नारायण तुम्हारे सखा हैं। तुमने बदरी तीर्थ में सहस्रों वर्ष तक उग्र तपस्या की है। तुमने और श्रीकृष्ण ने इन्द्र के अभिषेक के समय जिस धनुष से दानवों का वध किया था उसी गाण्डीव धनुष को मैंने अपनी माया से अपने वश में कर लिया था।' शिव द्वारा वर माँगने की आज्ञा प्रदान करने पर अर्जुन ने उनसे ब्रह्मशिरस् नामक पाशुपत अस्त्र माँगा। स्नानादि से पवित्र होने के पश्चात अर्जुन को भगवान शङ्कर ने पाशुपतास्त्र का उपदेश दिया और साथ ही वचन भी लिया कि अर्जुन इस अस्त्र का किसी मानव-शत्रु के विरुद्ध प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसी दशा में यह समस्त ब्रह्माण्ड को भस्म कर देगा। अर्जुन के पाशुपतास्त्र ग्रहण करते ही, पर्वत, वन, वृक्ष, समुद्र, वनस्थली, ग्राम, नगर तथा आकारों सहित समस्त पृथिवी प्रकम्पित हो उठी। देवों और दानवों ने भी अर्जुन के पार्श्वभाग में खड़े उस मूर्त्तिमान अस्त्र को देखा। उस समय भगवान् शङ्कर के स्पर्श से अमित तेजस्वी अर्जुन के शरीर का समस्त अशुभ नष्ट हो गया। उस समय शङ्कर ने अर्जुन को यह आज्ञा दी कि 'तुम स्वर्ग को जाओ'। तदुपरान्त अर्जुन के देखते-देखते शङ्कर अपनी पत्नी उमा देवी के साथ आकाश मार्ग से चले गये (३. ४०, ८. २१. २६)।" "तदुपरान्त हिमवत् पर्वत पर लोकपाल आदि अर्जुन के पास आये। उन लोकपालों ने अर्जुन को ऐसी दृष्टि प्रदान की जिससे वे उन्हें देख सकें। उस समय यम ने अर्जुन को अपना दण्ड प्रदान किया और वरुण ने अपने पाश दिये। कुबेर ने यह बताते हुये कि पूर्वकल्पों में अर्जुन ने उनके साथ सदैव तपस्या की थी, अर्जुन को अपना अन्तर्धानास्त्र प्रदान किया (३. ४१, २. ८. १२. १७. ४१. ४७. ४९)।" हिमालय से विदा लेकर अर्जुन ने मातलि के साथ स्वर्गलोक के लिये प्रस्थान किया (३. ४२, १०. १५. २०. २९)। अर्जुन का इन्द्र के साथ अमरावती में निवास (३. ४३, २३)। अर्जुन पाँच वर्ष तक वहाँ रहे (३. ४४)। अङ्गों सहित चारों वेदों, उपनिषदों, और पञ्चमवेद के रूप में इतिहास और पुराणों में पारङ्गत अर्जुन पर उर्वशी का आसक्त होना (३. ४५, १३)। "कामपीडित होकर उर्वशी जब रात्रि के समय अर्जुन के अत्यन्त मनोहर भवन में उपस्थित हुई तब अर्जुन सशङ्क हृदय से उसके सम्मुख आये। अर्जुन ने उर्वशी से बताया कि वे उसको अपनी माता के समान मानते हैं। इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी ने अर्जुन को यह शाप दिया कि पुरुषत्व से रहित होकर उन्हें एक नर्तकी के रूप

में स्त्रियों के बीच अपना समय व्यतीत करना होगा। इन्द्र ने अर्जुन से कहा कि वनवास के तेरहवें वर्ष में उर्वशी का शाप सत्य होगा जिसके बाद वे अपना पुरुषत्व पुनः प्राप्त कर लेंगे (३. ४६, १७. २०. ३६. ३७. ५०–५२)।" "एक दिन लोमश मुनि स्वर्गलोक में इन्द्र के पास आये। वहाँ अर्जुन को देखकर लोमश मुनि को यह आश्चर्य हुआ कि क्षत्रिय होते हुये अर्जुन ने किस प्रकार इन्द्र का आसन प्राप्त कर लिया। तब इन्द्र ने लोमश मुनि को यह बताया कि अर्जुन वास्तव में कौन हैं। इन्द्र ने कहा 'हे ब्रह्मर्षि! नर-नारायण के नाम से प्रसिद्ध जो पुरातन मुनीश्वर हैं वे ही अर्जुन और श्रीकृष्ण के रूप में देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये, भूतल पर अवतीर्ण हुये हैं। देवता अथवा महर्षि भी जिसे देखने में समर्थ नहीं हैं, और जहाँ से सिद्ध-चारण सेवित गङ्गा का प्राकट्य हुआ है वही बदरी नामक विख्यात पुण्य तीर्थ पूर्वकाल में नर और नारायण का निवास स्थान था। ये दोनों नर और नारायण मेरे ही अनुरोध पर पृथिवी का भार उतारने के लिये पृथिवी पर अवतीर्ण हुये हैं।' तदुपरान्त इन्द्र ने लोमश मुनि से काम्यकवन में जाकर युधिष्ठिर से मिलने और अर्जुन का समाचार देने के लिये कहा। साथ ही उन्होंने लोमश से तीर्थयात्रा में युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिये भी कहा (३. ४७)।" अर्जुन की सफलताओं का वर्णन सुनकर धृतराष्ट्र ने सञ्जय से चिन्ता व्यक्त की (३. ४८, ६. १३)। किरातवेशी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध पर धृतराष्ट्र ने विशेष रूप से चिन्ता व्यक्त की (३. ४९, २१)। काम्यकवन में अर्जुन से विमुक्त एवं उनके लिये उत्कण्ठित होकर निवास करनेवाले पाण्डवों ने पाँच वर्ष व्यतीत किये (३. ५०, १२)। धृतराष्ट्र ने सञ्जय के सम्मुख पुनः अपनी चिन्ता व्यक्त की (३. ५१, ७. २८)। "एक दिन काम्यकवन में निवास करते हुये पाण्डवगण अर्जुन के सम्बन्ध में चिन्ता करते हुये उन्हीं की बातें करने लगे। उस समय भीम ने युधिष्ठिर से कहा 'आपकी आज्ञा से ही भरत वंश का रत्न अर्जुन तपस्या के लिये चला गया। उसी समय महर्षि बृहदश्व वहाँ आ पहुँचे जिन्होंने युधिष्ठिर को राजा नल का वृत्तान्त सुनाते हुये बताया कि अपने भ्राता द्वारा छलपूर्वक जूये में पराजित हो कर राजा नल को युधिष्ठिर से भी अधिक कष्ट और दुःख सहन करना पड़ा था (३. ५२, ६. ४०. ५४)।" अर्जुन के लिये द्रौपदी सहित पाण्डवों की चिन्ता (३. ८०, १२)। इस दशा में उदास पाण्डवों को पुलस्त्य मुनि द्वारा विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य बताना (३. ८१ और बाद)। युधिष्ठिर ने धौम्य से कहा कि अर्जुन के बिना अब वे काम्यकवन में और अधिक रहना नहीं चाहते (३. ८६, १३. १९)। इस दशा में धौम्य द्वारा युधिष्ठिर से विभिन्न क्षेत्रों के तीर्थों का वर्णन करना (३. ८७ और बाद)। महर्षि लोमश का आगमन और युधिष्ठिर को अर्जुन के पाशुपत आदि दिव्यास्त्रों की प्राप्ति का वर्णन तथा इन्द्र का सन्देश सुनाना (३. ९१, १८. २२)। लोमश ने बताया कि अर्जुन ने उनसे तीर्थयात्रा में युधिष्ठिर के साथ रहने का आग्रह किया है (३. ९२, ८)। लोमश के साथ अर्जुन के अतिरिक्त पाण्डवों ने समस्त तीर्थों की यात्रा की (३. ९३ और बाद)। नारी तीर्थ पर उन्होंने अर्जुन के पराक्रमों का वृत्तान्त सुना और उनकी प्रशंसा की (३. ११८, ५–७)। कृष्ण ने कहा कि अर्जुन इत्यादि क्षत्रिय धर्म का कभी भी परित्याग नहीं करेंगे (३. १२०, २४)। "युधिष्ठिर ने भीम से इस प्रकार कहा, 'भाई भीमसेन! तुम द्रौपदी की रक्षा करो, क्योंकि किसी निर्जन प्रदेश में जब कि अर्जुन हमारे समीप नहीं हैं, भय का अवसर उपस्थित होने पर द्रौपदी तुम्हारा ही आश्रय लेती है (३. १३९, १९)।" "युधिष्ठिर का भीमसेन से अर्जुन को ५ वर्ष तक न देखने के कारण मानसिक चिन्ता व्यक्त करना और व्रतधारी ब्राह्मणों के साथ गन्धमादन पर्वत पर जाने का दृढ़ निश्चय करना (३. १४१, २६)।" "भीम ने सोचा, 'अर्जुन स्वर्ग लोक में चले गये हैं और मैं पुष्प लाने के लिये इधर चला आया हूँ, ऐसी दशा में युधिष्ठिर कोई कार्य कैसे करेंगे?' (३. १४६, ३२)।" जब पाण्डवगण आर्ष्टिषेण के आश्रम पर पहुँचे तब आर्ष्टिषेण ने पाण्डवों को और आगे न बढ़कर वहीं अर्जुन की प्रतीक्षा करने के लिये कहा (३. १५९, ३१)। "अर्जुन ने कभी असत्य नहीं कहा; स्वर्ग में देवों, पितरों और गन्धर्वों, तथा यमुना-तट पर सात महान यज्ञ करने के कारण शक्र के लोक में निवास करने वाले शान्तनु ने भी उनका आदर सत्कार किया (३. १६२)।" "गन्धमादन पर्वत पर श्रेष्ठ व्रत का आश्रय लेकर निवास करते हुये अर्जुन के दर्शन की इच्छा रखने वाले पाण्डवों के मन में अत्यन्त प्रेम और आनन्द का प्रादुर्भाव हुआ। पाँच वर्ष तक इन्द्र लोक में निवास करने तथा आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, आदि, और प्रजापति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा और कुबेर सम्बन्धी अस्त्रों को भी प्राप्त करने के पश्चात अर्जुन ने इन्द्र से विदा ली और गन्धमादन पर्वत पर आये (३. १६४, १. २०)।" "एक दिन पाण्डवों ने मातलि के साथ इन्द्र के रथ पर बैठकर अर्जुन को आकाश से उतरते देखा। अर्जुन ने इन्द्र से प्राप्त अनेक बहुमूल्य रत्न द्रौपदी को भेंट किये। दूसरे दिन प्रातः काल स्वयं इन्द्र भी पाण्डवों के पास आये (३. १६५–१६६)।" "इन्द्र के चले जाने के पश्चात् अर्जुन ने अपनी यात्रा का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि किरात के विरुद्ध युद्ध करते हुये उन्होंने व्यर्थ ही वायव्य, स्थूणाकर्ण, जाल, और शलभास्त्र आदि का प्रयोग किया और उनका ब्रह्मास्त्र भी निष्फल हो गया, क्योंकि किरात ने इन सबको आत्मसात कर लिया (३. १६७, ३. ९)।" "अपनी यात्रा का वर्णन करते हुये अर्जुन ने उन अनेक अस्त्रों की गणना कराई, जिनके सञ्चालन की विधि बताने का स्वयं इन्द्र ने वचन दिया था। उन्होंने बताया कि मातलि को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि इन्द्र के दिव्य रथ पर बैठकर भी वे अपने स्थान से तनिक भी हिल-डुल नहीं रहे थे, जब कि अश्वों के सर्व प्रथम अग्रसर होने के समय देवराज इन्द्र भी विचलित हुये बिना नहीं रह पाते। अर्जुन ने बताया कि इन अस्त्रों का प्रयोग सीख लेने के पश्चात् इन्द्र ने कहा कि देवगण भी उन्हें विजित नहीं कर सकते। अर्जुन ने पन्द्रह अस्त्र प्राप्त किये और उनके प्रयोग की पाँच विधियाँ सीखीं। इस शिक्षण की दक्षिणा के स्वरूप इन्द्र ने उनसे निवातकवचों का वध करने की प्रतिज्ञा करायी, और इसी उद्देश्य से उन्होंने मातलि द्वारा संचालित अपना रथ भी दिया। अर्जुन ने कहा; 'इस प्रतिज्ञा के बाद इन्द्र ने मेरे मस्तक पर उत्तम किरीट और प्रत्येक अङ्गों में उत्तम आभूषण बाँधे। उन्होंने मुझे यह अभेद्य कवच धारण कराया और मेरे गाण्डीव धनुष में यह अटूट प्रत्यञ्चा जोड़ दी। इस प्रकार युद्ध की सामग्रियों से सम्पन्न होकर मैं निवातकवचों के वध के लिये प्रस्थित हुआ।' अर्जुन ने यह भी बताया कि इन्द्र ने उन्हें देवदत्त नामक शंख प्रदान किया (३. १६८)।" "अर्जुन ने निवातकवचों पर अपनी विजय का वर्णन किया। पूर्वकाल में स्वयंभू ने इन्द्र को बताया था कि एक अन्य शरीर धारण करके वे स्वयं निवातकवचों का वध करेंगे। यतः देवगण निवातकवचों का वध करने में समर्थ नहीं थे अतः इन्द्र ने इस कार्य के लिये अर्जुन को उक्त अस्त्र प्रदान किये। तदुपरान्त अर्जुन और मातलि पुनः देवलोक को गये (३. १६९ और बाद; १७२, १२. २०)।" "देवलोक से लौटते समय अर्जुन ने पौलोमों और कालकेयों के हिरण्यपुर नामक नगर को नष्ट किया। देवगण इन असुरों का वध करने में असमर्थ थे इसीलिये ब्रह्मा ने एक मनुष्य, अर्जुन के द्वारा, इनके वध का विधान किया था। अर्जुन ने रौद्रास्त्र से इनका वध किया। मातलि अर्जुन को इन्द्रलोक में ले गया जहाँ उसने इन्द्र से अर्जुन के पराक्रमों का वर्णन किया। प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा कि देवगण भी युद्ध में अर्जुन का सामना नहीं कर सकेंगे (३. १७३)।" "इन्द्र ने कहा कि युद्ध-क्षेत्र में भीष्म, द्रोण, इत्यादि अर्जुन के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होंगे। तदुपरान्त स्वर्णमयी माला और देवदत्त नामक शंख देने के पश्चात इन्द्र ने अर्जुन को विदा किया। अर्जुन ने यह वचन दिया कि दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे युधिष्ठिर को अपने समस्त दिव्यास्त्र दिखायेंगे (३. १७४, ८)।" "दूसरे दिन प्रातःकाल जब अर्जुन

युधिष्ठिर को अपने दिव्यास्त्र दिखानेवाले ही थे कि पृथिवी प्रकम्पित हो उठी। वायु ने देवों द्वारा भेजे गये दिव्य हार अर्जुन को पहनाये। उस समय नारद ने वहाँ उपस्थित होकर अर्जुन को दिव्यास्त्रों के अनावश्यक प्रदर्शन से रोका, क्योंकि उनसे तीनों लोकों के विनाश की सम्भावना थी। तदुपरान्त देवों ने वहाँ से विदा ली (३. १७५, २. १९)।" पाण्डवों ने अर्जुन के साथ कुबेरकानन में पाँच वर्ष व्यतीत किये (३. १७६, २)। सर्परूपधारी नहुष द्वारा भीम के पकड़ लिये जाने पर युधिष्ठिर ने, अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा में नियुक्त करके, धौम्य के साथ भीम की खोज के लिये प्रस्थान किया (३. १७९, ४८)। काम्यकवन में अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण सत्यभामा आदि के साथ पधारे (३. १८३, ३)। जब पाण्डव-गण द्वैतवन के सरोवर के निकट निवास कर रहे थे तब धृतराष्ट्र को यह सोच कर अत्यन्त चिन्ता हुई कि दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के पश्चात् अर्जुन केवल प्रतिशोध लेने के लिये ही स्वर्गलोक से लौटे हैं (३. २३६, १२. ३०)। अपने पशुओं की देख-रेख करने के बहाने वन में जाकर पाण्डवों का उपहास करने के उद्देश्य से निकले दुर्योधन इत्यादि के गन्धर्वराज चित्रसेन के हाथों पराजित होकर बन्दी बना लिये जाने के पश्चात् जब कौरव सैनिकों ने युधिष्ठिर की शरण ली तब युधिष्ठिर ने अर्जुन से दुर्योधन आदि को मुक्त कराने के लिये कहा (३. २४३, ७. २२)। अर्जुन के अत्यन्त आग्रह पर भी जब गन्धर्वों ने दुर्योधन को मुक्त नहीं किया तब पाण्डवों का गन्धर्वों के साथ घोर युद्ध हुआ (३. २४४)। "गन्धर्वों ने पाण्डवों के बल आदि को छिन्न-भिन्न करने का बहुत प्रयास किया किन्तु वह निष्फल रहा। पाण्डवों, और मुख्यतः अर्जुन ने अपने आग्नेयास्त्र के द्वारा सहस्रों गन्धर्व-सैनिकों को यमलोक पहुँचा दिया। ऐसी स्थिति में गन्धर्वगण धार्तराष्ट्रों को लेकर आकाश में उड़ गये और वहाँ से अत्यन्त कुपित होकर अर्जुन पर गदाशक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे। फिर भी, अर्जुन ने अपने स्थूणाकर्ण, ऐन्द्रजाल, सौर, आग्नेय और सौम्य आदि अस्त्रों से गन्धर्वों का वध करना आरम्भ किया। गन्धर्वों को इस प्रकार त्रस्त हुआ देखकर गन्धर्वराज चित्रसेन ने लोहे की गदा लेकर अर्जुन पर आक्रमण किया किन्तु अर्जुन ने उसकी गदा के सात टुकड़े कर दिये। गदा के टुकड़े हो जाने के पश्चात् गन्धर्वराज चित्रसेन अन्तर्धान विद्या द्वारा अपने को छिपाकर अर्जुन से युद्ध करने लगा, किन्तु अर्जुन ने शब्दवेध की सहायता से चित्रसेन की अन्तर्धान रूपी-माया को भी नष्ट कर दिया। अन्त में चित्रसेन अर्जुन के समक्ष प्रगट हुआ और उसने अर्जुन को यह स्मरण दिलाया कि वह उनका प्रिय सखा चित्रसेन है। चित्रसेन को देख कर अर्जुन और अन्य पाण्डवों ने युद्ध बन्द कर दिया (३. २४५, ६. २३-२७)।" "चित्रसेन ने बताया कि वह दुर्योधन के उद्देश्य से परिचित था और दुर्योधन को बन्दी बनाकर लाने के लिये उससे इन्द्र ने अनुरोध किया था। अर्जुन ने चित्रसेन से दुर्योधन को मुक्त कर देने का पुनः आग्रह किया किन्तु चित्रसेन के निवेदन पर इस बात को युधिष्ठिर के निर्णय पर छोड़ दिया गया। तब युधिष्ठिर ने सभी कौरवों को मुक्त करा दिया (३. २४६)।" अर्जुन के द्वारा मुक्त कराये जाने के कारण अत्यन्त लज्जित होकर दुर्योधन ने भोजन का परित्याग कर दिया (३. २४९, १)। "पाताल के दानवों ने यह कह कर दुर्योधन को सान्त्वना दी कि कृष्ण द्वारा मारे गये नरकासुर की आत्मा कर्ण के शरीर में प्रवेश कर गई है, अतः वह (नरकासुर) उस वैर को याद करके अर्जुन और श्रीकृष्ण से अवश्य युद्ध करेगा। साथ ही, दानवों ने यह भी बताया कि राक्षसों से आविष्टचित्त होकर संशप्तक वीर भी अर्जुन को मारने की इच्छा रखते हैं। कर्ण ने भी अर्जुन के वध करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार दुर्योधन का चित्त शान्त हुआ (३. २५२, १९. २०. ३५. ४२)।" पाण्डवों ने द्वैतवन से विदा होकर काम्यकवन की ओर प्रवेश किया (३. २५८)। सिन्धुराज जयद्रथ ने द्रौपदी को देखा और उसपर आसक्त हो गया (३. २६४)। कोटिकास्य ने जयद्रथ का द्रौपदी से परिचय कराया (३. २६५)। "द्रौपदी ने बताया कि उसके पतिगण अलग-अलग दिशाओं में आखेट के लिये गये हैं। उसने यह भी बताया कि अर्जुन पश्चिम दिशा की ओर गये हैं (३. २६६)।" द्रौपदी ने जयद्रथ का स्वागत किया और जयद्रथ ने द्रौपदी से विपन्न पाण्डवों का परित्याग करके अपनी पत्नी बनने का अनुरोध किया (३. २६७)। जयद्रथ की बात सुन कर द्रौपदी अत्यन्त कुपित हो उठी और कृष्ण तथा अर्जुन आदि का उल्लेख करती हुई उसे फटकारने लगी, किन्तु अन्ततोगत्वा बाध्य होकर उसे जयद्रथ के रथ में बैठना पड़ा (३. २६८)। आश्रम पर लौटकर पाण्डवों ने द्रौपदी-हरण का वृत्तान्त सुना और तत्काल जयद्रथ का पीछा किया (३. २६९)। "तदनन्तर उपवन में भीम और अर्जुन को देखकर अमर्ष में भरे हुये क्षत्रियों का अत्यन्त घोर कोलाहल सुनायी पड़ने लगा। उस समय द्रौपदी ने जयद्रथ को पाण्डवों के पराक्रम का परिचय दिया (३. २७०, १)।" "अर्जुन ने बारह सौ वीर योद्धाओं को मार डाला। जयद्रथ आदि ने पलायन किया। उस समय युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पाण्डवों को देखकर जयद्रथ के सैनिकों में भयंकर कोलाहल मच गया था। अन्त में भीम और अर्जुन जयद्रथ की खोज में निकले। अर्जुन ने जयद्रथ के अश्वों का तो वध कर दिया किन्तु, स्वयं जयद्रथ का वध करने से भीम को रोका (३. २७१, २. ४४. ५२)।" "जयद्रथ ने शिव से पाँचों पाण्डवों को युद्ध में जीतने का वर माँगा, किन्तु शिव ने उसे यह वर दिया कि वह केवल एक दिन ही युद्ध में अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चार पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोक सकता है। वह अर्जुन को इसलिए पराजित नहीं कर सकता कि वे पूर्वकाल के नर हैं जिन्होंने बदरी आश्रम में रहकर भगवान नारायण के साथ तपस्या की थी। साथ ही, शिव ने बताया कि अर्जुन के पास वज्र भी है और कृष्ण उनकी रक्षा करते हैं। पाण्डवगण उस समय भी काम्यकवन में निवास करते रहे (३. २७२, २९)।" "लोमश ने युधिष्ठिर से इन्द्र का यह सन्देश बताया कि : 'तुम्हें जो बड़ा भारी भय लगा रहता है, और जिसकी तुम किसी के सामने चर्चा नहीं करते उसे भी मैं अर्जुन के यहाँ से चले जाने के पश्चात् दूर कर दूँगा। पाण्डवों के वनवास का बारह वर्ष पूर्ण हो जाने पर इन्द्र ने कर्ण से उसका कवच और कुण्डल माँग लिया (३. ३००; ३०१, १७. १८; ३०२, ८. १३)।" कर्ण की सदैव यही अभिलाषा रहती थी कि वह अर्जुन से युद्ध करे और दोनों ही एक दूसरे को ललकारते रहते थे (३. ३००)। जब पाण्डवगण काम्यकवन छोड़कर द्वैतवन लौटे और एक मृग एक ब्राह्मण की अरणी और मन्थ उठा ले गया तब पाण्डवों ने उस मृग का पीछा किया, किन्तु उसे पा न सके और श्रान्त होकर भूख-प्यास से पीड़ित एक वृक्ष के नीचे बैठ गये (३. ३११)। उस समय अर्जुन ने कहा कि कर्ण के कहे हुए कठोर वचन को सुनकर भी हमने सहन कर लिया उसके कारण ही आज हमारी यह अवस्था हो गई है (३. ३१२, ३)। युधिष्ठिर ने अर्जुन आदि अपने भ्राताओं को एक-एक करके पास के सरोवर से जल लाने के लिये भेजा जहाँ वे मृत होकर धरती पर गिरते गये और अन्ततोगत्वा उस सरोवर के रक्षक यक्ष (धर्मराज) के समस्त प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देकर ही युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं का उद्धार किया (३. ३१३, १२४. १२७)। "अज्ञातवास आरम्भ होने का समय उपस्थित होने पर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि वे अपनी रुचि के अनुसार कोई उत्तम निवास-स्थान चुन लें। युधिष्ठिर की बात सुनकर अर्जुन ने कुछ स्थानों के नाम बताये और युधिष्ठिर से उनमें से किसी स्थान को चुन लेने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने विराट-नगर को चुना। अर्जुन ने उनसे पूछा कि वे विराटनगर में कौन सा कार्य करना चाहेंगे (४. १, ९. १०. २०)।" "युधिष्ठिर ने पूछा कि खाण्डववन में इन्द्र तक को पराजित करनेवाले, नागों और राक्षसों को मारकर अग्निदेव को तृप्त करनेवाले, और अपने अप्रतिम सौन्दर्य से नागराज वासुकि की बहन उलूपी को वशीभूत करके उसके साथ विवाह करनेवाले, बारहवें रुद्र, तेरहवें आदित्य, नवें वसु और दसवें ग्रह के समान श्रेष्ठ वीर अर्जुन विराट नगर में कौन सा कार्य करेंगे। अर्जुन

ने बताया कि वे विराटनगर में नपुंसक के रूप में रहेंगे (४. २, १४. २४ २५. ३०) ।" "विराटनगर की ओर जाते समय जब द्रौपदी मार्ग में श्रान्त हो गईं तब अर्जुन ने उन्हें कन्धे पर उठा लिया और नगर के निकट पहुँच कर कन्धे से उतारा । राजधानी के समीप पहुँच कर युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा कि वे लोग अपने अस्त्र-शस्त्रों को कहाँ छिपा कर रक्खें । अर्जुन ने बताया कि निकट ही श्मशान भूमि के पास एक टीले पर शमी का अत्यन्त सघन वृक्ष है, जिसपर अस्त्रों को छिपाकर रक्खा जा सकता है (४. ५, ८. ९. १३) ।" राजा विराट ने अर्जुन के रूप और बल आदि की प्रशंसा करते हुये जब उनके नपुंसक होने पर शंका प्रगट की तब अर्जुन ने कहा कि वे वेणी-रचना, कुण्डल बनाना, तथा श्रृङ्गार के अन्य कामों को करना, आदि, भली प्रकार जानते हैं (४. ११, ८) । अर्जुन को विराटराज के अन्तःपुर में जो पुराने उतारे हुये बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होते थे, उन्हें बेचकर जो धन प्राप्त होता था उसे वे अन्य पाण्डवों को दे देते थे (४. १३, ८) । द्रौपदी ने कहा कि गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले वीर अर्जुन को अपने सिर पर केशों की चोटी धारण किये कन्याओं से घिरा देखकर उसका हृदय विषाद से भर जाता है (४. १९, २०) । द्रौपदी के नृत्यशाला में पहुँचने पर अर्जुन सहित अन्तःपुर की अन्य कन्यायें उस निरपराध सतायी गई कृष्णा को देखने लगीं (४. २४, १८) । चौथे पर्व के १४–२४वें अध्यायों में प्रसङ्गशः विभिन्न नामों से अर्जुन का अनेक बार उल्लेख मिलता है । चौथे पर्व के २५–६९ अध्यायों का, जिनमें अर्जुन का अनेक बार उल्लेख है, सारांश इस प्रकार हैं : "दुर्योधन इत्यादि ने विराट देश पर आक्रमण और उसकी गायों का अपहरण किया । गोपाध्यक्ष ने विराटपुत्र उत्तर कुमार को दुर्योधन आदि से युद्ध करने के लिये उत्साहित किया । युद्ध के लिये उत्तर जब एक श्रेष्ठ सारथि की खोज करने लगा तब द्रौपदी ने, अर्जुन की सम्मति से, बृहन्नला को सारथि बनाकर राजकुमार उत्तर ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया । उस समय अर्जुन ने भयभीत उत्तर कुमार को आश्वासन दिया । युद्ध में द्रोणाचार्य ने अर्जुन के उत्तम पराक्रम की प्रशंसा की । अर्जुन ने शमी वृक्ष से अपने अस्त्रों को उतारने के लिये उत्तर कुमार को आदेश दिया और उसने तदनुसार पाण्डवों के दिव्य धनुषादि को उतारा । उत्तर कुमार द्वारा पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्रों के विषय में प्रश्न करने पर बृहन्नला ने पाण्डवों के आयुधों का, और साथ ही अज्ञातवास कर रहे पाण्डवों का भी परिचय दिया । अस्त्र धारण कर अर्जुन युद्ध के लिये तत्पर हुये । जब अर्जुन ने युद्ध का शंखनाद किया, तब द्रोणाचार्य ने कौरवों से उत्पातसूचक अपशकुनों का वर्णन किया; उस समय दुर्योधन ने भी युद्ध का निश्चय, और कर्ण ने आत्मप्रशंसापूर्ण अहंकारोक्तियों को व्यक्त किया । कृपाचार्य ने कर्ण को फटकारते हुये युद्ध के विषय में अपना विचार बताया; अश्वत्थामा ने भी अपने उद्गार प्रगट किये; भीष्म ने सेना में शान्ति और एकता बना रखने की चेष्टा की, तथा द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की रक्षा के लिये प्रयत्न किया । पाण्डवों के अज्ञातवास का समय समाप्त हो जाने के सम्बन्ध में भीष्म ने अपनी सम्मति प्रगट की; अर्जुन ने दुर्योधन की सेना को पराजित करके गायों को लौटा लिया; अर्जुन ने कर्ण पर भी आक्रमण किया जिससे पराजित होकर कर्ण भाग गया; कौरव सेना का संहार करते हुये अर्जुन कृपाचार्य से युद्ध करने लगे जिसे देखने के लिये आकाश में देवगण भी उपस्थित हुये; अन्ततोगत्वा कौरवपक्ष के सैनिक कृपाचार्य को रणभूमि से हटा ले गये । अर्जुन ने द्रोणाचार्य से भी भयंकर युद्ध किया जिसमें द्रोणाचार्य ने पलायन किया । अश्वत्थामा, कर्ण, और दुःशासन आदि समस्त कौरवों के साथ भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अर्जुन को विजय मिली; भीष्म के साथ अर्जुन का अद्भुत युद्ध हुआ जिसमें मूर्छित हो जाने पर भीष्म को उनका सारथि रणभूमि से उठा ले गया । इस प्रकार समस्त कौरव दल ने अर्जुन से पराजित होकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया; विजयी अर्जुन भी उत्तर कुमार के साथ विराट नगर लौट आये—(उक्त ४. ३५–६९ अध्यायों में अर्जुन का नाम इन स्थानों पर आता है ; ४. ३५, २०; ३६, ९. १०. १८; ३७, ४. ११. १९. ३४; ३८, ३४. ४१; ३९, १४; ४१, १२; ४३, २. १२. १९; ४४, २. ५. ८. ९. ११. १३. २०; ४५, २. ४. ५. १४. ३२; ४६, १०. ११. २०; ४७, २१; ४८, ८. १०; ५०, २०; ५१, १९; ५३, १. १०; ५४, २५; ५५, ८. १८. २९, ३२. ४१; ५६, ५. १३; ५७, ८. १०. १२. १३. ३२. ४०; ५८, २. १०. २०. ४७. ४९. ५०. ५४. ५७. ६१; ५९, १. ५. १५; ६०, २७; ६१, १३. १६. ३८. ४१; ६२, १. १६; ६४, १९. २९; ६५, १. १५; ६६, १६. १८; ६७, ५. ७) ।" "कौरवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अर्जुन ने विराट ने सम्मुख युधिष्ठिर की प्रशस्ति की तथा अन्य पाण्डवों का भी परिचय दिया । उत्तर कुमार ने प्रत्येक पाण्डव का वर्णन करते हुये अर्जुन के पराक्रम का विशेष रूप से उल्लेख किया । विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा का अर्जुन से विवाह करने का प्रस्ताव किया किन्तु अर्जुन ने अपने पुत्र अभिमन्यु के लिये ही उत्तरा को स्वीकार किया । अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह उपप्लव्य नगर में सम्पन्न हुआ जिसमें अनेक अक्षौहिणी सेनाओं के साथ बहुत से राजा सम्मिलित हुये (४. ७०, ९; ७१, १. ३. ९. ११. १५. १८. ३५; ७२, २. ११) ।" "अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह हो जाने के पश्चात् आये हुये सभी राजा और पाण्डवगण रात्रि में विश्राम करके विराट की सभा में उपस्थित हुये (५. १, ५) ।" "इस सभा से द्वारका लौटने के पश्चात् श्रीकृष्ण से सहायता माँगने के लिये दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही उनके पास आये । श्रीकृष्ण के शयनागार में प्रवेश करके अर्जुन कृष्ण के चरणों की ओर खड़े हो गये (५. ७, ९. ३५) ।" "युधिष्ठिर से मिलने के लिये आये हुये महाराज शल्य ने अर्जुन सहित सभी पाण्डवों को गले से लगाया । युधिष्ठिर ने कर्ण और अर्जुन के युद्ध के समय शल्य से कर्ण का सारथि बनने का आग्रह किया (५. ८, २८. ४३. ४४) ।" "युधिष्ठिर को 'इन्द्र-विजय' नामक उपाख्यान सुनाने के पश्चात् शल्य ने कहा कि दुर्योधन के अपराध के कारण ही भीमसेन और अर्जुन के बल से क्षत्रियों के संहार का अवसर उपस्थित हो गया है । शल्य के आश्वासन देने पर युधिष्ठिर ने पुनः अर्जुन और कर्ण के युद्ध के समय कर्ण का सारथि बनकर उसके उत्साह का नाश करते रहने के लिये शल्य से अनुरोध किया (५. १८, १८. २३) ।" "महाराज द्रुपद के पुरोहित को दूत बनाकर महाराज धृतराष्ट्र के पास भेजा गया । कौरव-सभा में जाकर दूत ने कहा : 'पाण्डवों के पास अब तक सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो चुकी है तथा उसमें भीम, कृष्ण, और अर्जुन जैसे महारथी वीर हैं जिनके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ।' धृतराष्ट्र ने द्रुपद के पुरोहित को पाण्डवों के पास लौटा दिया । अर्जुन की प्रशंसा करते हुये महाराज धृतराष्ट्र ने संजय को उपप्लव्य नगर में भेजा । वहाँ जाकर संजय ने धनञ्जय को नमस्कार किया । युधिष्ठिर ने बताया कि अर्जुन जब एक बार अपने हाथों से धनुष पर शर-सन्धान करते हैं तब उससे सुन्दर पङ्ख और पैनी धारवाले इकसठ तीक्ष्ण बाण प्रगट होते हैं । युधिष्ठिर ने संजय से कहा कि वे धृतराष्ट्र को इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों को दे देने के लिये कहें । अर्जुन और दुर्योधन की तुलना करते हुये युधिष्ठिर ने पाण्डवों को एक ऐसा धर्म वृक्ष बताया जिसका तना अर्जुन थे । राजा धृतराष्ट्र को पाण्डवों का संदेश सुनाने का वचन देकर संजय ने अर्जुन आदि से विदा ली । युधिष्ठिर ने संजय को भी धनञ्जय की ही भाँति अपना प्रिय बताया । हस्तिनापुर लौटकर संजय ने धृतराष्ट्र से अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया (५. २०–२२; ५. २२, १४. २४; २३, २२. २७; २६, २१. २२; २७, १९; २९, ५३; ३०, २) ।" ५. ४७–७१ : "दूसरे दिन प्रातःकाल संजय कौरवों के सभा भवन में उपस्थित हुये । उस समय उन्होंने युधिष्ठिर की आज्ञा से युद्ध के लिये उद्यत अर्जुन का संदेश सुनाया । उन्होंने बताया कि अर्जुन ने कहा है कि यदि दुर्योधन युधिष्ठिर का राज्य नहीं छोड़ता तो उसका भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण तथा अन्य तेजस्वी वीरों से युक्त महाराज युधिष्ठिर के साथ भयंकर युद्ध होगा । संजय ने बताया कि अर्जुन ने उनसे कहा, 'एक दिन की बात है, मैं

(अर्जुन) पूर्वाह्न काल में सन्ध्या-वन्दन करके आचमन के पश्चात् बैठा हुआ था। उस समय एक ब्राह्मण ने आकर एकान्त में मुझसे कहा कि मुझे दुष्कर कर्म करना होग। इस सम्बन्ध में उस ब्राह्मण ने मुझसे पूछा कि मैं युद्ध के समय उच्चैःश्रवा घोड़े पर बैठ कर वज्र हाथ में लिये इन्द्र को अपने आगे-आगे शत्रुओं का संहार करते चलना पसन्द करूँगा अथवा सुग्रीव आदि अश्वों से सन्नद्ध रथ पर बैठकर श्री कृष्ण से अपनी रक्षा कराना। उस समय मैंने वज्रपाणि इन्द्र को छोड़कर इस युग में भगवान श्रीकृष्ण को अपना सहायक चुना था। इस प्रकार इन डाकुओं के वध के लिये मुझे श्रीकृष्ण मिल गये।' संजय ने बताया कि अर्जुन ने उनसे यह भी कहा कि दुर्योधन श्रीकृष्ण को बन्दी बनाकर कृष्ण और अर्जुन के बीच विभेद उत्पन्न करना चाहता है किन्तु उसका (दुर्योधन का) यह मनोरथ सिद्ध नहीं होगा। संजय ने कहा कि अर्जुन ने युद्ध में स्थूणाकर्ण, पाशुपत और ब्राह्म आदि अस्त्रों का प्रयोग करने के लिये कहा है। उस समय भीष्म ने बताया कि अर्जुन और श्रीकृष्ण नर और नारायण हैं; युद्ध में एक बाण से ही अर्जुन ने जम्भासुर का वध कर दिया था। भीष्म ने कर्ण को फटकारते हुये बताया कि विराट नगर में वह अर्जुन के द्वारा अपनी पराजय और अपने भ्राता का वध देख चुका है। संजय ने अर्जुन के खाण्डववन दाह का भी वर्णन किया। धृतराष्ट्र यद्यपि भीम से, जो ऊँचाई में अर्जुन से भी एक अङ्गुष्ठ बड़े थे, अत्यन्त भयभीत थे, तथापि उन्हें अर्जुन का भी भय था। धृतराष्ट्र ने बताया कि खाण्डववनदाह को तेंतीस वर्ष हो चुके हैं और तब से अर्जुन के पराजय की कोई भी घटना नहीं हुई। दुर्योधन ने अर्जुन का वध करने की संशप्तकों की प्रतिज्ञा का उल्लेख किया। अर्जुन के पराक्रम का वर्णन करते हुये संजय ने बताया कि विश्वकर्मा त्वष्टा तथा प्रजापति ने इन्द्र के साथ मिलकर अर्जुन के रथ की ध्वजा में अनेक प्रकार के रूपों की रचना की है। भीमसेन के अनुरोध की रक्षा के लिये हनुमानजी भी उस ध्वज में युद्ध के समय अपने रूप को स्थापित करेंगे। जिस प्रकार आकाश में बहुरंगा इन्द्रधनुष प्रकाशित होता है और समझ में नहीं आता कि वह क्या है, उसी प्रकार विश्वकर्मा द्वारा रचित अर्जुन का वह रथ विविध रूपों वाला है। उस रथ में गन्धर्व चित्ररथ द्वारा प्रदत्त सौ श्वेत अश्व सन्नद्ध रहते हैं जिनमें से यदि कोई मर भी जाय तो उसके स्थान पर नया अश्व तुरन्त उत्पन्न हो जाता है। अर्जुन ने युद्ध में जयद्रथ और कर्ण का वध करने का निश्चय किया है। संजय ने बताया कि देवगण अर्जुन की रक्षा करते हैं, और उन्होंने स्वयं भी उनके तलवों में दो सीधी रेखायें देखी हैं। खाण्डववन की ही भाँति अग्नि पुनः अर्जुन की सहायता करेंगे। कृष्ण से रक्षित होकर अर्जुन एक बार में पाँच सौ बाण धारण कर सकते हैं। एक रथ पर बैठकर उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को विजित कर लिया था। अन्त में संजय ने बताया कि अर्जुन ने उनसे कहा है कि यदि युधिष्ठिर को उनका राज्य नहीं मिल जाता तो भीष्म आदि समस्त कौरय योद्धा मृत्यु को प्राप्त होगें (५. ४७–७१; ५. ४८, २. ७. ८; ४९, १७. २३. ४५; ५१, १४. १९. ६१; ५२, ८; ५३, ४. ६; ५४, ११. १५; ५५, ४०. ४२. ५२. ५९; ५६, २. ६; ५७, १५. १६. ६०; ५९, ७. २५. ३१; ६०, ८. २०; ६५, १६; ६६, २; ६७, १०; ६८, १; ६९, ७)।" "अर्जुन और युधिष्ठिर युद्ध करने के लिये उद्यत नहीं थे, और अर्जुन ने कृष्ण से यथाशक्ति शान्तिपूर्वक समझौता कराने का प्रयास करने के लिये कहा। फिर भी, अर्जुन ने कहा यदि दुर्योधन पाण्डवों की माँग को स्वीकार नहीं करेगा तो वे क्षत्रिय-जाति का ही उन्मूलन कर देंगे। श्रीकृष्ण के दौत्यकार्य करने के सम्म्य कुन्ती ने अर्जुन की अर्जुन कार्तवीर्य के साथ तुलना करते हुये श्रीकृष्ण से बताया कि अर्जुन के जन्म के समय रात्रि में यह आकाशवाणी हुई थी कि अर्जुन समस्त पृथ्वी को जीत लेंगे (५. ७२–९५ : ५. ७४, २३; ७७, १८; ७८, १; ७९, १६; ८१, ४; ८२, ३७. ४६; ८३, ३०; ९०, २८. ८०. ८१)।" अर्जुन को नर के साथ समीकृत किया गया है (५. ९६, ४६. ४९)। दुर्योधन से अर्जुन के पराक्रमों का वर्णन करते हुये श्रीकृष्ण ने बताया कि भीष्म इत्यादि युद्ध में अर्जुन और भीम का सामना नहीं कर सकते (५. १२४–१३२ : ५. १२४, ५०. ५१, ५५. ५७; १२५, १४. १६; १२६, १६; १३१, ८)। "कुन्ती ने श्रीकृष्ण से अर्जुन को उसके जन्म के समय की आकाशवाणी का स्मरण दिलाने तथा सदैव द्रौपदी के बताये हुये मार्ग पर चलने के लिये कहने का निवेदन किया। कुन्ती ने यह भी बताया कि दो यमों की भाँति भीम और अर्जुन देवताओं इत्यादि का भी वध करने में समर्थ हैं। भीष्म और द्रोण ने दुर्योधन को अर्जुन के पराक्रमों का स्मरण दिलाया। द्रोण ने कहा कि वे अर्जुन को अश्वत्थामा से भी अधिक प्रिय मानते हैं। दुर्योधन ने अर्जुन के प्रतिद्वन्दी के रूप में कर्ण को चुना था। कृष्ण ने भौमन् द्वारा दिव्य माया से रचित अर्जुन के ध्वज तथा उनके ऐन्द्र, आग्नेय, मारुत आदि अस्त्रों का वर्णन किया। कर्ण ने कुन्ती को यह वचन दिया कि वह अर्जुन के अतिरिक्त कुन्ती के अन्य किसी पुत्र का वध नहीं करेगा (५. १३७, १. २०; १३८, ५; १४०, २२; १४४, ३; १४५, ८-१०; १४६, २१-२३)।" "महाभारत युद्ध आरम्भ होने पर अनाधृष्टि आदि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को घेर कर उनके साथ कुरुक्षेत्र में प्रवेश किया। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर इन सबने अपने-अपने शंख बजाये। कौरव-सभा से श्रीकृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन ने शकुनि से कहा कि भीमसेन और अर्जुन श्रीकृष्ण के मत के अनुसार ही रहते हैं। जब युधिष्ठिर ने अपने गुरुजनों आदि से युद्ध करने के औचित्य पर शंका प्रगट की तब अर्जुन ने उनको माता कुन्ती तथा विदुर के कहे हुये वचनों का स्मरण दिलाया। भीष्म ने बताया कि पृथिवी पर अर्जुन के अतिरिक्त अपने समान अन्य किसी योद्धा से वे परिचित नहीं हैं; किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि अर्जुन उनसे कभी भी प्रत्यक्ष युद्ध नहीं करेंगे। कर्ण अर्जुन के साथ युद्ध तो करना चाहता था किन्तु भीष्म के वध के पूर्व वह इसके लिये उद्यत नहीं था। अर्जुन को पाण्डवसेना के समस्त नायकों का नायक बनाया गया और श्रीकृष्ण को अर्जुन का भी नायक तथा सारथि बनाया गया। रुक्मिन के पुत्र भीष्मक ने अर्जुन से कहा कि यदि वे भयभीत हों तो वह (भीष्मक) उनकी सहायता करने के लिये प्रस्तुत हैं। परन्तु अर्जुन ने अपने पराक्रमों का उल्लेख करते हुये कहा कि उन्होंने रुद्र से वरदान प्राप्त किया है, अतः यह नहीं कह सकते कि वह भयभीत होंगे (५. १५१-१५९; ५. १५३, १०; १५४, १७; १५७, ५. १५)।" "दुर्योधन ने उलूक को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजा। उलूक ने अर्जुन को बताया कि कौरव सेना में कम्बोज आदि जैसे वीर सम्मिलित हैं। उसने अर्जुन तथा अन्य पाण्डवों के सम्मुख दुर्योधन की बातों को दुहराया जिस पुर कुपित होकर अर्जुन ने उससे कहा कि भीष्म की सहायता भी दुर्योधन की रक्षा नहीं कर सकेगी, क्योंकि वे (अर्जुन) स्वयं भीष्म का वध करेंगे (५. १६०-१६४ : ५. १६०, ५४. १०६; १६१, २४; १६२, १. ९. ६१; १६३, ९. ५२. ५३; १६४, ३. ५)।" "स्वयंभू ब्रह्मा ने अर्जुन के हाथों ही भीष्म के वध का विधान किया है। कर्ण के यह कहने पर कि वह पाँच रात्रियों के भीतर ही भीम और अर्जुन को समाप्त कर सकता है, भीष्म ने उसका उपहास करते हुये कहा कि अर्जुन और कृष्ण का सामना करने पर वह ऐसा नहीं कह सकेगा। अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा कि कृष्ण की सहायता से वे देवों सहित तीनों लोकों को निमिष-मात्र में ही समाप्त कर सकते हैं। युधिष्ठिर की सेना में भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण और विराट इत्यादि योद्धा थे (५. १६५–१७२ : १७२, १५; १८५, १९; १९३, ३; १९४, ७)।" "युधिष्ठिर ने अर्जुन से अपने सैनिकों को महर्षि बृहस्पति के वचनानुसार सूचीमुख नामक व्यूह के अनुसार व्यवस्थित करने के लिये कहा। अर्जुन ने कहा कि वे इन्द्र द्वारा अविष्कृत वज्र-व्यूह की रचना करेंगे। अर्जुन शिखण्डिन् की रक्षा कर रहे थे। युधिष्ठिर के शोक प्रगट करने पर उनके धर्म और सत्य का उल्लेख करते हुये अर्जुन ने उन्हें सान्त्वना दी। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने दुर्गा की स्तुति की,

जिसके फलस्वरूप दुर्गा ने प्रगट होकर अर्जुन को विजय का वरदान दिया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करने के लिये कहा। जिससे वह यह देख सकें कि कौन-कौन से लोग युद्ध के लिये एकत्रित हुये हैं। अपने निकट सम्बन्धियों को युद्ध के लिये उद्यत देखकर अर्जुन का हृदय करुणा से भर गया और शोकमग्न होकर उन्होंने युद्ध न करने का निश्चय किया। कृष्ण ने अर्जुन को उत्साहित करने का प्रयत्न किया किन्तु इसका कोई फल नहीं हुआ। तब श्रीकृष्ण ने नित्यानित्य वस्तुओं का विवेचन करते हुये अर्जुन को क्षत्रिय-धर्म का पालन करने के लिये भगवद्गीता का उपदेश दिया। उपदेश के पश्चात् अर्जुन का भ्रम नष्ट हो गया और उन्होंने युद्ध के लिये पुनः गाण्डीव धनुष उठाया (६. १३-४२ : ६. १९, १९. २०. २८; २०, १५. २०; २१, २. ६; २२, ९; २३, १. ३. ४. २१; २५, ४. ४७; २६, २. ४५, ५४; २७, १. ७. ३६; २८, ४. ५. ९. ३७; २९, १; ३०, १६. ३२. ३३. ३७. ४६; ३१, १६. २६; ३२, १. १६. २७; ३४, १२. ३२. ३९. ४२; ३५, १. ४७. ५०. ५१. ५४; ३६, १; ३७, १; ३८, २१; ४१, १; ४२, १. ९. ६१. ७३. ७६)।" अर्जुन को पुनः गाण्डीव धारण करते देख कर पाण्डव और सोमकादि अत्यन्त हर्षित हुये (६. ४३, १६. ३३)। "महाभारत युद्ध का प्रथम दिन : भीष्म ने अर्जुन पर आक्रमण किया; अभिमन्यु को भी अर्जुन के समान ही माना जाता था; अर्जुन ने शंख के आगे बढ़ कर भीष्म पर आक्रमण किया। शंख अर्जुन के रथ पर चढ़ गया; भीष्म ने अर्जुन को छोड़ कर द्रुपद पर आक्रमण किया। सूर्यास्त होने तक पाण्डव सेना पराजित होकर पीछे हट गई। अर्जुन अत्यन्त उदास थे। कृष्ण ने युधिष्ठिर को सान्त्वना दी और युधिष्ठिर ने द्वितीय दिन के युद्ध के लिये क्रौञ्चारुण व्यूह का निर्माण करने का आदेश दिया। प्रातःकाल होने पर धृष्टद्युम्न ने अर्जुन को व्यूह के आगे खड़ा किया। अर्जुन के ध्वज को इन्द्र के आदेश से साक्षात् विश्वकर्मा ने बनाया था। इस प्रकार व्यूह रचना करने के पश्चात् अर्जुन ने अपना देवदत्त नामक शङ्ख बजाया (६. ४४-५१ : ६. ४५, ९; ४९, १०. १४. ३७; ५०, ३०)।" "युद्ध का द्वितीय दिन : भीष्म ने अर्जुन पर वार किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपने रथ को भीष्म के सामने ले चलने के लिये कहा। केवल भीष्म, द्रोण और कर्ण ही अर्जुन का सामना कर सकते थे। सात्यकि आदि महारथियों से घिरे हुये अर्जुन का भीष्म के साथ युद्ध। कौरव सेना की पराजय तथा अर्जुन और कृष्ण द्वारा अपने-अपने शङ्खों को बजाना (६. ५२-५५ : ५२, १२. १६. २२. २४. ४३-४४. ४७-४८. ५२. ६९; ५५, २५. ३३. ३५)।" "युद्ध का तृतीय दिन : अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने अर्द्ध चन्द्राकार व्यूह की रचना की जिसमें बाँयें ओर स्वयं अर्जुन खड़े हुये। अर्जुन ने द्रोणाचार्य से रक्षित कौरवों के साथ युद्ध किया परन्तु उन्हें उसी प्रकार पराजित नहीं कर सके जिस प्रकार अर्जुन और भीम के द्वारा रक्षित पाण्डव भी अपराजित थे। अन्त में भीष्म इत्यादि पाण्डव सेना में प्रवेश कर गये। उस समय इनके साथ युद्ध करते हुये अर्जुन के अलौकिक पराक्रम को देखकर देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। अर्जुन के पराक्रम से कौरव सेना में भगदड़ मच गई जिसे भीष्म और द्रोण रोक न सके। उस समय दुर्योधन ने अपनी सेना को रोका। कृष्ण ने अर्जुन से भीष्म के साथ युद्ध करने के लिये कहा। कृष्ण और अर्जुन दोनों को भीष्म ने घायल कर दिया और पाण्डव सेना भी पराजित हुई। भीष्म ने द्रोण से अर्जुन पर आक्रमण करने को कहा। उस समय शिनि के पौत्र (सात्यकि = युयुधान) अर्जुन की सहायता के लिये आये। उसी समय श्रीकृष्ण रथ से नीचे कूद पड़े और अपना सुदर्शन चक्र लेकर भीष्म की ओर दौड़ पड़े। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को रोका। उस समय दुर्योधन आदि ने अर्जुन पर आक्रमण किया किन्तु अर्जुन ने माहेन्द्रास्त्र का आवाहन करके कौरव सेना को रोक दिया। तदुपरान्त अर्जुन ने रक्त की एक ऐसी नदी बहा दी जिसके दोनों ओर राक्षस खड़े थे। सूर्यास्त के समय भीष्म आदि सहित कौरव सेना पीछे हट गई, और अर्जुन ने भी अपनी सेना हटा ली। उस समय कौरव सेना में अत्यन्त हाहाकार मचा हुआ था। सब यही कह रहे थे कि अर्जुन ने श्रुतायुयों और समस्त सौवीरों का वध कर डाला है (६. ५६-५९ : ५८, २६; ५९, ५६. ७८. ८०. ११०. १२८. १३५)।" "युद्ध का चौथा दिन : भीष्म, द्रोण, इत्यादि ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन और कृष्ण का प्राचीन महर्षि नर और नारायण के अवतार के रूप में उल्लेख (६. ६०-६८ : ६०, ६. २४; ६१, १८)।" "युद्ध का पाँचवाँ दिन : भीष्म द्वारा मकरव्यूह और पाण्डवों द्वारा श्येन व्यूह की रचना। अर्जुन का भीष्म पर आक्रमण और दुर्योधन का भीष्म की रक्षा करना। अर्जुन का ध्वज सिंहपुच्छ के समान वानर की पूँछ से युक्त और प्रज्वलित पर्वत की भाँति दिखाई देता था। वह वृक्ष में कहीं भी अटकता नहीं था, आकाश में उदित हुये धूमकेतु सा दृष्टिगोचर होता था, और अनेक रङ्गों से सुशोभित, विचित्र, दिव्य, तथा वानरचिह्न से युक्त था। कौरवगण अर्जुन के पराक्रम को देखकर भयभीत हुये। अर्जुन ने द्रोणाचार्य से युद्ध किया। उस समय दुर्योधन ने २५,००० सैनिकों को अर्जुन के वध के लिये भेजा परन्तु अर्जुन ने उन सबका वध कर डाला। मत्स्य और केकय अर्जुन तथा अभिमन्यु को घेर कर खड़े थे। संध्या समय दोनों पक्षों ने अपनी अपनी सेनाओं को पीछे हटा लिया (६. ६९-७४)।" "युद्ध का छठवाँ दिन : छठवें दिन पाण्डवों ने द्रुपद और अर्जुन के नेतृत्व में मकरव्यूह की रचना की। भीम और अर्जुन के महान पराक्रम से पराभूत होकर कौरव सेना भाग खड़ी हुई (६. ७५-८० : ७५, २७. ३४)।" "युद्ध का सातवां दिन : दूसरे दिन युधिष्ठिर ने अपनी सेना को वज्रव्यूह में व्यवस्थित किया। अनेक राजाओं ने, जिनमें भ्राताओं सहित त्रिगर्तराज भी थे, अर्जुन पर आक्रमण किया; अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का आवाहन किया जिससे शत्रुसेना भाग खड़ी हुई। भीष्म ने उस समय कौरव सेना की रक्षा की। जब अर्जुन ने कौरव सेना को पराजित कर दिया और भीष्म अर्जुन के रथ की ओर बढ़े तब दुर्योधन ने अपने पक्ष के अनेक राजाओं को भीष्म की रक्षा करने के लिये कहा। अलम्बुष के साथ युद्ध करते हुये सात्यकि ने अर्जुन से प्राप्त ऐन्द्रास्त्र के व्यवहार से अलम्बुष की माया को भस्म कर दिया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपना रथ भीष्म की ओर ले चलने के लिये कहा। अर्जुन ने सुशर्मन् के साथ युद्ध और अनेक सैनिकों का वध किया। त्रिगर्तराज सहित बत्तीस अन्य राजाओं ने अर्जुन पर आक्रमण किया, किन्तु अर्जुन उनमें से अनेक का वध करके भीष्म पितामह की ओर बढ़े। उस समय जब त्रिगर्तराज ने अर्जुन पर आक्रमण किया तो अर्जुन की सहायता के लिये शिखण्डिन् आदि वहाँ आ पहुँचे। अर्जुन ने त्रिगर्त वीरों पर गाण्डीव धनुष से बाण-वर्षा की। अर्जुन के विरुद्ध भीष्म की रक्षा के लिये दुर्योधन और जयद्रथ इत्यादि आये। उस समय अर्जुन ने अनेक शत्रुओं के साथ युद्ध किया और सूर्यास्त के समय सुशर्मन् इत्यादि को पराभूत करने के पश्चात् अपने शिविर में लौट आये (६. ८१-८६ : ८१, ४२; ८२, ८; ८४, ४८. ५३; ८५, १०; ८६, ३८. ४६)।" "युद्ध का आठवाँ दिन : धृष्टद्युम्न ने शृङ्गारक व्यूह बनवाया जिसके दोनों शृङ्गों के स्थान पर भीमसेन और महारथी सात्यकि कई सहस्त्र रथियों, अश्वारोहियों और पदातियों के साथ उपस्थित थे। व्यूह के अग्रभाग में नरश्रेष्ठ, श्वेतवाहन अर्जुन खड़े थे। अर्जुन आदि ने दुर्योधन के नेतृत्व में युद्ध कर रहे राजाओं पर आक्रमण किया। अर्जुन-पुत्र इरावत् ने कौरवों पर आक्रमण किया, परन्तु ऋष्यश्रृङ्ग के पुत्र अलम्बुष नामक राक्षस ने उनका वध कर दिया। अर्जुन इत्यादि ने अनेक राजाओं का वध किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से इरावान् के वध के सम्बन्ध में शोकपूर्ण उद्गार प्रगट किये। रात्रि के अन्धकार के कारण पाण्डवों और कौरवों ने अपनी-अपनी सेनाओं को युद्धभूमि से लौटने का आदेश दिया। भीष्म ने दुर्योधन से अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया। दुर्योधन ने दुःशासन को बताया कि अर्जुन के रथ के बाँये पहिये की रक्षा युधामन्यु और दाहिने पहिये की रक्षा उत्तमौजा करते हैं।

इस प्रकार अर्जुन के ये दो रक्षक हैं तथा अर्जुन भी शिखण्डिन् की रक्षा करते है। अर्जुन ने धृष्टद्युम्न से कहा, 'तुम पुरुषसिंह शिखण्डी को भीष्म के सामने उपस्थित करो, मैं उसकी रक्षा करूँगा' (६.८७-९८ : ८९,१९. ३५; ९०, ७.९. ११.१३.१६.५२.७०.७८.८२; ९५,१२.८६;९६,३६;९८,२९. ४८)।" "युद्ध का नवाँ दिन : अर्जुन ने भीष्म, द्रोण, और कृप से, तथा इनके बाद त्रिगर्तराज तथा उनके पुत्र से युद्ध किया। अर्जुन ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया जिसके कारण त्रिगर्तराज की सेना पराङ्मुख हो गई। दुर्योधन इत्यादि ने अर्जुन को घेर लिया किन्तु दुर्योधन का सामना करते हुये अर्जुन ने सुशर्मन् के समस्त अनुचरों का वध कर डाला। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भीष्म का वध कर देने के लिये कहा। श्रीकृष्ण रथ से उतर कर स्वयं भीष्म की ओर दौड़े परन्तु अर्जुन उन्हें लौटा लाये। सूर्यास्त के समय दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी सेनायें लौटा लीं। श्रीकृष्ण ने बताया कि अर्जुन इत्यादि अजेय हैं। पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण ने भीष्म से मिलकर उनके वध का उपाय पूछा। भीष्म ने अर्जुन को शिखण्डिन् को आगे करके युद्ध करने का परामर्श दिया। भीष्म के मारे जाने की सम्भावना पर अर्जुन को शोक हुआ, परन्तु श्रीकृष्ण ने उनको भीष्म-वध की उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। तदुपरान्त पाण्डवगण प्रसन्न होकर वहाँ से लौटे (६.९९-१०७ : १०१, ६.१४.३९.५९; १०२,८.१३; १०४, १; १०६, ४८.७१; १०७,२७.३९.८२.९०.१०३)।" "युद्ध का दसवां दिन : उभय पक्ष की सेनाओं ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया। पाण्डवों ने शिखण्डिन् को आगे करके प्रस्थान किया। उस समय भीम और अर्जुन शिखण्डी के रथ के पहियों के रक्षक बने। इस प्रकार शिखण्डिन् को आगे करके अर्जुन के नेतृत्व में पाण्डव सेना भीष्म के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़ी। अर्जुन ने शिखण्डिन् से भीष्म का वध करने के लिये कहा और स्वयं द्रोणाचार्य इत्यादि को रोकने के लिये बढ़े। अर्जुन ने कौरव सेना को पराजित किया। दुर्योधन ने भीष्म से अर्जुन के सम्बन्ध में बताया। अर्जुन के प्रोत्साहन से शिखण्डिन् इत्यादि ने भीष्म पर आक्रमण किया। दुःशासन ने अर्जुन और शिखण्डिन् पर आक्रमण किया जिसके परिणाम स्वरूप अर्जुन दुःशासन के रथ से आगे नहीं बढ़ सके। घोर युद्ध के पश्चात् अर्जुन ने दुःशासन को लौटने के लिये विवश किया और उसके बाद कौरव सेना को पराजित किया। दुःशासन नें पुनः अर्जुन का सामना किया; अर्जुन और शिखण्डिन् ने भीमसेन से सहायता माँगी। दुर्योधन ने त्रिगर्तराज सुशर्मन से अर्जुन तथा भीमसेन का वध करनें के लिये कहा। अर्जुन ने शल्य इत्यादि के साथ युद्ध किया। द्रोण इत्यादि, तथा भीष्म ने अर्जुन और भीमसेन के साथ युद्ध किया। द्रोण इत्यादि ने पार्थों, मुख्यतः अर्जुन के साथ, युद्ध किया। धृतराष्ट्र-पुत्रों ने शिखण्डिन् और अर्जुन के साथ युद्ध किया। अर्जुन ने भीष्म और भगदत्त के साथ युद्ध किया। अर्जुन नें भीष्म और भगदत्त के साथ युद्ध करते हुए शिखण्डिन् से भीष्म का वध करने के लिये कहा। कौरवों ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन और शिखण्डिन् को छोड़कर कोई भी महारथी भीष्म का सामना करने का साहस न कर सका। भीष्म ने शिखण्डिन् के विरुद्ध अस्त्र नहीं चलाया; अर्जुन ने शिखण्डिन् से शीघ्र ही भीष्म का वध करने के लिये कहा। दुःशासन ने अर्जुन तथा समस्त पार्थों के साथ युद्ध किया किन्तु अर्जुन द्वारा पराजित हुआ। विदेहों इत्यादि ने अर्जुन पर आक्रमण किया किन्तु अर्जुन ने अनेक दिव्यास्त्रों से सबको पराजित कर दिया। तदुपरान्त अर्जुन ने दुःशासन तथा भीष्म इत्यादि से युद्ध किया। कृष्ण ने अर्जुन से भीष्म का वध करने के लिए कहा। पञ्चाल राज धृष्टकेतु इत्यादि को भीष्म ने आहत कर दिया, परन्तु अर्जुन ने इन सबकी रक्षा की। अर्जुन से रक्षित होकर शिखण्डिन् ने भीष्म पर आक्रमण किया। भीष्म के समस्त सैनिकों का वध करने के पश्चात् अर्जुन स्वयं ही भीष्म पर टूट पड़े। दिव्यास्त्रों आदि का प्रयोग करते हुए द्रोण इत्यादि ने अर्जुन के साथ युद्ध किया। भीष्म ने दुःशासन से बताया कि अर्जुन अजेय हैं और स्वयं उनको (भीष्म को) देव, दानव, और राक्षस भी पराजित नहीं कर सकते। धृतराष्ट्र के पुत्र भीष्म को घेर कर खड़े हुए परन्तु अर्जुन के सामने वे सभी भाग गये। सूर्यास्त के थोड़े समय पहले भीष्म अपने रथ से गिर पड़े. परन्तु सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण उन्होंने प्राणत्याग नहीं किया। दोनों ही पक्ष के लोगों ने युद्ध बन्द कर दिया। मस्तक नीचे की ओर लटका होने के कारण भीष्म ने एक तकिया मागा; उस समय अर्जुन ने गाण्डीव धनुष के द्वारा तीन अभिषिक्त बाणों से भीष्म के मस्तक को ऊँचा कर दिया, जिससे भीष्म को अत्यन्त प्रसन्नता हुई (६.१०८-१२० : १०८,१८; ११०. १.२१.२२.३२.४८; १११, ५६; ११२, १६.२१; ११३, ४७.५०.५२.५३; ११४, ८.२१.३७; ११५, ६.७; ११६, ५५.५८-६०.६२.६४.६५; ११७, ४.८,१४.१९.२१; ११९, ६०.६५.७६)।" "युद्ध का ग्यारहवाँ दिन : दूसरे दिन प्रातःकाल जब भीष्म ने जल माँगा तब अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से पार्जन्यास्त्र छोड़कर पृथिवी का भेदन किया जिससे शीतल जल की धारा बह निकली। उस समय भीष्म ने अर्जुन की प्रशंसा करते हुए कहा, 'देवर्षि नारद तक ने तुम्हें एक प्राचीन ऋषि बताया है.......'। भीष्म ने दुर्योधन से बताया कि अग्नि इत्यादि के अस्त्र केवल अर्जुन और कृष्ण को ही ज्ञात हैं। भीष्म ने कर्ण को अपने सहोदर भ्राताओं का साथ देने के लिए कहा, परन्तु कर्ण ने कृष्ण से रक्षित होने के विपरीत भी अर्जुन इत्यादि से युद्ध करने का निश्चय व्यक्त किया (६.१२१-१२२ : १२१, १५.१९.२०)।" "भीष्म को बाण-शय्या पर पड़ा देखकर महातेजस्वी कर्ण अत्यन्त आर्त्त होकर रथ से उतर पड़ा और अभिवादन के पश्चात् गद्गद्वाणी में भीष्म से गाण्डीवधारी अर्जुन से उत्पन्न कौरवों के संकट का वर्णन किया। उसने शिव के साथ अर्जुन के युद्ध की चर्चा की। युद्ध आरम्भ के समय युधिष्ठिर ने क्रौञ्च व्यूह का निर्माण, और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण को उसके शीर्ष भाग में स्थित किया। पाण्डव और सृञ्जय द्रोण से पराजित हुये। युधिष्ठिर ने अर्जुन से द्रोणाचार्य को रोकने के लिये कहा। धृतराष्ट्र ने इस बात पर खेद प्रगट किया कि दुर्योधन श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को नहीं जान सका (७.१-११ : २,१६.३१; ३.२१; ६,१०;७.२९;८,३;१०,२२;११,३८.४१)।" "सृञ्जय ने युद्ध के ११ वें दिन का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा : द्रोणाचार्य ने उस स्थिति में युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का वचन दिया जब वे इन्द्र और रुद्र इत्यादि से प्राप्त अस्त्रों सहित अर्जुन से रक्षित न हों। अतः अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर हटाना आवश्यक समझा गया। युधिष्ठिर ने अपने एक गुप्तचर के द्वारा यह जान लिया कि द्रोणाचार्य उन्हें बन्दी बनाना चाहते हैं। अर्जुन ने युधिष्ठिर को सान्त्वना दी। तदुपरान्त भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। द्रोणाचार्य और अर्जुन से रक्षित दोनों पक्ष की सेनायें एक दूसरे का कुछ नहीं बिगाड़ सकीं। युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए अर्जुन ने द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण किया। सूर्यास्त के समय दोनों दलों ने अपनी-अपनी सेनायें पीछे हटा लीं। पाण्डवों इत्यादि ने अर्जुन की प्रशंसा की (७.१२-१६ : १२,२०;१३,७)।" "अर्जुन के साथ रहने पर युधिष्ठिर को बन्दी बनाने में द्रोणाचार्य ने अपनी असमर्थता प्रगट की। त्रिगर्तराज ने यह कहते हुए कि अर्जुन ने सदैव हम लोगों को कष्ट पहुँचाया है, कहा कि हमें इस बात की शपथ लेनी चाहिये कि या तो अर्जुन का ही वध होगा अथवा सभी त्रिगर्त मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। तब उन लोगों ने अर्जुन को युद्ध क्षेत्र के दक्षिण भाग में बुलाया। सत्यजित् से युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिये कह कर अर्जुन त्रिगर्तों के साथ युद्ध के लिए दक्षिण गये (७. १७, ८. १६. ३७. ४४)।" "युद्ध का बारहवाँ दिन : संशप्तकों ने अर्जुन के साथ युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर हर्ष प्रगट किया परन्तु अर्जुन ने अपना देवदत्त नामक शंख बजाकर उन्हें भयभीत कर दिया। सुबाहु और सुशर्मन इत्यादि ने अर्जुन के साथ युद्ध किया, परन्तु पराजित होकर दुर्योधन के पास भाग गये। त्रिगर्तराज के द्वारा प्रोत्साहित होकर ये नारायणी सैनिकों सहित पुनः रणस्थल की ओर लौट पड़े। श्रीकृष्ण अर्जुन को संशप्तकों के सामने लाये। नारायणी सैनिकों ने अर्जुन के साथ युद्ध

किया। अर्जुन ने अपना देवदत्त नामक शंख बजाकर त्वाष्ट्रास्त्र द्वारा शत्रुओं को मोहित कर दिया जिससे वे अपने ही सैनिकों पर प्रहार करने लगे। तदुपरान्त अर्जुन ने हँसकर ललित्थ इत्यादि सैनिकों को पराजित करते हुये वायव्यास्त्र का प्रयोग किया जिसने शत्रुओं की बाण-वर्षा को नष्ट कर दिया; वायु देवता ने भी अश्व, गज, रथ, और आयुधों सहित संशप्तक समूहों को वहाँ से सूखे पत्तों के ढेर की भाँति उड़ाना आरम्भ कर दिया। जब अर्जुन संशप्तकों के साथ युद्ध कर रहे थे, द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया। द्रोणाचार्य के विरुद्ध युधिष्ठिर ने मण्डलार्ध व्यूह बनाया। द्रोणाचार्य के अलौकिक व्यूह को देखकर युधिष्ठिर भतभीत होकर अपने वेगशाली अश्वों से युक्त रथ पर बैठकर युद्धस्थल से दूर चले गये। अर्जुनपुत्र श्रुतकीर्ति ने दुःशासन के पुत्र के साथ युद्ध किया। अर्जुन इत्यादि ने भगदत्त और उसकी गजसेना के साथ युद्ध किया। अर्जुन के कहने पर श्रीकृष्ण ने रथ को भगदत्त की ओर बढ़ाया। अर्जुन को जाते हुये देखकर चौदह सहस्र संशप्तक महारथी, जिनमें दस सहस्र त्रिगर्तदेशीय और चार सहस्र नारायणी थे, अर्जुन पर टूट पड़े। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र से इन सबको नष्ट करने के पश्चात गजारोही भगदत्त पर आक्रमण किया। किन्तु यतः सुशर्मन् और उसके भ्राताओं ने अर्जुन को पीछे से पुनः ललकारा अतः उन्होंने पहले सुशर्मन् पर ही आक्रमण कर दिया और उसके बाद भगदत्त की ओर मुड़े। अन्त में भगदत्त ने मंत्रों से अभिषिक्त करके वैष्णवास्त्र से अर्जुन पर प्रहार किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने उस अस्त्र को अपने वक्षःस्थल पर रोक लिया। श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर आकर वह अस्त्र वैजयन्तीमाला के रूप में परिणत हो गया। श्रीकृष्ण के इस प्रकार वैष्णवास्त्र को निष्फल कर देने पर अर्जुन को अत्यन्त क्लेश हुआ, जिससे उन्होंने श्रीकृष्ण से युद्ध न करने का निवेदन किया। अर्जुन की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र का इतिहास बताते हुये उनसे इस प्रकार कहा, 'यह महान् असुर अब इस श्रेष्ठ अस्त्र से रहित हो गया है, अतः देवों के शत्रु इस भगदत्त का तुम उसी प्रकार वध कर डालो, जिस प्रकार अतीत में लोक-कल्याण के लिये मैंने नरकासुर का वध किया था।' तब अर्जुन ने भगदत्त तथा उसके गज को भी मार डाला। तदुपरान्त अर्जुन ने वृष और अचल नामक दो भ्राताओं का वध किया। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अर्जुन पर आक्रमण तथा शकुनि ने माया द्वारा उन्हें और श्रीकृष्ण को भ्रमित करने का प्रयास किया। शकुनि ने अपनी माया से गदा तथा गदहे आदि अनेक प्रकार के अस्त्र और पशु उत्पन्न किये जिन्हें अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्रों से नष्ट कर दिया। तदुपरान्त अर्जुन के रथ के समीप अन्धकार प्रगट हुआ और उस अन्धकार से क्रूरतापूर्ण शब्द अर्जुन को सुनाई पड़ने लगे, किन्तु अर्जुन ने अपने विशाल ज्योतिर्मय अस्त्र द्वारा उसे नष्ट कर दिया। अन्धकार के निवारण के पश्चात् भयंकर जल-प्रवाह प्रगट हुआ, जिसे अर्जुन ने आदित्यास्त्र से नष्ट किया। मायाओं का इस प्रकार नाश हो जाने के कारण शकुनि रणस्थल से भाग गया। अर्जुन ने कुरु-सेना का भयंकर संहार किया जिसके परिणामस्वरूप कुछ सेना द्रोण के पीछे भागी और कुछ दुर्योधन के। इस प्रकार दक्षिण की ओर अर्जुन और कुरुसेना में भयंकर संग्राम हुआ। पाण्डवों ने इस बात पर खेद प्रगट किया कि अर्जुन उस समय रणभूमि के दक्षिण-क्षेत्र में संशप्तकों और नारायणी सेना के संहार में लिप्त हैं। संशप्तकों का वध करने के पश्चात् अर्जुन ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते हुये द्रोणाचार्य इत्यादि से युद्ध किया। अर्जुन ने कर्ण के तीन भ्राताओं का वध किया। सूर्यास्त के समय दोनों पक्ष की सेनायें अपने-अपने शिविरों में लौट आईं (७. १८-३२ : १८, ७. १२. १३. १५. १६; १९, १. ४. ११-१३. १८. २१; २३, ७०; २६, २; २७, १४. १८. २५; २८, ७. ९. १०. १६; २९, १०-१२. २१; ३०, २. ५. ११. १८. २०. २३–२५. २७. २८. ३४. ३५. ३८; ३२, ४६, ५०. ५२. ५६. ६०. ७१)।" "युद्ध का तेरहवाँ दिन : अर्जुन द्वारा पराजित होने, तथा द्रोणाचार्य द्वारा युधिष्ठिर को बन्दी बनाने में असफल हो जाने पर कौरवों को पराजित माना जाने लगा। चारों ओर अर्जुन और श्रीकृष्ण की प्रशंसा हो रही थी। दूसरे दिन प्रातःकाल दुर्योधन ने युधिष्ठिर को बन्दी बनाने में असमर्थ हो जाने के कारण द्रोणाचार्य का उपालम्भ किया। द्रोणाचार्य ने कहा कि अर्जुन तथा श्रीकृष्ण से रक्षित कोई भी सेना महादेव के अतिरिक्त अन्य किसी से पराजित नहीं हो सकती। संशप्तक-गण अर्जुन को ललकार कर युद्ध क्षेत्र के दक्षिणी भाग में ले गये। पाण्डवसेना का नायकत्व भीमसेन कर रहे थे। अभिमन्यु ने अर्जुन और श्रीकृष्ण से प्राप्त अस्त्रों द्वारा समस्त योद्धाओं को पराजित कर दिया। अन्ततोगत्वा दुःशासन के पुत्र ने उस समय अभिमन्यु का वध किया, जब अभिमन्यु के पीछे चलने वाले योद्धाओं को जयद्रथ ने रोक दिया (७. ३३–५१ : ३३, ४. १२. १४; ३५, १४. १५; ३६, ८; ४०, १६; ४५, २२; ५१, ८. १०)।" "अभिमन्यु के वध के बाद शोकमग्न युधिष्ठिर को व्यास ने सान्त्वना दी। युधिष्ठिर शोक-मुक्त तो हुये, किन्तु उन्होंने कहा कि 'हम अर्जुन से क्या कहेंगे ?' (७. ७१, १५)।" "सन्ध्या समय, असंख्य संशप्तकों का वध करने के पश्चात् अपने शिविर की ओर जाते हुये अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि उनका हृदय अत्यन्त दुःखी है। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें विपत्ति के संकेत मिल रहे हैं और अभिमन्यु भी हंसता हुआ उनका स्वागत करने के लिये शिविर से बाहर नहीं निकला, इत्यादि। उन्हें यह स्मरण हुआ कि द्रोणाचार्य ने उस दिन चक्रव्यूह का निर्माण किया था, जिसका अभिमन्यु के अतिरिक्त अन्य कोई भेदन नहीं कर सकता। किन्तु उन्होंने अभिमन्यु को यह नहीं बताया था कि भेदन के पश्चात चक्रव्यूह से बाहर कैसे निकलना चाहिये ? अर्जुन ने धृतराष्ट्र पुत्रों का दर्पपूर्ण सिंहनाद सुना और श्रीकृष्ण ने भी यह सुना कि युयुत्सु उन कौरव वीरों को अर्जुन की अपेक्षा एक बालक का वध कर देने का उपालम्भ दे रहे हैं। धार्तराष्ट्रों का उपालम्भ करने के पश्चात युयुत्सु ने कोप और दुःख से युक्त होकर अपना शस्त्र त्याग दिया और कौरवों के पास से चले गये। अर्जुन को पुत्रशोक से पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण ने क्षत्रियधर्म तथा स्वर्ग आदि सम्बन्धी उपदेश देते हुये उन्हें सान्त्वना दी। उस समय अर्जुन की अवस्था देखकर श्रीकृष्ण अथवा युधिष्ठिर के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं था जो उनसे (अर्जुन से) बोल सकता अथवा उनकी ओर देखने का साहस करता। युधिष्ठिर ने अर्जुन को अभिमन्युवध का वृत्तान्त सुनाया, जिसे सुनकर अर्जुन ने दूसरे दिन सूर्यास्त के पूर्व ही जयद्रथवध की प्रतिज्ञा की (७. ७२)।" "अर्जुन ने कहा कि देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत तथा इसके परे जो कुछ है वह सब भी अब जयद्रथ की रक्षा नहीं कर सकते; यदि जयद्रथ रसातल में चला जाय, या उससे भी आगे बढ़ जाय, अथवा आकाश, देवलोक, या दैत्यों के नगर में जाकर छिप जाय तो भी वे उसका वध अवश्य करेंगे। प्रतिज्ञा के पश्चात् अर्जुन ने दाहिने और बाँये हाथ से भी गाण्डीव धनुष की टङ्कार की। अर्जुन के इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेने पर भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित होकर अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया और अर्जुन ने भी अपना देवदत्त नामक शंख फूँका (७. ७३)" "गुप्तचरों से जब जयद्रथ को अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार मिला तो उसका हृदय शोक से व्याकुल हो गया; उसने राजाओं की सभा में जाकर कहा 'द्रोणाचार्य आदि महारथी, देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा राक्षस भी अब मेरी अर्जुन से रक्षा नहीं कर सकते। ऐसा कहकर जयद्रथ ने अपने घर लौट जाने की इच्छा व्यक्त की; उसे सान्त्वना देते हुये दुर्योधन ने कहा कि वह स्वयं तथा कर्णादि उसकी रक्षा करेंगे; दुर्योधन के साथ जयद्रथ ने उसी रात को द्रोणाचार्य की शरण में जाकर अपने तथा अर्जुन के अन्तर के सम्बन्ध में प्रश्न किया; द्रोणाचार्य ने कहा यद्यपि उसने तथा अर्जुन ने एक ही प्रकार की शिक्षा पाई है, परन्तु योग तथा कठिन साधना के कारण अर्जुन उससे श्रेष्ठ हैं; फिर भी, द्रोणाचार्य ने एक अभेद्य व्यूह की रचना करके जयद्रथ की रक्षा करने का वचन दिया; साथ ही उन्होंने कहा कि मृत्यु से भयभीत नहीं होना

चाहिये (७. ७४)" "श्रीकृष्ण ने शीघ्रतापूर्वक जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करने पर अर्जुन से कहा 'तुमने अपने भ्राताओं का मत जाने बिना ही जो प्रतिज्ञा कर ली है उससे तुमने अत्यन्त गुरुतर भार उठा लिया है, अतः ऐसी दशा में हम लोगों के उपहास-पात्र क्यों न बन जायँगे ?' श्रीकृष्ण ने बताया कि कौरव सेना भी सतर्क हो गई है और अर्जुन के आक्रमण के भय से युद्ध के लिये सन्नद्ध है। उन्होंने यह भी बताया कि अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर कौरव-गण जयद्रथ की यथाशक्ति रक्षा करेंगे; कर्ण आदि जयद्रथ के रथ में ही उपस्थित रहेंगे, द्रोणाचार्य ऐसा व्यूह बनायेंगे जिसका अग्रार्द्ध शकट के समान और पृष्ठार्द्ध कमल के समान होगा (७. ७५)।" "अर्जुन ने श्रीकृष्ण को यह आश्वासन दिया कि द्रोणाचार्य, साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनी कुमार, इन्द्र सहित मरुद्गण, विश्वेदेव, देवेश्वरगण, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, पृथिवी, दिशायें, दिग्पाल, ग्रामों तथा जंगलों में निवास करने वाले सभी प्राणी और सम्पूर्ण चराचर जीवों से रक्षित होने पर भी वे अपने गाण्डीव तथा यमादि से प्राप्त अन्य अस्त्रों द्वारा जयद्रथ का वध करने में समर्थ हैं (७. ७६)।" "इन्द्रसहित देवगण, नर और नारायण को कुपित जानकर चिन्तित हो उठे; प्रकृति में अनेक प्रकार के अपशकुन प्रगट होने लगे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के निवास स्थान पर जाकर क्षत्रियोचित कर्त्तव्यों का उपदेश देते हुये सुभद्रा को सान्त्वना दी (७. ७७)।" "अभिमन्यु की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए सुभद्रा ने भीमसेन आदि को अभिमन्यु की रक्षा में असफल हो जाने के कारण धिक्कारा; द्रौपदी और उत्तरा भी विलाप करती हुई सुभद्रा के पास आ गईं; श्रीकृष्ण ने कहा कि अभिमन्यु ने अत्यन्त श्रेष्ठ गति प्राप्त की है; उसने अकेले ही जिस पराक्रम का परिचय दिया है उसका हम सबको अनुसरण करना चाहिये; इस प्रकार सुभद्रा, द्रौपदी तथा उत्तरा को आश्वासन देकर श्रीकृष्ण पुनः अर्जुन के पास लौट आये (७. ७८)।" "रात्रि के समय अर्जुन ने भगवान् शङ्कर का निशीथ-पूजन किया; श्रीकृष्ण भी दारुक के साथ अपने शिविर में चले गये। उस रात पाण्डवों के शिविर में कोई भी नहीं सोया; सब लोग यही चिन्ता कर रहे थे कि अर्जुन किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को सफल करेंगे; श्रीकृष्ण भी उस रात्रि के मध्यकाल में जाग उठे और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके दारुक से बोले, 'मैंने भी कल, यदि आवश्यक हुआ तो, युद्ध करने का निश्चय किया है, अतः तुम मेरे रथ को सुसज्जित करके युद्धस्थल में लाना; साथ ही कौमोदकी गदा, दिव्यशक्ति, और चक्र को उस पर रखकर गरुड़ध्वज के लिए भी स्थान बना लेना। उसमें बलाहक इत्यादि चार श्रेष्ठ अश्वों को सन्नद्ध रखना, और पाञ्चजन्य शंख का ऋषभ स्वर सुनते ही तत्काल मेरे पास पहुँच जाना' (७. ७९)।" "अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण को स्वप्न में देखा, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शोक न करने के लिये कहते हुए उस पाशुपत अस्त्र का उल्लेख किया जिससे शिव ने युद्ध में समस्त दैत्यों का वध किया था; श्रीकृष्ण ने कहा कि उस अस्त्र का स्मरण करने से अर्जुन दूसरे दिन जयद्रथ का वध करने में अवश्य समर्थ होंगे और यदि उन्हे उस अस्त्र का स्मरण न हो तो वे शिव की शरण लें। स्वप्न में श्रीकृष्ण के वचन को सुनकर ब्राह्म मुहूर्त्त में अर्जुन ने अपने आपको श्रीकृष्ण के साथ आकाश में जाते देखा; आकाशमार्ग से भ्रमण करते हुये अर्जुन हिमवत, मणिमत आदि से होकर उस शिखर पर पहुँचे जहाँ पार्वती के साथ महादेव विराजमान् थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने महादेव की स्तुति की (७. ८०)।" "स्वप्न में अर्जुन ने अपने द्वारा समर्पित किए हुए रात्रिकाल के उस नैत्यिक उपहार को जिसे श्रीकृष्ण को निवेदित किया था, शिव के समीप रक्खा देखा; अर्जुन ने मन ही मन भगवान् श्रीकृष्ण और शिव का पूजन किया; शिव ने कृष्ण और अर्जुन से पास ही स्थित दिव्य और अमृतमय सरोवर से अपने धनुष और बाण को लाने के लिये कहा; शिव के आदेश को सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्ण सरोवर के तट पर पहुँचे; वहाँ इन लोगों ने दो नागों को देखा और शतरुद्रीय मन्त्रों का पाठ करते हुए उन्हें प्रणाम किया जिससे वे दोनों नाग धनुष और बाण के रूप में परिणत हो गये; अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन उस धनुष और बाण को लेकर शिव के पास आये। तब शंकर के पार्श्वभाग से एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ जिसने अर्जुन को उस धनुष को चलाने की विधि तथा आवश्यक मन्त्र आदि सिखाये; तत्पश्चात् भगवान् शिव ने उस धनुष और बाण को उसी सरोवर में डाल दिया; इस प्रकार स्वप्न में एक बार पुनः पाशुपत-अस्त्र को प्राप्त करके श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में लौट आये। (७. ७२–८१ : ७२, ९. ६१. ८६, ८७; ७३, १६. ५१; ७४, २४. २५; ७५, १९. २०. २५; ७६, १. २६; ७७, ११; ७८, ४४; ७९, १. १३. १६. १७. २१. २५. २७. २९; ८०, २३. ४९. ५३. ५४. ६५; ८१, ४. १०. २०. २४)।" "युद्ध का चौदहवाँ दिन : प्रातःकाल युधिष्ठिर ने अपने नित्यकर्म (विस्तृत विवरण) किये; श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पास उपस्थित हुए और उनके बाद ही महाराज विराट भी पधारे। नारद का उल्लेख करते हुये युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पाण्डवों को बचाने के लिये कहा। कृष्ण ने युधिष्ठिर को अर्जुन की सफलता का विश्वास दिलाया। उसी समय अर्जुन ने वहाँ आकर युधिष्ठिर को अपने स्वप्न का वृतान्त सुनाया। तदुपरान्त अर्जुन, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण रथ पर बैठकर अर्जुन के शिविर की ओर गये। श्रीकृष्ण ने मन्त्रों से अभिषिक्त अर्जुन के रथ को सुसज्जित किया और धनुष और बाण को अपने हाथ में लेकर अर्जुन ने रथ की परिक्रमा की। अर्जुन, युयुधान और श्रीकृष्ण रथ पर बैठे। उस समय अनेक शुभ शकुन प्रकट हुए। अपनी अनुपस्थिति में अर्जुन ने युधिष्ठिर की रक्षा का उत्तरदायित्व युयुधान पर रक्खा। युयुधान युधिष्ठिर के पास गये (७. ८२–८४ : ८३, १३. २४. २५; ८४, २. ४. ९. १०. २२. २६)।" "द्रोणाचार्य के योद्धा क्रोध से उत्तेजित होकर चिल्लाने लगे कि 'अर्जुन कहाँ हैं ?' मुहूर्त के उपस्थित होने पर अर्जुन भी युद्धभूमि में उपस्थित हुए। उस समय आकाश में अनेक ऐसे अपशकुन प्रकट हुए जो धार्तराष्ट्रों के लिए तो अमंगलकारी थे किन्तु अर्जुन के लिये मंगलकारी। उस समय धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्मर्षण रथ पर आरुढ़ होकर अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए सामने आया। तत्पश्चात् अर्जुन ने अपने सामने खड़ी विशाल शत्रुसेना के सम्मुख, जितनी दूर से वाण मारा जा सके उतनी ही दूरी पर अपने रथ को खड़ा करके अपना शंख बजाया। उस समय श्रीकृष्ण ने भी अपना शंख बजाया। इस शंखनाद से कौरव सेना भयभीत हो उठी (७. ७५–८८ : ८५, ३९. ४५. ४७; ८६, १९; ८७, ९)।" "अर्जुन ने दुर्मर्षण के साथ युद्ध करते हुये भयंकर संहार किया। तदुपरान्त उन्होंने दुःशासन के साथ युद्ध करते हुये उसकी सम्पूर्ण सेना का संहार किया। इसके बाद अर्जुन ने द्रोणाचार्य का साक्षात्कार किया और उनसे जयद्रथ की रक्षा न करने का आग्रह किया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन का आग्रह अस्वीकृत करते हुये उन पर भीषण बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने भी द्रोणाचार्य से भयङ्कर युद्ध किया। अन्त में अधिक समय न व्यतीत हो जाय इसलिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन से द्रोणाचार्य को छोड़कर आगे बढ़ने के लिये कहा। श्रीकृष्ण के परामर्श के अनुसार अर्जुन ने द्रोणाचार्य को छोड़कर कुरुसेना में प्रवेश किया; उस समय पाञ्चाल राजकुमार युधामन्यु तथा उत्तमौजा अर्जुन के रथचक्रों की रक्षा कर रहे थे। जय और अभीषाहों ने अर्जुन का विरोध किया। द्रोण के विरुद्ध अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, और फिर उन्हें छोड़कर कृतवर्मन् तथा कम्बोजराज सुदक्षिण के साथ युद्ध करने के लिये आगे बढ़े। कृतवर्मन् ने युधामन्यु और उत्तमौजस् को अर्जुन के साथ जाने से रोक दिया किन्तु इन लोगों ने कृतवर्मन् का वध नहीं किया। श्रुतायुध ने अर्जुन पर आक्रमण किया किन्तु श्रीकृष्ण ने उसका वध कर दिया। तदुपरान्त अर्जुन ने सुदक्षिण का वध किया और उसकी समस्त सेना भाग गयी। अर्जुन ने अभीषाहों इत्यादि का और ऐन्द्रास्त्र से श्रुतायुस् और उनके बाद उनके पुत्र नियतायुस् और दीर्घायुस् का भी वध कर दिया। अर्जुन ने गजारोही अङ्गों और कलिङ्गों, तथा म्लेच्छों, और यवनों इत्यादि का भयंकर संहार किया। अर्जुन ने अम्बष्ठराज श्रुतायुस् का भी वध

किया। अर्जुन का विरोध कर सकने की अपनी अक्षमता को स्वीकार करते हुये द्रोणाचार्य ने अभेद्य कवच आदि पहन कर दुर्योधन से अर्जुन का विरोध करने के लिये कहा। दुर्योधन और त्रिगर्त आदि अर्जुन के रथ की ओर बढ़े। अर्जुन और श्रीकृष्ण धीरे-धीरे जयद्रथ की ओर बढ़ते रहे। अर्जुन ने बिन्द और अनुविन्द का वध किया। जब श्रीकृष्ण अर्जुन के घोड़ों को हाँक रहे थे तब रथ पर खड़े अर्जुन ने समस्त कौरव सेना को रोक रक्खा और एक बाण से पृथिवी का भेदन कर एक जलाशय का निर्माण किया जिससे उनके अश्व पानी पी सकें। उन्होंने अपने अश्वों के विश्राम के लिये बाणों का एक अद्भुत गृह भी बना दिया। अर्जुन द्वारा निर्मित उस जलाशय का दर्शन करने के लिये उस समय वहाँ देवर्षि नारद भी उपस्थित हुये। सिद्धों और चारणों आदि ने अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा की। कृष्ण सहित अर्जुन की प्रगति को रोकना कौरवों के लिये असम्भव जान पड़ा। दुर्योधन ने, जिसने इन्द्र से ही अभेद्य कवच प्राप्त किया था, अर्जुन के साथ युद्ध किया। अर्जुन ने मन्त्रों से अभिषिक्त बाणों द्वारा दुर्योधन पर प्रहार किया और उसे रथ, अश्व और अस्त्र-विहीन कर दिया। जब श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख बजाया और अर्जुन ने अपने गाण्डीव को झुकाया तब कौरव-गण भयभीत होकर पृथिवी पर गिर पड़े। जयद्रथ के रक्षकों ने श्रीकृष्ण और अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने भूरिश्रवा, दुर्योधन, अश्वत्थामा से युद्ध तथा अनेक महारथियों का वध किया। अर्जुन की ध्वजा पर एक बानर का चिह्न था जिसकी पूँछ और मुख सिंह के समान थे। युधिष्ठिर ने पाञ्चजन्य की ध्वनि को सुनकर समझा कि अर्जुन की कुशल नहीं है। ऐसा विचार कर युधिष्ठिर का हृदय व्याकुल हो उठा और उन्होंने सात्यकि से अर्जुन के सहायतार्थ जाने का आग्रह किया। अर्जुन ने युधिष्ठिर से सात्यकि के गुणों का वर्णन करते हुये कहा था कि 'यदि श्रीकृष्ण इत्यादि भी हमलोगों की सहायता के लिये तत्पर रहेंगे तो भी मैं सात्यकि को अपनी सहायता के कार्य में नियुक्त करूँगा क्योंकि मेरी दृष्टि में दूसरा कोई सात्यकि के समान नहीं है।' युधिष्ठिर ने स्वयं भी तीर्थों का विचरण करते हुये द्वारका में अर्जुन के प्रति सात्यकि के भक्तिभाव को देखा था। अतः युधिष्ठिर ने बार-बार आग्रह करते हुये सात्यकि से अर्जुन की सहायता करने के लिये कहा। सात्यकि ने युधिष्ठिर के आग्रह को सुनकर कहा, 'श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने युद्ध के लिये जाते समय मुझसे यह कहा था कि मैं सावधानी के साथ आपकी रक्षा करता रहूँ। अतः मैं अर्जुन की रक्षार्थ जाने में संकोच का अनुभव कर रहा हूँ।' सात्यकि ने बताया कि सौवीर, सिन्धु, तथा पुरुदेश के योद्धा, और देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, तथा महान् सर्पगणों सहित यह समस्त पृथिवी भी यदि युद्ध के लिये उद्यत हो जाँय तो भी सब मिलकर युद्धस्थल में अर्जुन का सामना नहीं कर सकते। फिर भी, सात्यकि अन्त में युधिष्ठिर की आज्ञा मानने के लिये तैयार हो गये। सात्यकि ने बताया कि अर्जुन उस समय तीन योजन दूर चले गये हैं, किन्तु वे (सात्यकि) सुदृढ हृदय से अर्जुन के स्थान पर अवश्य पहुँच जायेंगे। सात्यकि ने युधिष्ठिर से कहा, 'आप जो सहस्रों हाथियों की सेना देखते हैं उसका नाम अञ्जनक कुल है। इन पराक्रमी गजराजों पर प्रहार-कुशल और युद्ध-निपुण अनेक म्लेच्छ योद्धा बैठे हैं। इन गजारोहियों की पराजय का वध के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। आप जिन सहस्रों रथियों को देख रहे हैं वे रुक्मरथ नामक महारथी राजकुमार हैं। ये सभी शूर और अस्त्र शस्त्रों के सञ्चालनमें पारङ्गत हैं। यद्यपि ये सब योद्धा कर्ण के ही आदेश से अर्जुन की ओर से इधर लौट आये हैं और मुझ से युद्ध करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं तथापि मैं इन सबको पराजित करता हुआ अर्जुन के पास अवश्य पहुँचूँगा।' इन शब्दों के पश्चात् सात्यकि ने रथारूढ़ होकर युधिष्ठिर से विदा ली। सात्यकि के चले जाने पर जब कुछ समय तक अर्जुन और सात्यकि का समाचार न मिला तब पुनः चिन्तित होकर युधिष्ठिर ने भीमसेन को उन लोगों के पास भेजा। भीमसेन शत्रुसेना का भेदन करते हुये अर्जुन के पास पहुँच गये और तीव्र गर्जना के साथ अर्जुन को अपने पहुँचने का समाचार दिया। अर्जुन और कृष्ण ने भी गर्जन के द्वारा भीमसेन का प्रत्युत्तर दिया। युधिष्ठिर समझ गये कि सब कुशल है, और अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करने लगे। युद्ध में युधामन्यु और उत्तमौजस् ने अर्जुन पर आक्रमण किया। कर्ण ने भीम पर आक्रमण किया जिससे कृष्ण और अर्जुन को भीम के सम्बन्ध में चिन्ता होने लगी; परन्तु भीम ने अपने पराक्रम से अर्जुन आदि को हर्षित कर दिया। शस्त्र समाप्त हो जाने पर भीमसेन कर्ण के सामने से भाग आये और अर्जुन द्वारा मारे गये हाथियों के शरीर से अपनी रक्षा करने लगे। अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके भीम ने कर्ण का वध नहीं किया, और कर्ण ने भी कुन्ती को दिये अपने वचन का स्मरण करके भीम का वध नहीं किया। तदुपरान्त अर्जुन ने कर्ण और उसके बाद अश्वत्थामा को युद्ध-क्षेत्र से भगा दिया। सात्यकि ने दुःशासन के अश्वों को मार डाला जिससे कृष्ण और अर्जुन को अत्यन्त हर्ष हुआ। युधिष्ठिर की चिन्ता करते हुये अर्जुन के पास सात्यकि ने आकर कुशल समाचार सुनाया। जब भूरिश्रवा के प्रहार से सात्यकि मूर्च्छित हो गये तब कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने उनका एक हाथ काट डाला। इस पर भूरिश्रवा ने अर्जुन को ताड़ना दी किन्तु अर्जुन ने अपने कार्य को उचित बताया। भूरिश्रवा ने अर्जुन के तर्कों को स्वीकार किया जिस पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उसे आशीर्वाद दिये। भूरिश्रवा ने 'प्राय' (विस्तृत विवरण दिया गया है) में मृत्यु को प्राप्त करने की इच्छा प्रगट की। श्रीकृष्ण इत्यादि के विपरीत भी सात्यकि ने 'प्राय' में बैठे हुये भूरिश्रवा का वध कर दिया। जब अर्जुन जयद्रथ के रथ की ओर बढ़े तब दुर्योधन ने उनका सामना किया। दुर्योधन ने जयद्रथ की रक्षा करने के लिये कर्ण को सहमत कर लिया। अर्जुन ने कर्ण को रथ, अश्व, और सारथि-विहीन कर दिया। वरुणास्त्र से अर्जुन ने भयंकर संहार किया। अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का भी प्रयोग किया। अर्जुन ने जयद्रथ के ध्वज को काट कर उसके सारथि का भी वध कर दिया। तब छः महारथियों ने जयद्रथ को अपने बीच में घेर लिया। श्रीकृष्ण ने अपनी माया से सूर्य को आच्छादित कर दिया जिससे अर्जुन के अतिरिक्त सब लोग यह समझने लगे कि सूर्यास्त हो गया है। श्रीकृष्ण ने तब अर्जुन से निर्विलम्ब जयद्रथ का वध कर देने के लिये कहा। अर्जुन ने इतना भयंकर नरसंहार आरम्भ किया कि समस्त योद्धागण जयद्रथ को छोड़कर भय से भाग गये। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पुनः जयद्रथ का सर काटने के लिये कहा। सामन्त-पञ्चक के बाहर तपस्या में रत जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र के शाप का स्मरण दिलाते हुये श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वे जयद्रथ के सर को इस प्रकार काटें कि वह सर वृद्धक्षत्र की गोद में ही गिरे अन्यथा स्वयं अर्जुन का सर सौ टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो जायगा। अर्जुन ने यही किया और जयद्रथ का सर वृद्धक्षत्र की गोद में गिरा जिससे घबड़ाकर उठते हुये वृद्धक्षत्र की गोद से जयद्रथ का सर भूमि पर गिर पड़ा और फलस्वरूप वृद्धक्षत्र का सर सौ टुकड़ों में विभक्त हो गया। तब श्रीकृष्ण ने माया से रचित अन्धकार को समाप्त कर दिया। कृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने शंख बजाये। अर्जुन ने अनेक महारथियों से युद्ध करते हुये कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कर्ण का सामना किया। किन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्ण से बचने के लिये कहा, क्योंकि उसके पास अब भी इन्द्र द्वारा प्रदत्त ब्रह्मास्त्र वर्त्तमान था। संजय ने कहा कि श्रीकृष्ण, अर्जुन, और सात्यकि यही संसार में तीन महान धनुर्धर हैं। भीमसेन ने स्वयं कर्ण का वध करने के लिये आज्ञा माँगी। अर्जुन ने कर्ण की उपस्थिति में ही उसके पुत्र वृषषेण का वध करने की प्रतिज्ञा की। कृष्ण ने अर्जुन के पराक्रम की सराहना की और अर्जुन ने श्रीकृष्ण को अपनी विजय का श्रेय दिया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से उस दिन के युद्ध का परिणाम बताया। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने युधिष्ठिर को बधाई दी। तदुपरान्त भयंकर युद्ध हुआ (७. ८९–१५२ : ८९, २५, ३१; ९०, ३. ४; ९१, १४. २०. २५. २६. ३४. ४०. ४३; ९२, ५, १०, १२,

२६. २८. ३७. ३९. ४१; ९३, ९. १०. २९. ५५. ६५. ६८; ९४. ५. २८. ३८. ७५; ९९, ३. ९. १२. १८. १९. २९. ३१. ३२. ३५. ४०. ५७–५९; १००, १२. १७; १०१, ४२; १०३, १. ५. ११. २१. ३१. ३५. ३६. ३८. ३९; १०४, १८. २३. २४. ३४; १०५, २९–३१. ३६. ३८; १०६, १; ११०, ४७. ६४. ८८. ९०. ९९. १०१; १११, २६. २७. ३०. ३४. ३६. ४२; ११२, ८०; ११४, २८. ३१. ३२. ३४. ३६. ४६; ११८, १७; ११९, १२. ५५; १२०, १. ३०; १२१, १; १२४, २३. ४६. ४८; १२६, १५. ४१. ४८; १२७, ४८. ४९; १२८, ३१; १२९, ८; १३०, १. ८. २९; १३१, ३. १९; १३७, १५; १३९, ८३. ८९. ११९. १२४; १४०, १९. २५; १४२, ५. ४८. ५०. ५२–५५. ६३. ६९; १४३, १६. ४६. ५५; १४५, २. १२. १५. ३१. ३४. ४५. ४९. ७१. ८०. ८५. ९१; १४६, ४४. ५१. ५७. ५८. ९६. ९९. १२१. १३६. १४३; १४७, २८. ९१; १४८, ७. २२. ३२; १४९, ४६; १५०, ३०; १५१, ७. २१. २४; १५२. ७. १९)।" "चौदहवें दिन की रात्रि का युद्ध : पाञ्चालों और कौरवों में भयंकर युद्ध हुआ। अर्जुन इत्यादि ने द्रोणाचार्य के साथ युद्ध किया। दुर्योधन ने शकुनि से कर्ण को साथ लेकर अर्जुन के विरुद्ध युद्ध करने के लिये कहा। द्रुपद-सेना को, जो द्रोणाचर्य के सामने से भाग गई थी, अर्जुन और भीम ने पुनः प्रोत्साहित करके युद्ध के लिये भेजा। कर्ण ने अर्जुन इत्यादि का वध करने की प्रतिज्ञा की। अश्वत्थामा इत्यादि ने कर्ण की रक्षार्थ अर्जुन से युद्ध किया। अर्जुन ने कर्ण के रथाश्वों और सारथि का वध कर दिया। दुर्योधन ने अर्जुन के साथ युद्ध किया। कृपाचार्य ने अर्जुन के विरुद्ध युद्ध के लिये भेजते हुये दुर्योधन को अर्जुन का सामना करने से रोका। अर्जुन ने यौधेयों आदि का वध किया। पाञ्चाल सैनिकों ने पलायन किया किन्तु भीम और अर्जुन के प्रोत्साहन पर पुनः युद्ध के लिये सन्नद्ध हुये। कृष्ण ने युधिष्ठिर से द्रोणाचार्य के साथ युद्ध न करने के लिये कहा। दुर्योधन ने अपनी सेना को मशालें आदि जला लेने के लिये कहा। द्रोणाचार्य ने कहा कि कर्ण अर्जुन आदि को पराजित करेगा। अर्जुन ने कौरवों के विरुद्ध युद्ध किया। अलाम्बुष ने अर्जुन के साथ युद्ध किया और अर्जुन ने उसे पराजित करके द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। युद्ध में अर्जुन के रथ की गड़गड़ाहट और गाण्डीव की टंकार सर्वत्र सुनाई दे रही थी। दुर्योधन ने शकुनि को भी अर्जुन के विरुद्ध युद्ध के लिये भेजा परन्तु अर्जुन ने शकुनि इत्यादि को रथ-विहीन कर दिया। पाण्डव सेना जब पलायन करने लगी तब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उसे प्रोत्साहित किया। कर्ण ने जब धृष्टद्युम्न को रथ-विहीन कर दिया तब वह अर्जुन के रथ पर चढ़ गया। अर्जुन, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने कर्ण के साथ वार्तालाप किया। तदुपरान्त अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कर्ण की ओर चलने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने बताया कि अर्जुन और घटोत्कच के अतिरिक्त कोई दूसरा कर्ण का सामना नहीं कर सकता; किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि जब तक कर्ण के पास इन्द्र द्वारा प्रदत्त अस्त्र वर्तमान है तब तक अर्जुन को उसका सामना नहीं करना चाहिये। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने तब घटोत्कच से कर्ण के विरुद्ध युद्ध करने के लिये कहा। घटोत्कच ने अलाम्बुष का वध और कर्ण के साथ युद्ध किया। कृष्ण ने अर्जुन से द्रोणाचार्य के विरुद्ध युद्ध कर रहे भीमसेन की सहायता के लिये कहा। अर्जुन ने अनेक क्षत्रिय वीरों का संहार किया। कर्ण ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त अपने दिव्यास्त्र से घटोत्कच का वध कर दिया। तब श्रीकृष्ण ने हर्षपूर्वक अर्जुन का आलिंगन किया क्योंकि अब कर्ण के पास कोई भी ऐसा अस्त्र नहीं रह गया था जिससे वह अर्जुन का वध कर सकता। कृष्ण की नीति यही थी कि कर्ण उस दिव्यास्त्र से अर्जुन पर कभी प्रहार न कर सके (७. १५३–१८३: १५८, ५३; १५९, ३. ८. ६५; १६५, १६; १६७, १८. ४१. ४२. ४४. ४८; १७०, ५१. ५३; १७१, २५–२७. २९. ३०; १७२, २६; १८१, १; १८२, २९; १८३, ५)।" "चौदहवें दिन की रात्रि के युद्ध का और अधिक विवरण : अर्जुन ने सैनिकों को सो जाने की आज्ञा दी। देवताओं, ऋषियों, और समस्त सैनिकों ने अत्यन्त हर्ष के साथ अर्जुन की इस आज्ञा का स्वागत किया। तदुपरान्त सभी सैनिक विश्राम के लिये सो गये। कौरव सेना ने भी अर्जुन की इस दयालुता की प्रशंसा की। चन्द्रोदय होने पर दोनों सेनायें पुनः निद्रा से उठकर युद्ध-लिप्त हो गईं। द्रोणाचार्य ने अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया; दुर्योधन ने उसी दिन अर्जुन का बध करने की प्रतिज्ञा की; द्रोणाचार्य ने व्यंगपूर्वक कहा कि दुर्योधन और शकुनि को अर्जुन के विरुद्ध युद्ध के लिये अवश्य जाना चाहिये (७. १८४–१८५ : १८४, ३४; १८५, १३. २१. २३. २७. ३०. ३१)।" "युद्ध का पन्द्रहवाँ दिन : तीन प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने के पश्चात् युद्ध एक बार पुनः आरम्भ हुआ; श्री कृष्ण के कहने पर अर्जुन, द्रोणाचार्य और कर्ण के वामभाग में चले गये; भीम ने अर्जुन से अपनी सारी शक्ति लगाने के लिये कहा; अर्जुन ने द्रोण, और कर्ण के साथ युद्ध किया, जिसमें द्रुपद ने अर्जुन की सहायता की; शीघ्र ही सूर्योदय हुआ (७. १८६)।" प्रातःकाल युद्ध पुनः आरम्भ हुआ (७. १८७)। देवों, गन्धर्वों, ऋषियों, सिद्धों, अप्सराओं, यक्षों, और राक्षसों ने द्रोणाचार्य और अर्जुन की प्रशंसा करते हुये कहा कि यह युद्ध न तो मनुष्यों का है, न असुरों का, न राक्षसों का, और न देवताओं अथवा गन्धर्वों का; यह निश्चय ही एक श्रेष्ठ ब्राह्मयुद्ध है (७. १८८)। अर्जुन ने कुरुओं पर, और द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों पर आक्रमण किया (७. १८९)। "पाण्डवों को भय हुआ कि कहीं अर्जुन द्रोणाचार्य से युद्ध न करें; श्रीकृष्ण ने अर्जुन से धर्म का परित्याग कर द्रोणाचार्य को किसी व्यक्ति के द्वारा यह समाचार देने के लिये कहा कि अश्वत्थामा युद्ध में मारा गया; अर्जुन ने इसे स्वीकार नहीं किया किन्तु अन्य लोगों ने अपनी सहमति दी; युधिष्ठिर बड़ी कठिनता से इसके लिये सहमत हुये (७. १९०)।" धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य में भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ; सात्यकि ने धृष्टद्युम्न की रक्षा की जिस पर श्रीकृष्ण, अर्जुन, और सिद्धों इत्यादि ने उनकी प्रशंसा की (७. १९१)। धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का मस्तक काट दिया यद्यपि अर्जुन ने इसका निषेध किया था, और अन्य लोगों ने भी इस कार्य की भर्त्सना की (७. १९२)। (७. १८६–१९२; १८६, ६. ९; १८७, २३. २६; १८८, २४. ३२. ३४. ३५, ३७; १८९, ६४; १९०, ८. ९; १९२, ६७)।" "पन्द्रहवें दिन के युद्ध का उत्तरार्द्ध : अश्वत्थामा ने अत्यन्त क्रोध में भरकर कहा कि उनके और अर्जुन के समान शस्त्रविद्या में दूसरा कोई नहीं; अश्वत्थामा ने यह भी कहा कि उनके पास एक ऐसा अस्त्र (नारायणास्त्र) है जिससे अर्जुन इत्यादि भी परिचित नहीं और जिसे नारायण ने उनके पिता को इस आशीर्वाद के साथ प्रदान किया था कि युद्ध में कोई भी उसकी समता नहीं कर सकेगा; नारायण ने यह भी कहा था कि इस अस्त्र का प्रयोग शीघ्रतावश अथवा ऐसे व्यक्तियों पर नहीं करना चाहिये जो रथ और शस्त्रविहीन हो गये हों; अश्वत्थामा ने इसी अस्त्र से पाण्डवों का संहार करने के लिये कहा (७. १९५)।" "प्रकृति में भयंकर अपशकुन दृष्टिगत होने लगे; युधिष्ठिर ने अर्जुन के साथ अश्वत्थामा के सम्बन्ध में वार्तालाप किया और अर्जुन ने अश्वत्थामा की शक्ति का वर्णन करते हुये पाण्डवों द्वारा द्रोणाचार्य के अधर्मपूर्वक वध का उल्लेख किया; अर्जुन ने कहा, 'अब हम लोगों की आयु का अधिकांश भाग व्यतीत हो चुका और अत्यन्त थोड़ा ही शेष रह गया है; इसीसे इस समय हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और हम लोगों ने यह महान पाप कर डाला; मैंने लोभवश उनके मारे जाने की उपेक्षा कर दी अतः इस पाप के कारण अब मैं नीचे सिर करके नरक में डाला जाऊँगा' (७. १९६)।" भीमसेन ने अर्जुन की भर्त्सना करते हुये इस कार्य का समर्थन किया (७. १९७)। "अर्जुन ने धृष्टद्युम्न की ओर वक्रदृष्टि से देखा; धृष्टद्युम्न ने भूरिश्रवस् का वध करने के कारण सात्यकि पर व्यङ्ग किया; सात्यकि ने कहा कि वे धृष्टद्युम्न का वध कर सकते हैं; धृष्टद्युम्न ने भी सात्यकि का वध करने के लिये भीम से आज्ञा माँगी; कृष्ण और युधिष्ठिर ने उस समय शान्ति स्थापित की (७. १९८)।" "अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र

(वर्णन) का आवाहन किया; श्रीकृष्ण ने सभी सैनिकों को अस्त्र रख देने और रथ से नीचे उतर जाने के लिये कहा; किन्तु अकेले भीमसेन ने इस आज्ञा को मानना अस्वीकृत कर दिया । अर्जुन ने कहा कि नारायणास्त्र, सम्बन्धियों, तथा ब्राह्मणों के विरुद्ध अपने गाण्डीव का प्रयोग न करने की उन्होंने प्रतिज्ञा की है । भीम ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया परन्तु नारायणास्त्र की शक्ति के सम्मुख पराजित हो गये (७. १९९) ।" "अर्जुन ने भीमसेन को वारुणास्त्र से ठीक किया और तब उन्होंने तथा श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक भीमसेन को रथ से उतार कर शस्त्र त्याग करा दिया जिससे नारायणास्त्र भी शान्त हो गया; नारायणास्त्र का दुबारा प्रयोग नहीं हो सकता था अतः अर्जुन इत्यादि ने अश्वत्थामा से युद्ध किया (७. २००) ।" "अर्जुन ने अश्वत्थामा के प्रति कटुवचन का प्रयोग किया यद्यपि दोनों ही एक दूसरे को प्रेम करते थे; अर्जुन, और विशेषकर श्रीकृष्ण से अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा ने जल का स्पर्श करके आग्नेयास्त्र का आवाहन किया जिसके परिणामस्वरूप भयंकर अपशकुन प्रगट हुये तथा पाण्डवसेना का भीषण संहार हुआ; तब अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया जिससे अन्धकार का विनाश हुआ; पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना हत हुई और केवल कृष्ण तथा अर्जुन ही आहत होने से बचे रहे; अश्वत्थामा निराश होकर भाग गया और व्यास से मिला; व्यास ने नारायण का इतिहास बताते हुये कहा कि अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ही नर तथा नारायण हैं (७. २०१) ।" "अर्जुन व्यास से मिले और उनसे उस अदृश व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछा जिसने युद्ध में उनकी सहायता की थी; व्यास ने कहा कि वह स्वयं महादेव थे; व्यास ने दक्षयज्ञ तथा त्रिपुरमर्दन की कथा का भी उल्लेख किया । (७. १९३–२०२ : १९३, ६४. ६६; १९५, २४; १९६, ९. २६; १९७, २. ३८. ४२. ४४; १९८, ६; १९९, ५२. ५३; २००, २. १०. ८०; २०१, ३६. ३९. ४३. ५४. ८६; २०२, १५४) ।" "द्रोणवध के बाद की रात्रि, सोलहवें दिन के प्रातःकाल, तथा सोलहवें दिन के शेषांश और सत्तरहवें दिन के विवरण : कौरवों ने कर्ण को अपना सेनापति बनाया; कर्ण ने दो दिन तक युद्ध किया और अर्जुन के द्वारा मारा गया । सञ्जय ने धृतराष्ट्र को बताया कि सेनापति बनाये जाने के दूसरे दिन कर्ण अर्जुन के हाथों मारा गया (८. १–९ : ३, २१; ५, १२. ५४. ५७; ९, १८. ६४) ।" "युद्ध का सोलहवाँ दिन : द्रोण के वध के बाद कौरव बहुत देर तक अर्जुन तथा अन्य पाण्डवों से युद्ध करते रहे; गोधूलि के समय कौरवगण अपने शिविरों में चले गये, जहाँ उन्होंने रात्रि में आपस में मन्त्रणा करने के पश्चात् कर्ण को सेनापति बनाया (८. १०) ।" "युधिष्ठिर ने अर्जुन से पाण्डवसेना का व्यूह बनाने तथा कर्ण का वध करने के लिये कहा; पाण्डवसेना ने अर्द्धचन्द्राकार व्यूह बनाया, जिसके मध्य में अर्जुन स्थित हुये और युधामन्यु तथा उत्तमौजस् अर्जुन के रथ के पहियों के रक्षक बने (८. ११) ।" अर्जुन ने संशप्तकों (८. १३. १६) और अश्वत्थामा (८. १६) के साथ युद्ध किया । कलिङ्ग, वङ्ग, और निषाद योद्धाओं ने गजसेना के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया, किन्तु अर्जुन ने उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया; श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वे अश्वत्थामा को न छोड़ें, किन्तु अन्ततोगत्वा अश्वत्थामा को उनके घोड़े दूर भगा ले गये; तब श्रीकृष्ण और अर्जुन संशप्तकों की ओर बढ़े (८. १७) । कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने मगध-योद्धा दण्डधार का वध किया जो एक हाथी पर बैठा था, और उसके बाद उसके भ्राता दण्ड का; तदुपरान्त अर्जुन एक बार पुनः संशप्तकों की ओर बढ़े (८. १८) । अर्जुन ने संशप्तकों का संहार करते हुये उग्रायुध के पुत्र का भी वध किया; श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने शेष संशप्तकों को भी तत्काल पराजित किया जिससे कर्णवध में अधिक विलम्ब न हो (८. १९) । कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वे युधिष्ठिर को नहीं देख पा रहे हैं (८. २१) । अर्जुन ने त्रिगर्तों इत्यादि के साथ युद्ध करते हुये राजा शत्रुञ्जय, सुश्रुत के पुत्र, और चन्द्रदेव का भी वध किया; राजा सत्यसेन ने श्रीकृष्ण को घायल किया किन्तु अर्जुन ने उनका वध कर दिया; अर्जुन ने तब चित्रवर्मन् और मित्रसेन इत्यादि का वध करते हुये सुशर्मन् को भी आहत किया; समस्त संशप्तकों ने अर्जुन पर एक साथ आक्रमण किया, किन्तु अर्जुन द्वारा ऐन्द्रास्त्र का आवाहन करने पर समस्त सेना भाग खड़ी हुई (८. २१) । अपराह्न में कर्ण ने पाञ्चालों का तथा अर्जुन ने त्रिगर्तों इत्यादि का संहार किया (८. २८) । अपराह्न में दैनिक जप तथा भव की उपासना करने के पश्चात् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने कुरुओं का विनाश किया; अर्जुन ने दुर्योधन, अश्वत्थामा, और कर्ण के साथ युद्ध किया; सूर्यास्त के समय दोनों ही सेनायें अपने-अपने शिविर में चली आईं, और तब रुद्र के क्रीडास्थल के सदृश उस भयंकर युद्धभूमि में राक्षस, पिशाच और हिंसक जीवजन्तु जा पहुँचे (८. ३०) । धृतराष्ट्र ने अर्जुन के पराक्रम की सराहना की; कर्ण ने दुर्योधन को दूसरे दिन अर्जुन का वध कर देने का आश्वासन दिया, और प्रातःकाल भी उसने अपनी प्रतिज्ञा को दुहराते हुये कहा कि 'श्रीकृष्ण के साथ होने, तथा अग्नि द्वारा प्रदत्त स्वर्णभूषित दिव्य रथ, मन के समान वेगशाली अश्व, और दिव्यध्वज के कारण ही अर्जुन मुझ से श्रेष्ठ हैं'; अतः कर्ण ने शल्य को, जो कि श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ थे, अपने सारथि के रूप में माँगा (८. ३१) । (८. १०–३२ : ११, ३१; १६, १. २. ७. ९. १२. १८. १९. २४. ३०–३३; १७, ३. ५–७. १५. १६. १८. २६; १८, २. ९. १०. १२. २३; १९, ५. ८. ९. ११. १९. २१. ५२; २०, ३. ५; २१, १. ४; २६, १७; २७, ५. ६; ३०, १३. १५. १९. २३. ३३. ४१; ३१, १. ९. ३६. ३९. ४५. ४८. ६१. ६५; ३२, १७. २१) ।" "दुर्योधन ने, यह बताते हुये कहा कि उसने, ब्रह्मा जिस प्रकार रुद्र के और श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि बने, शल्य को कर्ण का सारथि बनने तथा अर्जुन के वध के बाद युद्ध करने के लिये सहमत कर लिया है (८. ३५) ।" "प्रातःकाल होने पर जब दुर्योधन ने शल्य को कर्ण का सारथि बनने के लिये सहमत कर लिया, तब कर्ण ने शल्य से अपने रथ के घोड़ों को सम्हालने के लिये कहा जिससे वह अर्जुन का वध कर सके (८. ३६) ।" कर्ण की अहंकारोक्तियों पर शल्य ने उसका उपहास करते हुये अर्जुन की प्रशंसा की; अपने रथ पर बैठकर कर्ण ने अर्जुन के सम्बन्ध में पूछा (८. ३७) । कर्ण ने प्रत्येक पाण्डव सैनिक से यह कहा कि जो उसे अर्जुन का पता बतायेगा उसको मुह माँगा धन दिया जायगा (७. ३८) । शल्य ने कर्ण से कहा कि बहुत खोजने का प्रयास किये बिना ही वह शीघ्र ही अर्जुन को देखेगा; शल्य ने कर्ण से अर्जुन का सामना न करने के लिये भी कहा (८. ३९) । "कर्ण ने कहा कि वह श्रीकृष्ण और अर्जुन को जानते हुये भी उनसे भयभीत नहीं है, तथा परशुराम के शाप के विपरीत भी वह अर्जुन का वध करेगा; कर्ण ने यह भी कहा : 'मैं युद्ध में अजेय तथा असीम शक्तिशाली ब्रह्मास्त्र का मन ही मन स्मरण करके विजय के लिये अर्जुन पर प्रहार करूँगा, और यदि मेरे रथ का पहिया किसी विषमस्थान में न फँस गया तो इस अस्त्र से अर्जुन रणभूमि में जीवित नहीं बच सकता; मुझे केवल विजय नामक ब्राह्मण के उस शाप का ही भय है जो उसने मुझे दिया था, और जिसके अनुसार युद्ध करते समय मेरे रथ का पहिया गड्ढे में फँस सकता है'; (८. ४२) । (८. ३६–४५ : ३६, १९; ३७, १६. २२. २९. ३४. ३५. ३९; ३८, ४–६. ८. ११. १४. १६. १९. २१; ३९, ११. १४. १६–१८. २६; ४०, ३. १४; ४१, ८४. ८६. ८७; ४२; ४५, ३९) ।" "युद्ध का सत्तरहवाँ दिन : युधिष्ठिर ने अर्जुन से कौरव-सेना की व्यूह-रचना के सम्बन्ध में बताते हुये कर्ण के साथ युद्ध करने के लिये कहा; शल्य ने कर्ण को अर्जुन का रथ दिखाते हुये कहा, 'तुम जिसे बार-बार पूछ रहे थे वही अर्जुन शत्रुओं का संहार करते हुये अपने रथ के साथ आ पहुँचे; वेदमंत्रों द्वारा प्रज्वलित और सर्वप्रथम प्रगट हुये वैश्वानर अग्नि अर्जुन के उस दिव्य रथ के अश्व बने हुये हैं' । जो प्राचीन काल में क्रमशः ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और वरुण की सवारी में आ चुका था उसी आदि रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुओं की ओर बढ़ने लगे । संशप्तकों

ने अर्जुन का वध करने की धमकी दी; शल्य ने कर्ण से अर्जुन का वध करने की इच्छा का परित्याग करने के लिये कहा (८. ४६)। अर्जुन ने अपनी सेना को धृष्टद्युम्न के नेतृत्व में व्यवस्थित किया; धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये द्रौपदेय योद्धा वहाँ उपस्थित थे; अर्जुन ने संशप्तकों के साथ युद्ध किया (८. ४७)।" अर्जुन ने संशप्तकों इत्यादि और सुशर्मन् के साथ युद्ध किया। अर्जुन ने बार-बार नागास्त्र का प्रयोग किया, जिससे उत्पन्न नागों के द्वारा संशप्तकों की सेना पाशबद्ध हो जाने के कारण छिन्न-भिन्न हो गई; सुशर्मन् ने सौपर्णास्त्र का आवाहन किया जिससे अनेक पक्षी उत्पन्न होकर नागों का भक्षण करने लगे; तब अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का आवाहन किया और अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा (८. ५३)।" "अर्जुन ने संशप्तकों के साथ युद्ध किया और कर्ण का पराक्रम देखने के लिये श्रीकृष्ण से कहा; मध्याह्नकाल में संशप्तकों के पराजित होने पर अर्जुन ने कौरवसेना के भीतर प्रवेश किया। दुर्योधन ने एक बार पुनः अर्जुन के विरुद्ध संशप्तकों को प्रोत्साहित किया। दस सहस्र क्षत्रियों का वध करने के पश्चात् अर्जुन संशप्तकों की सेना के उस छोर पर पहुँच गये जिसकी काम्बोजगण रक्षा कर रहे थे; अर्जुन ने काम्बोजराज सुदक्षिण के अनुज का वध किया; अर्जुन ने अश्वत्थामा के साथ युद्ध किया; उस समय वहाँ सिद्ध और चारण आदि उपस्थित हुये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से अश्वत्थामा को न छोड़ने के लिये कहा, किन्तु मूर्च्छित अश्वत्थामा को उनका सारथि दूर भगा ले गया; अर्जुन ने कौरवसेना का संहार किया (८. ५६)।" अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि पाण्डवसेना कर्ण के सम्मुख पलायन कर रही है और युधिष्ठिर भी कहीं दिखाई नहीं देते; अर्जुन युधिष्ठिर की ओर गये; श्रीकृष्ण ने अर्जुन से युद्धभूमि का वर्णन किया; एक भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ (८. ५८)। उस युद्ध में संशप्तकों में से थोड़े से लोग ही मारे जाने से बच सके; अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया परन्तु अर्जुन ने उनकी रक्षा की; तदुपरान्त अर्जुन संशप्तकों की ओर बढ़े (८. ५९)। "कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अनेक धृतराष्ट्र-पुत्रों के आक्रमण के कारण युधिष्ठिर संकट में हैं; कर्ण भी शीघ्र ही दुर्योधन से रक्षित होकर अर्जुन से युद्ध के लिये आयेगा, अतः उसका वध होना चाहिये। तब अर्जुन ने अपने शेष शत्रुओं का विनाश आरम्भ किया और संशप्तक सैनिक वहाँ से भाग निकले (८. ६०)।" अर्जुन ने अश्वत्थामा के साथ युद्ध किया और कर्ण के सम्मुख आये (८. ६१–६२)। शल्य ने कर्ण को अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिये कहते हुये अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया (८. ६३)। "अर्जुन ने अश्वत्थामा के साथ युद्ध किया; अश्वत्थामा ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया किन्तु अर्जुन ने उसका इन्द्र द्वारा निर्मित एक शक्तिशाली अस्त्र से निराकरण कर दिया; अन्त में अश्वत्थामा के घोड़े उसे दूर भगा ले गये; सृञ्जयगण, अर्जुन और श्रीकृष्ण के पास आये; अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कर्ण के सम्बन्ध में कहा किन्तु श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम युधिष्ठिर को ढूँढ़ने के लिये कहा (८. ६४)।" अर्जुन ने भीम से मिलकर युधिष्ठिर का समाचार प्राप्त करने के लिये कहा, किन्तु अन्त में भीमसेन को ही संशप्तकों के साथ युद्ध का भार सौंप कर श्रीकृष्ण और अर्जुन स्वयं युधिष्ठिर के पास गये; इन लोगों ने देखा कि युधिष्ठिर एक शय्या पर पड़े हुये हैं (९. ६५)। अर्जुन ने उसी दिन कर्ण तथा अन्य समस्त शत्रुओं का वध करने की प्रतिज्ञा की (८. ६७)। युधिष्ठिर ने उस समय भीम को युद्धभूमि में अकेला छोड़कर चले आने पर अर्जुन की अनेक बार भर्त्सना करते हुये गाण्डीव धनुष किसी और को दे देने के लिये कहा (८. ६८)। "युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध में आकर युधिष्ठिर का वध कर डालने के लिये अपनी तलवार खींच ली, क्योंकि उन्होंने किसी भी ऐसे व्यक्ति का वध कर डालने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी जो उनसे गाण्डीव धनुष किसी अन्य को दे देनेके लिये कहे; कृष्ण ने तब अर्जुन को सत्य सम्बन्धी उपदेश दिया, किन्तु अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। श्रीकृष्ण ने कहा कि 'तू' कहकर अपमानपूर्वक सम्बोधित करने मात्र से यह माना जा सकता है कि अर्जुन ने युधिष्ठिर का वध कर दिया (८. ६९)।" "श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने एक लम्बे भाषण द्वारा युधिष्ठिर का अपमान किया और अन्त में दुःखी होकर स्वयं अपना सर काट डालने की इच्छा प्रकट की; तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से आत्म-प्रशंसा करने के लिये कहा, क्योंकि आत्म-प्रशंसा आत्म-विश्वास के समान ही है; आत्म-प्रशंसा करते हुये अर्जुन ने युधिष्ठिर से क्षमा मांगी और कर्ण का वध करके भीम को बचाने की प्रतिज्ञा की; श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को स्वयं अपने तथा अर्जुन को क्षमा कर देने को कहा (८. ७०)।" इस विषय पर श्रीकृष्ण, अर्जुन, और युधिष्ठिर के सम्भाषण (८. ७१)। युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर अर्जुन कर्ण का वध करने के लिये चले; मार्ग में श्रीकृष्ण ने उनको प्रोत्साहित किया (८. ७२)। अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण को उत्तर दिया; सञ्जय ने अर्जुन द्वारा शत्रुसेना के वध का वर्णन किया (८. ७४–७५)। भीम ने अपने सारथि विशोक से कहा कि उन्हें युधिष्ठिर और अर्जुन के सम्बन्ध में चिन्ता हो रही है; विशोक ने भीम को बताया कि अर्जुन युद्ध के लिये लौट रहे हैं (८. ७६)। अर्जुन और भीम ने कौरव सेना पर आक्रमण किया (८. ७७)। अर्जुन ने रक्त की धारा बहा दी; अर्जुन के आग्रह पर श्रीकृष्ण उन्हें कर्ण के सम्मुख लाये; दुर्योधन ने अर्जुन पर आक्रमण किया; अर्जुन ने अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को पराजित किया; शिखण्डिन् आदि ने अर्जुन की सहायता करते हुये शत्रुसेना को रोका (८. ७९)। कर्ण को छोड़कर अर्जुन भीम की रक्षा के लिये गये और उन्होंने भीम को युधिष्ठिर का कुशल समाचार दिया; उन्होंने धृतराष्ट्र के दस पुत्रों का वध किया (८. ८०)। जब अर्जुन कर्ण के रथ की ओर बढ़ रहे थे तब नब्बे संशप्तकों ने उन पर आक्रमण किया, जिनका अर्जुन ने वध कर दिया; इसी प्रकार अर्जुन ने अनेक कौरवों तथा १३०० गजारोही म्लेच्छों का भी वध किया; भीम भी अर्जुन की सहायतार्थ आये और कुछ बचे हुये कौरवों का वध कर दिया; तदुपरान्त भीम अर्जुन के पीछे चलने लगे (८. ८१)। कृष्ण ने अर्जुन से कर्ण का वध करने के लिये कहा, और अर्जुन भीमसेन के साथ चले (८. ८२)। भीम ने कृष्ण और अर्जुन को सम्बोधित तथा शीघ्र ही दुर्योधन का वध करने की प्रतिज्ञा करते हुये दुःशासन का रक्तपान किया (८. ८३)। भीम तथा नकुल के कहने पर अर्जुन वृषभसेन की ओर बढ़े (८. ८४)। अर्जुन ने कर्ण के पुत्र वृषभसेन का वध करते हुये कर्ण के वध की भी धमकी दी और कहा कि भीमसेन दुर्योधन का वध कर डालेंगे; अर्जुन ने कर्ण पर आक्रमण किया (८. ८५)। कृष्ण और अर्जुन का संवाद (८. ८६)। अर्जुन और कर्ण का वर्णन; सञ्जय ने कहा कि उस समय अन्तरिक्ष में स्थित समस्त भूतों में कर्ण और अर्जुन की जय-पराजय को लेकर परस्पर आक्षेपयुक्त विवाद और मतभेद उत्पन्न हो गया; द्यौस् कर्ण की और देवी पृथिवी अर्जुन की विजय चाहने लगीं; पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष तथा ओषधियों ने अर्जुन का पक्ष लिया, जब कि असुर, यातुधान और गुह्यक कर्ण के पक्ष में आ गये; मुनि, चारण, सिद्ध, गरुड़, पक्षी, रत्न, निधियाँ, वेद, उपवेद, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक, मणिक, सर्पगण, वंशजों सहित कद्रु की सन्तानें, ऐरावत आदि, वसु और मरुद्गण, साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, सोम, पवन और दसों दिशायें अर्जुन के पक्ष में हो गये, जब कि छोटे-छोटे सर्प, इन्द्र के अतिरिक्त अन्य आदित्यगण, वैश्य, शूद्र, सूत तथा संकर जाति के लोग कर्ण को अपनाने लगे; इसी प्रकार देवता, पितर, यम, कुबेर आदि अर्जुन के, और प्रेत, पिशाच तथा राक्षस आदि कर्ण के पक्ष में हो गये; उस समय ये सब लोग विचित्र एवं गुणवान विमानों पर बैठकर कर्ण और अर्जुन का द्वैरथ युद्ध देखने के लिये आये; देव, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, महर्षि, पितर, तप, विद्या तथा ओषधियाँ आदि अन्तरिक्ष में स्थित हुये; जब सूर्य अपने पुत्र कर्ण की, और इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन की विजय की कामना करने लगे तब देवता और असुरों में भी वहाँ दो पक्ष हो गये; देवताओं ने ब्रह्मा से कहा कि युद्ध में कर्ण और अर्जुन दोनों की सफलता

समान रूप से होनी चाहिये, जब कि इन्द्र ने श्रीकृष्ण और अर्जुन की विजय के लिये कहा; ब्रह्मा और शिव ने कहा कि अर्जुन और कृष्ण की ही विजय निश्चित है, किन्तु कर्ण भी द्रोणाचार्य और भीष्म के साथ वसुओं और मरुद्गणों के लोक में जायगा अथवा स्वर्गलोक ही प्राप्त करेगा; देवाधिदेव ब्रह्मा और शिव के ऐसा कहने पर इन्द्र ने सम्पूर्ण प्राणियों को बुलाकर इन दोनों की आज्ञा सुनाई; कर्ण और अर्जुन के रथों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि अर्जुन के ध्वज में स्थित वानर ने कर्ण के ध्वज के हाथी की सांकल पर आक्रमण किया; भगवान श्रीकृष्ण और शल्य ने एक दूसरे की ओर तीव्र नेत्रों से देखा; इसी प्रकार कर्ण और शल्य ने भी एक दूसरे को देखा; शल्य ने कहा कि यदि कर्ण का वध हो जाय तो वे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों का वध कर डालेंगे; श्रीकृष्ण ने कहा कि कर्ण अर्जुन का वध नहीं कर सकता, क्योंकि अन्यथा सम्पूर्ण लोकों को विनाश से बचाने के लिये वे स्वयं कर्ण और शल्य का वध कर देंगे; अर्जुन ने कहा कि उस दिन कर्ण की पत्नियाँ अवश्य विधवा हो जायेंगी (८. ८७)।" उस समय आकाश में देवता, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, अप्सराओं के समुदाय, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और गरुड़, सभी उपस्थित थे; दोनों का युद्ध आरम्भ हुआ और अर्जुन ने दुर्योधन इत्यादि को पराजित किया (८. ८८)।" "अर्जुन और कर्ण के युद्ध का वर्णन : "अर्जुन ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, जिसका कर्ण ने वारुणास्त्र द्वारा मेघ उत्पन्न करके निराकरण कर दिया, किन्तु अर्जुन ने भी वायव्यास्त्र द्वारा कर्ण के वारुणास्त्र का निराकरण किया; अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र तथा कर्ण ने भार्गवास्त्र का प्रयोग किया; कर्ण द्वारा अर्जुन के अस्त्रों का निराकरण देखकर भीम और कृष्ण ने अर्जुन से और अधिक बलप्रयोग के लिये कहा; ब्रह्मा की स्तुति करके अर्जुन ने तब उस ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया, जिसका केवल मन के द्वारा ही व्यवहार हो सकता था, किन्तु कर्ण ने इसका भी निराकरण कर दिया। भीम के कहने पर अर्जुन ने एक दूसरे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जिससे कौरवसेना का भयंकर संहार हुआ; अर्जुन ने कर्ण और शल्य पर प्रहार करते हुये सभापति इत्यादि का वध किया; कौरवों ने कर्ण से अर्जुन का वध करने के लिये कहा; युधिष्ठिर भी कर्ण और अर्जुन के इस युद्ध को देखने के लिये उपस्थित हुये; अर्जुन के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट गई; कर्ण ने अर्जुन पर बाण मारे; कर्ण ने बाणों के रूप में पाँच सर्पों का व्यवहार किया, परन्तु उनको काटते हुये अर्जुन ने दो सहस्र कौरवों का वध किया; कर्ण को अकेले ही अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिये छोड़कर कौरव सेना भाग खड़ी हुई (८. ८९)।" "अश्वसेन नामक नाग कर्ण के तरकस में बाण के रूप में प्रविष्ट हुआ; कर्ण और अर्जुन के इस भयंकर युद्ध को देखकर अप्सराओं ने चमर डुलाकर उन दोनों को चन्दन के जल से सिञ्चित किया; इन्द्र और सूर्य ने भी अपने-अपने करकमलों से उनके मुख पोंछे; तब कर्ण ने अर्जुन को मारने के लिये सुदीर्घकाल से सुरक्षित सर्पमुख बाण द्वारा अर्जुन पर प्रहार करने का निश्चय किया; उस बाण के छूटते ही सम्पूर्ण दिशाओं सहित आकाश जाज्वल्यमान हो उठा और सैकड़ों भयंकर उल्कायें गिरने लगीं; कर्ण को यह ज्ञात नहीं था कि अश्वसेन ही उसके बाण में प्रवेश कर गया है; उस प्रज्वलित बाण को बड़े वेग से आते देख कर श्रीकृष्ण ने अपने उत्तम रथ को तत्काल पैरों से दबाकर पृथिवी में थोड़ा धँसा दिया जिससे वह बाण अर्जुन के उस किरीट में जा लगा जिसे ब्रह्माजी ने तपस्या और प्रयत्न करके स्वयं ही देवराज इन्द्र के लिये निर्मित किया था और जिसे रुद्र आदि भी नष्ट नहीं कर सकते थे; कर्ण ने पुनः उस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया; तब उस सर्प ने स्वयं बाण का रूप धारण करके अर्जुन पर आक्रमण किया; श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने उस सर्प को काट डाला, और तब श्रीकृष्ण ने रथ को पुनः ऊपर कर दिया; एक बार जब कर्ण मूर्च्छित हो गया तब उस संकट के समय अर्जुन ने उसे मारने की इच्छा नहीं की, किन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि शत्रु को कभी भी छोड़ना नहीं चाहिये। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया। अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का आवाहन किया जिसका कर्ण ने निराकरण कर दिया; श्रीकृष्ण के द्वारा उत्तम अस्त्र छोड़ने का आग्रह करने पर अर्जुन ने भयंकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया; कर्ण ने एक के बाद दूसरी अर्जुन के धनुष की बारह प्रत्यञ्चायें काट डालीं; कर्ण को यह पता नहीं था कि अर्जुन के धनुष में १०० प्रत्यञ्चायें हैं; श्रीकृष्ण के द्वारा श्रेष्ठ अस्त्रों का प्रयोग करने के आग्रह पर अर्जुन ने मंत्रों से अभिसन्धानित और रौद्रास्त्र के साथ सम्बद्ध करके एक अन्य दिव्यास्त्र का प्रयोग किया; उसी समय पृथिवी ने कर्ण के रथ के पहियों को अपने गर्भ में फँसा लिया. कर्ण ने अपने रथ के धँसे पहियों को ऊपर उठाने तक अर्जुन से रुकने के लिये कहा (८. ९०)।" "उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से दिव्यास्त्र द्वारा कर्ण पर प्रहार करने के लिये कहा; क्रोध से उद्दीप्त अर्जुन के रोम रोम से मानों अग्नि की ज्वालायें प्रगट होने लगीं; कर्ण और अर्जुन दोनों ने ब्रह्मास्त्रों का आवाहन किया; अर्जुन ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया जिसका कर्ण ने वारुणास्त्र द्वारा चारों ओर अन्धकार उत्पन्न करके निराकरण कर दिया; अर्जुन ने वायव्यास्त्र से कर्ण के वारुणास्त्र का निराकरण किया; कर्ण के एक बाण से बिद्ध होकर अर्जुन को चक्कर आ गया; इसी बीच अवसर पाकर कर्ण ने धरती में धंसे रथ के पहियों को निकालने का विचार किया; उसी समय चेतना आते ही अर्जुन ने आञ्जलिकास्त्र निकाला; कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने पहले कर्ण के ध्वज पर प्रहार किया और उसके बाद आञ्जलिकास्त्र से उसके मस्तक को काट गिराया (८. ९१)।" अर्जुन ने कौरव महारथियों के साथ युद्ध किया और अपने शंख को बजाया; देव, गन्धर्व, मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष, तथा बड़े-बड़े नागों ने भी अर्जुन की सराहना की (८. ९४)। "कृष्ण के कहने पर अर्जुन युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित हुये; युधिष्ठिर ने अर्जुन और श्रीकृष्ण का स्वागत किया, और फिर दोनों को साथ लेकर कर्ण के मृत शरीर को देखने के लिये युद्धभूमि में पधारे (८. ९६)। ८. ४६–९६: ४६, ९. १५. १६. ३०. ३२. ३९. ५५. ७१. ७५. ७७. ७९. ८४; ४७, ३. ८. १०; ५०, २५. ३१; ५३, १२. ३६. ४२; ५६, ८२. ९२. ११०. ११८. १३६; ५७, ९; ५८, १. २. ३८.४२. ४७; ५९, ४७. ५८. ६२; ६०, ६४. ८०. ९०; ६१, १३; ६२, १; ६३, २३; ६४, ३. ५. ९. १६. १७. २६. २७. ५८; ६५, ८–१०. २२; ६६, १. ९. २७; ६८, ७; ६९, ३८. ६७. ८०; ७०, १. २४; ७१, ११; ७२, १३. २२; ७३, १; ७४, ४६. ५८; ७६, २२. ३९. ४०; ७७, १. २. १४–१६. १८. १९. २१; ७९, १. ३२. ३९. ४४. ७२–७४. ७८. ८१. ९१; ८०, २८; ८१, २. २३. २४. ३५. ३७. ३९; ८३, ३९; ८६, २. १७; ८७, १२. ३६. ३८. ४४. ४५. ५०. ५२. ५४. ५८. ५९. ६५. ८९. ९०. १०४. १०७; ८८, १६; ८९, १–९. १४. १६. ३६. ६८; ९०, २. ४. ५. ११–१३. ३६. ३९. ४१. ४४. ४८–५०. ५७. ६०. ६६. ६८. ७३. ७८. ८८. ९१. ९६. १०२. १०७. ११२; ९१, १८. ३३. ५९. ६२. ६६; ९२, १. ८. ११; ९३, १. १८. ३४; ९४, ११. १२. २५. ५३. ६१. ६५; ९५, १४; ९६, ९. ११. १६. २७. ३५. ४६)।" "शल्य को सेनापति बनाया गया (९. १)।" धृतराष्ट्र का विलाप (९. २)। अर्जुन महारथियों की ओर बढ़े और उन्होंने २५,००० पदातियों के साथ युद्ध किया; चेकितान इत्यादि ने अनेक सैनिकों का वध किया, और शेष पर अर्जुन ने आक्रमण किया (९. ३)। सेनाओं ने हिमवत् पर्वत के नीचे रात्रि व्यतीत की (९. ६)। कृष्ण ने कहा कि शल्य भीष्म के समतुल्य और अर्जुन से श्रेष्ठ हैं (९. ७)। (९. ३–७ : ३, १८. ३४; ४, २१. २२. ४८; ५, १३; ७, ३१)।" "अठारहवें दिन के पूर्वार्द्ध का युद्ध : अर्जुन ने कृतवर्मा और संशप्तकों पर आक्रमण किया (९. ८)। अर्जुन और भीमसेन ने अपने शत्रुओं को मूर्च्छित कर दिया (९. ९)। संशप्तकों का वध करने के पश्चात् अर्जुन ने शल्य का सामना किया (९. १०)। दुर्योधन ने अर्जुन के साथ युद्ध किया (९. ११)। अश्वत्थामा ने अर्जुन के साथ युद्ध किया (९. १२)। अश्वत्थामा और त्रिगर्तों के विरुद्ध युद्ध करते हुये अर्जुन ने

२,००० रथों को विनष्ट किया (९. १४)। श्रीकृष्ण और अर्जुन के देखते-देखते ही कौरवों ने पाण्डवों को पीड़ित किया; अर्जुन ने कृपाचार्य और कृतवर्मन् के साथ युद्ध किया; युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन को अपनी सेना के पृष्ठभाग की भी रक्षा करनी चाहिये; अर्जुन ने कौरव-सेना का संहार आरम्भ किया (९. १६)। युधिष्ठिर ने एक दिव्यास्त्र द्वारा शल्य का वध किया (९. १७)। अर्जुन इत्यादि ने मद्रकों का संहार आरम्भ किया (९. १८)। मध्याह्न के समय तक धृतराष्ट्र के प्रायः सभी पुत्र युद्धस्थल से पराङ्मुख हो गये; अर्जुन ने रथियों के विरुद्ध युद्ध किया; उत्साहवर्धक भाषण करके दुर्योधन ने एक छोटी सेना तैयार की, जिस पर पाण्डवों तथा विशेष रूप से अर्जुन ने आक्रमण किया (९. १९)। दुर्योधन को छोड़कर उसकी समस्त सेना भाग गई (९. २१)। कुरुओं का विनाश करने की इच्छा से अर्जुन ने कौरवों की क्षति का वर्णन करते हुये श्रीकृष्ण को सम्बोधित किया, और अवशिष्ट कौरव-सेना पर आक्रमण करके उसका भीषण संहार किया (९. २४)। अर्जुन और भीम इत्यादि ने ३,००० हाथियों का वध किया; अर्जुन ने सञ्जय के सैनिकों को पीड़ित किया; भीम और अर्जुन ने गजसेना का संहार किया (९. २५)। "श्रीकृष्ण ने अर्जुन से दुर्योधन की अवशिष्ट सेना को नष्ट करने के लिये कहा; अर्जुन ने अपने रथ पर आरूढ़ होकर सुशर्मन् और शकुनि, तथा त्रिगर्तों के साथ युद्ध करते हुये सत्यकर्मन्, सत्येषु और प्रस्थलराज सुशर्मन् का वध किया; अर्जुन ने सुशर्मन् के ३५ पुत्रों का भी वध किया और उसके बाद भरत-सेना के बचे हुये सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिये बढ़े (९. २७)। (९. ८–२८ : ८, ३१; ९, ३६; ११, ३९; १४, १. ४. ६. १०. २६. ३३. ४५–४७; १८, ७; १९, १९; २४, ५४; २५, २७. ५९; २७, २९, ३८. ४३)।" "शकुनि के अनुचरों ने पाण्डवों पर आक्रमण किया; अर्जुन और भीमसेन सहदेव की सहायतार्थ उपस्थित हुये; अर्जुन ने शत्रुओं का वध किया; दुर्योधन अपने मरे हुये घोड़े को छोड़कर और बिना किसी साथी के पैदल ही अपनी गदा लेकर एक सरोवर की ओर भागा; अर्जुन सहित पाण्डवों ने कौरवों के मनोरथ पर पानी फेर दिया; दुर्योधन की सेना में अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और कृतवर्मा को छोड़कर कोई भी महारथी नहीं बचा (९. २९)।" सूर्यास्त के समय अर्जुन सरोवर की ओर बढ़े (९. ३०)। "युधिष्ठिर ने दुर्योधन से सरोवर के बाहर आने और युद्ध करने के लिये कहा, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ (९. ३१)। (९. २९–३१ : २९, २. ३३; ३०, ५२)।" "युधिष्ठिर ने दुर्योधन से कहा कि यदि वह पाण्डवों में से किसी एक का भी वध कर देगा तो वे उसे राजा बना रहने देंगे; भीमसेन ने दुर्योधन के साथ गदायुद्ध करने के लिये कहा (९. ३२; ३३, २. ३३)।" "बलराम, दुर्योधन और भीम के युद्ध को देखने के लिये उपस्थित हुये (९. ३४)।" बलराम के प्रस्ताव के अनुसार भ्राताओं सहित युधिष्ठिर तथा दुर्योधन समन्तपञ्चक की ओर गये (९. ५५)। "अर्जुन ने श्रीकृष्ण से भीम और दुर्योधन के पराक्रमों के सम्बन्ध में पूछा; कृष्ण ने बताया कि धर्म-युद्ध करते हुये भीम दुर्योधन को पराजित करने में कभी भी सफल नहीं हो सकते; भीम को दिखाकर अर्जुन ने स्वयं अपनी जाँघ पर हलका सा प्रहार किया; इस संकेत को समझकर भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार किया (९. ५८)।" "कृष्ण ने अर्जुन से अपना गाण्डीव तथा अक्षय तरकस उतारने और उसके पश्चात् स्वयं भी रथ से नीचे उतर जाने के लिये कहा; तदुपरान्त श्रीकृष्ण भी रथ से उतरे; ध्वज पर आसीन दिव्य बानर भी सहसा अदृश्य हो गया, और तब अश्वों सहित अर्जुन का वह रथ (द्रोण और कर्ण के द्वारा प्रहार किये गये ब्रह्मास्त्र के कारण) जल कर भस्म हो गया। श्रीकृष्ण के कहने पर पाण्डवों और सात्यकि ने शिविर के बाहर ओघवती नदी के तट पर ही रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। तदुपरान्त इन लोगों ने गान्धारी के क्रोध को शान्त करने और धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के लिये श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर भेजा (९. ६२)।"

"दुर्योधन ने कृपाचार्य से अश्वत्थामा को कौरवसेना का सेनापति बनाने के लिये कहा; तदुपरान्त दुर्योधन को अकेला छोड़कर अश्वत्थामा और कृपाचार्य ने विदा ली (९. ६५)। (९. ३५–६५ : ५८, १; ६१, २९; ६२, १५. १८)।" "अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और कृतवर्मा ने रात्रि के समय पाण्डवों के शिविर में उपस्थित सभी व्यक्तियों का वध कर डाला; तदुपरान्त इन लोगों ने दुर्योधन के पास जाकर इसकी सूचना दी; दुर्योधन की मृत्यु हो गई (१०. १-९ : ४, ३१; ९, ३०)।" "श्रीकृष्ण के साथ पाण्डवगण अश्वत्थामा की खोज में निकले भीमसेन और नकुल के पीछे चले : कृष्ण, अर्जुन, और युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के ही रथ पर बैठे थे; अश्वत्थामा ने पाण्डवों के विनाश के लिये एक दिव्यास्त्र छोड़ा (१०. १३)।" श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा; उस समय प्रकृति में अनेक अपशकुन प्रगट हुये और तीनों लोकों की रक्षा के लिये नारद और व्यास इन दोनों अस्त्रों के बीच खड़े हुये (९. १४)। अर्जुन ने अपना अस्त्र वापस ले लिया, किन्तु अश्वत्थामा ऐसा नहीं कर सका; व्यास ने ब्रह्मशिरस् अस्त्र का पहले प्रयोग न करने के लिये अर्जुन की सराहना की (९. १५)। "श्रीकृष्ण ने कहा कि उत्तरा का पुत्र परिक्षित् अब भी जन्म लेगा किन्तु जन्मोपरान्त वे उसे जीवित कर देंगे (१०. १६)। (१०. १०–१८ : १०, ८; १३, ६; १४, १. २; १५, ९. १०. २०)।" "धृतराष्ट्र ने कुरुकुल की महिलाओं के साथ युद्धभूमि में जाने का निश्चय किया (११. १०)। "युधिष्ठिर और उनके भ्राता श्रीकृष्ण को साथ लेकर धृतराष्ट्र से मिलने चले; मार्ग में ये कुरुकुल की विलाप करती महिलाओं से मिले और उसके बाद धृतराष्ट्र का अभिवादन किया; धृतराष्ट्र ने कुछ अनमनस्क भाव से युधिष्ठिर का आलिङ्गन किया और तदुपरान्त भीम की एक लौहप्रतिमा को तोड़ दिया (११. १२)।" "धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डवगण श्रीकृष्ण को साथ लेकर गान्धारी से मिलने गये (११. १४)। अर्जुन श्रीकृष्ण के पीछे हो गये (११. १५)। (११. १–१५ : १५, ३१)।" "पाण्डवों, श्रीकृष्ण, तथा कुरुकुल की समस्त महिलाओं को साथ लेकर धृतराष्ट्र युद्धभूमि की ओर चले; पाञ्चाल और कुरुकुल की नारियाँ अत्यन्त शोकाकुल थीं; गान्धारी ने श्रीकृष्ण को शाप दिया (११. १६–२५ : १८, २२; २३, २६; २४, ८. २१)।" "धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर ने सुधर्मा इत्यादि को मृत व्यक्तियों का विधिवत् दाहसंस्कार करने के लिये कहा; इन लोगों ने सब को चिताओं पर रखकर अग्नि-संस्कार किया; तब युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र गङ्गातट की ओर गये (११. २६)।" "कुरुकुल की महिलाओं ने अपने मृत सम्बन्धियों के लिये गङ्गातट पर तर्पण आदि किया; अत्यन्त शोकविह्वल होकर कुन्ती ने कर्ण के जन्म की कथा बताते हुये कहा कि अर्जुन ने स्वयं अपने भ्राता का ही वध किया (११. २७, ८)।" "युधिष्ठिर ने अर्जुन के सम्मुख शोक प्रगट किया (१२. १, १३. ३४. ३६. ३९; २, २. १०; ७, २)।" नहुष इत्यादि का उदाहरण देते हुये अर्जुन ने युद्ध का औचित्य बताया तथा सम्पत्ति अर्जित करने की प्रशस्ति करते हुये युधिष्ठिर को सम्बोधित किया (१२. ८, १. ३)। अर्जुन के शब्दों से प्रभावित हुये बिना ही युधिष्ठिर ने सन्यास लेने की इच्छा प्रगट की (१२. ९)। अर्जुन ने शक्र (स्वर्णपक्षी के रूप में) और कुछ उन युवकों के बीच संवाद का वर्णन किया जो सन्यास लेना चाहते थे (१२. ११, १. २७)। अर्जुन ने राजदण्ड धारण करनेवाले की प्रशंसा की (१२. १२, १; १५, १. २)। अर्जुन ने विदेहराज जनक और उनकी महारानी के बीच संवाद का वर्णन किया जिसमें जनक की महारानी ने सन्यास लेकर भिक्षा से जीवन निर्वाह करने की निरर्थकता पर प्रकाश डाला था (१२. १६, १; १८, १. २. ३७)। युधिष्ठिर ने धन की निरर्थकता को बताते हुये अर्जुन को उत्तर दिया (१२. १९, ५. २१)। अर्जुन ने इन्द्र का उदाहरण देते हुये युद्ध में शत्रुओं के संहार को युधिष्ठिर से उचित बताया (१२. २२, १)। योग और सन्यास का जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते हुये युधिष्ठिर ने अर्जुन को उत्तर दिया (१२.

२७, ११)। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर का शोक दूर करने के लिये कहा (१२. २९, २. ५)। नारद द्वारा भीष्म से उपदेश प्राप्त करने का आग्रह करने, तथा अर्जुन के कहने पर, युधिष्ठिर अपने भ्राताओं सहित धृतराष्ट्र को आगे करके हस्तिनापुर की ओर चले; उस समय अर्जुन एक अत्यन्त उज्ज्वल छत्र धारण किये हुये थे (१२. ३३, १६; ३७, ३४)। हस्तिनापुर के नागरिकों ने युधिष्ठिर, द्रौपदी, और अर्जुन इत्यादि का स्वागत किया; युधिष्ठिर ने राजभवन में प्रवेश किया; तब ब्राह्मण का वेश बनाकर आये हुये चार्वाक नामक राक्षस को राजभवन में उपस्थित ब्राह्मणों ने अपनी हुङ्कार से नष्ट कर दिया (१२. ३८, ४)। भीम और अर्जुन दोनों युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय उनके दोनों ओर खड़े हुये (१२. ४०, ३)। अर्जुन को शत्रुसेनाओं से युद्ध करने और दुष्टों को दण्ड देने के लिये नियुक्त किया गया (१२. ४१, १३)। शौरिन् और सात्यकि ने अर्जुन के महल में प्रवेश किया (१२. ४४, २. ९. १५)। श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर और अर्जुन एक ही रथ में बैठकर पितामह भीष्म को देखने गये। (१२. ४७, १०५)। कृष्ण और पाण्डव इत्यादि कुरुक्षेत्र की ओर गये—वर्णन (१२. ४८)। पाण्डवों और कृष्ण इत्यादि ने अपने रथों से उतरकर बाणशय्या पर भीष्म को घेरे हुये ऋषियों का अभिवादन किया (१२. ५०)। भीष्म का अभिवादन करने के पश्चात् पाण्डव इत्यादि हस्तिनापुर लौट आये (१२. ५२)। युधिष्ठिर ने अर्जुन से अपना रथ ठीक करने के लिए कहा; पाण्डवगण श्रीकृष्ण के आवास की ओर गये; राजागण भीष्म को देखने गये (१२. ५३, १४. १८)। पाण्डवों ने भीष्म से नीतिशास्त्र का उपदेश देने के लिये कहा (१२. ५४, ५)। अट्ठारह अक्षौहिणी सेना भी अकेले अर्जुन की समता नहीं कर सकती (१२. १५७, १४)। अर्जुन ने धर्म और काम की अपेक्षा धन को ही प्राथमिकता दी (१२. १६७, ११)। वैशम्पायन ने कहा कि अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण ने अपने नामों की जो व्युत्पत्तियाँ बताई थीं वे उनका वर्णन करेंगे (१२. ३४१, ५. ८. ५७)। "अग्नि और सोम के पूर्वकाल में एक-योनि होने के सम्बन्ध में अर्जुन के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण ने (गद्य में) देवों इत्यादि की कुछ प्राचीन कथाओं का वर्णन किया। रुद्र और नारायण के युद्ध के सम्बन्ध में अर्जुन के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा : 'महाभारत-युद्ध में जो पुरुष तुम्हारे आगे-आगे चलते थे, उन्हें तुम जटाजूटधारी देवाधिदेव रुद्र समझो; तुमने जिन शत्रुओं को मारा है वे पहले ही रुद्रदेव के हाथ से मार दिये गये थे (१२. ३४२, १. ७९. ११७)।" "जब पाण्डव और कौरव-सेना के युद्ध के लिये सन्नद्ध होने पर अर्जुन को विषाद हुआ था, तब स्वयं श्रीकृष्ण ने उन्हें भक्तिधर्म का उपदेश दिया था (१२. ३४८, ८)।" भीष्म, युद्ध में अर्जुन से पराजित होकर, बाणशय्या पर पड़े हुये अपने मृत्यु के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे; उस समय पाण्डव इत्यादि उनकी सेवा कर रहे थे, और वे धर्म और नीति सम्बन्धी उपदेश देते जा रहे थे (१३. २६, २)। "जब युधिष्ठिर और विदुर ने कुरुनन्दन गङ्गापुत्र भीष्म के शव को रेशमी वस्त्रों और पुष्पमालाओं से सुसज्जित करके चिता पर सुलाया तब युयुत्सु ने उनके ऊपर उत्तम छत्र लगाया और भीमसेन तथा अर्जुन श्वेत चमर एवं व्यजन डुलाने लगे; भीष्म का दाह संस्कार करने के पश्चात् पाण्डवगण भागीरथी के तट पर गये और वहाँ सब ने मिलकर भीष्म को विधिवत तिलाञ्जलि दी; उस समय भगवती भागीरथी शोक से विलाप करने लगीं; भागीरथी को सान्त्वना देते हुये श्रीकृष्ण ने कहा कि भीष्म का वध शिखण्डिन् ने नहीं वरन् अर्जुन ने किया है (१३. १६८, १३)।" "जनमेजय के यह पूछने पर कि अपना राज्य पुनः जीत लेने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने क्या किया, वैशम्पायन ने कहा कि पहले तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उनके सम्बन्धियों को मृत हो जाने के कारण सान्त्वना दी और फिर स्वयं द्वारवती जाने की इच्छा प्रगट की; अर्जुन ने दुःख के साथ श्रीकृष्ण को विदा होने की सम्मति दी (१४. १५, २५)।" "शत्रुओं का वध करने के पश्चात् जब श्रीकृष्ण और अर्जुन राजभवन में रह रहे थे तब अर्जुन ने कृष्ण से द्वारका जाने के पूर्व पुनः भगवद्गीता का उपदेश देने के लिये कहा। श्रीकृष्ण को इस बात पर असन्तोष हुआ कि अर्जुन को गीता का उपदेश स्मरण नहीं रहा, तथापि उन्होंने अर्जुन को एक ब्राह्मण से कश्यप द्वारा सुनी गई अनुगीता का उपदेश दिया (१४. १६, १. ४)।" "जब श्रीकृष्ण ब्राह्मणगीता (अनुगीता) का वर्णन कर चुके तब अर्जुन ने उनसे पूछा कि ब्राह्मणी और वह ब्राह्मण अब कहाँ हैं। कृष्ण ने कहा, 'मेरे मन को ही तुम ब्राह्मण समझो और मेरी बुद्धि को ब्राह्मणी; जिसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं वह मैं ही हूँ (१४. ३४, ११)।' " अर्जुन द्वारा परमब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करने के निवेदन पर श्रीकृष्ण ने प्राचीनकाल में एक गुरु हूँ, और शिष्य के बीच हुए क्षोभ-विषयक संवाद का वर्णन किया (१४. ३५, १)। "अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैं ही गुरु हूँ और मेरे मन को ही शिष्य समझो; मैं अब अपने पिताजी का दर्शन करना चाहता हूँ, अतः यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं द्वारका जाऊँ।' अर्जुन ने कहा, 'अब हम लोग यहाँ से हस्तिनापुर चलें, और वहाँ राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर आप अपनी पुरी को पधारें।' (१४. ५१, ४५)।" "कृष्ण और अर्जुन ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया; अर्जुन ने श्रीकृष्ण की स्तुति की; हस्तिनापुर पहुँचकर इन लोगों ने धृतराष्ट्र इत्यादि का दर्शन किया; श्रीकृष्ण ने अर्जुन के महल में ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल अर्जुन और कृष्ण युधिष्ठिर के पास गये। तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से विदा ली और अर्जुन लौट आये (१४. ५२)।" अर्जुन ने बार-बार श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया; मार्ग में मरुभूमि में श्रीकृष्ण ने उतङ्क का दर्शन किया (१४. ५३)। व्यास ने आकर पृथा, उत्तरा, अर्जुन, और युधिष्ठिर से यह भविष्यवाणी की कि उत्तरा का पुत्र कृष्ण और व्यास द्वारा पुनरुज्जीवित होकर चक्रवर्ती सम्राट बनेगा; अर्जुन को इससे अत्यन्त सान्त्वना मिली (१४. ६२)। युधिष्ठिर ने अपने समस्त भ्राताओं को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने तथा मरुत्त का धन प्राप्त करने के लिये कहा; भीमसेन ने शिव का पूजन करने के लिये कहा जिसका अर्जुन इत्यादि ने समर्थन किया (१४. ६३, ४. १७)। पाण्डव इत्यादि मरुत्त का स्वर्ण लाने चले (१४. ६४)। इन लोगों ने शिव इत्यादि का पूजन किया और फिर धन सहित हस्तिनापुर लौटे (१४. ६५)। इसी बीच कृष्ण इत्यादि भी हस्तिनापुर आये; उत्तरा ने परिक्षित् को जन्म दिया जो ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होने के कारण चेष्टा-विहीन और मृतवत् उत्पन्न हुये थे (१४. ६६)। चेष्टाहीन परिक्षित् के जन्म पर सुभद्रा का विलाप (१४. ६७)। श्रीकृष्ण का प्रसूतिका-गृह में प्रवेश, उत्तरा का विलाप और अपने पुत्र को जीवित करने के लिये श्रीकृष्ण से प्रार्थना (१४. ६८)। श्रीकृष्ण ने आचमन करके अश्वत्थामा के चलाये हुये ब्रह्मास्त्र को शान्त करते हुये बालक परिक्षित् को जीवित कर दिया (१४. ६९)। जब परिक्षित् एक मास का हुआ तब पाण्डवगण भी मरुत्त के धन के साथ हस्तिनापुर लौटे (१४. ७०)। श्रीकृष्ण ने कहा कि युधिष्ठिर के यज्ञ करने पर भीमसेन, अर्जुन, इत्यादि को भी यज्ञानुष्ठान का फल मिलेगा (१४. ७१, २६)। व्यास के परामर्श के अनुसार अर्जुन अश्व की रक्षा के लिये नियुक्त हुये (१४. ७२, २२)। "युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि वे यथाशक्ति सभी राजाओं को क्षमादान देते हुये अश्वमेध यज्ञ के लिये आमन्त्रित करें; गाण्डीव-सहित अर्जुन अश्व के पीछे चले; समस्त हस्तिनापुर के लोग नगर के बाहर तक उनको विदा देने आये; याज्ञवल्क्य के एक शिष्य भी विघ्नों की शान्ति के लिये अर्जुन के साथ गये; इनके अतिरिक्त और भी अनेक वेदों में पारङ्गत ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन का अनुसरण किया। अश्व द्वारा प्रदक्षिणा की अवधि में अर्जुन ने अनेक महान् और अद्भुत युद्ध किये। वह अश्व पृथिवी की प्रदक्षिणा करते हुये सर्वप्रथम उत्तर की ओर, और फिर पूर्व की ओर गया। महाभारत युद्ध में जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये थे ऐसे जिन-जिन क्षत्रियों ने अर्जुन के साथ युद्ध

किया उनकी कोई गणना नहीं है। किरात, यवन, और म्लेच्छ आदि जो महाभारत युद्ध में पाण्डवों द्वारा परास्त हो चुके थे, अर्जुन से युद्ध के लिये आये (१४. ७३, ६. २७)।" "त्रिगर्तों ने अर्जुन पर आक्रमण किया; अर्जुन ने त्रिगर्तों को शान्तिपूर्वक समझाते हुये युद्ध रोकने की चेष्टा की, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ; त्रिगर्तराज सूर्यवर्मन् ने अर्जुन के साथ युद्ध किया; सूर्यवर्मन् के परास्त होने पर उसका अनुज केतुवर्मन् युद्ध के लिये आया किन्तु अर्जुन ने उसका वध कर दिया; केतुवर्मन् के मारे जाने पर महारथी धृतवर्मन् अर्जुन से युद्ध करने लगा; धृतवर्मन् के बाण से अर्जुन के हाथ में गहरी चोट आई, जिससे उन्हें मूर्च्छा आ गई और उनका गाण्डीवधनुष भी हाथ से छूट कर पृथ्वी पर जा पड़ा; परन्तु अर्जुन ने अपने हाथ से रक्त पोंछ कर पुनः गाण्डीव उठा लिया और अट्ठारह प्रमुख योद्धाओं को यमलोक पहुँचा दिया; इसके बाद त्रिगर्तों ने पलायन करते हुये अर्जुन की आधीनता स्वीकार कर ली (१४. ७४)।" प्राग्ज्यौतिषपुर में भगदत्त के पुत्र राजा वज्रदत्त ने अपने हाथी पर बैठकर अर्जुन पर आक्रमण किया, किन्तु तीन दिन के भयंकर युद्ध के पश्चात् चौथे दिन जब उसका हाथी मारा गया, उसने अर्जुन की आधीनता स्वीकार करते हुये अश्वमेधयज्ञ में आने का वचन दिया (१४. ७५, १४. १६; ७६, १. ३. १३–१५)। "रथों पर बैठकर सैन्धवों ने, जयद्रथ-वध का स्मरण करके, पैदल चल रहे अर्जुन पर आक्रमण किया। इस युद्ध में अर्जुन का गाण्डीव धनुष नीचे गिर पड़ा। अर्जुन को इस प्रकार मोह के वशीभूत हुआ जानकर समस्त देवर्षि, सप्तर्षि, और ब्रह्मर्षि मिलकर अर्जुन की विजय के लिये मन्त्रजाप करने लगे; इस प्रकार देवताओं के प्रयत्न से अर्जुन का तेज पुनः उद्दीप्त हो उठा और उन्होंने अपने दिव्य धनुष की प्रत्यञ्चा खींची। सैन्धवों ने पराजित होकर पलायन किया (१४. ७७)।" "सैन्धवों ने एक बार पुनः अर्जुन पर आक्रमण किया; अर्जुन ने उन्हें आत्मसमर्पण करने के लिये कहा परन्तु इसका कोई फल न हुआ; तब दुःशला सुरथ के पुत्र, अपने पौत्र को, गोद में लेकर अर्जुन की शरण में आई; अर्जुन ने अपना धनुष फेंक कर जयद्रथ-पुत्र सुरथ के सम्बन्ध में पूछा, जिसके उत्तर में दुःशला ने बताया कि उसने अर्जुन के आगमन का समाचार सुनकर ही शोक से अपने प्राण त्याग दिये; अर्जुन ने दुःशला को सान्त्वना दी और दुःशला भी अपने सैनिकों को युद्ध से विरत करते हुये घर लौट गई। अन्त में वह अश्व मणिपुर पहुँचा (१४. ७८, १३. २१. २७)।" "अर्जुन के आगमन का समाचार सुनकर चित्राङ्गदा से उत्पन्न अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने नगर के बाहर आकर अर्जुन का स्वागत किया, परन्तु अर्जुन ने कुपित होकर बभ्रुवाहन पर क्षत्रिय-धर्म से विरत हो जाने का आक्षेप किया। जब अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहन पर इस प्रकार आक्षेप कर रहे थे उस समय नाग कन्या उलूपी पृथिवी को छेदकर वहाँ उपस्थित हुई। उलूपी ने देखा कि बभ्रुवाहन नीचे मुँह किये हुये सोच-विचार में पड़ा हुआ है। तब अपना परिचय देते हुये उलूपी ने बभ्रुवाहन से अपने पिता अर्जुन के साथ युद्ध करने का आदेश दिया। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के साथ भयंकर युद्ध करके यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया; अर्जुन भी अत्यन्त आहत हो गये और उन्होंने अपने पुत्र की वीरता की प्रशंसा की; अन्त में अर्जुन मूर्च्छित होकर मृतवत् भूमि पर गिर पड़े और बभ्रुवाहन भी मूर्च्छित हुआ (१४. ७९, ३७)।" "अर्जुन के मृतवत् भूमि पर गिर पड़ने पर उनकी पत्नी चित्राङ्गदा ने विलाप करना आरम्भ किया। अन्त में उलूपी ने सञ्जीवनी मणि का आवाहन किया और उस मणि के उपस्थित होने पर अर्जुन के वक्षःस्थल पर रक्खा जिससे वे पुनः जीवित हो उठे (१४. ८०, ३१)।" "अन्त में उस घोड़े ने हस्तिनापुर की ओर मुख किया; राजगृह में सहदेव-पुत्र मगधराज मेघसन्धि ने अपने रथ पर बैठकर पैदल चल रहे अर्जुन पर आक्रमण किया, किन्तु उसे पराजित करने के बाद अर्जुन ने अश्वमेध यज्ञ में आने का निमन्त्रण दिया। तदनन्तर वह घोड़ा अपनी इच्छा के अनुसार समुद्रतट से होता हुआ वङ्ग, पुण्ड्र, और कोसल आदि देशों में गया, जहाँ अर्जुन ने गाण्डीव की सहायता से म्लेच्छों की अनेक सेनाओं को परास्त किया (१४. ८२, २२. २७)।" "मगधराज से पूजित होने के बाद अर्जुन ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया; चेदियों के सुन्दर नगर में शिशुपाल के पुत्र शरभ ने पहले तो अर्जुन से युद्ध किया, किन्तु बाद में उनकी अधीनता स्वीकार कर ली; अर्जुन ने चित्राङ्गद को एक भयंकर युद्ध के पश्चात् परास्त किया; एकलव्य के पुत्र निषादराज को भी घोर युद्ध के पश्चात् अर्जुन ने परास्त किया; तदुपरान्त वासुदेव को साथ लेकर राजा उग्रसेन अर्जुन के पास आये; वहाँ से पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती देशों में विचरता हुआ वह घोड़ा पञ्चनद प्रदेश में जा पहुँचा; वहाँ से भी गान्धार प्रदेश में जाकर इच्छानुसार विचरने लगा; गान्धार देश में शकुनि के पुत्र गान्धारराज से अर्जुन का घोर युद्ध हुआ (१४. ८३)।" "गान्धार-राज के साथ इस युद्ध में जब अर्जुन ने उसके सैनिकों का भयंकर संहार आरम्भ किया तब उसने अर्जुन को रोका, परन्तु अर्जुन ने उससे युद्ध-विरत होने के लिये कहा; अन्त में अर्जुन ने शकुनि-पुत्र गान्धारराज के शिरस्त्राण को अर्द्धचन्द्राकार बाण से काट गिराया; इस अवस्था में गान्धार-राज युद्ध से भागने का अवसर देखने लगा; तदनन्तर गान्धारराज की माता अत्यन्त भयभीत होकर बूढ़े मन्त्रियों को आगे करके उत्तम अर्घ्य ले नगर से बाहर निकली और रणभूमि में उपस्थित हुई; उसके निवेदन पर अर्जुन ने पराजित गान्धारराज को सान्त्वना देते हुये युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में पधारने के लिये कहा (१४. ८४, ६)।" अर्जुन के हस्तिनापुर लौटने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये और यज्ञ की भव्य तैयारी करने लगे (१४. ८५, २)। कृष्ण ने आकर कहा कि अर्जुन अनेक युद्धों में शत्रुओं का सामना करने के कारण दुर्बल हो गये हैं और अब हस्तिनापुर के अत्यन्त निकट आ पहुँचे हैं (१४. ८६, ७)। "युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा कि अर्जुन सुख से वञ्चित क्यों रहते हैं। कृष्ण ने कहा कि अर्जुन की पिण्डलियाँ औसत से कुछ अधिक मोटी हैं, जिसके कारण ही उन्हें इतना अधिक चलना पड़ता है; भीमसेन आदि कौरव और यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण अर्जुन की विजय और सकुशल लौट आने के समाचार पर अत्यन्त प्रसन्न हुये। जब ये लोग अर्जुन के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातचीत कर रहे थे उस समय एक दूत ने आकर अर्जुन के अत्यन्त निकट आ जाने का समाचार दिया। इस शुभ समाचार को सुनकर युधिष्ठिर के नेत्रों में आनन्दाश्रु छलक पड़े और उन्होंने उस दूत को प्रचुर पुरस्कार दिया। दूसरे दिन अर्जुन ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश करके युधिष्ठिर का अभिवादन किया (१४. ८७, १३. १८. २०)।" तदुपरान्त अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ (१४. ८८)। युधिष्ठिर ने यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को दक्षिणा और राजाओं को भेंट देकर विदा किया; उस समय युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन इन्द्र के समान प्रतीत हो रहे थे (१४. ८९, १२; ९१, ५)। "पन्द्रह वर्ष तक धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार सभी पाण्डव अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहे। पाण्डवों में केवल भीम ही ऐसे थे जिनके हृदय से कभी भी यह बात दूर नहीं होती थी कि कपटद्यूत के समय जो कुछ भी अनर्थ हुआ था वह धृतराष्ट्र की खोटी बुद्धि का ही परिणाम था (१५. १)।" युधिष्ठिर के भय से कोई भी दुर्योधन अथवा धृतराष्ट्र की बुराई नहीं करता था। फिर भी, भीम केवल दिखाने के लिये ही धृतराष्ट्र का आदर करते थे जब कि उनका हृदय घृणा से ही भरा हुआ था (१५. २)। "पन्द्रह वर्ष के बाद, भीमसेन के वाग्बाणों से अत्यन्त त्रस्त धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, 'अब मुझे और गान्धारी देवी को अपने हित के लिये पवित्र तप करना चाहिये, अतः इसके लिये हमें अनुमति दो; तुम्हारी अनुमति मिल जाने पर हम दोनों वन को चले जायेंगे और वहाँ चीर और वल्कल धारण करके तपस्या करते हुये तुम्हें आशीर्वाद देंगे', (१५. ३)।" युधिष्ठिर और अर्जुन ने धृतराष्ट्र के भीष्म आदि का श्राद्ध करने के विचार का अनुमोदन किया, परन्तु भीम ने इसके लिये सहमति नहीं दी; अर्जुन ने युधिष्ठिर की सहायता से भीम को शान्त करना चाहा (१५. १०, ३१. ४५; ११)।

अर्जुन ने भीमसेन से दुर्योधन के दुराचारों को भूल जाने का आग्रह किया (१५. १२, १. ६. ११)। विदुर ने धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन के उत्तर सुनाये (१५. १३, ९)। कार्त्तिक मास की पूर्णिमा के दिन गान्धारी तथा कुल-वधुओं के साथ जब धृतराष्ट्र वन को जाने लगे तब युधिष्ठिर और अर्जुन का हृदय शोक से भर गया (१५. १५, ७)। धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ ही विदुर, संजय, तथा कुन्ती भी वन को चले; धृतराष्ट्र ने कृप और युयुत्सु को हस्तिनापुर में ही रहकर युधिष्ठिर के साथ रहने के लिये कहा (१५. १६, १५)। शोक-विह्वल होने के कारण पाण्डवगण राजकीय कर्त्तव्यों की ओर ध्यान नहीं दे रहे थे; अपनी माता तथा धृतराष्ट्र आदि की चिन्ता के कारण पाण्डवों ने भी वन की ओर प्रस्थान किया (१५. २२)। अर्जुन और कृपाचार्य के नेतृत्व में पाण्डवगण धीरे-धीरे पड़ाव डालते हुये वन में पहुँचे (१५. २३, १. ११)। सहदेव और कुन्ती ने गान्धारी को पाण्डवों के आगमन की सूचना दी। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल को देखकर कुन्ती देवी अत्यन्त व्यग्रता के साथ उनकी ओर चलीं; वे आगे आगे चलती थीं और उन पुत्र-हीन दम्पति को भी अपने साथ खींच रही थीं (१५. २४, ११)। सञ्जय ने वहाँ उपस्थित ऋषियों आदि से पाण्डवों, उनकी पत्नियों, तथा अन्यान्य स्त्रियों का परिचय कराया (१५. २५, ३. ७)। विदुर ने युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश किया (१५. २६)। "उस वन में पाण्डवों ने लगभग एक मास व्यतीत किया; व्यास भी वहाँ पधारे; धृतराष्ट्र ने अपने मृत-पुत्रों और सम्बन्धियों को देखने की इच्छा प्रगट की। गान्धारी का शोक पुनः उमड़ आया और उन्होंने बताया कि गत पन्द्रह वर्षों से शोक के कारण धृतराष्ट्र को कभी भी निद्रा नहीं आई; उस समय कृष्णा इत्यादि भी शोक से विह्वल हो उठीं। व्यास ने शोक-विह्वल कुन्ती से कहा, 'तुम्हें किसी कार्य के लिये यदि कुछ कहने की इच्छा हो तो उसे कहो', (१५. २८, ७; २९)।" कुन्ती ने कर्ण के जन्म का गुप्त रहस्य बताया; व्यास ने कुन्ती को कर्ण का दर्शन कराने का वचन दिया (१५. ३०)। वहाँ से वे सब लोग भागीरथी के तट पर जाकर रात्रि की प्रतीक्षा करने लगे; सूर्यास्त के समय उन लोगों ने स्नान तथा सन्ध्या के कर्म किये (१५. ३१)। रात्रि होने पर व्यास जी स्नान के लिये भागीरथी में कूद पड़े और वहाँ उन्होंने समस्त मृत-योद्धाओं का आवाहन किया, जिसके परिणाम-स्वरूप वे सब तीव्र कोलाहल के साथ जल से ऊपर उठे (१५. ३२)। परलोक से आये सभी योद्धा रात भर राग-द्वेष से रहित होकर जब एक दूसरे के साथ मिल-जुल चुके तब व्यास जी ने उन सब को क्षणमात्र में अदृश्य कर दिया (१५. ३३)। धृतराष्ट्र का शोक जाता रहा और सभी लोग घर लौट आये; पाण्डवों ने एक मास से अधिक वन में व्यतीत किया (१५. ३६, ४७)। दो वर्ष के पश्चात नारद मुनि पाण्डवों के पास आये; नारद ने बताया कि धृतराष्ट्र आदि दावानल में दग्ध हो गये हैं, जिसमें से केवल सञ्जय ही बच सके; इस शोक समाचार को सुनकर पाण्डव तथा हस्तिनापुर के समस्त नागरिक जलाञ्जलि देने के लिये गङ्गातट पर गये (१५. ३७-३९)। "द्वारका में यादवों द्वारा परस्पर संहार के पश्चात श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शीघ्र बुलाने के लिये दारुक को हस्तिनापुर भेजा। कृष्ण ने द्वारवती में प्रवेश करके अपने पिता से अर्जुन के आने तक समस्त स्त्रियों की रक्षा करने के लिये कहा; तदुपरान्त बलराम और श्रीकृष्ण की मृत्यु हो गई (१६. ४, ३)।" "दारुक को साथ लेकर अर्जुन ने द्वारका की ओर प्रस्थान किया; कृष्ण की १६,००० रानियों ने अर्जुन को देखकर अत्यन्त विलाप करना आरम्भ किया; समस्त द्वारका नगरी अर्जुन को भयंकर वैतरणी नदी प्रतीत हुई। अर्जुन को देखकर सत्या, और रुक्मिणी भूमि पर गिर कर विलाप करने लगीं। तदुपरान्त स्त्रियों को सान्त्वना देने और श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने के पश्चात् अर्जुन वसुदेव के पास गये (१६. ५, ३. ६)।" वसुदेव ने शोक प्रगट करते हुये कहा कि वे भोजन न करते हुये मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे (१६. ६, ४-६. ९. २१)। "अर्जुन ने कहा कि पाण्डवों के भी इस लोक से विदा होने का समय आ गया है। फिर भी, उन्होंने वृष्णियों की स्त्रियों, उनके बच्चों, तथा वृद्ध पुरुषों को इन्द्रप्रस्थ पहुँचा देने के लिये कहा। तब उन्होंने यादवों के सुधर्मा नामक सभाभवन में प्रवेश करके नागरिकों तथा मन्त्रियों से कहा, 'मैं वृष्णि और अन्धक कुल के अवशिष्ट व्यक्तियों को शीघ्र ही दूर हटा दूँगा, क्योंकि यह नगर अब सागर से आप्लावित हो जायगा'। अर्जुन ने कृष्ण के महल में ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल वसुदेव ने योग के द्वारा परमधाम को प्राप्त किया और उनकी चार पत्नियों ने चिता में प्रवेश किया। वसुदेव और उनकी चार पत्नियों के अग्निसंस्कार के बाद अर्जुन उस स्थान पर गये जहाँ वृष्णियों का संहार हुआ था; वहाँ उन्होंने उन सब तथा राम और श्रीकृष्ण का अन्तिम संस्कार किया; सातवें दिन स्त्रियों, बच्चों, यादव सैनिकों और अन्य नागरिकों, तथा श्रीकृष्ण की १६,००० पत्नियों और वज्र के साथ अर्जुन ने प्रस्थान किया; उन सबकी संख्या बहुत अधिक थी। उन लोगों के हटने के बाद ही सागर ने द्वारका नगरी को आप्लावित कर दिया। वे सब लोग धीरे-धीरे पड़ाव डालते हुये चल रहे थे। पञ्चनद के पास आभीरों (म्लेच्छों) ने उन सबको लूटने की मन्त्रणा की; उस समय अर्जुन को अत्यन्त कठिनाई के साथ ही अपने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने में सफलता मिल सकी; उनके दिव्यास्त्र भी अब उन्हें स्मरण नहीं रहे। आभीर लुटेरे सभी स्त्रियों को पकड़ ले गये; अर्जुन का अक्षय तरकस भी बाण-विहीन हो गया; अर्जुन को अत्यन्त दुःख हुआ और वह किसी प्रकार बचे हुये लोगों को कुरुक्षेत्र तक ले गये। इस प्रकार अपहरण से बची हुई स्त्रियों आदि को अर्जुन ने यत्र-तत्र बसा दिया: कृतवर्मा के पुत्र को और भोजराज के परिवार की अपहरण से बची हुई स्त्रियों को अर्जुन ने मार्तिकावत नगर में बसाया; वीर-विहीन समस्त वृद्धों, बालकों तथा अन्य स्त्रियों को साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँ का निवासी बना दिया; सात्यकि के पुत्र यौयुधानि को सरस्वती के तटवर्ती देश का अधिकारी बनाकर कुछ वृद्धों तथा बालकों को उनके साथ कर दिया; वज्र को उन्होंने इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। इसी प्रकार अन्य स्त्रियों और बच्चों की भी समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रों से आँसू बहाते हुये व्यास के आश्रम में चले गये (१६. ७, ७. ४८. ५१. ५४. ७६)।" "अर्जुन ने व्यास से समस्त घटना का वर्णन किया। अर्जुन की पराजय का समाचार सुनकर व्यास ने बताया कि समस्त यदुवंशी देवताओं के अंश थे; वे देवाधिदेव श्रीकृष्ण के साथ आये थे और उनके साथ ही चले गये; व्यास ने बताया कि श्रीकृष्ण की ही भाँति पाण्डवों ने अब अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है, अतः अब उन्हें इस लोक से विदा होने की तैयारी करनी चाहिये। व्यास की आज्ञा लेकर अर्जुन हस्तिनापुर आये और युधिष्ठिर से मिलकर उन्हें समस्त समाचार से अवगत कराया (१६. ८, १. २. ७)।" "पाण्डवों ने तब अपने हृदय में महाप्रस्थान का निश्चय किया; उन लोगों ने अपने समस्त साम्राज्य की देखभाल का भार युयुत्सु को सौंप दिया; फिर अपने राज्य पर राजा परिक्षित् का अभिषेक करने के पश्चात् उन लोगों ने वज्र को इन्द्रप्रस्थ का शासक बनाया; कृपाचार्य को परिक्षित् का रक्षक और गुरु नियुक्त किया गया; प्रजाजनों ने यथाशक्ति पाण्डवों को रोकने का प्रयास किया; परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। तदनन्तर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी ने आभूषणादि उतार कर वल्कल धारण कर लिया; ब्राह्मणों से विधिपूर्वक उत्सर्ग-कालिक इष्टि करवा कर पाण्डवों ने अग्नियों का जल में विसर्जन किया, और तब महायात्रा के लिये प्रस्थित हुये। पांचों पाण्डव तथा द्रौपदी और एक कुत्ता क्रमशः चलते-चलते लालसागर के तटपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने साक्षात अग्निदेव को देखा। अग्नि ने कहा कि अर्जुन को गाण्डीव धनुष का परित्याग करके ही वन में जाना चाहिये; अग्नि ने कहा कि वे स्वयं ही अर्जुन के लिये इस धनुष को वरुण से माँग कर लाये थे अतः इसे पुनः वरुण को वापस कर देना चाहिये। तब अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष तथा दोनों अक्षय तरकस जल में फेंक दिया। तदुपरान्त

समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा करने की इच्छा से पाण्डवगण दक्षिणाभिमुख होकर चले (१७. १, २. ५. २०. ३१. ३७. ३८)। हिमवत् इत्यादि को पार करने के पश्चात् सबसे पहले द्रौपदी का मन योग से विचलित हो गया जिससे वह लड़खड़ा कर पृथिवी पर गिर पड़ीं; युधिष्ठिर ने बताया कि द्रौपदी के मन में अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था इसीसे उसकी यह दशा हुई; उसके बाद सहदेव, फिर नकुल, और उनके बाद अर्जुन भी एक-एक करके गिरते गये; युधिष्ठिर ने बताया कि अर्जुन को अपनी शूरता का अभिमान था जिसके कारण उन्होंने कहा था कि वे एक ही दिन में शत्रुओं को भस्म कर डालेंगे, किन्तु ऐसा न कर सकने के कारण ही आज उन्हें धराशायी होना पड़ा (१७. २, २१)। युधिष्ठिर के धर्म की द्वितीय परीक्षा (१७. ३, २०) । युधिष्ठिर की तृतीय परीक्षा (१८. १-३)। स्वर्ग में आकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को उनके ब्राह्मरूप में देखा जहाँ अर्जुन उनकी आराधना में लगे हुये थे (१८. २, १०. ४०; ४, ३-४) । तु० की० अर्जुन के निम्न पर्याय :

* **इन्द्रध्वज** ६. ११९, ९१ ।

* **इन्द्ररूप**—देखिये व० स्था०

* **इन्द्रसुत** (इन्द्र का पुत्र)—देखिये व० स्था०

* **इन्द्रात्मज** (इन्द्र का पुत्र)—देखिये व० स्था०

* **इन्द्रावरज** (८. १८, १६)—देखिये **धनञ्जय** ।

* **ऐन्द्रि** (इन्द्र का पुत्र)—देखिये व० स्था०

* **कपिकेतन** : १४. ८२, २२ ।

* **कपिध्वज** (कपि या वानर से युक्त ध्वजावाले) : ५. ९६, ४७; ६. ६०, ९; ९. १०, ६२ ।

* **कपिप्रवर** (श्रेष्ठ कपिवाले) : १०. १२, २६ ।

* **कपिवरध्वज** (जिनकी ध्वजा में श्रेष्ठ वानर है) : ७. १०, २१ ।

* **किरीटभृत्** (किरीट पहने हुये) : १४. ८२, २ ।

* **किरीटमालिन्** : ३. १६५, ४; १८३, १४; ४. ५४, २९; ६१, ४६; ६४, ३१; ६. ५९, ११४; ७. १२८, ४८; १४६, १४४ ।

* **किरीटवत्** : ११. २४, २१ ।

* **किरीटिन्** (किरीटधारी) : १. १, १६५; २, १२५. १५१. १५९. १८५. १९६. २१३. २१४. २७५; १३८, ४०; १८५, ८; १९०, १९. ३२; २२१, ६४. ८३; २. २७, १२. २१; ५२, ३०; ३. ४८, १५. १८; १६४, १३; १६५, ३. १४; १७६, ३; १८३, २२; ४. ३९, १०; ४४, ९ (अर्जुन के १० नामों का वर्णन); ४४, १०. १७ (पूर्वकाल में मैंने जब दानवों से युद्ध किया था तब शक्र ने मेरे सर पर सूर्य के समान उज्ज्वल किरीट रख दिया था, अतः तब से ही मनुष्य मुझे 'किरीटिन्' कहते हैं); ५४, २. १८. २१. २४. २७. २८; ५५, २३. २७; ५८, २३; ६५, १४; ६६, २९; ६७, १४; ५. ७, ९. १०. ३४; २०, १९, २०; २१, ६; २६, २४; ४८, ३. ६. १०३; ५२, १५. १९; ६२, ११; १७१, १८; १७२, १०; ६. ३५, ३५; ५२, २९; ५५, २२; ५९, ७८. १२१, १२४. १३०. १३८. १३९; ६०, १०. २२; ६१, १३; ७१, १९; ११२, २७. ३४; ११७, ४०; ११८, ४३, ५४; ११९, १३. १६. २३. ३०. ८३; ७. २, ३०. ३२; ३, १७; ९, २७; ११, ३८; १३, २१; १६, ४५; १८. २. २०; २७, २४; २९, ४८; ३०, ३१; ३२, ६२; ३३, ११; ८४, १४; ९०, १. १२. १८. २०. ३३; ९४, २१; १००, २३; ११९, ८; १४०, ५; १४१, १५; १४३, २; १४५, १८. ४३. ४७. ९५; १४६, २२. १३२; १४८, ५८; १५०, २८. ३५; १५२, २. ११; १५७, ४५. ४८; १५९, ८२. ९३; १६१; ६. १२. १६; १९३, १८; २००, ७३; ८. ६, ४; ९, ३५; ११, ३१; १७, १४; १८, १९; १९, ५३; २१, ६; ४१, ७४; ४६, ६७; ४७, १०; ५३, ४६; ५६, १०२; ५८, ५०; ६४, २०; ७०, २६. ३९. ४२; ७१, ३९; ७६, १२. ३४. ३८; ७९, ४८. ८८; ८०, ११. १९. २८; ८१, ६. २१; ८२, १३; ८४, ४१. ४२; ८५, २४. २९. ३६. ३९; ८७, ७; ८९, ३८. ४१. ४३. ५२. ६१. ६२. ८४; ९०, ९. ३९. ५५. ७४. ८०; ९१, ३२. ३७. ४८; ९३, ५; ९. २, ५८. ६०; ३, ६; २५, ३. ५३; २७, ३१; १४. ७४, १. ४. ५; ७७, १; ७८, १७; ७९, २१; ८३, ७. ११. १६. २०; १५. ११, ९ ।

* **कुन्तीपुत्र** (कुन्ती का पुत्र)—देखिये व० स्था० ।

* **कृष्ण**—देखिये व० स्था०

* **कृष्णसारथि** (जिसके सारथि कृष्ण हैं)—देखिये व० स्था०

* **कौन्तेय** (कुन्ती का पुत्र)

* **कौरव, कौरवश्रेष्ठ,** इत्यादि ।

* **कौरवेय, कौरव्य**—देखिये व० स्था०

* **गाण्डीवधन्वन्** (गाण्डीव धनुषवाले) : १. २, २४९; २. ६१, २२; ३. ३३, ६; ४८, ८; ५२, ३७. ४८; १५८, ९; १६२, २४; २३६, २०; २६८, १९; ३१५, २४; ४. १, १९; ४५, ९; ५३, २ (गाण्डीवधन्विनम्); ५४, १६. ३२; ५५, २६; ५८, ७०; ६६, ८; ५. ३, १५; ५, १०; २२, १०. १२. १३; ४८, ७; ५२, २. ३; ५७, ६२; ६५, ५; ९०, ७०; १४१, ४१; १५६, २५; १५७, २१; १६७, ४. ३६; ६. १९, ३४; ५०, ४५; ५२, २२; ५९, १३१; ७१, ४; ७३, ३. ८. १०; १०४, १३; ११९, ६०. ६७; ७. १०, २४; १६, ४८; १७, १२; ३४, ५; ४८, २४; ७४, १०; ७८, १५; ७९, ११; ८५, ५१; ८८, ११; ९३, ६६; १०५, १०; १२२, १४; १४६, ५५; १५९, ५. ७०; १८२, ३९; १८३, ४५; १८५, २४; २०१, ४०; ८. ८, १६ (शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ); ६४, १९; ६५, २२; ७०, ४९; ७२, १६. १७; ८१, ३८; ८७, ९५; ९०, ५१; ९१, ४५; ९९, १८. ४४; ९. ४, ३९; १६, ४६; ६२, ८. ११. १२. १४. २१. २३; १०. ५, २०. २१; १२, २६; १४, ७ (विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः); ११. २०, ४ (एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः); २०, ५ (स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः); २१, ३; २३, १९; २७, १९; १२. २, ७; ५, १४; ४०, २२; ५३, २५; १३. १४८, ५५; १४. ६०, ११; ७८, १४; ८०, ३३; ८२, १५ ।

* **गाण्डीवधारिन्** (गाण्डीव धारण करनेवाले) : ८. ४०, ५ ।

* **गाण्डीवभृत्** (गाण्डीव से युक्त) : ५. २३, २७; १४. ७८, १. ५; ८२, ११ ।

* **गाण्डीविन्** (गाण्डीव धनुषवाले) : १३. १४८, २९ (हरिगाण्डीविविग्रहम्) ।

* **गुडाकेश** १. १३९, ८; २२१, २; ३. ४२, २; ४३, २६; ४७, २७; १४०, ९; १४१, ८; १६२, ३१; १८३, ९; २७१, ३९; ३१२, २२; ४. २, १८; ५. १५७, १५; १६३, २; १६९, १६; ६. २२, १४; २५, २४; २६, ९; ३५, ७; ७. ८६, २०; ११०, ८१; १२६, ३९; १२. २३, १; २९, १; १४. १५, ११; ७४, १७. २८; ७६, ७; ८०, १३; ८४, १; ८५, १०; १५. ११, ७ ।

* **जय** (विजय) : २. २०, ३; ३. १[illegible]२०, १२ (जयात्मजस्य, संभवतः = अभिमन्यु); १५८, २; २६६, ७; ५. ७, ३१; २३, २६; ७. २८, २ (श्वेतहयः); ८८, १७; १५१, १२; १८२, १७; ८. १६, १६; ७९, ७६; १४. ७८, ४३; ८०, ३६; ८१, २२; १६. ७, ७५ ।

* **जिष्णु** (विजेता) : १. १३२, १८; १८७, १० (भीमं स जिष्णुं च); १८७, २९; १८९, १८. १९; १९०, ७. ४७; १९१, ११; १९२, ३; २२७, १२; २. ६७, ३३; ३. ११, ४१; ३५, २६; ३६, ३३; ३९, १७. ४३. ४६. ५९; ४४, ३; ४७, १३; ८६, २; १६२, १६. २१; १६४. १४. १५; १७६, ६; २६८, ७; ३१३, १०; ४. ४४, ९ (अर्जुन के १० नामों

की गणना); ४४, ११. २१ (व्युत्पत्ति); ५०, १६; ५४, ३२; ५५, ६; ५७, ९; ६१, ३५. ३९; ६४, २७; ६५, ६; ६७, १२; ५. २२, १०; २४, ५; ९०, ३३; ९६, ४७; १११, ४. २०; १२४, ५५; १६१, २३; ६. ५९, १००; ८५, ८; १०७, ९६; ११४, ६. २६. २८; ११५, १८; ११९, ६७; ७. २८, १५; ३२, ४२; ८३, २८; ८४, ५; १४६, २३; १४८, २५. २७; १५०, ३; १५६, ८. ४७. ५०; १८३, ५९; ८. १९, १; २७, २७. ४२; ३३, ४५; ५६, ४८; ६७, १; ८९, ३७; ९०, ५४; १२. ३७, २७ (? देवस्थानेन जिष्णुना); ११०, २७; १४. ७२, १५; ७३, १३; ७४, ६. १६. २५. २७; ७५, १९; ८०, ४४. ५२; ८४, १९; ८६, ८ (शक्रजं); ८६, ११; ८७, ४; १५. १४, १।

* **तापत्य** (तपती का वंशज, तु० की० तपत्युपाख्यान) : १. १७०, ७९; १७१, १. २ (तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम्); १७१, ५; १७३, ५०।

* **त्रिदशवरात्मज** (इन्द्र का पुत्र); ७. २, १६।

* **देवेन्द्रतनय** (इन्द्र का पुत्र) : ७.।

* **धनञ्जय** (धन का विजेता) १. १, १६३. १७०. १९४; २, ११३. २२१. ३४१; ६२, १०; ६३, ११६; १२६, २५; १३२, ६३. ६६; १३३, १; १३८, ४५. ५७. ५९; १३९, १७. २५; १४१, २०; १४५, ८; १७०, ४. २६. ३३; १७१, ३; १८२, ४; १९०, ४१; १९१, ६; २००, ११; २०५, १६; २१३, ११; २१. २६. ३०; २१४, १५; २१५, ११. १८; २१६, १०. १३; २१७, १८; २२०, १; २२१, १०. १८. ६८. ७४; २२२, ३०; २२८, ४३; २३४, १२; २. ४, ३६ (धनञ्जयसखा चात्र नित्यमास्ते स्म तुम्बुरुः); १५, १३; २१, २६; २४, ४८; २५, ५; २६, २. ३. १०; २७, १. २. ८; ४२, ५; ४५, ४७; ४८, ६. १५; ५२, ३१. ३२; ५३, १३; ६५, १७; ६८, १०; ७१, ३२; ७२, ७; ७७, २६; ७८, १०; ३. १२, १३४; २३, १६; २४, ४. २५; ३४, ७; ३७, ३. १४. ३३. ४२. ५२. ५३; ३८, २; ३९, ३८; ४१, २२. ४६. ४८; ४५, १३; ४६, २; ४८, ६१; ४७, १०; ४८, ५; ५१, ४३; ५२, ४. ५; ७९, २५; ८१, १; ८६, ५; ९२, १. १५; १२०, २५; १४०, २९; १४१, २. ३. १०. २८; १४६, १; १६२, १९. ३१; १६४, १२; १६५, ३; १६६, १. ९. १०. १४; १६७, ८. ५३; १६८, २०. ६८; १७३, ७३; १७४, ११. १७; १७५, ३. ५. १२. २१; १७६, १; १७९, ४८; १८३, १३. २३; २३६, १८. २८; २३७, २०; २३९, १३; २४३, २०; २४४; १६, २०; २४५, ११. १३. २६. २९; २४६, ३. ६. १०; २४८, १३. १४ (धनञ्जयसखाऽऽत्मानं दर्शयामास वै तदा। चित्रसेनः पाण्डवेन समाश्लिष्य परस्परम्॥); २४८, १६; २६८, १७; २६९, ७. २८; २७०, १२, २७१, २७. ५५, ५६; २९२, ५; ३००, २; ३१२, ३२; ३१३, ७. १०. १२; ४. २, १२; ५, ७; ११, १२. १४; १९, १६. १७. १९. २७. ३१; २०, १७; २१, ९; २४, १७; ३७, १७; ३८, ४. ३०. ३४. ३५. ३८. ४०; ३९, २; ४१, ७; ४४, ९ (अर्जुन के १० नामों की गणना); ४४, ११. १३ (व्युत्पत्ति); ४४, २४; ४६, २३; ५०, १०. १५. १७. २६. २८; ५२, १२. १४; ५३, ८; ५५, ६०; ५७, ३. ४३; ५८, ३३; ५९, २०; ६१, ४४; ६२, ९; ६३, २. ४. ५; ६४, १. १०. २०. २८. ४७; ६५, २. ७; ६६, ६. २४. २५; ७१, २९. ३४. ३५; ७२, १०. ३३; ५. ७, २. ६. १५. १७. २१; २०, १८; २१, ६; २२, ३३; २३, ४; २५, २. १४; २६, २६; ३०, ६; ४८, १. २; ४९, ३८. ३९; ५२, १. १५; ५५, ४४. ५३. ५६; ५९, २; ६२, ८; ६४, २६; ६५, ९; ६६, ३. ११. १५; ७७, १९; ८३, ५५; ८७, ११. १२; ९०, ३४. ६६. ७०. ७१. ७४; ९६, ४१. ४८; १०५, ३४; ११७, १७; १२४, ५०; १२९, ४९; १३१, ८; १३७, ९; १३८, १८; १३९, ४. ५. १९; १४१, २३; १४२, ५; १४३, ३७; १४६, ९; १५१, ३९. ४५. ६७. ६९; १५६, १८; १५७, ३०; १५८, २०; १६०, ८०. १०७; १६१, २५; १६२, ४५; १६७, १५; १६९, १९. २४; १९४, ८; १९६, ९. १८; ६. १, १७; १९, ३. १३; २१, ३; २५, १५; २६, ४९; २८, ४१; ३१, ७; ३२, ९; ३४, ३७; ३५, १४; ३६, ९; ४२, २९. ७२; ४३, ६. १४. २८; ४५, ८; ४७, १५; ४८, ११९; ४९, १५; ५०, ४२; ५१, २५; ५२, १६. ३०. ३३. ४१; ५५, १७; ५७, १; ५९, ४७. ५१. ५८. ६१. ८७. १२२. १३३. १३६; ६०, २९; ६६, ३२; ६९, १५. ३३; ७१, १. ८; ७२, २; ७४, ३३; ७५, ६; ८१, २७. ३३; ८२, ५. १०; ८५, १. ६. ७. ९. २५; ९६, १. १७; १०१, ३. ३५. ३८; १०२, १. ३; १०४, १०; १०६, ४३; १०७, ५९. ८४. ८६. १०२; १०९, १२. १९; ११०, २६; ११२, ३०; ११३, ४५. ५१; ११९, ९. ४६. ८०; १२०, ३७; १२१, १७. ४२; १२२, ३१. ३६; ७. २, १२; ३, ७; ७, २६. ३२; ८, २. २५; १०, २३. २६. २८. ३६. ४१. ४७. ४८; ११, ३६; १२, २७; १३, ४; १६, ५२; १७, ३. २८. ३५; १८, ४; १९, ७. ८. २२. २५. २७; २४, १८; २७, २७; २८, १२. २१–२५. २९. ३०; ३०, ६. २१; ३२, ५४; ३४, १०; ३५, १७. २१; ३८, १६; ४२, १८; ५१, ९; ७१, २६; ७३, १७; ७५, १. ८. १३. १५; ७६, २३; ७७, १; ७९, १५. १७. ३०; ८०, १. ३. ८. २२; ८३, २१; ८४, १. ६; ८५, ४९; ८७, ३; ८८, १२. २०; ८९, ५. २७; ९०, १. ११; ९१, २३. २८. ३७; ९३, २. ५. ७. ११. १५–१७. ४५. ५८. ६०; ९४, ७. ९. २०. २४. २६. २७. ३३; ९८, ४१; ९९, २३. ३२. ४१. ४२; १००, ३४; १०१, १. २. १५. ३६. ३९; १०२, १. ७. २८. ३०; १०३, ३३, ३४, ४५. ४८; १०४, ९. ११. १२; १०५, ९; ११०, ६२. ६३. ९४. १०२; १११, ५. ८. ३२. ४१. ४३; ११३, २१. ३२; ११४, ४१, ४५; ११६, ३६; ११९, ७. २३; १२३, २१. ३७; १२४, ४५; १२६, ११. ३६. ४६; १२७, २४. २५; १२८, ३०. ३७. ४०. ४१. ५०; १३०, १४. १६; १३१, १९; १३२, ४१; १३५, १३; १३९, ८५. ११४. ११६. ११९. १२१; १४०, २. ८; १४१, १. ११; १४२, ७. ५८; १४३, ३६. ३८; १४५, २०. २९. ५९. ६८. ७२. ८६. ८८. ९०; १४६, १. ३. १८. २०. ४५. ७१. ९१.९४. १०४; १४७, ६. ५०; १४८, ४. ६; १४९, ५. २५; १५६, ५३. १२०; १५९, ५२. ५९. ६७; १६२, ५१; १६७. ३६; १७०, ६२; १७१, ३१. ४५; १७३, २८. ३६. ४३; १७७, ३३; १८०, ११. १२; १८१, ६. १५; १८२, १८. २१. ३७. ४२.४४. ४५. ४७; १८३, ३०. ५४; १८४, ७; १८६, ७. १५; १८८, ३२; १८९, ६४; १९०, १३; १९१, ४८–५०; १९२, ५७. ६५; १९३, ५९; १९६, ११. २५; १९७, १. १७. ३१; २००, १; २०१, १. ८; २०२, २; ८. २, १८; ३, ११; ५, १६. २५; ८, १५; ९, ४९; १०, २५; ११, २२. ३०; १३, ८; १६, ५. ४६. ४७; १७, २३; १८, १२. १६ (जिघांसुर् इन्द्रावरजं धनञ्जयं; नीलकन्ठी भी देखिये जहाँ 'इन्द्रवरजम्' की कृष्ण के रूप में व्याख्या की गई है); २१, ३; २७, १८. २१. २६; २८, ४८; ३२, ६०; ३६, ५. २०. २४. २५; ३७, ३३; ३८, ३. ६. ११. १४. १८; ३९, १. २. ९. २०. २३. २५. २७.२९.३३; ४०, १०; ४१, ८२; ४२, ११. १३. १९. २६; ४६, २९. ३७. ४३; ५०, ३१; ५३, ४५; ५६, १२३. १४२; ५९, ५२. ५६. ६६; ६०, ६६; ६४, ५९. ६५. ६८; ६५, १. १०; ६६, १. १३–१५. १९; ६८, १. ९; ६९, ३. १७. ३०. ४७; ७०, २५, २९; ७१, १३. १४. १६. ३१. ३२. ३४; ७२, ३८; ७३, ४७; ७४, ५२; ७५, १; ७६, २५. ३०. ३१; ७७, ९; ७९, ३३. ४१. ७४. ७५. ८३. ९१. ९२; ८०, १. २. ४. ७. १२. १६. २४. २६; ८१, ४. ८. २२; ८४, १३. १४. ३६; ८५, २३; ८६, ३; ८७, २. ११. २३. ३९. ४७. ५७. ५९. ६१. १०१. १०५; ८८, ५. १५. १८. २२; ८९, २. २३. ३५. ६७. ७४. ८०. ८८. ९०. ९३; ९०, १. ५६. ६३; ९१, १९. २०. ३०. ४७. ५७; ९२, ५९ ९३, ३०. ३२. ४२; ९४, १३. ३२. ६४; ९६, २. ३०. ५९; ९. ३, १७.

३०. ३३; ४, २३. २४; ९, ३८; १४, २. २१; १६, ४. २५; १९, २४. ३०. ६८; २४, १५; २५. १; २७, २. ३५; २९, ३. ३२; ५८, ७. १६; ५९, ९; ६२, १०. २४; १०. ८, १२५; १२, ५; १४, १२; १५, १. ५. १९. २१; ११. १३, १७; २१, ११; २३, १३; २७, १६; १२. २, ९; ७, ३६. ३९; १९, ७; २५, १; २६, १. ४. ५. ८; ४७, १०५; ५३, १६. १७; ३४२, ७७. ९१. १४२; ३४३, १९; १३. १४८, ५६ (त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेव-धनञ्जयौ); १४९, ८३ (= विष्णु, १००० नामों में से एक); १६८, ३३; १४. १५, १. २; १६, ११; ३४, १२; ५१, ४६. ५१; ५२, ५. ३४ (धनञ्जयगृहानेव); ५२. ३५; ५५, ४; ६२, १३. १८; ७३,५७. ९. ११; ७४, ९. १०. १२. २८. ३०. ३१; ७५, १२. १३; ७६, १९. २१. २२; ७८, १५. १६. २५. ३०. ३९. ४१. ४६; ७९, २. १८. ३५; ८०, ५. ३९. ५६. ५७; ८१, ८. १४; ८२, ४. ५. ३०; ८३, ५; ८४, १८; ८५, ७; ८६, १८; ८७, १२. १३ (यज्ञ-अश्व का अनुसरण करते समय धनञ्जय, अर्थात् अर्जुन के अभियानों का वर्णन); १५. १२, ६; १३, १४; ३१, ११ (वास्तव में = नर); १६. ४, ८; ५, १३; ६, ९. २३; ७, ६. ३४. ४४. ६०. ६४. ६८; ८, ३३; १७. १, ३४. ४२; २, ६ ।

* **नर**—देखिये व० स्था० ।

* **पाकशासनि** (इन्द्र का पुत्र)—देखिये व० स्था० ।

पाण्डव, पाण्डवेय, इत्यादि, **पाण्डुनन्दन**, इत्यादि—देखिये व० स्था० ।

पार्थ (पृथा का पुत्र)—देखिये व० स्था० ।

पौरव (पुरु का वंशज), इत्यादि—देखिये व० स्था० ।

प्रभञ्जनसुतानुज : ७. १४६, ११६ ।

फाल्गुन : १. २, १२१. ३०७; १११, २७; १३२, १९. २१; १३५, ९. १६; १३६, १९. २५. ३६; १३८, २७. ३५; १३९, १४; १५०, १७; १९०, २०; १९१, ७; २०१, १३; २. २४, ५५; २७, ७. २३; ४६, २३; ६५, २१; ३. १२, ९; ३४, १६; ३७, ५९; ३८, ३२; ३९, ८. ११. १२. ४५. ५३. ६२. ६८. ७२. ८३; ४०, २५; ४१, २४; ४२, ३७; ४५, २. १६; ४६, १६. २१. ६०. ६३; ४८, १२; ४९, ७. २२; ५१, १९; ८०, २२; १४१, १२. १९; १६२, १८ (भीमसेनाद् अवरजः); १६६, ११; १६८, १९. ७८; १८३, १०; २३८, ८; २५२, ३६; २५७, १८, २७१, ५८; २७२, ६; ३०२, ७; ३०९, १९; ४. ४, ८; २१, १; ३९, १४; ४४, ९ (अर्जुन के १० नामों की गणना); ४४, ११. १६ (उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा । जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः ॥); ५७, ३८; ५८, २६. २८. ५०; ६४, १७; ६६, ३०; ६७, १७. २१; ५. २२, १६; २६, २३; २९, ४४. ५०; ५२, ८; ५४, १२; ५६, १५; ८०, ३; १६०, १११. ११२. ११७. ११९ (फाल्गुनानां शतानि वा); १६१, २९. ३५. ३७ (फाल्गुनानां शतानि वा); १६२, ३७. ६०; १६५, १; १६८, ७; १९४, ७; ६. १५, १९; १९, १३; ५२, ३८; ५८, १. ४. ६; ५९, १२८; ७३, ४. ७; ९०, ५०; ९३, १०; १००, १८ (द्विफाल्गुनमिमं लोकम्); १००, २३; १०४; १२; १०६, ७५; १०७, २९. ३३. ३७; ११२, ३८ (द्वितीय इव फाल्गुनः); ११४, २३, ११७, २६. ३०, ११८, ४२. ११९, १७. ११. २०. २५; २८. ५८. ८७; १२०, ४१. ४३; १२१, ५२; १२२, १६; ७. १२, २८; १७, ४६; १९, ९; २३, ९२; २७, २६; ३२, ४४; ३३, १. ४; ३५, १३; ७३, ५१; ७४, ८. २३; ७९, ५; ८९, २३; ९१, १२; ९२, ६१; ९३, २४; ९४, २४; १०४, २८; ११०, ७४; १११, ९. ३७; ११२, २; ११८, २; १२०, २९; १२१; १०, १२२, १५. १८; १२६, ९. २३. २४; १२७, १२. ४४; १२८, ३६. ४२. ४३. ५२; १४१, १६. १७; १४३, ३९; १४५, १९. ४७. ६५. ६७. ७४. ७६; १४६, ५७. १३८; १४७, ३; १४८, २; १५१, २५; १५२, ६. १०; १५६, ३९. ४८; १५८, ८. १८. २३. ४५; १५९, १२. १८. ४८. ५८. ७३. ७४. ७५. ७७. ७९; १६०, ५६; १७२, २३; १७३, २४; १७९, ५३; १८२, ३. ४. ३४. ४१; १८३, ३. ५८; १८४, ३१; १९८, ६३; ८. १, १६; ९, ७. ५६; १०, २७; ११, २६; २४, ५०; ३१, ५१. ६५; ३४, १२१; ३५, २५. ३८; ३९, १४; ४०, ९. १९ (फाल्गुनानां शतानि वा); ४२, ४. २८; ४९, ११; ५०, २९; ५३, ३३; ५६, १३४; ६३, १६; ६४, ३०; ६६, ३६. ४७; ६८, १; ७०, ४२; ७१, १८; ७२, ४; ७४, १९; ७९, ६८; ८०, २३; ८७, ७. १३; ८४, ४०; ८६, १८; ८७, ७२; ८८, ३३; ८९, ७६; ९०, २७; ९१, १७. ५६; ९६, ३६; ९. २७, १३; ३२, १४. ६७; ३३, १३; ६३, १९; १२. १, ३२; २, ६. १२; २०, २; ४१, १३; ५३, १४; ३४१, ३. ४; १४. १४, १२; १६, ८; ५१, ५०; ५२, ४७; ५३, २; ६६, १९; ७२, २१; ७६, ८; ७७, २०; ७८, ७. ९. २१; ७९, ३; ८२, २८; ८७, १५. २३; ८८, १०; १५. ११, ८. १६; १२, ३; १५, ८; १६. ७, २८; १७. १, ३९; २, २२; १८. ४, ४; ५, १९ (फाल्गुनस्य सुतो, अर्थात् अभिमन्यु) ।

* **बीभत्सु** १. ६१, ४३. ४६. ४८; १२३, ५३; १३३, १४. २२; १३५, १८; १३६, ११; १३९, ८; १७०, ५७; २१८, ३; २२१, ७७; २२२, १४; २२४, १३; २२७, १. ११. २६; २. १३, १०; ५३, २०; ७०, १०; ३. १२, ९१. १२८; २३, १३; ३२, ४५; ३३, १२; ३५, १२; ४७, ३२; ५२, ८. ४९; ८६, १४. १६; ९१, १५; १४१, १५; १५५, ३४; १५८, ३; १६७, १; २३९, १४; ३१२, २०. ३४; ४. २, १९; १३, ४२; ३६, १४; ३७, ३२; ३८, ५०; ४०, ४. ८; ४४, ९ (अर्जुन के १० नामों की गणना); ४४, ११. १८ (व्युत्पत्ति); ४६, ६; ४७, ४. ५. ८. १५. २२; ४८, २. ६. २१; ५२, ५. १८; ५३, १७. २०; ५५, ३. ७. १६. २१; ६०, १७. २४; ६१, ३७. ४६; ६३, ८; ६४, ४; ६६, २१; ७२, १५; ५. २९, ४४; ५६, ३; ७२, ९१; ७७, १९; ७९, २; ८०, १२; ८३, ५०; ९०, ४९; १३७, ६; १३९, ६; १४१, ३०; ६. १९, २२; ४९, ४०; ५९, ४५; ७३, १५; ८४, ५१; १०६, ३३. ३८; १०७, ८७; ११२, १५; ११३, ४९; ११७, ३७; ११८, ४४; ११९, ४२. ४५. ५४; १२०, ५०; १२१, २७. २९; ७. १०, १४; ११, ३९; १६, ५१; १९, १६. ३५; ३०, ८; ५१, १४; ७२, ६०. ८४; ७९, ४१. ४२; ८०, ४. १०; ९१, ७. २४. ३५; ९२, ८. ३३; ९३, १९. ३७; ९९, २०; ११०, ८४; ११२, ४; १३०, ४४; १४५, १०. २१. ३७. ४०; १४६, ६७. १३१; १४८. २५; १५६, ४०. ५२; १५७, ४६; १५९, ४४. ४७. ५०; १६१, १३; १७१, ३५; १७३, ५९; १७८, ८; १८२, ४३; १८४, २५; १८६, ९; १९५, २९; १९७, २२. २४. ३४; १९९, ५२; २०१, ९. १२; ८. ६, ९; ३५, १६; ४६, ८. ५७; ५३, २२; ५८, ७; ६४, २३. ३१; ७१, २७. २९. ३०; ७४, १; ७६, १३; ७९, ६; ८०, २२; ९१, ३१; ९३, १०; ९. ३, १०; ४, १५; १४, २७; २९, ४; ११. १४, १७; २३, २८; २४, १३; १२. २३, २; २७, २१; १४. ६०, २०; ७४, १५; ७५, ८; ७७, ४. १०; ७८, ३१; ८४, ३. २०; ८७, ६; १५. ११, १५; १३, ३. ६; १६. ६, १९. २३; ७, १ ।

* **बृहन्नला** (वह नाम जिसे महाराज विराट के महल में अज्ञातवास करते समय अर्जुन ने धारण किया था) : ४. २, २७; ११, ९-११; २४, २०. २१. २३; ३६, १६. २०. २३; ३७, ८. १०. १२. १८. २०. २२. २५. २७. २८. ३१. ३३. ३४; ३८, १९. २६. २९. ४२. ४४; ४१, ३. ४; ४२, १८; ४३, १; ६७, १५. २३; ६८, ७. ९. १५. २१. ३७. ४२. ५२. ५४. ६६ ।

* **भारत** (भरत की सन्तति), व० स्था० ।

* **भीमसेनानुज** (भीमसेन का छोटा भाई) : ५. १६६, १२ ।

* **भीमानुज** (भीम का छोटा भाई) : ४. ५४, ९ ।

* **महेन्द्रसूनु** (इन्द्र का पुत्र), व० स्था० ।

* **महेन्द्रात्मज** (इन्द्र का पुत्र), व० स्था० ।

* **वानरकेतन** (= कपिध्वज) : १४. ८१, २९; ८२, १२ ।

* **वानरकेतु** (= कपिध्वज) : ५. १३८, ८ ।

* **वानरध्वज** (= कपिध्वज) : ६. ११७, ३९ ।

* **वानरवर्यकेतन** (= कपिध्वज) : १४. ५२, ५६ ।

* **वासवज** (इन्द्र-पुत्र) : ४. ५४, १५ ।

* **वासवनन्दन** (इन्द्र का पुत्र), देखिये **वासवज** ।

* **वासवस्यात्मज** (इन्द्र का पुत्र) : ७. ४१, २६ (वासवस्यात्मजात्मजः, = अभिमन्यु) ।

* **वासवि** (इन्द्र का पुत्र) : ५. १५१, १८; ७. २८, ५; ३१, २८; ७३, १८; ७६, २६; १२. ३३९, ९९; १६. ५, ११ ।

* **विजय** (जय) १. १३२, २२; ३. २५७, २२; ३१२. २०; ४. ५, ३५ (विराट के यहाँ अज्ञातवास करते समय युधिष्ठिर द्वारा प्रदत्त पाँच गुह्यनामों में से एक); २३, १२ (जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः); ४४, ९ (अर्जुन के दस नामों की गणना); ४४, १०; ४, १४ (व्युत्पत्ति); ५. ५०, २८; १५४, १९; ६. ८२, २; ९९, ११; ११७, १९; ७. १०, २०; ७९, ४४; ११०, ३८. ५४. ६९; १५६, १६९; १५९, ५३; १७२, २०; ८. ५६, १४२; ६२, २; ७१, २०; ९. १२, ३७; १२. १, ३०; २९, ४; १४. १४, ३; ६७, ३; ६९, २१; ७४, २१. २२; ७५, १८; ८०, १३; ८१, २१; ८३, ६. १२; ८५, ३; ८७, २. ३. १४; १५. १७, ७; ३८, १० (युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च) ।

* **शक्रज** (इन्द्र का पुत्र) : १४. ८६, ८ ।

* **शक्रनन्दन** (इन्द्र का पुत्र) : ३. ४६, २७ ।

* **शक्रसुत** (इन्द्र का पुत्र) : ६. ८५, ३ ।

* **शक्रसूनु** (इन्द्र का पुत्र) : ६. १०४, ३; ७. ४५, २; ८. ६६, ३७; ७०, ३० ।

* **शक्रात्मज** (इन्द्र का पुत्र) : ३. ४२, ११; १६५, १०; ७. १५२, ६; १४. ७९, २४ ।

* **शाखामृगध्वज** (= कपिध्वज) : ७. १३९, १११ ।

* **श्वेतवाह** (श्वेत घोड़ों से युक्त) : ३. १४०, ८; ५. १६६, १२; १२. १, ३० ।

* **श्वेतवाहन** (श्वेत घोड़ों से युक्त) : १. २००, १०; ३. १२९, १९; १४०, २२; ४. ४३, ६; ४४, ९ (अर्जुन के दस नामों की गणना); ४४, १०. १५ (व्युत्पत्ति); ५३, १६; ७. ९२, २७. ३४; १५२, १६; १६४, १३; ८. ८७, १०३; १२. १, २५; १४. ७७, २; ८३, १; १७. २, १८ ।

* **श्वेतहय** (श्वेत घोड़ों से युक्त) : ५. ५४, १३; ७. २८, ३; ८. ८५, ३९ ।

* **श्वेताश्व** (श्वेत घोड़ों से युक्त) : २. ४७, २२; ३. १४१, ११; ६. ११६, ८०; ११७, १९; ७. ११९, ११; ८. २७, १; ३४, १२३; १०. १२, २६; १४. ७३, २३; ७५, ९; १५. ३, १४ ।

* **सव्यसाचिन्** : १. १, २००; २, १८४; २२७, ३. ४६; २२८, २८; २. ८०, २. ५. १६; ३. ४, १०; १२, ११५; ८०, १५; ९१, ६; १६८, १५; २५२, २२; ३०१, १६; ४. ३८, १६; ३९, ११; ४४, ९ (अर्जुन के दस नामों की गणना); ४४, १९ (व्युत्पत्ति); ५. २२, १३; ५७, ६१; ५९, २३; ६४, २३; ९०, ६५; ९५, २०; १३७, ६; १४१, १६. १८. ३१. ४६; १४२, १३; १४६, २२; १५१, १८; १५४, २३. २६; १६०, ६०; १६३, ९; ६. ३५, ३३; ५०, १६; १०८, ५१; ७. ७५, १४; ७९, १९. ३३; ८५, २; ८८, ४; ९४, २; ११४, २६; ११९, ६; १२१, २; १२८, ४०; १३०, २७; १३९, ९०; १४७, ३२; १५९, ५२; ८. ५, ३६. ३९. ४१; १७, १७; १८, २१; ४१, ७५; ७६, २३; ८९, ४०. ५४; ९. १, १; ३, ८. ४२; ४, २९; १४, २८; २४, ५१. ५५. ५६; २५, २९; २९, ५ (लोकवीरेण); ६२, २६; ११. २१, ५; १४. १५, १२; ६०, ९; ७२, २५; ७४, २३ (सव्यसाचिकराद्); ७७, ११; ८१, १४; ८२, १४. १७; १५. २, ७; २९, ५१ (मातरं सव्यसाचिनः); ३८, ११. १२; १६. ४, १२; १७. १, ५; १८. २, ३५; ३, ३८ ।

* **सुरसूनु** (देवपुत्र) : ३. ८६, ७ ।

३. अर्जुन, यम की सभा में उपस्थित एक ऋषि का नाम है (२. ८, १७) ।

अर्जुनक, एक व्याध का नाम है । इसका गौतमी, सर्प, मृत्यु और काल के साथ संवाद (१३. १, १८. २१. ३५. ६१. ६९. ७१. ७७. ७९. ८०) ।

अर्जुननन्दन = अभिमन्यु (७. ३८, १३) ।

अर्जुनदायाद = अभिमन्यु (६. ६१, १०; ७. १४, ७६) ।

अर्जुनपूर्वज = भीमसेन (६. ९६, ३४) ।

अर्जुनवनवासपर्वन्, महाभारत के १६ वें अवान्तर पर्व का नाम है जो आदिपर्व के २१३वें से लेकर २१८वें अध्यायों तक आता है। "नारद जी के आदेशानुसार द्रौपदी के सम्बन्ध में नियम बनाकर पाण्डव लोग इन्द्र-प्रस्थ में रहने लगे । वे अपने अस्त्र-शस्त्र के प्रभाव से अनेक राजाओं को अपने अधीन करते रहते थे । एक दिन कुछ चोरों ने एक ब्राह्मण की गायें चुरा लीं । इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह ब्राह्मण खाण्डव-प्रस्थ में आकर उच्च स्वर से पाण्डवों को रक्षा के लिये पुकारने लगा । अर्जुन ने ब्राह्मण की पुकार सुनी । परन्तु पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र जहाँ रक्खे थे वहीं धर्मराज युधिष्ठिर कृष्णा के साथ एकान्त में बैठे थे, अतः अर्जुन न तो घर के भीतर प्रवेश कर सकते थे और न खाली हाथ चोरों का ही पीछा कर सकते थे । फिर भी, ब्राह्मण की आर्त पुकार सुनकर अर्जुन घर के भीतर प्रवेश करने के नियम को भङ्ग करके अन्दर चले गये और अपने धनुष को ले लिया । तदुपरान्त धनुष और कवच धारण करके अर्जुन ने ध्वजायुक्त रथ पर आरूढ़ होकर चोरों का पीछा किया और समस्त गोधन विजित कर लिया । ब्राह्मण को गोधन लौटा देने के पश्चात् अर्जुन ने नियम-विरुद्ध कक्ष में प्रवेश करने के कारण, युधिष्ठिर के रोकने पर भी, बारह वर्ष के वनवास के लिए प्रस्थान किया (१. २१३) ।" "अर्जुन जब वन में जाने लगे तो अनेक वेदज्ञ ब्राह्मण उनके साथ हो लिये : वेद-वेदाङ्गों के विद्वान्, अध्यात्म-चिन्तन करने वाले, भिक्षा-जीवी ब्रह्मचारी, भगवद्भक्त, पुराणों के ज्ञाता सूत और कथा वाचक, संन्यासी, वानप्रस्थ, तथा मधुर स्वर से दिव्य कथाओं का पाठ करने वाले ब्राह्मण, आदि सभी अर्जुन के साथ गये । धीरे-धीरे चलकर वे सब लोग गंगाद्वार पहुँचे और अर्जुन ने वहीं अपना डेरा डाला । गङ्गाद्वार में ब्राह्मणों ने अनेक स्थलों पर अग्निहोत्र के लिए अग्नि प्रकट की । एक दिन गंगा में स्नान तथा पितरों का तर्पण करने के पश्चात् अग्निहोत्र के लिये जल लेकर अर्जुन ज्यों ही जल से निकलना चाहते थे कि नागराज की पुत्री उलूपी ने उनके प्रति आसक्त होकर पानी के भीतर से ही उन्हें खींच लिया । नागराज कौरव्य के परम सुन्दर भवन में पहुँचकर अर्जुन ने एकाग्रचित्त होकर देखा तो वहाँ अग्नि प्रज्वलित हो रही थी । उस समय अर्जुन ने उसी अग्नि में अपना अग्निहोत्र-कार्य सम्पन्न किया, जिससे अग्निदेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए । तदुपरान्त अपना परिचय देते हुये उलूपी ने अर्जुन से कहा, 'युधिष्ठिर ने धर्म की रक्षा के लिये केवल द्रौपदी को ही निमित्त बनाकर एक दूसरे के प्रवास का नियम बनाया था, अतः यहाँ आपका धर्म दूषित नहीं होता । यदि आपके इस धर्म का थोड़ा व्यतिक्रम हो भी जाय तो भी मुझे प्राणदान देने से आपको महान् धर्म होगा ।' उलूपी के इस प्रकार कहने पर अर्जुन ने धर्म को ही सामने रखकर

उसका मनोरथ पूर्ण किया। वह रात्रि नागराज के भवन में ही व्यतीत करने के पश्चात् सूर्योदय होने पर उलूपी के साथ अर्जुन पुनः गङ्गाद्वार आ पहुँचे। अर्जुन से विदा लेते हुए उलूपी ने उन्हें यह वरदान दिया कि वे जल में सर्वत्र अजेय और सभी जलचर उनके वश में रहेंगे (१. २१४)।" "रात्रि की समस्त घटना को ब्राह्मणों से कहकर अर्जुन हिमवत् पर्वत के निकट चले गये। वहाँ उन्होंने अगस्त्यवट, वसिष्ठ पर्वत, तथा भृगुतुङ्ग पर शौच और स्नानादि किये तथा ब्राह्मणों को कई सहस्र गायें दान कीं। तत्पश्चात् हिमालय से नीचे उतरकर अर्जुन अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुए, अङ्ग, वङ्ग, और कलिङ्ग देशों के भी सभी पवित्र तीर्थों में गये। कलिङ्ग राष्ट्र के द्वार पर पहुँच कर अर्जुन के साथ चलनेवाले ब्राह्मण उनसे अनुमति लेकर वहाँ से लौट आये। कलिङ्ग देश के पश्चात् अर्जुन तपस्वी मुनियों से सुशोभित महेन्द्र पर्वत का दर्शन और समुद्र-तट के क्षेत्रों में यात्रा करते हुए धीरे-धीरे मणिपुर पहुँचे। मणिपुर में अर्जुन ने राजा चित्रवाहन की पुत्री चित्राङ्गदा के साथ विवाह किया और तीन वर्ष तक वहीं रहे। जब चित्राङ्गदा के गर्भ से एक बालक उत्पन्न हो गया तब अर्जुन पुनः अपनी यात्रा पर निकल पड़े (१. २१५)।" "तदुपरान्त अर्जुन दक्षिण समुद्र के तट पर स्थित पवित्र तीर्थों में गये। वहाँ उन दिनों तपस्वी लोग पाँच तीर्थों को छोड़ देते थे। इन तीर्थों के नाम यह हैं: अगस्त्य तीर्थ, सौभद्र तीर्थ, परम पावन पौलोम तीर्थ, अश्वमेध यज्ञ का फल देने वाला कारन्धम तीर्थ, तथा पापनाशक भारद्वाज तीर्थ। अर्जुन के उन तीर्थों के परित्याग का कारण पूछने पर मुनियों ने बताया कि इनमें पाँच घड़ियाल रहते हैं जो स्नान करनेवाले ऋषियों को जल के भीतर खींच ले जाते हैं, जिसके कारण ही मुनियों ने इनका त्याग कर दिया है। मुनियों की बात सुन कर अर्जुन महर्षि सुभद्र के उत्तम सौभद्र तीर्थ में सहसा उतर कर स्नान करने लगे। इतने ही में जल के भीतर विचरण करने वाले ग्राह ने अर्जुन का पैर पकड़ लिया, परन्तु अर्जुन उस जलचर को लिये-दिये पानी के बाहर निकल आये। पानी के ऊपर खिंच आने पर वह ग्राह समस्त आभूषणों से विभूषित एक सुन्दर नारी के रूप में परिणत हो गया। उसने बताया कि वह नन्दनवन में विहार करने वाली वर्गा नामक एक अप्सरा है। अर्जुन के उसके ग्राह बन जाने का कारण पूछने पर उसने कहा, 'मैं एक दिन अपनी चार अन्य सखियों के साथ कुबेर के घर जा रही थी। मार्ग में एक तपस्वी ब्राह्मण को देखकर हम सब (वर्गा, सौरभेयी, समीची, बुद्बुदा और लता) उनके तप में विघ्न डालने की इच्छा से वहाँ उतर पड़े। वह ब्राह्मण तपस्या से विरत नहीं हुये और साथ ही हमारी उद्दण्डता पर कुपित होकर हम सब को सौ वर्ष तक जल में ग्राह बनकर रहने का शाप दे दिया', (१. २१६)।" "वर्गा ने बताया कि 'हम सब उन ब्राह्मण से क्षमा माँगने के लिये गये। उन ब्राह्मण ने कहा कि शत और शतसहस्र शब्द अनन्त संख्या के वाचक हैं, परन्तु उन्होंने जिस 'शतं समाः' शब्द का प्रयोग किया है उसमें शत शब्द शतवर्ष के परिमाण का ही वाचक है अनन्त का नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि हम सब को कोई श्रेष्ठ पुरुष जल से बाहर खींच लायेगा, उस समय हम सब को अपना दिव्य रूप पुनः प्राप्त हो जायगा। हमारा उद्धार हो जाने के पश्चात् वह स्थान नारी तीर्थ के नाम से विख्यात होगा। ब्राह्मण को प्रणाम करने के पश्चात् जब हम आगे बढ़े तो नारद के दर्शन हुये और उन्हीं ने हम सबको दक्षिण समुद्रतट के समीप स्थित इन पाँच तीर्थों में भेजा। नारद जी ने ही हमें यह बताया था कि अर्जुन शीघ्र ही आकर हमें इस दुःख से मुक्त करेंगे।' वर्गा की बात सुनकर अर्जुन ने अन्य चार अप्सराओं को भी मुक्त किया और तदुपरान्त चित्राङ्गदा से मिलने मणिपुर चले गये। अर्जुन ने चित्राङ्गदा के गर्भ से बभ्रुवाहन को उत्पन्न किया। तदनन्तर अर्जुन ने गोकर्ण की ओर प्रस्थान किया (१. २१७)।" "अर्जुन समस्त पश्चिम-तटवर्त्ती पुण्य तीर्थों में भ्रमण करते हुये प्रभास तीर्थ में पहुँचे। इसी तीर्थ में मधुसूदन (श्रीकृष्ण) अर्जुन से मिलने आये। दोनों ने एक दूसरे को हृदय से लगाकर कुशल समाचार पूछा। तदनन्तर वे दोनों मित्र, जो नर और नारायण के अवतार थे, एक साथ ही कुछ दिनों तक घूमते रहे। वहाँ से वे दोनों रैवतक पर्वत पर गये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से उनके सेवकों ने पहले से ही उस पर्वत को सुसज्जित करके भोजन आदि तैयार कर रक्खा था। भोजनोपरान्त श्रीकृष्ण और अर्जुन ने वहाँ नटों और नृत्यकों के नृत्य देखे। दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों ही द्वारका पुरी को गये। अर्जुन के द्वारका पहुँचने पर भोज, वृष्णि और अन्धक वंश के लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। इसके बाद अनेक प्रकार के रत्न तथा भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थों से रमणीक श्रीकृष्ण के भवन में अर्जुन ने अनेक रात्रियों तक निवास किया (१. २१८)।"

अर्जुनसुत : ६. ९०, ५२ (= इरावत्); ६. १००, ५० (=अभिमन्यु)।

अर्जुनस्यवनवासः (अर्जुन का वन में निवास), १. २, ८८ (= अर्जुन वनवासपर्वन्)।

अर्जुनस्यवनेवासः (अर्जुन का वन में निवास), १. २, ४५ (= अर्जुन वनवासपर्वन्)।

अर्जुनस्याभिगमन (इन्द्र के स्वर्गलोक में अर्जुन का आगमन), १. २, ५० (पर्व = अर्जुनाभिगमनपर्वन्)।

अर्जुनाग्रज = भीमसेन (१. १३८, ३४)।

१. अर्जुनात्मज = अभिमन्यु (७. ३५, २८; ३७, ७; ३८, १०; ४५, ५; ४८, ९)।

२. अर्जुनात्मज = इरावत् (६. ९०, ९. ७८)।

अर्जुनद्वार (अर्जुन से श्रेष्ठ): ७. ३६, १२।

अर्जुनाभिगमनपर्वन्, महाभारत के एक अवान्तर पर्व का नाम है जो वनपर्व के १२ से ३७ अध्यायों तक आता है: "पाण्डवों के वनवास का समाचार सुनकर भोज, वृष्णि, अन्धक, पञ्चाल के वंशज, चेदिराज, धृष्टकेतु, और कैकेय के भ्राता आदि उनसे मिलने के लिये आये। जब श्रीकृष्ण ने कहा कि धरती दुर्योधन के रक्त का पान करेगी, तब अर्जुन ने उनके पूर्वजन्मों का वर्णन करते हुये उन्हें शान्त किया। तदुपरान्त श्रीकृष्ण की आत्मा, अर्जुन, चुप हो गये और जनार्दन ने कहा कि वह और अर्जुन एक ही हैं। तब धृष्टद्युम्न, तथा अपने अन्य भ्राताओं से घिरी हुई पाञ्चाली ने, कृष्ण की स्तुति की। तदुपरान्त द्रौपदी ने, अपने को कौरवों के सभाभवन में घसीट कर लाये जाने के लिये श्रीकृष्ण और पाण्डवों को दोषी ठहराया। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को सान्त्वना देते हुये उसके अपमान का बदला दिलाने का आश्वासन दिया। धृष्टद्युम्न ने कहा कि वे द्रोणाचार्य का, शिखण्डिन् भीष्म-पितामह का, भीमसेन दुर्योधन का, और अर्जुन कर्ण का वध करेंगे; उन्होंने यह भी बताया कि राम और श्रीकृष्ण की सहायता से इन्द्र भी उन लोगों को परास्त नहीं कर सकते (३. १२)।" "श्रीकृष्ण का जूये का दोष बताते हुये पाण्डवों पर आई विपत्ति के लिये अपनी अनुपस्थिति को कारण मानना। श्रीकृष्ण ने कहा यदि वे द्वारका में उपस्थित रहे होते तो आकर जूये को अवश्य रोकते चाहे इसके लिए उन्हें धृतराष्ट्र को समझाना अथवा शक्ति का ही प्रयोग करना पड़ता। उन्होंने कहा द्वारका लौटते ही युयुधान से सारा समाचार प्राप्त कर वे तत्काल पाण्डवों से मिलने वहाँ आये (३. १३)।" "सौभवधोपाख्यान: द्यूत के समय न पहुँचने में श्रीकृष्ण के द्वारा शाल्व के साथ युद्ध करने और सौभ-विमान सहित उसे नष्ट करने का संक्षिप्त वर्णन (३. १४)।" "सौभ-नाश की विस्तृत कथा के प्रसङ्ग में द्वारका में युद्ध-सम्बन्धी रक्षात्मक तैयारियों का वर्णन (३. १५)।" शाल्व की विशाल सेना के आक्रमण का यादव सेना द्वारा प्रतिरोध, साम्ब द्वारा क्षेमवृद्धि की पराजय, वेगवान का वध, तथा चारुदेष्ण द्वारा विविन्ध्य दैत्य

का वध एवं प्रद्युम्न द्वारा सेना को आश्वासन (३. १६)। प्रद्युम्न और शाल्व का घोर युद्ध (३. १७)। मूर्च्छावस्था में सारथि के द्वारा रणभूमि से बाहर लाये जाने पर प्रद्युम्न का अनुताप और इसके लिये सारथि को उपालम्भ देना (३. १८)। प्रद्युम्न के द्वारा शाल्व की पराजय (३. १९)। श्रीकृष्ण और शाल्व का भीषण युद्ध (३. २०)। श्रीकृष्ण का शाल्व की माया से मोहित होकर पुनः सजग होना (३. २१)। शाल्ववधोपाख्यान की समाप्ति और युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न, तथा अन्य सब राजाओं का अपने-अपने नगरों के लिये प्रस्थान (३. २२)। पाण्डवों का द्वैतवन में जाने के लिए उद्यत होना और प्रजावर्ग की व्याकुलता (३. २३)। पाण्डवों का द्वैतवन में जाना (३. २४)। महर्षि मार्कण्डेय का पाण्डवों को धर्म का आदेश देकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान (३. २५)। दल्भपुत्र बक का युधिष्ठिर को ब्राह्मणों का महत्त्व बतलाना (३. २६)। द्रौपदी का युधिष्ठिर से उनके शत्रुविषयक क्रोध को उभाड़ने के लिए संताप-पूर्ण वचन (३. २७)। द्रौपदी द्वारा प्रह्लाद-बलि संवाद का वर्णन—तेज और क्षमा के अवसर (३.२८)। युधिष्ठिर के द्वारा क्रोध की निन्दा और क्षमाभाव की विशेष प्रशंसा (३. २९)। दुःख से मोहित द्रौपदी का युधिष्ठिर की बुद्धि, धर्म एवं ऐश्वर्य के न्याय पर आक्षेप (३. ३०)। युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी के आक्षेप का समाधान तथा ईश्वर, धर्म और महापुरुषों के आदर से लाभ और अनादर से हानि (३. ३१)। द्रौपदी का पुरुषार्थ को प्रधान मानकर पुरुषार्थ करने के लिए जोर देना (३. ३२)। भीमसेन का पुरुषार्थ की प्रशंसा करना और युधिष्ठिर को उत्तेजित करते हुये क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध छेड़ने का अनुरोध (३. ३३)। धर्म और नीति की बात कहते हुए युधिष्ठिर की अपनी प्रतिज्ञा के पालन रूप धर्म पर ही डटे रहने की घोषणा (३. ३४)। दुःखित भीमसेन का युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्साहित करना (३. ३५)। युधिष्ठिर का भीमसेन को समझाना, व्यासजी का आगमन और युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या प्रदान करना तथा पाण्डवों का पुनः काम्यक वन गमन (३. ३६)। अर्जुन का सब भ्राताओं आदि से मिलकर इन्द्रकील पर्वत पर जाना तथा इन्द्र का दर्शन करना (३. ३७)।

अर्णवालय = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्थ (लाभ), धर्म और श्री के पुत्र का नाम है (१२. ५९, १३२. १३३)। १२. ३८४, १३३ (= शिव, सहस्र नामों में से एक); १३. १७, ५३ (= शिव, सहस्र नामों में से एक); १३. १४९, ५९ (= विष्णु, सहस्र नामों में से एक)।

अर्थकर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्थशास्त्र—'अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं', (१. २, ३८३)। 'अर्थशास्त्रपरो राजा धर्मार्थावधिगच्छति।' (१२. ७१, १४)। 'एतौ धर्मार्थशास्त्रेषु', (१२. १३७, २३)। 'निश्चयः स्वार्थशास्त्रेषु विश्वासश्चासुखोदयः।', (१२. १३९, ७०)। 'अर्थशास्त्रविशारदः', (१२. १६७, १०)। 'यच्चार्थशास्त्रागममन्त्रविद्भिः', (१२. २०१, ५; ३०१, १०९)। 'स्त्रीणां बुद्ध्यर्थनिष्कर्षादर्थशास्त्राणि' (१३. ३९, १०)।

अर्दन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्द्रचर्मन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्धकील, दर्भीमुनि द्वारा प्रकट किये हुये एक तीर्थ का नाम है (३. ८३, १५३)।

अर्धचन्द्रव्यूह, एक व्यूह-रचना का नाम है, जिसका अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने निर्माण किया था (६. ५६, ११)।

१. अर्धमास = स्कन्द

२. अर्धमास, स्कन्द के अभिषेक में पधारने वालों में यह भी थे (९. ४५, १५)।

१. अर्बुद, एक नाग का नाम है जो अन्य नागों के साथ अतीतकाल से गिरिव्रज में निवास करता था (२. २१, ९)।

२. अर्बुद, एक ऐसे तीर्थ का नाम है, जहाँ पहले पृथिवी में विवर था (३. ८२, ५५)।

१. अर्यमन्, बारह आदित्यों में से एक का नाम है (१. ६५, १५)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर इनके आगमन का उल्लेख (१. १२३, ६६)। अर्जुन और श्रीकृष्ण पर घोर परिघ द्वारा इनका आक्रमण (१. २२७, ३५)। इन्द्र की सभा में इनकी उपस्थिति (२. ७, २१)। श्रीकृष्ण ने कहा कि 'मैं पितरों में अर्यमा नामक पितर हूँ' (६. ३४, २९)। स्कन्द के अभिषेक में द्वादश आदित्यों के साथ यह भी पधारे थे (९. ४५, ५)। पूर्वकाल में इन्द्र, अग्नि, और अर्यमन् ने यमुना के तट पर स्थित मित्रावरुण के पवित्र आश्रम पर अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी (९. ५४, १५)। द्वादश आदित्यों में इनकी गणना (१२. २०८, १५)। इनके शिव द्वारा उत्पन्न हुये होने का उल्लेख (१३. १८, ७१)। बारह आदित्यों में से एक यह भी हैं (१३. १५०, १५)।

२. अर्यमन् = सूर्य : धौम्य द्वारा वर्णित सूर्य के १०८ नामों में से एक (३. ३, १६)। 'दक्षिणेन च पन्थानमर्यम्णो ये दिवं गताः। एतान् क्रियावतां लोकानुक्तवान्पूर्वगप्यहम्॥', (१२. २६, ९)। प्रजापतियों का वर्णन करते हुए भीष्म ने बताया कि अर्यमन् तथा उनके समस्त पुत्र सम्पूर्ण प्राणियों के शासक तथा स्रष्टा थे (१२. २०८, १०)।

३. अर्यमन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अर्वावसु, युधिष्ठिर की सभा में विराजने वाले एक ऋषि का नाम है (२. ४, १०)। रैभ्य के, अर्वावसु और परावसु नामक दो पुत्र थे (३. १३५, १३)। अपने भ्राता परावसु के द्वारा छले जाने के कारण वन में जाकर सूर्य सम्बन्धी रहस्य-वेद का अनुष्ठान किया जिससे सूर्य ने अर्वावसु को साक्षात् दर्शन दिया (३. १३८, २. १०. ११. १४. १९)। 'अर्वावसु-परावसू', (१२. २०८, २६; ३३६, ७; १३. १५०, ३०)।

१. अर्ह = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

२. अर्ह, एक मनुष्य का नाम है। युधिष्ठिर को भेंट देने वाले लोगों में एक यह भी थे (२. ५२, ३)।

अलकनन्दा, देवलोक की गङ्गा का नाम है। गंगा जी देवलोक में विचरण करने से अलकनन्दा, पितृलोक में वैतरणी, और इस लोक में गंगा कहलाती हैं (१. १७०, २२)।

अलका, कुबेर की नगरी और पुष्करिणी का नाम है (१. ८५, ९; २. १०, ८)।

अलकाधिप = कुबेर : 'महेश्वरसखम्', (९. ११, ५५); १२. ७४, ४. १५ (= वैश्रवण)।

अलम्बतीर्थ, एक तीर्थ का नाम है जहाँ के दिव्य-वृक्ष अपनी सुवर्णमय शाखाओं से युक्त, एवं अन्य वृक्ष स्वर्ण और रजतमय फलों से सुशोभित वैदूर्यमणि की शाखाओंवाले थे (१. २९, ३९)।

अलम्बुष, एक राक्षस का नाम है जिसके वंश क्रम को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया गया है। इसके वध का वर्णन (१. २, २६३)। 'अलम्बुषो-ग्रसेनानां', (४. ५६, १२)। 'अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः', (५. १६७, ३३)। 'अलम्बुषं प्रत्युदियाद्बलं शक्र इवाहवे', (६. ४५, ४२)। 'अलम्बुषस्तु समरे', (६. ४५, ४४)। 'अलम्बुषो राक्षसो', (६. ६३, २९)। 'अलम्बुषस्तदा', (६. ८१, ३०)। 'अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः', (६. ८२, ३९)। 'अलम्बुषं शरैरन्यैरभ्याकिरत सर्वतः', (६. ८२, ४४)। इरावान् के द्वारा शकुनि के भ्राताओं तथा राक्षस अलम्बुष के द्वारा इरावान् का वध (६. ९०)। 'अलम्बुषो रथश्रेष्ठः', (६. ९९, ७)। 'अलम्बुषो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्षुभे', (६. १००, ४३. ४६)। 'अलम्बुषः

कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत', (६. १०१, १)। 'अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णि नवभिराशुगैः। हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥', (६. १०१, १३)। 'अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम्', (६. १०१, २१)। 'राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालंबुषावुभौ', (७. १४. ४६)। 'राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्नं ह्यलंबुषः', (७. २५, ६१)। 'अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं', (७. ९५, ४७)। 'अलंबुषस्तु संक्रुद्धः', (७. ९६, १८)। 'आर्ष्यश्रृङ्गिर्महारथः' (७. १०६, १६)। 'अलम्बुषस्तु समरे', (७. १०८, १३)। 'आर्ष्यश्रृङ्गि ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः। विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रमसर्पणम् ॥', (७, १०८, १५. २०. २३)। 'अलम्बुषं तथा युद्धे', (७. १०९, २)। 'अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्', (७. १०९, ३)। 'अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः। तथैवालंबुषो राजन् हैडिम्बि युद्ध दुर्मदम् ॥', (७. १०९, ५)। 'तां तामलम्बुषो राजन्माययैव निजघ्निवान्' (७. १०९, ९)। 'अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाऽक्रुध्यन्त पाण्डवाः', (७. १०९, १०)। 'ह्यलम्बुषं पक्रमलम्बुषं यथा', (७. १०९, ३६)। 'अलम्बुषः सात्यकिं', (७. १४०, १२)। 'अलम्बुषः राजवरः' (७. १४०, १४)। 'अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान वाणैः', (७. १४०, १७)। 'कम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुषमेव च', (७. १५०, २३)। 'अलम्बुषो महाराज', (७ १६५, १६)। 'राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः', (७. १६७, ३७)। 'अलम्बुषं च कर्णं च', (७. १७४, १३)। 'राक्षस्तूर्णमलम्बुषः', (७. १७४, १४)। 'अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो', (७. १७४, १८. २०. २७)। 'घटोत्कचालम्बुषयोः' (७. १७४, २८)। 'अलम्बुषघटोत्कचौ', (७. १७४; ३२)। 'राक्षसेन्द्रमलम्बुषम्', (७. १७४, ३५)। 'अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान्। घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥', (८. ५, ४६)। 'जलसन्धोऽथार्ष्यश्रृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः। अलम्बुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥', (९. २, २०)। 'अलम्बुषस्तथा राजन् राक्षसश्चाप्यलायुधः। आर्ष्यश्रृङ्गिश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥', (९. २, ३९)। 'घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं बकभ्रातरमेव च। अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥', (११. २६, ३७)।

अलम्बुषा, एक अप्सरा का नाम है, जो महर्षि कश्यप और प्राधा की पुत्री थी (१. ६५, ४९)। इसने अर्जुन के जन्मोत्सव के समय अन्य अप्सराओं के साथ आकर नृत्य किया था (१. १२३, ६१)। महारानी सुदेष्णा ने अज्ञातवास के लिये विराट नगर में आयी हुई द्रौपदी से पूछा : 'तुम अलम्बुषा, मिश्रकेशी आदिक कोई अप्सरा तो नहीं हो' (४. ९, १६)। इन्द्र ने दधीच मुनि को मोहित करने के लिये इसे भेजा था (९. ५१, ७)। सरस्वती ने दधीच मुनि को उनका पुत्र समर्पित करते हुये बताया कि उनका जो रेतस् अलम्बुषा को देखकर स्कन्दित हुआ था, उसे स्वयं उसने धारण कर लिया था। अतः गर्भ से बाहर आये हुये अपने अनिन्दित पुत्र को ग्रहण कीजिये (९. ५१, १३. १४)। अष्टावक्र के स्वागत में कुबेर की आज्ञा से अन्य अप्सराओं के साथ इसने भी नृत्य किया (१३. १९, ४४)। इसका जप करने से मनुष्य पाप-भय से मुक्त हो जाता है (१३. १६५, १५)।

१. अलर्क, एक राजर्षि का नाम है। यमराज की सभा में उपस्थित होनेवाले राजर्षियों में इनका भी उल्लेख है (२. ८, १८)। ये काशि और करुष देश के अधिपति थे, और इन्होंने राज्य और धन का परित्याग करके धर्म का आश्रय लिया (३. २५, १३)। कभी मांस न खानेवाले राजाओं के साथ इनका उल्लेख (१३. ११५, ७३)। उन पुण्यात्मा राजाओं में से एक यह भी हैं जिनका प्रातःसायं नाम लेने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है (१३. १६५, ५२)। "पूर्वकाल की बात है, अलर्क नाम के अत्यन्त तपस्वी, धर्मज्ञ, सत्यवादी, महात्मा और दृढ़प्रतिज्ञ एक राजर्षि थे। उन्होंने अपने धनुष की सहायता से समुद्र पर्यन्त पृथिवी को जीत लिया था। इसके पश्चात उनका मन सूक्ष्म तत्व की खोज में लगा। अलर्क ने कहा, 'मुझे मन से ही बल प्राप्त हुआ है अतः वही सबसे प्रबल है। मन को जीत लेने से ही मुझे स्थायी विजय प्राप्त हो सकती है। मैं इन्द्रियरूपी शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ, अतः बाहरी शत्रुओं पर आक्रमण न करके इन आन्तरिक शत्रुओं को ही अपने बाणों का लक्ष्य बनाऊँगा। मन, चंचलता के कारण, समस्त मनुष्यों से विविध प्रकार के कर्म कराता है अतः अब मैं मन पर ही तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करूँगा। मन बोला, 'तुम्हारे ये बाण मुझे किसी प्रकार बींध नहीं सकते। यदि इन्हें चलाओगे तो ये तुम्हारे ही मर्म-स्थलों का भेदन कर देंगे जिससे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। अतः तुम अन्य प्रकार के बाणों का विचार करो, जिससे तुम मुझपर प्रहार कर सको।' इसी प्रकार नासिका, तथा जिह्वा इत्यादि से भी अलर्क का संवाद हुआ। तदुपरान्त अलर्क तपस्या के लिए निकले, किन्तु तपस्या से भी मन-बुद्धि सहित पाँचों इन्द्रियों को मारने योग्य किसी उत्तम बाण का पता न चला। तब उन्होंने ध्यान योग का साधन किया, जिससे एक ही बाण से मारकर उन्होंने सहसा सब इन्द्रियों को परास्त कर दिया। इस सफलता से अलर्क को अत्यन्य आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा, 'अत्यन्त कष्ट की बात है कि मैं अब तक बाह्यकर्मों में लगा हुआ राज्य की ही उपासना करता रहा। किन्तु ध्यानयोग से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम सुख का साधन नहीं है, यह बात मुझे बहुत बाद में मालूम हुई।' (१४. ३०, २. ५. ७. ९. १०. १२. १३. १५. १६. १८. १९. २१. २२. २४–२७)।"

२. अलर्क, एक कीट का नाम है। इसने कर्ण को काट लिया था। यह मूलतः एक राक्षस था जिसने कृतयुग में भृगु-पत्नी का बलपूर्वक अपहरण कर लिया था और इसीलिए भृगु के शाप से कीट होकर पृथिवी पर गिर पड़ा था (१२. ३, १३. २०)।

अलाताक्षी, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, ८)।

अलायुध, एक राक्षस का नाम है जो बकासुर का भाई और कौरव-पक्ष का योद्धा था। चौदहवें दिन घटोत्कच के साथ इसका युद्ध (७. ९५. ४३; ९३, २७)। इसका भाइयों सहित भीम को, जिन्होंने इसके राक्षस बान्धव बक और किर्मीर तथा मित्र हिडिम्ब का वध कर दिया था, चौदहवें दिन रात्रि-युद्ध में मार डालने के लिये दुर्योधन से आज्ञा माँगना (७. १७६, १)। इसे देखकर कौरवसेना का हर्ष (७. १७७, ३)। घटोत्कच के साथ युद्ध करते हुये कर्ण को संकट में देखकर दुर्योधन ने इसे उसका बध कर देने की आज्ञा दी (७. १७७, ८)। भीमसेन के साथ इसका युद्ध (७. १७७, १७–१९. २१. २६)। घटोत्कच के साथ इसका युद्ध (७. १७८, ३. ५. ६. १२. २७)। घटोत्कच द्वारा इसका वध (७. १७८, ३६)। इसके वध का उल्लेख (७. १७८, ४०; १७९, १. ३; १८०, ३३; १८१, २४; ९. २, २०. ३९; २४, २८)। व्यास जी के प्रभाव से कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये कौरव-पाण्डव वीरों के साथ गंगाजी के जल से इसका प्रगट होना (१५. ३२, १२)।

अलुलुप—देखिये **अलोलुप**।

अलोल = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अलोलुप, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, १०३; ११७, १२)। भीम द्वारा मारे गये धृतराष्ट्र के दस पुत्रों में से एक यह भी था (८. ८४, ३)। = सूर्य (३. ३, २३)।

अवगाह, एक वृष्णिवंशी योद्धा का नाम है (७. ११, २७)।

अवतत = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अवन्ति (बहु० **अवन्तयः**, अवन्ति-निवासी मनुष्य) : 'सुराष्ट्रावन्तयस्तथा,' (४. १, १३)। 'कुन्तयोऽवन्तयश्चैव', (६. ९, ४३)।

अवन्ती, एक नगरी का नाम है जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी (३. ६१, २१)।

अवर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अवभृथ, यज्ञान्त-स्नान का नाम है (२. ४५, ४०)।

अवर्ण = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अवश = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अवसान, एक तीर्थ का नाम है जहाँ जाने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है (३. ८२, १२८)।

अवाकीर्ण, सरस्वती तटवर्ती एक तीर्थ का नाम है (९. ४१, १)।

अवाचीन, पुरुवंशीय राजा जयत्सेन के द्वारा विदर्भ कुमारी सुश्रवा के गर्भ से उत्पन्न एक राजा का नाम है। इनके द्वारा विदर्भ राजकुमारी मर्यादा के गर्भ से अरिह की उत्पत्ति हुई (१. ९५, १७-१८)।

अविकम्पन, एक प्राचीन राजा का नाम है जिन्हें ज्येष्ठ मुनि से सात्वत धर्म की प्राप्ति हुई थी (१२. ३४८, ४७)।

१. अविक्षित्—इनके पूर्वयुग में हुये होने का उल्लेख (१. १, २३८)। ये कुरु के पुत्र थे, इनका अश्ववान् नाम भी था तथा इनके पुत्र का नाम परिक्षित् था (१. ९४, ५१. ५२)।

२. अविक्षित्, एक राजा का नाम है जो सुवर्चस् के पुत्र थे। शत्रु द्वारा विपत्ति में पड़े हुये इनके पिता ने हाथ को मुँह से लगाकर शंख की भाँति बजाया, जिससे एक विशाल सेना उत्पन्न हुई और उसने सम्पूर्ण शत्रु नरेशों को परास्त कर दिया। इसीलिये, कर का धवन करने (हाथ को बजाने) से इनका नाम करन्धम हो गया। करन्धम (सुवर्चस्) के पुत्र होने से ये कारन्धम कहलाये। ये त्रेता युग के आरम्भ में हुये जो इन्द्र के समान पराक्रमी, सूर्य के समान तेजस्वी, पृथिवी के समान क्षमाशील, बृहस्पति के समान बुद्धिमान्। तथा हिमालय के समान सुस्थिर थे। उस समय सभी राजा इनके अधीनस्थ थे। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। स्वयं अङ्गिरा मुनि ने पुरोहित के रूप में इनका यज्ञ कराया। इनके पुत्र का नाम मरुत्त था (१४. ४, १९-२३)।

अविज्ञातगति (जिसकी गति ज्ञात न हो), अनिल नामक वसु के द्वारा शिवा के गर्भ से उत्पन्न एक पुत्र का नाम है। इनके भाई का नाम मनोजव था (१. ६६, २५)।

अविज्ञातृ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अविज्ञेय = महापुरुष (१२. ३३८, ४ में १८० वाँ नाम है)।

अविन्ध्य, एक श्रेष्ठ राक्षस का नाम है जिसने अशोकवाटिका में त्रिजटा को सीता के पास राम का पराक्रम वर्णन करने तथा आश्वासन देने के लिये भेजा था (३. २८०, ५६)। सीता की खोज के लिये अशोकवाटिका में आये हुये हनुमान् से सीता ने कहा : 'महाबाहो ! मैं अविन्ध्य के कहने से यह विश्वास करती हूँ कि तुम हनुमान् हो। अविन्ध्य राक्षस कुल में उत्पन्न होने पर भी आदरणीय है (३. २८२, ६७)।' हाथ में तलवार लेकर सीता पर प्रहार करने के लिये दौड़े हुये रावण को मन्त्री अविन्ध्य ने समझाकर शान्त किया (३. २८९, २८. ३२)। राम द्वारा रावण के वध के पश्चात् वृद्ध मन्त्री अविन्ध्य सीता के साथ राम के पास आये (३. २९१, ६)।

अविमुक्त, वाराणसी तीर्थ का नाम है जहाँ मनुष्य देवाधिदेव महादेव जी का दर्शन करके ब्रह्महत्या से मुक्त होता है; यहाँ प्राणोत्सर्ग करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है (३. ८४, ७९)।

अविमूढा : एक प्रकार के ऋषियों की संज्ञा का नाम है (१.२११,५)।

अविस्थल एक गाँव का नाम है (५. ७२, १५)। उन पाँच गाँवों में एक यह भी है जिन्हें युधिष्ठिर ने दुर्योधन से माँगा था (५. ८२, ७)।

अव्यङ्ग = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अव्यक्त = कृष्ण (१२. ४७, ५२)।

२. अव्यक्त = महापुरुष (१२. ३३८, ४ में १३५ वाँ नाम—अव्यक्त-मध्य—है)।

३. अव्यक्त = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

४. अव्यक्त = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अव्यक्तनिधन = महापुरुष (१२. ३३८, ४ में १३६ वाँ नाम)।

अव्यक्तयोनि = शिव (१३. १४, २)।

१. अव्यक्तरूप = शिव (१४. ८, १४)।

२. अव्यक्तरूप = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अव्यय (अनश्वर) : १२. ३९, ७ (देवों = ब्रह्मन्) ; = कृष्ण (१२. ४७, १९ ; २०९, १)। 'देवेशमव्ययम्' = ब्रह्मन्, (१२. २५८, ३२ ; २८९, २४)। 'ज्योतिरव्ययम्', (१२. ३०२, १६)। 'तमप्यनुपमात्मानं विश्वं शंभुः प्रजापतिः। अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः॥' (१२. ३१२, १३)। 'देवानामादिः' = विष्णु (१२. ३३९, ११)। 'विश्वमूर्तिरिहाव्ययः' = विष्णु (१२. ३३९, १५)। 'हरिरव्ययः', (१२. ३४२, ६)। = शिव (१३. १४, १२७ ; १७, ७२. १४९)। = विष्णु : १३. १४९, १४. १७. ५९. १०९ (सहस्र नामों में से एक)। = शिव (१४. ८, २७)।

२. अव्यय, धृतराष्ट्र के कुल में उत्पन्न हुए एक सर्प का नाम है जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (१. ५७, १६)।

अशनिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अशिव (मार्कण्डेयसमस्यापर्व : ३. २२१,)। मार्कण्डेय की गणना में अग्नि का एक रूप (सोरेन्सन का पाठ यह है : अग्निर् यश् चाशिवो नाम शक्तिपूजा परश् च सः दुःखार्त्तानाम् च सर्वेषां शिवकृत् सततं शिवः', जिसमें 'अशिव' शब्द आता है ; किन्तु अधिक सम्भव पाठ 'अग्निर्यश्च शिवो नाम शक्तिपूजा परश्च सः' है, जिसमें 'शिव' आता है)। सोरेन्सन ने भी बम्बई संस्करण के 'अग्निर्यश्च शिवो' पाठ को ही अधिक सम्भव माना है।

१. अशोक एक क्षत्रिय राजा (सम्भवपर्व : १. ६७, १४) था जो 'अश्व' नामक विख्यात असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था (१. ६७, १३)। यह कलिङ्गराज्य की राजधानी श्रीमद्राजपुर (राजधर्मानुशासनपर्व : १२. ४, ३) में कलिङ्ग-राज चित्राङ्गद की कन्या के स्वयंवर में भी गया (राजधर्मानुशासनपर्वः १२, ४, ७) जहाँ दुर्योधन ने कन्या का अपहरण कर लिया था (१२. ४, १३)।

२ अशोक : भीमसेन का सारथि था। इसने कलिङ्गराज श्रुतायु के साथ युद्ध करते समय रथहीन भीम के पास रथ पहुँचाया था(भीष्मवधपर्व : ६. ५४, ७०-७१)।

३ अशोक = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अशोकतीर्थ : दक्षिण में शूर्पारक क्षेत्र के अन्तर्गत एक तीर्थ (तीर्थ-यात्रापर्व : ३. ८८, १३)।

अश्म, बाण-शय्या पर भीष्म की स्तुति करता है (राजधर्मानुशासन-पर्वः १२. ५८, २५)।

१. अश्मक, महर्षि वसिष्ठ के द्वारा कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती के गर्भ से उत्पन्न एक राजर्षि का नाम है (१. १२२, २२)। इन्होंने पौदन्य नगर की स्थापना की थी (१. १७७, ४७)।

२. अश्मक, भीष्म की मृत्यु-शय्या के निकट उपस्थित एक ब्राह्मण का नाम है (राजधर्मानुशासनपर्व : १२. ४७, ५)।

३. अश्मक, अश्मकों का एक राजा था जिसका अभिमन्यु ने वध किया था (अभिमन्युवधपर्व : ७. ३७, २१-२३)।

४. अश्मक (गोदावरी और महिष्मती के निकट) एक जनपद का नाम है (जम्बूखण्डे—विनिर्माणपर्व : ६. ९, ४४)।

अश्मकदायाद (अश्मकपुत्र) एक कौरवपक्षीय योद्धा का नाम है जो अभिमन्यु द्वारा मारा गया था (अभिमन्युवधपर्व : ७. ३७, २१. २३)।

अश्मका, पाण्डव सेना में सम्मिलित एक जाति के लोगों का नाम है

(जयद्रथवधपर्व : ७. ८५, ४०) जिन्हें कर्ण ने विजित करके कर वसूल किया था (कर्णपर्व ८. ८, २०)।

अश्मकी, एक यादवी का नाम है जो राजा प्राचिन्वत् की पत्नी तथा संयाति की माता थी (सम्भवपर्व : १. ९५, १३)।

अश्मकेश्वर (= अश्मकदायाद) : ७. ३७, २३ ।

अश्मकपृष्ठ, गया में स्थित एक प्रेतशिला नामक तीर्थ है, जहाँ पिण्ड देने से ब्रह्महत्या दूर होती है (राजधर्मपर्व : १३. २५, ४२)। "प्रेतशिला आज भी है, किन्तु यहाँ कोई शिला नहीं वरन् तीन-चार सौ फीट ऊँची पहाड़ी है" ग्रियर्सन ।

अश्मन्, एक ब्राह्मण था जिससे विदेहराज जनक ने परामर्श किया था। राजधर्मानुशासनपर्व : १२. २८, २ (अश्मगीतं नरव्याघ्र तन्निबोध युधिष्ठिर); २८, ३ (अश्मानं ब्राह्मणम्); २८, ५८ (अश्मानम्)।

अश्रम = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अश्लेषा, एक नक्षत्र का नाम है (अश्विनी से आरम्भ होने पर नवाँ ; इस संधितारे को ε हाइड्रा माना गया है, सूर्यसिद्धान्त, पृष्ठ १८८, ज० अ० ओ० सो०, संस्करण)। १३. ६४, ११ ('आश्लेषायां तु यो रूप्यमृषभं वा प्रयच्छति स सर्वभयनिर्मुक्तः सम्भवान् अधितिष्ठति); १३. ८९, ५ (आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं धीरान्पुत्रान्प्रजायते)। "दिग्गजनों ने रेणुक से कहा कि कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में अश्लेषा नक्षत्र और मंगलमयी अष्टमी तिथि का योग होने पर जो मनुष्य आहार-संयम पूर्वक क्रोधशून्य होकर इस मन्त्र—'बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः ॥ अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः। तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजङ्गमा ॥ ते मे बलिं प्रतीच्छन्तु बलतेजोऽभिवृद्धये। यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुंधराम् ॥ तद् बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तथा।' अर्थात् 'बलदेव आदि जो अत्यन्त शक्तिशाली नाग हैं वे अनन्त, अक्षय, नित्य फनधारी और महाबली हैं; वे तथा उनके कुल में उत्पन्न जो अन्य विशाल भुजंगम हों वे भी मेरे तेज और बल की वृद्धि के लिये मेरी दी हुई इस बलि को ग्रहण करें; जब श्रीमान् नारायण ने इस पृथिवी का एकार्णव के जल से उद्धार किया था उस समय उनमें जो बल था वह मुझे प्राप्त हो।' (१३. १३२, ८–११)—का जाप करते हुए श्राद्ध के अवसर पर हमारे लिए गुड़मिश्रित भात देता है वह महान फल का भागी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र यदि उपवासपूर्वक एक वर्ष तक इस प्रकार हमारे लिये बलिदान करे तो उसका महान फल होता है। (१३. १३२, ७–१५)।"

अश्लेषा (= गत शब्द) : १३. ११०, ६ ; ११०, ३–१० तक एक चान्द्रव्रत का वर्णन है : "मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को मूल नक्षत्र से चन्द्रमा का योग होने पर चन्द्र सम्बन्धी व्रत आरम्भ करना चाहिये। चन्द्रमा के स्वरूप का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये : देवता सहित मूल नक्षत्र के द्वारा उनके दोनों चरणों की भावना करे और पिण्डलियों में रोहिणी को स्थापित करे। जाँघों में अश्विनी नक्षत्र, ऊरुओं में पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, गुह्यभाग में पूर्वा-फाल्गुनी और उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र, तथा कटि-भाग में कृत्तिका की स्थिति समझे। नाभि में पूर्वा-भाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा को जाने, नेत्र-मण्डल में रेवती, और पृष्ठभाग में धनिष्ठा, अनुराधा तथा उत्तरा को स्थापित समझे। दोनों भुजाओं में विशाखा का, हाथों में हस्त का, अंगुलियों में पुनर्वसु का तथा नखों में अश्लेषा की स्थापना करे। ज्येष्ठा नक्षत्र से ग्रीवा की, श्रवण से दोनों कानों की, पुष्य नक्षत्र की स्थापना से मुख की, तथा स्वाती नक्षत्र से दाँतों और ओठों की भावना बताई जाती है। शतभिषज् को हास, मघा को नासिका, मृगशिरा को नेत्र और अनुराधा को ललाट समझे। भरणी को सिर और आर्द्रा को चन्द्रमा के केश समझे। इस प्रकार विभिन्न अङ्गों में नक्षत्रों की स्थापना करके तत्सम्बन्धी वेद-मन्त्रों द्वारा उन-उन अङ्गों की पूजा एवं जप आदि प्रतिदिन करे। पूर्णमासी को व्रत समाप्त होने पर वेदों के पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण को घृत दान करे। ऐसा करने से मनुष्य पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति परिपूर्णाङ्ग, सौभाग्यशाली, दर्शनीय तथा ज्ञान का भागी होता है।"

१. अश्व, एक दानव (१.६५, २४) जो कि दनु और कश्यप के चालीस पुत्रों में से १४ वाँ था। महाराज अशोक के रूप में अवतरित (२. ६७, १४)। इन्द्र के पूर्व पृथिवी के उन अनेक स्वामियों में से एक जिसका बलि ने उल्लेख किया है (१२. २२७, ५२)।

२. अश्व = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अश्वक, काः, एक जाति का नाम है (६. ९, ४४)।

अश्वकेतु, मगधराज के पुत्र का नाम है जिसका अभिमन्यु ने महाभारत युद्ध के १३ वें दिन वध किया था (७. ४८, ७)।

अश्वक्रन्द, एक यक्ष का नाम है जिसका गरुड़ ने वध किया था (१. ३२, १८)।

१. अश्वग्रीव, अश्व का भ्राता था (१. ६५, २५), जो राजा रोचमान के रूप में अवतरित हुआ (१. ६७, १७-१८)। बलि द्वारा उल्लिखित इन्द्र के पूर्व पृथिवी के स्वामियों में से एक (१२. २२७, ५०)।

२. अश्वग्रीव, एक राजर्षि = हयग्रीव (१२. २४, २६), जो युद्ध में हत होकर स्वर्गलोक में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था।

अश्वचक्र—इसका शाम्ब ने वध किया था (३. १२०, १४)।

१. अश्वतर, जो कि महाभारत में केवल यौगिक शब्द 'काम्बलाश्वतरौ' में ही आता है, नागों के एक युग्म का द्योतक है जो कि कद्रू और कश्यप के पुत्र थे (१. ३५, १०)। इन्हें वरुण के प्रासाद में रहनेवाला बताया गया है (२. ९, ९)। इन्हें भोगवती में रहनेवाला भी कहा गया है (५. १०३, ९)।

२. अश्वतर—अश्वतर नाग से उपलक्षित प्रयाग का एक तीर्थ (३. ८५, ७६)।

अश्वतीर्थ—कान्यकुब्ज के निकट गङ्गा के तट पर स्थित एक तीर्थ (३, ९५, ३), जहाँ वरुण ने राजा गाधि को देने के लिये ऋचीक मुनि को सहस्र श्यामकर्ण अश्व प्रदान किये थे (३. ११५, २६-२९ ; देखिये ५. ११९, ५-७ ; १३. ४, १६-१८)।

१. अश्वत्थ, धौम्य द्वारा बताये गये सूर्य के १०८ नामों में से एक है (३. ३, २१)।

२. अश्वत्थ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

३. अश्वत्थ = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. अश्वत्थामन्, द्रोण और कृपी के पुत्र थे (१. १, २१३–२१४; २, २६५–२७३; ६३, १०७–१०८)। 'महादेवान्तकाभ्यां च कामात्क्रोधाच्च भारत। एकत्वमुपपन्नानां जज्ञेशूरः परंतपः॥ अश्वत्थामा महावीर्यः शत्रुपक्षभयावहः', (१. ६७, ७२–७३)। जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान नाद करने के कारण इनका 'अश्वत्थामा' नाम रखने की भविष्यवाणी हुई थी (१. १३०, ४७–४९)। राजकुमारों और सम्पन्न व्यक्ति के पुत्रों को दूध पीता हुआ देख कर बाल्यकाल में जब अश्वत्थामा रोते थे तो द्रोणाचार्य उन्हें चावल का आटा मिला पानी पीने के लिये देकर बहला देते थे : अश्वत्थामा इस आटे के पानी को दूध समझ कर पी जाते थे (१. १३१, ५१–५४)। द्रोण इन्हें चौड़े मुँह का कुम्भ लेकर जल लाने के लिये भेजते थे जिससे पानी लेकर लौटने में विलम्ब न हो (१. १३२, १६–१७)। धनुर्वेद के रहस्यों के ज्ञान में यह सर्वश्रेष्ठ हुये (१. १३२, ६२)। भीम और दुर्योधन को गदायुद्ध करते समय पृथक करते हैं (१. १३५, ३–५)। कृष्णा के स्वयंवर में (१. १८६, ६)। स्वयंवर के पश्चात् दुर्योधन के साथ (१. २००, ९)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आते हैं (२. ३४, ८)। ब्राह्मणों के स्वागत-सत्कार का भार इन पर रक्खा जाता है (२. ३५, ५; २. ३७, ११; २. ४४, १४; २. ७८, २; ४. ३८, १३)। द्रोण पर आक्षेप करने पर कर्ण को फटकारते हैं (४. ५०–५१)। भीष्म

ने इन्हें अपने व्यूह के वाम-भाग की रक्षा के लिये नियुक्त किया (४. ५२, २२)। अर्जुन इनसे युद्ध नहीं करेंगे (४. ५५, ४६)। अर्जुन से युद्ध कर रहे द्रोण की रक्षा करते हैं, किन्तु अपने बाण समाप्त हो जाने के कारण अर्जुन से स्वयं पराजित हो जाते हैं और कर्ण इन्हें बचाता है (४. ५८, ७२-७६ तथा ५९, १-१९; ४. ६८, ७२; ५. २५, ११; ५. ३०, १३)। पाण्डवों के पास से लौटे हुये सञ्जय का स्वागत करने के लिये धृतराष्ट्र की सभा में उपस्थित (५. ४७, ६; ५. ५०, ३२; ५. ५५, ५१)। अर्जुन के साथ (५. ५७, १५. ३७) युद्ध नहीं करना चाहते, (५. ५६, ६. १०; ५. ६६, ५; ५. ९५, १९; ५. १२४, १८; ५. १३१, ४०; ५. १३९, ४; ५. १४३, ४२; ५. १४८, १६)। युधिष्ठिर अथवा धृष्टद्युम्न ने, नकुल को इनका विरोध करने की आज्ञा दी (५. १६४, ६)। दुर्योधन से दस दिन में ही पाण्डवसेना को नष्ट कर सकने की शक्ति का कथन (५. १९३, १८; ५. १९५, ६; ६. १७, २ : 'सिंहलाङ्गूलकेतुना' ६. २५, ८)। प्रथम दिन के युद्ध में इनका शिखण्डी के साथ युद्ध (६. ४५, ४६. ४८; ६. ५१, २. १९)। अर्जुन के विरुद्ध भीष्म की सहायता (६. ५२, ४०)। दूसरे दिन के युद्ध में शल्य और कृष्ण के साथ रहकर इनका धृष्टद्युम्न और अभिमन्यु से युद्ध करना (६. ५५, २-७)। तृतीय दिन कृप के साथ गरुड़व्यूह में शीर्ष स्थान पर खड़े थे (६. ५६, ४)। अन्य के साथ होकर अभिमन्यु को आगे बढ़ने से रोकना (६. ६१, १)। अर्जुन के साथ युद्ध, (६. ७३, ३-१६)। छठवें दिन कृप के साथ क्रौञ्चव्यूह के नेत्र में स्थित, (६. ७५, १६; ६. ८१, २)। सातवें दिन शिखण्डी के साथ युद्ध (६. ८२, २६-३८; ६. ८९, ४. ४०)। आठवें दिन घटोत्कच के साथ युद्ध कर रहे दुर्योधन की रक्षा (६. ९२, २४)। इनका नील के साथ और तदुपरान्त उस घटोत्कच के साथ युद्ध जो इन्हें अपनी माया से चकित कर देता है (६. ९४, ३५-३६)। सोमदत्त तथा अवन्ती के दोनों राजकुमारों के साथ इनका, युद्ध के नवें दिन, व्यूह के वाम भाग का संरक्षण (६. ९९, ५) सात्यकि के प्रहार से इनका मूर्छित होना (६. १०१, ४६-४७)। नवें दिन अर्जुन के साथ युद्ध, (६. १०२, २४; ६. ११०, १६)। दसवें दिन भीष्म के विरुद्ध युद्ध कर रहे विराट और द्रुपद को रोकना और आहत करना (६. १११, २२-२७)। द्रोणाचार्य इनसे अपशकुनों और अर्जुन की दुर्जयता की चर्चा करते हैं (६. ११२)। धृष्टद्युम्न इन पर आक्रमण करते हैं (६. ११५, ३; ६. ११६, ९-१२)। नील का वध करते हैं (७. ३१, २४-२५)। बारहवें दिन युद्ध करते हैं (७. ३२, ३)। तेरहवें दिन चक्रव्यूह के अग्रभाग में खड़े सिन्धुराज के पास अन्य कौरवों के साथ स्थित (७. ३४, २२)। तेरहवें दिन अभिमन्यु को आहत करते हैं (७. ३७, २४. ३१)। तेरहवें दिन ही अभिमन्यु द्वारा आहत (७. ४७, ९. १४. १७)। तेरहवें दिन अभिमन्यु के साथ युद्ध (७. ४९, ४)। क्रीड़ा नहीं करना चाहते (७. ८५, १५; ७. ८७, १२; ७. ९१, ५; ७. ९४, १९)। दुर्योधन और कर्ण सहित अर्जुन के साथ युद्ध करते हैं (७. १०४, ४)। इनका प्रातःकालीन सूर्य के समान अरुण कान्ति से प्रकाशित ध्वज, जिसमें सिंह की पूँछ का चिह्न था और वह इन्द्रध्वज के समान प्रकाशमय, सुवर्णमय और ऊँचा था (७. १०५, १०-१२; ७. १३५, ७)। अर्जुन के विरुद्ध कर्ण की सहायता तो करते हैं, किन्तु युद्ध से अलग हट जाने के लिए विवश होते हैं (७. १३९, १२१-१२३)। चौदहवें दिन भूरिश्रवा का वध करने से सात्यकि को रोकने का निष्फल प्रयास करते हैं (७. १४३, ५३)। अर्जुन के विरुद्ध दुर्योधन, जयद्रथ इत्यादि की सहायता और कर्ण को अपने रथ में बैठा लेते हैं (७. १४५, ९. ३३. ८५)। अर्जुन के विरुद्ध जयद्रथ की सहायता करते हैं, (७. १४६)। चौदहवें दिन, जयद्रथ की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन के विरुद्ध कृप की सहायता करते हैं (७. १४७, ११; ७. १५०, ५)। द्रोणाचार्य, दुर्योधन द्वारा इनको वीरतापूर्वक युद्ध करने का उपदेश भेजते हैं (७. १५१, ३५; ७. १५५, ३८)। चौदहवें दिन सात्यकि और घटोत्कच के साथ युद्ध करते हैं; घटोत्कच के पुत्र का वध करते हैं; घटोत्कच का रथ नष्ट कर देते हैं; घटोत्कच द्वारा भेजे गये राक्षसों से युद्ध करते हैं; भीम इत्यादि से युद्ध करते हैं; श्रुतहव्य इत्यादि सहित द्रुपद-पुत्र सुरथ का वध करते हैं; सिद्ध-गण इनकी प्रशंसा करते हैं (७. १५६, ५५-१९०)। कृप को फटकारने के कारण कर्ण को फटकारते हैं, किन्तु दुर्योधन इन्हें रोकता है; अर्जुन के विरुद्ध कर्ण की सहायता; शीघ्रतापूर्वक युद्ध में जाने से दुर्योधन को रोकना और दुर्योधन द्वारा इनकी प्रशंसा (७. १५९, १३. ८३-१००)। अश्वत्थामा का दुर्योधन को उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालों के साथ युद्ध करते हुये धृष्टद्युम्न के रथ सहित सारथि को नष्ट करके उसकी सेना को भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना (७. १६०)। युधिष्ठिर के विरुद्ध युद्ध में दुर्योधन इत्यादि द्वारा इनकी सहायता (७. १६१)। घटोत्कच को रोकते हैं (७. १६५, १२)। घटोत्कच ने इन्हें घायल कर दिया किन्तु चेतना लौटते ही यह पुनः उससे युद्ध के लिए तत्पर हो गये (७. १६६, ३०-३६)। इनकी मृत्यु के एक मिथ्या समाचार को सुनकर द्रोणाचार्य की जीवन से निराशा तथा शस्त्र आदि का परित्याग जिससे उनका वध कर दिया गया (७. १९०-१९२)। कृप द्वारा द्रोणवध का वृत्तान्त सुनते हैं (७. १९३, ५१-५७)। इनमें मानव और वारुण आदि अस्त्र सदा प्रतिष्ठित हैं, और धृष्टद्युम्न के वध के लिये ही इनका जन्म हुआ (७. १९४, २. १४)। दुर्योधन के सम्मुख युधिष्ठिर आदि का वध करने की शपथ और अपने नारायणास्त्र की प्राप्ति का रहस्य बताना और उसका प्रयोग करना, अपशकुनों का प्रकट होना (७. १९५)। अर्जुन द्वारा इनकी प्रशंसा करना (७. १९६)। दुर्योधन के सम्मुख यह अपनी शपथ दुहराते हैं (७. १९९)। श्रीकृष्ण का भीमसेन को रथ से उतार कर अश्वत्थामा द्वारा चलाये गये नारायणास्त्र को शान्त करना; अश्वत्थामा की उसके पुनः प्रयोग में असमर्थता बताना; अश्वत्थामा द्वारा धृष्टद्युम्न की पराजय; अश्वत्थामा द्वारा मालव, पौरव तथा चेदि देश के युवराज का वध एवं भीम और अश्वत्थामा का घोर युद्ध (७. २००)। अश्वत्थामा के द्वारा आग्नेयास्त्र के प्रयोग से एक अक्षौहिणी पाण्डवसेना का संहार; श्रीकृष्ण और अर्जुन पर उस अस्त्र का प्रभाव न होने से चिन्तित हुये अश्वत्थामा को व्यासजी का शिव तथा श्रीकृष्ण की महिमा बताना (८. ६, १७; ८. ९, ८३)। कर्ण को सेनापति बनाने के लिये अश्वत्थामा का प्रस्ताव (८. १०)। कर्ण के मकर-व्यूह के शीर्ष में स्थित (८. ११, १६)। भीम पर आक्रमण करते हैं (८. १३-१४)। इनका भीम के साथ अद्भुत युद्ध तथा दोनों का मूर्छित होना (८. १५)। अर्जुन का संशप्तकों तथा अश्वत्थामा के साथ युद्ध, (८. १६)। अर्जुन के द्वारा अश्वत्थामा की पराजय और कर्ण की सेना में शरण लेना (८. १७)। पाण्ड्य का वध (८. २०; ८. २१, ५; ८. ४६, २२)। कृप के विरुद्ध युद्ध कर रहे शिखण्डी की सहायता करने से युधिष्ठिर को रोकना (८. ५४, १४)। इनका घोर युद्ध, सात्यकि के सारथि का वध, और युधिष्ठिर का इन्हें छोड़कर दूसरी ओर चले जाना (८. ५५)। काम्बोजों की सेना का विनाश कर रहे अर्जुन के साथ इनका युद्ध तथा घायल हो जाने पर सारथि द्वारा इन्हें युद्धस्थल से दूर ले जाना (८. ५६, ११८-१४७)। दुर्योधन के सम्मुख धृष्टद्युम्न का वध करने की प्रतिज्ञा (८. ५७, ९-१०)। धृष्टद्युम्न और अर्जुन के साथ युद्ध तथा अर्जुन द्वारा इनकी पराजय (८. ५९)। अर्जुन इन्हें पुनः पराजित करते हैं (८. ६४; ८. ६७, ८; ८. ७३, ५५. ५९; ८. ७८, ६२)। अन्य लोगों के साथ अर्जुन पर आक्रमण करते हैं (८. ७९)। पाण्डवों के साथ सन्धि करने के लिये दुर्योधन को समझाने का निष्फल प्रयास (८. ८८, २१-२९)। कर्ण की मृत्यु पर दुर्योधन को सान्त्वना देते हैं (८. ९४, २५। ८. ९५, ८; ९. २, १७)। दुर्योधन के पूछने पर सेनापति के लिये शल्य का नाम प्रस्तावित करते हैं (९. ६, १९-२१)। धृतराष्ट्र-पुत्रों के साथ शल्य की रक्षा करते है (९. ८, २६)। पाञ्चाल्य वीर सुरथ का वध तथा अर्जुन के साथ युद्ध करते हैं (९. १४)। अन्य लोगों को साथ

लेकर भीम के विरुद्ध दुर्योधन की सहायता करते हैं, और शल्य को अपने रथ में बैठा कर युधिष्ठिर से उसकी रक्षा करते हैं (९. १६)। कृतवर्मा को युधिष्ठिर से बचाने के लिये अपने रथ में बैठा लेते हैं (९. १७, ८७)। भीम के साथ युद्ध करते हैं (९. २२, २०)। कृतवर्मा को अपने रथ में बैठाकर उनकी रक्षा करते हैं (९. २३, ८)। युद्ध में खो गये दुर्योधन को खोजना (९. २५, ४०–४४ ; ९. २७, ५. १७)। कृप, कृतवर्मन् तथा इन्होंने सञ्जय से यह सुना कि दुर्योधन सरोवर में प्रवेश कर गया है (९. २९, ५६–६०)। अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य का सरोवर पर जा कर दुर्योधन से युद्ध करने के विषय में वार्तालाप करना; इनकी बात कुछ व्याधों द्वारा सुन लेना तथा व्याधों द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन का पता बताना; जब युधिष्ठिर आदि दुर्योधन को ढूँढ़ते हुये सरोवर के निकट आते हैं तो कृप, कृतवर्मा तथा इनका पलायन (९. ३० ; ९. ६१, ३१)। रात्रि में सोते समय पाण्डवों का वध करने की इनकी योजना से कृष्ण का अवगत होना (९. ६३, ७१–७३)। पलायन कर रहे व्यक्तियों से दुर्योधन के धराशायी होने का समाचार जानना (९. ६४, ४२)। कृतवर्मा के साथ यह पुनः दुर्योधन के पास जाते हैं और समस्त पाञ्चालों के वध का आश्वासन देते हैं; दुर्योधन की आज्ञा से कृपाचार्य ने इन्हें सेनापति बनाया (९. ६५)। पाण्डवों से भयभीत होकर कृप और कृतवर्मा के साथ यह वन में चले गये, जहाँ इन्होंने न्यग्रोधवृक्ष के नीचे रात्रि व्यतीत की; वहाँ एक उलूक द्वारा अनेक पक्षियों का विनाश देखकर इनके मन में रात्रि के समय पाण्डवों का वध करने का विचार आया (१०. १)। कृपाचार्य का अश्वत्थामा को ईश्वर की शक्ति की प्रबलता बताते हुये कर्त्तव्य के विषय में सत्पुरुषों का परामर्श लेने की प्रेरणा देना; अश्वत्थामा का कृप तथा कृतवर्मन् को उत्तर देते हुये उन्हें अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना; कृपाचार्य द्वारा दूसरे दिन प्रातःकाल युद्ध करने का परामर्श देना और अश्वत्थामा का उसी रात्रि में सोते हुये पाण्डवों को मारने का आग्रह प्रकट करना; अश्वत्थामा और कृप का सम्वाद तथा तीनों का पाण्डवों के शिविर की ओर प्रस्थान (१०. २–५)। अश्वत्थामा का शिविर-द्वार पर एक अद्भुत पुरुष को देखकर उस पर अस्त्रों का प्रहार करना और अस्त्रों के अभाव में चिन्तित हो भगवान शिव की शरण में जाना; अश्वत्थामा द्वारा शिव की स्तुति, उनके सम्मुख एक अग्निवेदिका तथा भूतगणों का प्राकट्य और उनका आत्मसमर्पण करके भगवान शिव से खड्ग प्राप्त करना (१०. ६–७)। तदुपरान्त इनके द्वारा सर्वप्रथम धृष्टद्युम्न का और फिर उत्तमौजों, युधामन्यु और द्रौपदी के पुत्रों, और शिखण्डी इत्यादि का वध, जब कि कृप और कृतवर्मा का द्वार पर खड़े होकर पलायन करनेवाले लोगों का वध, तथा समस्त शिविर में आग लगा देना, राक्षस तथा पिशाच मृत व्यक्तियों के शव का भक्षण करते हैं; जब यह लोग शिविर के समस्त पाण्डवों का वध—पाँच पाण्डव उस समय वहाँ नहीं थे—कर चुके तब वहाँ से चले गये (१०. ८)। यह लोग पुनः दुर्योधन के पास गये; वहाँ इन्होंने दुर्योधन से अपने कृत्य का वर्णन किया और उससे धन्यवाद प्राप्त किया (१०. ९ ; १०. १३, ३)। द्रौपदी के आग्रह पर नकुल को सारथी के रूप में लेकर भीमसेन द्वारा अश्वत्थामा पर आक्रमण के लिये प्रस्थान (१०. ११, २८–३१)। कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर से यह बताना कि अश्वत्थामा ने किस प्रकार मनुष्यों पर प्रहार न करने का आश्वासन देने पर द्रोणाचार्य से ब्रह्मशिरस् अस्त्र प्राप्त किया था और किस प्रकार अश्वत्थामा ने स्वयं कृष्ण से भी सुदर्शन चक्र माँगा था किन्तु उसे उठा न सका (१०. १२)। जब अश्वत्थामा गंगा-तट पर अन्य ऋषियों के साथ महर्षि व्यास के पास बैठे थे तो उन्होंने भीम को अपनी ओर आते हुये तथा कृष्ण और अर्जुन को भीम को समझाते हुए देखा; तब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र को इषीका नामक तृण में स्थित करके 'पाण्डवों के सम्पूर्ण विनाश' का मन्त्र पढ़ कर चलाया (१०. १३)। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने भी उस दिव्यास्त्र का प्रयोग किया जिसे उन्होंने द्रोणाचार्य से सीखा था; परिणामस्वरूप समस्त लोक भय से काँप उठे और पर्वत, वन और वृक्षों सहित सारी पृथिवी हिलने लगी; उस समय वहाँ नारद और व्यास एक साथ उपस्थित हुये और अश्वत्थामा तथा अर्जुन को शान्त करने के लिए उनके प्रज्वलित अस्त्रों के बीच में खड़े हो गये (१०. १४)। अर्जुन ने तत्काल अपने अस्त्र को वापस बुला लिया, किन्तु आत्मसंयम के अभाव के कारण अश्वत्थामा अपने अस्त्र का उपसंहार न कर सके; व्यास के समझाने पर उन्होंने अपने दिव्यास्त्र को पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं पर गिराया और पाण्डवों से प्राण-दान प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपनी वह मणि पाण्डवों को दे दी जो समस्त संकटों से रक्षा करती थी (१०. १५)। व्यास की स्वीकृति से श्रीकृष्ण ने यह वरदान दिया कि उत्तरा का गर्भस्थ शिशु परिक्षित मृत तो पैदा होगा, किन्तु वह पुनः जीवित हो जायेगा; जब कि भ्रूण-हत्या के पाप में अश्वत्थामा को समस्त विपन्नताओं और व्याधियों से ग्रसित हो कर तीन सहस्र वर्षों तक वन में भ्रमण करना पड़ेगा; कृष्ण के इस शाप के पश्चात् अश्वत्थामा ने मणि प्रदान करके वन-गमन किया (१०. १६)। अश्वत्थामा की सफलता का वास्तविक कारण रुद्र की सहायता थी (१०. १७ ; ११. १, ३; ११. ९, ३)। जब धृतराष्ट्र स्त्रियों सहित युद्ध क्षेत्र को देखने और मृतकों का संस्कार करने के लिये गये तो नगर के थोड़ा बाहर उनसे कृप और कृतवर्मा सहित अश्वत्थामा मिले और उन्होंने धृतराष्ट्र से रात्रि में पाण्डव-सेना के संहार का वर्णन किया; तदुपरान्त पाण्डवों के भय से यह लोग चले गये तथा अश्वत्थामा ने व्यास के आश्रम में शरण ली (११. ११ ; १२. १४, २०; १२. २७, १८; १३. ६, ३३; १३. १५०, ४२; १४. ६६, १६; १६. ६, १७)। महाभारत में अश्वत्थामा के निम्नलिखित नाम मिलते हैं जिन्हें व० स्था० पर देखिये, **आचार्यनन्दन, आचार्यपुत्र, आचार्यसुत, आचार्यतनय, आचार्यसत्तम, द्रौणि, द्रोणायनि, द्रोणपुत्र, द्रोणसूनु, गुरुपुत्र, गुरोःसुत, अङ्गिरसांवरिष्ठः, भारताचार्यपुत्र ।**

२. अश्वत्थामन् मालव नरेश इन्द्रवर्मन का हाथी, जिसका भीम ने द्रोणाचार्य को इस भ्रम में डालने के लिए वध किया था कि स्वयं उनका (द्रोणाचार्य का) पुत्र मारा गया (७. १९०, १५–१७. ५०–५१; ७. १९३, ५३. ५५; १२. २७, १८)।

अश्वनदी--कुन्तीभोज देश में स्थित चर्मण्वती नदी की एक सहायक। नवजात कर्ण को एक पिटारी में बन्द करके कुन्ती ने इसी नदी में बहा दिया था (३. ३०८, ७. ९. २२. २५)।

१. अश्वपति, अश्व का भ्राता था (१. ६५, २४) जो राजा हार्दिक्य के रूप में अवतरित हुआ था (१. ६७, १४–१५)।

२. अश्वपति--मद्र देश के राजा। सन्तान-प्राप्ति के लिये इन्होंने सावित्री की आराधना की थी (३. २९३, ५–१०) जिससे प्रसन्न होकर सावित्री ने इन्हें वरदान दिया (३, २९३, १३); सावित्री के वरदान से इन्हें सावित्री नामक कन्या प्राप्त हुई (२. २९३, २४); इन्होंने अपनी कन्या सावित्री को वर खोजने के लिये भेजा (३. २९३, ३३)। इन्होंने नारद जी से सत्यवान के गुण-दोषों के विषय में प्रश्न किये (३. २९४, १४. १६)। देखिये ३. २९५, १६। इन्हें मालवी के गर्भ से १०० पुत्रों की प्राप्ति हुई थी (३. २९९, १३)।

अश्वबन्ध : घोड़ों को वश में करने वाला सवार (४. ३, ३)।

१. अश्वमेध (१. १, ९१)—देखिये **आश्वमेधिकपर्व**।

२. अश्वमेध एक प्राचीन देश का नाम है। इस देश का राजा रोचमान था जिसे दिग्विजय के समय भीमसेन ने विजित किया था (२. २९, ८)।

अश्वमेधदत्त : शतानीक और वैदेही का पुत्र, तथा जनमेजय का पौत्र (१. ९५, ८६)।

अश्वमेधिक : अश्वमेध का वर्णन करने वाला आश्वमेधिकपर्व का एक अवान्तरपर्व (१४. १–१५)। देखिये 'अश्वमेधिकं समासाद्य भोजनं सार्वकामिकम्', (१८. ६, ६९)।

अश्वमेधिकपर्व : महाभारत का ९३ वाँ अवान्तरपर्व (१४. १–१५)।

"वैशम्पायन ने कहा कि जब राजा धृतराष्ट्र भीष्म को जलाञ्जलि दे चुके तब युधिष्ठिर गंगाजी के तट पर शोकमग्न होकर गिर पड़े। कृष्ण की प्रेरणा से भीमसेन ने उन्हें पकड़ लिया और अन्य पाण्डवगण उनके चतुर्दिक बैठ गये। उस समय धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा कि वास्तव में शोक तो मुझे और गान्धारी को करना चाहिये जिसके एक सौ पुत्र स्वप्न में प्राप्त हुये धन की भाँति नष्ट हो गये। इस सम्बन्ध में धृतराष्ट्र ने विदुर के उस उपदेश का भी स्मरण किया जिसमें विदुर ने दुर्योधन का परित्याग करने तथा कर्ण और शकुनि को उससे न मिलने देने के लिये सावधान किया था (१४. १)।" "कृष्ण ने भी भीष्म, व्यास, नारद और विदुर द्वारा प्रतिपादित क्षत्रियों के कर्तव्य का स्मरण दिलाते हुये युधिष्ठिर को समझाया। व्यास ने भी उन्हें समझाते हुए (१४. २), इस बात का स्मरण दिलाया कि देव और असुर यज्ञ का आयोजन करते हैं और यज्ञों द्वारा ही देवगण दानवों का विनाश करते हैं। उन्होंने राम दाशरथि तथा भरत दौष्मन्ति का उदाहरण देते हुए युधिष्ठिर को राजसूय, सर्वमेध, नरमेध तथा मुख्यरूप से अश्वमेध यज्ञ करने के लिये प्रेरित करते हुये यज्ञों के लिये हिमवत् में ऐसे उपयुक्त स्थान का निर्देश किया जहाँ करन्धम जाति के मरुत्त के यज्ञ के पश्चात् ब्राह्मणों द्वारा छोड़ी गई प्रचुर स्वर्ण-राशि उपलब्ध थी। युधिष्ठिर के पूछने पर व्यास ने मरुत्त के इतिहास का वर्णन किया (१४. ३)।" व्यास का सम्भाषण सुनने के पश्चात् उक्त सम्पत्ति से अपना यज्ञ सम्पन्न करने के लिये उद्यत होकर अपने मन्त्रियों से परामर्श किया (१४. ४, १०)। "वैशम्पायन ने कहा कि व्यास के सम्भाषण के पश्चात् युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कृष्ण ने कहा कि युधिष्ठिर ने अपने कर्त्तव्यकर्म को अभी पूरा नहीं किया है और न अभी अपने शत्रुओं पर विजय ही पाई है। कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि 'तुम अपने शरीर के भीतर बैठे अपने शत्रु से कैसे अनभिज्ञ रह सकते हो'? तदुपरान्त उन्होंने वृत्र के साथ इन्द्र के युद्ध का वर्णन किया (१४. ११)।" "तदुपरान्त कृष्ण ने कहा कि शारीरिक व्याधियाँ और स्वास्थ्य शीत, उष्णता, और वायु के सन्तुलन पर निर्भर करते हैं; इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य और व्याधियाँ अन्तःकरण के सत्व, रज और तम पर निर्भर करती हैं; हर्ष से शोक बाधित होता है और शोक से हर्ष; अतः युधिष्ठिर को अपने अतीत के दुःखों का स्मरण नहीं करना चाहिये; अब ऐसा समय आ गया है कि तुम्हें (युधिष्ठिर को) अपने मन के साथ अकेले ही युद्ध करना होगा (१४. १२)।" "केवल बाह्य पदार्थों के त्यागमात्र से सिद्धि नहीं मिलती; 'मम' ये दो अक्षर ही मृत्युरूप हैं और 'न मम' यह तीन अक्षरों का पद सनातन ब्रह्म की प्राप्ति का कारण है; यदि इस जगत की सत्ता का विनाश न होना ही निश्चित हो तो प्राणियों के शरीर का भेदन करके भी मनुष्य अहिंसा का ही फल प्राप्त करेगा; योगी पुरुष अनेक जन्मों के अभ्यास से योग को ही मोक्ष का मार्ग मानता है। कृष्ण ने काम द्वारा उच्चरित प्राचीन इस श्लोक का उद्धरण दिया कि, 'कोई भी प्राणी वास्तविक उपाय (निर्ममता और योगाभ्यास) का आश्रय लिये बिना मेरा नाश नहीं कर सकता। इस प्रकार उन्होंने युधिष्ठिर को समृद्धिशाली महायज्ञों का अनुष्ठान करने के लिये प्रेरित किया (१४. १३)।" "वैशम्पायन ने कहा कि साक्षात् विष्टरश्रवा इत्यादि के समझाये जाने पर युधिष्ठिर का मन शान्त हुआ और उन्होंने अपने बन्धु-बान्धवों का श्राद्धकर्म सम्पन्न किया। उन्होंने व्यास और नारद से कहा कि हम लोग आप लोगों को आगे करके ही हिमालय पर्वत की यात्रा करेंगे और वहाँ से धन को अपनी यज्ञशाला में ले आयेंगे। तदुपरान्त युधिष्ठिर, कृष्ण, तथा अर्जुन से विदा लेकर महर्षि वहाँ से अन्तर्धान हो गये। भीष्म की मृत्यु के पश्चात् शौच-कार्य सम्पन्न करते हुये पाण्डवों ने कुछ समय वहीं व्यतीत किया और भीष्म तथा कर्ण आदि कुरुवंशियों के निमित्त श्राद्ध में ब्राह्मणों को बड़े-बड़े दान दिये। तदुपरान्त युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे करके हस्तिनापुर में प्रवेश किया। (१४. १४)।" "जनमेजय के यह पूछने पर कि अपने राष्ट्र पर विजय पा लेने तथा सब ओर शान्ति स्थापित कर लेने के पश्चात् कृष्ण और अर्जुन ने क्या किया, वैशम्पायन ने इस प्रकार उत्तर दिया: 'जब पाण्डवों ने राष्ट्र पर विजय पा ली और राज्य में शान्ति स्थापित हो गयी तो कृष्ण और अर्जुन अत्यन्त आनन्दमग्न होकर सुरम्य स्थानों में विचरण करने लगे। नदियों के तटों और पवित्र तीर्थों में विचरण करते हुए ये दोनों आनन्दवन में विहार करनेवाले अश्विनी कुमारों के समान हर्ष का अनुभव करते थे। इन्द्रप्रस्थ लौटकर कृष्ण और अर्जुन मय-निर्मित रमणीय सभा में प्रवेश करके मनोविनोद करने लगे। बातचीत के प्रसङ्ग में ये दोनों मित्र सदैव देवताओं तथा ऋषियों के वंशों की चर्चा किया करते थे। सम्बन्धी जनों के शोक से सन्तप्त-अर्जुन को श्रीकृष्ण ने शान्त किया। तदुपरान्त अनेक समय तक बलदेव, वसुदेव तथा अन्य वृष्णिवंशी श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन से वंचित रहने वाले श्रीकृष्ण ने द्वारावती जाने की आज्ञा चाही और अर्जुन से अपने साथ चलकर युधिष्ठिर को यह संवाद देने का प्रस्ताव किया। उस समय अर्जुन ने अत्यन्त शोक के साथ 'तथास्तु' कहकर कृष्ण के जाने के प्रस्ताव को स्वीकार किया (१४. १५)। 'ततोऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपाप-प्रणाशनम्', १. २, ७९; 'ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम्', १. २, ३३८; 'इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेतन्महाद्भुतम्', १. २, ३४३।

अश्वमेधेश्वर=रोचमान, जिसका भीम ने वध किया था (२. २९, ८)।

अश्वयुज् एक मास (आश्विन्) का नाम है। जो इस मास में ब्राह्मणों को घृतदान करता है उसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार रूप प्रदान करते हैं (१३. ६५, १०)।

अश्वयुज (विशेषण) = आश्विन मास का नाम। जो इस मास को एक समय ही भोजन करके व्यतीत करता है वह पवित्र, नाना प्रकार के वाहनों से सम्पन्न, तथा अनेक पुत्रों से युक्त होता है (१३. १०६, २९)।

अश्वरथा, गन्धमादन पर्वत के नीचे आर्ष्टिषेण के आश्रम के पास बहने वाली एक नदी का नाम है (३. १६०, २१)।

१. अश्वराज=उच्चैःश्रवस् (१. १७, ४); देखिये १. २०, ३ भी।

२. अश्वराज का कृष्ण ने वध किया था (५. १३०, ४७)।

अश्वलायन : विश्वामित्र का एक पुत्र (१३. ४, ५४)।

अश्ववती, एक नदी का नाम है (१३. १६५, २५)।

अश्वशङ्कु : अश्व का भ्राता (१. ६५, २३)।

१. अश्वशिरस्=अश्व का भ्राता (१. ६५, २३), जो कि केकयों के एक राजा के रूप में अवतरित हुआ था। देखिये १. ६७, १० भी।

२. अश्वशिरस्=विष्णु, जो कि बदरी वृक्ष के नीचे सनातन वेदों का पाठ करता है (१२, १२७, ३)। देखिये १२. ३४०. ९३; १२. ३४७, ६. ९. ५९ (वेदों का आश्रय बन गया); ३४७, ७५ (-हरिः)। यह उद्धरण शान्तिपर्व के अन्तर्गत नारायणीय (१२. ३३५-३५१) से लिये गये हैं, जहाँ यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार अश्व का शिरधारण करके विष्णु ने वेदों का मधु और कैटभ नामक दानवों (जिन्होंने उसी समय वेदों को ब्रह्मा के पास से अपहृत कर लिया था जब ब्रह्मा उनकी सृष्टि करने के पश्चात् लोकों की रचना करने जा रहे थे) से उद्धार किया और अपने अश्वरूपी शिर को उत्तर-पूर्वी सागर में स्थित कर दिया था, तथा मधु और कैटभ का वध करके वेदों को पुनः ब्रह्मा को अर्पित कर दिया था जिससे वह लोकों की रचना कर सकें।

३. अश्वशिरस् (क्लीव) : विष्णु का अश्वशिरस् रूप (३. ३१५, १४)।

४. अश्वशिरस् (क्लीव) : एक पवित्र स्थान जहाँ युधिष्ठिर को द्यूत-कला की शिक्षा देने के पश्चात् बृहदश्व ने स्नान किया था; नीलकण्ठी के अनुसार बृहदश्व ने युधिष्ठिर को अश्वविद्या की शिक्षा दी थी (३. ७९, २१)। – **स्थानम् :** उस स्थान का नाम है जहाँ स्वप्न में अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ जाकर पाशुपत-अस्त्र प्राप्त किया था (७. ८०, ३२)।

अश्वसेन : एक सर्प जिसकी उतङ्क ने इस प्रकार स्तुति की थी 'तं

नागराजमस्तौषं कुण्डलार्थाय तक्षकम् । तक्षकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचराबुभौ ॥' तक्षक का पुत्र जिसकी खाण्डवदाह के समय इन्द्र ने रक्षा की थी (१. २२७, ९)। खाण्डववन-दाह के समय अर्जुन ने इसकी माता का वध किया था (१. २२७, ८) ; जिससे कुपित होकर यह पाताल चला गया था और वहाँ से कर्ण के साथ अर्जुन के अन्तिम युद्ध के समय अर्जुन का वध करने के लिये कर्ण के सर्पमुख बाण में प्रविष्ट होकर अर्जुन के किरीट को दग्ध किया (८. ९०, २०–२३), किन्तु कृष्ण ने इसे पहचान कर अर्जुन से इसका वध करा दिया (८. ९०, ५०–५४)। देखिये ९. ६१, ३६ भी।

अश्वातक : दुर्योधन की सेना के अन्तर्गत अश्वतक देश के सैनिक (६. ५१, १५)।

अश्विन् (द्वय) देवों के श्रेष्ठ भिषज हैं (१. ३, ५६)। अपूर्व सुन्दरता के कारण इनका बहुधा तुलनाओं में उल्लेख मिलता है (१. १०२, ६९)। यह दिव्य अण्ड से उत्पन्न हुये थे (१. १, ३४; १, १, ११४)। इन्होंने जीवरूपी पक्षी को काल के बन्धन से मुक्त किया (१. ३, ५९–६३)। इनकी 'नासत्य' नाम से प्रसिद्धि (१. ३, ६६)। उपमन्यु अपनी नेत्र ज्योति की प्राप्ति के हेतु इनकी स्तुति करते हैं (१. ३, ६७–६९. ७१. ७३)। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने अश्विनीरूप धारण करके भगवान सूर्य के अंश से अन्तरिक्ष में अश्विनीकुमारों को उत्पन्न किया (१. ६६, ३५)। १. ६६, ४०; १. ६७, १११; १. ७६, ४७। माद्री के गर्भ से अश्विनीकुमारों ने नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया (१. ९५, ६३; १. ६३, ११७, १. १२४, १६–१८; १. १२६, २६)। नकुल और सहदेव (१. १७०, ६५)। कृष्णा के स्वयंवर के समय उपस्थित (१. ८७, ६)। १. १९७, ३; १. १९७, २७; १. २२२, ३०। खाण्डवदाह के समय श्रीकृष्ण-अर्जुन से युद्ध करने के लिये आये हुये देवताओं में यह भी थे (१. २२७, ३३)। अग्नि की स्तुति करते हुये मण्डपाल अग्नि को अश्विनों के साथ समीकृत करता है (१. २२९, ३१)। ब्रह्माजी की सभा में उपस्थित (२. ११, ४४)। रुद्र, साध्य, आदित्य, वसु तथा अश्विनद्वय, योगजनित ऐश्वर्य से युक्त होकर प्राणियों का धारण-पोषण करते हैं (३. २, ८१)। सुरवीथी नाम से प्रसिद्ध नक्षत्र-मार्ग पर साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनद्वय, आदित्य, वसु, रुद्र तथा विशुद्ध ब्रह्मर्षिगण और अनेक राजर्षिगण, एवं दिलीप आदि बहुत से राजा तथा गन्धर्वों से अर्जुन मिले थे (३. ४३, १२–१४)। इन्द्रपुरी में उपस्थित (३. ४६, २४)। ३. ५१, ७; ३. ५३, २७; ३. ६२, २४; ३. ८३ १७। इन्होंने अगम्य तीर्थों में स्नान किया है (३. ८५, १०५; ३. ९०, ३३)। वसु, मरुतों, यम, आदित्य, इत्यादि के साथ अश्विनीकुमारों का पाण्डवों ने दर्शन किया (३. ११८, ११–१३)। १. ११९, २१; ३. १२१, २१–२४। च्यवन की पत्नी और शर्याति की पुत्री सुकन्या से प्रेमाभिव्यक्ति करते हैं किन्तु सुकन्या के आग्रह पर यह अपने साथ एक सरोवर में स्नान कराकर च्यवन को पुनः युवा बना देते हैं; सुकन्या च्यवन के साथ ही रहने का वरण करती है; च्यवन ने अश्विनों को भी सोम अर्पित करने के लिए शर्याति को सहमत कर लिया और अपनी शक्ति द्वारा इन्द्र को भी इसे स्वीकृत करने के लिये विवश किया (३. १२३–१२५; तु० की० १३. १५६, में सर्वत्र)। ३. १३४, ९; ३. १३९. १५। जब देवश्रेष्ठ इन्द्र मरुद्गणों के साथ गंगातट पर आकर प्रतिदिन जप करते हैं, तब साध्य तथा अश्विनीकुमार भी उनकी परिचर्या में रहते हैं (३. १४२, ७)। ३. १६२, १७। अर्जुन ने अमरावती में वसु, रुद्र, साध्य, मरुतों, आदित्य और अश्विनीकुमारों का दर्शन किया (३. १६८, ५३)। मार्कण्डेय ने नारायण (अर्थात् कृष्ण) के शरीर में समस्त देवों, साध्य, रुद्र, आदित्य, गुह्यक, पितर, सर्प, नाग, सुपर्ण, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सराओं तथा यक्षों इत्यादि का दर्शन किया (३. १८८, ११९)। ३. २९४, १८; ४. ५६, ३; ५. ६१, ६; ५, १०५, ३५। दुर्योधन की उपस्थिति में अग्नि, आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, विश्वेदेव, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी कृष्ण के मुख से प्रकट हुये (५. १३१, ६) ६. १६९, ६। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, तथा मरुद्गण, पितृ-समुदाय, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और सिद्ध-समुदाय इत्यादि, विस्मित होकर कृष्ण को देखते हैं (६. ३५, ६. २२)। नकुल और सहदेव हैं (६. ५९, ८७; ७. २३, ८८)। कृष्ण के कान हैं (६. ६५, ६१)। ७. ३४, ७; ७. ४०, १८। मन्धातृ को उनके पिता के पेट से निकाला था (७. ६२, २)। ७. ७६, ४। मानों शर्याति के यज्ञ में इन्द्र के साथ दोनों अश्विनीकुमार आ रहे हों, (७. ८४, १८)। ८. ४६, ८३; ८. ५६, ९४; ८. ६५, १८–१९। रुद्र, वसु, आदित्य तथा दोनों अश्विनीकुमार, इत्यादि स्कन्द को घेर कर खड़े हो गये (९, ४५, ६)। स्कन्द को वर्धन और नन्दन नामक दो पार्षद प्रदान किये (९. ४५, ३८)। १०. १३, ७। साध्य, वसु, अश्विनद्वय, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण और सिद्ध पूर्वकाल में आदिदेव भगवान विष्णु के द्वारा रचे गये हैं जो क्षात्र-धर्म में ही स्थित रहते हैं (१२. ६४, ९)। आचार्य और पुरोहितगणों सहित, देवता, आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, मरुद्गण तथा अश्विनद्वय, आदि सभी सनातन वैदिक धर्म में प्रतिष्ठित हुये (१२. १६६ २२)। वरुण, कुबेर, इन्द्र और यमराज, इन चारों लोकपालों, शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्यगण, अश्विनद्वय, रुद्र, आदित्य, वसु, तथा अन्य देवताओं के जो लोक हैं वे सब परमात्मा के परमधाम के सम्मुख नरक ही हैं (१२. १९८, ५)। १२. २०८, १७; १२. २२७, ९; १२. २८०, २७; १२. २८३, ८ 'भिषजां वरौ')। आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनद्वय, वायु, विश्वेदेव, साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, तथा अन्य स्वर्गवासी देवता, तपस्या से ही सिद्धि को प्राप्त हुये हैं (१२. २९५, १६)। यदि भौंहों से प्राणों का उत्क्रमण हो तो अश्विनीकुमारों को प्राप्त होता है (१२. ३१७, ६)। अश्विनद्वय, देवगण, गन्धर्व, नारद, पर्वत गन्धर्वराज विश्वावसु, सिद्ध, तथा अप्सरायें लोकेश्वर महादेवजी की आराधना करती हैं (१२. ३२३, १९)। १२. ३४०, १०३ (अश्विभ्यां पतये चैव मरुतां पतये तथा); १२. ३४२, २४ ; १३. २, १२ ; १३. १४, १४० (रुद्रादित्याश्विनामपि)। बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, तथा अश्विनद्वय, सम्पूर्ण स्तुतियों द्वारा महादेव की स्तुति कर रहे थे (१३. १४, ३९१)। अश्विनमास में ब्राह्मणों को घृतदान करनेवाले व्यक्ति को अश्विनद्वय प्रसन्न होकर सुन्दर रूप प्रदान करते हैं (१३. ६५, ७. १०)। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनद्वय, तथा साध्य, आदि देवता ताड़कासुर नामक दैत्य के पराक्रम से संत्रस्त हो उठे (१३. ८४, ८०)। अग्नि के अश्रु से अश्विनद्वय प्रकट हुए (१३. ८५, १०९)। स्कन्द के जन्म पर उसे देखने के लिये वरुण, वायु, आकाश, इत्यादि के साथ अश्विनद्वय भी पधारे थे (१३. ८६, १६)। इक्कीस तथा उन्तीस दिनों पर एक समय भोजन करनेवालों को अश्विनद्वय के लोकों की प्राप्ति होती है (१३. १०७, ९५. १२६)। इन्होंने देवदूत को पितरों के पास जाने की आज्ञा प्रदान की थी (१३. १२५, १९)। पूर्णिमा के दिन विशेष प्रकार से चन्द्रमा के लिये बलिअर्पण करने पर उसे अन्य देवों सहित अश्विनद्वय भी ग्रहण करते हैं जिससे चन्द्रमा तथा सागर की वृद्धि होती है (१३. १३४, ५)। नासत्य और दश्र ही अश्विनीकुमारों के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनकी उत्पत्ति सूर्य के वीर्य से तथा अश्वरूपधारिणी संज्ञा देवी की नासिका से हुई थी (१३. १५०, १७)। इनकी स्तुति करनेवाला किसी भी व्याधि से पीड़ित नहीं होता (१३. १५०, ८१)। १३. १५६, १६, १८-१९. २१. २३. ३१–३२। अन्य देवों के साथ यह भी श्रीकृष्ण से प्रगट हुये हैं (१३. १५८, ३४)। इन्हें रुद्र के साथ समीकृत किया गया है। (१३. १६०, ३९ ; १३. १६५, १६)। मुञ्जवान् पर्वत पर रुद्र साध्य, विश्वेदेव, वसु, यम, वरुण आदि के साथ अश्विनद्वय शिव की उपासना करते हैं (१४. ८, ५)। १४. ९, ३१ ; १४. १०, ६ ; १४. १५, ४ ; १४. ५२, ३७ ; १५. ३१, १२ (यमजौ, अर्थात् नकुल और सहदेव) ; १६. ४, २५;

१७. ३, २३। युधिष्ठिर के नरक-दर्शन के पश्चात् उनके पास इन्द्र के साथ मरुद्गण, वसुगण, अश्विनद्वय, साध्य, रुद्र, आदित्य, तथा अन्यान्य देवलोकवासी सिद्ध तथा महर्षि उस स्थान पर आये (१८. ३, ७)। युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव को स्वर्ग में अश्विनीकुमारों के स्थान पर विराजमान देखा (१८. ४, ९)। १८. ६, ६। तु० की० नासत्यौ, अश्विनीसुतौ, सूर्यपुत्रौ, देवभिषजौ, अश्विभ्यां पति (= विष्णु)।

१. अश्विनी, एक नक्षत्र का नाम है। जो मनुष्य अश्विनी नक्षत्र में अश्वों सहित रथ का दान करता है, वह हाथी, अश्व और रथ से संपन्न कुल में तेजस्वी पुत्र के रूप में जन्म लेता है (१३. ६४, ३४)। इस नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाले मनुष्य को अश्वों की प्राप्ति होती है (१३. ८९, १४)। रूप सौन्दर्य और लोकप्रियता की प्राप्ति के लिये मार्गशीर्ष मास में चान्द्रव्रत करते हुए नक्षत्रों को कथित विधि के अनुसार उन-उन अङ्गों में स्थापित करे तथा अश्विनी नक्षत्र को जाँघों में स्थापित करे (१३. ११०, ४ तु० की० अश्लेषा)। तु० की० **२. अश्विनी**।

२. अश्विनी, एक तीर्थ का नाम है जिसमें स्नान करने पर मृत्यु के पश्चात् मनुष्य को रूप और तेज की प्राप्ति होती है (१३. २५, २१)।

अश्विनीकुमारतीर्थ में स्नान करने से रूप की प्राप्ति होती है (३. ८३, १७)।

अश्विनीतीर्थ, एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने से मनुष्य रूपवान् होता है (१३. २५, २१)।

अश्विनीसुतौ = नकुल और सहदेव : १२. १६७, २८ (यथार्थ रूप से = अश्विनौ देखिये **अश्विन्**)।

अश्विसुतौ = नकुल और सहदेव (१७. १, ३७)।

अष्टक, एक प्राचीन राजर्षि का नाम है। राजा ययाति, अष्टक, प्रतर्दन और शिवि से मिलकर स्वर्गलोक चले गये (१. ८६, ५)। जब ययाति स्वर्गलोग से गिरे तब अष्टक ने उन्हें देखा था (१. ८८, ६)। ययाति का, जो अष्टक के नाना थे, अहंकार आदि के विषय में संवाद हुआ था और इन्होंने अष्टक को अपना इतिहास बताया था (१. ८९, ३. १०, १२-१४)। ययाति ने अष्टक को उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में बताया जो सदैव अपने पुण्य कर्मों का ही वर्णन करते हैं (१. ९०, १. ३. ६. ९. १२. १७. २१)। ययाति और अष्टक का आश्रम-धर्म सम्बन्धी सम्वाद (१. ९१, १. ८. १०)। ययाति ने कहा कि अपने पुण्य का क्षय होने से वे अब भौम नरक में प्रवेश करने के लिये आकाश से गिर रहे हैं (१. ९२, १. ६. ९. ११)। "अष्टक तथा अन्य राजाओं ने ययाति से कहा, 'यदि आप हम में से एक-एक के दिये हुये लोकों को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्य लोकों को आपकी सेवा में समर्पित करके नरक में जाने को तैयार हैं।' किन्तु ययाति ने अष्टक आदि के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उस समय आकाश में पाँच सुवर्णमय रथ दृष्टिगत हुये जिन पर बैठ कर वे पाँचों लोग स्वर्ग चले गये। ययाति ने अष्टक आदि से कहा कि वे उन लोगों के नाना हैं (१. ९३, १०. १२. १४. १७. २०. २६)।" काम्यक वन के निवासी ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा, 'आप भी तीर्थों में स्नान कर राजा कार्तवीर्य अर्जुन, राजर्षि अष्टक, लोमपाद और भूमण्डल में सर्वत्र विदित सम्राट वीरवर भरत को मिलने वाले दुर्लभ लोकों को अवश्य प्राप्त कर लेंगे' (३. ९३, ८)। "युधिष्ठिर ने जब मार्कण्डेयजी से क्षत्रिय नरेशों के माहात्म्य का वर्णन करने के लिये कहा तब मार्कण्डेय जी इस प्रकार बोले : 'विश्वामित्र के पुत्र अष्टक के अश्वमेध यज्ञ में सभी राजा पधारे थे। एक दिन यज्ञ समाप्त होने पर अपने भाइयों सहित अष्टक रथ पर बैठकर स्वर्ग की ओर जा रहे थे। मार्ग में इन लोगों ने राजर्षि नारद को भी रथ पर बैठा लिया। तदनन्तर अष्टक के भ्राताओं ने देवर्षि नारद से पूछा : 'हम सब लोग दीर्घायु तथा सर्वगुणसंपन्न होने के कारण सदैव प्रसन्न रहते हैं। हम चारों को स्वर्गलोक में जाना है, किन्तु वहाँ से सर्वप्रथम कौन इस भूतल पर उतरेगा।' देवर्षि ने बताया कि सर्वप्रथम अष्टक ही उतरेंगे (३. १९८, १. ४. ५)।" 'अष्टकस्य शिबिश्चैव ययातिर्नहुषो गयः', (४. ५६, ९)। विश्वामित्र ने माधवी के गर्भ से अष्टक को उत्पन्न किया; तदनन्तर अष्टक चन्द्रपुरी के समान प्रकाशित विश्वामित्र की राजधानी में गया (५. ११९, १८. २०)। "ययाति स्वर्गलोक से प्रतर्दन, वसुमना, शिबि और अष्टक आदि अपने नातियों के बीच नैमिषारण्य में गिरे। अष्टक आदि उस समय वाजपेय यज्ञ सम्पन्न कर रहे थे। अष्टक आदि ने अपने समस्त यज्ञ का फल ययाति को देने का प्रस्ताव किया (५. १२१, १०)।" 'प्रतर्दनादष्टकश्च पृषदश्वोऽष्टकादपि', (१२. १६६, ८०)। 'ऋषिस्तथा गालवोऽथाष्टकश्च', (१३. ९४, ५. ३६)। 'महाभिषश्च विख्यातो निमिराजा तथाऽष्टकः', (१३. १६५, ५६)।

अष्टजिह्व, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ६२)।

अष्टवसु—दक्ष की कन्याओं के गर्भ से धर्म के आठ पुत्र उत्पन्न हुये जिनको अष्टवसु कहते हैं। अष्टवसुओं के नाम यह हैं : धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष, और प्रभास (१. ६६, १७-१८)। पुराणों में अष्टवसुओं के नामों के सम्बन्ध में कुछ मतभेद मिलता है। उदाहरण के लिये, विष्णुपुराण (१. १५, १११) में इनके नाम यह हैं : आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष, और प्रभास। भागवतपुराण (६. ६, ११) में यह नाम मिलते हैं : द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, और विभावसु। हरिवंश (१. ३, ३८) के अनुसार यह नाम हैं : आप, धर, ध्रुव, सोम, अनिल, अनल, प्रत्यूष, और प्रभास। शान्तनु द्वारा गंगा के गर्भ से इनके जन्म का वर्णन (१. ९८, १२. १९)। वसिष्ठ द्वारा वसुओं को मनुष्ययोनि में जन्म लेने का शाप (१. ९९, ३२)। इन लोगों के अनुनय करने पर वसिष्ठजी ने कहा कि ये सब लोग प्रतिवर्ष एक-एक करके शाप से मुक्त हो जायेंगे (१. ९९, ३८)। परशुराम से युद्ध करते समय इन लोगों ने भीष्म को प्रस्वापनास्त्र प्रदान किया था (५. १८३, ११-१२)। भीष्म ने अपनी मृत्यु का जब निश्चय किया तब आकाश में स्थित अष्टवसुओं ने भीष्म के निश्चय का समर्थन किया (६. ११९, ३६ ३७)।

अष्टविवाह—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, तथा पैशाच—ये आठ विवाह हैं (१. ७३, ८-९)।

अष्टादशावरा: भोजवंश के अठारह कुलों की जातियों का नाम है जिन्होंने यह विचार किया था कि वे ३०० वर्षों में भी जरासन्ध की सेना का विनाश नहीं कर सकते (२. १४, ३५)। युद्ध में जरासन्ध के पक्ष में युद्ध करनेवाला हंस नामक एक राजा जब इनसे युद्ध कर रहा था तब वह बलराम जी के हाथों मारा गया (२. १४, ४०)। रैवत दुर्ग इन लोगों द्वारा सुरक्षित था (२. १४, ५५)।

१. अष्टावक्र—वनपर्व में अष्टावक्र के चरित्र के वर्णन का उल्लेख (१. २, १७४)। "कहोड मुनि के पुत्र अष्टावक्र और उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु, ये दोनों महर्षि समस्त भू-मण्डल के वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ थे। एक बार इन दोनों ने अपने विपक्षी बन्दी को विदेहराज के यज्ञमण्डप में शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया। अष्टावक्र द्वारा पराजित होने पर बन्दिन् को जल में फेंक दिया गया; कहोड ने अष्टावक्र को समङ्ग नदी में स्नान करने के लिये कहा। पिता की आज्ञा के अनुसार जल में प्रवेश करते ही इनके समस्त अङ्ग सीधे हो गये (३. १३२–१३४ : १३२, ३. ५. ७. १२. १७. १८. २३; १३३, १. ३. ६. ९. ११. १७. २३. २५. २७. २९; १३४, १. ७. ९. ११. १३. १५. १७. १९. २०–२६. ३०. ३१. ३८)। अष्टावक्र के सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिये देखिये **अष्टावक्रीय**। अष्टावक्र ने सुप्रभा का वरण किया और उत्तर दिशा की यात्रा की (१३. १९, १०. ११. १५. २६. ३७. ७३. ८८)। उत्तर दिशा की देवी ने इनकी परीक्षा ली (१३. २०, १२. १४. १६. २०. २३)। अष्टावक्र अपने आश्रम लौट आये और सुप्रभा के साथ विवाह करने के पश्चात् वहीं रहने लगे (१३. २१, २. १०. १८)।

२. अष्टावक्र, एक तीर्थ का नाम है जहाँ स्नान करने के माहात्म्य का भीष्म ने वर्णन किया था (१३. २५, ४१)।

अष्टावक्र-दिक्-संवाद : (अष्टावक्र और उत्तर दिशा की देवी के बीच संवाद)—"भीष्म ने कहा; पूर्वकाल की बात है, महातपस्वी अष्टावक्र विवाह करना चाहते थे और इसके लिये उन्होंने वदान्य ऋषि से उनकी कन्या माँगी। उस कन्या का नाम सुप्रभा था। वदान्य ऋषि ने अष्टावक्र को इस प्रकार उत्तर दिया, 'मैं तुम्हें अपनी कन्या अवश्य दूँगा, परन्तु सर्वप्रथम तुम यहाँ से परमपवित्र उत्तर दिशा की ओर जाओ। वहाँ तुम्हें उसका दर्शन होगा।' वदान्य ऋषि ने उत्तर दिशा का मार्ग बताते हुये कहा, 'हिमवत् पर्वत को पार करने पर तुमको सिद्धों और चारणों से सेवित रुद्र के निवासस्थान कैलाश पर्वत का दर्शन होगा। उस स्थान से भी आगे जाने पर तुम्हें एक स्त्री का दर्शन होगा। यत्नपूर्वक उस स्त्री का दर्शन और पूजन करके लौटने के पश्चात ही तुम मेरी पुत्री का पाणिग्रहण कर सकते हो।' तदनन्तर अष्टावक्र उत्तरोत्तर दिशा की ओर चल दिये। सिद्ध और चारणों से सेवित हिमवत् पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने बाहुदा नदी में स्नान तथा देवताओं का तर्पण किया। प्रातःकाल उठने पर वे रुद्राणी-रुद्र नामक तीर्थ में गये, और वहाँ भी सरोवर के तट पर कुछ काल तक विश्राम करते रहे। विश्राम के पश्चात् उठकर वे कैलास की ओर चल दिये। कुछ दूर जाने पर उन्होंने कुबेर की अलकापुरी को देखा। वहीं कुबेर का कमल पुष्पों से सुशोभित सरोवर भी था। उस सरोवर की रक्षा करनेवाले मणिभद्र आदि राक्षसों ने अष्टावक्र को देखकर उनका स्वागत किया। कुबेर को भी जब अष्टावक्र के आगमन का समाचार मिला तब उन्होंने आकर अष्टावक्र का स्वागत किया। कुबेर ने अष्टावक्र को अपने भवन में ले जाकर अपना आसन दिया। तदनन्तर उर्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी इत्यादि अनेक अप्सरायें नृत्य करने लगीं और गन्धर्व-गण अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्र बजाने लगे। अष्टावक्र कुबेर के भवन में नृत्य देखते हुये एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहे। तदनन्तर कैलाश और मन्दराचल पर्वत को पार करके वे किरात वेशधारी महादेव जी के उत्तम स्थान पर पहुँचे। उसके भी आगे जाने पर उन्हें एक अत्यन्त रमणीय वनस्थली का दर्शन हुआ जो सभी ऋतुओं के फल-मूलों, पक्षिसमूहों, और मनोरम वन-प्रान्तों से सुशोभित हो रही थी। वहाँ अष्टावक्र ने एक दिव्य आश्रम देखा। उन्होंने वहाँ एक दिव्य स्वर्णमय भवन भी देखा जिसमें सब प्रकार के रत्न जड़े थे। उस आश्रम के चारों ओर के मनोरम दृश्यों ने अष्टावक्र को अत्यन्त आकर्षित किया। अष्टावक्र ने वहीं ठहरने के विचार से भवन के मुखद्वार पर जाकर अपने आगमन का समाचार दिया। उनके इस प्रकार कहते ही उस भवन से सात कन्यायें निकलीं जिनके साथ भवन के भीतर प्रवेश करने पर उन्होंने एक जराजीर्ण वृद्ध स्त्री को देखा। उस वृद्धा स्त्री ने अष्टावक्र को अपने प्रेमपाश में आबद्ध करने का अत्यधिक प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता न मिली। इस स्त्री ने अपने जीर्ण रूप को परिवर्तित करके कन्या का रूप धारण कर लिया, जिससे अष्टावक्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ (१३. १९-२०)।" "अष्टावक्र ने उस स्त्री से रूप-परिवर्तित करने का कारण पूछा। उस स्त्री ने अपने रूप-परिवर्तन का कारण बताते हुये अष्टावक्र से कहा, 'आप मुझे ही उत्तर दिशा समझें; आपको दृढ़ करने और आपकी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने यह कार्य किया। आपने अपने धर्म से विचलित न होकर पुण्य लोकों को जीत लिया है। आज आपसे ब्रह्मा तथा इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हैं। आप यहाँ जिस कार्य के लिये आये थे वह सफल हो गया। वदान्य ऋषि ने आपको जिन उपदेशों के लिये मेरे पास भेजा था वह भी मैं आपको दे चुकी। अब आप कुशलपूर्वक अपने घर को लौटें। मार्ग में आपको कोई श्रम अथवा कष्ट नहीं होगा। घर पहुँचकर आपको मनोनीत कन्या प्राप्त होगी और आपके द्वारा वह पुत्रवती भी होगी।' स्त्री की बात सुनकर अष्टावक्र उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और तदुपरान्त अपने घर लौट आये। घर लौटने पर वदान्य ऋषि को अपनी यात्रा का समस्त विवरण बताने के पश्चात् अष्टावक्र ने वदान्य की कन्या के साथ विवाह किया और अपने आश्रम में उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे (१३. २१)।"

अष्टावक्रीय (अष्टावक्र की कथा)—'अष्टावक्रीयमत्रैव विवादो यत्र बन्दिना', (१.२, १७४)। "महर्षि उद्दालक ने अपने सेवापरायण शिष्य कहोड को वेदशास्त्र का ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ अपनी पुत्री सुजाता को भी पत्नीरूप में समर्पित कर दिया। कुछ काल के पश्चात् सुजाता गर्भवती हुई और उसका वह गर्भ अग्नि के समान तेजस्वी था। एक दिन स्वाध्याय में लगे हुये अपने पिता कहोड मुनि से उस गर्भस्थ बालक ने कहा, 'आप रात भर वेद-पाठ करते हैं तब भी आपका अध्ययन शुद्ध उच्चारणपूर्वक नहीं हो पाता।' महर्षि कहोड इस प्रकार का वचन सुन कर कुपित हो उठे और गर्भस्थ बालक को शाप देते हुये बोले, 'तू आठों अङ्गों से टेढ़ा हो जायगा।' इस शाप के अनुसार अष्टावक्र आठ अङ्गों से टेढ़े हो कर उत्पन्न हुए और इसीलिए उनका नाम अष्टावक्र हुआ। गर्भ जब दसवें महीने में चल रहा था तो सुजाता ने अपने पति कहोड से अपने प्रसवकाल के संकट से पार होने के लिये धन-प्राप्त करने का आग्रह किया। पत्नी का वचन सुनकर कहोड मुनि धन के लिये राजा जनक की सभा में गये। उस समय शास्त्रार्थी पण्डित बन्दी ने ब्रह्मर्षि कहोड को विवाद में परास्त करके जल में डुबा दिया। उद्दालक ने सुजाता से अपने गर्भस्थ बालक को यह वृत्तान्त न बताने के लिये कहा। फलस्वरूप जन्म लेने के बाद ही अष्टावक्र को पिता के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चल सका और वे अपने नाना उद्दालक को ही पिता, और श्वेतकेतु को अपना भ्राता मानते रहे। तदन्तर एक दिन बारह वर्ष की अवस्था में अष्टावक्र जब उद्दालक की गोद में बैठे थे, श्वेतकेतु ने उन्हें दूर खींचते हुये कहा, 'यह तेरे पिता की गोद नहीं है।' इस कटूक्ति को सुनकर दुःखी अष्टावक्र ने अपनी माता से अपने पिता के सम्बन्ध में पूछा। माता से सत्य का पता लगने पर अष्टावक्र ने श्वेतकेतु से राजा जनक की सभा में चलने के लिये कहा। तदुपरान्त दोनों मामा-भानजे (श्वेतकेतु और अष्टावक्र) राजा जनक के यज्ञमण्डप में गये (३. १३२)।" "उसी समय राजा जनक का मार्ग में ही अष्टावक्र से साक्षात्कार हो गया। जब उस समय राज-सेवकों ने अष्टावक्र को मार्ग से हटाना चाहा तब उन्होंने ब्राह्मणों का महत्त्व बताते हुये अपने को यज्ञ-मण्डप में जाने की अनुमति माँगी। द्वारपाल के साथ वार्तालाप के पश्चात् अष्टावक्र ने राजा जनक की ययाति के साथ तुलना करते हुये उनसे कहा, 'हमने सुना है आपके यहाँ बन्दी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं जो ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में पराजित करके उन्हें पानी में डुबा देते हैं। मैं यह समाचार सुनकर अद्वैत ब्रह्म के विषय में बन्दी से शास्त्रार्थ करने के लिये उपस्थित हुआ हूँ।' तदुपरान्त अष्टावक्र ने कालचक्र, मेघ और विद्युत, मत्स्य, अण्ड, पाषाण और नदी से सम्बन्धित राजा जनक के अनेक जटिल प्रश्नों का उत्तर देकर यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त की (३. १३३)।" "तदुपरान्त यज्ञ-मण्डप में बन्दी के सम्मुख उपस्थित होकर अष्टावक्र ने कुपित होकर उससे इस प्रकार कहा, 'मेरे पूछे हुये प्रश्नों का तुम उत्तर दो, और तुम्हारे प्रश्नों का मैं उत्तर दूँगा।' तब बन्दी ने उनकी गणना करायी जो केवल एक हैं (जैसे अग्नि, सूर्य, इन्द्र और यम), अष्टावक्र ने इसके उत्तर में उनकी गणना कराई जो दो-दो हैं (जैसे इन्द्र और अग्नि, दो देवर्षि नारद और पर्वत, दो अश्विन्, रथ के दो चक्र तथा पति और पत्नी)। तदुपरान्त बन्दी ने उनकी गणना कराई जो तीन-तीन हैं, और अष्टावक्र ने उत्तर में ऐसों की जो चार-चार हैं (जैसे ब्राह्मणों के चार आश्रम, चार वर्ण, चार दिशायें तथा चार चरणों से युक्त वाणी)। तब बन्दी ने उनकी गणना कराई जो पाँच-पाँच हैं (जैसे ५ यज्ञाग्नि, ५ पंक्ति छन्द, ५ यज्ञ, ५ इन्द्रियाँ, ५ पञ्चचूड़ा अप्सरा, तथा पंचनद); इसके उत्तर में अष्टावक्र ने उनकी

गणना कराई जो छः-छः हैं (जैसे अग्नि की स्थापना के समय ६ गायों की दक्षिणा, ६ ऋतुयें, मन सहित ज्ञानेन्द्रियाँ, ६ कृत्तिकायें, तथा ६ साद्यस्क यक्ष)। बन्दी ने तब उनकी गणना कराई जो सात-सात हैं (जैसे ७ ग्राम्यपशु, ७ वन्यपशु, ७ छन्द, सप्तर्षि, पूजन के ७ संक्षिप्त उपचार, तथा वीणा के ७ तार); उत्तर में अष्टावक्र ने उनकी गणना कराई जो आठ-आठ हैं (जैसे तराजू में लगी ८ सन की डोरियाँ, ८ पैरों वाला शरभ, अष्टवसु, तथा अष्टकोणयूप)। तब बन्दी ने उनकी गणना कराई जो नौ-नौ हैं (जैसे ९ सामधेनि ऋचा, सृष्टि के ९ तत्व, बृहती छन्द के प्रत्येक चरण के ९ अक्षर तथा गणित के ९ अंक); अष्टावक्र ने उत्तर में ऐसों की गणना कराई जो दस-दस हैं (जैसे १० दिशायें, १० सौ से मिलकर बना एक सहस्र, गर्भाधान की १० मास की अवधि, १० निन्दक, शरीर की १० अवस्थायें तथा १० पूजनीय पुरुष)। तब बन्दी ने ऐसों की गणना कराई जो ग्यारह-ग्यारह होते हैं (जैसे प्राणधारी पशुओं के ११ विषय, जीवों को प्रकाशित करनेवाली ११ इन्द्रियाँ, ११ भूप, प्राणियों के ११ विकार, तथा ११ रुद्र); अष्टावक्र ने उत्तर में ऐसों की गणना कराई जो बारह-बारह होते हैं (जैसे संवत्सर के १२ मास, जगती-छन्द के प्रत्येक पाद के १२ अक्षर, १२ दिनों का प्राकृत यज्ञ, तथा १२ आदित्य)। तदुपरान्त जब तेरह की गणना कराते हुये (जैसे त्रयोदशी तिथि, तथा १३ द्वीपों से युक्त यह पृथिवी) आधा श्लोक कहने के पश्चात् बन्दी चुप हो गया तब अष्टावक्र ने उस श्लोक के द्वितीयार्ध को पूर्ण कर दिया (एतावदुक्त्वा विरराम बन्दी श्लोकस्यार्धं व्याजहाराष्टवक्रः)। अष्टावक्र द्वारा श्लोक की पूर्त्ति किये जाने पर बन्दी चुप हो गया, परन्तु अष्टावक्र बोलते ही रहे। यह सब देखकर दर्शकों और श्रोताओं ने अष्टावक्र का आदर-सत्कारपूर्वक पूजन किया। अष्टावक्र ने कहा, 'इस बन्दी ने अनेक शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को पानी में डुबाया है अतः इसे भी पानी में डुबा देना चाहिये।' बन्दी ने कहा, 'मैं राजा वरुण का पुत्र हूँ, और मेरे पिता के यहाँ भी आपके इस यज्ञ के समान ही बारह वर्षों का यज्ञसत्र चल रहा है। उसी यज्ञ के अनुष्ठान के लिये जल में डुबाने के बहाने कुछ चुने हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणों को मैंने वरुण लोक भेज दिया था। वे सब ब्राह्मण वरुण का यज्ञ देखने के पश्चात् यहाँ लौट कर आ रहे हैं।' तदुपरान्त बन्दी द्वारा जल में डुबाये गये समस्त ब्राह्मण वहाँ अधिक तेजस्वी रूप से उपस्थित हुये, और राजा की आज्ञा लेकर बन्दी स्वयं समुद्र के जल में समा गये। अष्टावक्र के पिता कहोड ने अष्टावक्र को समङ्गा नदी में स्नान कराया। जिससे उनके समस्त अङ्ग सीधे हो गये। समङ्गा नदी भी उसी समय से पापनाशक के रूप में प्रसिद्ध हुई (३. १३४)।"

असङ्ख्येय = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

असङ्ग (अनुराग रहित), दण्ड के नामों में से एक है (१२. १२१, २२)।

असंज्ञ = महापुरुष (१२. ३३८, ४ में ४६वाँ नाम)।

असत् = शिव (सहस्र नामों में से एक); = महापुरुष (१२. ३३८, ४ पर १८वाँ नाम); विष्णु (सहस्र नामों में से एक)। **असतः प्रभव—इत्यादि** = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. असमञ्जस् राजा सगर के एक पुत्र का नाम है। सगर ने असमञ्जस् के पुत्र अंशुमान को बताया कि उसके साठ हजार पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि में स्वाहा हो गये हैं तथा उसने पुरवासियों के हित और धर्म की रक्षा करते हुये उसके (अंशुमान् के) पिता को भी त्याग दिया है (३. १०७, ३५-३७)। युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि सगर ने किसलिये अपने दुस्त्यज वीर पुत्र असमञ्जस् का परित्याग किया था, लोमश ने इस प्रकार उत्तर दिया : "सगर का वह पुत्र, जिसे रानी शैव्या ने उत्पन्न किया था, असमञ्जस् के नाम से विख्यात हुआ। वह जहाँ-तहाँ खेल-कूद में लगे हुये पुरवासियों के दुर्बल बालकों के समीप सहसा पहुँच जाता और चीखते-चिल्लाते रहने पर भी उनका गला पकड़ कर उन्हें नदी में फेंक देता था। इस दुःख से दुःखित हो समस्त पुरवासी भय और शोक में मग्न हो राजा सगर के पास आये और हाथ जोड़कर कहने लगे कि महाराज आप असमञ्जस् के घोर भय से उनकी रक्षा करें। पुरवासियों का दुःखद समाचार सुनकर सगर ने अपने मन्त्रियों को असमञ्जस् को तत्काल नगर से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी (३. १०७, ३८-४३)।" सगर के ज्येष्ठ पुत्र का नाम है, जिसे पुरवासियों के बच्चों को सरयू नदी में डुबा देने के अपराध में सगर ने नगर से बाहर निकाल दिया था (१२. ५७, ८. ९; २. ६२, ७)।

असमञ्जः सुत = अंशुमत् (३. १०७, ३५)।

असमाम्नाय = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

असहाय = शिव, सहस्र नामों में से एक (१६. १७, १२०)।

असह्य = शिव (१०. ७, ६)।

असि : (खड्ग, व्यक्ति) : १२. १६६, ४३. ४६.. ४७. ६९। वाग्दण्ड, अर्थदण्ड, कायदण्ड, और प्राणदण्ड—ये चारों दण्ड—असि (तलवार) के ही दुर्निवार और दुर्धर्षरूप हैं (१२. १६६, ७१)। प्रजा के द्वारा धर्म का उल्लंघन होने पर असि के उपरोल्लिखित चारों दण्डों का यथोचित प्रयोग करके धर्म की रक्षा करनी चाहिये (१२. १६६, ७२)। इसके असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय, और धर्मपाल ये आठ नाम हैं (१२. १६६, ८३. ८४)।

असिक्नी, भारतवर्ष की एक नदी का नाम है (६. ९, २३)।

१. असित अथवा **असित देवल**—'नारदो श्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन्' (१. १, १०७)। 'असितो देवलश्चैव नारदः पर्वतस्तथा', (१. ५३, ८)। 'असितं चार्तिमन्तं च सुनीथं चापि यः स्मरेत्। दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत्॥', (१. ५८, २३)। 'द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ', (१. ६६, २६)। 'असितो ह्यपि देवर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया', (१. १००, ८१)। 'यवीयान्देवलस्यैष वने भ्राता तपस्यति। धौम्य उत्कोचके तीर्थे तं वृणुध्वं यदीच्छथ॥', (१. १८३, २)। 'असितो देवलः', (२. ४, १०)। 'असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित्', (२. ११, २४)। व्यास ने देवर्षि नारद, देवल, और असित मुनि को आगे करके युधिष्ठिर का अभिषेक किया (२. ५३, १०)। मुनिश्रेष्ठ असित देवल ने, जो सदा इन लोकद्वारों में भ्रमण करते रहते हैं, ऐसा कहा है कि जुआरिओं के साथ शठतापूर्वक जूआ खेलना भी पाप है (२. ५९, ९)। 'त्रीणि ज्योतींषि पुरुष इति वै देवलोऽब्रवीत्।', (२. ७२, ५)। 'स्रष्टारं सर्वलोकानामसितो देवलोऽब्रवीत्', (३. १२, ५०)। 'असितो देवलश्चैव', (३. ८५, १२०)। 'असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे', (६. ३४, १३)। देवास्त्वत्संभवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत्', (६. ६८, ७)। द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अभेद्य कवच पहनाते हुये असित देवल इत्यादि का आवाहन किया था (७. ९४, ४५)। असित देवल ने आदित्यतीर्थ में महान योग-शक्ति प्राप्त की थी (९. ४९, २४)। "प्राचीनकाल की बात है, आदित्य-तीर्थ में मुनि असित देवल गृहस्थ धर्म का आश्रय लेकर निवास करते थे। ये मुनि सदा ब्रह्मचर्य पालन में तत्पर रहते थे। एक दिन जैगीषव्य मुनि, जो सन्यासी थे, योग का आश्रय लेकर उसी तीर्थ में आये। जैगीषव्य सदा योग परायण रहकर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे और देवल के ही आश्रम में रहते थे। यद्यपि जैगीषव्य उसी आश्रम में रहते थे तथापि देवल मुनि उन्हें दिखाकर योगसाधन नहीं करते थे। बहुत दिनों के पश्चात् एक समय देवल मुनि जैगीषव्य मुनि को हर समय नहीं देख पाते थे, क्योंकि जैगीषव्य केवल भोजन या भिक्षा लेने के लिये ही देवल के पास आते थे। जैगीषव्य को देखकर देवल उनके प्रति अत्यन्त गौरव और प्रेम प्रगट करते हुये उनका पूजन किया करते थे। अनेक वर्षों तक उन्होंने ऐसा ही किया, किन्तु जैगीषव्य देवल से एक बात भी नहीं बोले। तब देवल मुनि हाथ में कलश लेकर आकाशमार्ग से समुद्रतट की ओर चल दिये। नदीपति समुद्र के पास पहुँचते ही देवल ने देखा कि जैगीषव्य वहाँ पहले से ही

विराजमान हैं। तब महर्षि असित देवल को चिन्ता के साथ-साथ आश्चर्य भी हुआ। समुद्र में विधिपूर्वक स्नान और जपादि नित्यकर्म पूर्ण करके देवल जल से भरा हुआ कलश लेकर पुनः अपने आश्रम पर लौट आये। अपने आश्रम में प्रवेश करते ही देवल मुनि ने वहाँ बैठे हुये जैगीषव्य को देखा, किन्तु जैगीषव्य ने उस समय भी उनसे कोई बात न की। तब चिन्तित होकर देवल अपने आश्रम से आकाश को उड़ चले। जैगीषव्य की परीक्षा लेने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया। ऊपर जाकर उन्होंने अनेक अन्तरिक्षचारी एकाग्रचित्त सिद्धों को देखा। साथ ही उन सिद्धों के द्वारा पूजित जैगीषव्य मुनि का भी उन्हें दर्शन हुआ। तदनन्तर असित देवल ने जैगीषव्य को स्वर्गलोक, और वहाँ से पितृलोक, तथा उसके बाद यमलोक जाते देखा। इसी प्रकार विभिन्न लोकों में जैगीषव्य को देखते हुये देवल ने जैगीषव्य को ब्रह्मसत्र करनेवालों के लोक में भी जाते देखा। तदनन्तर देवल ने देखा कि जैगीषव्य मुनि अपने तेज से ऊपर-ऊपर के तीन लोकों को पार करके पतिव्रताओं के लोक में जा रहे हैं। इसके बाद असित ने जैगीषव्य को पुनः किसी लोक में स्थित नहीं देखा। तब असित ने उन लोकों में रहनेवाले ब्रह्मयाजी सिद्धों और साधु पुरुषों से जैगीषव्य के अदृश्य हो जाने का कारण पूछा। सिद्धों ने बताया कि जैगीषव्य मुनि सनातन ब्रह्मलोक में चले गये हैं। सिद्धों की बात सुनकर देवल मुनि ने तत्काल ऊपर उठने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिली। सिद्धों ने देवल को बताया कि जहाँ जैगीषव्य गये हैं उस लोक में जाने की उनमें (असित देवल में) शक्ति नहीं है। तदुपरान्त देवल मुनि पुनः क्रमानुसार उन समस्त लोकों में होते हुये अपने आश्रम लौट आये, जहाँ उन्होंने जैगीषव्य को पुनः देखा। तब देवल ने जैगीषव्य मुनि से कहा, 'मैं मोक्षधर्म का आश्रय लेना चाहता हूँ।' देवल की बात सुनकर जैगीषव्य ने उन्हें ज्ञान का उपदेश दिया और साथ ही योग की उत्तम विधि बताकर शास्त्रानुसार कर्तव्याकर्तव्य को भी बताया। इतना ही नहीं उन्होंने शास्त्रीयविधि के अनुसार देवल के सन्यास ग्रहण सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न किये। देवल का सन्यास लेने का विचार जानकर पितरों सहित समस्त प्राणी यह कहते हुये विलाप करने लगे कि 'अब हमें कौन विभाग-पूर्वक अन्नदान करेगा ?' उन प्राणियों का करुणायुक्त वचन सुनकर देवल ने मोक्षधर्म को त्याग देने का विचार किया। उनके इस विचार को देखकर फल-मूल, कुश, पुष्प और ओषधियाँ आदि सहस्रों पदार्थ यह कहकर विलाप करने लगे कि, 'यह दुर्बुद्धि और शूद्र देवल पुनः हमारा उच्छेद करेगा। इसीलिये तो यह सम्पूर्ण भूतों को अभय दान देकर भी अब अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण नहीं करता।' इन सब बातों पर विचार करके देवल ने गार्हस्थ्य धर्म के परित्याग तथा मोक्षधर्म के ग्रहण का निश्चय किया, और इससे ही उन्होंने परमसिद्धि तथा उत्तम योग प्राप्त कर लिया। तदनन्तर देवल ने बृहस्पति आदि समस्त देवताओं के साथ जैगीषव्य मुनि के तप की प्रशंसा की। उस समय नारद मुनि ने इसका प्रतिवाद किया (९. ५०, १. ६. ८. ९–१२. १५. १७. २२. २५. २७. ३४. ३६. ३८–४५. ४७. ४९. ५०–५५. ५८. ६०. ६२. ६३. ६६. ६८)।" निम्न स्थलों पर भी यह नाम आता है : १२. ४७, ७; २०७, ४; २२९, ३–५. ८. ११; २७५, १. २. ४; २९२, १५; ३१८, १९. ५९; १३. १८, १७; ६६, २४; १३०, ११; १६५, ४५; १६७, १३; १६८, १९; १४. ५२, १५; ९१, ३५; १५. २०, १; २९, ९; १८. ५, ५६।

२. असित मान्धातृ द्वारा विजित एक राजा का नाम है (७. ६२, ११; १२. २९, ८८)।

३. असित = कृष्ण (९. ६०, १२)।

४. असित, एक पर्वत का नाम है (३. ८९. ११)।

असितध्वज, अर्जुन के जन्मोत्सव पर पधारने वाले एक वैनतेय का नाम है (१. १२३, ७३)।

असिता, एक अप्सरा का नाम है जो अर्जुन के जन्मोत्सव पर आई थी (१. १२३, ६३)।

असिपत्रवन (एक वन का नाम है जहाँ वृक्षों की पत्तियाँ तलवार के समान हैं; एक नरक स्थान) : १२. ३२१, ३२; १८. २, २३।

असिलोमन्, एक दानव जो कश्यप-पत्नी दनु के पुत्रों में से एक था (१. ६५, २३)।

असुर (बहु० **राः**), देवताओं के शत्रुओं के लिये प्रयुक्त हुआ है। इन्होंने अमृत-प्राप्ति के लिये देवों के साथ समुद्र-मन्थन किया था, किन्तु इन्हें अमृत पान करने का अवसर नहीं मिल पाया जिसके कारण देवों के साथ इनका भयंकर युद्ध हुआ जिसमें ये पराजित हुये। 'असुराणां वधार्थे', (१. १, १६५)। 'देवतासुरसंश्रिताः', (१. ४, ५)। 'देवैरसुरसङ्घैश्च', (१. १७, १२)। 'ब्रह्मस्तथैवासुरदानवाः', (१. १८, १४)। 'सुरासुर-गणान्', (१. १८, १८. १९)। 'सुरामसुराणां च', (१. १९, ११)। 'ततोऽसुराश्चक्रभिन्ना (१. १९, १३)। 'निहताश्चमहासुराः', (१. १९, १५)। 'तानसुरगणान्न्यकृन्तत', (१. १९, २४. २५. २८)। 'महासुराः प्रविविशुः', (१. १९, २९)। 'असुराणां च बान्धवम्', (१. २१, ७ पर नीलकण्ठी में 'बान्धवं शरणम्',)। 'असुराणां परायणम्', (१. २१, १५)। 'पातालज्वलनावासमसुराणां तथालयम्', (१. २२, ९)। 'यूयं मन्यध्वमसुरार्दनाः', (१. २३, ११)। 'अभूतपूर्वं संग्रामे तदा देवासुरेऽपि च', (१. ३०, ३५)। 'असुरपुरविदारणाः सुरा', (१. ३०. ५१)। 'अथ देवासुराः सर्वे मन्मथुर्वरुणालयम्', (१. ३९, ३)। 'असुरा जज्ञिरे क्षेत्रे राज्ञाम्', (१. ६४, २७)। 'जज्ञिरे भुवि भूतेषु तेषु तेष्वसुरा विभो', (१. ६४, २९)। 'भूरियत्नैर्महासुरैः', (१. ६४, ३७)। 'ससुरासुरलोका-नामशेषेण मनोगतम्', (१. ६४, ४४)। 'दनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुर-पुङ्गवाः। विक्षरो बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः॥', (१. ६५, ३३)। 'असुराणामुपाध्यायः शुक्रस्त्वृषिसुतोऽभवत्। ख्याताश्चोशनसः पुत्राश्चत्वारोऽ-सुरयाजकाः॥', (१. ६५, ३६)। 'असुराणां सुराणां च पुराणे संश्रुतो मया (१. ६५, ३८)। 'कश्यपस्य सुरासुराः', (१. ६६, ३४)। 'पञ्चैते जज्ञिरे राजन् वीर्यवन्तो महासुराः', (१. ६७, ११)। 'तुहुण्ड इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः', (१. ६७, १९)। 'इषुपान्नाम यस्तेषामसुराणां बला-धिकः', (१. ६५, २०)। 'एकचक्र इति ख्यात आसीद्यस्तु महासुरः', (१. ६५, २१)। 'विरूपाक्षस्तु दैतेयश्चित्रयोधी महासुरः', (१. ६५, २२)। निचन्द्रश्चन्द्रवक्रस्तु य आसीदसुरोत्तमः', (१. ६५, २५)। 'द्वितीयः शलभस्तेषामसुराणां बभूव ह', (१. ६५, ३०)। 'असुराणां तु यः सूर्यः श्रीमांश्चैव महासुरः।', (१. ६५, ५८)। 'देवासुरमनुष्याणाम्' (१. ६५, १४६)। 'सुराणामसुराणां च', (१. ७६, ५)। 'असुरास्तु निर्जघ्नुयान्सुरान्', (१. ७६, ९)। 'असुरेन्द्रपुरे शुक्रं दृष्ट्वा वाक्यमुवाच ह', (१. ७६, १८)। 'असुरास्तत्र', (१. ७६, ३७. ४३. ५१. ५५)। 'असुरैर्हन्यमाने च', (१. ७७, १०)। 'असुरमन्दिरम्', (१. ७८, २६)। 'देवतासुराः', (१. ८०, ९)। 'यत्किञ्चिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव', (१. ८०, ११)। 'शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम्', (१. ८१, ९)। 'असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः', (१. ८१, ११)। 'तमेवासुरधर्मं त्वमा-स्थिता', (१. ८३, १९)। 'सुराणां संमतो नित्यमसुराणां च भारत', (१. १००, ३६)। 'यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्य वा', (१. १००, ८३)। 'मनुष्यानसुरांस्तथा', (१. १०१, ७)। 'तद्युद्धमासीत्तुमुलं घोरं देवासुरोपमम्', (१. १०२, ३०)। 'रक्षत्यसुरराण्नित्यमिमं जनपदं बली', (१. १६०, ४)। 'सुपर्णनागासुरसिद्धजुष्टम्', (१. १८७, १३)। 'सर्वैः सुरासुरैः', (१. २२५, ३०)। 'ततोऽसुराः सगन्धर्वाः', (१. २२७, २४)। 'असुरसूदनः' = इन्द्र, (१. २२७, ३०)। 'यथासुरान्कालकेयान्', (२. ४, २३)। 'सुरासुरान्', (२. ५, ७)। 'येनासुरान्पराजित्य जगत्पाति शतक्रतुः', (२. २२, १९)। 'इति स्म भाषते काव्यो जम्भत्यागे महा-सुरान्', (२. ६२, १२)। 'असुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्', (३. ३, २९)। 'अधर्मरुचयः कृष्ण निहताः शतशोऽसुराः', (३. १२, २८)। 'ते हयांश्च रथं चैव तदा दारुकमेव च। छादयामासुरसुरास्तैर्बाणैर्मर्मभेदिभिः॥', (३.

२०, २३)। 'गन्धर्वासुरराक्षसाः', (३. ३१, २९) । 'निकृत्या निर्जिता देवैरसुराः पार्थिवर्षभ', (३. ३३, ६०) । 'अमित्रांस्तेजसा मृद्नन्नसुरानिव वृत्रहा', (३. ३३, ८६) । 'सुरोऽसुरः', (३. ३१, ४०) । 'अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः सदेवासुरमानुषैः', (३. ३९, ७६) । 'तदैतदस्त्रं निमुक्तं येन दग्धा महासुराः', (३. ४१, ३९) । 'उद्वृत्ता ह्यसुराः केचिन्निवातकवचा इति', (३. ४७, १५. २१) । 'धर्मं तत्यजिरेऽसुराः', (३. ९४, ६) । 'तीर्थानि देवा विविशुर्नाविशन्भारतासुराः', (३. ९४, ७) । 'लक्ष्मीस्तु देवानगमदलक्ष्मीरसुरान्नृप', (३. ९४, १०) । 'असुरोरगरक्षांसि', (३. १०७, २५) । 'सुरासुरैः', (३. १२४, २०) । 'स्वस्ति देवासुरेभ्यः', (३. १३९, १५) । 'सुरासुरनिषेवितम्', (३. १५८, ७) । 'शतशोऽसुराः', (३. १७०, १०. १४. १८) । 'तास्वसुरोत्तमाः', (३. १७१, २६) 'हृतेष्वसुरसङ्घेषु दारास्तेषां तु सर्वशः', (३. १७२, २१) । 'असुरैर्नित्यमुदितैः', (३. १७३, ५) । 'महर्षियक्षगन्धर्वपन्नगासुरराक्षसैः', (३. १७३, १०) । 'रक्षितं कालकेयैश्च पौलोमैश्च महासुरैः', (३. १७३, १३) । 'प्रभग्नं पुरमासुरम्', (३. १७३, ३०) । 'सुरासुरैरसह्यं हि कर्म', (३. १७३, ५९) । 'निहत्य च महासुरान्', (३. १७३, ६७) । 'अतिदेवासुरं कर्म कृतमेव त्वया रणे', (३. १७३, ७२) । 'सयक्षासुरगन्धर्वैः', (३. १७३, ७५) । 'धनञ्जयेनासुरतर्जनेन', (३. १८३, १३) । 'मनुना च प्रजाः सर्वा सदेवासुरमानुषाः' (३. १८७, ५३) । 'नष्टे देवासुरगणे', (३. १८८, १३) । 'सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्', (३. १८८, ७३. ८६) । 'सुरासुरैः', (३. १८९, ४६) । 'वृत्ते देवासुरे राजन् सङ्ग्रामे लोमहर्षणे', (३. १९३, ६) । 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (३. २००, ७८) । 'ससुरासुरमानवाः', (३. २०१, १४) । 'देवासुरमहोरगाः', (३. २०१, १८) । 'असुराणां समृद्धानां विनाशश्च त्वयाकृतः', (३. २०१, २२) । 'देवासुराः', (३. २२३, ३) । 'सुरासुरनमस्कृतः', (३. २२४, ६) । 'असुरैर्वध्यमानं तत् पावकैरिव काननम्', (३. २३१, ६६) । 'महासुरान्', (३. २३१, ७१) । 'त्वं भावनः सर्वसुरासुराणाम्', (३. २३२, १३) । 'भीष्मद्रोणकृपादींश्च प्रवेक्ष्यन्त्यपरेऽसुराः', (३. २५२, ११) । 'कीलालजं न खादेयं करिष्ये चासुरव्रतम्', (३. २५७, १७) । 'गन्धर्वदेवासुरतो', (३. २७५, २५) । 'देवासुरैः', (३. २७६, ४) । 'स सम्प्रहारो ववृधे भीरूणां भयवर्धनः । लोमसंहर्षणो घोरः पुरा देवासुरे यथा ॥', (३. २८५, ११) । 'मानुषासुरभोगिनाम्', (३. २९१, ४८) । 'सदेवासुरगन्धर्वा', (३. २९१, ४९) । 'अस्मिन्मार्गे निषीदेयुः सेन्द्राऽपि ससुरासुराः ।', (३. २९२, ३) । 'नासुराश्च न राक्षसाः', (३. ३१३, ३३) । 'असुराणां क्षयंकरीम्', (४. ६, ३) । 'कालखञ्जाइवासुराः', (४. १३, १६) । 'देवासुरसमो', (४. ३२, ५) । 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (४. ३५, १९) । 'सर्वैरपि सुरासुरैः', (४. ३९, ११) । 'नासुरान् न च राक्षसान्', (४. ५०, १७) । 'तयोर्देवासुरसमः सन्निपातो महानभूत्', (४. ५९, २) । 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (४. ६१, ३०) । 'सदेवासुरमानुषम्', (५. १०, ३. १९) । 'त्रस्तं सासुरगन्धर्वं', (५. १२, २) । 'नासुरेषु न देवेषु', (५. १५, १४) । 'यद्वित्तमसुरेषु नः', (५. ३५, १८) । 'देवासुराः', (५. ४२, २) 'पुरं घोरमसुराणामसह्यम्', (५. ४८, ८०) । 'असुराणां विनाशाय', (५. ४९, ९) । 'तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम् । अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥', (५. ४९, ११) । 'अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः', (५. ४९, २०) । 'देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता', (५. ६१, १४) । 'नासुरा न च राक्षसाः', (५. ६१, २०) । 'असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।', (५. ७४, १२) । 'सुराणामसुराणां च', (५. ७८, ७) । 'असुरा कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः', (५. १००, ५) । 'मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहतैः', (५. १०२, ११) । 'देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति (५. १०४, ३) । 'सर्वान् सुरासुरान्', (५. १०७, १५) । 'अत्राहिताः कृतप्रज्ञाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये उदयंस्तान् हि सर्वान् वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः ॥', (५, १०८, १६) । 'असुराणां', (५. ११५, १२) । 'बहुदेवासुरालोका', (५. ११६, ३) । 'अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः', (५. १२४, ५०) । 'सयक्षासुरपन्नगान्', (५. १२४, ५३) । 'पराभविष्यन्त्यसुराः', (५. १२८, ४३. ४४) । 'देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः । न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुद्ध्यसि केशवम् ॥', (५. १३०, ३८) । 'निर्मोचने षट्सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः ।', (५. १३०, ४५) । 'ससुरासुरराक्षसम्', (५. १५६, २०) । 'देवासुरेष्वपि', (५. १६५, १२) । 'जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा', (५. १७८, ७) 'ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे । इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥', (५. १८४, २२) । 'गन्धर्वासुरराक्षसाः', (६. ६, १८) । 'देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।', (६. ६, ५२) । 'सुरासुरानवस्फूर्जन्', (६. २१, १५) । 'गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्ष्यन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे', (६. ३५, २२) । 'प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं मुनि', (६. ४५, ८५) । 'निघ्नन्नमित्रान् समरे वज्रपाणिरिवासुरान्', (६. ४८, ३६) । 'यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत्', (६. ५०, ४०) । 'सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि', (६. ५२, ६१) । 'यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत् सुदारुणम्', (६. ५८, १३) । 'तत्रासुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै', (६. ६५, ७३) । 'असुराणां वधार्थाय संभवस्त्र महीतले', (६. ६६, ८) । 'यथा देवासुरे युद्धे', (६. ७७, १२; ७९, २७) । 'विमथ्नतो देवमहासुरौघमर्थाऽर्णवस्यादियुगे', (६. ८०, १८) । 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (६. ८२, ५५) । 'तमेकमना भूत्वा श्रृणु देवासुरोपमम्', (६. ८३, ११) । 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (६. ८६, ३८) । 'सदेवासुरगन्धर्वं लोकं', (६. ९८, ३) । 'यथा देवासुरे युद्धे', (६. ९८, ४६; १००, ५४) । 'सेन्द्रैरपि सुरासुरैः', (६. १०७, ७५. ७६) । 'वज्रहस्तमिवासुराः', (६. १०८, ३४) । 'वज्रपाणेरिवासुरान्', (७. ३, १५) । 'जिगीषन्तोऽसुरान् संख्ये कार्तिकेयमिवामराः', (७. ५, २१) । अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि', (७. १०, २८) । 'सेन्द्रैरपि सुरासुरैः', (७. १२, २८) । 'यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ', (७. १४, ४८) । कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम्', (७. १५, २) । 'यथाशक्रयौ राजन् युद्धे देवासुरे पुरा', (७. १९, ६) । 'सुरासुरनमस्कृतः', (७. २१, ३७) । 'युद्धमासीद्देवासुरोपमम्', (७. २५, २१) । 'पाण्ड्यमिन्द्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम्', (७. २५, ५७) । 'विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम्', (७. २९, ३७) । 'ससुरासुरगन्धर्वाः', (७. ३३, ११) । 'यथाऽसुरबलं घोरम्', (७. ३६, ४१) । 'स्कान्दस्येवासुरैः सह', (७. ३९, २) । 'जेतुं सुरासुरैः', (७. ४८, ३०) । 'सुरासुरैरवध्यम्', (७. ५९, ६) । 'देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः', (७. ६२, १) । 'देवासुरा नरा यक्षाः', (७. ६२, १६) । 'व्यूढे देवासुरे युद्धे', (७. ६३, ५) । 'देवासुरनरोरगाः', (७. ६९, १०) । 'असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा । दोग्धा द्विमूर्द्धा तत्रासीद्वत्सश्चासीद्विरोचनः ॥', (७. ६९, २०) । 'असुरसुरमनुष्याः', (७. ७३, ४८) । 'नासुरोरगराक्षसाः', (७. ७४, ११; ७५, १४) । 'सुरासुराश्च', (७. ७७, २६) । 'तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना । इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जंभस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥', (७. ८१, २५) । 'विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः', (७. ९३, ४१) । 'सासुरसुराः', (७. ९४, ३६) । 'यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे', (७. १०२, १७) । 'यथादेवासुरे युद्धे', (७. १०५, २२) । 'ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्तताद्भुतः ।', (७. १०६, ४) । 'सदेवासुरमानुषम्', (७. १११, ६) । 'ससुरासुरमानुषाः', (७. १११, ३०) । 'श्रृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम्', (७. ११४, ५६; ११५, ६१) । 'देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः', (७. १२०, २२) । 'देवासुरे पुरा युद्धे', (७. १२२, ५०) । 'शक्रेणेव महासुराः', (७. १२५, ४९) । 'तद्युद्धमासीत् सुमहद्घोरं देवासुरोपमम्', (७. १२८, १३) । 'सयक्षासुरमानुषान्', (७. १३३, २) । 'वज्रेणेन्द्र इवासुरान्', (७. १३४, १२) । 'पुरन्दर इवासुरान्', (७. १३५, ११) । 'पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा', (७. १४२, ८) ।

'न देवासुरगन्धर्वाः', (७. १४४, २४)। 'असुरानिव देवेन्द्रो', (७. १५६, १२४)। 'असुरानिव पावकिः', (७. १५६, १२५)। 'सदेवासुरमानुषम्', (७. १५८, ४४)। 'सेन्द्रा अपि सुरासुराः', (७. १५९, ७)। 'यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः', (७. १५९, ३४)। 'सरासुरव्यूहसमं', (७. १६३, ३६)। 'यथा देवासुरे युद्धे', (७. १६९, २४)। 'असुरानिव पावकिः', (७. १७०, ६५)। 'सुरासुरैः', (७. १८१, २२)। 'ससुरासुरगन्धर्वान्', (७. १८५, ७)। 'नासुरोरगरक्षांसि', (७. १८५, २६)। 'वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे', (७. १९२, ११)। 'नासुरा न च राक्षसाः', (७. १९५, २३)। 'शचीपतिरिवासुरान्', (७. १९५, ४१)। 'सासुरोरगमानवान्', (७. १९७, २०)। 'ना सुरा न च गन्धर्वाः', (७. २०१, ५२. ७३)। देवासुरमहोरगाः', (७. २०१, ८१)। 'न सुरा नासुरा लोके', (७. २०२, ५१. ५५)। 'असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि', (७. २०२, ६४)। 'असुरान् भुवनेश्वर', (७. २०२, ७०)। 'असुराणामन्तकरः', (७. २०२, ७९)। 'वज्रहस्त इवासुरान्', (८. ९, ५)। 'देवासुरसमप्रभे', (८. १२, १)। 'वज्रहस्त इवासुरीम्', (८. १४, ३६)। 'शक्र इवासुरान्', (८. १९, ५८)। 'संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम्', (८. ३०, १)। 'सुरासुराः', (८. ३१, ६९)। 'इदं युद्धे देवासुरे', (८. ३३, १)। 'देवानां असुराणां च', (८. ३३, ३. ९. ४२; ३४, ८३. ९२. ११०)। 'तान् सोऽसुरगणान् दग्ध्वा', (८. ३४, ११३)। 'देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम्', (८. ३४, ११८)। 'भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान्', (८. ३४, १२२)। 'विजेतुं महासुराः', (८. ३४, १४८)। 'यथाऽसुराश्च निहता इषुणैकेन भारत', (८. ३५, ७)। 'असुरसुरमहोरगान्नरान्', (८. ३७, ३६)। 'देवासुरमनुष्येषु', (८. ४१, ८५)। 'सुरासुरान्', (८. ४२, १७)। 'देवासुरचमूपमः', (८. ४६, २६)। 'सेन्द्रैः सुरासुरैः', (८. ४६, ७७)। 'देवासुरसमोऽभवत्', (८. ४७, २३)। 'देवासुरोपमः', (८. ४८, ४०)। 'विष्णुरिवासुरान्', (८. ५१, ५४)। 'देवासुरे पार्थमृधे देवदानवयोरिव', (८. ६०, ४८)। 'वज्रेणेन्द्र इवासुरान्', (८. ६१, ६४)। 'जित्वाऽसुरमिवामरौ', (८. ६६, ८)। 'सुरासुरैश्च', (८. ७२, ३६)। 'ससुरासुरमानुषान्', (८. ७३, ८; ७४, ५५)। 'असुरैर्यथा', (८. ७७, ५)। 'यथा सुराणामसुरैः पुराऽभवत्', (८. ८२, २८)। 'सदेवासुरगन्धर्वान्', (८. ८६, १२)। 'असरा यातुधानाश्च', (८. ८७, ४०. ६०. ६२)। 'तद्देवनागासुरसिद्धयक्षैः', (८. ८८, १)। 'बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां यथा सुराणामसुरैः सहाभवत्', (८. ८८, ५)। 'सुरासुराः', (८. ८८, ९)। 'असुरश्च', (८. ८९, ४५)। 'देवासुरान्', (८. ९१, ४३)। 'देवासुररणोपमम्', (९. १, ९; ३, ६०)। 'ससुरासुरमानवान्', (९. ७, ३. ११)। 'देवासुरोपमम्', (९. ९, १)। 'देवासुरोपमे', (९. ९, ३४)। 'यथा देवासुरं युद्धं', (९. १०, ६१)। 'शक्रस्यासुरसंक्षये', (९. १५, ४३)। 'देवासुररणोपमम्', (९. २३, ४)। 'सहस्राक्ष इवासुरान्', (९. २६, ३६)। 'सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत्।', (९. ३८, ५०)। 'असुराणामभावाय', (९. ४१, २९)। 'ततोऽसुराः', (९. ४१, ३०)। 'असुराणां', (९. ४५, २१)। 'देवासुरे युद्धे', (९. ४५, २७)। 'महासुराः', (९. ५१, २७)। 'मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम्', (९. ५८, ५)। 'देवैरसुरघातिभिः', (९. ६१, ६८)। 'देवासुरे युद्धे', (९. ६३, १७)। 'महासुरान्', (१०. ४, १५)। 'असुरै न गन्धर्वैः', (१०. ८, १२३)। 'देवासुरं यथा', (१२. ८, २५)। 'असुराणां सहस्राणि बहूनि सुरसत्तमः। अजयद्बाहुवीर्येण भगवान्पाकशासनः ॥', (१२. २९, ६४)। 'व्यूढेनासुरयुद्धेन', (१२. २९, ९७)। 'इदं तु श्रूयते पार्थ युद्धे देवासुरे पुरा। असुरा भ्रातरो ज्येष्ठा देवाश्चापि यवीयसः ॥', (१२. ३३, २५)। 'सुरासुरगन्धर्वाः', (१२. ४७, ३५; ५०, २५)। 'उत्थानेनासुरा हताः', (१२. ५८, १४)। 'इमामुर्वीं नाजयद्विक्रमेण देवश्रेष्ठः सासुरामादिदेवः', (१२. ६४, २४)। 'देवासुराः', (१२. ९०, २६)। 'ससुरासुरमानुषम्', (१२. १२१, ४)। 'लोकानां स हि सर्वेषां ससुरासुररक्षसाम्।', (१२. १२१, ५८)। 'अपां राज्येऽसुराणां च विदधे वरुणं प्रभुम्।', (१२. १२२, २९)। 'देवासुराः', (१२. १३९, ५५)। 'सुरासुराः', (१२. १५२, ३२)। 'नासुरैर्न महोरगैः', (१२. १५८, १४)। असुरसत्तमाः', (१२. १६६, ३१)। 'देवदानवगन्धर्वा दैत्यासुरमहोरगाः', (१२. १८८, ३)। 'असुरान् महासत्त्वान्', (१२. २०७, २८)। 'बलेन मत्ताः शतशो नरकाद्या महासुराः ॥ तथैव चान्ये बहवो दानवाः युद्धदुर्मदाः।', (१२. २०९, ७. ८)। 'नागासुरमनुष्यांश्च', (१२. २१०, १५)। 'सुरासुराः', (१२. २१०, २४; २११, ५)। 'तपो ह्यधिष्ठितं देवैस्तपोघ्नमसुरैस्तमः।', (१२. २१६, १७)। 'देवासुरगुणान्विदुः', (१२. २१६, १८)। 'सर्वानेवासुरान् जित्वा बलिं पप्रच्छ वासवः', (१२. २२३, ३)। 'देवासुरं युद्धं', (१२. २२५, ३१)। 'देवासुरे युद्धे', (१२. २२५, ३२)। 'महासुरांश्च', (१२. २२६, १४)। 'देवासुरे युद्धे', (१२. २२७, ७)। 'देवासुरसमागमे', (१२. २२७, ७७)। 'विजित्य सर्वानसुरान्सुराधिपो ननन्द हर्षेण बभूव चैकराट्', (१२. २२७, ११७)। 'असुरेष्ववसं पूर्वं सत्यधर्मनिबन्धना', (१२. २२८, २७)। 'असुरान्', (१२. २२८, ८४)। 'असुरप्रवीर', (१२. २८०, ४४)। 'देवासुराणां', (१२. २८१, ११)। 'दैत्यासुरनिबर्हण', (१२. २८१, २२)। 'असुराणां', (१२. २८१, ४२)। 'देवानसुरांश्च तथागतान्', (१२. २८८, ४१)। 'असुराणां प्रियकरः', (१२. २८९, २)। 'तं धर्ममसुरास्तात नामृष्यन्त जनाधिपः', (१२. २९४, १४)। 'सासुरराक्षसम्', (१२. ३२७, १३)। 'सदेवासुरगन्धर्वाः', (१२. ३३४, १६)। 'सुरासुरगणानां च', (१२. ३३९, ६३)। 'सदेवसुररक्षसाम्', (१२. ३३९, ८०)। 'सुरासुरैः', (१२. ३३९, १२७)। 'ससुरासुरमानवाः', (१२. ३४०, ७) 'सुरासुरविशिष्टा ब्राह्मणाः', (१२. ३४२, २२)। 'स्वस्त्रीयोऽसुराणाम्', (१२. ३४२, २८)। 'असुरपक्षः', (१२. ३४२, ३५) 'असुरान्', (१२. ३४२ , ५६)। 'सुराश्चासुराश्च', (१२. ३४२, ९०)। 'असुरवधकरः', (१२. ३४६, १९)। 'सुरासुरैः', (१२. ३५०, २०)। 'सुरासुरगणानां च', (१२. ३६०, ३)। 'न गन्धर्वा नासुराः', (१२. ३६३, ५)। 'कश्यपस्य सुरासुराः', (१३. १२, २९. ३०)। 'असुरघ्नस्य कांश्चिद्भगवतो गुणान्', (१३. १४, २४)। 'असुरेन्द्रान्', (१३. १४. ८१)। 'मर्दिताश्चासुरैः सुराः', (१३. १४, २१३)। 'सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम्', (१३. १४, २१६)। 'सुरासुरैः', (१३. १४, २२३)। 'सुरासुराश्च', (१३. १४, ४२५)। 'देवासुरमुनीनाम्', (१३. १६, ५. २९)। 'देवासुरमनुष्याणाम्', (१३. १६, ३७)। 'देवासुरनराः', (१३. १६, ३८)। 'असुरेन्द्राणां', (१३. १७, ६२)। 'देवासुरपतिः',=शिव, (१३. १७, १२०)। 'देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः',=शिव, (१३. १७, १४४)। 'देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः। देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ॥', = शिव, (१३. १७. १४५)। 'देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणी। देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥',=शिव १३. १७, १४६)। 'देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः ॥', = शिव (१३. १७, १४७)। 'देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम्', (१३. २७, ३०)। 'स निष्क्रम्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः। देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः ॥', (१३. ३०, २०)। 'नासुरैर्न पिशाचैश्च', (१३. ३३, १६)। 'ब्राह्मणानां परिभवादसुराः सलिलेशयाः', (१३. ३५, १९)। 'देवासुरं पुरा', (१३. ३६, ११)। 'असुराणां', (१३. ४४, ७; ६२, ९४)। 'देवासुरसुपर्णाश्च', (१३. ८३, ८)। 'असुरसूदन', (१३. ८३, ४५)। 'असुरैर्हताः,' (१३. ८४, ८१)। 'असुराणां', (१३. ८५, ६)। 'जघान तारकं चापि दैत्यमन्यांस्तथासुरान्।', (१३. ८५, १६४)। 'राक्षसासुरसङ्घाश्च', (१३. ८६, २६)। 'देवासुरमनुष्याणां', (१३. ८७, ४)। 'सदेवासुरमानुषम्', (१३. १२६, ६) 'त्रीन्लोकान्धारयन्तिस्म सदेवासुरमानुषम्।', (१३. १३३, ४)। 'रोमभ्यश्च सुरासुराः', (१३. १४७, ४)। 'असुराणां', (१३. १४८, २१)। 'ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्।

जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥', (१३. १४९, १३५) । 'असुरैर्निर्जिता देवाः', (१३, १५५, २) । 'महासुराः', (१३. १५५, १०) । 'भूमिष्ठानसुरान्', (१३. १५५, ११) । 'असुरैः', (१३. १५६, ४. ५)) । 'अत्रिणा दह्यमानांस्तान्दृष्ट्वा देवा महासुरान्', (१३. १५६. ११) 'महासुराः', (१३. १५६, १२) । 'असुराणां वधाय', (१३. १५८, १३) । 'असुरा विजिता', (१३. १५८, २०) 'देवानसुरान्', (१३. १५८, ४२) । 'नसुरा नासुरः', (१३. १६०, १०. १४) । 'असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।', (१३. १६०, २५) । 'तेऽसुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण भारत', (१३. १६०, ३१) । 'देवासुरगुरुः', = ब्रह्मन् , (१३. १६५, ८) । 'सुरासुरनमस्कृत', (१३. १६७, ३७) । 'असुराश्चसुराश्चैव', (१४. ३, ६) । 'असुराश्चैव देवाश्च', (१४. ५, ३) । 'असुरान्', (१४. ९, ६) । 'नागाश्चाप्यसुराश्च', (१४, २६, ७) । 'असुराणां प्रवृत्तस्तु दम्भभावः स्वभावजः', (१४. २६, १०) । 'सुरासुराश्च', (१४. ४२, ६७) । 'पिशाचासुरराक्षसाः', (१४. ५१, ११) । 'देवासुररणप्रख्यम्', (१४. ७९, २०) । 'शुक्रो वाप्यसुरेषु च', (१५. २८, १३) । 'देवासुरविमिश्रिताः', (१५. २९, १४) । 'स्थावरं जंगमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम्', (१८. ६, ९) ।

२. असुर (तु० की० १. असुर) : श्री ने इन्द्र से कहा कि देवता, गन्धर्व, असुर, और राक्षस कोई भी अकेले उसका भार सहन नहीं कर सकते (१२. २२५, १७) । एक तेजस्वी पुरुष के अपने स्वरूप में लीन हो जाने पर सूर्य ने देवों को बताया कि वह न तो वायुसखा अग्निदेव, थे, न कोई असुर, और न नाग ही, वरन् उञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह के व्रत का पालन करने से सिद्धि को प्राप्त हुये एक मुनि थे (१२. ३६३, १) । अग्नि के द्वारा गंगाजी में स्थापित किया हुआ वह तेजस्वी गर्भ जब बढ़ रहा था, उसी समय किसी असुर ने वहाँ आकर सहसा बड़े जोर से भयानक गर्जना की (१३. ८५, ५८) ।

प्रमुख असुरों के नाम इस प्रकार हैं :

* **अश्व** : 'अश्व इति विख्यातः श्रीमानासीन्महासुरः', (१. ६७, १३) ।
* **इल्वल** : 'इल्वलो नाम दैतेय आसीत्', (३. ९६, ४; ९९, १. ५. ११. १३) ।
* **उपसुन्द** : १. २०८, २२; २०९, १८; २१०, १९. २६; २१२, १३; ९. ३१, १४ । तु० की० **सुन्द** ।
* **एकचक्र** : 'एक चक्र इति ख्यातः आसीद्यस्तु महासुरः', (१. ६७, २१) ।
* **कालेया** : 'कालेयानां तु ये पुत्रास्तेषामष्टौ नराधिपाः', (१. ६७, ४७) । 'प्रवरस्तेषां कालेयानां महासुरः', (१. ६७, ४८) । 'तृतीयस्तु महातेजा महामायो महासुरः ।', (१. ६७, ५०) । 'पञ्चमस्त्वभवत्तेषां प्रवरो यो महासुरः', (१. ६७, ५२) । 'षष्ठस्तु मतिमान्यो वै तेषामासीन्महासुरः', (१. ६७, ५३) ।
* **कुपट** : १. ६७, २८ ।
* **केशिन** : ३. २२३, १३; २२४, १ ।
* **कैटभ** : ९. ४९, २२; १२. ३४७, २६. ६० ।
* **क्रथन** : १. ६७, ५७ ।
* **क्रोधहन्तृ** : १. ६७, ४५ ।
* **गविष्ठ** : १. ६७, ३४ ।
* **चन्द्रहन्तृ** : १. ६७, ३७ ।
* **जम्भ** : ३. १०२, २४; ८. ६५, १९ ।
* **जरासन्ध** : १२. ३३९, ९६
* **तारक** : १३. ८४, ७९; ८५, १. ५१; ८६, २०. २९ ।
* **दंश** : 'प्राक् दंशो नाम महासुरः', (१२. ३, १९) ।
* **धुन्धु** : ३. २०१, ३१; २००, २९. ३१; २०४, १७. ३३ ।
* **नमुचि** : ५. १६, १४
* **नरक** : 'नरकाद्या महासुराः', (१२. २०९, ७)
* **निचन्द्र** : 'असुरोत्तमः', (१. ६७, २५) ।
* **पीठ** : ७. ११, ५
* **प्रह्लाद** : 'असुरेन्द्रम्', (३. २८, २) ।
* **बलि** : ३. २६, १२; १०२, २३; १२. २२५, ३३; २२७, ११५; ३३९, ७९ ।
* **बली** : १. ६७, ४३ ।
* **बाण** : १. ६५, २० ।
* **भगदत्त** : ७. २९, ३८ ।
* **मद** : ३. १२४, १९ । 'मदं नामासुरं विश्वरूपम्', (१४. ९, ३३) ।
* **मधु** : 'महासुरम्', (६. ६७, १४) । 'असुरौ मधुकैटभौ', (९. ४९, २२) । 'महासुरः' (१२. २०७, १४) । 'असुरोत्तमौ', (१२. ३४७, २९) 'मधुकैटभौ', (१२. ३४७, ६०) ।
* **मय** : १. ६१, ४८; २२८, ३९; २. १, ३; ३. ९, १९; ८. ३३, १६ ।
* **मयूर** : १. ६७, ३५ ।
* **मृतपा** : 'असुरोत्तमः' (१. ६७, ३३) ।
* **वातापि** : १. २, १६७; ३. ९६, ४. ८. १०; ९९, २. ३. ८; २०६, २७; १२. १४१, ७१ ।
* **विक्षर** : 'प्रवरोऽसुरः', (१. ६७, ४१) । 'द्वितीयो विक्षरायस्तु नराधिप महासुरः', (१. ६७, ४२) ।
* **विनाशनः चन्द्रस्य** : १. ६७, ३८ ।
* **विरूपाक्ष** : १. ६७, २२ ।
* **विश्वरूप** : ५. ९, ४ । देखिये व० स्था० ।
* **वृत्र** : १. ६७, ४४; ३. १०१, १६; ५. १०, २०. ३२. ३५; १७, ३; ७. १९६, १०; १२. २८०, ४४; २८१, २९. ३४; २८२, १०. ६२; २८३, ५९ ।
* **वृषपर्वन्** : १. ८०, १३
* **शठ** : १. ६५, २९
* **शतमुख** : १३. १४, ८६
* **शरभ** १. ६७, २७
* **सुन्द** : १. २०८, २२; २०९, १८; २१०, १९. २६; २१२, १३; ९. ३१, १४ ।
* **सूर्य** १. ६७, ५८
* **स्वर्भानु** १. ६७, १२
* **हिरण्यकशिपु** : १. २०९, २ ।
* **हिरण्याक्ष** : ९. ३१, ९

असुरद्विष् बहुवचन में महर्षियों और ब्राह्मणों के लिये प्रयुक्त हुआ है (१. २१०, ११) ।

असुरराज (असुरों का अधिपति) = वक (१. १६०, ४) ।

असुरश्रेष्ठ = नमुचि (९. ४३, ३६) = वृत्र (१२. २८१, ३५) ।

असुरसूदन (असुरों का नाशक) = इन्द्र (१. २२७, ३०); = विष्णु (५. १०, ९) ।

असुरहन् = शिव (१३. १४, २४) ।

असुरा, कश्यप और प्राधा की आठ पुत्रियों में से एक का नाम है (१. ६५, ४५) ।

१. असुराधिप = बलि (१२. २२३, २५; १३. ९८, १२) ।

२. असुराधिप = प्रह्लाद (१२. १७९, १५) ।

असुरायणि, विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम है (१३. ४, ५६) ।

असुरार्दन (असुरों को पीड़ा पहुँचाने वाला) = इन्द्र (१. २२६, १५) ।

असुरी (एक स्त्री असुर) : १. ७८, ८ (=शर्मिष्ठा); ३. १७३, ७ (=कालका महासुरी); ४. ९, १७।

असुरेन्द्र (असुरों का राजा) = बलि (१३. ९०, २०; ९८, ६५); =प्रह्लाद (१२. १२४, ५३; २२२, ३७); =वृत्र) १२. २८०, ४. ३५; २८१, १३); = मधु और कैटभ (१२. ३४७, ६९)।

असुरेन्द्रसुता = शर्मिष्ठा (१. ८१, ११)।

असूर्य (सूर्यरहित)। 'असुर्या नाम ते लोका गां दत्वा तान्त्र गच्छति ।', (१३, ७७, ५)।

अस्त , पश्चिम दिशा के एक पर्वत का नाम है जहाँ सूर्य अस्त होता है : 'अस्ताचल', (१. ३, ५२)। 'सूर्यो ह्यस्तमभ्यगमद्गिरिम्', (१. २४, १०; ४७, २६; १०२, ७१; १२१, १९)। 'प्रागस्तगमनाद्रवेः', (१. १५५, १७)। 'अस्तं गिरिवरश्रेष्ठम्', (३. १६२, ३२)। 'अस्तं पर्वतराजानम्', (३. १६३, १०)। 'अस्तं प्राप्य', (३. १६३, ३०; २९६, १७; ३१३, ४५. ४६; ४. ५५, ३४; ५. १७९, ३९; १८१, १६; १८२, २९)। 'अस्तं गिरिश्रेष्ठं', (६. ५५, ४०)। 'अस्तं गच्छति', (६. ५५, ४३)। 'अस्तं गिरिम्', (६. ८६, ४२)। 'सूर्यास्तमनवेलायां', (६. ९४, ५०)। 'दिवाकरेऽस्तं गिरिम्', ७. ३२, ८०)। 'अस्तमुपेत्य पर्वतम्', (७. ५०, ३)। 'अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे', (७. ७९, २६)। 'अस्तं शिखरं', (७. ९९. १)। 'अस्तं', (७. १३४, ३१; १४५, ४. ६; १४६, ६८)। 'अस्तं महीधरश्रेष्ठं', ७. १४६, १०५)। 'अस्तं गच्छति', (७. १४६, १४०)। 'सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत्', (७. १४८, २४)। 'अस्तं', (७. १५३, १०; २००, ४; ८. १८, १९; ३०, ३७; ९०, ३८. ७७; ९१, ६०; ९. २९, ८७)। 'अस्तं पर्वतश्रेष्ठं', (१०. १, २४; १२. २५, १२)। 'अस्तमिते भीष्मे', (१२. ४६, २३)। 'उपैति सविता ह्यस्तं', (१२. ५८, २८)। 'अस्तमेवाभ्यवर्तत', (१२. ३१८, १२)। 'आदित्यो ह्यस्तमभ्येति', (१२. ३३१, ७)। 'अस्तं गच्छन्ति रात्रयः', (१२. ३३१, ८)। 'गिरिवरमस्तमभ्यगमद्रविः', (१५. ३१, २५)।

अस्ति , मगध नरेश जरासन्ध की पुत्री का नाम है जो सहदेव की बहन तथा कंस की पत्नी थी (२. १४, ३१)।

अस्त्रदर्शन—"जब द्रोणाचार्य ने देखा कि धृतराष्ट्र और पाण्डव अस्त्रविद्या की शिक्षा समाप्त कर चुके हैं तब उन्होंने कृपाचार्य सोमदत्त, बाह्लीक, भीष्म, व्यास, तथा विदुर की उपस्थिति में राजा धृतराष्ट्र से कहा : 'आपके कुमार अस्त्र-विद्या की शिक्षा समाप्त कर चुके हैं, अतः यदि आपकी अनुमति हो तो वे अपने सीखे हुये अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन करें।' धृतराष्ट्र ने इसकी सहर्ष आज्ञा प्रदान की। तब विदुर ने द्रोणाचार्य से रङ्गमण्डप की भूमि को पसन्द कराके उसका नाप कराया, और कुन्ती, गान्धारी इत्यादि, तथा प्रजाजन राजकुमारों के अस्त्र-कौशल को देखने के लिये वहाँ उपस्थित हुये। उस समय द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा ने रङ्गभूमि में इस प्रकार प्रवेश किया मानो मेघरहित आकाश में चन्द्रमा ने मंगल के साथ पदार्पण किया हो। धनुष-बाण लिये हुये राजकुमारों के उस समुदाय को गन्धर्व नगर के समान अद्भुत देखकर समस्त दर्शक चकित हो गये। विदुर धृतराष्ट्र को, और कुन्ती गान्धारी को उन राजकुमारों की सारी चेष्टायें बताती जाती थीं (१. १३४)।" "जब दुर्योधन और भीमसेन रङ्गभूमि में गदायुद्ध का प्रदर्शन करने लगे, उस समय दर्शक-जनता उनके प्रति पक्षपातपूर्ण स्नेह करने के कारण प्रायः दो दलों में विभक्त हो गई। इससे समस्त रङ्गभूमि में क्षुब्ध महासागर के समान हलचल मच गई, जिसे देखकर द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा से भीम और दुर्योधन को पृथक् करने के लिये कहा। तदुपरान्त अर्जुन ने अद्भुत अस्त्रकौशल दिखाया। अस्त्र-कौशल का अधिकांश कार्य जब समाप्त हो गया तब पाँचों पाण्डवों से घिरे हुये आचार्य द्रोण पाँच तारों वाले हस्त नक्षत्र से संयुक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होने लगे। उस समय दुर्योधन भी उठकर खड़ा हो गया, और अश्वत्थामा सहित उसके सौ भ्राताओं ने आकर उसे चारों ओर से घेर लिया। हाथ में आयुध उठाये खड़े हुये अपने भ्राताओं से घिरा हुआ गदाधारी दुर्योधन पूर्वकाल में दानव-संहार के समय देवताओं से घिरे देवराज इन्द्र के समान शोभा पाने लगा (१. १३५)।" "उसी समय कर्ण ने रङ्गमण्डप में प्रवेश करके अर्जुन को प्रतिस्पर्धा के लिये ललकारा। धृतराष्ट्रों ने कर्ण का पक्ष लिया जब कि द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और भीष्म अर्जुन के पक्ष में रहे। रङ्गभूमि के पुरुषों और स्त्रियों में भी कर्ण और अर्जुन को लेकर दो दल हो गये। कुन्ती को अत्यन्त चिन्ता के कारण मूर्च्छा आ गई, और विदुर ने दासियों द्वारा चन्दन-मिश्रित जल छिड़कवाकर कुन्ती की मूर्च्छा दूर की। कृपाचार्य ने कर्ण को प्रतिस्पर्धा करने की अनुमति नहीं दी, किन्तु दुर्योधन ने उसी समय कर्ण को अङ्गदेश के राजा के रूप में अभिषिक्त कर दिया (१. १३६)।" "सूर्यास्त होने पर दुर्योधन कर्ण को रङ्गभूमि से बाहर ले गया, और पाण्डवगण भी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, तथा भीष्म के साथ अपने-अपने घरों को लौट गये (१. १३७)।"

अस्नेहन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अहंकार : १२. ३११, ७. १० (परमेष्ठी); १२. ३१२, १२ (भूतात्मा प्रजापतिः); १२. ३४०, ३१, इत्यादि; १३. १५३, १८ (=ब्रह्मन्)।

अहंयाति , पुरुवंशी राजा संयाति तथा रानी वराङ्गी के पुत्र का नाम है। इनके द्वारा भानुमती के गर्भ से सार्वभौम नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई (१. ९४, १४-१५)।

अहः = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अहन् , एक तीर्थ का नाम है जिसमें स्नान करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है (३. ८३, १००)।

१. अहस् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. अहस् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

अहर् (दिन)। अष्टवसुओं में से एक का नाम है (१. ६६, १८)। इनकी माता का नाम रता था (१. ६६, २०)। इनके चार पुत्र हुये–ज्योति, शम, शान्त तथा मुनि (१. ६६, २३)। स्कन्द के अभिषेक के समय इनकी उपस्थिति का उल्लेख (९. ४५, १५)।

अहल्या, गौतम ऋषि की पत्नी का नाम है। देवेश्वर नहुष ने इन्द्र के विषय में देवताओं से इस प्रकार कहा : "देवताओ! जब इन्द्र ने पूर्वकाल में यशस्विनी ऋषि-पत्नी अहल्या का उसके पति गौतम के जीते-जी सतीत्व नष्ट किया था, उस समय आप लोगों ने उन्हें क्यों नहीं रोका (५. १२, ६)।" अहल्या पर बलात्कार करने के कारण गौतम के शाप से इन्द्र को हरिश्मश्रु (हरी दाढ़ी-मूछों से युक्त) होना पड़ा (१२. ३४२, २३)। इनका उत्तङ्क से गुरुदक्षिणा के रूप में सौदास की रानी मदयन्ती के कुण्डल लाने के लिये कहना (१४. ५६, २७. २९)। गौतम ने इनसे कहा कि नरभक्षी राक्षसभाव को प्राप्त हुये सौदास के पास उत्तङ्क को भेजकर उसने उचित नहीं किया। इस पर उत्तर देते हुये इन्होंने कहा : 'भगवन्! मैं इस बात को नहीं जानती थी, इसलिये उत्तङ्क को ऐसा काम सौंप दिया। मुझे विश्वास है कि आपकी कृपा से उसे वहाँ कोई भय प्राप्त नहीं होगा (१४. ५६, ३४)।' उत्तङ्क का कुण्डल लेकर इनके पास लौटना (१४. ५८, १७)।

अहल्याह्रद, महर्षि गौतम के तपोवन में स्थित एक तीर्थ का नाम है जिसमें स्नान करने से परमगति प्राप्त होती है (३. ८४, १०९)।

अहश्चर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

अहिच्छत्र, एक देश का नाम है जिसे कर्ण ने विजित किया था (३. २५४, ९)।

अहिच्छत्र, उन सम्पन्न सुविस्तृत प्रदेशों में इसकी भी गणना है जो कौरवों की सेनाओं से घिर गये थे (५. १९, ३०)।

अहिच्छत्रा, एक राज्य का नाम है जिसे अर्जुन ने द्रुपद को विजित करके द्रोणाचार्य को दिया था (१. १३८. ७७)।

अहिर्बुध्न्य, स्थाणु के पुत्र ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम है (१. ६६, २)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर ग्यारह रुद्रों के साथ इनके आगमन का उल्लेख (१. १२३, ६८)। गरुड़ ने गालव से कहा : "द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद इन दो नक्षत्रों में से किसी एक के साथ शुक्रवार का योग हो तो अग्निदेव कुबेर के लिये अपने संकल्प से धन का निर्माण करके उसे मनुष्यों को दे देते हैं। पूर्वाभाद्रपद के देवता अजैकपाद, उत्तराभाद्रपद के देवता अहिर्बुध्न्य और कुबेर हैं और ये तीनों उस धन की रक्षा करते हैं (५. ११४, ३-४)।" ग्यारह रुद्रों में इनकी गणना (१२. २०८, १९; १३. १५०, १२)। = शिव (१३. १७, १०३ = सहस्र नामों में से एक)।

अहोरात्र = शिव : १२. २८४, १६४; १३. १७, ११३ (सहस्र नामों में से एक)।

अहोवीर्य, वानप्रस्थ धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मणों में से एक यह भी थे (१२. २४४, १७)।

आ

आकर्ष, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पधारने वाले राजाओं में से एक का नाम है (२. ३४, ११)।

आकाश : ३. २९१, २४, इत्यादि।

आकाश-गङ्गा : १. २, ३७५। "लोमश ने तीर्थदर्शी पाण्डवों को बताया कि 'मदराचल पर्वत के समीप देवताओं और ऋषियों का आवास है; बदरिकाश्रम से गंगा प्रवाहित होती है जो देवर्षियों के समुदाय से सेवित हैं; आकाशचारी महात्मा बालखिल्य, गन्धर्वगण, तथा सामगान करनेवाले विद्वान् इनकी पूजा करते हैं; मरीचि, पुलह, भृगु तथा अङ्गिरस् भी इनके पावन तट पर प्रतिदिन जप एवं स्वाध्याय करते हैं; साध्य, अश्विनीकुमार, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, और नक्षत्र दिन-रात के विभाग पूर्वक इस पुण्यनदी की यात्रा करते हैं; गंगाद्वार में भगवान् शंकर ने इनके पावन जल को जनता की रक्षा के लिये अपने मस्तक पर धारण किया है।' लोमश के इस कथन को सुनकर समस्त पाण्डवों ने संयतचित्त होकर आकाश-गङ्गा को प्रणाम किया और पुनः सम्पूर्ण ऋषि-मुनियों के साथ हर्षपूर्वक आगे बढ़े (३. १४२, २-११; १२. ३२८, ४६; ३४२, ५४; १८. ३, २८)।"

आकाशजननी—परकोटे में बने हुये छोटे-छोटे छिद्र, जिसके रास्ते तोपों से गोलियाँ छोड़ी जाती हैं (१२. ६९, ४३)।

आकृति, मय द्वारा निर्मित सभाभवन में धर्मराज युधिष्ठिर के प्रवेश के समय उनकी सभा में उपस्थित एक राजा का नाम है (२. ४, ३१)। भोजवंशी राजा भीष्मक, जो जमदग्नि-पुत्र परशुराम के समान शौर्यसम्पन्न और जरासन्ध के अधीनस्थ हैं (२. १४, २२)। (सुराष्ट्र देश के अधिपति) इनको सहदेव ने अपने आधीन कर लिया था (२. ३१, ६१)।

आकृतीपुत्र–'आकृती' नामवाली माता का पुत्र, जिसका नाम रुचिपर्वा है। यह पाण्डवपक्षीय योद्धा था जिसका भगदत्त ने वध किया (७. २६, ५०-५२)।

आक्रोश, महोत्थ देश के एक राजा का नाम है जिसे नकुल ने विजित किया था (२. ३२, ६)।

आखण्डल = इन्द्र : 'आखण्डलधनुः प्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम्। पश्य कर्णं समायान्तं धृतराष्ट्रप्रियैषिणम्', (८. ८६, ६)। 'हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः', (८. ९०, ३५)। 'दिवमाखण्डलो यथा', (१२. ३३६, ४)। = महापुरुष (१२. ३३८, ४ पर १२३ वाँ नाम)।

१. आगस्त्य—अगस्तवंशी ब्राह्मण जो द्वैतवन में युधिष्ठिर के आश्रम में निवास करते थे (३. २६, ८)।

२. आगस्त्य = अगस्त्योपाख्यान (१. २, १६७)

३. आगस्त्य-सरस्, एक तीर्थ का नाम है (३. ८२, ४४)।

आग्निवेश्य, धौम्य ऋषि का नाम है जिन्हें पाण्डवों ने अपना पुरोहित नियुक्त किया था (१४. ६४, ८)।

१. आग्नेय : 'आग्नेयं कीर्त्यते यत्र रुद्रमाहात्म्यमुत्तमम्', (१. २, २६६)। 'इत्येवं मन्त्रमाग्नेयं पठन्यो जुहुयाद्विभुम्। ऋद्धिमान्सततं दान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥', (२. ३१, ५०)। 'रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च। पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत॥', (७. २३, ९४)।

२. आग्नेय, एक अस्त्र का नाम है : 'आग्नेयेनासृजद्वह्निम्', (१. १३५, १९)। गन्धर्वराज चित्ररथ ने अर्जुन से इस अस्त्र को ग्रहण किया (१. १७०, ५७)। अग्निदेव द्वारा श्रीकृष्ण का आग्नेयास्त्र को ग्रहण करना (१. २२५, २४)। अर्जुन ने देवेन्द्र इन्द्र से अन्य दिव्यास्त्रों के साथ-साथ आग्नेयास्त्र को भी ग्रहण किया (३. १६४, १८; ४. ६१, ३१; ६४, २३)। भीष्म का इस अस्त्र के द्वारा परशुराम पर प्रहार (५. १८०, १२)। उन दिव्यास्त्रों के साथ इसका उल्लेख है जिन्हें अर्जुन और श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता (६. १२१, ४०)। खाण्डववन में अर्जुन के साथ अग्निदेव को संतुष्ट करके श्रीकृष्ण ने इस दुर्धर्ष अस्त्र को प्राप्त किया था (७. ११, २१)। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर पर वारुण आदि दिव्यास्त्रों के साथ इसका भी प्रयोग किया (७. १५७, ३४)। 'वारुणेयाग्नम्', (७. १९४, २)। अश्वत्थामा द्वारा आग्नेयास्त्र के प्रयोग से पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना का संहार (७. २०१, १६)। अर्जुन द्वारा कर्ण पर शत्रुनाशक आग्नेयास्त्र का प्रयोग (८. ८९, १७)। पाशुपत अस्त्र आग्नेयास्त्र से भी अधिक शक्तिशाली है (१३. १४, २६१)।

३. आग्नेय, एक नक्षत्र (कृत्तिका) का नाम है, जिसमें श्राद्ध करने का निषेध किया गया है (१३. १०४, १२७)।

४. आग्नेय : 'आग्नेयं वै लोहितमालभन्तां वैश्वदेवं बहुरूपं हि राजन्। नीलं चोक्षाणां मेध्यमप्यालभन्तां चलच्छिश्नं संप्रदिष्टं द्विजाग्र्याः॥', (१४. १०, ३०)।

५. आग्नेय, स्कन्द की अनुचरी मातृकाओं में से एक का नाम है (९. ४६, ३७)।

६. आग्नेय स्कन्ददेव अग्नि के पुत्र हैं (१. १३७, १३; ३. २३२, ३)।

७. आग्नेय, सुदर्शन का नाम है जो अग्निद्वारा उत्पन्न हुये (१३. २, ३६)।

८. आग्नेय, अङ्गिरस् का नाम है जो आग्नेय नाम से प्रसिद्ध हुये (१३. ८५, १२६)।

९. आग्नेय, एक जाति के लोगों का नाम है जिन्हें कर्ण ने विजित किया था (३. २५४, २०)।

आग्रयण, मनु के चौथे पुत्र एक अग्नि का नाम है (३. २२१, १३)।

आङ्गरिष्ठ, एक प्राचीन नरेश का नाम है। मोहवश पाप हो जाने के कारण उसके प्रायश्चित्त के विषय में कामन्दक मुनि से इनका प्रश्न (१२. १२३, ११. १२)।

१. आङ्गिरस् = बृहस्पति (१. ७६, ६)। सत्यवती द्वारा आङ्गिरस् के समान भीष्म के ज्ञान का उल्लेख (१. १०३, ६)। अग्निदेव ने इन्हें प्रथम पुत्र के रूप में स्वीकार किया (३. २१७, १८)। द्रुपद के पुरोहित बुद्धि में आङ्गिरस् के समान थे (५. ६, ४)। 'सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात्', (७. ५, १८)। इनके मुख से भूमिदान का माहात्म्य सुनकर इन्द्र ने धन और रत्नों से भरी हुई यह पृथिवी इनको ही दान में दे दी (१३. ६२, ९३)। जब राजा मरुत्त ने यह सुना कि इन्होंने मनुष्यों का यज्ञ न कराने की प्रतिज्ञा की है तब उन्होंने एक महान् यज्ञ का आयोजन किया (१४. ६, २)। भरद्वाज इत्यादि महर्षि अपने कर्मों द्वारा

समस्त मार्गों में भटकते-भटकते जब बहुत थक गये, तब आङ्गिरस् को आगे करके ब्रह्मलोक गये (१४. ३५, २७)।

२. आङ्गिरस = उतथ्य (१३. १५४, २८)।

३. आङ्गिरस = संवर्त्त (१४, १०, २६)।

४. आङ्गिरस = कच (१. ८०, ४)।

५. आङ्गिरस = सुधन्वन् (२. ६८, ६५. ६६)।

६. आङ्गिरस = च्यवन (३. २२०, १)।

७. आङ्गिरस = बल (१२. २०८, २७)।

८. आङ्गिरस = बृहस्पति ग्रह (८. १७, १)।

९. आङ्गिरस = अङ्गिरस् के वंशज। अग्नि अथवा अङ्गिरस् के वंशज आङ्गिरस कहलाते हैं (१३. ८५, १३७)।

१०. आङ्गिरस : द्रोणाचार्य का आङ्गिरस नामक दिव्य धनुष द्वारा धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध (७. १९१, १२)। अश्वत्थामन् ने शिव से कहा : 'भगवन्! आज मैं आङ्गिरस कुल में उत्पन्न हुये अपने शरीर की प्रज्वलित अग्नि में आहुति देता हूँ। आप मुझे हविष्य रूप में ग्रहण कीजिये', (१०. ७, ५६)। तु० की० ७. आङ्गिरस = बल (१२. २०८, २७)। 'अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। चिरकारेस्तु यत्पूर्वं वृत्तमाङ्गिरसे कुले॥', (१२. २६६, २)। 'उत्पन्नेऽङ्गिरसे चैव युगे प्रथमकल्पिते', (१२. ३३५, ५४) तु० की० अङ्गिरसिके काले (१३. ९१, १)। 'भार्गवाङ्गिरसौ लोके लोकसन्तानलक्षणौ', (१३. ८५, १२६)। 'उतथ्यस्य जातस्याङ्गिरसे कुले', (१३. १५४, ९)।

११. आङ्गिरस : 'पतिव्रतायाश्चाख्यान तथैवाङ्गिरसं स्मृतम् (१. २, १९४)।

१२. आङ्गिरस, इन्होंने नीपवंशी राजाओं को पराजित किया था (१३. ३४, १७)।

१. आङ्गिरसी (अङ्गिरस् की एक स्त्री वंशज), एक ब्राह्मण की पतिव्रता पत्नी का नाम है। इसका पति को भक्षण कर लेने वाले राक्षस भावापन्न कल्माषपाद को शाप देना (१. १८२, २२)।

२. आङ्गिरसी (अङ्गिरस् की पुत्री) : 'महामखेष्वाङ्गिरसी दीप्तिमत्सु महामते। महामतीति विख्याता सप्तमी कथ्यते सुता॥', (३. २१८, ७)।

आङ्गिरसोपाख्यान, देखिये ११. आङ्गिरस।

आङ्ग्रिक, विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक का नाम है (१३. ४, ५४)।

आङ्गी एक प्राचीन रानी का नाम है जो अरिह की पत्नी तथा महाभौम की माता थी (१. ९५, १९)।

आङ्गेयी = सुदेवी (१. ९५, २४)।

१. आचार्य = द्रोण : १. १, २०१; २, २५४; १३४, २०; १३६, ६५; ३. २९, ४७; ४८, १०; ४. २८, २; ३०, १६; ४७, २०. २४. २८; ५१, ५. ११. १६; ५२, २२; ५५, ४३. ४६; ५८, १४ ('आचार्यशिष्यौ', अर्थात् द्रोण और अर्जुन); ६६, १३, (आचार्यशारद्वतयोः); ६८, ७१; ५. ५२, ५; १२७, ४; १४४, १४. १५; १६७, १५; १६९, २४; १९३, ५; ६. २५, २. ३; ४३, ५०. ६३. ७३; ४९, ८; ५१, २; ५८, ३९; ६९, १८; ७७, ७५; ८८, ४१; ९२, १८. ३३; ९४, १२; १०२, २; ७. ५, २१; ८, ३३; ९, २८; १२, ५. ७. १५; १३, ७. ९; १७, ४८; २१, ३. २४; ३४, १३; ३६, ४; ३९, १६; ४८, २६. ३१; ७३, १; ७४, २४; ७५, २५; ९१, ७. १५; ९४, २७. ७३; ९८, १०. ४९; १११, २३. ३५; ११९, ३०; १२५, ६. ६९; १२७, ४२. ४४; १३०, २५; १४१, १९. ३६; १५०, १२; १५२, १५. २०; १५४, १; १५९, ८६; १६४, २३; १६९, २३; १७०, १२; १८३, १६; १८८, ४२. ४५; १९१, ८. ४५; १९२, २८. ३०. ५३. ६१. ६६; १९३; ६५; १९४, ३. १५; १९५, १३; १९६, १०. ३८. ४३; १९७, ४३; १९९, ५. ३०; २००, ६३; ८. २६, ८; ७३, ५९; ९. ६१, ३२; १०. ९, ४३; १२, ५. ७; १२. २७, १३।

२. आचार्य = कृप : ७. १४७, २४; ९. ११, ४३ (गौतम); ६५, ३९।

३. आचार्य = परशुराम : ११. २१, ११।

आचार्यतनय = अश्वत्थामा : ७. २०१, १३; ८. १०, १८।

आचार्यनन्दन = अश्वत्थामा : ७. २०१, १६

आचार्यपुत्र = अश्वत्थामा : १. १३२, १९; १४३, १३; ४. ५१, ५. ११; ५८, ७२; ६८, ७२; ६. १७, ३९; ७. ३१, २७; १६०, २६; १९६, ४१; २००, ३०; २०१, ८; ८. १०, १२; १६, २३; २०, ३२; ६७, ५; १०. ८, २०; १४, ५।

आचार्यमुख्य = द्रोण : ७. १९१, २६. ४६

१. आचार्यसत्तम = कृप : १. १३४, १३

२. आचार्यसत्तम = अश्वत्थामा : ८. २०, २१ (द्रौणिः)।

आचार्यसुत = अश्वत्थामा : ७. १६०, २८; ८. १६, ४९; ९. ११, ४५।

आचार्यौ = द्रोण और कृप : ४. ४७, २।

१. आजगर = आजगरपर्वन् : १. २, ५३

२. आजगर, अजगरवृत्ति से रहनेवाले एक मुनि जिनके साथ प्रह्लाद का संवाद हुआ था (१२. १७९, २. २५. २८–३४)। तु० की० 'अजगरचरितम् व्रतम्', (१२. १७९, ३७)।

आजगरपर्वन्, महाभारत के चालीसवें अवान्तर पर्व का नाम है। "अर्जुन के साथ पाण्डवों ने कुबेर के उपवनों में चार वर्ष व्यतीत किये। इस अवधि के पूर्व वे वनों में ६ वर्ष पहले ही व्यतीत कर चुके थे, जिसे जोड़कर अब तक की उनके वनवास की अवधि दस वर्ष हो गई। ग्यारहवें वर्ष के आरम्भ होने पर भीम के परामर्श से युधिष्ठिर ने कुबेर के निवास-स्थान उस गन्धमादन पर्वत की प्रदक्षिणा की, और फिर वहाँ के भवनों, नदियों, सरोवरों, तथा समस्त राक्षसों से विदा लेकर, जिस मार्ग से आये थे उसकी ओर देखने लगे। युधिष्ठिर ने गन्धमादन पर्वत से इस प्रकार प्रार्थना की : 'मैं शत्रुओं को जीतकर अपना खोया हुआ राज्य पाने के बाद सुहृदों के साथ अपना समस्त कार्य सम्पन्न करके पुनः तपस्या के लिये लौटने पर आपका दर्शन करूँगा।' तत्पश्चात समस्त भ्राताओं और ब्राह्मणों से घिरे हुये युधिष्ठिर उसी मार्ग से नीचे उतरने लगे। जहाँ दुर्गम पर्वत और निर्झर पड़ते थे, वहाँ घटोत्कच अपने गणों सहित आकर पहले की ही भाँति उन सबको अपनी-अपनी पीठों पर बैठाकर पार कर देता था। महर्षि लोमश ने जब पाण्डवों को वहाँ से प्रस्थान करते देखा तब जिस प्रकार दयालु पिता अपने पुत्रों को उपदेश देता है, वैसे ही उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर सबको उत्तम उपदेश दिया। तदुपरान्त मन ही मन प्रसन्नता का अनुभव करते हुये महर्षि लोमश देवताओं के परम पवित्र स्थान को चले गये। इसी प्रकार राजर्षि आर्ष्टिषेण ने भी उन सबको उपदेश दिया। तत्पश्चात् पवित्र तीर्थों, मनोहर तपोवनों तथा अन्य बड़े-बड़े सरोवरों का दर्शन करते हुये पाण्डव-गण आगे बढ़े (३. १७६)।" "कैलास पर्वत को पार करने के पश्चात् पाण्डवों ने वृषपर्वन् के आश्रम में एक रात्रि व्यतीत की। तदुपरान्त वे विशालापुरी के बद्रिकाश्रम में आकर कुछ दिन रहे; फिर नर-नारायण के क्षेत्र में आकर उन लोगों ने कुबेर की उस प्रिय पुष्करिणी का दर्शन किया, जिसका सेवन देवता और सिद्ध पुरुष करते हैं। एक मास तक वहाँ विहार करने के पश्चात् कुलिन्द के तुषार, दरद आदि सम्पन्न देशों को पार करते हुये हिमालय के दुर्गम स्थानों को आगे वे किरातराज सुबाहु के देश में पहुँचे, जहाँ वे विशोकादि अपने सारथियों, इन्द्रसेन आदि परिचारकों, अग्रगामी सेवकों, तथा रसोईयों से भी मिले। वहाँ एक रात्रि व्यतीत करने के पश्चात् अनुचरों सहित घटोत्कच को विदा करके पाण्डवों ने उस पर्वत की ओर प्रस्थान किया जो यमुना का उद्गम-स्थान था। उस पर्वत के ऊपर विशाखयूप नामक वन में पहुँचकर उन्होंने एक वर्ष तक निवास किया। वहाँ हिंस्र पशुओं को मारना ही पाण्डवों का कार्य था। वहीं एक दिन पर्वत की कन्दरा में भूख से पीड़ित एक अजगर ने भीमसेन के सम्पूर्ण शरीर को लपेट लिया, किन्तु युधिष्ठिर ने उस अजगर को उसके प्रश्नों के उत्तर द्वारा सन्तुष्ट करके भीम को छुड़ा

लिया। अब पाण्डवों के वनवास का बारहवाँ वर्ष आ पहुँचा। इस बारहवें वर्ष को भी वन में व्यतीत करने की इच्छा से पाण्डव-गण मरुभूमि के पास सरस्वती के तट पर गये, और वहाँ से निवास करने की इच्छा से द्वैतवन के द्वैतसरोवर के समीप पहुँचे (३. १७७)।" "जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन ने उनसे यह बताया कि वृषपर्वा के आश्रम से आने पर किस प्रकार हिमवत् पर्वत पर आखेट करते हुये भीम को एक विशाल अजगर ने पकड़ लिया था, जिसके पाश से वह अपने को छुड़ा नहीं सके, क्योंकि उस अजगर को एक वर प्राप्त था (३. १७८)।" "वैशम्पायन ने बताया कि वह अजगर आयु के पुत्र राजर्षि नहुष थे, जिन्हें अगस्त्य ने अजगर बन जाने का शाप दे दिया था। उन्होंने यह भी बताया कि दयावश अगस्त्य ने उस अजगर रूपी नहुष को यह वरदान भी दिया कि जो व्यक्ति उसके (अजगर के) प्रश्नों का उत्तर देगा, वही उसे अजगर-योनि से मुक्त भी करेगा, और यह भी कि वह अजगर जिसे पकड़ लेगा वह व्यक्ति चाहे कितना भी बलवान हो उसकी शक्ति समाप्त हो जायगी। जब भीमसेन उस अजगर के पाश में आबद्ध थे तब उसने बताया कि दिन के छठवें भाग में कोई भैंसा अथवा हाथी ही क्यों न हो, उसकी पकड़ में आ जाने पर किसी भी प्रकार बच नहीं सकता। उसने यह भी बताया कि उसे अपनी पूर्व स्थिति का पूरा स्मरण है। उसके पाश में आबद्ध भीम अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। उस समय युधिष्ठिर अनिष्टसूचक भयंकर उत्पातों को देखकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे, और द्रौपदी से भीमसेन के सम्बन्ध में पूछा। द्रौपदी के यह बताने पर कि भीमसेन बहुत देर से लौटे नहीं, युधिष्ठिर महर्षि धौम्य को साथ लेकर उनकी खोज में निकल पड़े। जाते समय उन्होंने अर्जुन को द्रौपदी की, और नकुल तथा सहदेव को ब्राह्मणों की रक्षा करने की आज्ञा दी। तदनन्तर उस महान वन में भीमसेन के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुये युधिष्ठिर पर्वत की उस कन्दरा में पहुँचे जहाँ भीमसेन अजगर के पाश में आबद्ध होकर चेष्टा-शून्य हो गये थे (३. १७९)।" "यद्यपि उस अजगर ने युधिष्ठिर को अपना परिचय देते हुये भीम के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के आहार को अस्वीकृत कर दिया तथापि उसने अपने प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर प्राप्त होने की दशा में भी भको मुक्त कर देने का भी वचन दिया। तदुपरान्त अजगर ने प्रश्न करने आरम्भ किये और युधिष्ठिर ने उन सबका संतोषजनक उत्तर दिया। अन्त में अजगर ने युधिष्ठिर से कहा, 'तुम जानने योग्य समस्त बातों के विज्ञ हो। मैंने तुम्हारी बातें अच्छी तरह सुन लीं, अतः अब मैं तुम्हारे भ्राता भीमसेन का कैसे भक्षण कर सकता हूँ?' (३. १८०)।" "तदुपरान्त युधिष्ठिर ने उस सर्प से मोक्ष-प्राप्ति, नीति तथा दर्शन, मन और बुद्धि के अन्तर इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न, और नहुष के पतन का कारण भी पूछा। उस अजगर रूपी नहुष ने बताया कि पूर्वकाल में अभिमान से उन्मत्त होकर वह किसी को कुछ नहीं समझता था। उस समय ब्रह्मर्षि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और नाग आदि उसे कर देते थे। उसने बताया कि उन दिनों वह जिस प्राणी की ओर आँख उठाकर देखता था, उसके तेज का तत्काल हरण कर लेता था। उसी समय अगस्त्य जब उसकी पालकी को अपने कन्धे पर लेकर चल रहे थे तभी उसके लात मारने के कारण उन्होंने (अगस्त्य ने) उसे शाप दे दिया, जिससे वह अजगर होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। भूमि पर गिरते देखकर उन्हीं महर्षि ने दया से द्रवित होकर यह बताया कि युधिष्ठिर उसे इस पाप से मुक्त करेंगे। तदनन्तर उस सर्प ने भीम को मुक्त कर दिया और दिव्य शरीर धारण करके पुनः स्वर्गलोक को चला गया। तदुपरान्त धौम्य और भीम के साथ लौटकर युधिष्ठिर ने आश्रम पर एकत्र ब्राह्मणों को समस्त वृत्तान्त सुनाया। उस समय पाण्डवों के हित की इच्छा से उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने भीमसेन के दुःसाहस की निन्दा करते हुये इनसे कहा, 'अब कभी ऐसा मत करना।' (३. १८१)।"

१. आजगव महाराज पृथु वैन्य के धनुष का नाम है (७. ६९, १३)।

२. आजगव, अर्जुन के धनुष का नाम है (७. १४५, ९४)।

३. आजगव महाराज मान्धातृ के धनुष का नाम है (३. १२६, ३४)।

१. आजमीढ़=अजमीढ़ : १. ७५, १

२. आजमीढ़=युधिष्ठिर : १. ५५, ५; १९१, २०; २. ४५, ४१; ३. ११३, २४; ११४, २५; १३४, ४१; १३५, ६; ५. २, १०; २२, ६; ६. ८५, १; ८. ६५, ३; १०. १०, २९; १३. १८, ७६; ७७, ३४।

३. आजमीढ़ = नकुल : ५. ५६, १६

४. आजमीढ़ = धृतराष्ट्र : २. ७५, ६; ५ ३६, ७३; ६७, ६; ७. १४०, २२. २४; ८. ८३, १२।

५. आजमीढ़ = विदुर : ३. ५, १०

६. आजमीढ़ (द्वौ) = दुर्योधन और अर्जुन : ४. ६५, ५

७. आजमीढ़ = संवरण : १. ९४, ४८।

८. आजमीढ़ : 'आजमीढाजमीढानाम्', (२. ४५, ४१)। 'आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः। महिषी पाण्डुपुत्राणां पञ्चेन्द्रसमवर्चसाम्॥', (५. ८२, २२; ९०, ९१)।

आजानेय—घोड़ों की एक उत्तम जाति (३. २७०, १०)।

आज्यपाः (घृत पान करनेवाले) : १२. २८४, ८; १३. १८, ७५।

आञ्जनककुल, गजराजों की सेना का नाम है (७. ११२, १७-१८)।

आटवीपुरी, एक प्राचीन नगर का नाम है जिसे सहदेव ने जीता था (२. ३१, ७२)।

आडम्बर, धाता द्वारा स्कन्द को दिये गये पाँच पार्षदों में से एक का नाम है (९. ४५, ३९)।

आतक, कौरवकुल के उन नागों में से एक का नाम है, जो यज्ञाग्नि में जल मरे थे (१. ५७, १३)।

आतिथिन् : सुरौत्रं चैवातिथिनं घृतं सृञ्जय शुश्रुम', (१२. २९, २५)। 'अस्मयदथोऽतिथिः', (१२. २९, २८)।

१. आत्मन् : ९. ४१, ३५

२. आत्मन्=शिव (सहस्र नामों में से एक); कृष्ण (१४. ५२, १४)।

आत्मनिरालोक=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. आत्मयोनि = कृष्ण : १२. ४७, ३६; १३. १५८, ३९. ४२।

२. आत्मयोनि = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

आत्मवत्=विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

आत्मसंभव = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आत्मस्थ = कृष्ण : १२. ४७, ५३

१. आत्रेय (अत्रि के वंशज) : एक प्राचीन ऋषि, जो जनमेजय के सर्पसत्र के सदस्य थे (१. ५३, ८)। दल्भपुत्र बक ने युधिष्ठिर से कहा कि 'आपके द्वारा सुरक्षित होकर वासिष्ठ, आत्रेय आदि श्रेष्ठ व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण इस पुण्यशील द्वैतवन में आकर आपसे मिले हैं (३. २६, ८)।' तीर्थयात्रा के लिये युधिष्ठिर की प्रतीक्षा करनेवाले महर्षियों में से एक यह भी थे (३. ८५, ११९)। ये महर्षि वामदेव के शिष्य थे (३. १९२, ४६)। 'आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्।', (५. ३६, १)। शरशय्या पर पड़े भीष्म को घेर कर खड़े होनेवाले महर्षियों में इनका उल्लेख है (१२. ४७, ७)। उत्तरदिशा में निवास करनेवाले सात ऋषियों में से एक (१२. २०८, ३२)। अत्रिवंशज बुद्धिमान् राजा इन्द्रदमन ने एक योग्य ब्राह्मण को नाना प्रकार के धन का दान करके अक्षय लोक प्राप्त किये थे (१२. २३४, १८)। अत्रिवंश में उत्पन्न महातेजस्वी सांकृती अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर उत्तम लोकों को प्राप्त हुये थे (१२. २३४, २२)। दान और तपस्या से स्वर्लोक जानेवाले पवित्र राजाओं में इनका भी उल्लेख है (१३. १३७, ३)। बलराम ने तीनों लोकों की रक्षा तथा दुर्वासा (आत्रेय) के वचन का पालन करने के लिये अपने परमधाम पधारने का उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियों का निरोध किया (१६. ४, २०)।

२. आत्रेय—पूर्व तथा उत्तर की जातियों में इसका उल्लेख (६.९,६८)।

१. आत्रेयी—वरुण की सभा में स्थित उन नदियों में से एक, जो वरुण की उपासना करती हैं (२. ९, २२)।

२. आत्रेयी (ऋतुमती स्त्री)—जो मनुष्य जान-बूझकर आत्रेयी (गर्भिणी स्त्री) की हत्या करता है, उसे उस गर्भिणी-वध के कारण दो ब्रह्म-हत्याओं का पाप लगता है (१२. १६५, ५५)।

आथर्वण : ५. ३७, ५८। स्वप्न में श्रीकृष्ण सहित शिवजी के पास जाते हुये अर्जुन इनके स्थान पर गये थे (७. ८०, ३२)। 'आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया', (८. ४०, ३३)। 'आथर्वणा द्विजाः', (८. ९०, ४)।

आदान, पृथिवी का एक नाम है (१३. ६२, १२)।

आदि=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आदिकर=विष्णु : १२. ३४७, ६२।

आदितेय, देव (अदिति के पुत्र) : १२. २०९, ११।

१. आदित्य (बहु०), अदिति और कश्यप से उत्पन्न देवों के एक वर्ग का नाम है। 'कृत्वा द्वादशधात्मानं द्वादशादित्यतां गतः; (३. ३, ५९)। इनकी संख्या बारह बताई गई है जिनके नाम ये हैं : १. धातृ, २. मित्र, ३. अर्यमन्, ४. शक्र, ५. वरुण, ६. अंश, ७. भग, ८. विवस्वत, ९. पूषन्, १०. सवितृ, ११. त्वष्टृ, और १२. विष्णु (१. ६५, १४-१६)। अन्यत्र बारह आदित्यों की गणना कराते हुये इस तालिका के कुछ नामों को छोड़ते और कुछ नये नामों को संयुक्त करते हुये बारह के स्थान पर तेरह आदित्यों का इस प्रकार उल्लेख है : १. धातृ, २. अर्यमन्, ३. मित्र, ४. वरुण, ५. अंश, ६. भग, ७. इन्द्र, ८. विवस्वान्, ९. पूषन्, १०. त्वष्टृ, ११. सवितृ, १२. पर्जन्य, तथा १३. विष्णु (१. १२३, ६६-६७ : यहाँ यद्यपि तेरह नामों की गणना कराई गई है तथापि यह कहा गया है कि आदित्यों की संख्या बारह ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ बारह मासों के लिये बारह आदित्य और तेरहवें अथवा मलमास के लिये विष्णु की गणना कराई गई है)। आदित्यों की अन्यत्र इस प्रकार की विविध गणनायें मिलती हैं : १. भग, २. अंश, ३. अर्यमन्, ४. मित्र, ५. वरुण, ६. सवितृ, ७. धातृ, ८. विवस्वान्, ९. त्वष्टृ, १०. पूषन्, ११. इन्द्र, १२. विष्णु (१२. २०८, १५-१६); १. अंश, २. भग, ३. मित्र, ४. वरुण, ५. धातृ, ६. अर्यमन्, ७. जयन्त, ८. भास्कर, ९. त्वष्टृ, १०. पूषन्, ११ इन्द्र, १२. विष्णु (१३. १५०, १४-१५)। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण, किन्तु कनिष्ठतम विष्णु हैं (१. ६५, १४)। इनमें से इन्द्र को प्रमुख कहा गया है (१. ६६, ३६)। 'आदित्याश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः', (५.९८, १३)। भिन्न-भिन्न आदित्यों के वर्ष के प्रत्येक मास में सूर्य के रथ के अधिष्ठाता होने का विष्णु पुराण में उल्लेख है, जहाँ आदित्यों के नाम इस प्रकार हैं : १. धातृ, २. अर्यमन्, ३. मित्र, ४. वरुण, ५. इन्द्र, ६. विवस्वान्, ७. पूषन्, ८. पर्जन्य, ९. अंश, १०. भग, ११. त्वष्टृ, और १२. विष्णु (विष्णु० पु० २. १०, २-१८)। यद्यपि छः, सात, अथवा आठ आदित्यों की प्राचीन धारणा का महाभारत में कोई संकेत नहीं मिलता तथापि एक स्थल (१२. ४३, ६) पर इसका कुछ आभास देखा जा सकता है। अग्नि की जो लपटें होती हैं वे ही एकादश रुद्र तथा अत्यन्त तेजस्वी द्वादश आदित्य हैं (१३. ८५, १४४)। अनेक स्थलों पर आदित्यों का अन्य देवगणों इत्यादि के साथ उल्लेख है, जैसे : विश्वेदेव, वसु-गण, तथा अश्विनी कुमारों के साथ इनका उल्लेख (१. १, ३४); वसुओं, रुद्रों, साध्यों, मरुद्गणों, तथा अन्य देवताओं के साथ इनका उल्लेख (१. ३०, ३३-३४)। गरुड़ से पराजित होकर आदित्यगण पश्चिम दिशा की ओर भागे तथा अश्विनी कुमारों ने उत्तर दिशा का आश्रय लिया (१. ३३, १७)। अदिति के पुत्रों (देवताओं) द्वारा दैत्यगण अनेक बार युद्ध में पराजित हो चुके थे (१. ६४, २८)। 'अदित्यां द्वादशादित्या :...सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः', (१. ६५, १४-१६)। विनतानन्दन गरुड़, बलवान अरुण, तथा भगवान बृहस्पति की गणना भी आदित्यों में ही की गई है (१. ६६, ३९)। 'मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान्समजीजनत्', (१. ७१, १०)। 'आदित्या द्वादश स्मृताः', (१. १२३, ६७)। रुद्र और आदित्यगण कृष्णा के स्वयंवर के समय उपस्थित थे (१. १८७, ६; १९७, ४०)। द्रौपदी ने अपने पाँच वीर महारथी पुत्रों को उसी प्रकार जन्म दिया जैसे अदिति ने बारह आदित्यों को (१. २२१, ८०)। आदित्यों के वरुण के भवन में उपस्थित होने का वर्णन (२. ९, ७)। ब्रह्मा के भवन में उपस्थित होने का वर्णन (२. ११, ३०, ४४)। रुद्र, साध्य, आदित्य, वसु तथा अश्विनीकुमार योग-जनित ऐश्वर्य से युक्त होकर प्रजाजनों का धारण-पोषण करते हैं (३. २, ८१)। अर्जुन की शान्ति के लिये द्रौपदी ने वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, विश्वेदेव, तथा साध्य आदि देवताओं की शरण ली (३. ३७, ३४)। अर्जुन ने इन्द्रलोक में अन्य देवगणों के साथ आदित्यों को भी विराजमान देखा (३. ४३, १३)। काम-पीड़ित उर्वशी ने अर्जुन से बताया कि उनके शुभागमन के उपलक्ष में स्वर्गलोक में एक महान् उत्सव मनाया गया था, जिसमें रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, तथा वसुगण भी उपस्थित थे (३. ४६, २४)। राजा नल ने कहा कि आदित्य, वसु, रुद्र इत्यादि दमयन्ती की रक्षा करें (३. ६२, २४)। जनमेजय ने कहा कि आदित्यों में जैसे विष्णु हैं वैसे ही पाण्डवों में अर्जुन (३. ८०, २)। 'आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः', (३. ८२, २२)। 'आदित्या वसवो रुद्रा जनार्दनमुपासते', (३. ८४, १२४)। 'एतानि वसुभिः साध्यैरादित्यैर्मरुदश्विभिः', (३. ८५, १०५; ९०, ३३)। आदित्यान्सवसून्रुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान्', (३. ९९, ५७)। 'वैवस्वतादित्यधनेश्वराणामिन्द्रस्य विष्णोः सवितुर्विभोश्च', (३. ११८, ११)। 'द्वादशादित्यान्कथयन्तीह धीराः', (३. १३४, १९)। अर्जुन ने आदित्यों को इन्द्रलोक में देखा (३. १६८, ५३)। मार्कण्डेय ने आदित्यों को विष्णु की कुक्षि में देखा (३. १८८, ११९)। कर्ण को एक पिटारी में रखकर नदी में बहाते हुये कुन्ती ने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों, विश्वेदेवों, इन्द्र सहित मरुद्गणों आदि से उसकी रक्षा करने की स्तुति की (३. ३०८, १४)। युधिष्ठिर ने कहा कि वे अर्जुन को तेरहवाँ आदित्य मानते हैं (४. २, २१)। एक समय जब बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्मा की सेवा में उपस्थित हुये तब विभिन्न देवगणों के साथ आदित्यगण भी वहाँ विराजमान थे (५. ४९, ३)। जैसे आदित्य, वसु, तथा रुद्रगण बृहस्पति की बुद्धि का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार वृष्णि और अन्धक वंश के लोग श्रीकृष्ण की बुद्धि पर आश्रित रहते हैं (५. ८६, ४)। सम्पूर्ण आदित्यों में एकमात्र विष्णु ही अजेय, अविनाशी, नित्य विद्यमान, सर्वसमर्थ, और सनातन परमेश्वर हैं (५. ९७, ३)। श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को बताया कि जब देवासुर संग्राम में समस्त संसार दो भागों में विभक्त हो गया था तब ब्रह्माजी ने कहा कि आदित्य, वसु, तथा रुद्र आदि देवता ही विजयी होंगे (५. १२८, ४३)। जब कौरव सभा में श्रीकृष्ण ने विराट स्वरूप प्रगट किया तब आदित्य और साध्य आदि समस्त देवगण उनके विभिन्न अङ्गों में स्थित दिखाई पड़े (५. १३१, ६)। जनमेजय ने पूछा कि जब दुर्योधन ने श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित तथा आदित्यों से घिरे हुये और युद्ध के लिये सन्नद्ध युधिष्ठिर के समाचार को सुना तब उसने क्या किया (५. १५३, ३)। श्रीकृष्ण ने बताया कि वे ही अदिति के बारह पुत्रों (आदित्यों) में विष्णु हैं (६. ३४, २१; ३५, ६)। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि आदित्य, रुद्र, तथा अन्य देवगण उन्हें (कृष्ण को) विस्मित होकर देखते हैं (६. ३५, २२)। आदित्यगण अर्जुन के विरुद्ध कर्ण का पक्ष लेते हैं (८. ८७,

४७)। स्कन्द के अभिषेक के समय आदित्यगण शिव को घेर कर खड़े थे (९. ४४, ३०) । 'रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः' (९. ४५, ६)। 'मैत्रावरुणयोर्लोकानादित्यानां तथैव च', (९. ५०, ३९)। देवस्थान मुनि ने युधिष्ठिर को बताया कि धर्म का आश्रय लेकर ही रुद्रों, आदित्यों, साध्यों इत्यादि ने स्वर्ग प्राप्त किया था (१२. २१, २०)। 'तस्मिन् धर्मे स्थिता देवाः सहाचार्य पुरोहिताः। आदित्या वसवो रुद्राः ससाध्या मरुदश्विनः ॥', (१२. १६६, २२)। विभिन्न देवताओं सहित आदित्यों के लोकों को भी परमात्मा के परमधाम की तुलना में नरक कहा गया है (१२. १९८, ६) । 'आदित्यानदितिर्जज्ञे देवश्रेष्ठान्महाबलान्', (१२. २०७, २६)। 'द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः', (१२. २०८, १६)। 'आदित्याः क्षत्रियास्तेषाम्', (१२. २०८, २३) । द्वादशानां तु भवतामादित्यानां महात्मनाम्', (१२. २२४, ४१) । बलि ने कहा कि उसने पहले आदित्यों, रुद्रों, साध्यों, विश्वेदेवों और मरुद्गणों को पराजित किया है (१२. २२७, ९. ७६)। आदित्यगण अन्य देवों के साथ दक्ष के यज्ञ में उपस्थित हुये थे (१२. २८४, ७) । आदित्यों, वसुओं, तथा अन्य देवों ने तपस्या से ही सिद्धि प्राप्त की (१२. २९५, १६)। जब शिव हिमालय पर तपस्या कर रहे थे तो उस समय अन्य देवों के साथ आदित्य भी उनकी आराधना करते थे (१२. ३२३, १८) । 'द्वादशैव तथाऽऽदित्यान् वामपार्श्वे समास्थितान्', (१२. ३३९, ५२)। श्रीकृष्ण ने बताया कि शंकर के कर्मों की गति का ज्ञान अशक्य है, क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता, महर्षि, तथा सूक्ष्मदर्शी आदित्य भी उनके निवासस्थान को नहीं जानते (१३. १४, २२)। उपमन्यु ने बताया कि शिव ही आदित्यों में विष्णु हैं (१३. १४, ३२२)। बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण इत्यादि द्वारा शिव की स्तुति का वर्णन (१३. १४, ३९१)। 'आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः', (१३. ६२, ४६) । 'आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोऽथाश्विनावपि', (१३. ८४, ८०)। 'अर्चिषो याश्च ते रुद्रास्तथाऽऽदित्या महाप्रभाः', (१३. ८५, ११३) । जो बारह महीनों तक प्रति बारहवें दिन केवल हविष्यान्न ग्रहण करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और उसके लिये बारह आदित्यों के समान तेजस्वी विमान प्रस्तुत किया जाता है (१३. १०७, ५६)। जो लगातार बारह महीने तक पूरे बीसवें दिन पर एक बार भोजन करता, सत्य बोलता, व्रत का पालन करता, मांस नहीं खाता, ब्रह्मचर्य का पालन करता तथा समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहता है वह आदित्यों के विशाल और रमणीय लोक में जाता है (१३. १०७, ९२)। जो लगातार बारह महीनों तक अग्निहोत्र करता हुआ चौबीसवें दिन एक बार हविष्यान्न ग्रहण करता है वह दिव्य-माला, दिव्यवस्त्र, दिव्यगन्ध, तथा दिव्य अनुलेपन धारण करके दीर्घकाल तक आदित्यलोक में सानन्द निवास करता है (१३. १०७, १०३) । पूर्णमासी के दिन चन्द्रोदय के समय ताँबे के बर्त्तन में मधु-मिश्रित पकवान लेकर जो चन्द्रमा के लिये बलि अर्पण करता है उसकी दी हुई उस बलि को साध्य, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और वसुगण ग्रहण करते हैं तथा उससे चन्द्रमा और समुद्र की वृद्धि होती है (१३. १३४, ३–७)। हिमालय पर्वत पर भूतगणों सहित शिव की शोभा का वर्णन करते हुये नारद ने बताया कि शिव के तृतीय नेत्र से जो अग्नि की लपटें निकल रही थीं वह बारह आदित्यों के समान प्रकाशित होकर द्वितीय प्रलयाग्नि के समान प्रतीत होती थीं (१३. १४०, ३४) । आदित्यों को श्रीकृष्ण से उत्पन्न बताया गया है (१३. १५८, ३३) । सुरक्षा के लिये इनका आवाहन करना चाहिये (१३. १६५, १६) । आदित्यगण मुञ्जवत् पर्वत पर शिव की उपासना करते हैं (१४. ८, ६)। 'स्वेन सैन्येन संवीता यथादित्याः स्वरश्मिभिः', (१४. ६४, २)। मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक में आने पर श्रीकृष्ण का आदित्यगण स्वागत करते हैं (१६. ४, २५) । नरक से लौटते हुये युधिष्ठिर का स्वागत करते हैं (१८. ३, ८)। 'द्वादशादित्य सदृशम्', (१८. ४, ६) । 'अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः। आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥', (१८. ६, ६) । तु० की० **काश्यपेयाः।**

२. आदित्य : विनता-नन्दन गरुड़, बलवान् अरुण, तथा भगवान् बृहस्पति की गणना आदित्यों में की जाती है (१. ६६, ३९) । आदित्यों में एकमात्र भगवान विष्णु ही अजेय, अविनाशी, नित्य-विद्यमान एवं सर्व-समर्थ सनातन परमेश्वर हैं (५. ९७, ३)। देवताओं ने मानसरोवर के तट पर यज्ञ आरम्भ किया; वहाँ खली नामक दानवों से इनका युद्ध हुआ, किन्तु वसिष्ठ ने उन समस्त दानवों को अपने तेज से दग्ध कर दिया (१३. १५५, १६–२२)। रुद्र, साध्य आदि के साथ इनका भी कीर्त्तन करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है (१८. ६, ६)।

३. आदित्य—जहाँ का जल सात आदित्यों द्वारा सोख लिया गया है वहाँ संवर्तक नामक प्रलयकालीन अग्नि वायु के साथ उन सम्पूर्ण लोकों में फैल जाती है (३. १८८, ६९)।

४. आदित्य, सूर्य : 'आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः', (१. १, १२८) । 'आदित्यवर्चसम्', (१. ६, ३)। 'आदित्यरथमध्यास्ते', (१. १६. २३)। 'आदित्यपथमाश्रिताः', (१. १८ ३७) । 'आदित्ये लोहितायति', (१. १९, १६)। 'आदित्य इव', (२. २४, २५; ३. ३, ६२) । 'आदित्यस्याश्रमो', (३. ८३, १८४)। 'आदित्य लोकम्', (३. ८३, १८५)। 'यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम्', (७. १०, ४१) । 'आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं', (९. ६, १०)। 'आदित्यमण्डलम्', (९. १८, ३१)। 'आदित्यसन्निभाः', (९. ३६, ८; ४६, ४६; ५५, ४७) । 'राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपतेः', (९. ५६, १०) । 'चक्रमादित्यगोचरम्', (९. ६५, ६) । 'रथेनादित्यवर्चसा', (१०. ११, ४) । 'आदित्योदयवर्णस्य', (१०. १३, २)। 'एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च। रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोपिताम् ॥', (११. १६, ४५) 'ध्वजांश्चादित्यवर्चसः', (११. १८, १७)। 'आदित्यशशितारकम्', (१२. ११, १४) । 'चन्द्रादित्यौ', (१२. २८, ३३)। 'विकीर्णांशुरिवादित्यो', (१२. ४७, ४)। 'आदित्यं पतितं यथा', (१२. ५३, २७; ५४, ६) । 'कुरुते पञ्चरूपाणि कालयुक्तानि यः सदा। भवत्यग्निस्तथाऽऽदित्यो मृत्युर्वैश्रवणो यमः ॥', (१२. ६८, ४१)। 'तथादित्यस्य रश्मयः', (१२. १०२, ६) । 'यथाऽऽदित्यः प्रातरुद्यंस्तमः सर्वं व्यपोहति । कल्याणमाचरन्नेवं सर्वपापं व्यपोहति ॥', (१२. १५२, ३७)। 'आदित्योऽयं स्थितो मूढाः', (१२. १५३, १९)। 'यावदादित्यः', (१२. १५३, १०४)। 'ऊर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न दृश्यतः', (१२. १८२, २४) । 'नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं', (१२. १९३, १७) । 'प्रत्यादित्यं न मेहेत (१२. १९३, २४)। 'सर्वलोकान्यदादित्य एकस्थस्तापयिष्यति।', (१२. २२५, ३२)। 'आदित्यो नैव तपिता कदाचिन्मध्यतः स्थितः', (१२. २२५, ३४)। 'प्रसीदन्ति च संस्थाय तदा ब्रह्मा प्रकाशते। विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान् ॥', (१२. २४०, १९) । 'उद्यन्तमथादित्यम्', (१२. २६१, ४०)। 'पञ्चेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम् । आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राणः क्रतुर्यमः ॥', (१२. २६२, ४०) । 'अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मन्नादित्यमुपगच्छति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥', (१२. २६३, ११)। 'चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः', (१२. २८४, १६४)। 'अद्वैधमनसं युक्तं शूरं धीरं विपश्चितम्। न श्रीः सन्त्यजते नित्यमादित्यमिव रश्मयः ॥', (१२. २९८, ४३)। 'अन्तकाल इवादित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत्', (१२. ३००, २१) । 'रश्मिजालमिवादित्यः', (१२. ३०३, ३२)। 'विधूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान्। वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि ॥', (१२. ३०६, २०)। 'ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तेनाभिचोदितः। कृत्वा द्वादशधाऽऽत्मानमादित्यो ज्वलदग्निवत् ॥', (१२. ३१२, ४)। 'मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप', (१२. ३१८, २) । 'शश्वदादित्यस्तव भाषिता', (१२. ३१८, ६६) ।

'यथाऽऽदित्यान्मणेः', (१२. ३२०, १२४)। 'मध्यं गतमिवादित्यं दृष्ट्वा', (१२. ३२५, २८)। 'आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनः पुनरुदेति च', (१२. ३३१, ७) । 'अतो मे रोचते गन्तुमादित्यं दीप्त तेजसम्', (१२. ३३१, ५७)। 'आदित्येनाचिरोदिते', (१२. ३३२, ३) । 'विद्यासहायवन्तं च आदित्यस्थं समाहितम् । कपिलं प्राहुराचार्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः ॥', (१२. ३३९, ६८)। प्राहुरादित्यवर्णं तं पुरुषं तमसः परम्', (१२. ३४०, ५७)। 'आदित्यस्थं सनातनं कपिलं प्राहुराचार्याः', (१२. ३४२, ९५)। 'आदित्यदग्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केनचित्क्वचित् ॥ परमाणुभूता भूत्वा तु तं देवं प्रविशन्त्युत ।', (१२. ३४४, १४. १५)। 'आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे', (१२. ३४८, ५०) । 'प्रत्यादित्यप्रतीकाशः सर्वतः समदृश्यत ।', (१२. ३६२, १२) । 'आदित्याभिमुखो', (१२. ३६२, १३) । 'आदित्यतां गतम्', (१२. ३६२, १६) । 'आदित्यश्चन्द्रमा विष्णुरापो वायुः शतक्रतुः । अग्निः खं पृथिवी मित्रः पर्जन्यो वसवोऽदितिः ॥ सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च पन्नगः । सर्वे कालेन सृज्यन्ते ह्रियन्ते च पुनः पुनः ॥', (१३. १, ५५-५६)। 'ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि । विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥', (१३. १४, १४०) । 'नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनयनाय च । नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च ॥', (१३. १४, २९६. २९७) । 'अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते', (१३. १६, ४४)। 'चन्द्रादित्यौ', (१३. १६, ५२) । 'आदित्यचन्द्रौ', (१३. १८, ७१)। 'आदित्यसमतेजसम्', (१३. २६, १)। 'उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः', (१३. २६, १५) । 'दिवि ज्योतिर्यथाऽऽदित्यः पितॄणां चैव चन्द्रमाः', (१३. २६, ७४) । 'वायुमादित्यम्', (१३. ३१, ६)। 'आदित्यश्चन्द्रमा वायुरापो भूरम्बरं दिशः ॥ सर्वे ब्राह्मणमाविश्य सदाऽन्नमुपभुञ्जते ।', (१३. ३४, ६-७)। 'आदित्यो वरुणो', (१३. ६२, ४८)। 'आदत्ते च रसान्भौमानादित्यः स्वगभस्तिभिः । वायुरादित्यतस्तांश्च रसां देवः प्रवर्षति ॥', (१३. ६३, ३७)। 'तरुणादित्यवर्णानि (१३. ६३, ४७; ७१, २४) । 'कालज्ञानं विप्र गवान्तरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम्', (१३. ७३, ३८) । 'तरुणादित्यसंकाशैः (१३. ८१, २१) । 'आदित्योदयसंप्राप्ते', (१३. ८५, १५४) । 'आदित्योदयनं प्रति', (१३. ८५, १६०)। 'षडाननं कुमारं तु द्विषडक्षं द्विजप्रियम् ॥ पीनांसं द्वादशभुजं पावकादित्यवर्चसम् ।', (१३. ८६, १९) । 'आदित्यो रुचिरां प्रभाम्', (१३. ८६, २३)। 'बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम्', (१३. ९३, ७६) । 'आदित्यदेवस्य पदम्', (१३. १०२, ३२) । 'एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः । नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥', (१३. १०४, १७) । 'प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रति गां च प्रति द्विजान् । ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥', (१३. १०४, ७५) । 'चन्द्रादित्यौ', (१३. १०७, ८२) । 'आदित्यतेजसा', (१३. १२५, ४५) । 'ऐन्द्रीं सन्ध्यामुपासित्वा आदित्याभिमुखः स्थितः । सर्वतीर्थेषु स स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥', (१३. १२६, १५)। 'पर्वकाले च यत्किञ्चिदादित्यं चाधितिष्ठति ॥ प्रेतलोकं गते मर्त्ये तत्तत्सर्वं विभावसुः । प्रतिजानाति पुण्यात्मा तच्च तत्रोपयुज्यते ॥', (१३. १३०, १६-१७) । 'यथादित्यः', (१३. १३०, २८)। 'मांसप्रतिगृहे चैव मधुनो लवणस्य च। आदित्योदयनं स्थित्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥', (१३. १३६, ५)। 'सम्भूतं नेत्रमादित्यसन्निभम्', (१३. १४०, ३०) । 'नष्टादित्ये तथा लोके', (१३. १४०, ४४)। 'दाक्षायण्यास्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्तथा', (१३. १४७, २६) । 'आदित्यसन्निभाः', (१३. १५०, ३६) । 'आदित्यवंशप्रभवं महेन्द्रसमविक्रमम्', (१३. १५०, ४८) । 'सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा', (१३. १५०, ७७)। 'आदित्यवर्चसम्', (१३. १५५, ४)। 'चन्द्रादित्याविमावुभौ', (१३. १५६, ५) । 'तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति', (१३. १५८, २२) । 'चन्द्रादित्यौ', (१३. १५८, ३३) । 'आदित्यवर्णेन', (१३. १६०, ३१) । 'चन्द्रादित्यौ प्रभाकरौ', (१३. १६५, १६)। 'दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम्', (१३. १६७, ६)। 'आदित्य सदृशः', (१४. ४, २०)। 'बालादित्यसमद्युतिः', (१४. ८, ८) । 'उपप्लुतमिवादित्यम्', (१४. ११, २) । 'ज्योतिराकाशमादित्यो', (१४. ३५, ४१) । 'दृष्ट्वा त्वादित्यमुद्यन्तं कुचराणां भयं भवेत् । अध्वगाः परितप्येयुरुष्णतो दुःखभागिनः ॥ आदित्यः सत्वमुद्रिक्तं कुचरास्तु तथा तमः । परितापोऽध्वगानां च रजसो गुण उच्यते ॥ प्राकाश्यं सत्त्वमादित्यः सन्तापो रजसो गुणः । उपप्लवस्तु विज्ञेयस्तामसस्तस्य पर्वसु ॥ एवं ज्योतिष्षु सर्वेषु निवर्तन्ते गुणास्त्रयः ।', (१४. ३९, १३-१६) । 'चक्षुःस्थश्च सदादित्यो रूपज्ञाने विधीयते', (१४. ४७, ३१)। 'भूमिरादित्यस्तु गन्धानां रसानामपि एव च । रूपाणां ज्योतिरादित्यः स्पर्शानां वायुरुच्यते ॥', (१४. ४४, ३) । 'आदित्यो ज्योतिषामादिर्', (१४. ४४, ५)। 'राहुरग्रसदादित्यं युगपत्सोममेव च', (१४. ७७, १५)। 'रथेनादित्यवर्चसा', (१५. २३. ११)। 'आदित्यसन्निभम्', (१४. २९, ५०)। 'द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमादित्यं तपतां वरम् । लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णं च शोभने ॥', (१५. ३१, १४) । 'आदित्यो रजसा राजन् समवच्छन्नमण्डलः । विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत ॥', (१६. १, ४)। 'रथं दिव्यमादित्यवर्णं', (१६. ३, ५) । 'भ्राजमानमिवादित्यं', (१८. १, ५) । 'आदित्यतनयं', (१८. ३, २०) । 'आदित्य सहितो याति', (१८. ४, १७)। 'उदितादित्यसंकाशम्', (१८. ६, ३०)।

५. आदित्य, एक विश्वेदेव का नाम है : १३. ९१, ३६ ।

६. आदित्य = वरुण : १. २२५, २; १३. ४, १३. १५ ।

७. आदित्य = विष्णु : १३. १४९, १८. ७३ ।

८. आदित्य = शिव : १२. २८४, ८०; १३. १७, ६८. १४० ।

९. आदित्य (विशेषण) : 'आदित्यं द्वादशे तस्य विमानं संविधीयते', (१३. १०७, ५६)।

आदित्यकेतु—धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से ७४वाँ (१. ६७, १०२; ११७, ११)। अपने भ्राता सुनाभ की भीम द्वारा हुई मृत्यु का बदला लेने के लिये अन्य छः भ्राताओं के साथ इनका भीमसेन पर आक्रमण (६. ८८, १५. १८)। भीमसेन द्वारा इनका वध (६. ८८, २८)।

१. आदित्यतनय (सूर्यपुत्र) = मनु : १२. १२२, ३९ ।

२. आदित्यतनय = कर्ण : १८. ३, २० ।

आदित्यतीर्थ, सरस्वती तटवर्त्ती एक प्राचीन तीर्थ का नाम है जहाँ ज्योतिर्मय सूर्य ने यज्ञ करके ज्योतियों का आधिपत्य एवं प्रभुत्व प्राप्त किया था। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरायें, द्वैपायन व्यास, शुकदेव, मधुसूदन श्रीकृष्ण, यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा सहस्रों की संख्या में पुरुष भी इस तीर्थ में योग-सिद्ध हो गये हैं । भगवान् विष्णु ने पहले मधु और कैटभ नामक असुरों का वध करके यहाँ स्नान किया था। धर्मात्मा व्यास ने भी इसी तीर्थ में स्नान करके परम योग के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ऋषि असित देवल ने भी इसी तीर्थ में स्नान करके योग में लीन होकर सिद्धि प्राप्त की (९. ४९, १७-२४)।

आदित्यनन्दन = कर्ण : ६. १२२, २२ ।

आदित्यनयन = शिव : १३. १४, २९६ ।

आदित्यपति (सूर्य का स्वामी) = विष्णु : १२. ३४०, १०२ ।

आदित्यपथ = आकाश : १. १८, ३७ ।

आदित्यपर्वत, शिव का निवासस्थान, जो प्रज्वलित अग्नि से चारों ओर से घिरा है (१२. ३२७, २२)।

आदित्यप्रतिम = शिव : १३. १४, २९६ ।

आदित्यवक्त्र = शिव : १३. १४, २९६ ।

आदित्यवर्ण = शिव : १३. १४, २९७ ।

१. आदिदेव = सूर्य : धौम्य द्वारा वर्णित सूर्य के १०८ नामों में से ९५वाँ नाम है (३. ३, २५)।

२. आदिदेव = विष्णु : १२. ६४, १०. १६. १९-२१. २५; ३३५, ४; ३३८, ४ (महापुरुषस्तव में २०वाँ नाम); १३. १४७, ४८; १३. १४७, ४८; १४९, ४९. ६५ (सहस्र नामों में से एक)।

३. आदिदेव = कृष्ण : १३. १४८, २४; १५८, २०।

आदिपर्वन् : महाभारत का पहला पर्व : १. २, ८९. १२९।

आदिराज, अविक्षित् के तृतीय पुत्र तथा कुरु के पौत्र का नाम है (१. ९४, ५२)। उन राजर्षियों की गणना में इनका भी उल्लेख है, जिनका प्रातःसायं नामोच्चारण करने से मनुष्य धर्म का भागी होता है (१३. १६५, ५५)।

१. आदिर्देवानाम् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. आदिर्देवानाम् = विष्णु : १२. ३४९, ४०।

आदिर्विश्वस्य = कृष्ण : १२. ४७, ७९।

१. आदिवंशावतरण (वंशावली), आदिवंशावतरणपर्व के अन्तर्गत पाँचवाँ अध्याय जिसमें वसु उपरिचर तथा उनके पुत्रों, गिरिका, मत्स्य, व्यास तथा उनके शिष्यों, भीष्म, अणीमाण्डव्य, संजय, कर्ण, कृष्ण वासुदेव, सात्यकि, कृतवर्मन्, द्रोण, कृपी, कृप, अश्वत्थामन्, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी, नग्नजित्, सुबल, शकुनि, गान्धारी, धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर, युधिष्ठिर आदि पाण्डव, १०१ धार्तराष्ट्र, अभिमन्यु, घटोत्कच, शिखण्डिन्, इत्यादि के जन्म और वंश का वर्णन है (१. ६३)।

२. आदिवंशावतरण = अंशावतारणपर्वन्—'पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम्', (१. २, ४२)। 'अंशावतरणं चात्र देवानां परिकीर्त्तितम्', (१. २, ९३)।

आदिवंशावतरणपर्वन्—महाभारत के आदि पर्व में ५९-६४ अध्यायों तक आने वाले एक अवान्तर पर्व का नाम है। "कथानुबन्ध : सर्पयज्ञ से अवकाश मिलने पर अन्य ब्राह्मण तो वेदों की कथायें कहते थे, परन्तु व्यास जी अतिविचित्र महाभारत की कथा सुनाया करते थे। (१. ५९)।" "कथानुबन्ध : जब व्यास ने यह सुना कि राजा जनमेजय सर्पयज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं तब वे (व्यास : इनके जन्म, विकास, अध्ययन, वेदों का चार भाग में विभाजन, तथा इनके द्वारा पाण्डु इत्यादि की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है) अपने शिष्यों सहित यज्ञ में उपस्थित हुये। वहीं कुरुओं और पाण्डवों के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर व्यास ने जनमेजय को महाभारत की कथा सुनाने के लिये अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी (१. ६०)।" "भारतसूत्र : वैशम्पायन ने कौरवों तथा पाण्डवों में फूट, और युद्ध होने के वृत्तान्त का सूत्र रूप में वर्णन किया (१. ६१)।" "महाभारतप्रशंसा : जनमेजय ने सम्पूर्ण महाभारत को विस्तार से श्रवण करने की इच्छा प्रगट की। वैशम्पायन ने महाभारत की प्रशंसा करते हुये बताया कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस ग्रन्थ का निर्माण करने वाले महामुनि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ने महाभारत नामक अद्भुत इतिहास को तीन वर्षों में पूर्ण किया। उन्होंने यह भी बताया कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रन्थ में है वही अन्यत्र भी है; जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है। जो वाचक को यह महाभारत दान करता है उसके द्वारा समुद्र से घिरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी का दान सम्पन्न हो जाता है (१. ६२)।" ६३वें अध्याय के विषयवस्तु का ऊपर 'आदिवंशावतरण' शब्द के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है। "इक्कीस बार पृथिवी से क्षत्रिय-जाति का उन्मूलन करने के पश्चात् जमदग्नि-नन्दन परशुराम ने महेन्द्र पर्वत पर तपस्या आरम्भ की। उस समय अवशिष्ट क्षत्री नारियों और ब्राह्मणों के संयोग से एक नवीन क्षत्रिय जाति का उदय हुआ—कृतयुग का विस्तृत वर्णन। तदुपरान्त उन्हीं दिनों अदिति के पुत्रों द्वारा दैत्यगण अनेक बार युद्ध में पराजित हुये और स्वर्ग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर पृथिवी पर असुरों के रूप में इतनी अधिक संख्या में जन्म लेने लगे कि कच्छप और दिग्गज आदि की संगठित शक्तियाँ तथा शेष नाग भी पृथिवी को धारण करने में असमर्थ हो गये। तब असुरों के भार से आतुर तथा भयभीत पृथिवी ने समस्त भूतों के पितामह भगवान् ब्रह्मा की शरण में याचना की। ब्रह्मलोक में जाकर पृथिवी ने ब्रह्माजी का दर्शन किया जो उस समय देवताओं, द्विजों, महर्षियों, अप्सराओं, तथा गन्धर्वों से घिरे हुये थे। ब्रह्मा ने पृथिवी का मनोरथ पहले से ही जान लिया था, अतः उन्होंने पृथिवी से बताया कि उसकी सिद्धि के लिये वे सम्पूर्ण देवताओं को नियुक्त कर रहे हैं। तदनन्तर ब्रह्माजी ने देवताओं को अपने-अपने अंशों से पृथिवी के विभिन्न भागों में पृथक्-पृथक् जन्म ग्रहण करने तथा असुरों को समाप्त करने का आदेश दिया। ब्रह्मा के इस आदेश को शिरोधार्य करते हुये देवताओं ने वैकुण्ठलोक में जाकर भगवान् नारायण को भी पृथिवी पर अवतार लेने के लिये सहमत कर लिया (१. ६४)।"

आदिष्टी उसे कहते हैं जिसे गुरु ने नियत वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का आदेश दिया हो (१३. २२, १७)।

१. आद्य = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. आद्य = विष्णु : १२. ३४२, १३०।

३. आद्य, सरस्वती-तट पर स्थित एक तीर्थ का नाम है (९. ३५, ८९)।

आद्यकठ, एक प्राचीन ऋषि, जो राजा उपरिचर के यज्ञ के एक सदस्य थे (१२. ३३६, ९)।

आद्यः पुरुषः = विष्णु : १. १, २२।

आद्यस्तुति = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आधारनिलय = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

आनकदुन्दुभि = वसुदेव।

१. आनन्द, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ६५)।

२. आनन्द = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

१. आनर्त्त, एक देश का नाम है जिसे अर्जुन ने विजित किया था (२. २६, ४)। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को बताया कि यदि वह आनर्त्त देश में उपस्थित होते तो उन पर द्यूतजनित संकट न आने देते (३. १३, १४)। शाल्व का श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने की इच्छा से आनर्त्तवासियों से उनका परिचय पूछना (३. १४, ९)। श्रीकृष्ण का उन पर आक्षेप करनेवाले तथा आनर्त्तदेश में महान् संहार मचानेवाले शाल्व को युद्ध के लिये खोजना (३. १४, १८)। धनसंग्रह की रक्षा करने वाले यादवों ने आनर्त्तदेशीय नटों, नर्त्तकों तथा गायकों को शीघ्र ही नगर से बाहर कर दिया (३. १५, १४)। युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ समाप्त होने पर श्रीकृष्ण शाल्व से विमुक्त आनर्त्तनगर—द्वारका—में गये (३. २०, १)। अर्जुन ने आनर्त्तदेश से श्रीकृष्ण के साथ अभिमन्यु तथा दशार्हवंश के अन्य सम्बन्धियों को उपप्लव्य नामक नगर में बुलवा लिया (४. ७२, १५)। युधिष्ठिर ने आनर्त्तदेश के सम्मानित वीर श्रीकृष्ण से कुन्ती के कष्टों का वर्णन किया (५. ८३, ४५)। भारत के जनपदों की गणना के अन्तर्गत इसका उल्लेख (६. ९. ५१)। संजय ने धृतराष्ट्र को कौरव-पक्ष के मारे गये प्रमुख वीरों का परिचय देते हुये बताया कि महाबली राजकुमार विविंशति रणभूमि में सैकड़ों आनर्त्तदेशीय योद्धाओं को मार कर मरा है (८. ५, ७)। धृतराष्ट्र के लिये युद्ध करनेवाले लोगों में इनका उल्लेख (८. ७, ८)। युधिष्ठिर ने द्वारका जाते हुये श्रीकृष्ण से कहा : 'महाबाहु श्रीकृष्ण! आनर्त्तदेश की प्रजा, अपने माता-पिता तथा वृष्णिवंशी बन्धु-बान्धवों से मिलकर पुनः मेरे अश्वमेध यज्ञ में पधारियेगा (१४. ५२, ४८)।' सात्यकि के साथ श्रीकृष्ण का आनर्त्तपुरी द्वारका की ओर प्रस्थान (१४. ५२, ५८)।

२. आनर्त्त : 'आनर्त्तमेवाभिमुखाः शिवेन गत्वा धनुर्वेदरतिप्रधानाः।

तवात्मजा वृष्णिपुरं प्रविश्य न दैवतेभ्यः स्पृहयन्ति कृष्णे ॥', (३. १८३, २६)। 'आनर्त्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत् । तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम्' = सात्यकि, (९. १७, ८४)।

आन्ध्र—दक्षिण का एक देश जिसे सहदेव ने दूतों द्वारा ही विजित कर लिया था (२. ३१, ७१)।

आप, एक अग्नि का नाम है जिनकी मुदिता नाम की पत्नी के गर्भ से अद्भुत नामक अग्नि उत्पन्न हुये (३. २२२, १)।

आपः (जल)—मनुष्य के भले बुरे आचार-व्यवहार को जानने वालों में इनका भी उल्लेख है (१. ७४, ३०); = सूर्य (३. ३, १७); मनुष्य के आचरण को जाननेवाले सूर्य-चन्द्रमा इत्यादि के साथ इनकी गणना (३. २९१, २४)। वेद के अनुसार दृष्टि रखनेवालों का कथन है कि जल अधिदैवत है (१२. ३१३, ८)।

आपगा—नदी एवं तीर्थ, जहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है (३. ८३, ६८)।

आपद्धर्म : 'आपद्धर्मश्च पर्वोक्तम्', (१. २, ७६)। 'आपद्धर्माश्च', (१. २, ३२७)।

आपद्धर्मपर्वन्, शान्तिपर्व के अन्तर्गत १३१-१७३ अध्यायों तक आनेवाले महाभारत के ८९ वें अवान्तरपर्व का नाम है। "युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि जिसकी सेना और धन-सम्पत्ति क्षीण हो गई हो, जो आलसी तथा अत्यन्त कष्ट में हो उस राजा को अपने संकट से मुक्त होने के लिये क्या करना चाहिये ? भीष्म ने बताया कि उसे शान्ति का आश्रय लेना तथा अपना कुछ खोकर भी सन्धि कर लेना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो राजा को चाहिये कि वह अपने आप को किसी भी प्रकार शत्रु के हाथ में न फँसने दे। यदि आक्रामक राजा धर्मपरायण हो तो उसके साथ शीघ्रतापूर्वक सन्धि कर लेनी चाहिये अन्यथा उसके साथ वीरतापूर्वक युद्ध करना चाहिये, चाहे उसमें उसकी मृत्यु भी हो जाय (१२. १३१)।" "युधिष्ठिर ने पूछा कि संकट-काल उपस्थित होने पर ब्राह्मण को किस वृत्ति से जीवन-निर्वाह करना चाहिये। उत्तर में भीष्म ने आपत्ति-काल की नैतिकता का वर्णन करते हुये कहा कि ऐसे समय में राजा को चाहिये कि वह दुष्टों से उनका धन इत्यादि बलपूर्वक लेकर श्रेष्ठ पुरुषों को दे दे, क्योंकि ऐसे समय में निन्द्यकार्य भी निन्द्य नहीं होते। चाहे कितनी भी आपत्ति का समय क्यों न हो राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मणों को पीड़ित न करे। किसी की निन्दा करना अथवा निन्दा सुनना भी नहीं चाहिये। धर्मज्ञ पुरुष आचार को ही धर्म का प्रधान लक्षण मानते हैं, किन्तु जो शंख और लिखित मुनि के प्रेमी हैं वे इसे स्वीकार नहीं करते (१२. १३२)।" "राजा को कोश-संग्रह करने तथा मर्यादा की स्थापना करने की आवश्यकता बताते हुये भीष्म ने अमर्यादित दस्युवृत्ति की निन्दा की (१२. १३३)।" "भीष्म ने बताया कि क्षत्रिय के लिये धर्म और अर्थ ये दो ही प्रत्यक्ष हैं। उन्होंने बल की महत्ता और पाप से छूटने का प्रायश्चित्त भी बताया (१२. १३४)।" "मर्यादा का पालन करनेवाले कायव्य नामक दस्यु की सद्गति से सम्बद्ध प्राचीन इतिहास का वर्णन (१२. १३५)।" "राजा किसका धन लें और किसका न लें, तथा किसके साथ कैसा बर्त्ताव करें, इसका विचार (१२. १३६)।" "आने वाले संकट से सावधान रहने के लिये दूरदर्शी, तत्कालज्ञ, और दीर्घसूत्री मत्स्यों के दृष्टान्त से सम्बद्ध शाकुलोपाख्यान (१२. १३७)।" "शक्तिशाली शत्रुओं से घिरे हुये राजा के कर्त्तव्यों के विषय में प्राचीन मार्जार-मूषिक संवाद तथा उससे प्राप्त उपदेशों का वर्णन (१२. १३८)।" "भीष्म ने, शत्रु से सदैव सावधान रहने के विषय में राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी पक्षी के संवाद—ब्रह्मदत्त पूजन्योः संवाद—का वर्णन किया (१२. १३९)।" "धर्म का क्षय हो जाने पर राजा को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, इसके सम्बन्ध में भारद्वाज और राजा शत्रुञ्जय के बीच संवाद की प्राचीन कथा—कणिकोपदेश—का वर्णन (१२. १४०)।" "भयंकर संकट-काल में ब्राह्मण के जीवन-निर्वाह के सम्बन्ध में विश्वामित्र मुनि तथा चाण्डाल के संवाद का उल्लेख करते हुये भीष्म ने बताया कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग आदि का मूलकारण राजा ही होता है। उन्होंने बताया कि त्रेता के अन्त और द्वापर के आरम्भ में दैववश संसार में बारह वर्षों तक भयंकर अनावृष्टि रही, जिसके कारण प्रलयकाल जैसा दृश्य उपस्थित हो गया। उस समय इन्द्र ने वर्षा बन्द कर दी, बृहस्पति प्रतिलोम हो गया और चन्द्रमा (सोम) विकृत होकर दक्षिण मार्ग पर चला गया—उस समय का विस्तृत वर्णन। ब्राह्मणों के स्वाध्याय का लोप हो गया; वषट्कार और माङ्गलिक उत्सवों का कहीं नाम भी नहीं रह गया; यूप और यज्ञों का आयोजन समाप्त हो गया, तथा बड़े-बड़े उत्सव नष्ट हो गये। अग्नि के उपासक ऋषिगण नियम और अग्निहोत्र का परित्याग करके अपने आश्रमों से निकल कर भोजन के लिये यत्र-तत्र भटकने लगे। इन्हीं दिनों महर्षि विश्वामित्र ने अपनी पत्नी और पुत्रों को किसी जन-समुदाय में छोड़ दिया और स्वयं अग्निहोत्र और आश्रम का परित्याग करके भक्ष्य और अभक्ष्य में समान भाव रखते हुये विचरने लगे। एक दिन गिरते पड़ते वे वन के भीतर स्थित प्राणियों का वध करने वाले हिंसक चाण्डालों की बस्ती—विस्तृत वर्णन—में जा पहुँचे। उस बस्ती में भूख से पीड़ित महर्षि विश्वामित्र ने देखा कि एक चाण्डाल के घर में शस्त्र द्वारा सद्यः मृत कुत्ते की जांघ के मांस का एक बड़ा टुकड़ा पड़ा हुआ है। मुनि ने उसे चुरा लेने का निश्चय किया, क्योंकि आपत्तिकाल में प्राणरक्षा के लिये ब्राह्मण को श्रेष्ठ, समान, तथा हीन मनुष्य के घर से चोरी कर लेना भी शास्त्रानुकूल है। चोरी का निश्चय करके रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में विश्वामित्र ने जब चाण्डाल की कुटिया में प्रवेश किया तब रूक्ष स्वभाववाले उस चाण्डाल ने उन्हें क्रुद्ध स्वर में सम्बोधित किया। विश्वामित्र द्वारा अपना परिचय देने पर चाण्डाल घबड़ाकर अपनी शय्या से उठा और उनके निकट आकर नेत्रों से अश्रु बहाते हुये बोला, 'आप ऐसा कार्य करें जिससे आपका धर्म नष्ट न हो। मनीषी पुरुषों ने कहा है कि कुत्ता शृगाल से भी अधम होता है और कुत्ते के शरीर में भी उसकी जाँघ का भाग सबसे अधम होता है।' विश्वामित्र के अत्यन्त आग्रह पर चाण्डाल ने पुनः कहा, 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य के लिये पाँच नख वाले पाँच प्रकार के ही प्राणी आपत्ति काल में भक्ष्य बताये गये हैं, अतः यदि आप शास्त्र को प्रमाण मानते हैं तो अभक्ष्य पदार्थ की ओर मन न ले जाइये।' विश्वामित्र ने कहा, 'अग्निदेव देवताओं के मुख हैं तथापि वे जिस अवस्था के अनुसार सर्वभक्षी हो गये उसी प्रकार मैं ब्राह्मण होकर भी सर्वभक्षी बनूँगा।......इन्द्रदेव का जो पालन रूप धर्म है वही क्षत्रियों का भी है, और अग्निदेव का जो सर्वभक्षित्व नामक गुण है वह ब्राह्मणों का है; मेरा बल वेदरूपी अग्नि है, अतः मैं क्षुधा-शान्ति के लिये सब कुछ भक्षण करूँगा, क्योंकि मरने से जीवित रहना श्रेष्ठ है, और जीवित पुरुष पुनः धर्म का आचरण कर सकता है।......भूखे हुये महर्षि अगस्त्य ने वातापि नामक असुर का भक्षण कर लिया था।' इस प्रकार, चाण्डाल के निषेध के विपरीत भी विश्वामित्र कुत्ते की जाँघ उठा ले गये और वन में उसे अपनी पत्नी सहित खाने का विचार करने लगे। इतने में ही उनके मन में कुत्ते की जाँघ के मांस को देवताओं को अर्पित करने के पश्चात् ही भक्षण करने का विचार आया। ऐसा विचार करके मुनि ने वेदोक्त विधि से अग्नि की स्थापना की और इन्द्र तथा अग्नि देवता के उद्देश्य से स्वयं ही चरु पकाकर तैयार किया। तदनन्तर उन्होंने देवकर्म और पितृकर्म आरम्भ किया तथा इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके उनके लिये भी क्रमशः विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् भाग अर्पित किया। इसी समय इन्द्र ने समस्त प्रजा को जीवनदान देते हुये वर्षा आरम्भ की और उससे अन्न आदि ओषधियों को उत्पन्न किया। विश्वामित्र ने अपने कर्म समाप्त करके उस हविष्य का आस्वादन किये बिना ही देवताओं और

पितरों को संतुष्ट कर दिया तथा उन्हीं की कृपा से पवित्र भोजन प्राप्त करके उसके द्वारा अपने जीवन की रक्षा की (१२. १४१)।" "भीष्म के द्वारा महापुरुषों के लिये ऐसे भयंकर कर्मों का विधान सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त विषाद-ग्रस्त हो गये। भीष्म ने कहा कि राजा को इधर-उधर से नाना प्रकार के मनुष्यों के सान्निध्य द्वारा विभिन्न प्रकार की बुद्धियाँ सीखनी चाहिये और एक ही शाखा वाले धर्म को लेकर बैठे नहीं रहना चाहिये। जो लोग शास्त्रादेशों पर आक्षेप करते हैं उन्हें विद्या का व्यापार करनेवाला तथा राक्षसों के समान परद्रोही समझना चाहिये। भीष्म ने कहा, 'हमने सुना है कि केवल वचन अथवा बुद्धि द्वारा ही धर्म का निश्चय नहीं होता, अपितु शास्त्रवचन और तर्क दोनों के समुच्चय द्वारा उसका निर्णय होता है, यही बृहस्पति का मत है जिसे स्वयं इन्द्र ने बताया है। प्राचीन काल में उशनस् ने दैत्यों को इस सत्य का उपदेश दिया था कि वेदशास्त्र के द्वारा अनुमोदित तर्क बुद्धि से जो बात कही जाती है उसी से शास्त्र की प्रशंसा होती है। अवध्य मनुष्य का वध करने में जो दोष माना गया है वही वध्य का वध न करने में भी है। शुक्राचार्य ने कहा है कि आपत्तिकाल में भी सदा दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करना राजा का कर्त्तव्य होता है', (१२. १४२)।" "युधिष्ठिर ने शरणागत की रक्षा करने वाले प्राणी को प्राप्त होने वाले धर्म के सम्बन्ध में पूछा। भीष्म ने बताया कि शिवि आदि महात्मा राजाओं ने शरणागत की रक्षा करके ही परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। उन्होंने उस कपोत-लुब्धक संवाद का भी वर्णन किया जिसमें एक कबूतर ने शरण में आये हुये शत्रु का यथायोग्य सत्कार और अपना मांस खाने के लिये निमन्त्रित किया (१२. १४३-१४९)।" "युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि अनजान में पापकर्म कर बैठनेवाला व्यक्ति उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है, भीष्म ने ऋषियों द्वारा प्रशंसित उस प्राचीन प्रसङ्ग—इन्द्रोत पारिक्षितीय संवाद—का उपदेश किया जिसे शुनकवंशी विप्रवर इन्द्रोत ने राजा जनमेजय से कहा था (१२. १५०-१५२)।" "युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि क्या उन्होंने किसी ऐसे मनुष्य को देखा या सुना है जो मृत्यु के पश्चात पुनरुज्जीवित हो उठा, भीष्म ने गृद्ध्र और शृगाल के उस प्राचीन वार्तालाप—गृद्ध्र-गोमायु संवाद—का उल्लेख किया जो नैमिषारण्य में हुआ था (१२. १५३)।" "युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि यदि कोई छोटा राजा मोहवश किसी बड़े राजा से वैर बाँध ले, और वह बड़ा तथा बलवान राजा कुपित होकर उस दुर्बल राजा पर आक्रमण कर दे तब वह छोटा राजा क्या करे? भीष्म ने इस सम्बन्ध में प्राचीन पवन-शाल्मली-संवाद बताते हुये कहा, 'जो व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ बल वाला हो उसके द्वारा किये गये प्रतिकूल व्यवहार को भी क्षमा कर देना चाहिये। इसी प्रकार बालक, जड़, अन्ध, और बधिर की बातों को भी क्षमा करना चाहिये।' (१२. १५४-१५७)।" "लोभ ही समस्त अनर्थों और पापों का कारण होता है। देवता, गन्धर्व, असुर, बड़े-बड़े नाग, और सम्पूर्ण भूतगण भी लोभ के यथार्थ स्वरूप को नहीं जान पाते (१२. १५८)।" "अज्ञान और लोभ को एक दूसरे का कारण बताकर दोनों की एकता और दोनों को ही समस्त दोषों का कारण सिद्ध करते हुये भीष्म ने बताया कि जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा अन्य नरेश लोभ का नाश करके ही दिव्यलोक में गये हैं (१२. १५९)।" "महर्षियों ने अपने-अपने ज्ञान के अनुसार धर्म की एक नहीं अनेक विधियाँ बताई हैं, परन्तु उन सबका आधार दम (मन और इन्द्रियों का संयम) ही है। दान, यज्ञ, और वेदाध्ययन से भी दम का महत्व अधिक है (१२. १६०)।" "तप ही सम्पूर्ण जगत का मूल है; तप से ही प्रजापति ने समस्त संसार की सृष्टि की; तप से ही ऋषियों ने वेद का ज्ञान प्राप्त किया; तपस्या से ही ऋषियों ने अणिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्य को प्राप्त किया। संन्यास ही सर्वश्रेष्ठ तप है (१२. १६१)।" "सत्य के लक्षण, स्वरूप, और महिमा का वर्णन करते हुये भीष्म ने बताया कि देवता, पितर, तथा ब्राह्मण भी सत्य की प्रशंसा करते हैं। सत्य ही धर्म, तप, और योग है; सत्य ही सनातन ब्रह्म है; सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है; तथा सत्य पर ही सब कुछ टिका हुआ है। १००० अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा भी सत्य अधिक महत्वपूर्ण है (१२. १६२)।" "काम, क्रोध आदि तेरह दोषों का निरूपण और उनके नाश का उपाय बताते हुये भीष्म ने कहा कि ये सभी दोष धृतराष्ट्र के पुत्रों में वर्तमान थे (१२. १६३)।" "नृशंस तथा अत्यन्त नीच पुरुषों का लक्षण बताते हुये भीष्म ने कहा कि विज्ञ पुरुषों को चाहिये कि वे सदा ऐसे व्यक्तियों से बचकर रहें (१२. १६४)।" "अनेक प्रकार के पापों और उनके प्रायश्चित्तों का वर्णन करते हुये भीष्म ने बताया कि ब्राह्मणों को उनकी योग्यता के अनुसार सब प्रकार के रत्नों का दान करना चाहिये। प्रति वर्ष किया जाने वाला आग्रयण यज्ञ यदि न किया जा सके तो उसके स्थान पर प्रतिदिन वैश्वानरी इष्टि समर्पित करना चाहिये। मुख्य कर्म के स्थान पर जो गौण कर्म किया जाता है उसे अनुकल्प कहते हैं और धर्मज्ञ पुरुषों ने अनुकल्प को भी परमधर्म कहा है, क्योंकि विश्वेदेव, साध्य, ब्राह्मण, और महर्षि, इन सब ने मृत्यु से भयभीत होकर आपत्तिकाल के विषय में प्रत्येक विधि का प्रतिनिधि नियत कर दिया है। परिहास में स्त्री के पास, विवाह के अवसर पर, गुरु के हित के लिये, अथवा अपना प्राण बचाने के लिये बोला गया असत्य पाप नहीं होता। ऐसे भी तीन पाप होते हैं जिनका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। नीच कुल से भी उत्तम स्त्री को ग्रहण करना, विष के स्थान से अमृत उपलब्ध होने पर उसका पान कर लेना, धर्मतः दूषणीय नहीं हैं। इसी प्रकार आगे भी अनेक प्रकार के पापों और उनके प्रायश्चित्तों का उल्लेख है (१२. १६५)।" "नकुल के पूछने पर भीष्म ने खड्गोत्पत्ति विषयक कथा का वर्णन किया (१२. १६६)।" "भीष्म जी के चुप हो जाने पर युधिष्ठिर घर लौट आये और अपने चार भ्राताओं तथा विदुर जी से तीन विषयों (त्रिवर्ग: धर्म, अर्थ, और काम) पर प्रश्न किये। विदुर ने धर्म को प्रधानता दी; अर्जुन ने अर्थ को, तथा नकुल और सहदेव ने अर्थ तथा धर्म दोनों को। भीष्म ने काम को प्रधानता देते हुये कहा कि कामना से संयुक्त होकर ही ऋषिगण तपस्या में रत होते है, फल, मूल, और पत्ते चबाकर रहते हैं, तथा वायु का पान करते हुये इन्द्रियों का संयम करते हैं। युधिष्ठिर ने धर्म, अर्थ, और काम तीनों से ही अनासक्ति की प्रशंसा करते हुये मोक्ष प्राप्त करने को प्रधानता दी। उन्होंने कहा कि 'हम लोग मोक्ष के विषय में जानते ही नहीं; ब्रह्मा का कथन है कि जिसके मन में आसक्ति होती है उसे कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता।' युधिष्ठिर की बात को सुनकर वहाँ सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुये और समस्त राजाओं ने युधिष्ठिर की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तदनन्तर युधिष्ठिर ने पुनः भीष्म के पास आकर उनसे प्रश्न किया (१२. १६७)।" "युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि किस प्रकार के व्यक्ति की मित्रता आनन्ददायक होती है, भीष्म ने उन्हें मित्र बनाने और न बनाने योग्य पुरुषों के लक्षण बताये तथा कृतघ्न गौतम की प्राचीन कथा—कृतघ्नोपाख्यान—का वर्णन किया। अन्त में भीष्म ने कृतघ्नता सम्बन्धी अपने मत भी व्यक्त किये (१२. १६८-१७३)।"

आपव=वसिष्ठ। वसु का इनके शाप से मुक्त हो चुकने का उल्लेख (१. ९८, २३)। इनके विषय में शान्तनु का गंगा से परिचय पूछना (१. ९९, १)। गंगा ने शान्तनु को बताया कि वसिष्ठ नामक मुनि ही आपव के नाम से विख्यात हैं (१. ९९, ५)। सुन्दर पूँछवाली कामधेनु गाय का अपहरण करनेवाले वसुओं को इन्होंने शाप दिया कि वे सब-के-सब मनुष्य-योनि में जन्म लेंगे (१. ९९, ३३)। महर्षि आपव समस्त धर्मों के ज्ञान में निपुण थे, उनको प्रसन्न करने की पूरी चेष्टा करने पर भी वे वसु उन मुनि श्रेष्ठ से उनका कृपा प्रसाद न पा सके (१. ९९, ३७)। "वायु का सहारा पाकर उत्तरोत्तर प्रज्वलित होते हुये अग्नि देव

ने हैहयराज को साथ लेकर महात्मा आपव के सूने एवं सुरम्य आश्रम को जलाकर भस्म कर दिया। कार्त्तवीर्य के द्वारा अपने आश्रम के जला दिये जाने पर शक्तिशाली आपव मुनि को बड़ा रोष हुआ, अतः उन्होंने कार्त्तवीर्य अर्जुन को शाप देते हुये कहा : 'अर्जुन ! तुमने मेरे इस विशाल वन को भी जलाये बिना नहीं छोड़ा, इसलिये संग्राम में तुम्हारी इन भुजाओं को परशुराम जी काट डालेंगे (१२. ४९, ४१-४३)।"

आपवोपाख्यान ('आपव' अर्थात् वसिष्ठ का उपाख्यान)—"जह्नु-पुत्री गङ्गा ने शान्तनु से वसिष्ठ (आपव) द्वारा वसुओं को शाप देने की कथा का वर्णन किया। जब पृथु (अथवा 'धर') इत्यादि वसुगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ, देवर्षियों से सेवित वसिष्ठाश्रम में विचरण कर रहे थे तब उन वसुओं में से एक की पत्नी ने वसिष्ठ की उस होमधेनु (नन्दिनी) नामक गाय को देखा जिसे कश्यप ने दक्षपुत्री सुरभि से उत्पन्न किया था। सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करनेवाली इस नन्दिनी नामक गाय को देखकर उस वसु-पत्नी ने अपने पति द्यौस् को उसे दिखाया। द्यौस् ने उस गाय को देखते ही कहा, 'यह वरुणनन्दन-वसिष्ठ की सुन्दर गाय है। जो मनुष्य इसके स्वादिष्ट दुग्ध का पान कर लेगा वह दस सहस्र वर्षों तक जीवित रहेगा और उतने ही समय तक उसकी युवावस्था स्थिर रहेगी।' द्यौस् की बात सुनकर उनकी पत्नी ने अपनी एक सखी के लिये उस गाय को चुराने का आग्रह किया। पत्नी का वचन सुनकर द्यौस् नामक वसु ने पृथु आदि अपने भ्राताओं की सहायता से उस गाय का अपहरण कर लिया। वसिष्ठ ने आश्रम पर लौट कर जब अपनी गाय को वहाँ उपस्थित नहीं देखा तब उन्होंने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि वसुओं ने उसका अपहरण किया है। फलस्वरूप क्रोध में आकर महर्षि ने वसुओं को मनुष्य-योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। शापग्रस्त होकर वसुओं ने वसिष्ठ के आश्रम पर आकर उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की। उस समय वसिष्ठ ने उनसे कहा, 'मैंने धर आदि तुम सब वसुओं को शाप दे दिया है, किन्तु तुम लोग तो प्रतिवर्ष एक-एक करके शाप से मुक्त हो जाओगे, फिर भी, यह द्यौस्, जिसके कारण तुम सब को शाप मिला है, मनुष्य लोक में अपने कर्मानुसार अविवाहित रहकर दीर्घकाल तक निवास करेगा।' तदनन्तर गङ्गा देवी अपने नवजात शिशु को लेकर वहीं अन्तर्धान हो गईं। द्यौस् ने ही उस बालक के रूप में जन्म लिया था जिसका नाम देवव्रत हुआ जिसे कुछ लोग गाङ्गेय (भीष्म) भी कहते हैं। शान्तनु भी शोक से आतुर हो पुनः अपने नगर को लौट गये। इस उपाख्यान का वर्णन करने के पश्चात् वैशम्पायन ने बताया, मैं अब उन भारत शान्तनु के महान सौभाग्य का वर्णन करूँगा जिनका उज्ज्वल इतिहास महाभारत के नाम से विख्यात है (१. ९९)।"

आपस्तम्ब—एक ब्राह्मण। सत्यवान के लिये चिन्तित द्युमत्सेन को आश्वासन देने वाले ब्राह्मणों में इनका उल्लेख (३. २९८, १८)। तिलों का दान करके दिव्य लोक को प्राप्त हुये महर्षियों में इनका भी उल्लेख है (१३. ६६, १२)।

आपूरण—कश्यप का वंशज एक नाग : १. ३५, ६; ५. १०३, १०।

आपोद—देखिये आयोद।

आप्त—एक नाग, कश्यप का वंशज (१. ३५, ८; ५. १०३, १०)।

आभासुराः—देवों का एक वर्ग (१३. १८, ७५)। देखिये **आनुशासनिकपर्वन्**।

आभिषेचनिक (म्) पर्व, (१. २, ७५ : 'आभिषेचनिकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः') अर्थात् युधिष्ठिराभिषेक (१२. ४०, ९)।

आभीर, भारत के पश्चिमी भाग में सिन्धु नदी के तट पर बसी एक जाति के लोग थे (२. ३२, १० : शूद्राभीर), जिन्हें नकुल ने विजित किया था (वही)। ये लोग युधिष्ठिर के पास भेंट लेकर आये थे (द्यूतपर्व : २. ५१, ११-१३)। मार्कण्डेय जी यह भविष्यवाणी करते हैं कि कलियुग में आभीर, शक आदि म्लेच्छगण भारतवर्ष के विभिन्न भागों के राजा होंगे (मार्कण्डेयसमस्यापर्व : ३. १८८, ३६)। भारतवर्ष की विभिन्न जातियों की गणना के अन्तर्गत संजय द्वारा आभीरों का उल्लेख (जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व : ६. ९, ४७; ९, ६७ : 'शूद्राभीर')। तु० वी० विलसन : विष्णु पुराण, फिट्जवार्ड हॉल द्वारा सम्पादित, भाग २, १३३, १६७, १८४)। द्रोण द्वारा निर्मित सुपर्णव्यूह में आभीरों को ग्रीवा-भाग में खड़ा किया गया था (संशप्तकवधपर्व : ७. २०, ६; 'शूराभीरा')। शूद्रों और आभीरों से घृणा करने के कारण विनशन-तीर्थ में सरस्वती नदी अदृश्य हो गई थी (गदायुद्धपर्व : ९. ३७, १-२ : 'शूद्राभीरा')। आभीरगण पहले क्षत्रिय थे किन्तु परशुराम के भय से क्षत्रियोचित कर्त्तव्यों का परित्याग करके शूद्र बन गये थे (अनुगीतापर्व : १४. २९, १६ : 'द्रविडाऽऽभीरा')। द्वारका पर विपत्ति आने के पश्चात् स्त्रियों और बच्चों को द्वारका से इन्द्रप्रस्थ ले जाते समय इन्हीं आभीरों ने अर्जुन पर पञ्चनद के निकट आक्रमण करके अधिकांश स्त्रियों का अपहरण कर लिया था (मौसलपर्व : १६. ७, ४७-६३; ८, १७)।

आमरथ—भारतवर्ष का एक जनपद (६. ९, ५४)।

आम्बिकेय = धृतराष्ट्र।

आयाति, ययाति के भ्राता का नाम है (१. ७५, ३०)।

१. आयुस्, पुरूरवस् के द्वारा उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न एक राजा, जिन्होंने स्वर्भानवी के गर्भ से नहुष आदि को जन्म दिया (१. ७५, २४. २६)। 'आयुषो नहुषः', (१. ९५, ७)। 'नहुषो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः। तवैव पूर्वः पूर्वेषामायोर्वंशधरः सुतः॥', (३. १७९, १३)। 'आयुषो नहुषः सुतः', (७. १४४, ५)। खड्ग-प्राप्ति की परम्परा में इनका उल्लेख, इन्हें पुरूरवस् से खड्ग की प्राप्ति हुई थी (१२. १६६, ७४) इन्होंने तपोबल से ही समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी (१२. २९६, १५)। देवताओं और ऋषियों द्वारा इनके पुत्र नहुष का देवराज के पदपर अभिषिक्त किया जाना (१२. ३४२, ४४)। मांस-भक्षण का निषेध करने वाले राजाओं में इनका उल्लेख (१३. ११५, ६८)। पुरूरवस् के पुत्र तथा नहुष के पिता होने का इनका उल्लेख (१३. १४७, २७)। उन राजर्षियों में इनका भी उल्लेख है, जिनका प्रातः सायं नाम लेने से मनुष्य धर्मफल का भागी होता है (१३. १६५, ५६)।

२. आयुस्, एक मण्डूकराज, जो सुन्दरी सुशोभना का पिता था। इसने इक्ष्वाकुवंशी राजा परिक्षित् को अपनी कन्या अर्पित की थी (३. १९२, ३२)।

३. आयुस = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आयुधिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आयुर्वेद : 'आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो', (२. ११, २५)। 'आयुर्वेदमधीयानाः केवलं सपरिग्रहाः। दृश्यन्ते बहवो वैद्या व्याधिभिः समभिप्लुताः॥', (१२. २८, ४५)। 'आयुर्वेदविदो जनाः', (१२. २२४, ४६)। 'आयुर्वेदे तथैव च', (१२. ३४१, ९)। 'आयुर्वेदविदः', (१२. ३४२, ८७)।

आयोगव—शूद्र यदि वैश्य जाति की स्त्री के साथ मैथुन का आश्रय लेता है तो उससे आयोगव जाति का पुत्र उत्पन्न होता है : 'शूद्रादायोगवश्चापि वैश्यायां ग्राम्यधर्मिणः', (१३. ४८, १३)। 'बाह्यानामनुजायन्ते सैरन्ध्र्यां मागधेषु च। प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम्॥ अतश्चायोगवं सूते वागुरावन्धजीवनम्।', (१३. ४८, १९. २०)। 'आयोगवीषु जायन्ते हीनवर्णास्तु ते त्रयः', (१३. ४८, २५)।

आयोद-धौम्यः = आयोदः धौम्यः (व० स्था०) : 'अथापरः शिष्यस्त्स्यैवायोदस्य धौम्यस्योपमन्युर्नाम।', (१. ३, ३३)। 'अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्य वेदो नाम', (१. ३, ७८)। इनके दाँत काले लोहे के समान थे (१. ३, ७३)।

आयोदः धौम्यः, एक ऋषि, जो परिक्षित्-पुत्र जनमेजय के राज्यकाल में निवास करते थे। इनके, उपमन्यु, आरुणि पाञ्चाल, तथा वेद, तीन शिष्य थे (१. ३, २१. २५)।

आरट्ट, एक जाति के लोगों का नाम है। इस देश के घोड़े बहुत सुन्दर होते हैं (६. ९०, ३)। 'लोहिताक्षं महाबाहुं वृहन्तं तमरट्टजाः। महासत्त्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥', (७. २३, ७७)। द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कृतवर्मा भी कलिङ्ग, अरट्ट और बाह्लिकों की विशाल वाहिनी को साथ लेकर भाग निकला (७.१९३, १३)। 'आरट्ट नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत्', (८. ४४, ३३)। 'आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता', (८. ४४, ३८)। 'आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत्', (८. ४४, ४१)। 'आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम्। ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥', (८. ४४, ४५)। 'प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः। वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः ॥' (८. ४४, ४७)। प्राचीन काल में लुटेरे डाकुओं ने आरट्ट देश से किसी सती स्त्री का अपहरण कर लिया था जिससे इसने उन्हें शाप दे दिया : 'सती पुरा हृता काचिदारट्टात्किल दस्युभिः' इत्यादि, (८. ४५, ११)। 'आरट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु,' (८. ४५, ३०. ३८)।

१. आरणेय = शुक : 'आरणेयस्ततो दिव्यं प्राप्य जन्म महाद्युतिः', (१२. ३२४, २१)। 'आरणेयस्तु शुद्धात्मा निःसंदेहः स्वकर्मकृत्', (१२. ३२५, ३९)। 'आरणेयो विशुद्धात्मा नभसीव दिवाकरः', (१२. ३२७, २९)।

२. आरणेय = आरणेयपर्वन् : 'आरणेयं ततः पर्व वैराटं तदनन्तरम्', (१. २, ५७)। = आरणेयमुपाख्यान : 'आरणेयमुपाख्यानं यत्र धर्मोऽन्वशात्सुतम्', (१. २, २०२)।

आरणेयपर्वन्, वनपर्व के ३११-३१५ अध्यायों तक आने वाले महाभारत के ५१ वें अवान्तरपर्व का नाम है। —"जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन ने यह बताया कि जयद्रथ से कृष्णा को छुड़ाने के पश्चात् पाण्डवों ने क्या किया। पाण्डव कृष्णा के साथ काम्यक वन को छोड़ कर द्वैतवन लौट आये। एक दिन एक ब्राह्मण के लिये पाण्डवों को ऐसा क्लेश उठाना पड़ा जो भविष्य के लिये सुखदायक सिद्ध हुआ। एक तपस्वी ब्राह्मण का वृक्ष में टँगा हुआ अरणि सहित मन्थन-काष्ठ एक मृग की सींग में अटक गया और वह उसे लेकर वहाँ से भाग गया। उस ब्राह्मण ने पाण्डवों से अपनी रक्षा के लिये कहा। ब्राह्मण की बात सुनकर पाण्डव तीव्र गति से उसके पीछे दौड़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें वह मृग दिखाई पड़ा। वे सभी लोग उस पर कर्णि, नालीक, और नाराच नामक बाण छोड़ने लगे, परन्तु एक भी बाण उस मृग को बींध न सका और वह मृग सहसा अदृश्य हो गया। हतोत्साहित होकर पाण्डव-गण उस गहन वन में एक शीतल छाया वाले बरगद के नीचे बैठ गये। उस समय भीम ने कहा, 'जब प्रतिकामी के स्थान पर दूत बनकर गया हुआ दुःशासन द्रौपदी को कौरवों की सभा में दासी की भाँति बलपूर्वक खींच लाया, उस समय मैंने जो उसका वध नहीं किया उसी के कारण हम लोग ऐसे धर्म-संकट में पड़ गये हैं।' इसी प्रकार अर्जुन ने कर्ण का, और सहदेव ने शकुनि का वध न कर देने को ही वर्तमान धर्मसंकट का कारण बताया। प्यास से त्रस्त पाण्डवों के लिये युधिष्ठिर ने नकुल को किसी वृक्ष पर चढ़कर जल का पता लगाने के लिये कहा। ऐसे वृक्षों को जो जल के किनारे होते हैं, देखकर तथा सारसों की बोली भी सुनकर आसपास किसी जलाशय का नकुल को जब विश्वास हो गया तब युधिष्ठिर ने उन्हें जल लाने के लिये भेजा। सरोवर पर जाकर नकुल को उसका जल पीने की इच्छा हुई। उसी समय पहले प्रश्नों का उत्तर देकर जल पीने की आकाशवाणी हुई। नकुल ने उस वाणी की उपेक्षा करके वहाँ का जल पी लिया और पीते ही अचेत होकर गिर पड़े। इसी प्रकार सहदेव, अर्जुन, और भीम भी क्रमशः जल लाने के लिये गये और एक के बाद एक अचेत होते गये। अन्त में स्वयं युधिष्ठिर गये और उन्होंने आकाशवाणी करने वाले यक्ष के ३४ प्रश्नों का उत्तर देकर नकुल को जीवनदान देने की याचना की। युधिष्ठिर की बात सुनकर यक्ष ने कहा, 'तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समता का आदर किया है, अतः तुम्हारे समस्त भ्राता जीवित हो जायँ।' यक्ष के ऐसा कहने पर सभी पाण्डव उठ खड़े हुये और एक क्षण में ही उनकी भूख-प्यास जाती रही। अन्त में उस यक्ष ने धर्म के रूप में प्रगट होकर बताया कि वह युधिष्ठिर के पिता धर्मराज हैं। युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर धर्म ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने कहा, 'पहला वर मैं यह माँगता हूँ कि जिस ब्राह्मण के अरणि सहित मन्थन-काष्ठ को मृग लेकर भाग गया है उसके अग्निहोत्र का लोप न हो।' धर्म ने यह बताते हुये कि उन्हीं ने मृगरूप से अरणि को चुराया था, मन्थनकाष्ठ और अरणि वापस कर दी। तदनन्तर युधिष्ठिर ने दूसरा वर अज्ञातवास की अवधि में अज्ञात बने रहने के लिये माँगा। धर्म ने उनसे कहा कि तेरहवाँ वर्ष पाण्डवगण विराट नगर में व्यतीत करेंगे और उन्हें कोई भी पहचान नहीं सकेगा। अन्त में धर्म ने युधिष्ठिर से कहा, 'तुम मेरे पुत्र हो, और विदुर ने भी मेरे ही अंश से जन्म लिया है; तुम स्वयं धर्मस्वरूप हो अतः तुम दान, तप, और सत्य आदि गुणों से सदैव संपन्न, और लोभ, मोह, तथा क्रोध को भी जीतने में सफल रहोगे। तदनन्तर धर्म अन्तर्धान हो गये और पाण्डवों ने तपस्वी ब्राह्मण को उसकी अरणि तथा मन्थनकाष्ठ वापस दे दिया। तदुपरान्त तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करने की इच्छा से पाण्डवों ने अपने साथ रहनेवाले ब्राह्मणों से कहा, 'इस वर्ष हम लोग अज्ञात रहना चाहते हैं, इसके लिये हमें आज्ञा दें। दुष्टात्मा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि स्वयं तथा अपने गुप्तचरों के द्वारा हम लोगों का अज्ञातवास की अवधि में पता लगाने का प्रयास करेंगे, अतः आप सब हम लोगों को अब आज्ञा दीजिये।' युधिष्ठिर की बात सुनकर धौम्य आदि ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'देवों को भी (इन्द्र, विष्णु, अग्नि, और्व, विवस्वत्) शत्रुओं के निग्रह के लिये अनेक बार प्रच्छन्न रहकर विपत्तियों को सहन करना पड़ा है।' तदनन्तर यति-मुनि, आदि ब्राह्मण अपने-अपने घर चले गये, और धौम्य तथा कृष्णा सहित पाण्डवगण अज्ञातवास के लिये निकले। दूसरे दिन वे सब एक कोस दूर जाकर रुक गये और अज्ञातवास आरम्भ करने लिये आपस में मन्त्रणा करने लगे (३. ३११-३१५)।"

आरण्यशास्त्र—वानप्रस्थ आश्रम सम्बन्धी विधियाँ (१. ११९, ३७)।

आरालिक—मतवाले हाथियों को वश में करनेवाला गजशिक्षक (४. २, ९)।

१. आरुणि, आयोद धौम्य ऋषि के शिष्य पाञ्चाल्य का नाम है। ये क्यारी की टूटी हुई मेड की जगह स्वयं लेट गये जिससे वहाँ का बहता हुआ जल रुक गया। गुरु द्वारा पुकारे जाने पर ये क्यारी की मेड को विदीर्ण करके उठे, इसी से इनका नाम उद्दालक पड़ा (१. ३, २२-२५. २८. ३०. ३१)।

२. आरुणि, वैनतेयों में से एक का नाम है (१. ६५, ४०)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर इनके पधारने का उल्लेख (१. १२३, ७३)।

३. आरुणि, धृतराष्ट्र के कुल में उत्पन्न नागों में से एक का नाम है (१. ५७, १९)।

४. आरुणि—एक कौरवपक्षीय महारथी वीर, जिसने शकुनि के साथ होकर अर्जुन पर आक्रमण किया था (७. १५६, १२२)।

आरुषी, मनु की पुत्री, च्यवन मुनि की पत्नी का नाम है। इसके पुत्र का नाम और्व था। ये अपनी माँ के ऊरु से प्रगट हुये, अतः और्व कहलाये (१. ६६, ४४)।

आरोचक, भारतवर्ष के एक जनपद और वहाँ के निवासियों का नाम है (६. ५१, ७)।

आरोहण = शिव (सहस्र नामों में एक)।

आर्चीकपर्वत, एक पवित्र स्थान का नाम है। यहाँ मरुतों के उत्तम स्थान तथा देवताओं के अनेकानेक मन्दिर हैं। यही चन्द्रतीर्थ है जिसकी अनेक ऋषि गण उपासना करते हैं। वालखिल्य नामक वैखानस महात्मा यहीं रहते हैं जो वायुभक्षी तथा परमपावन हैं। यहाँ तीन पवित्र शिखर और तीन झरने हैं। राजा शान्तनु, शुनक, और नर-नारायण भी इस नित्य धाम में गये हैं। आर्चीकपर्वत पर निवास करते हुये महर्षियों सहित देवताओं और पितरों ने तपस्या की (३. १२५, १६–२०)।

आर्जव—इन्होंने शकुनि इत्यादि भाईयों के साथ युद्ध के आठवें दिन इरावान् पर आक्रमण किया (६. ९०, २७)।

१. आर्जुनि = अभिमन्यु : १. २२१, ६७; ६. ४७, १७; ५५, ७. १५ ; ५७, ३९ ; ६२, १५ ; ७३, २७ ; ७८, २३ ; ८१, २९ ; १००, ३१; १०१, १. ३० ; १०४, १९ ; १११, १९ ; ११६, ३१ ; ७. १४, ५२. ५४. ६२ ; ३५, ३ ; ३६, १२ (तु० की० अर्जुनावरः). १५. १९. २६. ४१ ; ३७, १३ ; ३८, १. ४. ९. १५ ; ३९, १४ ; ४१, १२. २३ ; ४३, ६ ; ४४, २. ७ ; ४५, १. १६. १९ ; ४६, ८. २०. २३–२५ ; ४७, १४ ; ४८, १३. १४. २४. ३६ ; ४९. ३७ ; १४. ६६, २३।

२. आर्जुनि = श्रुतकीर्ति : ३. २३५, १० (श्रुतकर्मा); ७. २५, ३२ (श्रुतकीर्तिन् तु द्रौपदेयम्) ; १०८, ७।

३. आर्जुनि = इरावत् : ७. ४१, २३।

आर्तायनि = शल्य।

आर्तिमत् एक मन्त्र का नाम है। जो, आसित, आर्तिमत् और सुनीथ मन्त्रों का दिन अथवा रात के समय स्मरण करेगा, उसे साँपों से कोई भय नहीं होगा (१. ५८, २३)।

आर्द्रा, एक नक्षत्र का नाम है। 'आद्रायां कृसरं दत्वा तिलमिश्रमुपोषितः। नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥,' (१३. ६४, ८)। आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध करने वाला मनुष्य क्रूरकर्मा होता है (१३. ८९, ३)। चन्द्रव्रत में इसकी गणना (१३. ११०, ९)।

आर्यक, एक प्रमुख नाग का नाम है (१. ३५, ७)। ये पृथा के पिता के नाना थे और इन्होंने भीमसेन को आठ कुण्डों का रस प्रदान किया था (१. १२८, ६४)। नागलोक के नामों के वर्णन में इनका भी उल्लेख (५. १०३, ११)। नागराज सुमुख आर्यक कौरव्य के पौत्र थे (५. १०३, १९. २३)। इन्होंने नारद को बताया कि इनका पुत्र मारा गया, और पौत्र का भी उसी प्रकार मृत्यु ने वरण किया है, अतः वह मातलिकन्या गुणकेशी को बहू बनाने की इच्छा कैसे करें (५. १०४, १४)।

१. आर्या, शिशु की माता। सप्त मातृकाओं में से एक (३. २२८, १०)। "आर्या स्त्रियों में उत्तम मानी गई हैं, ये कुमार कार्त्तिकेय की जननी हैं। मनुष्य अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये इनका उपर्युक्त ग्रहों से पृथक् पूजन करते हैं (३. २३०, ४१–४२)।"

२. आर्या = उमा, देखिये व० स्था०।

आर्याः—'नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्ति', (२. ५९, ११)। 'आर्या म्लेच्छाश्च', (६. ९, १३)। 'म्लेच्छाश्चार्याश्च', (६. ४३, १०८)। 'म्लेच्छाश्चान्ये बहुविधा पूर्वं ये निकृता रणे ॥ आर्याश्च पृथिवीपालाः प्रहृष्टनरवाहनाः।', (१४. ७३, २५. २६)।

आर्यावर्त, भारतवर्ष का नामान्तर अथवा एक भारतीय प्रदेश है (१२. ३२५, १५)। (स्मृतियों के अनुसार विन्ध्य तथा हिमालय के बीच का भूभाग आर्यावर्त है)।

आर्श्यशृङ्गि—देखिये आर्ष्यशृङ्गि।

आर्ष से ऋषियों का तात्पर्य है (१३. १२, १७)।

आर्षभ—पाञ्चजन्य शंख के ऋषभ स्वर का नाम है (७. ७९, ३९)।

आर्ष्यशृङ्ग = अलम्बुष : 'आर्ष्यशृङ्गिं महेश्वासं मायाविनमरिन्दमम्', (६. ९०, ४९)।

आर्ष्यशृङ्गि, ऋष्यशृङ्ग के पुत्र अलम्बुष का नाम है। इनके द्वारा इरावत् का वध (६. ९०, ६९)। = अलम्बुष (६. १००, २३)। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और अभिमन्यु के साथ इनका युद्ध (६. १००, ४१; १०१, २. १०. १२. १८)। अर्जुन ने शिखण्डी से कहा कि वह द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, तथा आर्ष्यशृङ्गि आदि को रणक्षेत्र में इस प्रकार रोक देगा जिस प्रकार तटभूमि समुद्र को आगे बढ़ने से रोक देती है (६. १०८, ५९)। इन्होंने भीष्म के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत सात्यकि को रोका (६. १११, १)। इनका भीमसेन के साथ उसी प्रकार संग्राम हुआ जिस प्रकार राम और रावण का हुआ था (७. १०६, १६; १०८, १५)। उन राजाओं के साथ इनका भी उल्लेख है जो प्राणों तथा धन का मोह छोड़कर दुर्योधन के हितार्थ युद्ध के लिये तत्पर थे (९. २, २०)। इनकी मृत्यु पर धृतराष्ट्र का विलाप (९. २, ३९)।

१. आर्ष्टिषेण, एक ऋषि का नाम है। 'आर्ष्टिषेणाश्रमे चैषां गमनं वास एव च', (१. २, १८१)। 'भरद्वाजः कौणकुत्स्य आर्ष्टिषेणोऽथ गौतमः', (१. ८, २५)। 'अतिक्रम्य च तं पार्थं त्वार्ष्टिषेणाश्रमे वसेः', (३. १५६, १६)। 'पारगं सर्वधर्माणामार्ष्टिषेणमुपागमन्', (३. १५८, १०३)। 'आर्ष्टिषेण उवाच', (३. १५९, १६)। 'आर्ष्टिषेणाश्रमे तस्मिन् मम पूर्वपितामहाः', (३. १६०, १) १ 'तत्र ह्यायाति धनद आर्ष्टिषेणो यथाब्रवीत्', (३. १६०, ६)। 'आर्ष्टिषेणाश्रमे तेषां वसतां वै महात्मनाम्', (३. १६०, १२)। 'द्रौपदीमार्ष्टिषेणाय संप्रधार्य महारथाः', (३. १६१, ३)। 'आर्ष्टिषेणस्य राजर्षेः प्राप्य भूयस्त्वमाश्रमम्', (३. १६२, १०)। 'आर्ष्टिषेणेन सहितः पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ तेऽभिवाद्यार्ष्टिषेणस्य पादौ धौम्यस्य चैव ह।', (३. १६३, १. २)। 'तेनार्ष्टिषेणेन तथानुशिष्टास्तीर्थानि रम्याणि तपोवनानि (३. १७६, २३)। 'कपालमोचन तीर्थ में आर्ष्टिषेण ने घोर तपस्या की थी (९. ३९, २५)। बलभद्र जी उस तीर्थ में भी गये जहाँ लोकपितामह ब्रह्मा ने सृष्टि की थी और जहाँ मुनिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण ने तपस्या करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (९. ३९, ३६)। जनमेजय के यह पूछने पर कि आर्ष्टिषेण ने तपस्या करके किस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, वैशम्पायन ने बताया कि सतयुग में द्विजश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण सदैव गुरुकुल में निवास करते हुये निरन्तर वेदशास्त्रों के अध्ययन में लिप्त रहते थे, फिर भी, न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न वे सम्पूर्ण वेद ही पढ़ सके। खिन्न होकर आर्ष्टिषेण ने उसी तीर्थ में जाकर अत्यन्त तपस्या की और तप के प्रभाव से उत्तम वेदों का ज्ञान प्राप्त करके वे विद्वान् ऋषि, वेदज्ञ, और सिद्ध हो गये। उस तीर्थ से प्रसन्न होकर आर्ष्टिषेण ने उसे तीन वर दिये जो इस प्रकार है : (१) जो व्यक्ति महानदी सरस्वती के इस तीर्थ में स्नान करेगा उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा; (२) आज से इस तीर्थ में किसी को सर्प से भय नहीं होगा; (३) थोड़े समय तक ही इस तीर्थ के सेवन से मनुष्य को बहुत अधिक फल प्राप्त होगा। ऐसा कहकर आर्ष्टिषेण मुनि स्वर्ग चले गये (९. ४०, १. ३. ९)। 'गौतमस्यार्ष्टिषेणस्य गर्गस्य च महात्मनः', (१२. ३१८, ६०)। 'उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे', (१३. २५, ५५)।

२. आर्ष्टिषेण, यम की सभा में उपस्थित रहनेवाले एक ऋषि का नाम है (२. ८, १४)।

आलम्ब, युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश के समय उपस्थित रहनेवाले ऋषियों में से एक का नाम है (२. ४, १४)।

आलम्बायन, इन्द्र के सखा का नाम है। आलम्ब गोत्रीय चारुशीर्ष ही आलम्बायन नाम से प्रसिद्ध हुये हैं (१३. १८, ५)।

आवन्त्य (अवन्तिराज अथवा अवन्ती के निवासी)—'आवन्त्यस्त्वाभिषेकार्थमापो बहुविधास्तथा', (२. ५३, ८)। 'प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य

आवन्त्यौ च जयद्रथः', (५. ५५, ६३) । 'आवन्त्यकालिङ्गजयद्रथेषु चेदिध्वजे तिष्ठति बाह्लिके च', (५. ६२, १६) । 'शकुनिः सौबलः शल्यः आवन्त्योऽथ जयद्रथः । विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजस्य सुदक्षिणः ॥', (६. १६, २५) । 'आवन्त्यः काशिराजेन', (६. ७१, २०) । 'आवन्त्यः स बृहद्बलः', (६. ९२, २३) । 'चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः । जघान चतुरो वाहान् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥', (६. ९२, ४०) । 'आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत्', (७. ९५, ४५) । 'आवन्त्योऽथ जयद्रथः', (९. २, १६) । 'आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम्', (११. २२, १) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महता वृतौ' (२. ३१, १०) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पाण्ड्यं श्वेतमथोत्तमम्', (२. ४४, २०) 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम्', (५. ६६, ६) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ संमतौ रथसत्तमौ (५. १६६, ६) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केकया बह्लिकैः सह (५. १९५, ५) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ', (६. १७, ३७; ४५, ७२; ५१, १७; ५६, ७) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लीकः सः बाह्लिकैः', (६. ८१, ३) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ', (६. ८१, २७) । 'आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परंतपौ', (६. ८६, ३३) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः', (६. १०२, २४) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्', (६. १०८, ५८) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः', (६. ११३, १) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः', (६. ११३, ६) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे', (६: ११३, २२) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः', (७. २०, ९) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमाच्छंताम्', (७. २०, २५) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रोणिश्च सौबलः', (७. ७४, १७) । 'विन्दानुविन्दावांवन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान्', (७. ९५, ३६) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमाच्छंताम्', (७. ९५, ४३) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ', (८. ५, १०) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्', (८. ७२, १९) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधवः', (११. २५, २८) । 'आवन्त्यौ च महीपालौ', (५. १९, २४) । 'आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ', (६. ८३, १२) । 'आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परंतपौ', (६. ८६, ३६) । 'आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन्', (६. ९४, १४) । 'अश्वत्थामा सोमदत्तश्चावन्त्यौ च महारथौ', (६. ९९, ५) । 'दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ', (६. १४४, ३) । 'विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाजहुः संयुगं तदा', (६. ११४, २२) । 'एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप', (७. ९९, १७) । 'आवन्त्यो निहतो यत्र त्रैगर्तश्च जनाधिपः', (९. २, ३८) । 'आवन्त्यांश्च वशे कृत्वा साम्ना च भरतर्षभ', (३. २५४, १७) । 'मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः', (६. ८७, ६) । 'आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च', (७. ११, १६) । 'एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम्', (७. ११३, ३६) । 'योऽजयत्सर्वकाम्बोजानावन्त्यान् केकयैः सह', (८. ८, १८) । 'आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम्', (९. २४, २७) ।

आवर्तन = विष्णु (सहस्र नामों में से एक) ।

आवशीराः, एक पूर्वी देश का नाम है जिसे कर्ण ने विजित किया था (३. २५४, ९) ।

आवसथ्य, तपस् के पुत्र एक अग्नि का नाम है (३. २२१, ५) ।

आवह, वायु के सात भेदों में से द्वितीय का नाम है, जो अत्यन्त तीव्र आवाज के साथ बहता है । यह सदैव सोम, सूर्य आदि ग्रहों का उदय एवं उद्भव करता है । मनीषी पुरुष शरीर के भीतर इसे 'उदान' नाम से सम्बोधित करते हैं (१२. ३२८, ३७) ।

आवेदनीय = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

आवेश = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

१. आशावह : १. १, ४२ (अनुक्रमणिकापर्व) : नीलकण्ठ की व्याख्या के अनुसार वायु जो आकाश (द्यौस् = माया, नीलकण्ठ) के बारह पुत्रों में से दसवाँ, और विवस्वत् (अर्थात् ब्रह्मन्, नील०) अर्थात दस इन्द्रियों और मनस् के देवता, तथा मह्म का पर्याय है, जो सभी 'आकाश के पुत्र' (दिवः पुत्रो) के ही रूप हैं, अथवा अधिक सम्भवतः यह सूर्य का एक रूप अथवा विवस्वत् है और ऐसी दशा में इस शब्द का रूप अनियमित प्रथमा बहुवचन होगा ।

२. आशावह (स्वयंवरपर्व : १. १८६, १९) : एक राजा (वृष्णिवंशी कहा गया है) था जो कृष्णा के स्वयंवर में उपस्थित हुआ था ।

आश्रमनिवास :—स्वर्गारोहणपर्व : १८. ६, ६९ ('तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान्') ।

आश्रमपूजित = शिव (सहस्र नामों में से एक) ।

१. आश्रमवास (आश्रम का आवास) = आश्रमवासपर्वन् : १. २, ८० आश्रमवासाख्यं पर्व) ।

२. आश्रमवास = आश्रमवासिकपर्वन् : १. २, ३५१ (आश्रमवासाख्यं पर्व) ।

आश्रमवासपर्वन् (आश्रम-वास के वृत्तान्त से सबन्धित पर्व), आश्रमवासिकपर्व के १-२८ अध्यायों तक आनेवाले महाभारत के ९५ वें अवान्तरपर्व का नाम है । "जनमेजय के यह पूछने पर कि राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् पाण्डवगण महाराज धृतराष्ट्र के प्रति कैसा व्यवहार करते थे, स्वयं धृतराष्ट्र तथा गान्धारी किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे, और उनके पूर्व पितामह कितने समय तक अपने राज्य पर प्रतिष्ठित रहे, वैशम्पायन ने इस प्रकार उत्तर दिया : पाण्डवगण राजा धृतराष्ट्र को ही आगे रखकर पृथ्वी का पालन करने लगे; विदुर संजय और युयुत्सु सदैव धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित रहते थे; उन लोगों ने वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के परामर्श से १५ वर्ष तक राज्य किया; कुन्ती देवी भी सदा गान्धारी की सेवा में लगी रहती थीं; द्रौपदी और सुभद्रा इत्यादि वृद्ध राजा और उनकी महारानी के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखती थीं; राजा युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों ने धृतराष्ट्र और उनकी रानी को प्रत्येक प्रकार के वस्त्राभूषण, सुख के साधन और भोज्यपदार्थ उपलब्ध कर दिये थे । कृपाचार्य सदैव धृतराष्ट्र ही की सेवा में रहते थे; व्यास भी नित्य प्रति उनके पास आकर बैठते और उन्हें प्राचीन देवर्षियों, पितरों और राक्षसों की कथायें सुनाया करते थे; धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर उनके समस्त धार्मिक और व्यावहारिक कार्य कराया करते थे; विदुर की श्रेष्ठ नीति के कारण पाण्डव-गण अपने सामन्तों और अनुगामियों से अनेक प्रकार की श्रेष्ठ सेवायें पाते थे; धृतराष्ट्र बंदियों को मुक्त कर देते थे और प्राण-दण्ड पाये हुये अपराधियों को भी क्षमा-दान देते थे; देशाटन के समय राजा धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर समस्त मनोवांछित वस्तुओं की सुविधा देते थे; जो विभिन्न राजा हस्तिनापुर आते थे वे पहले की ही भाँति धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित होते थे; कुन्ती इत्यादि दासियों की भाँति गान्धारी की सेवा में लगी रहती थीं; केवल भीमसेन के हृदय से ही यह बात कभी दूर नहीं होती थी कि द्यूत के समय जो कुछ भी अनर्थ हुआ था वह धृतराष्ट्र की ही कुबुद्धि का परिणाम था (१५. १) ।" "धृतराष्ट्र पूर्ववत् ऋषियों द्वारा आदृत थे, ब्राह्मणों को अग्रहार (माफ़ी ज़मीन) देते थे, और पुत्रों तथा समस्त सुहृदों के श्राद्ध कर्म में जितना धन खर्च करना चाहते थे उसकी उन्हें सुविधा थी; धृतराष्ट्र पाण्डवों के प्रति अत्यधिक स्नेह रखते थे और गान्धारी भी उनका अनुसरण करती थीं; गान्धारी ने अपने पुत्रों के निमित्त विभिन्न प्रकार के श्राद्ध कर्म किये; मन्दबुद्धि दुर्योधन का स्मरण करके धृतराष्ट्र सदैव पश्चाताप करते थे और प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान, संध्या और गायत्री जप कर लेने के पश्चात् पवित्र होकर सदैव पाण्डवों को समर में विजयी होने का आशीर्वाद देते थे । युधिष्ठिर चारों जातियों के प्रिय बन गये और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने उनको जो कष्ट दिया था उसे भी भूल गये; युधिष्ठिर के भय से कोई भी मनुष्य कभी राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन

के कुकृत्यों की चर्चा नहीं करता था। फिर भी भीमसेन धृतराष्ट्र के प्रति केवल दिखावटी श्रद्धा रखते थे क्योंकि उनका हृदय सदैव धृतराष्ट्र से विमुख ही रहता था (१५. २)।" "यद्यपि युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र के बीच जो पारस्परिक प्रेम था उसमें किसी ने कोई भी अन्तर नहीं देखा, तथापि धृतराष्ट्र भीमसेन के प्रति मन ही मन दुर्भावना रखते थे। अपने शत्रु दुर्योधन, कर्ण, और दुःशासन का स्मरण करके भीम भी अमर्ष भरे स्वरों में दुर्योधन तथा उसके भ्राताओं के प्रति आक्षेप किया करते थे। गान्धारी इन कठोर वचनों से विचलित नहीं हुई। १५ वर्षों के पश्चात्, भीमसेन के वाग्बाणों से पीड़ित धृतराष्ट्र को खेद एवं वैराग्य हुआ; युधिष्ठिर इत्यादि को इसका पता नहीं था। धृतराष्ट्र ने अपने मित्रों से अपने हृदय की बात कही; इस समय वह एक व्रत का पालन कर रहे थे जिसे उन्होंने युधिष्ठिर को नहीं बताया था; इस व्रत में वह भूमि पर सोते और मृगचर्म धारण करते थे; गान्धारी भी इसी प्रकार का व्रत कर रहीं थीं; ऐसे समय में उन्होंने युधिष्ठिर से अपनी रानी गान्धारी सहित वन में जाकर तपस्या करने की अनुमति माँगी। इस पर युधिष्ठिर ने विलाप करना आरम्भ किया और कहा : 'युयुत्सु को ही राजा बना दिया जाय; मैं स्वयं वन को चला जाता हूँ'। किन्तु धृतराष्ट्र का निश्चय अपरिवर्तित रहा; धृतराष्ट्र ने संजय और कृपाचार्य को भी युधिष्ठिर को समझाने के लिये कहा। गान्धारी का सहारा लेकर खड़े धृतराष्ट्र निर्जीव से हो गये। युधिष्ठिर को इससे अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होंने जल से शीतल किये हुये धृतराष्ट्र के वक्ष और मुख को धीरे-धीरे पोंछा; युधिष्ठिर के रत्नौषधि सम्पन्न उस पवित्र एवं सुगन्धित कर-स्पर्श से राजा धृतराष्ट्र की चेतना लौट आई। धृतराष्ट्र ने कहा कि युधिष्ठिर का स्पर्श अत्यन्त सुखदायक है और उन्होंने युधिष्ठिर का आलिङ्गन करके उनके मस्तक को सूँघा। यह करुण दृश्य देखकर विदुर, कुन्ती इत्यादि विलाप करने लगीं; गान्धारी ने अपने दुःख को धैर्यपूर्वक सहन किया। धृतराष्ट्र ने अपनी प्रार्थना पुनः दुहराई; उसी समय वहाँ व्यास जी आ गये (१५. ३)।" "व्यास जी ने युधिष्ठिर से धृतराष्ट्र को प्राचीन राजर्षियों के पथ का अनुसरण करने की अनुमति देने का आग्रह किया। युधिष्ठिर ने व्यास की आज्ञा मान ली; व्यास ने धृतराष्ट्र के वनगमन के कारणों पर प्रकाश डाला और उसके पश्चात् वन को चले गये। युधिष्ठिर ने कहा कि वह व्यास की आज्ञा मानेंगे, इत्यादि (१५. ४)।" "युधिष्ठिर की अनुमति पाकर धृतराष्ट्र, गान्धारी के साथ अपने भवन में गये और थोड़ा भोजन किया। तदुपरान्त धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश देना आरम्भ किया (१५. ५)।" "राजनीति के उपदेश का ही क्रम (१५. ६)।" "राजनीति का ही प्रसङ्ग : धृतराष्ट्र ने बताया कि उशनस् को ज्ञात शकट, पद्म अथवा वज्र नामक व्यूह का निर्माण करना चाहिये; और यह कहा कि तुमको भीष्म, कृष्ण, और विदुर ने कर्त्तव्यों का जो उपदेश दिया है वह एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों और धर्मपूर्वक प्रजापालन करने के फल के बराबर है (१५. ७)।" "युधिष्ठिर ने विनम्र भाव से धृतराष्ट्र के उपदेशों को ग्रहण किया। धृतराष्ट्र ने शीघ्र विदा होने की इच्छा प्रकट की और गान्धारी ने उन्हें यह स्मरण दिलाया कि व्यास की आज्ञा मिल चुकी है और युधिष्ठिर ने भी अपनी अनुमति दे दी है अतः वे वन के लिये कब प्रस्थान करेंगे। धृतराष्ट्र ने वन जाने के पहले अपने मृत-पुत्रों और सम्बन्धियों के पारलौकिक दान के लिये कुछ धन-दान की इच्छा प्रगट की; इसके लिये उन्होंने समस्त प्रजाजनों को एकत्रित किया और राजा युधिष्ठिर ने दान की सभी सामग्रियाँ प्रस्तुत कर दीं; धृतराष्ट्र ने चारों जातियों के समस्त उपस्थित प्रजाजनों के बृहत् समूह से मार्मिक शब्दों में विदा ली (१५. ८)।" "उन्होंने इस समय शान्तनु से लेकर अपने समय तक के इतिहास का सिंहावलोकन किया (१५. ९)।" "नागरिक-गण धृतराष्ट्र का मार्मिक भाषण सुनकर अत्यन्त शोकमग्न हो गये और अपनी ओर से शाम्ब नामक ब्राह्मण को धृतराष्ट्र से अपने हृदय की बात कहने का उत्तरदायित्व दिया। शाम्ब ने कहा : 'राजा दुर्योधन ने हम लोगों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया; हम लोग उनके द्वारा भली प्रकार शासित और रक्षित थे; हम लोगों ने राजा युधिष्ठिर के राज्य में भी सहस्रों वर्षों तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया; युधिष्ठिर प्राचीन काल के राजर्षि कुरु, संवरण तथा भरत के व्यवहारों का अनुसरण करते हैं; कुरुक्षेत्र के मैदान में जो भयंकर नर-संहार हुआ उसमें भी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि अथवा आपका नहीं वरन् दैवी विधान का हाथ था जिसने १८ दिनों में भीष्म आदि के द्वारा १८ अक्षौहिणी सेना का विनाश करा दिया; पाण्डव-गण आपकी अथवा किसी भी अन्य व्यक्ति की सहायता के बिना भी शासन करने में समर्थ हैं; कुन्ती इत्यादि भी कभी प्रजाजनों के प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेंगी।' इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने धीरे-धीरे उस जन-समुदाय को विदा किया और गान्धारी के साथ अपने भवन में चले गये (१५. १०)।" "तदनन्तर उस रात के व्यतीत हो जाने पर धृतराष्ट्र ने विदुर के द्वारा युधिष्ठिर को यह सूचित किया कि वह कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन वन की यात्रा करेंगे। उन्होंने विदुर के माध्यम से युधिष्ठिर से भीष्म आदि का श्राद्ध करने के लिये धन की भी याचना की। युधिष्ठिर और अर्जुन ने विदुर के शब्दों की सराहना की, किन्तु भीम को दुर्योधन के अत्याचारों का स्मरण हो आया और उन्होंने विदुर की बातों को अस्वीकार कर दिया। अर्जुन ने भीमसेन को शान्त करने का प्रयास किया जिसकी युधिष्ठिर ने प्रशंसा की। भीमसेन ने यह कहा कि 'भीष्म इत्यादि के लिये हम लोगों को स्वयं श्राद्ध करना चाहिये और कर्ण के लिये माता कुन्ती को।' अपने भाईयों को उन अपमानों का स्मरण कराते हुये जो धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा किया गया था, भीमसेन ने यह कहा 'दुर्योधन आदि भारी से भारी कष्ट में पड़ जाँय।' इस पर युधिष्ठिर ने भीमसेन को डाँट कर चुप रहने के लिये कहा (१५. ११)।" "अर्जुन ने भीम को पिछले आघात भूल जाने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने विदुर को यह बताया कि वह भीष्म आदि के श्राद्ध के लिये धृतराष्ट्र को जितना भी धन चाहिये वह सब देने के लिये प्रस्तुत हैं। उन्होंने विदुर द्वारा धृतराष्ट्र के पास यह भी संदेश भेजा कि वह भीमसेन पर क्रोध न करें (१५. १२)।" "विदुर ने युधिष्ठिर, अर्जुन, और भीम की बातें बताया। धृतराष्ट्र ने अपना सन्तोष व्यक्त किया और कार्त्तिक-पूर्णिमा के दिन बहुत बड़ा दान करने का निश्चय किया (१५. १३)।" "धृतराष्ट्र ने भीष्म तथा अपने पुत्रों के श्राद्ध के लिये सहस्रों सुयोग्य और श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों तथा सुहृदों को निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् उन्होंने द्रोण, भीष्म, दुर्योधन इत्यादि सबका नामोच्चारण करके सबके निमित्त पृथक्-पृथक् दान किया; युधिष्ठिर की आज्ञा से हिसाब लगाने और लिखने वाले अनेक कार्यकर्त्ता वहाँ निरन्तर उपस्थित रहकर धृतराष्ट्र से यह पूछते रहते थे कि प्रत्येक याचक को क्या दिया जाय; युधिष्ठिर के आदेश से जहाँ सौ देना था वहाँ हजार दिया गया और जहाँ हजार देना था वहाँ दस हजार। इस प्रकार धृतराष्ट्र ने पुत्रों, पौत्रों, और पितरों का तथा अपना और गान्धारी का भी श्राद्ध किया। इस प्रकार लगातार दस दिनों तक दान देकर धृतराष्ट्र पुत्रों और पौत्रों के ऋण से मुक्त हो गये (१५. १४)।" "कार्त्तिक-पूर्णिमा को धृतराष्ट्र (और गान्धारी) ने पाण्डवों को बुलाया और उनका यथायोग्य अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् विद्वान् ब्राह्मणों से यात्राकालोचित संस्कार सम्पन्न कराकर, वल्कल और मृगचर्म धारण कर, तथा अग्निहोत्र को आगे करके पुत्र-वधुओं से घिरे हुये राजा धृतराष्ट्र राजभवन से बाहर निकले। साथ की समस्त महिलायें जोर-जोर से रोने लगीं; युधिष्ठिर और अर्जुन दुःसह दुःख से सन्तप्त हुये; कुन्ती अपने कन्धे पर गान्धारी का हाथ रक्खे हुये चल रही थीं; धृतराष्ट्र गान्धारी के पीछे थे और उनके कन्धे पर अपना हाथ रखे हुये थे; कृष्णा इत्यादि सभी धृतराष्ट्र के साथ चल पड़ीं। सभी वर्ग के नागरिक उसी प्रकार दुःखी थे जिस प्रकार अतीत में वह लोग द्यूत-क्रीड़ा के समय कौरव सभा से निकल कर वनवास के लिये पाण्डवों के प्रस्थान करने पर दुःखी हुये थे (१५. १५)।"

"धृतराष्ट्र प्रधान द्वार से नगर के बाहर निकले और वहाँ पहुँच कर उन्होंने साथ आये जन समूह को आग्रहपूर्वक विदा किया। विदुर और संजय ने धृतराष्ट्र के साथ ही वन में जाने का निश्चय कर लिया। धृतराष्ट्र ने कृप और युयुत्सु को युधिष्ठिर के हाथ सौंप दिया। कुन्ती धृतराष्ट्र के साथ ही वन को जाने लगीं, यद्यपि युधिष्ठिर ने उनको रोकने का प्रयास किया। कुन्ती ने युधिष्ठिर से सहदेव पर कभी अप्रसन्न न होने का निवेदन किया और कहा कि 'सहदेव सदा मेरे और तुम्हारे प्रति भक्ति रखता आया है।' कुन्ती ने युधिष्ठिर को कर्ण इत्यादि का भी स्मरण दिलाया। युधिष्ठिर ने भी कुन्ती को यह स्मरण दिलाया कि जब वह लोग नगर से बाहर जाने को उद्यत थे तब उसने ही विदुला की कथा का वर्णन किया था और उन लोगों ने कृष्ण के मुख से उसके ही विचार को सुनकर इस राज्य को प्राप्त किया। भीम ने भी कुन्ती को रोकते हुये यह कहा कि 'जब आपको वन में जाना ही था तब आप हमको और दुःख शोक में डूबे हुये उन माद्री कुमारों को बाल्यावस्था में वन से नगर में क्यों ले आईं'। किन्तु इसका भी कुछ प्रभाव नहीं हुआ। द्रौपदी और सुभद्रा, तथा पाण्डव भी अपने सेवकों और अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ कुन्ती के पीछे चलने लगे। इस पर कुन्ती ने पुत्रों को सम्बोधित करते हुये (१५. १६) अपने वन जाने के कारणों पर प्रकाश डाला (१५. १७)।" "कुन्ती का वचन सुनकर पाण्डव और द्रौपदी वन जाने से विरत हुये और धृतराष्ट्र की परिक्रमा तथा अभिवादन करके घर वापस आने के लिये प्रस्थान किया। धृतराष्ट्र ने (गान्धारी और विदुर के साथ) एक बार पुनः कुन्ती को वन चलने से विरत करने का प्रयास किया किन्तु असफल रहे। पाण्डवों को निराश लौटते देख कुरुकुल की समस्त स्त्रियाँ फूट-फूट कर रोने लगीं। हस्तिनापुर नगर शोक में डूब गया; वहाँ कोई भी उत्सव नहीं मनाया जाता था। पाण्डव उत्साहविहीन हो गये। धृतराष्ट्र सन्ध्या समय गङ्गातट पर पहुँचे और वहाँ उन ब्राह्मणों के बीच विश्राम किया जिन्होंने उन्हीं की भाँति अपनी-अपनी पवित्र अग्नियों को प्रज्वलित किया था। विदुर इत्यादि की शय्या की व्यवस्था की गई। यज्ञ करने वाले ब्राह्मण तथा धृतराष्ट्र के साथ आये हुये अन्य द्विज भी यथास्थान सोये। वह रात्रि उन लोगों को ब्राह्मी-निशा के समान आनन्ददायक प्रतीत हो रही थी। रात्रि व्यतीत होने पर पूर्वाह्न काल के कृत्यों को सम्पन्न करके धृतराष्ट्र आदि अपनी यात्रा में अग्रसर हुये (१५. १८)।" "विदुर का परामर्श मानकर धृतराष्ट्र ने भागीरथी के तट पर अपना आवास बनाया; चारों वर्णों के अनेक लोग वहाँ उनसे मिलने आये और धृतराष्ट्र ने वहाँ उन सबको अपने शब्दों से प्रसन्न किया। संध्या-समय धृतराष्ट्र इत्यादि ने गङ्गा में स्नान किया; कुन्ती धृतराष्ट्र और गान्धारी देवी को गङ्गा-तट पर ले आईं। तदुपरान्त धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र में स्थित राजर्षि शतयूप के आश्रम पर पहुँचे। शतयूप ने उनका यथोचित सत्कार किया। शतयूप के साथ धृतराष्ट्र व्यास के आश्रम पर गये जहाँ उन्होंने व्यास द्वारा वनवास की दीक्षा ली। वहाँ से लौटकर धृतराष्ट्र पुनः शतयूप के आश्रम में रहने लगे जहाँ शतयूप ने व्यास जी की आज्ञा से धृतराष्ट्र को वन में रहने की सम्पूर्ण विधि बतलायी। धृतराष्ट्र इत्यादि तपस्या करने लगे (१५. १९)।" "वहाँ नारद इत्यादि आये और उन्होंने धार्मिक कथाओं द्वारा धृतराष्ट्र के मन को हर्षित किया। देवर्षि नारद ने उन राजाओं (सहस्रचित्य, शैलालय, पृषध्र, पुरुकुत्स, शशलोमन) का वर्णन करते हुये जिन्होंने उसी आश्रम में रहकर स्वर्ग प्राप्त किया था, धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा, 'गान्धारी सहित तुम भी व्यास की कृपा से यहाँ तपस्या करके दुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर लोगे। इन्द्र के साथ रहते हुये पाण्डु सदैव तुम्हें स्मरण करते रहते हैं, और वह निश्चय ही तुम्हें कल्याण का भागी बनायेंगे। तुम्हारी और गान्धारी की सेवा करने से कुन्ती अपने पति-लोक में पहुँच जायगी। यह सब हम अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं। विदुर महात्मा युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश करेंगे और संजय यहाँ से सीधे स्वर्ग चले जायेंगे।' धृतराष्ट्र इत्यादि ने नारद की प्रशंसा और स्तुति की। शतयूप ने नारद से पूछा कि राजा धृतराष्ट्र किस लोक में जायेंगे। नारद ने कहा, 'एक बार इन्द्रलोक में जाकर मैंने वहाँ राजा पाण्डु को भी देखा; वहाँ इन्द्र के मुख से मैंने सुना कि तीन वर्ष के पश्चात् धृतराष्ट्र और गान्धारी कुबेर के लोक में जायेंगे और वहाँ कुबेर से सम्मानित हो इच्छानुसार चलने वाले विमान पर बैठ कर देव, गन्धर्व, तथा राक्षसों के लोक में स्वेच्छया विचरते रहेंगे; यह देवताओं का अत्यन्त गुप्त विचार है।' यह सुनकर सभी उपस्थित सज्जन और धृतराष्ट्र भी अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस प्रकार वे मनीषि महर्षि-गण अपनी कथाओं से धृतराष्ट्र को सन्तुष्ट करके सिद्ध गति का आश्रय ले विभिन्न स्थानों को चले गये (१५. २०)।" "धृतराष्ट्र के वन में चले जाने के पश्चात् पाण्डव तथा पुरवासी उनके लिये चिन्तित रहने लगे; केवल परिक्षित् ही किसी प्रकार उन लोगों को धैर्य बँधा पाते थे (१५. २१)।" "शोकग्रस्त होने के कारण पाण्डवों को किसी भी बात में आनन्द नहीं आता था; वह प्रतिदिन के राजकीय कार्यों से भी विरक्त हो गये थे; उन्हें सदैव कुन्ती और गान्धारी की ही चिन्ता रहती थी; इस प्रकार उन्होंने चिन्ता का निवारण करने के लिये धृतराष्ट्र के दर्शन की इच्छा से वन में जाने का निश्चय कर लिया। सहदेव ने कुन्ती की दशा पर दुःख प्रगट करते हुये उसे देखने के लिये वन में जाने का प्रस्ताव किया। कुन्ती गान्धारी और धृतराष्ट्र को देखने की इच्छा प्रगट करते हुये द्रौपदी ने भी सहदेव का अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव को सुनकर युधिष्ठिर ने अपनी सेना को कूच करने की आज्ञा दी और रनिवास की स्त्रियों को भी वन में ले चलने के लिये विभिन्न प्रकार के वाहन और पालकियों को तैयार करने का आदेश दिया। उन्होंने यह घोषणा की कि कल सब लोग वन के लिये प्रस्थान करेंगे; नगरवासियों को भी साथ चलने की स्वीकृति दे दी गई। दूसरे दिन प्रातःकाल वे लोग वन के लिये चल पड़े और नगर के बाहर जाकर पुरवासियों की प्रतीक्षा करते हुये सब लोग पाँच दिनों तक एक ही स्थान पर रुके रहे और तदुपरान्त सब को साथ लेकर वन में गये (१५. २२)।" "उन लोगों का नायकत्व अर्जुन और कृप कर रहे थे; भीम एक विशाल हाथी पर चल रहे थे; नकुल और सहदेव द्रुतगामी अश्वों पर सवार थे, महिलायें शिविकाओं में बैठी दीन दुःखियों को असंख्य धन बाँटती हुई चल रही थीं; स्त्रियों का नेतृत्व द्रौपदी कर रही थीं। इस समय युयुत्सु और धौम्य युधिष्ठिर की आज्ञा से हस्तिनापुर में ही रहकर राजधानी की रक्षा करते रहे। सब लोग कुरुक्षेत्र पहुँचे; उन्होंने यमुना पार की और धृतराष्ट्र के आश्रम में जा पहुँचे (१५. २३)।" "वहाँ पहुँच कर पाण्डव-गण और उनके अनुगामी रथों से उतर कर पैदल चलने लगे। वहाँ के तपस्वियों ने उन्हें बताया कि उस समय धृतराष्ट्र यमुना-स्नान के लिये गये हुये हैं। तपस्वियों से यमुना का रास्ता पूछ कर सब लोग उधर बढ़े। सहदेव बड़े वेग से दौड़कर कुन्ती के पास चले गये और दोनों एक दूसरे को देखकर हर्ष के आँसू बहाते हुये रो पड़े। कुन्ती ने लोगों के आने की सूचना गान्धारी को दी और शीघ्रतापूर्वक उन पुत्र-हीन दम्पति को खींचती हुई युधिष्ठिर इत्यादि की ओर बढ़ीं। पाण्डव-गण उन्हें देखकर पैरों पर गिर पड़े और उसके बाद उन लोगों ने धृतराष्ट्र इत्यादि के हाथ से जल के भरे हुये कलश स्वयं ले लिये। युधिष्ठिर ने अपने साथ के प्रत्येक व्यक्ति को उसका नाम और गोत्र बताते हुये धृतराष्ट्र से परिचित कराया। धृतराष्ट्र परिचय पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और सब को लेकर सिद्धों और चारणों से सेवित अपने आश्रम पर आये (१५. २४)।" "उस समय अनेक देशों से आये हुये तपस्वी-गण पाण्डवों के दर्शन के लिये उत्सुक थे। उन सबसे संजय ने पाण्डवों का परिचय कराया। तदुपरान्त धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से उनका कुशल समाचार पूछना आरम्भ किया (१५. २५)।" "धृतराष्ट्र ने पाण्डवों का कुशल और उनकी पितरों तथा देवताओं के प्रति भक्ति के सम्बन्ध में पूछना आरम्भ किया। युधिष्ठिर ने भी उत्तर देने के पश्चात् विदुर के सम्बन्ध में पूछा। धृतराष्ट्र ने उन्हें बताया कि

विदुर जी कठिन तपस्या में लिप्त हैं; वह निरन्तर उपवास करते और केवल वायु पीकर ही रहते हैं। उसी समय मुख में पत्थर का टुकड़ा लिये जटाधारी कृष्णकाय विदुर दूर से आते दिखायी दिये; वह वस्त्रहीन थे और उनके समस्त शरीर में मैल जमी हुयी थी। आश्रम की ओर देखते ही विदुर जी वापस लौट पड़े और युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे दौड़े। अन्त में विदुर एक स्थान पर योग अवस्था में खड़े हो गये और योग बल से उन्होंने युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश किया। युधिष्ठिर ने विदुर के अपने शरीर में प्रवेश करने के पश्चात् अपने में विशेष बल और गुणों का अनुभव किया; उनको अपने समस्त पुरातन स्वरूपों तथा व्यास जी के बताये योग धर्म का भी स्मरण हो आया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने विदुर के शरीर का दाह संस्कार करने का निश्चय किया किन्तु इतने में ही यह आकाशवाणी हुई कि विदुर का दाह संस्कार करना उचित नहीं, क्योंकि उनके शरीर में युधिष्ठिर का शरीर भी है; और विदुर को सान्तानिक नामक लोक की प्राप्ति होगी। यह सुनकर युधिष्ठिर वहाँ से लौट आये और उन्होंने धृतराष्ट्र से सारी बातें कहीं। विदुर के देह त्याग का अद्भुत समाचार सुनकर वहाँ के सब लोग अत्यन्त विस्मित हुये। वह रात सब लोगों ने वृक्षों के ही नीचे व्यतीत की (१५. २६)।" "दूसरे दिन प्रातःकाल युधिष्ठिर इत्यादि धृतराष्ट्र तथा अन्य लोगों के आश्रमों को घूम-घूम कर देखने लगे। युधिष्ठिर ने तपस्वियों को अनेक प्रकार के उपहार दिये। आश्रमों में घूमने के पश्चात् युधिष्ठिर पुनः धृतराष्ट्र के आश्रम में लौट आये। कुरुक्षेत्र में रहनेवाले अनेक महर्षि, शतयूप, और व्यास भी वहाँ पधारे (१५. २७)।" "व्यास ने धृतराष्ट्र इत्यादि का कुशल समाचार पूछने के पश्चात् उन्होंने माण्डव्य मुनि के शाप से धर्म के ही विदुर के रूप में अवतीर्ण होने की कथा का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि विदुर बृहस्पति और शुक्र से भी श्रेष्ठ थे; पूर्वकाल में ब्रह्मा की आज्ञा से व्यास ने ही विचित्रवीर्य के क्षेत्र में विदुर को उत्पन्न किया था; मन के द्वारा धर्म का धारण और ध्यान करने के कारण ही विदुर धर्म के नाम से विख्यात थे; युधिष्ठिर की उत्पत्ति भी धर्म से ही हुई थी। तदुपरान्त व्यास ने कहा कि 'मैं आज अपनी तपस्या का वह आश्चर्यजनक फल दिखाऊँगा जो अभी तक कोई भी महर्षि नहीं कर पाया है : तुम लोग यह बताओ कि मुझ से कौन सी अभीष्ट वस्तु पाना चाहते हो और किसको देखने, सुनने अथवा स्पर्श करने की तुम्हारी इच्छा है' (१५. २८)।"

आश्रमवासिकपर्व (आश्रम में निवास करने से सम्बन्धित महाभारत का १५ वाँ पर्व) : तु० की **आश्रमनिवास, आश्रमस्थान, आश्रमवास।**

आश्रमस्थ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

आश्रमस्थान (आश्रम का आवास) : अनुक्रमणिकापर्वः १. १, ९१ (आश्रमस्थानसंशय)।

आश्राव्य—इन्द्र की सभा में विराजमान् होने वाले मुनि, २. ७. १८।

आश्वमेधिकंपर्वन्—'ततोऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपापप्रणाशनम्', (१. २, २९)। 'ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम्', (१. २, ३३८)।

आश्वलायन, विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक का नाम है (१३. ४, ५४)।

आश्विन् (विशेषण)—यह वैशाख से आरम्भ होनेवाले सौर वर्ष का छठवाँ मास अथवा चैत्र से आरम्भ होनेवाले वर्ष का सातवाँ मास है। आश्विन मास की द्वादशी तिथि को दिन रात उपवास करके पद्मनाभ नाम से भगवान की पूजा करनेवाला पुरुष सहस्र गोदान का पुण्यफल प्राप्त करता है (१३. १०९, १३)।

१. आश्विनेय = नकुल और सहदेव (१. १८९, २३, जहाँ 'आश्विनेय' पाठ है; ५. १३८, १७)।

२. आश्विनेय = सहदेव (२. ३१, १०)।

१. आषाढ़, एक क्षत्रिय राजा था जो क्रोधवेशसंज्ञक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (१. ६७, ६३)। इसे पाण्डवों के पक्ष से रण-निमन्त्रण प्राप्त हुआ था (५. ४, १७)।

२. आषाढ़ = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

३. आषाढ़ एक मास का नाम है। इस मास में एक समय भोजन करने से स्त्री और पुरुष पुत्र और धन-धान्य से सम्पन्न होते हैं (१३. १०६, २६)। आषाढ़ मास में द्वादशी तिथि को जो उपवास करता है तथा रात-दिन वामन की पूजा करता है, वह नरमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता हुआ महान पुण्य का भागी होता है (१३. १०९, १०)।

४. आषाढ़, एक नक्षत्र का नाम है। जो मनुष्य पूर्वाषाढ-उत्तराषाढ में उपवास करके कुलीन ब्राह्मण को दधि-दान करता है, वह गोधन सम्पन्न कुल में जन्म ग्रहण करता है (१३. ६४, २५. २७)। उत्तराषाढ में पितृ-यज्ञ करने वाला मनुष्य शोक-शून्य होकर पृथिवी पर विचरण करता है (१३. ८९, १०)। चान्द्रव्रत में पूर्वाषाढ तथा उत्तराषाढ की स्थिति ऊरुओं में समझना चाहिये (१३. ११०, ४)।

आषाढ़ी, आषाढ की पूर्णिमा का नाम है (१२. १७१, १७)।

आसुर : 'अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः । ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः ।', (१. ७३, ८. ९)। 'विट्शूद्रेष्वासुरः स्मृतः', (१. ७३, ११)। 'पैशाच आसुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कदाचन', (१. ७३, १२) 'आसुरीं दारुणीं मायाम्', (३. १९, १६)। 'पुरमासुरम्', (३. १७३, ३०)। 'व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्', (५. ५७, ११)। 'अत्तासुरोऽग्निः सततं दीप्यते', (५. ९९, ३)। 'मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्', (६. १९, २; २०, १८)। 'राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः', (६. ३३, १२)। 'संपदमासुरीम्', (६. ४०, ४)। 'निबन्धायासुरीमता', (६. ४०, ५)। 'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च', (६. ४०, ६)। 'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः', (६. ४०, ७)। 'आसुरीष्वेव योनिषु', (६. ४०, १९)। 'आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि', (६. ४०, २०)। 'तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्', (६. ४१, ६)। 'आसुरीमिव वृत्रहा', (६. ७२, ३२)। 'दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि । आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान् ॥', (६. १०८, १६)। 'आसुरीव यथा सेना', (७. १, २६)। 'आसुरीम् चमूम्', (७. ३६, ४३; १५९, ४३)। 'सेनामासुरीं मघवानिव', (७. १७१, ४९)। 'अस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च', (७. १७३, ४०)। 'नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम्', (७. १८८, ४१)। 'चमूं वज्रहस्त इवासुरीम्', (८. १४, ३६)। 'सेनामासुरीं मघवानिव', (८. ४६, ४; ४८, ९; ४९, ६०; ७३, ५४)। 'शक्रेणेवासुरे बले', (९. १९, २१)। 'आसुरश्चैव विजयः', (१२. ५९, ३९)। 'आसुरीं योनिम्', (१२. १८०, ४६)। 'आसुरी प्रजा', (१२. २०७, २७)। 'आसुरौ गुणौ', (१२. २१६, १८)। 'आसुरीं,' (१२. २२५, ४)। 'देवासुरैः' (१२. २८१, १५)। 'आसुरो भावो', (१२. २९४, २१)। 'आसुराण्येव कर्माणि', (१२. २९४, २२)। 'आसुरान्विषयान्', (१२. ३०१, ८)। 'धर्मः प्राजापत्योऽथवाऽऽसुरः', (१३. १९, २; ४४, ७; ४५, ८. १६)। 'आसुरम्', (१३. ९०, १९)। 'आसुराणि च माल्याभिः', (१३. ९८, २४)।

आसुरायण, विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम है (१३. ४, ५६)।

आसुरि, एक प्राचीन ऋषि का नाम है जो सांख्यदर्शन के आचार्य कपिल एवं पञ्चशिख के गुरु थे। इन्होंने मुनियों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। इनकी पत्नी का नाम कपिला था (१२. २१८, १०–१५)। अन्य ऋषियों के साथ इनका उल्लेख (१२. ३१८, ६१)।

आस्तीकम् = आस्तीकपर्वन्—'पौलोमास्तीकमूलवान्', (१. १, ८८)। 'पौलोममास्तीकं चादितः स्मृतम्', (२. २, ३४)। 'पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम्', (१. २, ४२. ८५)। 'आस्तीके सर्वनागानां गरुडस्य च संभवः ॥ क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा। यजतः सर्पसत्रेण राज्ञः

पारिक्षितस्य च ॥', (१. २, ९०. ९१) । "आस्तीक (पर्व) की कथा के समय ब्राह्मणों को मधु और घी से युक्त खीर का भोजन कराना चाहिये; उस भोजन में फल-मूल की अधिकता रहनी चाहिये; और तदुपरान्त गुड़ौदन का दान करना चाहिये (१८. ६, ५७)।" देखिये १. १५, १०. ११ भी।

आस्तीक (म्) आख्यान (म्), से आस्तीक की कथा (तु० की० आस्तीकपर्वन्) का तात्पर्य है : १. १३, ४. ९; १५, ११; १६, ४; ५८, २९. ३२।

आस्तीकः—कुछ लोग आस्तीकपर्व से महाभारत का आरम्भ मानते हैं (१. १, ५२)। राजा जनमेजय के सर्पसत्र में तपस्या के बल-वीर्य से सम्पन्न, वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत विद्वान् विप्रवर आस्तीक नामक ब्राह्मण के द्वारा भयभीत सर्पों की प्राण-रक्षा हुई (१. ११, १९)। 'आस्तीकेन द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः', (१. १२, २)। 'श्रोष्यसि त्वं रुरो सर्वमास्तीकचरितं महत्', (१. १२, ३)। 'आस्तीकश्च द्विजश्रेष्ठः किमर्थं जयतां वरः', (१. १३, २)। 'आस्तीकस्य पुराणर्षेर्ब्राह्मणस्य यशस्विनः', (१. ३५, ५)। 'इदमास्तीकमाख्यानं तुभ्यं शौनक पृच्छते', (१. १३, ९)। आस्तीक के पिता का नाम जरत्कारु था (१. १३, १०. ११)। इनकी माता नाग प्रवर वासुकि की बहन थी (१. १५, ३)। जनमेजय के सर्पसत्र में उपस्थित होकर महा-तपस्वी आस्तीक ने नागों को मृत्यु से बचाया था (१. १५, ६)। 'आस्तीकस्य कवेः साधोः', (१. १६, १)। ब्रह्माजी ने कहा कि जरत्कारु से विवाहित वासुकि की बहन के गर्भ से आस्तीक नाम का महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा जो जनमेजय के सर्पसत्र को बन्द कराकर धार्मिक सर्पों को अग्नि में जलने से बचायेगा (१. ३८, १३)। 'यथा तु जातो ह्यास्तीक एतदिच्छामि वेदितुम्', (१. ४०, ६)। आस्तीक का जन्म और पालन-पोषण वासुकि के घर में हुआ था। इनके नाम की व्युत्पत्ति का भी वर्णन है : 'आस्तीत्युक्त्वा गतो यस्मात्पिता गर्भस्थमेव तम्। वनं तस्मादिदं तस्य नामास्तीकेति विश्रुतम्', (१. ४८, १९. २०)। सर्पयज्ञ में किस प्रकार उपस्थित होकर इन्होंने बचे हुये सर्पों की रक्षा की थी, इसका वर्णन इन स्थलों पर है : १. ५३, २५; ५४, ३. १७. २३. २४. २७. २८; ५५, १; ५६, २१. २४. २५। "जनमेजय के सर्पयज्ञ में जब तक्षक नाग आकाश में ही ठहर गया तब महाराज जनमेजय को अत्यन्त चिन्ता हुई। उग्रश्रवा ने इसका कारण बताते हुये कहा कि इन्द्र के हाथ से छूटने पर नागप्रवर तक्षक भय से थर्रा उठा और उसकी चेतना लुप्त हो गई। उस समय आस्तीक ने उसे लक्ष्य करके तीन बार 'ठहर जा, ठहर जा, ठहर जा', कहा जिससे वह आकाश में उसी प्रकार ठहर गया जैसे कोई मनुष्य आकाश और पृथिवी के बीच में लटक रहा हो। तदनन्तर सभासदों के बार-बार प्रेरित करने पर राजा जनमेजय ने कहा कि आस्तीक ने जो कुछ कहा है, वही होगा और यह यज्ञकर्म समाप्त किया जाता है। तदनन्तर उस यज्ञ में पधारे हुये ऋत्विजों और सदस्यों आदि को राजा जनमेजय ने प्रचुर दक्षिणा दी। लोहिताक्ष सूत तथा शिल्पी को भी, जिसने यज्ञ के पूर्व ही यह बता दिया था कि सर्पसत्र को बन्द करने में एक ब्राह्मण निमित्त बनेगा, प्रभावशाली जनमेजय ने बहुत धन दिया। उस समय आस्तीक ने भी जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ में सदस्य के रूप में उपस्थित होने का वचन देते हुये राजा जनमेजय से घर जाने के लिये विदा ली। यज्ञ से बचे हुये नाग, जो वासुकि के भवन में उपस्थित थे, यज्ञ बन्द होने का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और आस्तीक से वर माँगने के लिये कहा। आस्तीक ने यह वर माँगा कि 'लोक में जो ब्राह्मण अथवा अन्य मनुष्य प्रसन्नचित्त होकर मेरे इस धर्ममय उपाख्यान का पाठ करे, उसे आप लोगों से कोई भय न हो।' नागों ने आस्तीक को यह वर देते हुये कहा, 'जो कोई असित, आर्तिमान, और सुनीथ मंत्रों का दिन अथवा रात्रि के समय स्मरण करेगा, उसे सर्पों से कोई भय न होगा। साथ ही जो तुम्हारा स्मरण करेगा उसे भी सर्प नहीं डसेंगे।' इस प्रकार सर्पसत्र से नागों का उद्धार करके द्विजश्रेष्ठ आस्तीक ने विवाह किया और पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न करने के पश्चात् समय आने पर मोक्ष प्राप्त कर लिया (१. ५८, १. ५. ७–९. १५. १७. १९. २१. २४–२६. ३१)।" "जहाँ इस बात का वर्णन किया गया है कि नेत्र-ज्योति प्राप्त करके धृतराष्ट्र ने किस प्रकार अपने पुत्रों को देखा वहीं यह कथन है कि व्यास ने स्वर्ग से परीक्षित् को लाकर जनमेजय को उनका दर्शन कराया। उस समय जनमेजय ने आस्तीक मुनि से इस प्रकार कहा, 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा यह नाना प्रकार के आश्चर्यों का केन्द्र हो रहा है, क्योंकि आज मेरे शोकों का नाश करने वाले मेरे पिता भी यहाँ उपस्थित हो गये थे।' जनमेजय की बात को सुनकर आस्तीक ने महर्षि व्यास को इसका श्रेय देते हुये सर्पसत्र का उल्लेख किया (१५. ३५, १०–१२)।" "सौति ने कहा : यज्ञसत्र के बीच-बीच में महाभारत को सुनते हुये महाराज जनमेजय आश्चर्यचकित हो गये। सर्पों की रक्षा करने में सफल हो जाने के कारण आस्तीक भी अत्यन्त प्रसन्न हुये (१८. ५, ३२)।"

आस्तीकपर्वन्, आदिपर्व के १३–५८ अध्यायों तक आनेवाले महाभारत के ५वें अवान्तरपर्व का नाम है। "सौति ने यह बताया कि ऋषि जरत्कारु ने किस प्रकार नागराज वासुकि की बहन से विवाह करके आस्तीक नामक उस पुत्र को उत्पन्न किया जिसने मातृशाप से ग्रसित सर्पों की जनमेजय के सर्पसत्र में भस्म होने से रक्षा की (१. १३–१५)।" "नागों, तथा गरुड और अरुण की उत्पत्ति की कथा (१. १६)।" "उच्चैःश्रवस् की उत्पत्ति की व्याख्या करते हुये सौति ने अमृत-मन्थन तथा उसके फलस्वरूप विविध रत्नों के साथ अमृत की उत्पत्ति की कथा का वर्णन किया (१. १७–१९)।" "कद्रू और विनता ने उच्चैःश्रवस् के पूँछ के रंग के सम्बन्ध में आपस में बाज़ी लगाई; अरुण के द्वारा अभिशप्त होकर विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। कद्रू ने कुटिलता और छल का आश्रय लेकर अपने सहस्र पुत्रों को आज्ञा दी कि वे काले रंग के बाल बनकर उच्चैःश्रवस् की पूँछ में लग जाँय, जिससे वह काली प्रतीत होने लगे और उसे विनता की दासी न बनना पड़े। उस समय जिन सर्पों ने कद्रू की आज्ञा न मानी उन्हें उसने शाप दिया कि 'तुम सब जनमेजय के सर्पयज्ञ में भस्म हो जाओगे।' इस प्रकार कद्रू विनता से जीत गई, और पराजित विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। गरुड़ अपनी माता (विनता) की सहायता के बिना ही अण्डा फोड़कर बाहर निकल आये थे। जन्म लेने पर गरुड़ की देवताओं ने स्तुति की। गरुड़ के द्वारा अपने तेज और शरीर का संकोच तथा सूर्य के क्रोधजनित तीव्र तेज की शान्ति के लिये अरुण का उनके रथ पर स्थित होना। उस समय सूर्य के ताप से मूर्च्छित हुये सर्पों की रक्षा के लिये कद्रू ने सूर्यदेव की स्तुति की, और इन्द्र द्वारा की गई वर्षा से नागों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गरुड़ ने अपनी माता को दास्य-वृत्ति से मुक्त करने के लिये नागों से उपाय पूछा। नागों ने बताया कि यदि गरुड़ उनके लिये अमृत ला दें तो वे तथा उनकी माता विनता दास्य-वृत्ति से मुक्त हो जायेंगी। सर्पों की बात सुनकर गरुड़ ने अमृत के लिये प्रस्थान किया और अपनी माता की आज्ञा के अनुसार निषादों का भक्षण किया। कश्यप जी ने गरुड़ को गज और कच्छप के पूर्व जन्म की कथा सुनाई। गरुड़ ने उस हाथी और कच्छप को पकड़ कर एक वटवृक्ष की बड़ी शाखा पर लाकर रक्खा किन्तु गरुड़ के असह्य वेग से वृक्ष की वह शाखा टूट गई। उस शाखा को तोड़कर गरुड़ जब प्रसन्न मुद्रा में उसकी ओर देखने लगे, तब उनकी दृष्टि उसी शाखा में अधोमुख लटक रहे वालखिल्य नामक महर्षियों पर पड़ी। उन महर्षियों की रक्षा के लिये गरुड़ कच्छप तथा गज के साथ ही साथ उस वृक्ष की शाखा को लेकर उड़ते हुये अपने पिता कश्यप से मिले। कश्यप की प्रार्थना से वालखिल्य ऋषियों ने वृक्ष की शाखा को छोड़ कर तप के लिये प्रस्थान किया, और गरुड़ ने उस शाखा को एक निर्जन पर्वत पर ले जाकर छोड़ दिया। पूर्वकाल में वालखिल्यों के द्वारा इन्द्र के अभिशप्त होने के कारण देवताओं के सम्मुख

अनेक भयकारक अपशकुन प्रगट होने लगे। गरुड़ ने देवताओं के साथ युद्ध करके उन्हें पराजित किया, और अमृत लेकर लौट आये। मार्ग में उन्होंने विष्णु से वर प्राप्त किया। गरुड़ ने इन्द्र से भी मित्रता की और अमृत सहित नागों के पास आकर विनता को दासीभाव से मुक्त कराया। उसी समय इन्द्र ने अमृत का पुनः अपहरण कर लिया (१. २०–३४)।" मुख्य नागों के नाम (१. ३५)। शेषनाग की तपस्या, ब्रह्माजी से वर-प्राप्ति, तथा पृथिवी को सिर पर धारण करना (१. ३६)। माता के शाप से बचने के लिये वासुकि आदि नागों का परस्पर परामर्श (१. ३७)। वासुकि की बहन जरत्कारु का जरत्कारु मुनि के साथ विवाह करने का निश्चय और ब्रह्मा की आज्ञा से वासुकि का जरत्कारु मुनि के साथ अपनी बहन को विवाहित करने के लिये प्रयत्नशील होना (१. ३८–३९)। जरत्कारु की तपस्या; राजा परिक्षित् का उपाख्यान तथा राजा द्वारा मुनि के कन्धे पर मृतक सर्प रखने के कारण दुःखित कृश का शृङ्गी को उत्तेजित करना (१. ४०)। शृङ्गी ऋषि का राजा परिक्षित् को शाप देना, और शमीक का अपने पुत्र को शान्त करते हुये शाप को अनुचित बताना (१. ४१)। शमीक का अपने पुत्र को समझाना तथा गौरमुख को राजा परिक्षित् के पास भेजना; राजा द्वारा आत्मरक्षा की व्यवस्था तथा तक्षक नाग और काश्यप का वार्तालाप (१. ४२)। तक्षक का धन देकर काश्यप को लौटा देना और छल से राजा परिक्षित् के समीप पहुँच कर उन्हें डँसना (१. ४३)। जनमेजय का राज्याभिषेक और विवाह (१. ४४)। जरत्कारु को अपने पितरों का दर्शन और उनसे वार्तालाप (१. ४५)। जरत्कारु का शर्त के साथ विवाह के लिये उद्यत होना, और नागराज वासुकि का जरत्कारु नाम की कन्या को लेकर आना (१. ४६)। जरत्कारु मुनि का नागकन्या के साथ विवाह; नागकन्या जरत्कारु द्वारा पतिसेवा तथा पति का उसे त्याग कर तपस्या के लिये गमन (१. ४७)। वासुकि नाग की चिन्ता, बहन द्वारा उसका निवारण तथा आस्तीक का जन्म एवं विद्याध्यन (१. ४८)। राजा परिक्षित् के धर्ममय आचार तथा उत्तम गुणों का वर्णन; राजा का आखेट के लिये प्रस्थान करना और उनके द्वारा शमीक मुनि का तिरस्कार (१. ४९)। शृङ्गी ऋषि का परिक्षित् को शाप; तक्षक का काश्यप को लौटाकर छल से परिक्षित् को डँसना और पिता की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर जनमेजय की तक्षक से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा (१. ५०)। जनमेजय के सर्पयज्ञ का उपक्रम (१. ५१)। सर्पसत्र का आरम्भ और उसमें सर्पों का विनाश (१. ५२)। सर्पयज्ञ के ऋत्विजों की नामावली; सर्पों का भयंकर विनाश; तक्षक का इन्द्र की शरण में जाना तथा वासुकि का अपनी बहन से आस्तीक को यज्ञ में भेजने के लिये कहना (१. ५३)। माता की आज्ञा से मामा (वासुकि) को सान्त्वना देकर आस्तीक का सर्पयज्ञ के लिये प्रस्थान (१. ५४)। आस्तीक के द्वारा यजमान, यज्ञ, ऋत्विज, सदस्यगण, और अग्निदेव की स्तुति-प्रशंसा (१. ५५)। राजा का आस्तीक को वर देने के लिये तैयार होना; तक्षक नाग की व्याकुलता तथा आस्तीक का वर माँगना (१. ५६)। सर्पयज्ञ में दग्ध हुये प्रधान सर्पों का नामोल्लेख (१. ५७)। यज्ञ की समाप्ति एवं आस्तीक का सर्पों से वर प्राप्त करना (१. ५८)।

आह्वायक—पाँच प्रकार के ब्राह्मण-चाण्डालों में से एक (१२. ७६, ६)।

आहिण्डक—वैदेह जाति की स्त्री के साथ निषाद का सम्पर्क होने पर आहिण्डक का जन्म होता है (१३. ४८, २७)।

१. आहुक, एक यादव राजा का नाम है। इसे कृष्ण का पिता (?) कहा गया है (२. २, ३४)। युधिष्ठिर के सभा-भवन में प्रवेश करने के समय उपस्थित राजाओं में यह भी था (२. ४, ३०)। कृष्ण ने इसकी पुत्री का अक्रूर के साथ विवाह कराया (२. १४, ३३)। इनके सौ पुत्र थे जिनमें से प्रत्येक एक-एक देवता के समान पराक्रमी थे (२. १४, ५६)। शाल्व के विरुद्ध इन्होंने द्वारका की रक्षा की (३. १५, २३)। जब श्रीकृष्ण ने शाल्व का पीछा किया तब उन्होंने द्वारका की रक्षा का भार इन्हें ही सौंपा था (३. २०, ७; देखिये ३. २१, ११. १२ भी)। कौरवों से प्रतिशोध लेने के लिये मित्रों की गणना कराते हुये श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से इनके नाम का भी उल्लेख किया था (३. ५१, २८)। यह उग्रसेन के पिता थे (५. १२८, ३९)। जब युद्ध में सहायता देने के लिये बलराम ने पाण्डवों के शिविर में प्रवेश किया तब अन्य राजाओं के अतिरिक्त आहुक भी उनके साथ थे (५. १५७, १८)। 'स्यातां यस्याहुकाक्रूरौ किं नु दुःखतरं ततः' (१२. ८१, १०)। 'पितुः समीपं नरसत्तमस्य मातुश्च राजश्च तथाऽऽहुकस्य', (१३. १४, ४१)। 'आहुक की आज्ञा से मदिरा आदि का निर्माण निषिद्ध कर दिया गया (१६. १, २८)।

२. आहुक, एक जाति का नाम है : 'आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम्, महामना महावीर्यो महासत्त्वो जनार्दनः', (५. ८६, २)।

१. आहुति—जागरूथी नगरी में श्रीकृष्ण द्वारा इसकी पराजय का उल्लेख करते हुये अर्जुन का श्रीकृष्ण की स्तुति करना (३. १२, ३०)।

२. आहुति, महापुरुषस्तव में नारायण का १२. ३३८, ४ पर ९२ वाँ नाम है।

आहुतिमय = शिव : १२. २८४, १२६ (सहस्र नामों में से एक)।

इ

इक्षुमती, कुरुक्षेत्र में बहनेवाली एक नदी का नाम है जहाँ तक्षक और अश्वसेन नामक दो नाग रहा करते थे (१. ३, १४१ : कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु। जघन्यजस्तक्षकश्च श्रुतसेनेति यः सुतः ॥)।

इक्षुमालवी, एक नदी का नाम है (६. ९, १७)।

इक्षुला, एक नदी का नाम है (६. ९, १७)।

१. इक्ष्वाकु, मनु वैवस्वत के पुत्र अथवा प्रपौत्र, एक प्राचीन राजा का नाम है। 'ययातीक्ष्वाकुवंशश्च राजर्षीणां च सर्वशः। संभूता बहवो वंशा भूतसर्गाः सुविस्तराः ॥', (१. १, ४७)। 'मरुत्तं मनुमिक्ष्वाकुं गयं भरतमेव च', (१. १, २२७)। 'ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन्। वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ॥', (१. ७५, १५)। 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो राजासीत्पृथिवीपतिः। महाभिषः इति ख्यातः सत्यवाक्सत्यविक्रमः ॥', (१. ९६, १)। 'कल्माषपाद इत्येवं लोके राजा बभूव ह। इक्ष्वाकुवंशजः पार्थ तेजसाऽसदृशो भुवि ॥', (१. १७६, १)। अपत्यमीप्सितं मह्यं दातुमर्हसि सत्तम। शीलरूपगुणोपेतमिक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥', (१. १७७, ३४)। 'ऐलस्येक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते। राजनः श्रेणिबद्धाश्च तथाऽन्ये क्षत्रिया भुवि ॥', (२. १४, ४)। इक्ष्वाकुकुलजः श्रीमन्मित्रं चैव भविष्यति। भविष्यसि यदाऽक्षज्ञः श्रेयसा योक्ष्यसे तदा ॥', (३. ६६, २२)। 'यथा मनुर्यथेक्ष्वाकुर्यथा पूरुर्महायशाः। यथा वैन्यो महाराज तथा त्वमपि विश्रुतः ॥', (३. ८५, १२७) 'यथा चेक्ष्वाकुरभवत्सपुत्रजनबान्धवः', (३. ९४, २०)। 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो युवनाश्वो महीपतिः', (३. १२६, ५)। 'अयोध्यायामिक्ष्वाकुकुलोद्वहः पार्थिवः परिक्षिन्नाम मृगयामगात्', (३. १९२, ३)। 'इक्ष्वाकौ संस्थिते राजन् शशादः पृथिवीमिमाम्। प्राप्तः परमधर्मात्मा सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत् ॥', (३. २०२, १)। 'अजो नामाऽभवद्राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः', (३. २७४, ६)। 'पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः', (६. ९, ६)। 'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥', (६. २८, १, तु० की १२. ३४८, ५२)। 'मनुः प्रजानां रक्षार्थं क्षुपाद प्रददावसिम्। क्षुपाज्जग्राह चेक्ष्वाकुरिक्ष्वाकोश्च पुरूरवाः ॥', (१२. १६६, ७३)। 'इक्ष्वाकुवंशजस्तस्मा-

द्धरिणाश्वः प्रतापवान्', (१२. १६६, ७८)। 'कालमृत्युयमानां ते इक्ष्वाको-र्ब्राह्मणस्य च। विवादो व्याहृतः पूर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥', (१२. १९९, १)। 'इक्ष्वाकोः सूर्यपुत्रस्य यद्वृत्तं ब्राह्मणस्य च', (१२. १९९, २)। 'इक्ष्वाकुरगमत्तत्र समेता यत्र ते विभो', (१२. १९९, ३५)। 'त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्मनवे ददौ। मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ॥ इक्ष्वाकुना च कथितो व्याप्य लोकानवस्थित।', (१२. ३४८, ५१. ५२; देखिये १२. ३४८, २९. ३४ भी)। 'मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः। तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत।', (१३. २, ५. ६)। 'इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो वदतां वरः', (१२. ७८, १)। 'इक्ष्वाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च', (१३. ११५, ७४)। 'अजः प्राचीनबर्हिश्च तथेक्ष्वाकुर्महायशाः', (१३. १६५, ५८)। 'प्रसन्धेरभवत्पुत्रः क्षुप इत्यभिविश्रुतः। क्षुपस्य पुत्र इक्ष्वाकुर्महीपालोऽभवत्प्रभुः ॥', (१४. ४, ३)। 'तांस्तु सर्वान्महीपालानिक्ष्वाकुरकरोत्प्रभुः। तेषां ज्येष्ठस्तु विंशोऽभूत्प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥', (१४. ४, ४)।

२. इच्वाकु (बहु० **काः**)—इक्ष्वाकु के वंशजों और एक जाति के लोगों का नाम है। 'इक्ष्वाकवो महीपाला लेभिरे पृथिवीमिमाम', (१. १७४, १०)। 'इक्ष्वाकूणां च येनाहमनृगः स्यां द्विजोत्तम। तत्त्वतः प्राप्तमिच्छामि सर्ववेदविदांवर ॥', (१. १७७, ३३)। 'ऐलवंश्याश्च ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः। तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ ॥', (२. १४, ५)। 'अर्चयित्वा यथान्यायमिक्ष्वाकू राजसत्तमः', (३. ९८, १४)। 'इक्ष्वाकूणां विशेषेण बाहुवीर्ये न कत्थनम्', (३. ९९, ४८)। 'इक्ष्वाकूणां कुले जातः सगरो नाम पार्थिवः', (३. १०६, ७)। 'इक्ष्वाकवो यदि ब्रह्मन् दलो वा विधेया मे यदि चेमे विशोऽपि। नोत्स्रक्ष्येऽहं वामदेवस्य वाम्यौ नैवंविधाः कर्मशीला भवन्ति ॥', (३. १९२, ५८)। 'इक्ष्वाकवो हन्त चरामि वः प्रियम्', (३. १९२, ६५)। 'इक्ष्वाकवः पश्यत मां गृहीतं न वै शक्नोम्येष शरं विमोक्तुम्। न चास्य कर्तुं नाशमभ्युत्सहामि आयुष्मान् वै जीवतु वामदेवः ॥', (३. १९२, ६७)। 'इक्ष्वाकुराज्यं सुमहच्चाप्यनिन्द्ये', (३. १९२, ७०)। 'दृढाश्वः कपिलाश्वश्च चन्द्राश्वश्चैव भारत। तेभ्यः परम्परा राजन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥', (३. २०४, ४०)। 'इक्ष्वाकुराजः सुभवस्य पुत्रः स एव हन्ता द्विषतां सुगात्रि', (३. २६५, ९)। 'शिबीनिक्ष्वाकुमुख्यांश्च त्रिगर्तान् सैन्धवानपि। जघानातिरथः सङ्ख्ये बाणगोचरमागतान् ॥', (३. २७१, २८)।

३. इच्वाकु (इक्ष्वाकु का वंशज अथवा इक्ष्वाकुओं का राजा) = कुवलाश्व (३. २०१, ६. १०)।

४. इच्वाकु = बृहदश्व (३. २०१, ३२)।

५. इच्वाकु=हर्यश्व (५. ११५, १८)।

इच्वाकुकन्या (इक्ष्वाकुओं के राजा की पुत्री) = सुवर्णा (१. ९५, ३४)।

१. इच्वाकुनन्दन (इक्ष्वाकुओं के राजा का पुत्र)=लक्ष्मण, दशरथ के पुत्र (३. २९०, १० : सौमित्रिः)।

२. इच्वाकुनन्दन=राम, दशरथ के पुत्र (३. २८९, ८; २९१, ८)।

इच्वाकुवर=मित्रसह (कल्माषपाद) (१४. ५८, १)।

इच्छा=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

इज्य=विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

इडा (जल अथवा पृथिवी) : ३. ११४, २८।

१. इतिहास (प्राचीन कथा, प्राचीन विवरण, इतिहास)—'भारतस्येतिहासस्य', (१. १, १९)। 'इतिहासाः', (१. १, ५०)। 'इतिहासपुराणानाम्', (१. १, ६३)। इतिहासानाम्', (१. १, २६६)। 'इतिहासपुराणाभ्यां', (१. १, २६७)। 'इतिहासः', (१. २, ३६. ३९)। 'साङ्गान्सेतिहासान्', (१. ६०, ३)। 'इतिहासं', (१. ६०, २३; ६२, १९)। 'इतिहासपुराणज्ञः', (२. ५. २)। 'इतिहासं पुरातनं', (३. २८, १; २१७, ६; ४. ५१, १०; ५. ९, २, इत्यादि; ७. ५२, २०)। 'इतिहासयजुर्वेदौ', (८. ३४, ४५)। 'इतिहासपुराणार्थाः', (१२. ५०, ३६)। 'इतिहासाश्च', (१२. ५९, १४१)। वेदान् सेतिहासान्', (१२. ३२४, २५)। 'इतिहासकथनात्', (१२. ३४०, १४. ३४२, २०; १३. ५, २; ६, २, इत्यादि; १४. ६, १, इत्यादि)। तु० की० **१४. जय**।

२. इतिहास = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

इध्मवाह = दृढदस्यु : ३. ९९, २७; १२. २०८, २९ (दक्षिण के ऋषियों में से एक)।

इन्दु = सोम (चन्द्रमा), व० स्था०।

१. इन्द्र, देवों के अधिपति और वर्षा के देवता का नाम है जिन्हें विविध तथा विशेष रूप से 'शक्र' (देखिये व० स्था०) नाम से सम्बोधित किया गया है : अर्जुन के पिता शक्र (१. १, ११४)। 'शक्रात्साक्षाद्दिव्यमस्त्रं यथावत्', (१. १, १६३)। 'चन्द्रसूर्यौ', (१. १, १८७ ('नीलकण्ठी में शक्रसूर्यौ' पाठ है)) 'यदाश्रौषं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिं व्यंसितां माधवेन। घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे तदा नाशंसे विजयाय संजय', (१. १, १९९) 'कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरन्दरात्', (१. २, १६६)। 'इन्द्राग्नी यत्र धर्मश्चाप्यजिज्ञासच्छिबिं नृपम्', (१. २, १७३)। 'कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरन्दरात्', (१. २. २०१)। 'अकथयद्यत्रेन्द्रविजयं', (१. २, २२४)। 'इन्द्रविजयं', (१. २, २२५)। 'अनुदर्शितश्च धर्मेण देवराज्ञा च पाण्डवः', (१. २, ३७४)। 'पूजितः सर्वैः सेन्द्रैः', (१. २, ३७६)। १. ३, १३१. १६८. १६९ (१. ३, १४६ और बाद के श्लोकों द्वारा स्तुति करने पर इन्द्र ने तक्षक द्वारा अपहृत कर्ण-कुण्डलों को प्राप्त करने में उतङ्क की सहायता की)। 'देवैः सेन्द्रैः', (१. ५, ५)। जब देवों ने समुद्र-मन्थन आरम्भ किया तब इन्होंने मन्दराचल पर्वत को कच्छप की पीठ पर रक्खा (१. १८, १२)। 'वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वशः', (१. १८, २५)। समुद्र-मन्थन के समय जो ऐरावत नामक गज प्रगट हुआ उसे वज्रभृत् ने प्राप्त किया (१. १८, ४०)। 'ददौ च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलभिदथामरैः', (१. १९, ३१)। गरुड़ को इन्द्र के साथ समीकृत किया गया है (१. २३, १६)। १. २५, ७–१७ (इन मंत्रों के द्वारा कद्रू ने इन्द्र की स्तुति की)। 'हरिवाहन', (१. ३०, ३२. ३९, ४५। "प्राचीन समय में वालखिल्यों का अपमान करने के कारण इन्द्र को उन लोगों ने यह शाप दिया था कि द्वितीय इन्द्र का आविर्भाव होगा। फिर भी, कश्यप ने वालखिल्यों को शान्त किया और वे इस बात के लिये सहमत हो गये कि आगत इन्द्र (गरुड़) केवल पक्षियों के ही इन्द्र होंगे (१. ३१, १३. १४. १८. २२. ३३)।" अमृत का अपहरण करने पर इन्होंने गरुड़ पर अपने वज्र का प्रहार किया था (१. ३३, १८. १९)। पुरन्दर ने गरुड़ के साथ मित्रता करके अमृत को पुनः प्राप्त किया (१. ३४, १)। इन्होंने तक्षक की रक्षा की (१. ५३, १६)। 'शक्रस्य यशः शतसंख्य उक्तः', (१. ५५, २)। 'प्रभुत्वमिन्द्रत्वसमं', (१. ५५, १४)। 'इन्द्रस्य भवने राजंस्तक्षक', १. ५६. ५। १. ५६, ७। 'इन्द्रस्य भवने विप्रा यदि नागः स तक्षकः। तमिन्द्रेणैव सहितं पातयध्वं विभावसौ', (१. ५६, ११)। इन्होंने तक्षक को मुक्त कर दिया (१. ५६, १५)। 'इन्द्रहस्ताच्चयुतो नागः ख एव यदतिष्ठत', (१. ५८, २)। 'इन्द्रहस्ताद्विनस्तं', (१. ५८, ५)। "वसु ने इन्द्र से एक विमान और एक इन्द्रमाला प्राप्त की; साथ ही इन्होंने एक बाँस का स्तम्भ भी प्राप्त किया जिसे इन्होंने इन्द्र की स्तुति में खड़ा किया, और तभी से सभी राजा इन्द्र की स्तुति के लिये ऐसा ही स्तम्भ स्थापित करते हैं (१. ६३, २. ४. ६)।" उसी स्तम्भ के नीचे इन्द्र हंसरूप से प्रगट हुये (१. ६३, २१)। 'इन्द्रप्रीत्या चेदिपतिश्चकारेन्द्रमहं वसुः', (१. ६३, २९)। 'वसन्तमिन्द्रप्रासादे', (१. ६३, ३२) अर्जुन के पिता (१. ६३, ११६)। इन्द्र सहित देवताओं ने नारायण को अवतार ग्रहण करने के लिये सहमत कर लिया (१. ६४, ५४)। १. ६५, १। शक्र, आदित्यों में चतुर्थ हैं (१. ६५, १५)। 'द्वादशैवादितेः पुत्राः शक्रमुख्या नराधिपः (१. ६६, ३६)। अर्जुन के पिता (१. ६७, १११)। ब्राह्मण के वेश में इन्द्र ने

कर्ण से उसके कर्ण-कुण्डल और कवच की याचना की तथा उसके बदले कर्ण को शक्ति प्रदान की (१. ६७, १४४)। विश्वामित्र की तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने (१. ७१, २०) मेनका नामक अप्सरा को उन्हें मोहित करने के लिये भेजा (१. ७१, ७२)। 'इन्द्रादीन्वीर्यसम्पन्नान्', (१. ७५, ११)। 'कारयामास चेन्द्रत्वमभिभूय दिवौकसः', (१. ७५, २९)। 'सेन्द्राः देवाः', (१. ७६, ४७)। 'कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम्', (१. ७६, ५२)। १. ७६, ५८। जब ये असुरों को पराजित करने के लिये निकले तब इन्होंने अपने को वायु के रूप में परिणत करके कुछ स्नान कर रहीं स्त्रियों के वस्त्रों को इधर-उधर उड़ा दिया, जिससे देवयानी और शर्मिष्ठा के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ (१. ७८, २)। 'योगक्षेमकरस्ते-हमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः', (१. ८०, १०)। 'सोमस्येन्द्रस्य विष्णोर्वा यमस्य वरुणस्य च। तव वा नाहुषगृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति ॥', (१. ८२, १२)। 'ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः', (१. ८५, ५)। १. ८६; ८८, १. ३. ५। 'इन्द्रसमप्रभावः', (१. ८८, ११) 'शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैषः', (१. ९२, ८)। 'इन्द्रप्रतिमप्रभावः', (१. ९३, ९)। 'कौतुकेनेन्द्रकल्पम्', (१. ९३, २०) 'इन्द्रविक्रमः', (१. ९४, ११)। अर्जुन के पिता (१. ९५, ६१)। 'इन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षार्थी समुपागमत्', (१. १११, २७) 'देवाः सेन्द्रा देवर्षिभिः सह', (१. १२१, ८)। 'अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः। व्युषिताश्वस्य राजर्षेस्ततो यज्ञे महात्मनः', (१. १२१, ९)। 'इन्द्रो हि राजा देवानां प्रधान इति नः श्रुतम्', (१. १२३; २२)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर उपस्थित देवों सहित इन्द्र को अत्यन्त हर्ष हुआ (१. १२३, ४८)। आदित्यों में सप्तम (१. १२३, ६७)। 'प्राप्याधिपत्यमिन्द्रेण यज्ञैः', (१. १२४, ११)। अर्जुन के पिता (१. १२६, २५)। शरद्वत की तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने जानपदी नामक एक अप्सरा को उन्हें मोहित करने के लिये भेजा (१. १३०, ५)। 'सार्कः सेन्द्रायुधतडितससंध्य इव तोयदः', (१. १३५, ९)। 'ततः सविद्युत्स्तनितैः सेन्द्रायुधपुरोगमैः। आवृतं गगनं मेघैर्बलाकापंक्तिहासिभिः ॥', (१. १३६, २३)। 'हरिहयं दृष्ट्वा', (१. १३६, २४)। 'व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव', (१. १३८, ४६)। 'धर्मादिन्द्राच्च वाताच्च सुषुवे यासु तानिमान्', (१. १५१, २७)। 'विक्रमं ये यथेन्द्रस्य', (१. १५३, १०)। इन्द्र ने घटोत्कच का जन्म कराया जिससे कर्ण अपने दिव्यास्त्र का घटोत्कच के ही वध के लिये प्रयोग कर ले और अर्जुन उससे बचे रह जाँय (१. १५६, ४६)। अर्जुन के पिता (१. १७०, ६५)। 'पार्थं च शक्रप्रतिमं', (१. १८८, २७)। 'शिबिरिन्द्रः'. (१. १९७, २९)। 'शक्रात्मजं चेन्द्ररूपम्', (१. १९७, ४१)। शिव ने इन्हें मूर्च्छित करके पूर्वकाल के अन्य चार इन्द्रों के साथ एक गुफा में डाल दिया और यही पाँच इन्द्र पाँच पाण्डवों के रूप में अवतरित हुये (१. १९७, १२)। 'विक्रमेण च लोकांस्त्रीञ्जितवान्पाकशासनः', (१. २०२, १७)। 'इन्द्रकल्पैः', (१. २०७, ५१)। इन्द्र किस प्रकार सहस्रनेत्र हुये (१. २११, २७)। 'इन्द्रे त्रैलोक्यमाधाय ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः', (१. २१२, २५)। 'लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु', (१. २२१, ९)। खाण्डव-वन की रक्षा करते हुये इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने अग्नि की सहायता कर रहे अर्जुन तथा कृष्ण के साथ युद्ध किया (१. २२२–२२८ : १. २२३, ६; २२४, २०)। शिव को सन्तुष्ट कर लेने पर अर्जुन को इन्होंने दिव्यास्त्र प्रदान करने का वचन दिया (१. २३४, ९)। इन्द्र ने विन्दुसरस् में यज्ञ किया (२. ३, १३)। यम आदि के साथ इनकी दिव्य सभा का उल्लेख (२. ६, ११)। इन्द्रसभा का विस्तृत वर्णन (२. ७, २१)। ये ब्रह्माजी की सभा में पधारते हैं (२. ११, ५१)। राजसूय नामक महायज्ञ का अनुष्ठान करने वाले राजागण इन्द्र के साथ रहकर आनन्द भोगते हैं (२. १२, २०)। 'चतुर्थभाङ्महाराज भोजं इन्द्रसखो बली', (२. १४, २१)। वसु ने इन्द्र से एक रथ प्राप्त किया (२. २४, २८)। इन्द्रसखा भीष्मक (२. ३१, ६३)। इन्द आदि सम्पूर्ण देवता हरि की उपासना करते हैं (२. ३६, १८)। 'इन्द्रायुधनिभान्', (२. ५१, २२)। 'अद्रोहसमयं कृत्वा चिच्छेद नमुचेः शिरः। शक्रः साभिमता तस्य रिपौ वृत्तिः सनातनी ॥', (२ ५५, १३)। इन्द्रकल्पाः', (२. ६७, ३६)। 'धर्मसुतो महात्मा स्वयं चेदं कथयत्विन्द्रकल्पः', (२. ७०, ५)। ३. ९, ५। 'सुरभ्याश्चैव संवादमिन्द्रस्य च', (३. ९, ६)। ३. ९, ७. ८। इन्द्र का सुरभि के साथ वार्तालाप (३. ९, १७)। कृष्ण ने शचीपति इन्द्र को सर्वेश्वरत्व प्रदान किया (३. १२ २०)। 'विष्णुरिति विख्यात इन्द्रादवरजः', (३. १२, २५)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शं', (३. १२, १०६)। 'यथेन्द्रभवनं', (३. १५, १८)। 'देवाः सर्वे सेन्द्राः', (३. १९, २१)। 'ततोहमिन्द्रदयितं सर्वपाषाणभेदनम्। वज्रमुद्यम्य तान्सर्वान्पर्वतान्समशातयम् ॥', (३. २२, १७)। 'इन्द्रप्रतिमाः', (३. २५, १)। 'देवा इवेन्द्रमुपजीवन्ति चैनम्', (३. ३४, २१)। इन्द्र आदि से अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करेंगे (३. ३६, ३४)। "यतः वृत्रासुर के भय से सम्पूर्ण देवताओं ने अपनी शक्ति इन्द्र को समर्पित कर दी थी; अतः अर्जुन को उनसे ही दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये कहा गया। स्वर्गलोक के मार्ग में अर्जुन इन्द्र से मिले किन्तु इन्द्र ने उन्हें पहले शिव को सन्तुष्ट करने के लिये कहा (३. ३७, १४. ४९. ५७)।" जब अर्जुन ने शिव को संतुष्ट कर लिया तब इन्द्राणी के साथ इन्द्र ऐरावत पर बैठकर वहाँ आये (३. ४१, १३)। "इन्द्र द्वारा भेजे गये रथ में बैठकर अर्जुन स्वर्गलोक को गये, जहाँ उन्होंने इन्द्र के महल में प्रवेश करके इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त किये; लोमश ने अर्जुन को इन्द्र के साथ बैठे हुये देखा (३. ४२–४७ : ३. ४२, ११; ४३, १२; ४७, ४)।" नारद ने इन्द्र को दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार दिया जिसे सुनकर लोकपालों सहित इन्द्र वहाँ गये (३. ५४)। इन्द्रादि देवों ने दूत के रूप में नल को दमयन्ती के पास भेजा (३. ५५, ४)। 'देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः', (३. ५६, २०)। इन्द्र ने नल को एक वरदान दिया (३. ५७, ३६)। ३. ५८, ४। 'इन्द्रसमवीर्येण', (३. ८०, ३)। अर्जुन को इन्द्र से अस्त्र प्राप्त करने के लिये भेजा गया (३. ८६, ७)। 'एतस्मिन्नेव चार्थेऽसौ इन्द्रगीता युधिष्ठिर। गाथा चरति लोकेऽस्मिन्गीयमाना द्विजातिभिः ॥', (३. ९०, ६)। इन्द्र ने देवों सहित विशाखयूप में तप किया (३. ९०, १५)। अर्जुन ने इनसे अस्त्र प्राप्त किये (३. ९१, १३)। 'इन्द्रस्य वचनात्', (३. ९२, ८)। 'इन्द्र तुल्यम्', (३. ९६, ५)। देवों के तेज से युक्त होकर इन्द्र ने त्वष्टा द्वारा दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र से वृत्रासुर का वध किया (३. १००–१०३ : ३. १०१, १६)। 'ददर्श पुत्रं दिवि देवं यथेन्द्रम्', (३. ११३, १९)। अर्जुन कार्तवीर्य ने इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारा जिससे भयभीत होकर इन्द्र ने विष्णु के साथ कार्तवीर्य के विनाश के सम्बन्ध में परामर्श किया (३. ११५, १७)। युधिष्ठिर ने इन्द्रायतन का दर्शन किया (३. ११८, ११)। 'देवगणा यथेन्द्रम्', (३. ११८, २१)। 'अस्त्रार्थमिन्द्रस्य गतं च पार्थं निवेशनं हृष्टमनाः शशंस', (३. ११८, २२)। देवों सहित इन्द्र ने यज्ञ किये (३. १२१, २)। अश्विभ्यां सह कौशिकः (३. १२१, २१)। "शर्याति के यज्ञ में च्यवन ऋषि ने इन्द्र पर कुपित होकर उनके वज्र को स्तम्भित कर दिया और उनको मारने के लिये मदासुर को उत्पन्न किया। मदासुर इन्द्र का भक्षण करने के लिये उनकी ओर दौड़ा, जिससे भयभीत होकर इन्द्र ने अश्विनीकुमारों को भी यज्ञभाग प्राप्त करने में सम्मिलित कर लिया (३. १२४, ८. ९. १२. १६)। 'एतत्प्रस्रवणं पुण्यमिन्द्रस्य', (१. १२५, २३)। मान्धातृ ने इन्द्र की तर्जनी को चूसने के पश्चात् इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त कर लिया (३. १२६, ३१. ३८)। 'ययातिर्बहुरत्नौघैर्यत्रेन्द्रो मुदमभ्यगात्', (३. १२९, १२)। बाज़ के रूप में इन्द्र और कपोत के रूप में अग्नि ने उशीनर की परीक्षा ली (३. १३०, २३; १३१, २९)। 'इन्द्रोऽपि नित्यं नमते ब्राह्मणानाम्', (३. १३३, २)। 'द्वाविन्द्राग्नी चरतो वै सखायौ', (३. १३४, ९)। यवक्रीत की तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने एक ब्राह्मण का रूप धारण करके उन्हें तपस्या से विरत कर दिया (३. १३५, १७. १८. २२. ३०. ३६. ३८. ४१)। 'देवाः सेन्द्रपुरोगमाः', (३. १३८, २७)। 'इन्द्रस्य जाम्बूनदपर्वताग्रे शृणोमि घोषं

तव देवि गंगे', (३. १३९, १६)। इन्द्र के लिये विष्णु ने इन्द्रपद की अभिलाषा रखने वाले नरकासुर का वध किया (३. १४२, १७. १८)। 'लाङ्गूलमिन्द्राशनिसमस्वनम्', (३. १४६, ७०)। 'इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्', (३. १४७, २०)। 'सेन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विसृष्टा वातरंहसा', (३. १६०, ७५)। 'देशकालान्तरप्रेप्सुः कृत्वा शक्रः पराक्रमम्। संप्राप्तस्त्रिदिवे राज्यं वृत्रहा वसुभिः सह ॥', (३. १६२, ५)। इन्द्र और कुबेर मन्दराचल पर्वत पर निवास करते हैं (३. १६३, ५)। इन्द्र के प्रासाद में अर्जुन ने दिव्यास्त्र प्राप्त किये (३. १६४, १६)। अर्जुन इन्द्र के रथ में बैठकर स्वर्गलोक से लौटे; दूसरे ही दिन इन्द्र भी पाण्डवों के पास आये (३. १६५, ७. १३)। इन्द्र की आज्ञा से अर्जुन ने निवातकवचों का तथा हिरण्यपुर निवासियों का विनाश किया (३. १६७; १६८, ९. २५. २८; १६९, २४; १७०, २८; १७१, ७)। इन्द्र ने अर्जुन को एक सुवर्णहार, देवदत्त नामक शङ्ख, और एक अभेद्य कवच प्रदान किया (३. १७४, ५. ७. ९)। 'वनेषु तेष्वेव तु ते नरेन्द्राः सहार्जुनेनेन्द्रसमेन वीराः', (३. १७६, २)। 'अयमेव विधाता हि यथैवेन्द्रः प्रजापतिः', (३. १८५, १६)। 'अग्निमुखा देवाः सेन्द्राः सह मरुद्गणाः', (३. १८६, ३०)। 'त्रयाणामपि लोकानामिन्द्रो लोकाधिपोऽभवत्', (३. १९३, ६)। इन्द्र ने एक बाज़ के रूप में और अग्नि ने एक कपोत के रूप में राजा शिवि की परीक्षा ली (३. १९७, १. २. १४)। सोम, अग्नि, और वरुण के साथ, इन्द्र ने विष्णु की पूजा की (३. २०१, १८)। 'इन्द्रोऽप्येषां प्रणमते', (३. २०६, २२)। 'शिवं नाभ्यां बलादिन्द्रं वाय्वग्नी प्राणतोऽसृजत्', (३. २२०, ७)। 'इन्द्रेण सहितं यस्य हविराग्रयणं स्मृतम्', (३. २२१, १३)। केशिन् से देवसेना को मुक्त करके उसे ब्रह्मा के पास ले गये और ब्रह्मा ने स्कन्द को देवसेना का पति बनाया (३. २२३; २२४, ५. ७. १०)। स्कन्द का सामना करने का इन्द्र ने साहस नहीं किया (३. २२६, १७)। स्कन्द को देखकर इन्द्र भयभीत हुये और करबद्ध उनकी शरण में गये (३. २२७, १८)। "स्कन्द के पूछने पर ऋषियों ने बताया कि सन्तुष्ट होने पर इन्द्र समस्त प्राणियों को बल, तेज, सन्तान और सुख की प्राप्ति कराते हैं; सूर्य के अभाव में वे स्वयं ही सूर्य होते हैं, और चन्द्रमा के न रहने पर स्वयं ही चन्द्रमा बनकर उनके कार्य का सम्पादन करते हैं; आवश्यकता पड़ने पर वे ही अग्नि, वायु, पृथिवी, और जल का स्वरूप धारण कर लेते हैं। शक्र के नेतृत्व में देवताओं ने स्कन्द से देवों का इन्द्र बनने के लिये कहा, किन्तु स्कन्द ने केवल देव-सेनापति बनना ही स्वीकार किया और देवसेना के साथ विवाह किया (३. २२९, ७-९. १२-१४. १६. १९. २०)।" 'एवं सेन्द्रं जगत् सर्वं श्वेतपर्वतसंस्थितम्', (३. २३१, २७)। 'विद्युता सहितः सूर्यः सेन्द्रचापे घने यथा', (३. २३१, ३२)। जब देव-दानव युद्ध में स्कन्द ने महिषासुर का वध कर दिया, तब इन्द्र ने उनकी प्रशंसा की (३. २३१, ८६. १०४)। स्कन्द को इन्द्र के साथ समीकृत किया गया है (३.२३२,१६)। 'धर्मानिलेन्द्रप्रभवान् यमौ च', (३.२३६,५)। इन्द्र की आज्ञा से गन्धर्वों ने धार्तराष्ट्रों को बन्दी बनाया (३.२४४,१५)। 'उवाच सुरेश्वरः', (३. २४६, ५)। 'इन्द्रः सहितो देवैः', (३. २६०, ७)। 'विजह्रुरिन्द्रप्रतिमाः कञ्चित्कालमरिन्दम', (३.२६४, ३)। 'सन्नह्यध्वं सर्व इवेन्द्रकल्पा', (३.२६९,१८)। 'पार्थाः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः', (३.२७०, २१)। इन्द्र तथा अन्य देवों ने पृथिवी पर अवतार लेकर बानरों और रीछों को जन्म दिया (३.२७६,६)। 'तयोर्युद्धमभूद्घोरं हरिराक्षसवीरयोः। जिगीषतोर्युधाऽन्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव', (३. २८६, १२)। 'जित्वा वज्रधरं सङ्ख्ये सहस्राक्षं शचीपतिम्', (३. २८८, ३)। 'असकृद्धि त्वया सेन्द्रास्त्रासितास्त्रिदशा युधि', (३.२८९,३१)। 'शूलमिन्द्राशनिप्रख्यं', (३.२९०,२१)। 'शक्रश्चाग्निश्च', (३. २९१, १८)। 'अस्मिन्मार्गे निषीदेयुः सेन्द्राऽपि ससुरासुराः', (३. २९२,३)। जब सूर्य को यह निश्चित रूप से पता चल गया कि इन्द्र कर्ण से उसका कवच और कुण्डल माँगना चाहते हैं तब उन्होंने कर्ण को इन्द्र से एक दिव्यास्त्र माँगने का परामर्श दिया (३. ३०१, १८)। इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में जाकर कर्ण से उसका कवच और कुण्डल माँगने के पश्चात् उसे एक दिव्यास्त्र दिया (३. ३०९, २५; ३१०, ३१)। इन्द्र ने निषध पर्वत पर जाकर उस समय तक गुप्त रूप से निवास किया जब तक कि उन्होंने अपने समस्त शत्रुओं का विनाश नहीं कर लिया (३. ३१५, १३)। ७) 'इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत', (५. १३४, २४)। 'जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम्', (५. १३५, १४)। 'इन्द्रायुधसवर्णश्च', (५. १४१, २६)। 'इन्द्रकेतुप्रकाशाः', (५.१४२, ४)। 'इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे', (५. १५१, ४१)। 'देवान् सेन्द्रानपि समागमे', (५.१५३, ५)। 'साक्षादिन्द्रसखस्य वै', (५.१५८, १)। 'पराक्रमं यथेन्द्रस्य', (९. १६६, २)। 'देवाः सेन्द्रगणास्तथा', (५. १७८, ८३)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शा', (५. १८४, ५)। इनका बिन्दुसरस् में यज्ञ करने का उल्लेख (६. ६, १९)। 'तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः', (६. ६, ४५)। 'अत्रते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्। प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥', (६. ९, ५)। 'इन्द्रसमकर्माणं', (६. १४, ४८)। देव, पितर, गन्धर्व आदि इन्द्र के साथ युद्ध देखने के लिये युद्धभूमि में आये (६. ४३, १०)। 'व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः। यं बृहस्पतिरिन्द्राय तथा देवासुरेऽब्रवीत् ॥', (६.५०, ४०)। 'इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलङ्कृतः', (६ ५०, ४४)। 'यथेन्द्रस्य महाराज महत्या देवसेनया', (६. ५४, ११)। 'व्यचरत्समरे मृद्नन् गजानिन्द्रो गिरीनिव', (६. ६२, ४९)। 'यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम्। अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥', ६. ६२, ६१; ६३, १९। 'इन्द्राशनिसमस्वनम्', (६. ६४, ६२)। 'सेन्द्रैः सुरैः सर्वैः', (६. ६६, १८)। 'इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः', (६. ७४, ९)। 'यथेन्द्रस्य रणपूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः', (६. ८३, ४०)। 'अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशांपते। यथा दैत्यचमूं राजान्निन्द्रोपेन्द्राविवामरौ ॥', (६. ८३, ५७)। चापमिन्द्राशनिसमप्रभम्', (६. ९१, २३)। 'बाणमिन्द्राशनिसमप्रभम्', (६. ९२, १६)। चापमिन्द्राशनिसमस्वनम्', (६. ९४, २)। 'धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम्', (६. ९४, ३३)। 'राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा', (६. ९५, १८)। 'चापमिन्द्राशनिसमप्रभम्', (६. ९५, ७०)। 'रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान्', (६. ९७, ३७)। 'सेन्द्रानपि रणे देवान् जयेयं जयतां वर', (६. १०७, ४३)। 'सेन्द्रैरपि 'सुरासुरैः', (६.१०७, ७५.७६)। 'इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम्', (६. ११९, ९१)। 'संपूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः', (७. २, ३५)। 'जहीन्द्रो दानवानिव', (७.६, ८)। 'सेन्द्रैर्देवासुरैरपि', (७. १२, २१)। अर्जुन ने इन्द्र इत्यादि से अस्त्र प्राप्त किये (७. १२, २३)। 'सेन्द्रैरपि सुरासुरैः', (७. १२, २८)। 'इन्द्रध्वजाविव', (७. १५, २९)। 'सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव', (७. २१, ४) 'दानवा इवेन्द्रेण वध्यमानाः', (७. २१, ६५)। 'इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तीभोजो हयोत्तमैः', (७; २३, ४६)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः', (७. २३, ५६)। 'सेन्द्रा इव दिवौकसः', (७. २३, .८०)। 'सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम्', (७. २५, २०)। 'पाड्यमिन्द्रामिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम्', (७. २५, ५७)। 'इन्द्राद्नवरः संख्ये', (७. २७, ४)। इन्द्र इव प्रभुः', (७. २८, २४)। 'लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु', (७. २९, ३६)। निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे', (७. २९, ५१)। 'प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायम्', (७. ३०, १)। 'भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव', (६. ३०, ९)। 'इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ', (७. ४९, १२)। 'इन्द्रविष्णुसमद्युतिः', (७. ५२, ३४)। इन्द्र सहित देवगण मरुत्त का यज्ञ देखने के लिये आये (७. ५५, ३९)। 'शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः', (७.५५, ४७)। 'तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः', (७. ६०, ९)। 'सेन्द्रा देवाः समागमम्', (७. ६१, ३)। मान्धातृ ने इन्द्र की अँगुलियों से प्रगट हुये अमृतमय दुग्ध का पान किया (७. ६२, ६. ८)। 'सार्द्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः', (७. ६८, १३)। 'मरुतश्च सहेन्द्रेण', (७. ७६, ४)। 'वरुणादिन्द्राद्रुद्राच्च', (७. ७६, १३)। 'इन्द्राविष्णू

यथा प्रीतौ जंभस्य वधकांक्षिणौ', (७. ८१, २५)। 'देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे', (७. ८३, २७)। 'शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ', (७. ८४, १८)। 'आकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः', (७. ८७, ७)। 'चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा', (७. ९३, ६९)। 'इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः', (७. ९३, ७०)। 'हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः', (७. ९४, ५०)। 'रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्रा द्विजातयः', (७. ९४, ५३)। शिव ने इन्द्र को मन्त्रों से अभिषिक्त एक कवच दिया जिससे रक्षित होकर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया और उसके बाद इस कवच और मन्त्रों को अङ्गिरस् को दे दिया (७. ९४, ६२)। 'नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य', (७. ९९, ११)। इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताकाः (७. १०५, ७)। 'धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम्', (७. १०६, ४१)। 'धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम्', (७. १०९, १३)। बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान्', (७. ११७, ५)। 'वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः', (७. ११८, ७)। 'नप्ता शिनेन्द्रसमानवीर्यः', (७. ११८, १३)। 'विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे', (७. १२०, १७)। 'ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः', (७. १२७, १)। 'कण्ठत्राणेन च बभौ 'सेन्द्रायुध इवांबुदः', (७. १२७, १९)। 'इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा', (७. १२८, ५)। 'गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान्', (७. १३४, १२)। 'वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वांबुदो महान्', (७, १४६, २२)। 'इन्द्राशनिसमप्रख्यं', (७, १४६, १०१)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शं', (७, १४६, १२०)। 'सुरैरिवासुरवधे शक्रं शक्रानुजाहवे', (७. १४९, १२)। 'सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः', (७. १४९, १५)। 'इन्द्रविक्रमैः', (७. १५६, २३)। 'रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः', (७. १५६, ८२)। 'नीलः सेन्द्रायुधो दिवि', (७. १५६, १०८)। 'पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः', (७, १५६,११३)। 'पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः' (७. १५६, ११६)। 'धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम्', (७. १५६, १६१)। 'सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः', (७. १५८, ३८)। 'सेन्द्रा अपि सुरासुराः', (७, १५९, ७) 'इन्द्रो दैत्यवधे यथा', (७. १६०, १)। 'यथेन्द्र हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम्', (७. १६२, ४)। 'यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवाः', (७. १६८, २९)। 'यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं', (७. १७०, ६१)। 'महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव', (७. १७४, २९) इन्द्रशम्बरयोरिव', (७. १७५, २५)। 'रुद्रोपेन्द्रविक्रमः', (७. १७५, ४९)। 'सेन्द्रायुधो दिवि', (७. १७५, ७५)। 'इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्', (७. १७५, ८५)। 'सेन्द्राः देवाः घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे', (७, १७९, ४१)। कर्ण ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त दिव्यास्त्र का घटोत्कच के विरुद्ध प्रयोग किया (७. १७९, ५३)। 'तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो', (७. १८५, २५)। 'सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् ग्रसेत्', (७. १९६, २३)। 'सेन्द्रान्येवान्समागतान्', (७, १९७, २०)। 'सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ', (७. २००, ८३)। इन्द्र असुरों की तीन पुरियों को विनष्ट करने में असफल रहे, अतः शिव को उन्हें विनष्ट करना पड़ा; शिव ने इन्द्र को मूर्च्छित किया (७. २०२, ६४-८४)। इन्द्र को शिव के साथ समीकृत किया गया है (७. २०२, १०२)। 'सेन्द्रादिषु च देवेषु', (७.२०१,२१३)। 'ब्रह्माणमिन्द्रं', (७. २०२, १३७)। 'पराजयमिवेन्द्रस्य', (८. ८, ४)। 'कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्', (८.९, ४२)। 'वायुरिन्द्रमिवाध्वरे', (८. १६, २६)। 'स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ', (७. १७, १९)। विश्वकर्मा ने इन्द्र के लिये 'विजय' नामक धनुष का निर्माण किया; बाद में इस धनुष को इन्द्र ने रामजामदग्न्य को दिया (८. ३१, ४२)। 'शक्रो मरुद्वृतः', (८. ३३, ३६)। 'विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं', (८. ३४, ३५)। 'इन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे', (८, ३६, १४)। 'पाण्डवमिन्द्रकल्पम्', (८. ४२, २७)। 'ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान्', (८, ४६, ३९)। 'असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः', (८. ४६, ८६)। 'भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान्', (८. ५१, ४८)। 'यथेन्द्रः समरे दैत्यान्', (८. ५३, २६)। 'इन्द्रजालावततं समीक्ष्य पार्थः', (८. ६४, २४)। 'जालमथेन्द्रमुक्तं पार्थः', (८. ६४, २५)। वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः', (८. ६६, ४८)। 'इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ', (८. ८७, १९)। 'तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रावृत्राविव', (८. ८७, ३५)। कर्ण और अर्जुन के युद्ध में अर्जुन का पक्ष लिया (८. ८७, ४७)। इन्द्र ने ब्रह्मा और ईशान से अर्जुन के विजयी बनाने की कामना की जिसे इन लोगों ने स्वीकार किया (८, ८७, ८६)। इन्द्र ने अर्जुन को जो किरीट दिया था उसे कर्ण ने एक ही बाण से भग्न कर दिया (८. ९०, ३२)। 'परः शतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रोबलमोजसा रणे', (८. ९०, ६१)। 'इन्द्राशनिसमान् घोरान्', (८. ९०, ८९)। 'इन्द्रकार्मुकतुल्याभ-'इन्द्रादनवरः', (४.२, १९)। 'इन्द्रसमाः', (४.२०, १९)। 'पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम्', (४.२३, ३)। 'सुता विराटस्य यथेन्द्रलक्ष्मीः', (४.३७,४)। 'इन्द्रेण वा समम्', (४.४५,१०)। 'इन्द्राशनि समस्पर्शं महेन्द्रसम तेजसम् ।अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥', (४.४८, १२) 'इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति', (४.४९, १२)। 'शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम्', (४.५६,३)। 'इन्द्रस्यवचनात्' (४.६१,२५)। 'इन्द्रदृढां मुष्टिं', (४.६१, २६)। 'गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवानतम्', (४.६३, १०)। 'इन्द्रस्यार्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति', (४.७०, ९)। 'तत्रातिष्ठान्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन्। स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥', (४.७२,३४)। 'इन्द्रेण श्रूयते राजन् सभार्येण महात्मना', (५.८, ५४)। इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप त्रिशिरस् का वध कर दिया जिससे कुपित होकर त्वष्टा ने वृत्रासुर को उत्पन्न किया। वृत्रासुर ने इन्द्र पर आक्रमण किया (५.९,१-३.७.१७.३१.३३.४८)। इन्द्र ने समुद्रीफेन के प्रहार द्वारा वृत्रासुर का वध कर डाला और उसके वध को ब्रह्महत्या के समकक्ष समझ कर स्वयं जल में छिप गये (५.१०, ३९-४७)। देवताओं तथा ऋषियों के अनुरोध से नहुष इन्द्रपद पर अभिषिक्त हुये, और इन्द्र-पत्नी शची पर आसक्त हुये (५.११,१८.२४)। इन्द्र ने अहल्या का उसके पति गौतम के जीवित रहते हुये ही सतीत्व नष्ट किया था (५.१२,५-६)। ५.१२,७.१३। 'सेन्द्राः देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम्', (५.१२,२१)। इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से विमुक्त हुये (५.१३)। शची द्वारा इन्द्र-प्राप्ति (५.१४,१३)। ५.१५,११;१६,२२। अग्नि ने इन्द्र से यज्ञभाग प्राप्त करने का अधिकार पाया तथा इन्द्र ने लोकपालों से वार्तालाप किया; ऋषियों के शाप से नहुष स्वर्ग से नीचे गिर पड़े (५.१७,४)। इन्द्र पुनः देवों के अधिपति हुये (५.१८,९.१०.१९)। 'गाण्डीवधन्वा प्रजिगाय सेन्द्रान्', (५.२२,१३)। 'पाण्ड्यश्च राजा समितीन्द्रकल्पौ', (५.२२,२३)। कुरून् सञ्जय निर्दहेतामिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव', (५.२२,३२)। 'पाण्डोः सुताः सर्वं एवेन्द्रकल्पाः', (५.२४,८)। 'ससात्यकीन् विषहेत प्रजेतुं लब्ध्वाऽपि देवान् सचिवान् सहेन्द्रान्', (५,२५,१०)। ५.२६,२६;२९,३०। 'पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः', (५.३३,१२२)। 'इन्द्राय स प्रणमते', (५.३४,३७)। 'भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प', (५.३७,४३)। 'युधिष्ठिरेणेन्द्रकल्पेन', (५.४८,९)। 'इन्द्रो वा ते हरिवान् वज्रहस्तः', (५.४८,६८)। 'देवानपीन्द्रप्रमुखान्', (५.४८,१०८)। इन्द्र ने नर और नारायण की पूजा की; संतुष्ट होकर नर और नारायण ने दैत्य और दानवों के संहार में उनकी सहायता की; नर अर्थात् अर्जुन ने पौलोम और कालखञ्ज नामक दानवों का संहार किया (५.४९,१४)। खाण्डवदाह के समय अर्जुन ने इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं को विजित किया था (५.४९, १७)। 'सेन्द्रैरपि सुरासुरैः', (५.४९,२०)। यथेन्द्रस्य जयः', (५.५२,१२)। 'सेन्द्रानिमाँल्लोकानिच्छन् (५.५३,३)। वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम्', (५.५६,१६)। 'येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत् पृथिवीमिमाम्', (५.५७,३४)। 'इन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः', (५.५७,३८)। इन्द्रविष्णुसमावेतौ', (५. ५९, ११)। 'इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः', (५. ५९, १५)। ५. ६१, ६। 'सेन्द्रान् गर्हयते देवान्', (५. ७२, ३०)। 'इन्द्रज्येष्ठा इव', (५. ७४, ९)। 'इन्द्रेणापि सहामरैः', (५. ९२, २०; ९५, १८)। 'नैते शक्रेण', (५. १००, ४)। निवातकवच आदि दानवों को शक्र पराजित नहीं कर सके (५. १००, ७)। मातलि सुमुख को इन्द्र के पास ले गये और इन्द्र ने उसे दीर्घायु प्रदान किया (५. १०४, १९)। इन्द्र द्वारा सुमुख नाग को दीर्घायु प्रदान करने के वृत्तान्त को जान कर

गरुड़ इन्द्र पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, किन्तु विष्णु ने गरुड़ के गर्व का भञ्जन कर दिया (५. १०५, २)। इन्होंने दिति के गर्भ का उच्छेद किया, जिससे मरुद्गणों की उत्पत्ति हुई (५. ११०, ८)। 'प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा'. (५. १३०, ५)। स्वर्ग से परिजातहरण करते समय श्रीकृष्ण ने शचीपति इन्द्र को जीता। (५. १३०, ४९)। श्रीकृष्ण के विराटरूप के समय इन्द्र सहित मरुद्गण भी उनके अङ्गों में विराजमान थे (५. १३१, मिन्द्रकेतुमिवोच्छ्रितम्', (९. ४, १६)। 'इन्द्रसद्मसुऽधिष्ठिताः', (९. ५, ४२)। 'इन्द्रध्वजाविव', (९. १२, २४)। 'इन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः', (९. १७, ५३)। 'चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम्', (९. १७, ५८) । 'वृत्रवधे यथेन्द्रम्', (९. १७, ९१)। 'नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम्', (९. २०, १२)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शां', (९. २४, ५७)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान्', (९. २५, २)। 'इन्द्राशनिसमस्पर्शैः', (९. २७, ५३)। 'इन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः', (९. ३१, ८)। 'इन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते', (९. ३१. १४)। 'इन्द्रोऽपि तवाश्रयः' (९. ३२, ३४)। 'ब्राह्मणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ', (३. ३४, १८)। "पूर्वकाल की बात है, इन्द्र से भयभीत होकर नमुचि सूर्य की किरणों में समा गया। तब इन्द्र ने उसके साथ मित्रता करके यह प्रतिज्ञा की : 'असुर श्रेष्ठ ! मैं न तो तुम्हें गीले आयुध से मारूँगा न सूखे; न दिन में मारूँगा न रात में। मैं सत्य की सौगन्ध खाकर तुमसे यह प्रतिज्ञा करता हूँ।' इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भी देवराज इन्द्र ने चारों ओर कुहरा छाया देखकर पानी के फेन से नमुचि का सिर काट दिया। तब वह नमुचि का कटा हुआ सिर इन्द्र के पीछे लग गया और बार-बार यह कहने लगा, 'ओ मित्रघाती पापात्मा इन्द्र ! तू कहाँ जाता है ?' उस मस्तक के द्वारा बार-बार इन बातों के पूछने के कारण संतप्त इन्द्र ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने इन्द्र को विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणा के जल में स्नान करने का परामर्श दिया। इस प्रकार इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर स्वर्ग लौट आये। नमुचि का वह कटा हुआ मस्तक भी उसी पवित्र जल में गिर पड़ा और मनोवाञ्छित फल देनेवाले अक्षयलोक में चला गया (९. ४३, ३४–४५)।" इन्द्र भी नवजात स्कन्द को देखने के लिये पधारे (९. ४४, ३१)। इन्द्र और विष्णु स्कन्द के अभिषेक के समय उपस्थित हुये (९. ४५, ४) इन्द्र ने स्कन्द को दो पार्षद दिये (९. ४५, ३६)। इन्द्र (पाकशासन) ने स्कन्द को एक ध्वज और दिव्य बाण दिया (९. ४६, ४४)। बदरपाचन तीर्थ में श्रुतावती ने पाँच बेरों को पकाने के लिये जब समस्त ईंधन के समाप्त हो जाने पर अपने दोनों पैरों को भी जला दिया तब इन्द्र उससे अत्यन्त प्रसन्न हुये और उसे पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया (९. ४८)। इन्द्रतीर्थ में इन्द्र ने सौ यज्ञ किये थे, जिसके कारण ही इनका शतक्रतु नाम पड़ा (९. ४९, ४)। दधीच की तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने अलंबुषा नामक अप्सरा को दधीच को मोहित करने के लिये भेजा; दधीच ने अलंबुषा से सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न किया, और अपनी अस्थियों को इन्द्र को दान कर दिया जिससे इन्द्र का वज्र बना (९. ५१)। इन्द्र ने कुरुक्षेत्र को पवित्र किया (९. ५३, ५)। 'इन्द्रोऽग्निरर्यमा', (९. ५४, १५)। 'यथाऽन्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव', (९. ५७, ३)। 'इन्द्राशनिमिवोद्यताम्', (९. ५७, १२)। 'इन्द्राशनिसमां घोरां', (९. ५७, २८)। 'इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं', (९. ६१, ८)। 'इन्द्रकेतुनिभां गदाम्', (१०. ६, १६)। 'इन्द्रोपमान् पार्थिवपुत्रपौत्रान्', (१०. १०, २३)। 'इन्द्रमपि शातयेत', (१०. १७, ७)। 'इन्द्रस्यातिथयः', (११. २, १५)। सुवर्णपक्षी के रूप में इन्द्र ने ऋषियों के साथ वार्तालाप किया (१२. ११, ३)। इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत', (१२. १५, १५)। १२. १५, १६। 'इन्द्रत्वं प्राप्य विभ्राजते', (१२. २०, ११)। 'इन्द्रेण समये पृष्टः', (१२. २१, १)। 'इन्द्रो वै ब्राह्मणः पुत्रः', (१२. २२, ११)। इन्द्रत्वं समापेदे देवानाम्', (१२. २२, १२)। 'यथैवेन्द्रो', (१२. २२, १३)। १२. २९, १९। 'अमाद्यदिन्द्रः सोमेन', (१२. २९, ३६)। 'इन्द्रविक्रमात्', (१२. २९, ४३)। 'इन्द्रो वितते यज्ञे', (१२. २९, ६३)। 'मामेव धास्यतीत्येवमिन्द्रोऽथाभ्युपपद्यत। मांधातेति ततस्तस्य नाम चक्रे शतक्रतुः ॥', (१२. २९, ८४)। 'पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्', (१२. २९, ८५)। 'तं पिबन्पाणिमिन्द्रस्य शतमह्ना व्यवर्धत', (१२. २९, ८६)। 'शूरमिन्द्रसमं युधि', (१२. २९, ८७)। 'शक्राद्वरं लेभे', (१२. २९, १२०)। 'उवाचेन्द्रपेक्षया', (१२. ३१, १९)। यथेन्द्रो विजयी पुरा', (१२. ३३, ४६)। 'देवान्सर्वानिन्द्रपुरोगमान्', (१२. ३७, ८)। 'यथेन्द्रस्त्रिदिवं', (१२. ३८, ११)। 'अतिवाय्विन्द्रकर्माणम्', (१२. ४७, ३१)। 'गाधिर्नामाऽभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः', (१२. ४९, ६)। सहस्राक्षो महेन्द्रश्च', (१२. ५८, २)। इन्द्र (पुरन्दर) ने वैशालाक्ष नामक शास्त्र को संक्षिप्त करके बाहुदन्तक नाम दिया (१२. ५९, ८३)। 'पुरुषः उत्पन्नो रूपेणेन्द्र इवापरः', (१२. ५९, ९८)। पृथुवैन्य को धन प्रदान किया (१२. ५९, ११८)। १२. ६४, १६. २१; ६५, १. १७. २४। इन्द्रमेव प्रवृणुते', (१२. ६७, ४)। १२. ६७, ११। 'इन्द्र तर्पय सोमेन', (१२. ७१, ३३)। 'इन्द्रो राजा', (१२. ७२, २५)। इन्द्र और बृहस्पति के बीच वार्तालाप (१२. ८४)। १२. ९०, २४। 'इन्द्रविषयं विजिगीषन्ति पार्थिवाः', (१२. ९६, १९)। 'इन्द्रसलोकताम्', (१२. ९७, ९)। 'देवा इन्द्रपुरोगमाः', (१२. ९७, २१)। 'इन्द्रस्य सालोक्यं', (१२. ९७, ३१)। 'अम्बरीषस्य संवादमिन्द्रस्य च', (१२. ९८, २)। १२. ९८, १२. १५। 'इन्द्रधनूंषि', (१२. १०२, ६)। 'बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च', (१२. १०३, २)। १२. १०३, ४. ४५। 'देवता नित्यमिन्द्रे परिवदन्ति', (१२. १२१, ३८)। 'देवानामीश्वरं चक्रे देवं दशशतेक्षणम्', (१२. १२२, २७)। १२, १२२, ३७। 'इन्द्रो जागर्ति भगवानिन्द्रादग्निर्विभावसुः', (१२. १२२, ४३)। "पूर्वकाल में एक बार दैत्यराज प्रह्लाद ने शील का ही आश्रय लेकर इन्द्र के राज्य का अपहरण कर लिया; तब ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्द्र ने प्रह्लाद से उपदेश ग्रहण किया; उन्हें प्रसन्न करके उनका 'शील' माँग लिया, जिससे अन्ततोगत्वा स्वयं उन्हें अपना सब कुछ खोना पड़ा (१२. १२४)।" 'देवानिन्द्रादीन्', (१२. १४१, ९६)। 'भ्राजन्तमिन्द्रवत्', (१२. १४९, १३)। १२. १५५, १०। ऋषियों ने इन्द्र को एक खड्ग दिया और यही खड्ग इन्द्र से लोकपालों के पास गया (१२. १६६, ६६–६७)। 'विरूपाक्ष से राजधर्मन् के शापग्रस्त होने की कथा का वर्णन किया, और गौतम को पुनः जीवित कर दिया (१२. १७३, ७)। 'इन्द्रकाश्यपसंवादं', (१२. १८०, ४)। इन्द्रः शृगालरूपेण बभाषे', (१२. १८०, ७)। 'देवत्वादिन्द्रतामपि', (१२. १८०, २४)। 'इन्द्रत्वं', (१२. १८०, २५)। 'देवानां देवमिन्द्रशचीपतिम्', (१२. १८०, ५३)। 'त्रिदशेश्वरः', (१२. २००, ९)। 'वासवं सर्वदेवानामध्यक्षमकरोत्प्रभुः', (१२. २०७, ३६)। आदित्यों में से एकादश (१२. २०८, १६)। 'त्रिबीजमिन्द्रदैवत्यं तस्मादिन्द्रियमुच्यते', (१२. २१४, २३)। 'प्रह्लादस्य च संवादमिन्द्रस्य च', (१२. २२२, ३)। इन्द्र और बलि के बीच संवाद (१२. २२५, ३७)। इन्द्र (शतक्रतु) और नमुचि-संवाद (१२. २२६)। 'सुरेन्द्रमिन्द्रं', (१२. २२७, १२)। इन्द्र और बलि-संवाद (१२. २२७, ६७. ७१. ७२. ७४)। इन्द्र और श्रीसंवाद (१२. २२९)। 'त्रिलोकेशः पुरन्दरः', (१२. २६६, ४७)। गौतम-पत्नी अहल्या का सतीत्व भ्रष्ट किया (१२. २६६, ५०)। 'रथेनेन्द्रः प्रयन्तो वै सार्धं देवगणैः पुराः', (१२. २८१, ७)। वृत्रासुर के साथ इन्द्र का युद्ध, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध, और ब्रह्महत्या से इन्द्र की मुक्ति (१२. २८२, ४४)। 'इन्द्रेण सहिताः सर्वे आगताः यज्ञभागिनः', (१२. २८४, ८)। 'मोहेन च सेन्द्रदेवाः', (१२. २८४, २५)। 'इन्द्रोऽथ धनदः', (१२. २८९, ८)। इन्द्रस्तत्राधिदैवतम्', (१२. ३१३, ४)। नाभि अथवा दोनों भुजाओं से यदि प्राण का निष्क्रमण हो तो इन्द्रपद की प्राप्ति होती है (१२. ३१७, ४)। शुक को एक कमण्डल दिया (१२. ३२४, १९)। वसु उपरिचर से प्रसन्न होकर इन्द्र (देवराट्) उन्हें अपने साथ एक शय्या और एक आसन पर बैठाया करते थे (१२. ३३५, २२)। नारायण ने यह भविष्यवाणी की कि बलि इन्द्र के राज्य को छीन लेंगे किन्तु विष्णु उसे

पुनः इन्द्र को दिला देंगे (१२. ३२९, ८०)। "अहल्या का सतीत्व नष्ट करने के कारण जब गौतम ने इन्द्र को शाप दिया तब इन्द्र को हरी दाढ़ी-मूछों से युक्त होना पड़ा। कौशिक के शाप से इन्द्र को अपना अण्डकोश खो देना पड़ा जिससे उन्हें भेड़ के अण्डकोश लगाये गये (१२. ३४२, २३)। अश्विनीकुमारों के लिये नियत यज्ञभाग का निषेध करने के लिये जब इन्द्र ने वज्र उठाया तब इनकी दोनों भुजाओं को महर्षि च्यवन ने स्तम्भित कर दिया (१२. ३४२, २४)। "इन्द्र ने विश्वरूप की तपस्या में विघ्न डालने के लिये अनेक सुन्दरी अप्सराओं को नियुक्त किया। जब इन अप्सराओं को देखकर विश्वरूप का मन चञ्चल हो गया तब अप्सराओं ने इन्द्र के पास लौटना चाहा। विश्वरूप के आग्रह पर भी जब अप्सरायें नहीं रुकीं तब उन्होंने कहा कि आज ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं का आभाव हो जायगा। इस प्रकार कह कर विश्वरूप मंत्रों का जप करने लगे जिससे उनकी शक्ति अत्यन्त बढ़ गई। इसे देखकर देवताओं सहित इन्द्र को अत्यन्त चिन्ता हुई और वे लोग ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने इन्द्र सहित देवताओं को दधीच की अस्थियाँ प्राप्त करके उससे एक वज्र बनाने के लिये कहा। ब्रह्मा के आदेश के अनुसार दधीच की अस्थियाँ प्राप्त करके इन्द्र ने धाता से वज्र का निर्माण कराया और उससे विश्वरूप तथा वृत्रासुर का भी वध किया। इससे इन्द्र के पीछे दो ब्रह्महत्यायें पड़ गईं और उनके भय से वे देवराज के पद का त्याग करके अणुमात्र के रूप में मानसरोवर के एक कमलनाल की ग्रन्थि में छिप गये। तब देवताओं ने आयु के पुत्र नहुष को देवराज के पद पर अभिषिक्त किया, परन्तु नहुष भी जब अगस्त्य के शाप से पृथिवी पर गिर पड़े तब देवताओं ने विष्णु से इन्द्र के उद्धार का निवेदन किया। विष्णु के आदेश के अनुसार इन्द्र ने अश्वमेध का अनुष्ठान किया और पुनः इन्द्रपद प्राप्त किया (१२. ३४२, २५-५२)।" नारद ने इन्द्र को उञ्छवृत्त्युपाख्यान सुनाया (१२.३५२–३६५)। 'इन्द्रसमवीर्यस्य', (१३. २, १३)। इन्द्र और शुक के बीच संवाद (१३. ५)। इन्द्र और भङ्गास्वन के बीच संवाद (१३. १२, ४. ५. ७. ३१. ३२. ३९–४२. ४५. ४८)। 'देवाः सेन्द्राः', (१३. १४, २२)। मन्दार ने एक अर्बुद वर्षों तक इन्द्र के साथ युद्ध किया (१३. १४, ७४)। वालखिल्यों का अनादर किया (१३. १४, ९१)। शिव ने शक्र, अर्थात् इन्द्र, का रूप धारण किया (१३. १४, १७२)। 'यक्षेन्द्रबलरक्षःसु', (१३. १४, २१५)। 'ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं', (१३. १४, २१८)। ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाः', (१३. १४, २२९)। 'इन्द्रायुधसवर्णाभं धनुः', (१३. १४, २५६)। 'इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं', (१३. १४, ३८३)। 'मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम्', (१३. १६, ९)। स्कन्देन्द्रौ सविता यमः', (१३. १६, २२)। 'इन्द्रकल्पेन', (१३. १७, १७०)। ब्रह्मा ने शक्र, अर्थात् इन्द्र, को शिव के सहस्र नाम बताये, जिन्हें पुनः इन्द्र ने मृत्यु को बताया (१३. १७, १७५)। इन्द्र (शक्र) ने असित देवल को शाप दिया (१३. १८, १८)। 'देवैः सेन्द्रैश्च', (१३. २६, ६८. ८३) इन्द्र और मतङ्ग के बीच संवाद (१३. २७–२९)। 'गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः', (१३. ३०, ५८)। 'सेन्द्रास्त्रयोलोकाः', (१३. ३२, ३०)। 'तथा भगसहस्रेण महेन्द्रः परिचिह्नितः ॥ तेषामेव प्रभावेन सहस्रनयनो ह्यसौ ।', (१३. ३४, २७–२८ तु० की० १३. ४१, २१)। इन्द्र और शम्बर के बीच संवाद (१३. ३६)। इन्द्र के विरुद्ध विपुल द्वारा देवशर्मन की पत्नी रुचि की रक्षा का वृत्तान्त (१३. ४०–४३)। 'इन्द्रः प्रीयतां', (१३. ६०, १७)। इन्द्र और बृहस्पति के बीच संवाद (१३. ६२, ५१ और बाद)। गायों के लोक और गोदान विषयक युधिष्ठिर तथा इन्द्र के प्रश्न (१३. ७२)। ब्रह्माजी का इन्द्र से गोलोक और गोदान की महिमा बताना (१३. ७३–७४)। 'इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च', (१३. ८२, ७)। 'पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च', (१३. ८३, ६)। 'इन्द्रः पप्रच्छ देवेशं', (१३. ८३, १२)। 'सेन्द्रेषु चैव लोकेषु', (१३. ८५, १५७)। 'देवैः सेनापतित्वेन वृतः सेन्द्रैर्भृगूद्वह', (१३. ८५, १६३)। इन्द्र (वासव) स्कन्द को देखने आये (१३. ८६, १६)। इन्द्र (सुरेन्द्र) ने स्कन्द को सिंह आदि दिये (१३. ८६, २५)। स्कन्द ने इन्द्र को पुनः देवराज के पद पर प्रतिष्ठित कराया (१३. ८६, ३०)। शुनःसख के रूप में इन्द्र ने सप्तर्षियों की परीक्षा ली (१३. ९३)। १३. ९४. ४७। 'अथेन्द्रोऽहमिति ज्ञात्वा अहंकारं समाविशत्', (१३. ९९, १०)। 'रथे योक्ष्यति देवराट्', (१३. ९९, २३)। 'अद्येन्द्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम्', (१३. ९९, २४)। नहुष ने इन्द्रपद प्राप्त किया परन्तु शापग्रस्त होकर सर्प के रूप में पृथिवी पर गिर पड़े (१३. १००, १)। धृतराष्ट्ररूपधारी इन्द्र और गौतम का संवाद (१३. १०२)। 'इन्द्रस्य लोकाः', (१३. १०२, ३८)। इन्द्रेण गुह्यं निहितं वै गुहायां', (१३. १०३, ३९)। 'इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः', (१३. १०७, २१)। १३. १२५, ४८; १२६, ९। 'इन्द्रत्वं', (१३. १४१, ५)। 'इन्द्रेण च पुरा वज्रं क्षिप्तं', (१३. १४१, ८)। 'सेन्द्रा देवास्त्रयस्त्रिंशत्', (१३. १४८, २४)। आदित्यों में से ग्यारहवें (१३. १५०, १५)। 'महेन्द्रगुरवः सप्त', (१३. १५०, ३३)। अहल्या का सतीत्व नष्ट करने के कारण गौतम ने इन्द्र को शाप तो दिया, किन्तु उन्हें किसी प्रकार आहत नहीं किया (१३. १५३, ६)। सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः', (१३. १५५, २५)। च्यवन ने इन्द्र की भुजाओं को स्तम्भित करके मद उत्पन्न किया, जिसके पश्चात् इन्द्र ने अश्विनों को सोमभाग प्राप्त करने दिया (१३. १५६, १७. २१. २४. २६)। जब इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता मद के मुख में चले गये तब च्यवन ने उनके अधिकार की समस्त भूमि का अपहरण कर लिया; इससे त्रस्त होकर इन्द्र सहित देवगण ब्रह्मा की शरण में गये, और ब्रह्मा ने उनसे ब्राह्मणों की शरण में जाने के लिये कहा (१३. १५७, २. ५)। शिव ने इन्द्र की भुजाओं को स्तम्भित किया (१३. १६०, ३३)। शिव को इन्द्र के साथ समीकृत किया गया है (१३. १६०, ३९)। बृहस्पति, संवर्त और मरुत्त के साथ इन्द्र के सम्बन्ध का वर्णन (१४. ४, १७, १९; ५, ७. १९; ७, २६; ९, १. ३. ५. ८. १२. २४. २९; १०, १. १८. १९. २२. २४. २८)। इन्द्र का वृत्रासुर के साथ युद्ध (१४. ११, ६)। 'इन्द्रः', (१४. २१, ४; ३५, ४१)। इन्द्र (शक्र) को दोनों भुजाओं का अधिदेवता कहा गया है (१४. ४२, २८)। 'मरुतामिन्द्र उच्यते', (१४. ४३, ७)। "इन्द्र ने चाण्डाल के रूप में उत्तङ्क को अमृत पिलाना चाहा परन्तु उत्तङ्क ने उसे अस्वीकृत कर दिया (१४. ५५, १६–३४)। ब्राह्मण के रूप में इन्द्र ने उत्तङ्क की सहायता की (१४. ५८, ३०–३५)। इन्द्र के यज्ञ के समय ऋषियों में परस्पर विवाद (१४. ९१)। अगस्त्य ने इन्द्र को वर्षा कराने के लिये विवश किया (१४. ९२, २२. २३)। 'इन्द्रसमाः', (१५. १७, ४)। कृष्ण का स्वर्गलोक में स्वागत किया (१६. ४)। युधिष्ठिर की परीक्षा ली (१७. ३, १०. १३; १८, २, १०)। ' इन्द्रः कथयामास देवराट्', (१८. ४, ११)।

इन्द्र के निम्नलिखित पर्याय मिलते हैं :

* **अखण्डल** , व० स्था० ।

* **अदितिनन्दन** : १३. १४, ३९२ ।

* **अमरराज** : 'ततः प्रहायामरराजजुष्टान्', (१. ८८, ६)। 'अमरराजकल्प', (१. ८८, १२)। 'यादृक् पुरावृत्तं शम्बरामरराजयोः', (७. २५, ६२)। 'यथापूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः', (७. ९६, ३०)। 'त्रिदशमिवामरराजरक्षितम्', (८. ३७, ३४)। 'अमरराजतेजसा', (८. ७६, ३७)। 'सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः', (८. ८७, २५)। 'यादृशो वै पुरावृत्तः शम्बरामरराजयोः', (९. १५, ३२)। ९. ४९, २।

* **अमरश्रेष्ठ** : १. १८, २५; ३. ४३, १२; १३. ८३, २७।

* **अमराधिप** : 'अमराणां ह्रदे स्नात्वा समभ्यर्च्यामराधिपम्', (३. ८३, १०६)। 'बलमसुरामरसैन्यप्रभवम्', (८. ३, ८)। १२. १०३, ३२; २२४, ४४; २८१, ३६।

* **अमरेश** : ६. २२, ८।

* **अमरेश्वर** : १. २२६, १४; २२८, २२; ७. ८४, ३१; ८. २०, ५१; १२. १०३, ५२।

* **अमरोत्तम** : १. २५, ९।

* **असुरार्दन, असुरसूदन**, व० स्था०।

* **ईश्वर**, व० स्था०।

* **काश्यप**, व० स्था०।

* **किरीटिन्**, व० स्था०।

* **कुशिकोत्तम**, व० स्था।

* **कौशिक**, व० स्था०।

* **गोशब्दात्मज**, व० स्था०।

* **जगदीश्वर**, व० स्था।

* **त्रिदशाधिप** : ३. ९, ९; ३७, ५४; १०१, १३; ५. ६२, ९; ८. ८९, ८८; १२. १०३, ५१; १३. १२, ५३; ४१, ९; ६६, ४६।

* **त्रिदशाधिपति** : ९. ४८, ६।

* **त्रिदशेन्द्र** : ५. ३३, ७१; ९. ४६, ४४; १२. २८२, २३; १३. ८५, १६४; ९३, १४४।

* **त्रिदशेश, त्रिदशेश्वर**, व० स्था०।

* **त्रिदिवेश्वर** : १. ३४, १०; ९. ४३, ४५।

* **त्रिभुवनेश्वर** : ९. ४८, १०. २९; १३. ८३, ७।

* **त्रिलोकराज** : ५. ९७, १२।

* **त्रिलोकेश**, व० स्था०।

* **त्रैलोक्यपति** : १२. २२२, ३७।

* **त्रैलोक्यराज** : ५. १०५, ४।

* **दशशतनयन** : ८. ९०, २४।

* **दशशताक्ष** : ७. १८४, ४७; १३. ५, १५।

* **दशशतेक्षण** : १२. १२२, २७।

* **दानवशत्रु, दानवघ्न, दानवारि, दानवसूदन**, व० स्था०।

* **देवगणेश्वर**, व० स्था०।

* **देवपति** : 'देवपतिर्यथा', (३. ५३, २)। 'सधार्तराष्ट्रं जहि सानुबन्धं वृत्रं यथा देवपतिर्महेन्द्रः', (३. १२०, ६)। 'अजयद्देवपतिर्बलिं वैरोचनिं पुरा', (३. १६८, ७७)। 'वृत्रं देवपतिर्यथा', (४. २२, ३२)। 'जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम्', (७. ९४, ६६)। १२. १२, २८; १०३, ३; १३. १६७, १२।

* **देवराज्** : 'देवराडिव नन्दने', (३. ७१, ३)। 'देवराड्विगतज्वरः', ३. ८५, १२८; १९३, १४; २४६, १८; ५. १०, ३३; १८, ४। 'मुञ्चन् देवराडशनीमिव', (५. ६५, ६)। 'वज्रपाणिश्च देवराड्', (६. १०७, १६)। 'योधयेदपि देवराट्', (१०. ४, ८)। १२. ३३५, २२; ३४२, ५३। 'वृत्रं हत्वा देवराट्', (१३. १, ३२)। १३. ९४, ४२; १८. ४, ११।

* **देवराज** : १. १, १५२। 'देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिं', (१. १, १९९)। १. ३१, १३। 'देवराजः शतक्रतुः', (१. ३१, १५)। १. ३१, १६. २०। 'देवराजसमद्युतिः', (१. ६७, ६८)। देवराजस्य चार्जुनम्', (१. ६७, १११)। 'देवराजप्रतिमं', (१. ६९, १३)। १. ७१, ४०। 'देवराजसमद्युतिः', (१. ७६, ३)। १. ८८, ४। 'देवराजसमद्युतिः', (१. ९७, २५)। 'देवराजसमद्युतेः', (१. ९८, ९) 'देवराजसदृशो', (१, १००, १३)। 'देवराजसमः', (१. १००, ३५)। 'देवराजसमप्रभम्', (१. १०५, ५३)। 'देवराजपराक्रमाः', (१. ११८, ३)। १. १२३, ३१;१३०, ५; १९७, १५.१६. २२; २२४, ११; २२६, १९; २२७, १३; २२८, २४.२५; २. ६, १७; ७, ८। 'देवराजं शतक्रतुम्', (२.७, २५)। २. ४९, ३५; ५०. ९; ३. ३८, ३; ४१, ४२। देवराजरथं', (३. ४२, १)। 'देवराजं शतक्रतुम्', (३. ४३, १५)। ३. ४७, २। 'देवराजसमद्युती', (३. ५१, ५)। 'देवराजस्य भवनं', (३. ५४, १४)। ३. ५४, २४। 'देवराजसमद्युतिः', (३. ६४, ८०)। 'मातलिरयं देवराजस्य सारथिः', (३. ७१, २६)। 'जातिस्मरंह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः। यत्र क्रतुशतैरिष्ट्वा देवराजो दिवं गतः॥', (३. ८५, ३८)। 'स्मरेद्धि देवराजोयं', (३. ९२, १४)। 'देवराजसुतामिव', (३. १२३, २)। ३. १२३, २३; १२५, २; १३४, ८; १३५, २७. २८; १३९, ८; १६६. ४. ६. ७. ९. ११. १२; १६७, ३. ७; १६८, १४. ३३. ३९. ५५. ६९. ७८; १६९, ९। दयितं देवराजस्य', (३. १७०, २०)। ३. १७१, १८। 'देवराजस्य दयितं', (३. १७२, १३)। ३. १७३, ७१; १७४, १; १७९, ३३। 'बकदाल्भ्यौ महात्मानौ श्रूयेते चिरजीविनौ। सखायौ देवराजस्य तावृषी लोकसम्मतौ', (३. १९३, ४)। 'देवराजः शतक्रतुः', (३. १९३, ९)। ३, २४६, ७; ३०१, १४। 'शक्तिर्देवराजस्य', (३. ३०२, १७)। ३. ३१०, १। ४. ४५, ३८। 'विमानं देवराजस्य', (४. ५६, ७)। 'विमाने देवराजस्य', (४. ५६, १०)। ४. ६४, ३७. ४४; ५. ८, ५४; ९, १८; २०, ३३; १०, ५०। देवराजस्य दयिताम्', (५. ११, २१)। ५. १५, ५.२८. ३१; १६, १६; १७, १। 'देवराजः शतक्रतुः', (५. १८, ४. ८)। 'यथा नूनं देवराजस्य देवाः शुश्रूषन्ते', (५. ४८, ६)। देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः', (५. १००, ८)। 'यादृशी देवराजस्य पुरीवर्याऽमरावती', (५. १०३, १)। 'शक्रमासीनं देवराजं', (५. १०४, २२)। ५. १०४, ३०; १०५, ६; १२१, ६। 'देवराजमिवामराः', (६. १९, ११)। 'देवराजनिवेशने', (६. ९०, १५)। 'देवराजोपमः', (७. ३४, २०)। ७. ७५, २२,। 'यथाश्वेतो महानागो देवराजचमूं', (७. १०५, २६)। 'देवराजप्रतिमं', (७. १४६, १९)। 'स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली', (७. १४६, १४४)। 'देवराजमिवाहवे', (७. १७३, ३५)। 'देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा', (८. ५, १५)। ८. १९, ५३। 'यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह', (८. २५, ४३)। ८. ४२, ४। 'देवराजः शतक्रतुः', (९. ४३, ३१)। ९. ४८, ३; ११. २६, १२; १२. ५, १३; २०, १३। 'देवराजसमद्युतिम्', (१२. ३१, १५)। १२. ३१, १६। 'देवराजसमद्युतिः', (१२. ३१, १७)। 'देवराजसमद्युतिम्', (१२. ३१, ३०)। 'देवराजस्य मायया', (१२, ३१, ३४)। 'देवराजगृहोपमम्', (१२. ३८, १३)। 'देवराजोऽपि', (१२. ४६, १२)। 'देवराजसमीपतः', (१२. ५२, ५)। १२. ९८, १०; १७३, ६; २४४, ३७. ४१. ५६। 'देवराजे शतक्रतौ', (१२. २२७, ८)। 'देवराजालयं', (१२. ३५२, ६)। १२. ३६५, ५। 'देवराज इवापरः'. (१३. २, ११)। १३. ५, १४। 'देवराजः शतक्रतुः', (१३. १२, २८)। इनके वचनों को सुनकर शिव का मन प्रसन्न नहीं हुआ (१३. १४, १७७)। 'देवराजश्च कौशिक', (१३. १४, २८४)। १३. ४०, ३८. ४२; ४१, १६। 'देवराजवत्', (१३. ५३, ६५)। 'देवराजः शतक्रतुः', (१३. १२५, ५८)। १४. ५, १५; ६, २. ६; ७, १६; ८, ३८; ९, २. १३. १७; १०, २०. २१. २५. ३१। 'देवराजमिव', (१४. ५२, ३७)। 'देवराजोऽपि (१४. ८१, २०)। 'देवराजः सहस्राक्षः', (१४. ९१, ४)। 'सदृशो देवराजेन', (१४. ९१, ५)। 'देवराजः पुरन्दरः', (१४. ९२, ३५; १७. ३, ३२)। १८. २, १३। 'देवराजः शतक्रतुः', (१८. २, ५३)। 'देवराजेन महेन्द्रेण', (१८. ३, ३६)।

***देवराजन्** : १. २, ३७४; ५. ११, २४। 'अस्त्रं दयितं देवराज्ञः', (८. ८९. २३)। १४. ५, २२; ९, १४।

***देवश्रेष्ठ, देवदेव**, व० स्था०।

* **देवाधिप** : ५. १०, ७। वज्रेण देवाधिपनोदितेन', (९.२०, २७)।

* **देवेन्द्र** : १. ३०, ४०; ३४, ६; १२३, ३४। अर्जुन के पिता के रूप में इनका उल्लेख (१. १२३, ३५)। १. २२७, ३१; २. ११, ५१; १२, ६। 'महेन्द्रमिव देवेन्द्रं', (२. ५३, १२)। ३. ९, ११। युक्ता देवेन्द्रमृषयो यथा', (३. ३६, ४२)। ३. ४३, २१। 'दधीच इव देवेन्द्रं', (३.४३, २१)। ३. ९२, ६; ११७, ११; १३५, २४; १४२, २६; १६८, ५; १७३, ६८; १९३, १५. ३७; २२४, ४. २५; २२६, १८; ४. ३८, ३५; ५. ९, २५. ४७. ५१; १०, ४५. ४६; १६, ११; १७, २; १८, ५। 'देवेन्द्रसेनेव', (६. २०, ५)। ६, १२१, ३२। 'देवेन्द्रमपि', (७. ११०, ७९)। 'असुरानिव देवेन्द्रः', (७. १५६, १२४)। 'देवानामिव देवेन्द्रः', (७, १७०, ६५)। 'शेते निहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः', (८. ९, १९)। 'जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं

जयाय देवेन्द्रमिव', (८. ७७, ३)। ९. ४३, ४०. ४२; १२. ३१, २५; ६७, ३४; १०३, २०; १२४, २२; २२५, १९; २२७, ६७. ६९; २२८, ८१; २८२, १७. २०. ५६। देवेन्द्रस्य निवेशने', (१२. ३६५, ४)। १३. १२, २७. ५०। शिव का देवेन्द्र के रूप में उल्लेख (१३. १४, १७६. २२७. २३८)। १३. ४०, ३९; ४१, १। 'देवेन्द्रत्वं', (१३. ५५, २९)। १३, ६२, ५६. ८६. ८८। 'देवेन्द्र तन्निबोध शचीपते', (१३. ८३, ३५)। १४. ५, २६; ९, ७. २८; ५५, २८. ३०। 'देवेन्द्रस्येव', (१४. ८५, २८)। १७. ३, २६; १८. ३, ३०।

*** देवेश,** व० स्था०।

*** दैत्यनिबर्हण :** १७. ३, ३७।

*** दैत्यासुरनिबर्हण :** १२. २८१, २२।

*** नमुचिघ्न :** १. २५, ८।

*** नमुचिहत् :** १. २२६, २१।

*** पर्जन्य :** १. ३, १६७। 'कालवर्षी च पर्जन्यः', (१. ६८, १०)। 'यथर्तुवर्षी पर्जन्यः', (१. १०९, २)। द्वादश आदित्यों में इनका उल्लेख (१. १२३, ६७)। 'निकामवर्षी पर्जन्यः', (२. ३३, २)। 'पर्जन्यमिव भूतानि', (२. ४५, ६५)। 'प्रववर्षेत्पर्जन्यः', (३. ११०, ४५. ४८)। 'अकालवर्षी पर्जन्यः', (३.१९०, ७०)। 'कालवर्षी च पर्जन्यः', (३. १९०, १९१)। ३. १९३,७। 'पर्जन्यसहितः श्रीमानग्निर्वैश्वानरः', (३,२२१, १६)। ३. २३१, ४६। 'पर्जन्यो वर्षतां वरः', (४. २, १६)। 'पर्जन्यः सम्यग्वर्षी', (४.२८, १९)। पर्जन्य इव वृष्टिमान्', (४. ५८, ७४)। 'यथा वर्षति पर्जन्ये', (४. ६३, ११)। 'पर्जन्यनाथाः पशवः', (५, ३४, ३८)। 'निकामवर्षी पर्जन्यः (५, ६१, १७)। 'पर्जन्यः प्राववर्षत्', (५, ८४, ५)। 'पर्जन्य इव वृष्टिमान्', (६. ६३, २५) 'अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः', (६. ११९, ९३)। 'पर्जन्य इव', (७. १०, १४)। 'यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान्', (७. ५६, ५)। 'कामान् वर्षति पर्जन्यः', (७. ५६, ७)। 'पर्जन्य इव वृष्टिमान्', (७. ८९, ४)। शिव को इनके साथ समीकृत किया गया है (७. २०२,१०३)। 'पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति', (१०, १५, २३)। 'कालवर्षी च पर्जन्यः', (१२. २९, ५३)। 'पर्जन्यमिव धर्मान्ते नाथमाना उपासते', १२. ३७, २२)। 'कालवर्षी च पर्जन्यः', (१२. ९१, १)। 'पर्जन्यादिव जीवनम्', (१२. ९७, १५)। इन्द्र से भिन्न (१३. १, ५५)। १३. ३१, ६। 'वर्षति पर्जन्ये', (१३. १३७, १३)। 'पर्जन्यो ववृषे', (१३. १४८, २)। 'न च वर्षति पर्जन्यः', (१४. ९२, १३)। निकामवर्षी पर्जन्यः', (१४. ९२, ३७)।

*** पाकशासन :** 'लोकांस्त्रीञ्जितवान्पाकशासनः', (१. २०२, १७)। १. २२७, ४५. ४७ ; २२८, ४६। 'प्रववर्ष च तत्रैव सहसा तोयमुल्बणम्। कर्षकस्याचरान्विघ्नं भगवान्पाकशासनः', (३, ९, १८)। ३. ४२, १४। देवेशं पितरं पाकशासनम्', (३. ४३, १६)। 'नावर्षेत्पाकशासनः', (३. १३०, ३०)। ३. १२१, २३; १३५, २०. ३९। 'यथर्तुवर्षी भगवान् तथा पाकशासनः', (३. १८८, ५०)। ३. २२३, ११; २२४, ३; २४६, ८; ३००, १४; ३१०, १३; ५. ९, २९; १३, १४। 'महेन्द्रः पाकशासनः', (५. १६, ३१)। 'समयवर्षीव गगने पाकशासनः', (४. ५९, ३०)। भगदत्त के मित्र के रूप में इनका उल्लेख (५. १६७, ३७)। ९. ४६, ४४; ४८, ५. १८; ५१, ७; १२. २९, ६४। 'मरुद्भिः सह जित्वाऽरीन्मगवान्पाकशासनः। एकैकं क्रतुमाहृत्य शतक्रत्वः शतक्रतुः ॥', (१२. ३३, ३९)। 'गाधिर्नामाऽभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः', (१२. ४९, ६)। १२. ९०, २४; १२४, २८; २२५, २; २२७, ८८; २२८, ८४; २८१, २८; १३. ५, ९. २७; ४०, १८. २८. ३८. ४३. ४६; १५६, १६; १४. ५, २५; ८०, ५४।

*** पुरन्दर :** १. २, १६६. २०१; ३, १४९; २५, ९; ३१, १०। सहस्राक्षः पुरंदरः', (१. ३३, २४)। 'पुरंदरनिवेशनम्', (१.५३, १४)। १. ५३, १५; ५६, १३. १४; ६०, ८; ७१, २१; ७८, २। 'यथा देवं पुरंदरम्', (१. १००, २६)। 'पौरवस्तु पुरीं गत्वा पुरंदरपुरोपमाम्', (१. १००, ४१)। 'पुरंदरमिवापरम्' (१. ११२, ६)। 'देवेष्विव पुरंदरम्', (१. ११३, ३२)। 'बभौ यथा दानवसंक्षये पुरा पुरंदरो देवगणैः समावृतः', (१. १३५, ३२)। 'पुरन्दरगृहोपमम्', (१.२२१, ३९)। 'पुरंदरपुरोपमम्', (१. २२२, १८)। १. २२८, २४; २३४, ७; २. ११, ५१। 'दैवैरिव पुरंदरः', (३. ६, १३)। 'पुरंदरमिवर्षयः', (३. २६, २५)। 'देवं पुरंदरम्', (३. ३७, १६)। ३. ३७, १८। 'पुरंदरनिवेशनम्', (३. ४४, २)। ३. ४४, ५; ४७, १; १००, ५. १५। 'सहस्राक्षः पुरंदरः', (३.१०१,८)। 'देवः साक्षात्पुरंदरः', (३. १०१, ९)। ३. १२१, १; १२४, ११; १२५, ८; १४१, २१। 'देवराजः पुरंदरः', (३. १६६, ६)। ३. १६६, ९। 'देवराजः पुरंदरः', (६, १६६, १३)। 'यथा देवं पुरंदरम्', (६. १६८, ८०)। 'पुरंदरपुरात्', (३.१७२, २७)। 'सहस्राक्षः पुरंदरः', (३. १७३ ७०)। 'लोकमाप्नोति पुरंदरस्य', (३. १८६, १५)। अग्नि का एक नाम (३. २२१, ३)। ३. २२३, ४. ८। 'देवः पुरंदरः', (३. २३१, ६८)। ३. २३१, १०४; ३००, १७; ३०१, १५। 'देवेशममोघार्थं पुरंदरम्', (३. ३०२, १४)। 'विबुधाः सर्वे पुरन्दर मुखा दिविः (३. ३०६, १९)। ४. ८, ५; ५. ८, १३। 'देवः शचीमाह पुरन्दरः', (५. १४, १३)। 'अजयद्यः पुरा वीरो युध्यमानं पुरन्दरम्', (५. ५०, २६)। 'अपि साक्षात् पुरंदरः', (५. ५९, २४)। 'पुरंदरगृहोपमम्', (५. ९१, २)। ५. १०४, २४. २६। 'अपि साक्षात्पुरन्दरः', (५. १२४, ५६)। 'जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः', (५. १७७, ४२)। 'वधाकांक्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः', (६. ८४, २६)। 'पुरन्दरसमः', (६.९५,१६)। 'अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी। शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरंदरः ॥', (६. ११०, ४७. ४८)। 'अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः', (७. ९४, २८)। 'जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः', (७. १०२, १०)। ७. १०३, १९। 'शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम्', (७. १३३, २२)। 'अजयत्समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम्', (७. १३५, ११)। 'साक्षादपि पुरन्दरः', (७. १५०, ७)। 'वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम्', (७. १५३, ३७)। 'निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम्', (७. १५७, १४)। ७. १५८,५। 'पुरन्दसमः', (७. १९४, ८)। 'संक्रुद्धो हि पुरंदरः', (७. २००, ३१)। ७. २०२, ८९; ८. ९, ४३। 'पुरंदरं देवगणा इवाब्रुवन्', (८. १८, २३)। 'पुरंदरसमं', (८. ३१, १४)। ८. ३३, ३७। 'वज्रहस्तं पुरन्दरं', (८. ३५, २२)। 'विष्णुपुरंदरोपमम्', (८. ३७, २०)। 'पुरंदरसमे क्रुद्धे', (८. ६०,८६)। 'जहि कर्णमाहवे पुरन्दरो वृत्रमिवात्मवृद्धये', (८. ७१, ४०)। 'पुरन्दरधनुः प्रख्या', (८. ८७, ९३)। ८. ९०, ३४। 'व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः', (८. ९०, ९०)। 'देवेष्विव पुरंदरः', (९. ३३, ५४)। 'साक्षादपि वज्री पुरन्दरः', (९. ६२, २९)। 'देवराजं पुरन्दरम्', (१२. २९, २०)। 'सहस्राक्षः पुरंदरः', (१२ ४९, ५)। १२. ५९, ८३; ९०, २४; १०३, ६. ११. ३६. ५३; १७३, ११; २२३, ३०; २२४, २६; २२५, १७. ३७; २२६, २; २२७, २१. ४८। 'त्रिलोकेशः पुरंदरः', (१२. २२६, ४७; २८०, २७; ३४२, २४। शिव के इन्द्र के रूप में (१३. १४, १९७, २०८)। १३. २७, २७; २९, १९. २३; ४०, १९. २३; ४१, १६. १८. २०। 'लोकमाप्नोति पुरंदरस्य', (१३. ५७, ३२)। १३. ६२. ६०. ६७. ७७. ९१; ८३, ३३; ५३, १४४। 'लोकानवाप्नोति पुरंदरस्य', (१३. १२६, ४०)। 'अथ शप्तश्च भगवान् गौतमेन पुरंदरः। अहल्यां कामायन', (१३. १५३, ६)। 'बृहस्पतिपुरन्दरौ', (१४. ७, २०)। १४. ९, ३२; १०, ६। 'देवतानां पुरंदरः', (१४. ४३, ११)। 'वज्रपाणिः पुरंदरः', (१४. ५५, २७)। ववर्ष धनुषा पार्थो वर्षाणीव पुरंदरः', (१४. ७७, २७)। १४. ९१, १३। 'देवराजः पुरंदरः', (१४. ९२, ३५)। 'पुरंदरस्य संस्थानं', (१५. २०, ८)। १७. ३, ४। 'देवराजः पुरंदरः', (१७. ३, ३२) 'पुरंदरपुरे', (१८. ६, ४७)।

*** पुरुहूत :** 'पुरीम् पुरुहूतस्य', (१. ८९, १६)। अर्जुन के पिता के रूप में इनका उल्लेख (१. १२६, २५)। 'पुरुहूत इवारिहा', (२. ४०, २)। ३. ९१, ८। 'शासनात् पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा', (६. ५०,

४३)। १२. २८२, ५१। 'पुरुहूतनमस्कृत', (१३. १६, १३)। 'पुरुहूतमिवेश्वरः', (१३. १८, ६१)। १४. ९, ९; १०, २२; १६. ४, २८।

*** पुष्करेक्षण :** १३. ८३, ४४।

*** पूषानुज :** ८. २०, २९।

*** बलभिद्, बलहन्, बलहन्तृ, बलजित्, बलनाशन, बलनिसूदन, बलसूदन** व० स्था०।

*** बलवृत्रघ्न, बल-वृत्रहन्, बल-वृत्रनिसूदन, बल-वृत्रसूदन,** व० स्था।

*** भूतभव्येश,** व० स्था।

*** मघवत् :** १. ६३, २६. २८; ७८, ३। इन्होंने अनुपम पराक्रमी कर्ण की शक्ति का आघात सहन करने के लिये घटोत्कच की सृष्टि की थी (१. १५५, ४६)। जो पाँच इन्द्र पाण्डवों के रूप में उत्पन्न हुये था, उनमें से एक यह भी थे (१. १९७, २७)। 'मघवतापि', (१. २०५, १६)। 'मघवानिव', (१. २२१, ७७)। 'रक्षिता चैव त्रिदिवं मघवानिव', (३. ४५, १०)। 'मघवा', (३. ५४, १९)। ३. ५४, १६. २०; ५५, ३; १२४,१०;१२६,३५;१३५,२८। 'निहत्य समरे सर्वान् दानवान् मघवानिव', (३. १६१, ६)। 'साक्षान्मघवता सृष्टः संप्राप्स्यति धनंजयः', (३. १६२, ३१)। 'मघवानपि देवेशः', (३. १६८, १९)। 'मघवा जितवान् शम्बरं युधि', (३. १६८, ८१)। 'पुरेव मघवा वशी', (३. १६८, ८३)। ३. १७४, ४। 'मघवानिव पौलोम्या सहितः', (३. १८३, ७)। ३. १९३, २९। 'सोऽभिषिक्तो मघवता सर्वैर्देवगणैः सह', (३. २२९, २३)। 'मघोनः स्यन्दनोत्तमः', (३. २९०, १३) | ३. ३००, ३९। 'सृष्टो मघवता वज्रः प्रयतन्निव पर्वते', (४. ५७, ११)। ४. ५८, ७१; ५. ९, ४३; १०, ५। 'देवराज्यं मघवान् प्राप मुख्यम्', (५. २९, १४)। 'स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः', (५. १७२, ४)। 'व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवान्', (६. ४५, ६४)। 'तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि', (६. ८२, ४६)। 'स बाणवर्षं सुमहदसृजत् पार्षतं प्रति ॥ मघवान् समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।', (७. ७, ५१. ५२)। 'विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव', (७. १०. १५)। 'न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन। अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥', (७. १०३, १३)। 'पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः', (७. १२७, ३२)। 'व्यधमत्कौरवी सेनामासुरीं मघवानिव', (७. १७१, ४९)। 'न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि', (७. २०२, ६६) 'व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव', (८. ४६,४)। 'जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव', (८. ४८, ९)। 'हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव', (८. ७४, ४८)। 'पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम्', (८. ८४, १९)। 'तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम्', (८. ८७, ६६)। 'जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम्', (९. ७, ३५)। 'असृजद्बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव', (९. ११, २३)। 'ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव', (९. १६, ३३)। 'ववर्ष मघवान्', (९. ५८, ५२)। 'सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवानिव दानवान्', (१०.३,२८)। १०.९,५५। 'जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव', (१०. ११, २३)। 'सामप्युद्धृतवान्कृच्छ्रात्पौलोमीं मघवानिव', (१०. ११, २६)। 'अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव', (११. २१, ८)। 'ववृषे मघवा परिवत्सरम्', (१२. २९, २५)। 'मघवा', (१२. २९, २७)। 'मघवानिव', (१२. ४४, ७)। 'बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयम्', (१२. १४२, १७)। १२. २२३, ८; २२४, १५. २८; २२८, १७। 'लक्ष्मीसहितमासीनं मघवन्तं', (१२. २२८, ८८)। 'वृत्रं तु हत्वा मघवा दानवारिः', (१२. २८२, १०)। १२. ३२०, ८२। 'वालखिल्या मघवता ह्यवज्ञाताः पुरा किल', (१३. १४, ९१)। शिव इन्द्र के रूप में (१३. १४, १९९, २११) 'मघवा', (१३. ६२, ५२. ५३; ९४, ४३; १०२, ५६)। 'नाशकत्तानि मघवा जेतुं सर्वायुधैरपि', (१३. १६०, २६)। १४. ९, ४. ७।

***मरुत्पति** (मरुतों के अधिपति) : 'यथा शक्रो मरुत्पतिः', (१. ७४, १२९)। 'यथा शच्या मरुत्पतिः', (१. १७३, ४८)। 'सहदेवैर्मरुत्पतिः', (१. २३४, १४)। 'मरुद्भिः सहितो राजन्नपि साक्षान्मरुत्पतिः', (२. ६२, १७)। 'मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः',(४. ६८, ४२)। 'तदाहनिष्यत्केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः', (८. ६८, २७)। 'हन्यादपि मरुत्पतिः', (१०. ८, १५५)। 'मरुत्पति समाः', (१२. ४९, ८३)। 'इन्द्र मरुत्पतिं', (१२. ३४२, ५२)।

*** मरुत्वत्** (मरुतों के समान) : ततो मरुत्वान् हरिभियुक्तैर्वाहैः', (३. १६८, १२)। 'यथा मरुत्वान् बलभेदने पुरा', (८. ७७, ९)।

*** महेन्द्र :** 'महेन्द्रलोकगमनम्', (१. २, १५९)। 'शचीव महेन्द्रेण', (१. ६१, ४४)। 'स तां पूजां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा देवः कृतां शुभाम्', (१. ६३, २२)। 'महेन्द्रेण', (१. ६३, २५)। 'परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमान्वितैः। अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसंनिभैः ॥', (१. ७०, १४)। 'महेन्द्रपुरसन्निभम्', (१. ८२, १; १०९, ९)। 'त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा', (१. १३८, ४३)। 'महेन्द्रस्य वज्रं', (१. १७०, ५०)। 'महेन्द्रकर्मा', (१. १८९, १८)। 'महेन्द्रस्यापि नेत्राणां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः', (१. २११, २७)। 'रक्ष्यमाणं महेन्द्रेण', (१. २२३, १२)। 'महेन्द्रस्य पूर्वैः सह सलोकताम्', (२. १२, २८)। 'सखा महेन्द्रस्य', (२. २६, १२)। 'महेन्द्रमिव देवेन्द्रं दिवि सप्तर्षयो यथा', (२. ५३, १२)। 'सोपेन्द्राः समहेन्द्राश्च', (३. ३, ४१)। 'अस्त्रहेतोर्महेन्द्र च रुद्रं चैवाभिगच्छतु', (३. ३६, ३१)। 'प्रत्युवाच महेन्द्रस्तं प्रीतात्मा प्रहसन्निव', (३. ३७, ५२)। 'महेन्द्रोपि', (३. ४०, १६)। 'महेन्द्रवरुणोपमः', (३. ४५, १२)। 'महेन्द्रस्य नियोगेन', (३. ४५, १६)। 'महेन्द्रस्य वर्तमाने', (३. ४६, २३)। 'प्रियं कुरु महेन्द्रस्य मम चैवात्मनश्च ह', (३. ४६ ३२)। 'एवमुक्ते महेन्द्रेण बीभत्सुरपि लोमशम्', (३. ४७, ४५)। 'लोकपाला महेन्द्राद्याः', (३. ५५, ५)। 'महेन्द्रं सर्वदेवानां', (३. ५७, ११)। 'महेन्द्रप्रमुखान् सुरान्', (३. १००, ४)। 'समहेन्द्राश्च', (३. १०२, १८)। सधार्तराष्ट्रं जहि सानुबन्धं वृत्रं यथा देवपतिर्महेन्द्रः', (३. १२०, ६)। 'महेन्द्रस्य', (३. १२१, २२)। 'महेन्द्रं', (३. १२६, २९)। 'यथा महेन्द्रः प्रवरः सुराणां', (३. १३४, ६)। 'एतदाहुर्महेन्द्रस्य राज्ञो वैश्रवणस्य च', (३. १६३, ६)। 'महेन्द्रवाहं', (३. १६५, १)। 'महेन्द्रवाहात्', (३. १६५, ४)। 'महेन्द्रानुचराः', (३. १६८, ११)। 'महेन्द्रास्त्रप्रचोदितैः', (३. १७१, २)। 'महेन्द्रेण', (३. १७२, ३४)। 'महेन्द्रो वै प्रजापतिः', (३. १८५, १५)। 'महेन्द्र इव वज्रभृत्', (३. २४०, १५)। 'महेन्द्रकल्पान्', (३. २६८, २)। 'महेन्द्रोपमविक्रमाणां', (३. २६९, २७)। 'महेन्द्र इव पौलोम्या भार्यया स समेयिवान्', (३. २९१, ४०)। 'महेन्द्र इव वीरश्च', (३. २९१, ४०)। 'महेन्द्रस्य', (३. ३००, ६)। 'महेन्द्रेण', (३. ३०८, १४)। 'सुतं महेन्द्रस्य', (४. ११, ३)। 'महेन्द्रसमतेजसम्', (४. ४८, १२)। 'विष्णुमहेन्द्रकल्पौ', (४. ७१, १६)। 'सुनाभिव', (४. ७२, ३२)। 'महेन्द्र', (५. १०, ४१)। 'महेन्द्र', (५. ११, १२)। 'महेन्द्रस्य महात्मनः', (५. १३, १८)। 'महेन्द्र दानवान् हत्वा', (५. १६, १६)। 'महेन्द्रबलम्', (५. १५, १८) ('महेन्द्रम्', (५. १६, २८)। 'महेन्द्रः', (५. १६, २९)। 'महेन्द्रः पाकशासनः', (५. १६, ३३)। 'महेन्द्रकल्पनम्', (५. २३, ३)। 'देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः', (५. ४८, ९३)। 'महेन्द्र इव वज्रेण दानवान्', (५. ५१, ४२)। 'तं शच्यर्थं महेन्द्रेण याचितः स परंतपः', (५. ५५, ५१)। 'महेन्द्रोतेन्द्रविक्रमम्', (५. ६०, २०)। 'यां चाव शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते ददौ महात्मा भगवान् महेन्द्रः', (५. ६२, ९)। 'महेन्द्रसमविक्रमः', (५. ९०, ३०)। 'महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः', (५. ९४, ३२)। 'महेन्द्रसदृशीं', (५. ९८, ७)। 'महेन्द्रः प्रवर्षति', (५. ९९, ७)। 'इन्द्रो वृत्तवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत', (५. १३४, २४)। 'महेन्द्रमिवचादित्यैरभिगुप्तं महारथैः', (५. १५३, ३। 'महेन्द्रमिव', (५. १५७, ३)। 'हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव', (५. १६५, २६)। 'महेन्द्रेणेव', (५. १७२, १०)। 'महेन्द्रसदृशः शौर्ये', (६. १३, ८)। 'महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव', (६. १६,

१३; १८, ७)। 'महेद्रादीन् दिवौकसः', (६. २१, ९)। 'महेन्द्रप्रतिमानकल्पम्', (६. २२, १२)। 'महेन्द्रसमवीर्येण', (६. ५९, ३६)। 'यथा, देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य', (६. ७७, १२)। 'दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः', (६. ७७, ४५) 'महेन्द्रसमविक्रमाः', (६. ८१, ९)। 'महेन्द्रप्रतिमप्रभावः', (६. ८५, २८)। 'जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान्', (६. ९७, ३८)। 'महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिम्', (६. १०१, १९)। 'महेन्द्रसमवीर्येण', (६. १०६, २७)। महेन्द्रस्येव', (६. १०७, ३१)। 'यथा वृत्रमहेन्द्रयोः', (६. १११, ४४)। 'महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम्', (७. ३, ४)। 'यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम्', (७. १०, ४१)। महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत्', (७. ११, २२)। 'महेन्द्रमिव', (७. १३, २७)। 'महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः', (७. ५१, १७)। 'महेन्द्रप्रतिमौजसाम्', (७. ७१, २५)। 'महेन्द्राशनिसन्निभान्', (७. १०६, ७)। 'महेन्द्र इव शम्बरम्', (७. १०७, ९)। 'महेन्द्रो दानवेष्विव', (७. १२४, २)। 'महेन्द्रस्येव', (७. १३५, १४)। 'जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः', (७. १३९, १०७)। 'महेन्द्राभः पुत्र आसीत्पुरूरवाः', (७. १४४, ४)। 'महेद्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम्', (७. १४५, ९७)। 'महेन्द्राशनिनिःस्वनः', (७. १५४, ३१)। 'महेन्द्रेण यथा वृत्रो', (८. ५, ५४)। 'यथा महेन्द्रः', (८. ७, २३)। 'शत्रोरपि महेन्द्रस्य', (८. ८, ११)। 'वृषो महेन्द्रो देवेषु', (८. ८, २३)। 'वरो महेन्द्रो देवानाम्', (८. ८, २५)। 'महेन्द्रो दानवानिव', (८, १०, ३४)। 'महेन्द्र इव दानवान्', (८. १९, १६)। 'महेन्द्रवज्राभिहतम्', (८. २०, ४४) महेन्द्रो-नमुचिं यथा', (८. २६, २१)। 'जहि पार्थात्रणे सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव', (८. ३५, ३३)। 'महेन्द्रादपि वज्रपाणेः', (८. ३७, १३)। 'महेन्द्र-विष्णूप्रतिमौ', (८. ३७, १४)। 'वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम्', (८. ६४, २४)। 'शरं सूर्यमरीचिसप्रभं सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम्। महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहम्', (८. ८२, ३५)। 'महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा', (८. ८५, १४)। 'महाहवे वीतभयौ समीयतुर्महेन्द्रजम्भाविव', (८. ८८, १२)। 'उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमावुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ। महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकैर्महेन्द्रवृत्राविव संप्रजघ्नतुः ॥', (८. ८९, ७)। महेन्द्रशस्त्राभिमुखान्विमुक्तांश्छित्त्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसंधान्', (८. ८९, २७)। 'महेन्द्रकर्मा', (८. ८९, २८)। 'महेन्द्रवज्रः शिखिरोत्तमं यथा', (८. ९०, ३९)। 'महेन्द्रवज्रानलदण्डसन्निभम्', (८. ९१, ४०)। शिरो जहार वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः', (८. ९१, ५०)। 'महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ', (८. ९४, ५६)। 'महेन्द्रसदृशप्रभम्', (९. ४, २३। महेन्द्रो दानवानिव', (९. ६, ३०)। 'महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः', (९. १७, १५)। 'यथा महेन्द्रो नमुचिम्', (९. १७, २२)। 'महेन्द्रवाहप्रतिमः', (९. १७, ५२)। 'महेन्द्रवज्रप्रतिमैः', (९. २०, ५)। 'यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे', (९. २०, ७)। 'महेन्द्रस्य', (९. ४५, ३६)। 'महेन्द्रेण', (१०. ४, ३१)। 'निहत्यशत्रून्सर्वान्महेन्द्रं सुखमेधमानम्', (१०. १०, २२)। 'इन्द्रोवृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत', (१२. १५, १५)। 'सहस्राक्षो महेन्द्रश्च', (१२. ५८, २)। 'उत्थानेनमहेन्द्रेण श्रैष्ठ्यं प्राप्तं दिवीह च', (१२. ५८, १४)। 'अनुयास्यन्ति महेन्द्रमिव देवताः', (१२. ६७, २५)। 'महेन्द्रस्येव', (१२. ६७ ३१; ७८, १०) 'महेन्द्रप्रतिमप्रभावः', (१२. ११२, २१)। 'प्रह्लादेन हृतं राज्यं महेन्द्रस्य महात्मनः', (१२. १२४, २०)। 'महेन्द्रः', (१२. १६६, ६७; २२३, १२)। 'महेन्द्रेण', (१२. २७९, २८; ३५२, ६)। 'महेन्द्राय नमोऽस्तु ते', (१३. १४, २९४)। 'महेन्द्रस्य दयितः', (१३. १८, ४४)। 'चोदितस्तु महेन्द्रेण मतङ्गः प्राब्रवीदिदम्', (१३. २९, २२)। 'महेन्द्रवचनम्', (१३. २९, २६)। 'तथा भगसहस्रेण महेन्द्रः परिचिह्नितः। तेषामेव प्रभावेन सहस्रनयनो ह्यसौ ॥', (१३. ३४, २८)। 'इन्द्रत्वम्', (१३. ३६, १९)। 'महेन्द्रेण', (१३. ९४, ५०)। 'स्तुवन्ति मां यथा देवा महेन्द्रं प्रियवादिनः', (१३. ११८, १६)। 'महेन्द्रगुरवः सप्त प्राचीं दिशिमाश्रिताः', (१३. १५०, ३३)। 'महेन्द्रसमविक्रमम्', (१३. १५०, ४८)। 'स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे विप्रैरेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः', (१३. १५८, २८)। 'महेन्द्रम्', (१४. ९, १६)। 'महेन्द्रः', (१४. ९, ३१)। 'महेन्द्रं देवश्रेष्ठम्', (१४. १०, ७)। 'व्यक्तं वज्रं मोक्ष्यते ते महेन्द्रः', (१४. १०, ८)। 'महेन्द्रप्रतिमाः', (१४. ६१, २३)। 'महेन्द्रवज्रप्रतिमैरायसैर्बहुभिः शरैः', (१४. ७४, २९)। 'महेन्द्र इव वज्रभृत्', (१४. ७७, ३१)। 'महेन्द्रानुगता देवाः', (१४. ८८, ३०)। 'शुशुभे महेन्द्रस्त्रिदशैरिव', (१४. ८९, ३०)। 'महेन्द्रसदने', (१५. २०, ९)। 'महेन्द्रसदनम्', (१५. २०, १०)। 'महेन्द्रस्य सलोकताम्', (१५. २०, २७)। 'विष्णुमहेन्द्रकल्पौ', (१५. २५, ८)। 'महेन्द्र', (१७. ३, ११)। 'महेन्द्र इव', (१८. २, ४६)। 'देवराजेन महेन्द्रेण', (१८. ३, ३६)। 'पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ', (१८. ५, १५)। 'भवनं च महेन्द्रस्य', (१८. ५, २९)।

* **मुकुटिन्** : 'मुकुटी बद्धकुण्डलः', (१३. ४०, २९)।

* **लोकत्रयेश** : 'लोकत्रयेशाय पुरन्दराय', (१. ३, १४९)।

* **लोकेश्वरेश्वर** : १२. ४९, ४।

* **वज्रधर** : १. २२४, १५। 'सततं कम्पयामास यवनानेक एव यः। बलपौरुषसंपन्नान्कृतास्त्रानमितौजसः। यथासुरान्कालकेयान्देवो वज्रधरस्तथा ॥', (२. ४, २३)। ३. ४३, २५। 'यथा शची वज्रधरस्य', (३. ११३, २३)। ३. १२१, ३। 'अपि वज्रधरस्य', (३. १४१, १४)। 'अभिदुद्राव संरब्धो बलिर्वज्रधरं यथा', (३. १५७, ५२)। 'धनञ्जयो वज्रधरप्रभावः', (३. १६५, ३)। 'देवा वज्रधरं त्यक्त्वा ततः शान्तिमुपागताः', (३. २२७, १४)। 'जित्वा वज्रधरं संख्ये', (३. २८८, ३)। 'अपि वज्रधरः साक्षात् किम्', (५. २१, ७)। 'यथा वज्रधरः', (६. १७, ३६)। 'यथा वज्रधरः पूर्वं सङ्ग्रामे तारकामये', (६. ८३, २६)। 'शक्यो वज्रधरो जेतुम्', (६. १०७, ७४)। 'अपि वज्रधरः स्वयम्', (६. १०७, ९९)। 'वज्रं वज्रधरो यथा', (७. ९७, ३१)। 'यथा पुरावज्रधरः प्रसह्य बलस्य संख्ये', (७. ११८, १५)। 'नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते', (७. १४०, १०)। 'वज्रधरस्यैष निनादः', (७. १९६, २३)। 'यथा वज्रधरः पुरा बलेः', (८. ७९, ८७)। 'स्वयं वज्रधरः', (८. ९, ४७)। 'यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः', (९. २०, ६)। 'गते वज्रधरे', (९. ४८, ६०)। 'अथेङ्गितं वज्रधरस्य नारदः', (१२. २२८, ९०)। 'यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे', (१३. १२६, ३८)। 'वज्रधरोपमः', (१५. २०, ११)।

* **वज्रधारिन्** : 'यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम्', (६. ९८, ४६)।

* **वज्रधृक्** : १२. २२४, ९; १३. ४०, २९।

* **वज्रपाणि** : 'शक्रः साक्षाद्वज्रपाणिः', (१. ५५, १२)। 'वज्रपाणिं स्म मेनिरे', (१. ६९, १०)। 'वज्रपाणिरिव', (१. १४६, ४)। १. १९७, २१. २८। 'मिषतो वज्रपाणिनः', (३. १२६, ४२)। ३. १६७, ८। 'साक्षादपि वज्रपाणिः', (३. १७६, १४) 'निहन्युर्मन्युना विप्रा वज्रपाणिरिवासुरान्', (३. २००, ७८)। 'संहत्य निहतो वृत्रो मरुद्भिर्वज्रपाणिना', (३. २९२, ४)। 'रणे जित्वा कुरून्सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान्', (४. ३५. १९)। 'वज्रपाणिमिव', (४. ४९, २२)। 'वज्रपाणिरिवासुरान्', (४. ६१, ३०)। 'एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम्। अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥', (६. १९, ७)। ६. ५०, ७। 'यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान्', (६. ७९, २७)। 'न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवासुरान्', (६. ८२, ५५)। 'अयोधत संग्रामे वज्रपाणिरिवासुरान्', (६. ८६, ३८)। 'वज्रपाणिश्च देवराट्', (६. १०७, १६)। 'यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन् पर्वतोत्तमान्', (६. ११६, ३७)। 'वज्रपाणेरिवासुराः', (७. ३, १५)। 'वज्रपाणिरिवापरः', (८. ३६, २०)। 'महेन्द्रादपि वज्रपाणेः', (८. ३७, १३)। 'जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः', (९.

२४, ६६)। 'वज्रपाणिरपि स्वयं', (१०. ४, १. १७)। 'सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशाः (१३. १४, १७२)। 'वज्रपाणिः पुरन्दरः' (१४. ५५, २७)। 'वज्रपाणिः', (१४. ५८, ३०. ३४)।

* **वज्रभृत्** : १. १८, ४०; ५६, १९। 'अपि वज्रभृता स्वयम्', (१. २०३, १७)। 'परिरक्षति वज्रभृत्', (१. २२३, ७)। 'अपि वज्रभृता स्वयम्', (३. २१, २०)। 'नमस्कृत्य च वज्रभृत्', (३. १४२, २४)। 'महेन्द्र इव वज्रभृत्', (३. २४०, १५)। 'पश्य कर्णं महेष्वास अदितिं वज्रभृद्यथा', (३. २५४, २८)। 'वित्रासयित्वा सङ्ग्रामे दानवानिव वज्रभृत्', (४. ३६, ७)। 'अपि वज्रभृता गुप्तम्', (४. ५२, १०)। 'वज्रभृच्छुशुभे तत्र', (४. ५६, १८)। 'त्रिदशानिव वज्रभृत्', (५. १६०, २५)। 'निघ्नन् पररथान् वीरो दानवानिव वज्रभृत्', (६. १४, २८)। 'अपि वज्रभृतः स्वयम्', (६. २३, १९)। 'यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा', (६. ५०, ४२)! अपि वज्रभृता स्वयम्', (६. ६४, ७५)। 'वज्रभृता अपि', (६. ११९, ५७)। 'वज्रभृत् स्वयम्', (७. १३. ११; ८. ९, ४०)। 'हतो वज्रभृता वृत्रः', (८. ९६, २)। 'वज्रभृत्स्वयम्', (९. ३१, ५)। 'महेन्द्र इव वज्रभृत्', (१४. ७७, ३१)।

* **वज्रहस्त** : 'वज्रहस्तः शचीपतिः', (३. १९७, २५)। 'यथा देवराजस्य देवाः श्रूयन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे', (५. ४८, ६)। 'इन्द्रो वा ते हरिवान् वज्रहस्तः', (५. ४८, ६८)। 'वज्रहस्तान्महेन्द्रात्', (५. ४८, ६९)। 'पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवासुराः', (६. १०८, ३४)। 'मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान्', (८. ९, ५)। 'व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम्', (८. १४, ३६)। 'वज्रहस्तं पुरन्दरम्', (८. ३५, २२)। 'न्यहनत्पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम्', (८. ४९, ६०)। 'नमस्ते वज्रहस्ताय', (१३. १४, ८८)।

* **वज्रायुध** : ५. १५८, ३४; ६. ६२, ५८।

* **वज्रिन्** : 'वज्री चेन्द्र प्रतापवान्', (१. ३०, ४५)। 'वज्रीव', (१. १९३, ३)। १. १९७, १२; २०७, २५; २२५, ३०; २२७, ९। 'ईशानं सर्वलोकस्य वज्रिणं समुपासते', (२. ७, १५)। 'यथा वज्रीदानवशत्रुरेकः', (२. ६१, २४)। 'वज्री वज्रेण प्रहरिष्यति', (२. ६८, ७०)। ततः स वज्री बलिभिर्दैवतैरभिरक्षितः', (३. १०१, १)। ३. १२६, ३०; २२३, १०; २५२, २२। 'य इमे वज्रिणः सेना जयेयुः', (३. २९२, ७)। ३. ३०२, १०. ११; ३१४, ३। 'द्रवतस्तांस्तु संप्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव', (४. २३, २७)। 'अपि देवेन वज्रिणा', (४. ४७, १८)। ५. १३, १४। 'वज्री वा बलभित् स्वयम्', (५. ७६, १०)। ७. ७२, ७८; २०२. १००। 'त्रैलोक्यविजये यद्वद्दैत्यानां सह वज्रिणा', (८. १६, १७)। 'वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा', (८. १६, ४४)। 'निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन्वज्रीव पर्वतम्', (८. १६, ४८)। 'त्रैलोक्यविजये याद्दृग्दैत्यानां सह वज्रिणा', (८. १९, ६)। वज्रीवज्रहतानीव शिखराणि', (८. ६०, ७८)। 'दुःसहं वज्रिणा संख्ये', (८. ६४, ७०)। 'संख्ये वृत्रेण वज्रीव', (८. ६७, १९)। 'साक्षादपि वज्री पुरन्दरः', (९. ६२, २९)। १२. २२४, ३५; २२७, ११. २६। 'वज्रीशम्बरपाकहा', (१२. २२८, ७)। १२. २८२, १५; १३. ४०, २९; १०२, ६२; १४. १०, ११; ६१, २९।

* **वरद**, व० स्था० ।

* **वासव** : 'वर्षति वासवे', (१. २६, २६)। 'वर्मिणे विबुधाः सर्वे नानास्त्रैरवाकिरन्। पट्टिशैः परिघैः शूलैर्गदाभिश्च सवासवाः ॥', (१. ३२, १२)। 'नियोगाद्वासवस्य च', (१. ६७, ७४. १५४)। १. ८८, २। 'वासवतुल्यरूपः', (१. ८८, ७)। देवानामिव वासवः', (१. ९४, १२)। वासवविक्रमः', (१. ९९, १३)। १. १२३, २८. ३०। 'वासुकिं वासवोपमम्', (१. १२८, ६०)। 'मरुद्भिरिव वासवः', (१. २१४, ४)। १. २२६, १८; २२८, १७, २१। 'वासवं देवराजम्', (२. ६, १७)। 'वृत्रवासवयोरिव', (२. २३, २५)। 'लेभे वासवाद्राजा', (२. २४, १८)। 'वासवप्रतिमः', (२. ४४, ११)। 'राजा चित्ररथो नाम गन्धर्वो वासवानुगः', (२. ५२, २३)। ३. ९, १२। 'वृत्रवासवयोरिव', (२. १२, १०८)। 'वृत्रवासवयो राजन्यथा', (३. १६, २३)। 'बलिवासवयोरिव', (३. १७, ११)। 'अपि देवैः सवासवैः', (३. ३६, १७)। 'युद्धमभवल्लोमहर्षणम्। भुजप्रहारसंयुक्तं वृत्रवासवयोरिव', (३. ३९, ५८)। 'द्वितीय इव वासवः', (३. ४३, २२)। ३. ४५, १; ४७, २। 'वासवोपमः', (३. ८५, १११)। 'वासवसंमितम्', (३. ९६, ६)। 'वर्षयामास वासवम्', (३. ११०, २४)। ३. ११५, १७; १२१, २२; १३०, २२। 'सवज्र इव वासवः', (३. १५७, ३७)। 'स्तूयमानो द्विजाग्र्यैस्तु मरुद्भिरिव वासवः', (३. १५७, ७२)। ३. १६०, २२; १६४, १६; १६८, ५६। 'ते यान्तमनुगच्छन्ति देवाः सर्वे सवासवाः', (३. २००, ६२)। ३. २२३, ९. १२. १५; २२६, १७; २२७, ८; २३०, ७। 'मरुद्भिरिव वासवः', (३. २३७, ११)। 'पुरा जित्वेव वासवम्', (३. २८८, ७)। ३. ३०२, २१; ३१०, २०–२२. ३८। 'वृत्रवासवयोरिव', (४. १३, ३१)। 'वासवप्रतिमः', (४. ३९, १२)। 'नित्यं वर्षति वासवः', (४. ४७, २६)। 'युद्धामहेऽर्जुनं संख्ये दानवा इव वासवम्', (४. ४९, २३)। 'वासवतुल्यवीर्याः'. (४. ५४, १५)। 'तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति सहवासवाः', (४. ५६, ८)। 'वृत्रवासवयोरिव', (४. ५८, ४४)। 'बलिवासवयोरिव', (४. ५८, ५९)। 'सन्निपातो महानभूत्। किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव', (४. ५९, २)। 'सर्वे देवाः सवासवाः', (४. ६४, ३६)। 'युद्धं वृत्रवासवयोः', (५. ९, ५५)। ५. १०, १८. ४२; १३, १२. २०; १७, १०. १२। 'वासवेनापि साक्षात्', (५. २२, १५)। 'देवानामिव वासवः', (५. ५०, ४६)। 'जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात्', (५. ५५, २९)। 'ऋषीणामिव वासवः', (५. ८३, ८; ९०, ३४)। 'मरुद्भिरिव वासवः', (५. ९१, ४१)। 'दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः', (५. ९९, ११)। ५. १०४, २. ४। 'वासवस्य शचीमिव', (५. १०४, ९)। ५. १०४, १९; १०५, २. ७. ९. १५। 'देवैः सवासवैः', (५. १११, ६)। 'रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः। स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः ॥', (५. ११७, ८)। 'देवैरपिसवासवैः', (५. १३०, ३७)। 'नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा', (५. १४६, १२)। 'वासविर्वासवसमः', (५. १५१, १८)। देवानामिव वासवः', (५. १५६, १२)। 'मरुद्भिरिव वासवः', (५. १५७, १९)। 'ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः', (५. १६७, ३८)। 'भयाद्वासवस्यापि', (५. १७८, ४६)। 'ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्', (६. ११, १७)। 'वर्षति वासवः'. (६. ११, ३४)। 'वासवोपमः', (६. १४, १)। 'देवानामस्मि वासवः', (६. ३४, २२)। 'अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ', (६. ४८, ५१)। 'देवैरपि सवासवैः', (६. ५३, ४; ५८, ४२)। 'निघ्नन्तं मा रिपून् पश्य दानवानिव वासवम्', (६. ७७, ३१)। 'देवैरपि सवासवैः', (६. ८१, ८)। 'संग्रामे समतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवैः', (६. ९०, ५९)। 'वसवो वासवं यथा', (६. ९६, १६)। 'त्रिदशा इव वासवम्', (६. ९७, २४)। 'वासवेनापि', (६. ९८, १३)। 'सवज्र इव वासवः', (६. १००, १२)। 'मयं जित्वेव वासवः', (६. १००, २०)। 'युद्धं वृत्रवासवयोरिव', (६. १००, ५१)। 'अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः', (६. ११०, २२)। 'देवैरपि सवासवैः', (६. ११२, २३)। 'यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत्', (६. ११६, ३६)। 'वसूनामिवपावकः', (७. ६, ५)। 'मरुतामिव वासवः', (७. ६, ५)। 'देवान् सवासवान्', (७. ७, २१)। 'ते व्यध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः', (७. ७, ४७)। 'वासवस्येव', (७. २७, २८; २८, ११)। ७. ४१, २६; ६२, ५। 'द्वितीय इव वासवः', (७. ६३, ७)। 'देवाः सवासवाः', (७. ७७, २)। 'मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः', (७. ८४, १९)। 'देवाः सवासवः', (७. ८७, १५)। 'सवज्र इव वासवः', (७.

८८, १५)। 'वर्षति वासवे', (७. ९३, ५२)। 'देवाः 'सवासवाः', (७. ९८, ४३)। 'बलं हत्वेव वासवः', (७. १०९, ३५)। 'वासवस्येव मातलिः', (७. ११२, ६०)। 'बलिवासवयोरिव', (७. ११७, २)। 'मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः', (७. ११९, २६)। 'देवैरपिसवासवैः', (७. १३३, ९)। 'वासवस्यापि', (७. १४८, ९)। 'देवैरपि सवासवैः', (७. १५१, ३२)। 'वासवस्येव पावकिः', (७. १५८, ७)। देवैरपि सवासवैः', (७. १५८, ५०)। 'जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया', (७. १५८, ५१)। 'देवाः सवासवाः', (७. १५९, ९७)। 'वासवस्येव संयुगे', (७. १६०, ५५)।, 'यादृशं ह्यभवद्राजन् जंभवासवयोः पुरा', (७. १६७, २४)। 'बलिवासवयोरिव', (७. १७०, ३२)। 'वासवस्येव नर्दतः', (७. १६७, ४७)। 'वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥ व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।', (७. १७५, १८. १९)। 'वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम्', (७. १७५, ८२)। 'शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन', (७. १७९, ५०)। 'वासवो वा कुबेरो वा', (७. १८०, १६)। 'वासवेन महाबाहो क्षिप्ता', (७. १८०, २१)। 'देवानामिव वासवः', (७. १८२, ३७)। 'देवैरपि सवासवैः', (७. १८३, २)। 'नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा', (७. १८६, २७)। 'देवैरपि सवासवैः', (७. १९०, १०)। 'वासवस्येव निर्जयम्', (७. १९३, ७) व्यक्तमभ्येति वासवः', (७. १९६, २४)। देवाः सवासवाः', (७. २०२, ६७)। 'विष्णुवासवयोरिव', (८. ३, १५)। 'देवैरपि सवासवैः', (८. ९, ६७)। 'वृत्रवासवयोरिव', (८. १४, ३९)। 'देवा अपि सवासवाः (८. ३१, ६६)। 'यमवरुणकुबेरवासवा वा', (८. ३७, ३१)। सवज्राद्वापि वासवात्', (८. ४२, ३६)। 'देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः', (८. ४३, ३)। 'दानवानिव वासवः', (८. ५६, १०७)। 'अश्विनाविव वासवम्', (८. ६५, १८)। 'देवैरपि सवासवैः', (८. ६६, ६)। 'वासवविक्रमः', (८. ६८, १०)। 'देवैरपि सवासवैः', (८. ७२, ३२)। 'वासवोपमः', (८. ७३, ९)। 'वृत्रः प्राप्येव वासवम् (८. ७३, ४२)। 'वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष', (८. ७९, १६)। 'सूर्यस्य चैवासीद्विवादो वासवस्य च', (८. ८७, ६०)। 'सुरासुराः शम्बरवासवाविव', (८. ८८, ९)। 'कुबेरवैवस्वतवासवानां तुल्यप्रभावाः', (८. ९२, १३)। 'समानयानाविव विष्णुवासवौ', (८. ९४, ५७) 'सदस्यहूताविव विष्णुवासवौ', (८. ९४, ६६)। 'जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा', (९. ७, ३८)। 'सवज्रमिव वासवम्', (९. १२, २)। 'अजेयौ वासवेनापि', (९. १६, २०)। ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे दैत्याः पुरा वासवस्येव राजन्', (९. २०, ६)। 'यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि', (९. २६, २५)। 'यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा । नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मिं समविशत् ॥', (९. ४३, ३४)। 'चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः', (९. ४३, ३६)। 'देवाः सर्वे सवासवाः', (९. ४५, २९)। ददावनलपुत्राय वासवः', (९. ४५, ३६)। 'सर्वे देवाः सवासवाः', (९. ४६, ५९)। 'सर्वे देवाः सवासवाः', (९. ४७, १८)। 'देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पति पुरोगमाः ॥ ज्वलनं तं समासाद्य प्रीताऽभूवन्सवासवाः', (९. ४७, २०. २१)। 'सर्वे देवाः सवासवाः', (९. ४९, १९)। 'उभौ सदृशकर्माणौ यमवासवयोरिव', (९.५५, २८)। 'एवं तदभवद्युद्धं घोररूपं परंतप। परिवृतेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥'' (९. ५७, २४. ३८)। 'अपि देवेषु वासवः', (१०. ४, ७)। 'अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ। रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ॥', (१०. १३, ७)। 'कर्णार्जुनसहायोऽहं जयेयमपि वासवम्', (१२. १, ३९)। 'वासवानुमते', (१२. ३१, ४१)। 'वासवोपमः', (१२. ५०, २६)। 'ब्राह्मणमिव वासवः', (१२. ५३, २६)। 'एतद्वृत्तं वासवस्य', (१२. ९१, ५६)। १२. ९८, ५. ९। 'बृहस्पतिं देवपतिरभिवाद्य कृताञ्जलिः। उपसंगम्य पप्रच्छ वासवः परवीरहा ॥', (१२. १०३, ३)। 'सुखं स्वपिति वासवः', (१२. १०३, १२)। १२. १६६, ६७; १७३, १२। 'वासवं सर्वदेवानामध्यक्षमकरोत्प्रभुः', (१२. २०७, ३६)। 'वासवस्य च संवादं बलेः', (१२. २२३, २)। १२. २२३, ३. ११. २६; २२४, २९. ४२. ५५; २२५, २. ४. ८. १५। 'बलिवासवसंवादम्', (१२. २२७, ७। १२. २२७, ४६. ७०. ७४. ११९। 'वृत्रहन्ता च वासवः', (१२. २२८, ८६)। 'ववर्ष वासवः', (१२. २२८, ९२)। १२. २८१, २७. ३३. ३८; २८२, ५८. ५९; २८३, २। 'ततोऽभिषिच्य राज्येन देवानां दिवि वासवं। सप्तर्षयश्चान्वयुञ्जन्नराणां दण्डधारणे ॥', (१२. २९४, १९)। १२. ३२३, १८। 'ववर्ष वासवस्तोयं रसवच्च सुगन्धि च', (१२. ३३३, ७)। 'विषये वासवस्तस्य सम्यगेव प्रवर्षति', (१३. २, १४)। 'वासवोप्याजगाम', (१३. २, ८९)। 'वासवस्य च संवादं शुकस्य च महात्मनः', (१३. ५, २)। 'वासवस्य', (१३. ५, ११)। 'द्वितीय इव वासवः', (१३. ६, ३४)। १३. १२, ४४. ५०। वासवः = शिव, सहस्रनामों में से एक (१३. १७, ६४) 'देवाः सवासवाः', (१३. २१, ६)। 'देवैः सवासवैः', (१३. २६, ४७)। १३. २९, ७. २५; ३३, ७; ३४, ३; ४१, २३; ६२, ६२. ९३; ७३, ६; ८३, १७. २१. २३. ४१. ४२; ८६, १६; ९३, १४२। 'सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्ये च वासवः', (१३. १००, ३७)। 'गौतमस्य मुनेस्तात संवादं वासवस्य च', (१३. १०२, ३)। 'यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाचरेत्', (१३. १०७, १०)। १३. १२५, १८. ५१. ६२। 'अश्वमेध चतुर्भागं फलं सृजति वासवः', (१३. १२९, ७)। 'वासवं च शचीपतिम्', (१३. १३२, १) 'विश्वेदेवाः सवासवाः', (१३. १४०, १४)। 'देवाः शरणं वासवं ययुः', (१३. १५५, २०)। 'सर्वे देवाः सवासवाः', (१३. १५६, २९)। 'वासवोप्यसुरान्सर्वान्विजित्य च निपात्य च। इन्द्रत्वं प्राप्य लोकेषु ततो वव्रे पुरोहितम् ॥', (१४. ५, ७)। 'वासवतुल्यः', (१४. ५, १४)। 'वासवोऽपि मरुत्तेन स्पर्धते', (१४. ५, १५)। १४. ७, ९. १३. १७; ९, २५; १०, ३. ८. ९। 'कामान्सर्वान् वर्षतु वासवो वा', (१४. १०, १५)। 'ववर्ष वासवः', (१४. ५३, ६)। १४. ५५, ३३। 'कृत्वा नसुकरं कर्म दानवेष्विव वासवः', (१४. ५९, १८)। 'देवैः सवासवैः', (१४. ८०, ४४)। 'यदि द्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः', (१४. ९२, १७. १९)। 'वासवोपमः', (१५. १७, ५. ७)। 'दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च', (१६. ४, २५)।

* **त्रिबुधश्रेष्ठ** : ३. १६४, १७; १२. ३३, ४१।

* **विबुधाधिप** : ३. १६८, २७; ९. ४८, १९; १२. २२४, ५९।

* **विबुधाधिपति** : 'नीतिं विबुधाधिपतेः, (१. १३९, १८) ३. १६७, १४।

* **विबुधेश्वर** : ३. १६४, १७; १२. ३३, ४१।

* **विश्वभुज्** : ६. २१, १७।

* **वृत्रनिषूदन** : १. ६३, १७; ३. ४७, ६; ५. १४, ४; १८, ३। 'चकार साहाय्यमथार्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य,' (६. ५९, ८०)।

* **वृत्रशत्रु** : ३. ४३, २३; ५. ५६, १६।

* **वृत्रहन्** : 'वृत्रहगः क्रतुं यथा', (१. ५५, ८)। 'विक्रमं वृत्रहा जघ्नात्', (१. १०३, १८)। 'तच्छ्रुत्वा वृत्रहा तेभ्यः', (१. २२६, १७)। 'अपि वृत्रहणा युद्धे', (३. १२, १३५)। 'मृद्गन्सुरानिव वृत्रहा', (३. ३३, ८६)। ३. ३७, ५६; ४३, २६। 'यथा च वृत्रहा सर्वान्सपत्नान्निर्दहन्पुरा', (३. ८५, १२८)। 'संप्राप्तस्त्रिदिवे राज्यं वृत्रहा वसुभिः सह', (३. १६२, ५)। 'मरुतो वृत्रहा यथा', (३. २४९, २४)। 'मरुद्भिः सह वृत्रहा', (५. ६१, १८)। 'न्यहनत् पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा', (६. ७२, ३२)। 'महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः। नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥', (६. ८८, १७)। 'हित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम्', (७. ११७, ४५)। 'अपि वृत्रहणा', (७. १९३, ४९)। 'जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा', (८. ८६, १६)। 'बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा

यथा', (९. १२, ६६)। १२. २८२, १५। 'वृत्रहा पाकशासनः', (१३. ४०, १८)। १३. ६२, ५५। 'शतक्रतुं वृत्रहणं', (१३. ९४, ६; १०२, ५५)।

* **वृत्रहन्तृ** : 'भवनाद्वृत्रहन्तुः', (३. १७६, १)। 'वृत्रहन्ता च वासवः', (१२. २२८, ८६)।

* **वृषाकपि** : १२. २२७, ११८।

* **शक्र** : १. १, ११४ (अर्जुन के पिता)। १०१ १६१। 'शक्रसूर्यौ', (नीलकण्ठी में, १. १, १८७)। 'शक्रप्रतिमतेजसः', (१. १, २२४)। 'भगदत्तो महाराजो यत्र शक्रसमो युधि', (१. २, २५६)। कद्रू द्वारा इनकी स्तुति (१. २५, ७-१७)। १. ३०, ४३; ३१, ६. ७. ११. ३१; ३३, २५; ३४, ४. ११. १३. २०। 'उवास भवने तस्मिञ्छक्रस्य मुदितः सुखी', (१. ५३, १८)। 'शक्रस्य यज्ञः शतसंख्यः', (१. ५५, २)। 'शक्रः साक्षाद्वज्रपाणिः', (१. ५५, १२)। 'आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः', (१. ६०, ११)। 'यथा शक्रः सुखावहः', (१. ६१, १५)। 'देवाः शक्रपुरोगाः', (१. ६३, ३)। १. ६३, १८. २६। 'शक्रोत्सवेन', (१. ६३, २७)। 'शक्रादयः सर्वे', (१. ६४, ५०)। १. ६५, २। बारह आदित्यों में से एक (१. ६५, १५)। 'द्वादशैवादिते पुत्राः शक्रमुख्या', (१. ६६, ३६)। १. ६८, १४५; ७१, २०; ७२, १। 'शक्रसंसदम्', (१. ७२, ११)। 'यथा शक्रो मरुत्पतिः', (१. ७४, १२९)। १. ७८, ३८। 'शक्रविष्णू इवापरौ', (१. ८३, ९)। १. ८६, ३; ८७, ३. ४; ८८, ४. ९। 'बलहाऽपि शक्रः', (१. ८६, ११)। १. ९२, ८। 'शक्रप्रतिमतेजसः', (१. ९४, ४)। 'शक्रादर्जुनमिति', (९. ९५, ६१)। 'शक्रप्रतिमतेजसा', (१. १००, ९)। १. १११, २८; १२३, २८। 'एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी। अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥', (१. १२३, ३५)। १. १२३, ३८. ४५। पाण्डु के साथ इनका उल्लेख (१. १७०, ६५)। 'शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम्', (१. १७३, ३)। 'अशोभत तदा तेन शक्रेणेवामरावती', (१. १७७, ४२)। 'शक्रप्रतिमम्', (१. १८८, २७)। १. १९७, ३. १३. १६. १८। 'शक्रस्यांशः पाण्डवः सव्यसाची', (१. १९७, ३४)। 'शक्रप्रख्यान्', (१. १९७, ३९)। 'शक्रस्य तेजसा', (१. २२३, ८)। 'शक्रायुधसमावुभौ', (१. २२५, १४)। १. २२७, २७. ४०. ४३. ४४. ४९; २३४, ९। 'शक्र इवामरैः', (२. २, ९)। 'स्वां पुरीं प्रययौ हृष्टो यथा शक्रोऽमरावतीम्', (२. २, २६)। 'शक्रो यथा', (२. ४, ८)। 'शक्रस्यैति सलोकताम्', (२. ५, १२८)। 'शक्रस्य सभा', (२. ७, १)। 'तथा देवर्षयः सर्वे पार्थ शक्रमुपासते', (२. ७, ९)। 'शक्रस्य तु सभायाम्', (२. १२, ५)। 'सह शक्रेण स्पर्द्धते', (२. १२, ७)। 'शक्रस्य संसदि', (२. १२, २६)। 'प्रत्युद्ययौ महातेजाः शक्रं बल इवासुरः', (२. २३, ८)। 'शक्रविष्णू हि संग्रामे चेरतुस्तारकामये', (२. २४, १७)। १. २४, १९। 'शक्रादनवरः', (२. २६, १२)। 'शक्रस्येव त्रिविष्टपे', (१. ३३, ५३)। 'यथा शक्रस्य', (२. ४७, २३)। 'यथैव मधु शक्राय', (२. ४९, २६)। 'अद्रोहसमयं कृत्वा चिच्छेद नमुचेः शिरः। शक्रः साभिमता तस्य रिपौ वृत्तिः सनातनी', (२. ५५, १३)। 'शक्रस्य नीतिम्', (२. ७४, ७)। 'शक्रेणापि समः', (२. ७८, १३)। 'शक्रप्रतिमतेजसः', (३. १, ३)। 'एतद्ब्रह्मा ददौ पूर्वं शक्राय सुमहात्मने। शक्राच्च नारदः प्राप्तो धौम्यस्तु तदनन्तरम्', (३. ३, ७८)। 'दीनस्य तु सतः शक्र पुत्रस्याभ्यधिका कृपा', (३. ९, १६)। 'ब्रह्मशंकरशक्राद्यैर्देववृन्दैः', (३. १२, ५४)। 'शक्र इव', (३. २४, २१)। 'शक्रस्य समप्रभावः', (३. २५, ११)। ३. ३३, ६; ३., १४. १५. ४९. ५०। 'शक्रं सुरेश्वरं', (३. ३८, ११)। 'शक्राशनिसमैर्मुष्टिभिः', (३. ३९, ५६)। 'शक्राभिषेके', (३. ४०, ३)। ३. ४१, १३; ४२, १३। 'शक्रस्य पुरींताममरावतीम्', (३. ४२, ४२) 'शक्रस्य दयितां पुरीम्', (३. ४३, ७)। 'शक्रासने', (३. ४३, २०)। 'शक्रासनम्', (३. ४३, २२)। ३. ४४, १. ४. ६; ४५, १. १३; ४६, ३१। 'शक्रतुल्यम्', (३. ४६, ३३)। ३. ४६, ५४. ६०; ४७, ३। 'शक्रासनमवाप्तवान्', (३. ४७, ४) 'शक्रो वृत्रनिषूदनः', (३. ४७, ६)। ३. ५४. २०. २२; ५५, ६. ७. ११. २३। 'शक्रः प्रीयमाणः शचीपतिः', (३. ५७, ३६)। 'शक्रः संप्रेक्ष्य बलवृत्रहा', (३. ५८, २) ३. ५८, ३ 'मामुपस्थास्यति व्यक्तं दिवि शक्रमिवाप्सराः', (३. ७८, १४)। ३. ८६, ७. १४। 'शक्रमिवामराः', (३. ९१, २)। 'शक्रस्य भवनम्', (३. ९१, ५)। ३. ९१, ६; १००, २४; १०१, १०. ११. १२। 'स शक्रवज्राभिहतः पपात', (३. १०१, १५)। ३. १०१, १६; १०२, २६। 'देवाः शक्रपुरोगमाः', (३. ११०, १३)। ३. ११०, २८; ११५, १७; १२४, १३; १२५, ७. ९। 'यथा मान्धातृशब्दश्च तस्य शक्रसमद्युतेः' (३. १२६, ३)। 'शक्रसमं सुतम्', (३. १२६, ११)। ३. १२६. २६. २९. ३०। 'प्रदेशिनीं शक्रदत्तामास्वाद्य स शिशुस्तदा', (३. १२६, ३२)। ३. १२६, ३५। 'शक्रस्यार्धासनम्', (३. १२६, ३८)। 'स्पर्धमानस्य शक्रेण', (३. १२९, ४)। ३. १३५, २३. ३२. ३३। 'शक्रादनवरः', (३. १४१, ११)। ३. १४२, २०. २५। 'शक्रसदनप्रख्यं', (३. १४५, ३९)। 'शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम्', ३. १४६, ७०)। 'शक्रवत्', (३. १५४, २३)। 'शक्रतुल्यपराक्रमः', (३. १६०, २३)। 'देश कालान्तरप्रेप्सुः कृत्वा शक्रः पराक्रमम्। संप्राप्तस्त्रिदिवे राज्यं वृत्रहा वसुभिः सह', (३. १६२, ५)। 'शक्रसद्मनि', (३. १६२, २२)। 'गते तु तस्मिन् नरदेववर्यः शक्रात्मजः शक्ररिपुप्रमाथी। शक्रेण दत्तानि ददौ महात्मा महाधनान्युत्तमरूपवन्ति ॥', (३. १६५, १०)। ३. १६५, १२; १६६, १६; १६७, १. ५; १६८, २४. ३१. ४१। 'ततः शक्रस्यभवनमपश्यममरावतीम्', (३. १६८, ४५)। ३. १६८, ५५। 'शक्रस्य भवने', (३. १६८, ५९)। ३. १६८, ८४; १७२, ३२; १७३, ६८; १७४, ६. ८। 'पतता हि विमानाग्रान्मया शक्रासनाद्भुताम्। कुरुशापान्तमित्युक्तो भगवान् मुनिसत्तमः', (३. १७९, १८)। 'राजा वै प्रथितो धर्मः प्रजानां पतिरेव च। स एव शक्रः शुक्रश्च स धाता च बृहस्पतिः ॥', (३. १८५, २६)। 'शक्रादींश्चापि पश्यामि कृतस्नान् देवगणानहम्।', (३. १८८, ११८)। 'शक्रश्चाहं सुराधिपः', (३. १८९, ५)। 'बकशक्रसमागमम्', (३. १९३, ५)। 'त्रयस्त्रिंशच्च देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः', (३. २१४, १९)। ३. २२३, ११; २२४, १६; २२६, १७-१९; २२७, ६. १४; २२९, १३-१५. २०; २३०, ७. ११। 'ऐरावतं समास्थाय शक्रश्चापि सुरैः सह', (३. २३१, ३३)। ३. २३१, ४७. ७१. ७२। 'दैतेया इव शक्रेण विषादमगमन् परम्', (३. २४५, १८)। 'शक्र इवामरैः', (३. २४६, २६)। 'यथा शक्रो', (३. २५५, ३)। 'शक्रस्य का त्वं सदनात्', (३. २६५, ४)। ३. २७१, ४२। 'ददौ शक्राय च महीं विष्णुर्देवः सनातनः', (३. २७२, ६९)। ३. २७६, ६। 'शक्रप्रभृतयश्चैव सर्वे ते सुरसत्तमाः', (३. २७६, ११)॥ 'शक्रादनवरम्', (३. २७७, १०)। 'शक्रप्रतिमतेजसा', (३. २८०, ५८)। 'अतीव चित्रमाश्चर्यं शक्रप्रह्लादयोरिव', (३. २८९, १८)। ३. २९०, १३। 'जहृषुर्देवगन्धर्वा दृष्ट्वा शक्रपुरोगमाः', (३. २९०, २७)। ३. २९१, १८। 'देवैः शक्रपुरोगमैः', (३. २९१, ४१)। 'देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः', (३. २९१, ४७)। ३. ३००, ५. २६; ३०१, १८; ३०२, १६; ३१०, १६–१८. ३४. ३९। 'शक्रप्रतिमगौरवान्', (३. ३१३, १)। 'वज्रं प्रविश्य शक्रस्य', (३. ३१५, १७)। 'त्रिदशानां यथा शक्रो', (४. २, २३)। 'बिभ्रती विपुलौ बाहू शक्रध्वजसमुच्छ्रयौ', (४. ६, १०)। अर्जुन ने ८५ वर्ष तक गाण्डीव धारण किया (शक्रोऽशीति पञ्च च, ४. ४३, ६)। 'पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः। किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम् ॥', (४. ४४, १७)। 'यथा शक्रस्य मातलिः', (४. ४५, १९)। ४. ४५, ४०। 'एकश्च पञ्चवर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत', (४. ४९, ८)। 'शक्रः सर्वामरैः सह', (४. ५५, २८)। 'ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम्',

(४. ५६, ३) । ४. ६०, १३ । अर्जुन ने शक्र से दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी (४. ६१, ३१) । 'शक्रवैश्रवणोपमः', (४. ७०, १४) । 'शक्रभिवर्षय', (४. ७०, २०) । ५. ९, ७. १३. १९. २३. २७. ३४. ३५. ४४. ४६. ५०. ५२. ५५. ५७. ५८; १०, ७. १२–१४. १६. १९. २२. २६. ३०. ३२. ३७. ४४; ११, ४ । शक्रस्य महिषी प्रिया', (५. ११, १७) । ५. ११, २५ । 'एतदेवं विजानन् वै न दास्यामि शचीमिमाम् । इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥', (५. १२, २२) । ५. १२, ३०; १३, ५. ९ । 'शक्रः सुरगणेश्वरः', (५. १३, ११) । ५. १३, १४. १७. २३; १४, ४. १७; १५, २४. २७. २८; १६, १०. १४. १५. २३. २४. २८. २९. ३१. ३२. ३४; १७, ७. १८; १८, १. ३. १२. १६ । 'शक्रसमो धनञ्जयः', ५. २२, ३३) । ५. २९, १३ । 'देवाः सशक्राः', (५. ३७, ४२) । 'विविशुस्तां सभां राजन् सुराः शक्रसदो यथा', (५. ४७, १०) । 'देवा सह शक्रेण', (५. ४८, ८१) । इनके द्वारा अर्जुन को अस्त्र प्रदान करने का उल्लेख (स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं ब्राह्मं चास्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे', (५. ४८, १०६) । ५. ४९, १०. १२. १३ । 'शक्रप्रतिमतेजसः', (५. ५१, ४) । ५. ५५, ५२ । 'भौमनः सह शक्रेण', (५. ५६, ७) । शक्रमिवामराः', (५. ९४, ९) । ५. १००, ४. ७ । 'सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत्', (५. १०४, १) । शक्रस्यायं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च', (५. १०४, २) । 'सखा शक्रस्य', (५. १०४, १४) । ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम्', (५. १०४, २२) । ५. १०४, २८; १०५, १ । 'विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ 'एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः', (५. १०५, ३५) । 'अतो मूलं सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत', (५. १०८, ७) । 'अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान्', (५. १०९, १३) । 'अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम् । विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः', (५. ११०, ८) । 'शक्रो बलनिषूदनः', (५. १२०, १७) । 'शक्रसमान् ज्ञातीन्', (५. १२४, ३०) । 'त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम्', (५. १३३, ४४) । सप्तमाश्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति । संग्रामो युज्यतां तस्यां तमाहुः शक्रदेवताम् ॥', (५. १४२, १८) । 'शक्रेणेव दिवौकसः', (५. १५६, १४) । ५. १५८, ३२ । 'क्रोधार्थं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते', (५. १९४, २२) । 'पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः', (६. ३, ३५) । मेरुपर्वत पर यज्ञ करने का उल्लेख (६. ६, १९) । 'शक्र इव', (६. १३, १२; १४, १५ । शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम्', (६. १७, ८) । 'शक्रदिभिः सुरैः', (६. २१, १६) । 'शक्रेणेव धनुष्मता', (६. २२, ४) । 'शक्र इवामरेशः', (६. २२, ८) । 'शक्राशनिसमस्वनम्', (६. ४४, ११) । 'बलं शक्र इवाहवे', (६. ४५, ४२) । 'शक्रचापसमप्रभम्', (६. ४८, ५) । 'शक्रः क्रोधात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव । स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥', (६. ४९, २६) । 'शक्राशनिसमस्पर्शम्', (६. ५३, ९) । 'शक्रप्रतिमप्रभावमिन्द्रात्मजम्', (६. ६०, २२) । 'शक्रस्येवाभिगर्जतः', (६. ७१, ६) । 'शक्रसमः', (६. ७३, २५) । देवाः शक्रपुरोगमाः', (६. ७७, २९) । 'यथा शक्रस्त्रिविष्टपे', (६. ८१, १९) । 'यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् । विप्रचित्तिं दुराधर्षं दैवतानां भयङ्करम् ॥', (६. ९४, ३१) । 'महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभो गता', (६. ९५, ६३) । 'शक्रस्येवामरा दिवि', (६. ९७, २६) । 'तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ॥ यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयो पुरा ।', (६. १००, ५३. ५४) । 'मयं शक्र इवाहवे', (६. १०१, २२) । 'शक्राशनिसमद्युतिम्', (६. १०१, ४३) । 'शक्रसमाः', (६. १०३, २२) । 'यथोवाच पुराशक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः', (६. १०७, १००) । 'शक्राशनिसमस्पर्शान्', (६. १०८, ३५) 'शक्रचापोपमम्', (६. १०८, ३६) । 'मयशक्रौ यथा पुरा', (६. ११०, ३१) । 'यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन् पर्वतोत्तमान्', (६. ११६, ३७) । 'यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे', (६. ११८, ३३) । 'शक्रस्येव', (६. १२१, २६) । 'शक्रमुखा सुराः', (७. ७, ६) । 'दिवि शक्रमिव', (७. ९, २२. २३) । ७. ११, २३ । 'यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ', (७. १४, ४८) । 'शक्राशनिस्वोपमः', (७. १५, २४) । 'यथा शक्ररथः', (७. १९, ६) । 'शक्राशनिहताः द्रुमवन्त इवाचलाः', (७. १९, ३०) । 'शक्रस्यातिथितां गताः', (७. १९, ३६) । 'शक्रो देवगणैरिव', (७. २०, २०) । 'पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् । धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥', (७. २३, ८८) । ७. २७, २९ । 'शक्रोपमाः', (७. ३४, १३) । ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम्', (७. ३६, ६) । 'धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा । धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ॥', (७. ४०, १८. १९) । 'स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतोबली । अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत ॥', (७. ४५, २) । 'कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णि शक्रलोकं गतो ध्रुवम्', (७. ४९, ३८) । 'शक्रसमं महाबलं रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जनाः', (७. ५०, १५) । 'तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले । श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥', (७. ५२, २७) । 'शक्रप्रतिमविक्रमाः', (७. ५५, २) । 'शक्रेण प्रजाःकृता निरामयाः', (७. ५२, ४७) । 'अर्जुन के पिता के रूप में इनका उल्लेख (७. ७४, ४) । 'शक्रसूर्यगुणोदयम्', (७. ८०, ४७) । 'शक्रादींश्च सुरोत्तमान्', (७. ९४, ५२) । ७. ९४, ६२ । 'शक्रजंभौ यथा पुरा', (७. ९६, २०) । शक्रो देवगणैः सह', (७. १०१, १७) । 'शक्रध्वजसमप्रभम्', (७. १०५, ११) । 'प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः', (७. १०८, ४४) । 'शक्रशम्बरयोरिव', (७. १०९, २) । 'शक्रतुल्यपराक्रमैः', (७. ११२, ५०) । 'शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः', (७. ११८, ९) । 'भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन', (७. ११८, १४) । 'त्रैलोक्य कांक्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव', (७. १२२, ६५) । 'शक्रतुल्यबलः', (७. १२४, २) । 'यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः', (७. १२४, ४०) । 'ते बध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः', (७. १२५, ४९) । ७. १२७, ४८ । 'शक्रवैरोचनी यथा', (७. १३६, ३४) । 'शक्रचापमिवापरम्', (७. १३९, ४०) । 'पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा', (७. १४२, ८) । 'शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरम्', (७. १४६, १) । 'तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम्', (७. १४८, ३०) । 'सुरैरिवासुरवधे शक्र शक्रानुजाहवे', (७. १४९, १२) । 'सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः', (७. १४९, १५) । 'अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे । विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव', (७. १५६, १२७) । 'शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां च रथव्रजाः', (७. १५८, ४) । 'तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम्', (७. १५८, ८) । 'मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज', (७. १५८, ५२) । 'शक्रतुल्यबलः', (७. १५८, ६१) । 'शक्रो देवगणैरिव', (७. १५९, २०) । 'शक्रं दैत्यगणा इव', (७. १५९, ३२) । 'तथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः', (७. १५९, ३४) । 'शक्रं दैत्यचमूमिव', (७. १५९, ४७) । 'शक्रप्रह्लादयोरिव', (७. १६६, ३०) । 'शक्रो देवगणेष्विव', (७. १७१, ५२) । 'शक्रप्रह्लादयोरिव', (७. १७३, ६८) । 'यं वै प्रादात्सूत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय', (७. १७९, ५३) । 'शक्रशक्त्या', (७. १७९, ५८) । 'ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः', (७. १७९, ६४) । 'उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च ते । प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥', (७. १८०, १९) । 'प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया', (७. १८०, ३०) । 'शक्रमुक्ता यथाशनिः', (७. १८१, ९) । 'शक्रदत्ता', (७. १८१, २८) । 'ततोद्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया', (७. १८२, ४) । 'पार्थे वा शक्रकल्पे', (७. १८३, ९) । 'यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा', (७. १९०, १) । 'अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः', (७. १९०, ५०) । 'पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः', (७. १९७, ६) । 'शक्रो यथा अप्रतिद्वन्द्वो दिवि',

(७. १९९, ५०)। 'शक्रचापमिवापरम्', (७. २००, ११५)। 'शक्रस्य वज्रेग', (७. २०२, ८५)। 'शक्रो देवगणैर्वृतः', (७. २०२, ८६)। 'शक्रादींश्च सुरोत्तमान्', (७. २०२, ९१)। 'प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधादितस्य वै', (७.२०२, ९८)। 'शक्रसमानवीर्यः शल्यः', (८. ७, १०)। 'घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान्', (८. ९, ४९)। 'यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ', (८. १३, ३०)। 'शक्र इवासुरान्', (८. १९, ५८)। 'यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः', (८. २४, ४७)। 'जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः', (८. २७, २७)। 'कर्णस्य भुजयोः वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि', (८. ३१, १९)। 'शक्रशक्तिविनाकृतम्', (८. ३१, ३८)। 'तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसंमतम्', (८. ३१, ४४)। 'देवतानामपि रणे सशक्राणाम्', (८. ३२, २९)। 'शक्रो मरुद्वृतः', (८. ३३, ३६)। 'देवाः शक्रपुरोगमाः', (८. ३३, ४६)। 'शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत्', (८. ३५, ४७)। 'धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे', (८. ५६, १२)। 'अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः। असौ गच्छति कौरव्यः द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥', (८. ५८, ४८)। 'पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धाधिष्ठिताः पुनः। जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवासकृत् ॥', (८. ६०, ७)। ८. ६०, ११। 'शक्रेणेव यथा दैत्यान् हन्यमानान्महाहवे', (८. ६०, ३३)। 'शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः', (८. ६०, ३५)। 'शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा', (८. ६०, ९१)। 'तावभ्यनन्दद्राजाऽपि विवश्वानश्विनाविव। हते महासुरे जंभे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥', (८. ६५, १९)। 'शक्रतुल्यबलः युद्धे', (८. ६६, २४)। 'शौर्येण शक्रस्य', (८. ६८, १३)। 'शक्रतुल्यपराक्रमाः', (८. ७२, १८)। 'शक्रतुल्य-पराक्रमौ', (८. ७३, १२)। 'आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः', (८. ७३, ५४)। 'प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायैव हरिर्यथा', (८. ७३, ५८)। 'शक्रेणेव यथाऽशनिम्', (८. ७४, ६)। 'शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः (८. ७६, २२)। 'शक्रचापप्रतिमेन धन्वना', (८. ८२, २०)। 'मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे', (८. ८२, २७)। 'उदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा', (८. ८३, ३१)। 'विद्ध्वेव शक्रं नमुचिः', (८. ८५, २७)। ८. ८७, ५८. ७०। 'शक्रशम्बरयोरिव (युद्धं)', (८. ८७, ९१)। 'शक्रो नमुचेरिवारेः', (८. ८९, ४६)। 'लोकपालाः सशक्राः', (८. ९०, २३)। 'धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम्', (८. ९०, ६९)। 'स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः', (८. ९१, २९)। 'शक्रतुल्यबलाः', (९. १, १७)। 'यथाशक्रःवज्रैरिव', (९ ९, २१)। 'शक्राशनिरिवोत्सृष्टः', (९. १४, ४२)। 'यथापूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये', (९. १५, ४३)। 'हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले', (९. १९, २१)। 'ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय। जम्भो यथा शक्रसमागमे वै नागेन्द्रमैरावणमिन्द्र वाह्यम् ॥', (९. २०, १२)। 'योधयञ्शुशुभे राजन्बलिं शक्र इवाहवे', (९. २२, ३२)। ९. ३२, ३२। शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्', (९. ३३, ३७)। ९. ४३, ३२. ३८. ४०; ४४, ३१। 'शक्रवीर्योपमाः', (९. ४६, ३९)। 'यथास्मान् सुरराट् शक्रो भयेभ्यः पाति सर्वदा', (९. ४७, ६)। ९. ४८, ९. १०; ५१, ६. २६. २७. ३१; ५३, ४. ७. ९. १०. १२. १४. १६। 'स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः', (९. ५३, २१)। ९. ५३, २६; ५५, ८। 'वृत्रशक्रौ यथाऽऽहवे', (९. ५५, ५१)। 'युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्', (९. ५६, २८)। 'विरोचनस्तु शक्रेग मायया निर्जितः स वै', (९. ५८. ५)। ९. ५८, १६; ६१, १५। 'शक्रविस्पर्धिनः', (९. ६५, २०)। 'यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान्', (१०. ४, १५)। 'शक्रस्य त्वह्निना यथा', (११. २३, १२)। 'तापसैः सह संवादं शक्रस्य', (१२. ११, १)। 'त्रिदिवं प्राप्य शक्रस्य', (१२. ११, २६)। 'शक्रो देवपतिर्यथा', (१२. १२, २८)। 'निहत्य शत्रूंस्तरसा समृद्धान् शक्रो यथा दैत्यबलानि संख्ये', (१२. १२, ३७)। १२. १५, १६; २०, १३. १४। 'शक्रोपमः', (१२. २८, ५९)। 'शक्रं देवराजं पुरन्दरम्', (१२. २९, २०)। 'देवाः कर्म कुर्वाणाः शक्रज्येष्ठाः', (१२. २९, ७४)। १२. २९, १२०; ३१, २९। 'मरुद्गणैर्वृतः शक्रः', (१२. ३३, ४०)। भीष्म ने इनसे अस्त्र प्राप्त किये थे ('रामादस्त्राणि शक्राच्च प्राप्तवान्पुरुषर्षभः', १२. ३७, १३)। 'शक्रस्येव', (१२. ५०, २)। 'देवानुवाच संहृष्टः सर्वाञ्छक्र-पुरोगमान्', (१२. ५९, ७५)। १२. ५९, ११६. ११८। 'बृहस्पतेश्च संवादं शक्रस्य च', (१२. ८४, १)। १२. ८४, २–४. ८. ११। 'शक्रस्यैति सलोकताम्', (१२. ९७, ३०)। १२. ९८, ३. ५१; १०३, २४; १२०, ४६; १२१, ३८। 'तं कदाचिददीनात्मा सखा शक्रस्य मानिता। अभ्यगच्छन्महीपालो मान्धाता शत्रुकर्शनः ॥', (१२. १२२, ६)। १२. १२४, २१. ४९. ६०। 'शक्रस्यैति सलोकताम्', (१२. १३१, ११)। 'देवाः शक्रपुरोगमाः', (१२. २०९, २३)। १२. २२२, ८. २८. ३०. ३२–३४. ३६; २२३, १०. ११. १४; २२४, १. २. ५. ६. २५. २६. ३३–३५. ४५. ५६. ५७. ६०; २२५, ३. ५. ८–११. १५. १६. १८. २०. २२–२९. ३३; २२६, ५; २२७, १०. २१. २६. २८. ३३. ३९. ६४. ७७. ८१. ८२. ८७। 'श्रिया शक्रस्य संवादम्', (१२. २२८, ३)। १२. २२८, १९. २८। 'शक्रप्रमुखैश्चदेवतैः', (१२. २२८, ९५)। 'बले शक्रः', (१२. २३९, ८)। १२. २८१, ४. ५. १०. १२. १३. २२. २४. २६. ३४. ३८. ३९. ४३. ४४; २८२, ५. ६. ८. १६. १९. २१. २८. ३१. ५७. ६२। शक्र-कथाम्', (१२. २८२, ६४)। १२. २८२, ६५। देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः', (१२. २८३, २०)। 'देवाः शक्रपुरोगमाः', (१२. २८३, २३)। १२. २८३, ५९; ३०१, २०। 'शक्रपुरोगाश्च लोकपालाः', (१२. ३२४, १६)। 'देवेश्वरः शक्रः', (१२. ३२४, १९)। १२. ३३९, ८०। विष्णु शक्र को राज्य प्रदान करेंगे ('ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे', १२. ३३९, ८२)। 'शक्रतुल्यपराक्रमाः', (१२. ३३९, ८७)। १२. ३४०, १०; ३४२, ४६; ३५२, ४। 'शक्रप्रतिस्पर्धी', (१२. ३६०, १५)। १३. ५, १०. १२. २०। 'शक्रसलोकताम्', (१३. ५, ३१)। १३. ६, ३६; १२, २. ७. ४४. ४७. ५०. ५२। 'तस्यैव पुत्रप्रवरो मंदारो नाम विश्रुतः। महादेव-वराच्छक्रं वर्षार्बुदमयोधयत् ॥', (१३. १४, ७४)। 'उन्होंने पूर्वकाल में वाराणसी में शिव की आराधना की ('शक्रेण तु पुरा देवो वाराणस्यां जनार्दन', १३. १४, १०५)। 'शिव ने उपमन्यु की परीक्षा लेने के लिये इनका (शक्र का) रूप धारण किया था 'शक्ररूपं स कृत्वा', (१३. १४, १७२)। १३. १४, १७७. १७९. १८१. १८६. १९२. २०२. २१०. २१२. २२६. २२८। 'गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन', (१३. १४, २३६)। 'शक्रतुल्यपराक्रमः', (१३. १४, २६८)। 'शक्राद्या देवताः', (१३. १४, २८०)। १३. १४, २८४। 'नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः। शक्र-रूपाय शक्राय शक्रवेषधराय च ॥', (१३. १४, २८७-२८८)। 'शक्रोऽसि मरुताम्', (१३. १४. ३२४)। 'सप्रजापतिशक्रान्तं जगत्', (१३. १४. ४०४)। इन्होंने ब्रह्मा से शिव के सहस्रनामों को सीखा 'ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय', १३. १७, १७५)। 'चारुशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा', (१३. १८, ५)। 'शापाच्छक्रस्य' (१३. १८, १८)। 'ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा', (१३. १८, १९)। 'शक्रत्वं', (१३. १८, ६४)। १३. १८, ७२। 'पराक्रमे शक्रसमम्', (१३. २६, १)। १३. २८, २; २९, २. ४. ८. १७. २४। 'दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्। वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रासनात् ॥', (१३. ३०, १६)। 'शक्रस्येवामरावतीम्', (१३. ३०, १८) 'शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत्', (१३. ३०, ५९)। 'शक्रशम्बरसंवादम्', (१३. ३६, १)। १३. ३६, ३. १९; ४०, २६। 'मायां शक्रस्य', (१३. ४०, २७)। १३. ४०, ३७. ४४; ४१, ९. १९. २१. २५. २७. ३१; ६२, ६८. ७०. ८४. ८५। 'शक्रो वर्षति', (१३. ६३, ३६)। 'मुदितो वसति प्राज्ञः शक्रेग सह पार्थिव', (१३. ६६, २८)। 'शक्रेण सह मोदते', (१३. ६६, ५४)। १३. ७२, ६; ७३, २. १०. १८. २३. २८; ७४, ९। 'यथा शक्रो', (१३. ७५, २८)। 'शक्रक्षि-

भुवनेश्वरः', (१३. ८३, ७) शक्रं बलनिषूदनम्', (१३, ८३. १५) । १३. ८३, २२. ४४ । 'देवाः शक्रपुरोगमाः', (१३. ८४, ७९) । १३. ९४, ४४ । 'प्राच्यां शक्राय', (१३, ९७, १२) । १३. १००, ३४. ३६; १०२, ६ । 'शक्रो वर्षति', (१३. १०२, २६) । १३. १०२, ५९ । 'शक्रतुल्यप्रभावाणाम्', (१३. १०३, २२) । १३. १२५, ४५. ४८. ६५; १५०, ७५ । सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः कृत्स्ना जिता दानवाः', (१३. १५०, ७९) । १३. १५५, २०; १५६. ३० । कृष्ण को शक्र के साथ समीकृत किया गया है (१३. १५८, १३) । 'शक्रं वज्रं प्रहरन्तं निरास', (१३. १५८, २८) । १३. १६०, ३३ । 'शक्रादिषु च देवेषु', (१३. १६१, २७) । 'शक्रः शचीपतिः', (१३. १६५, ११) । १४. ५, १६. २८; ७, १४. २५. २७; ९, १४. २०. २६. २८. ३७; १०, १२. १३. २६. २८ । 'शक्रो ब्राह्मणैः पूज्यमानः', (१४. १०, ३१) । १४. ११, १८. २० । 'शक्रो गतः सर्वलोकामरत्वम्', (१४. २६, ४) । १४. ४२, २८ । शक्रागृहोपमम्', (१४. ५२, २५) । 'कृष्ण को शक्र के साथ समीकृत किया गया है (१४. ५४, १४) । 'शक्रसद्मप्रतीकाशः', (१४. ५९, १६) । 'सदृशं रूपं शक्रवापस्य', (१४. ७४, २३) । १४. ८०, ४८ । 'शक्रसमकर्माणम्', (१४.८४,११) । 'शक्रतेजसः', (१४. ८९, ६) । १४. ९१, ८. १२. १७ । 'शक्रयज्ञे', (१४. ९१, १८) । १४. ९१, २० । शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम्', (१५. २०, ३०) । १५. २०, ३२ । 'शक्र तेजसि', (१७. २, १९) । १७. ३, १. ५. ८. १६. २३; १८. २, ८ । देवाः शक्रपुरोगमाः', (१८. ३, १) । १८. ३, ७ । 'शक्रः सुरपतिः', (१८. ३, ९) । 'भवने शक्रस्य', (१८. ६, ३१) । 'शक्रेण सह मोदते', (१८. ६, ४७) ।

* **शचीपति** : १. २५, ८; १९०, १९; २२४, ७; २२७, ८; २. ३, १३; ३. १२, २०; ४७, ६; ५७, ३६; १२४, १७; १३५, २; । 'वज्रहस्तः शचीपतिः', (३. १९७, २५) । ३. २३१, ११०; ५. ९, २८; १३, २२; १७. १९ । 'निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्र शचीपतिः', (५. १००, ८) । ५. १३०, ४९ । 'द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि', (५. १६०, ९६; १६१, १४) । 'शचीपतिरिवासुरान्', (७. १९५, ४१) । 'शक्रस्येव शचीपतेः', (७. १९६, ६) । ९. ३३, २७; १२. ३३, ४१; १८०, ५३; २२३, ९; २२४, २२. ३१. ४५. ५५; २२७, ७७; २२८, ८१; ३३९, ८१; ३४२, ४३; ३५२, ७; १३. ५, २१; ४१, १२; ७३, २०. २२; ८३, ३५; १२५, ५४. ६१ । 'वासवं च शचीपतिम्', (१३. १३२, १) । १३. १६५, ११; ५५, २९; 'यदृच्छया शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम्', (१५. २०, ३०) ।

* **शतक्रतु** : १. ३०, ३८. ४०; ३१, १५. ३०; ३३, २१. ३४, २ । 'तथा धर्मपरे क्षेत्रे सहस्राक्षः शतक्रतुः । स्वादु देशे च काले च वर्षेणापालयत्प्रजाः ॥', (१. ६४, १६) । १. ७८, २ । 'साक्षादपि शतक्रतुः' (१. १००, ७८) । 'गुरुर्मान्यः शतक्रतोः', (१. १७०, २९) । १. २२४, १४ । 'शतक्रतुं सहस्राक्षं देवेशम्', (१.२२६, १५) । १. २२७, ४७; २२८, १४. १६ ; २. ७, ६ । 'देवराजं शतक्रतुम्', (२. ७, २५) । 'शतक्रतोर्महाबाहो', (२. ७, ३०) । 'शतक्रतुरिवापरः', (२. १७, १४) । 'येनासुरान्पराजित्य जगत्पति शतक्रतुः', (२. २२, १९) । 'अपि शतक्रतुः', (२. ७०, १५) । 'अमरश्रेष्ठः पिता तव शतक्रतुः', (३. ४२, १२) । 'देवराजं शतक्रतुम्', (३. ४३, १५) । 'देवा इव शतक्रतुम्', (३. ७८, ३३) । 'दैवैरिव शतक्रतुः', (३. ८१, ४) । ३. १००, ११ ; १२४, २५ ; १२५, १ । 'यथा देवाः शतक्रतुम्', (३. १६१, ३९) । अर्जुन ने इनसे दिव्यास्त्रों को प्राप्त किया था । (३. १६४, १९) । ३. १६७, ६. ९ । 'देवराजः शतक्रतुः', (३. १९३, ९) । ३. १९३, १२. ३३ । 'तृप्ताः आसनेन शतक्रतुः', (३. २००, ६८) । ३. २२३, १३ ; २२४, १३. २४ । देवाः शतक्रतु पुरोगमाः', ३. २२४, २७) । ३. २२९, ४४ ; २४१, ३ । (देवा इव शतक्रतुम्', ३, २४९, २४) । 'यस्याथ कर्म द्रक्ष्यसे मूढसत्त्व शतक्रतोर्वा दैत्यसेनासु सङ्ख्ये', (३. २७०, १६) । 'साक्षादपि शतक्रतुः', (३. २८९, ३१) । ३. ३०२, १२ । 'देवं वाऽपि शतक्रतुम्', (४. ४५, १३) । ४. ५२, १९ ; ५. ९, ५१; १४, ११. १५; १६, १०. १५; १८, ४. ८ । 'शासनाद्वा शतक्रतोः', (५. ९८, २) । ५. १२२, १६ । 'देवा इव शतक्रतुम्', ५. १३१, २६; १३३, ४२) । 'शक्रतुल्यपराक्रमम्', (६. १४, २१) । ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् । समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥', (६. ४३, १०) । 'साक्षादपि शतक्रतुः', (६. ४३, ४६) । 'दैवैरिव शतक्रतुः', (६. ९७, १८) । 'शतक्रतुमिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम्', (७. ३, ५) । ७. ७२, ४६ । 'साक्षादपि शतक्रतुः', (७. ७५, २०) । 'शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे', (७. १४८, ५७) । 'अपि शतक्रतुः', (७. १९६, ४८) । 'दैवैरिव शतक्रतुः', (८. १०, ४२) । 'क्रुद्धस्येव शतक्रतोः', (८. ३०, २४) । 'येन दैत्यगणान्राजञ्जितवान्वै शतक्रतुः', (८. ३१, ४३) । 'अपि सन्तनयेयुर्वै भयं साक्षाच्छतक्रतोः', (८. ३६, २९) । दैवैरिव शतक्रतुः', (८. ४६, २२) । 'शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा', (८. ७९, ९१) । 'यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः', (८. ९४, ५४) । 'शतक्रतोर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया', (९. १४, ४८) । 'देवराजः शतक्रतुः', (९. ४३, ३१) । 'यथा देवान्शतक्रतुः', (९. ४७, १२) । 'तान् क्रतून् भरतश्रेष्ठ शतक्रत्वो महाद्युतिः । पूरयामास विधिवत्ततः ख्यातः शतक्रतुः', (९. ४९, ४) । ९. ५३, ६. ८ । 'साक्षादपि शतक्रतुः', (१०. १५, ६) । 'माया च शतक्रतोः', (१२. ५, ११) । १२. २९, ८४ । 'क्रतुमाहृत्य शतक्रत्वः शतक्रतुः', (१२. ३३, ३९) । 'दैवैरिव शतक्रतुम्', (१२. ५०, ७) । 'देवानिव शतक्रतुः', (१२. ६७, २८) । १२. ९८, १४; १२४, २६; १४३, २०; २२४, ३६; २२५, ३२ । 'शतक्रतोश्च संवादं नमुचेश्च', (१२. २२६, १) । 'देवराजे शतक्रतौ', (१२. २२७, ८) । १२. २२७, १३ । 'सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं न त्वमेकः शतक्रतुः', (१२. २२७, ५६) । १२. २२७, ८९. ११७; २८१, २१. ३२ । 'यथा देवः शतक्रतुरमित्रहा', (१२. २८२, ६३) । 'सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः (१२. ३२१, ६१) । १३. १, ५५ । 'देवराजः शतक्रतुः', (१३. १२, २८) । 'शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ', (१३. १४, ३९२) । १३. १४, ४२७; १६, १५. ६८ । शतक्रतोरचिन्त्यस्य सूत्रे वर्षसहस्रिके', (१३. १८, २०) । १३. २९, १४; ३४, २८; ४०, ३३ । पुरि शतक्रतोरपि', (१३. ५३, ६८) । 'शतक्रतुमिवामराः', (१३. ६१, ३८) । १३. ६२, ५४; ७२, ५; ७३, १. १६. ३२. ५०; ७४, १०; ८३, २३ । 'शतक्रतुं वृत्रहणम्', (१३. ९४, ६) । १३. ९९, २४; १००, ३१ । 'वृत्रहणं शतक्रतुम्', (१३. १०२, ५५) । १३. १०२,५६. ५८. ६०; १२५, ५१ । 'देवराजः शतक्रतुः', (१३. १२५, ५८) । यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वैश्वधरस्य यज्ञे', (१३. १२६, ३८) । 'साक्षादपि शतक्रतुः', (१३. १६८, ३४) । 'शतक्रतुरिवौजस्वी धर्मात्मा', (१४. ५, ९) । १४. ११, ८. ११. १३. १५. १७ । 'साक्षादपि शतक्रतोः', (१४. १९, ३२) । 'यथा निहत्यारिगणं शतक्रतुर्दिवम्', (१४. ५२, ५८) । 'देवा इव शतक्रतुम्', (१४. ५९, १९) । 'वृत्रेणेव शतक्रतोः', (१४. ७६, १) । १४. ९१, १७ । 'देवराजः शतक्रतुः', (१८. २, ५३) ।

* **शतमन्यु** : शतमन्युविक्रमः', (८. ७०, ६) ।

* **शम्बरपाकहन्** : 'सहस्रनयनश्चापि वज्री शम्बरपाकहा', (१२. २२८, ७) ।

* **शम्बरहन्** : 'भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीमेको दिवि शम्बरहा यथा', (३. २३७, २) । 'यथा शम्बरहा पुरा बलिम्', (८. ९०, ७३) ।

* **सर्वदानवसूदन** : १०. ४, ९६ ।

* **सर्वदेवेश** : १. २५, ७ ।

* **सर्वलोकामर** : १४. २६, ४ ।

* **सुरगणेश्वर** : १. ७१, २०; ३. १३५, ४०; ५. १३, ११ ।

* **सुरपति** : १. १११, २९। 'यत्प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे', (५. ९८, १४)। 'त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम्', (५. १०४, १९)। 'यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान्', (६. ८३, २८)। ७. १०३, २०। 'सुरपतिसमविक्रमः', (८. ३०, ९)। ८. ३३, ३८। 'सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः', (८. ३७, ३५)। 'शक्रः सुरपतिः', (१८. ३, ९)।

* **सुरपुंगव** : ३. १६८, २७।

* **सुरराज्** : 'सुरराडिव', (६. ५१, ११)। 'सुरराट् शक्रः', (९. ४७, ६)।

* **सुरराज** : ३. १४२, १७। 'सुरराजतुल्यम्', (३. १६५, ८)। 'यमौ च वीरौ सुरराजकल्पौ', (३. १७६, ६)। 'सुरराजकल्पः', (६. ८५, ३५; ७. ११८, १६)।

* **सुरर्षभ, सुरसत्तम, सुरेश, सुरेश्वर**, व० स्था०।

* **सुरश्रेष्ठ**. व० स्था०।

* **सुराणां पतिः** : 'सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतीन्', (८. ३४. ३२)।

* **सुरधिप** : ३. ९, ११; ८६, ७। 'काश्चित् सुराधिपः प्रीतो रुद्रो वाऽस्त्राण्यदात्तव ॥ यथा दृष्टश्च ते शक्रो भगवान् वा पिनाकधृक्।', (३. १६७, ४-५)। ९. ५३, २१; १२. २२४, ६; २२७, ११७; २८१, २४. २५; १३. ८३, २०; १४. ५, २०।

* **सुरारिहन्** : 'यथा पूर्वं सुरारिहा', (१. १७३, ४५)। ५. ९, ४४।

* **सुरेन्द्र** : १. ७१. ४०। 'प्रवर्षणे सुरेन्द्रस्य', (३. ११०, ४४) ३. ११५, १८। 'सुरेन्द्रकल्पम्', (४. ६६, १९)। ७. १६०, ६०; १२. ५, ८; १२४, ६१; २२७, १२; ३५२, १०। 'ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि। विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥', (१३. १४, १४०)। १३. ४०, ४३. ४९; ६२, ५४. ६४। 'सुरेन्द्रद्विरदोपमः', (१३. ८५, ३४)। १३. ८६, २५. ३०। 'सुरेन्द्र नागम्', (१३. १०२, ५७)। १३. १०२, ५९; १२६, १; १४. १०, २३. २५।

* **सुरोत्तम** : १. २५, १२; १२. १०३, २४. ३२।

* **सहस्रदृश्** : ३. १६, १२; ४३, २६। 'अकालवर्षी भगवान् भविष्यति सहस्रदृक्', (३. १९०, ७९)। 'वर्षन्निव सहस्रदृक्', (९. ११, २०; १४. ८२, १०)।

* **सहस्रनयन** : 'सहस्रनयनश्चापि वज्री', (१२. २२८, ७)। 'सहस्रनयनोपमः', (१२. ३६०, १७)। शिव का इन्द्र के रूप में उल्लेख (१३. १४, २०८)। 'तथा भगसहस्रेण महेन्द्रः परिचिह्नितः। तेषामेव प्रभावेण सहस्रनयनो ह्यसौ ॥', (१३. ३४, २७–२८)।

* **सहस्रनेत्र** : १. २११, २८। 'सहस्रनेत्रप्रतिमः', (३. २५, १०; ४. ८, ८)। 'सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावम्', (७. ११८, ५)। 'वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः', (८. ८३, ५२)। 'सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यम्', (८. ९१, ४२)। 'सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः', (८. ९१, ६७)। 'सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः', (९. १७, १९)। 'सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम्', (१३. १२६, १४१)। १७. ३, ९।

* **सहस्रलोचन** : १२. २२८, ८९।

* **सहस्राक्ष** : १. २६, ८. १३; ३२, ८। 'सहस्राक्षः पुरन्दरः', (१. ३३, २४)। १. ३४, १०। 'सहस्राक्षः शतक्रतुः', (१. ६४, १६)। 'न ववर्ष सहस्राक्षो', (१. १७३, ३८)। 'प्रववर्ष सहस्राक्षः', (१. १७३, ४६)। १. २२७, १२। 'सहस्राक्षः शचीपतिः', (२. ३, १३)। 'सहस्राक्षसमं', (२. ४४, ९)। 'सहस्राक्षमिवामराः', (१. ४५, ६६)। ३. ३७. ५०. ५३; ४३, २२। 'सहस्राक्षः पुरन्दरः', (३. १०१, ८)। ३. १०३, ८। 'न ववर्ष सहस्राक्षः', (३. ११०, ४३)। 'सहस्राक्ष निवेशने', (३. १६४, २७)। 'सहस्राक्षादभिवाद्य शतक्रतुम्', (३. १६४, १९)। ३. १६६, ६. १५। 'देवराजं सहस्राक्षम्', (३. १६८, ५५)। ३. १६८, ६१। 'सहस्राक्षः पुरन्दरः', (३. १७३. ७०)। 'सहस्राक्षं शचीपतिम्', (३. २८८, ३)। ३. ३०२, १५। 'सहस्राक्षादनवरः', (३. ३१३, ८)। 'सहस्राक्षस्य वेश्मनि', (४. २, २०)। 'देवात् सहस्राक्षात्', (४. ५३, १८)। 'सहस्राक्षसमः', (५. १३७, २)। ६. ६, ४४। 'सहस्राक्षमिवामराः', (७. ४, ३; ८३, १०; १२६, ३९)। 'सहस्राक्षसमम्', (७. १४३, ५६)। 'पीडयामास तान्सर्वान्सहस्राक्ष इवासुरान्', (९. २६, ३६)। 'देवः सहस्राक्षः', (९. ४८, ५९)। ३. ५३, १०। 'सहस्राक्षसमः', (१२. ४९, ४)। 'सहस्राक्षः पुरन्दरः', (१२. ४९, ५)। 'सहस्राक्षो महेन्द्रः', (१२. ५८, २)। १२. ९१, ४५। 'न ववर्ष सहस्राक्षः', (१२. १४१, १५)। १२. २२५, ३८। 'सहस्राक्षो भगवान्पाकशासनः', (१२. २२७, ८८)। 'सहस्राक्षसमद्युतिः', (१३. ४, ५)। १३. ५, २६; ४१, १७; ६२, ६३. ८०; ७३, ५. ४७; ८३, ४०. ४६। 'सहस्राक्षो देवराट्', (१३. ९४, ४२)। 'देवराजः सहस्राक्षः', (१४. ९१, ४)। १४. ९१, १६। न ववर्ष सहस्राक्षः', (१४. ९२, ११)। १७. ३, २।

* **हरि** : 'भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः', (८. ९०, ७२)।

* **हरिमत्** : ५. ४८, ६८; १४. १०, ३१।

* **हरिवाहन** : १. २६, १; २२६, १७; ३. ४६, ५४; १६८, ६१; १२. १८०, ५४; १३. २७, २४; १४. ५, १७।

* **हरिश्मश्रु** : १२. ३४२, २३।

* **हरिहय** : 'हरिहयोपमः', (१. ६७, ४९)। १. १३६, २४; १९०, १७। 'यथेन्द्राणी हरिहये', (१. १९९, ५)। 'हरिहयोपमः', (१. २२३,१७)।

१. इन्द्र (बहु०) 'पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानम्', (१. २, ११७)। 'पूर्वेन्द्राः', (१. १९७, २७)। 'एवमेते पाण्डवाः संबभूवुर्ये ते राजन्पूर्वमिन्द्रा बभूवुः', (१. १९७, ३५)। 'पूर्वेन्द्रानभिवीक्ष्याभिरूपान्', (१. १९७, ४१)। 'बहूनीन्द्रसहस्राणि समतीतानि', (१२. २२४, ५५)। 'इन्द्र सहस्रेषु', (१२. २२४, ५९)। 'मार्गमिन्द्रशतैर्गतम्', (१२. २२७, ३९)। 'बहूनीन्द्रसहस्राणि दैवतानां युगे युगे', (१२. २२७, ४१)। 'गीर्भिरिन्द्राः स्तुवन्ति', (१३. १५८, १८)।

२. इन्द्र = स्कन्द (३. २३२, १६)।

३. इन्द्र = सूर्य (३. ३, १८)।

४. इन्द्र = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

इन्द्रकर्मन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

इन्द्रकील, एक पर्वत का नाम है। अन्य पर्वतों के साथ कुबेर की सभा में इनकी उपस्थिति (२. १०, १२)। इन्द्रलोक जाते समय अर्जुन हिमालय और गन्धमादन को पार करने के पश्चात् इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे (३. ३७, ४२)। 'मयैष प्रार्थितः पूर्वमिन्द्रकीलसमप्रभः', (३. ३९, १२)।

इन्द्रजाल, एक दिव्यास्त्र का नाम है। 'स्थूणाकर्णेन्द्रजालं च सौरं चापि तथाऽर्जुनः', (३. २४५, १७)। 'इन्द्रजालं च मायां वै कुहका वाऽपि भीषणा', (५. १६०, ५५. ११८; १६१, ३६)। 'स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च', (८. ६०, २२)। 'तस्येन्द्रजालावततं', (८. ६४, २४)। 'तदिन्द्रजालप्रतिमं बाणजालमभिन्नहा', (१४. ७७, ३१)।

इन्द्रजित्, राक्षसराज रावण के पुत्र का नाम है। इसका लक्ष्मण के साथ युद्ध (३. २८५, ८)। इन्होंने पूर्वकाल में इन्द्र को विजित किया था (३. २८८, २)। लक्ष्मण और अङ्गद के साथ इनका युद्ध (३. २८५, १५. १८. १९)। लक्ष्मण द्वारा इनका वध (३. २८९, २. १५. १९)।

इन्द्रजिद्युद्ध(म) —"रावण ने राम, लक्ष्मण, और सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिये उस इन्द्रजित् को भेजा जिसने इन्द्र को पराजित करके वरदान के रूप में अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। इसने सर्वप्रथम लक्ष्मण से युद्ध किया, फिर अङ्गद से, और उसके बाद अदृश्य होकर भी युद्ध करता रहा। (३. २८८)।"

इन्द्रजिद्वध—"इन्द्रजित ने राम और लक्ष्मण को उन बाणों के जाल में आबद्ध कर दिया जिन्हें उसने वरदान के रूप में प्राप्त किया था। सुग्रीव, अन्य वानरगण तथा सुषेण इत्यादि उन लोगों को घेर कर खड़े हुये। विभीषण ने आकर उन्हें प्रज्ञास्त्र से उठा दिया; सुग्रीव ने उनके शरीर में बिधे हुये बाणों को खींच कर घावों पर विशल्य नामक औषधि लगाई; श्वेत पर्वत से कुबेर के एक गुह्यक ने ऐसा जल लाकर दिया जिसे आँख में लगा लेने पर सभी अदृश्य प्राणी दृश्य हो जाते हैं। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव इत्यादि ने अपनी आँखों में उस जल को लगाया। रावण को सूचित करके इन्द्रजित् अपना दैनिक जप समाप्त किये बिना ही लौट आया; विभीषण से एक संकेत पाकर लक्ष्मण ने इन्द्रजित् का वध कर दिया। क्रुद्ध रावण ने सीता का वध कर देना चाहा परन्तु अविन्ध्य ने उसे विरत किया। (३. २८९)।"

इन्द्रतापन, एक असुर का नाम है जो दैत्यों और दानवों के साथ वरुण की सभा में उपस्थित होता था (२. ९, १५)।

इन्द्रतीर्थ, सरस्वती तटवर्ती एक तीर्थ का नाम है (९. ४८, १८)। बलराम जी ने इस तीर्थ में स्नान किया (९. ४९, १)। इन्द्र ने इस तीर्थ में सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा बृहस्पति को प्रचुर धन दिया, इत्यादि। सौ बार विधिपूर्वक यज्ञों को पूर्ण करने के कारण इन्द्र 'शतक्रतु' के नाम से तथा यह तीर्थ इन्द्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ (९. ४९, २-५)।

इन्द्रतोया, एक नदी का नाम है। गन्धमादन के समीप इन्द्रतोया तथा कुरङ्गस्थित करतोया में स्नान करके तीन रात्रिपर्यन्त उपवास करने वाला व्यक्ति अश्वमेध के फल का भागी होता है (१३. २५, ११)।

इन्द्रदमन, अत्रि के वंशज एक राजा का नाम है। इन्होंने एक योग्य ब्राह्मण को धन-दान देकर अक्षय लोक प्राप्त किया था (१२, २३४, १८)।

इन्द्रदर्शन(म)—"कुछ समय के पश्चात् युधिष्ठिर ने व्यास जी के सन्देश का स्मरण करके अर्जुन को एकान्त में प्रतिस्मृति-विद्या (जिसके विधिवत् प्रयोग से समस्त जगत् भली प्रकार और यथावत् स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है) का उपदेश किया। उन्होंने अर्जुन से कठिन तपस्या करने के लिये भी कहा। उन्होंने अर्जुन को बताया कि भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा आदि में चतुष्पाद धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्रादि प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने यह भी बताया कि इन्द्र को समस्त दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त है, क्योंकि वृत्रासुर के भय से सम्पूर्ण देवताओं ने अपनी समस्त शक्ति इन्द्र को ही समर्पित कर दी थी। अतः युधिष्ठिर ने अर्जुन से इन्द्र की शरण लेने के लिये कहा। धर्मराज की आज्ञा से इन्द्र का दर्शन करने की इच्छा मन में रखकर अर्जुन ने अग्नि में आहुति दी और गाण्डीव धनुष धारण कर वहाँ से प्रस्थित हुये। अर्जुन को वहाँ से धनुष लेकर जाते हुये देखकर सिद्धों, ब्राह्मणों, तथा अदृश्य भूतों ने उन्हें आशीर्वाद दिया। उस समय द्रौपदी ने अर्जुन से इस प्रकार कहा : 'आर्या कुन्ती ने आपके जन्म के समय अपने मन में जो-जो इच्छायें की थीं तथा आप स्वयं भी अपने हृदय में जो मनोरथ रखते हों वे सब आप को प्राप्त हों। हम लोगों में से कोई भी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न न हो; उन ब्राह्मणों को नमस्कार है जिनका भिक्षा से ही निर्वाह हो जाता है। मुझे सबसे बढ़कर दुःख इस बात का है कि दुर्योधन ने भरी सभा में मेरी ओर देखकर मुझे गाय (अर्थात् अनेक पुरुषों के उपभोग में आनेवाली) कह कर मेरा उपहास किया। दीर्घकाल के लिये आपके प्रवासी हो जाने के कारण मेरे मन को अत्यन्त दुःख होगा, किन्तु मैं आपको विदा देती हूँ।' तदुपरान्त द्रौपदी ने अर्जुन के विजयी होने के लिये धाता, विधाता, ह्री, श्री, कीर्ति, द्युति, पुष्टि, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, वसुगण, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, विश्वेदेव और साध्यों आदि की स्तुति की। उसने आन्तरिक्ष तथा दिव्य भूतों और मार्ग में विघ्न डालनेवाले अन्य प्राणियों से भी रक्षित रहने का अर्जुन को आशीर्वाद दिया। तदनन्तर अर्जुन ने अपना सुन्दर धनुष हाथ में लेकर सभी भाईयों और धौम्य मुनि को दाहिने करके वहाँ से प्रस्थान किया। अर्जुन के यात्रा के समय समस्त प्राणी उनके मार्ग से दूर हट जाते थे, क्योंकि वे इन्द्र से मिला देनेवाली प्रतिस्मृति नामक योगविद्या से युक्त थे। योगयुक्त होने के कारण अर्जुन मन के समान तीव्र वेग से चलने में समर्थ हो गये और एक ही दिन में अनेक पर्वतों को पार करते हुये हिमवत् पर्वत पर जा पहुँचे। तदुपरान्त उन्होंने गन्धमादन को पार किया, तथा आलस्य-रहित हो दिन-रात चलते हुये इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे। वहाँ आकाश में उच्च स्वर से गूँजती हुई वाणी सुनाई पड़ी जिसे सुनकर अर्जुन ने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया। इतने ही में उन्हें वृक्ष के मूलभाग में बैठे हुये एक तपस्वी महात्मा का दर्शन हुआ, जो ब्रह्मतेज से उद्भासित हो रहे थे। उन ब्राह्मण ने अर्जुन से कहा : 'तात तुम कौन हो, जो धनुष-बाण, कवच, तलवार तथा हस्तत्राण से युक्त होकर यहाँ आये हो? यहाँ अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह तो क्रोध और हर्ष को विजित किये हुये तपस्या में तत्पर शान्त ब्राह्मणों का स्थान है। अतः तुम अपने अस्त्रों को फेंक दो, क्योंकि अब तुम उत्तम गति को प्राप्त हो चुके हो।' इस प्रकार उन ब्रह्मर्षि के अनेक बार आग्रह करने पर भी अर्जुन ने अपने अस्त्रों का परित्याग नहीं किया और दिव्यास्त्र प्राप्त करने के अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। इस पर प्रसन्न होकर उन ब्राह्मण ने बताया कि वह स्वयं इन्द्र हैं। अर्जुन ने इन्द्र का दर्शन करके उनसे पुनः दिव्यास्त्र माँगे, किन्तु इन्द्र ने उनसे कहा कि शिव (त्र्यक्ष, शूलधर, भूतेश, परमेष्ठिन्) का दर्शन कर लेने के पश्चात् ही दिव्यास्त्र प्राप्त होंगे। अर्जुन से ऐसा कह कर इन्द्र अदृश्य हो गये और अर्जुन योग-युक्त होकर वहीं रहने लगे। (३. ३७)।"

१. इन्द्रद्युम्न, एक राजर्षि का नाम है। यम की सभा में इनकी उपस्थिति (२. ८, २१)। कृष्ण द्वारा इनका वध (३. १२, ३२)। ये कीर्ति का लोप हो जाने के कारण स्वर्ग से भूतल पर गिर पड़े किन्तु चिरजीवी कच्छप द्वारा अपनी कीर्ति का श्रवण करके पुनः स्वर्ग लोक पहुँच गये (३. १९९, २. ६-९. १२. १८)। युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय के मुख से इन्द्रद्युम्न की पुनः स्वर्ग-प्राप्ति का वृत्तान्त सुना (३. २००, १; २०१, १)।

२. इन्द्रद्युम्न, एक ब्राह्मण का नाम है। युधिष्ठिर की पूजा करनेवाले ब्राह्मणों में एक यह भी थे (३. २६, २२)।

३. इन्द्रद्युम्न, एक सरोवर का नाम है। इन्द्रद्युम्न ने यहाँ यज्ञों का अनुष्ठान किया, तथा दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को दी हुई गौओं के आने-जाने से यह सरोवर बन गया (३. १९९, ७)।

इन्द्रद्युम्नसरस्, गन्धमादन के समीपवर्ती एक सरोवर का नाम है। यहाँ पत्नियों सहित पाण्डु का आगमन हुआ (१. ११९, ५०)।

इन्द्रद्युम्नोपाख्यान(म)—"पाण्डवों ने मार्कण्डेय से पूछा : 'क्या कोई आपसे भी अधिक वृद्ध है?' मार्कण्डेय ने कहा : 'एक समय स्वर्ग से च्युत हो जाने पर राजर्षि इन्द्रद्युम्न ने मेरे पास आकर यह बताते हुये कि उनकी कीर्ति नष्ट हो गई है, मुझसे यह पूछा कि क्या मैं उन्हें पहचानता हूँ। जब मैंने उन्हें पहचानने में अपनी असमर्थता प्रगट की तब उन्होंने एक अश्व का रूप धारण किया और मुझे हिमवत् पर्वत पर उस प्रावारकर्ण नामक उलूक के पास ले गये जो मुझसे भी वृद्ध था। उस उलूक को हम लोग इन्द्रद्युम्न सरोवर में निवास करनेवाले उस नाडीजङ्घ नामक बक के पास ले गये जो उस उलूक से भी वृद्ध था। उस बक ने हम लोगों को उसी सरोवर में निवास करनेवाले अकूपार नामक कच्छप की ओर संकेत किया। अकूपार इन्द्रद्युम्न को जानता था अतः उसने बताया कि इन्द्रद्युम्न ने १,००० बार यूप की स्थापना की थी और इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर उन गायों के पैरों से खुदकर बना है जिन्हें इन्होंने ब्राह्मणों को दान में दिया था। तदुपरान्त आकाश से एक रथ आया और एक दिव्य वाणी ने इन्द्रद्युम्न को पुनः स्वर्ग लोक में बुलाया (इस विषय में ये श्लोक कहे गये हैं : 'दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्यस्य कर्मणः। यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष

उच्यते ॥ अकीर्तिः कीर्त्यते लोके यस्य भूतस्य कस्यचित् । स पतत्यधमांल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ तस्मात् कल्याणवृत्तः स्यादनन्ताय नरः सदा । विहाय चित्तं पापिष्ठं धर्ममेव समाश्रयेत् ॥ ३. १९९, १३-१५)। तदुपरान्त उन्होंने मुझे तथा उलूक को अपने-अपने स्थानों पर पहुँचाया और फिर उसी रथ पर बैठ कर चले गये ।' पाण्डवों ने इन्द्रद्युम्न को पुनः स्वर्ग प्राप्त कराने के लिये मार्कण्डेय की प्रशंसा की। मार्कण्डेय ने बताया कि कृष्ण ने भी राजर्षि नृग को नरक से छुड़ा कर स्वर्ग में पहुँचा दिया था। (३. १९९)।"

इन्द्रद्वीप, एक द्वीप का नाम है, जिसे पहले सहस्रबाहु ने विजित करके अपने अधिकार में कर लिया था (३. ३८, ३९ के बाद गीताप्रेस के संस्करण के पृ० ७९२ पर दाक्षिणात्य पाठ)।

इन्द्रपर्वत, एक पर्वत का नाम है। इसके समीप भीमसेन ने सात किरात नरेशों को विजित किया था (२. ३०, १५)।

इन्द्रप्रभव = अर्जुन (३. २३६, ५)।

इन्द्रप्रस्थ, पाण्डवों की राजधानी का नाम है (१. १, १५१)। 'तत् त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचयत्', (१. २०७, ३६)। 'राज्यं तदिन्द्रप्रस्थं', (१. २०८, १)। 'धर्मराजाय तत् सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै', (१. २१९, २५)। 'अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठमिन्द्रप्रस्थगतं तदा', (१. २२१, २६)। 'इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जघ्नुरन्यान्नराधिपान्', (१. २२२, १)। 'इन्द्रप्रस्थमगात्', (२. १३, ४२)। 'इन्द्रप्रस्थगतं पार्थम्', (२. १३. ४३)। 'इन्द्रप्रस्थमुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः', (२. २४, ४६)। 'इन्द्रप्रस्थगतम्', (२. ३२, १९)। 'इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्', (२. ७३, १८)। 'समृद्धिः पार्थानामिन्द्रप्रस्थे बभूव', (३. ५१, २१)। 'इन्द्रप्रस्थनिवासिनः', (३. २३३, ५०)। 'इन्द्रप्रस्थगते', (३. २३७, ५)। 'इन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम्', (४. १८, १६)। 'इन्द्रप्रस्थे निवसतः', (४. १८, २६)। ४. ५०, ११; ५. २६, २९; ५५, ४; ९५, ५७; ६. १२१, ५३; १२. १२४, ५। 'इन्द्रप्रस्थे महात्मानौ रेमतुः कृष्णपाण्डवौ', (१४. १५, ५)। १६. ७, ५। अर्जुन ने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ में यादवों के राजा के रूप में नियुक्त किया (१६. ७, ७२)।

तु० की इन्द्रप्रस्थ के निम्न पर्याय :

* **खाण्डवप्रस्थ** : १. २. ११९; ६१, ३३-३५; २०७, २४. २६. २८. ५०; २०८, ५; २१३, ६; २२१, १५. ३३; २. २, १; २५, ११; ३२, २; ४९, ५८; ७३, १६; ३. २६६, ५; ४. ३६, १९; ५. १२४, ५४।

* **शक्रपुरी** : ५. ३०, ४९।

* **शक्रप्रस्थ** : ३. २३, ११।

* **शतक्रतुप्रस्थ** : १. २२१, ६३; २. २८, २०; १६. ७, १०. ११; १७. १, ९।

इन्द्र-मतङ्ग-संवाद—"भीष्म ने बताया कि पूर्वकाल में किसी ब्राह्मण को मतङ्ग नामक एक पुत्र प्राप्त हुआ जो (अन्य वर्ण के पुरुष से उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मणोचित संस्कार के प्रभाव से) उनके समान वर्ण का ही समझा जाता था और समस्त सद्गुणों से सम्पन्न था। एक दिन अपने पिता के भेजने पर मतङ्ग किसी यजमान का यज्ञ कराने के लिये गधों से जुते हुये शीघ्रगामी रथ पर बैठ कर चला। रथ का बोझ ढोते हुये एक छोटी अवस्था के गधे को उसकी माता के निकट ही मतङ्ग ने बार-बार चाबुक से मारकर उसकी नाक में घाव कर दिया। पुत्र का भला चाहने वाली गधी ने उस गधे को सान्त्वना देते हुये कहा : 'पुत्र शोक मत करो। तुम्हारे ऊपर ब्राह्मण नहीं चाण्डाल सवार है। ब्राह्मण में इतनी क्रूरता नहीं होती।' मतङ्ग के पूछने पर गधी ने बताया कि उसका (मतङ्ग का) पिता शूद्र जातीय नाई था जिसने यौवन के मद से मदोन्मत्त ब्राह्मणी के पेट से उसे उत्पन्न किया था। गर्दभी ने कहा : 'इसीलिये तुम जन्म से चाण्डाल हो।' मतङ्ग ने घर लौट कर जो कुछ उसने गधी से सुना था अपने पिता को बताया और उसके बाद वन में जाकर ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा से इतनी घोर तपस्या में संलग्न हुआ कि उससे देवगण संतप्त हो उठे। इन्द्र ने उसके सम्मुख प्रगट होकर उससे वर मागने का आग्रह किया। जब मतङ्ग ने यह बताया कि वह ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या कर रहा है तब इन्द्र ने उससे कहा कि तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सकता। (१३. २७)।" "तदुपरान्त मतङ्ग ने सौ वर्षों तक एक पैर पर खड़े होकर तपस्या की। इन्द्र ने एक बार पुनः उपस्थित होकर उससे कहा : 'तात! ब्राह्मणत्व दुर्लभ है उसे माँगकर तुम प्राप्त नहीं कर सकते। पशु-पक्षी की योनि में पड़े हुये सभी प्राणी यदि कभी मनुष्य योनि में जाते हैं तो सर्वप्रथम पुल्कस या चाण्डाल के रूप में जन्म लेते हैं : तदनन्तर एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर वह चाण्डाल या पुल्कस शूद्र योनि में जन्म लेकर अनेक जन्मों तक चक्कर लगाता रहता है। इसके पश्चात् ३०,००० वर्षों के बाद वह वैश्य होता है; इसका भी साठ गुना समय व्यतीत होने पर क्षत्रिय और उसके बाद इससे भी साठ गुना समय व्यतीत होने पर गिरे हुये ब्राह्मण के घर में जन्म लेता है। इसके पश्चात् इसकी दो सौ गुना अवधि व्यतीत होने पर अस्त्र-शस्त्रों से जीविकोपार्जन करनेवाले ब्राह्मण के यहाँ जन्म होता है; इसके तीन सौ गुना समय व्यतीत होने पर वह गायत्री आदि मन्त्रों का जाप करनेवाले ब्राह्मण के घर में जन्म लेता है; इसके पश्चात् अन्ततः चार सौ गुना और अधिक समय व्यतीत होने पर वह वेदवेत्ता ब्राह्मण-कुल में जन्म लेता है। (१३. २८)।" "तदुपरान्त मतङ्ग अपने मन को और भी दृढ़ तथा संयमशील बनाकर एक सहस्र वर्षों तक एक पैर से ध्यान लगाये खड़ा रहा। इन्द्र ने पुनः उसके सम्मुख उपस्थित होकर वही बातें कहीं। तब मतङ्ग गया तीर्थ में जाकर अँगूठे के बल पर सौ वर्षों तक खड़ा रहा। इस दुर्धर्ष योग के अनुष्ठान द्वारा उसका समस्त शरीर क्षीण होकर केवल त्वचा से ढकी हुई अस्थियों का ढाँचा मात्र रह गया। उस अवस्था में अपने को सभाँल न सकने के के कारण वह भूमि पर गिर पड़ा। गिरते देखकर इन्द्र ने उसे दौड़कर पकड़ लिया। अब इन्द्र के आग्रह करने पर मतङ्ग ने उनसे यह वर माँगा : 'पुरन्दर! आप ऐसी कृपा करें जिससे मैं इच्छानुसार विचरण तथा रूपधारण करने वाला आकाशचारी देवता बन जाऊँ। ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध से रहित होकर मैं सर्वत्र पूजा एवं सत्कार प्राप्त करूँ और मेरी कीर्ति का अक्षय विस्तार हो।' इन्द्र ने कहा : 'तुम स्त्रियों के पूज्यनीय होगे; छन्दोदेव के नाम से तुम्हारी ख्याति होगी और तीनों लोकों में तुम्हारी अनुपम कीर्ति का विस्तार होगा।' इस प्रकार वर देकर इन्द्र अन्तर्धान हो गये। (१३. २९)।"

इन्द्रमार्ग, एक तीर्थ का नाम है, (१३. २५, ९; ३. ८३, १८१, जहाँ 'रुद्रमार्ग' आता है)।

इन्द्रमाला, उस माला का नाम है जिसे इन्द्र ने अपने चिह्न के रूप में वसु उपरिचर को दिया था (१. ६३, १६)।

इन्द्रलोक, इन्द्र के लोक का नाम है (१. १९७, २६)। सुन्द और उपसुन्द ने इसे विजित किया था (१. २१०, ७)। भ्रमण करते हुए नारद और पर्वत यहाँ पधारे थे (३. ५४, १३)। महाबाहु धनञ्जय ने भी कुछ समय तक यहाँ निवास किया था (३. २३९, १३; ६. ९०, ११)। अर्जुन ने इन्द्रलोक में जाकर असंख्य कालकेय नामक दैत्यों का संहार किया था (८. ७९, ६०)। जो राजा अपने नगर और राष्ट्र की प्रजा के साथ धर्मपूर्ण व्यवहार करता है वह इन्द्रलोक प्राप्त करता है (१२. ७७, ३४)। अतिथि इन्द्रलोक के और ऋत्विज देवलोक के स्वामी हैं (१२. २४३, १८)। जो मनुष्य दूध देने वाली, सुलक्षणा, और श्वेतवर्ण की गाय को वस्त्र पहनाकर श्वेतवर्ण के बछड़े सहित दान करता है वह इन्द्रलोक प्राप्त करता है (१३. ७९, ११)। "गौतम ने कहा : 'इन्द्रलोक रजोगुण और शोक से रहित है।' धृतराष्ट्र ने कहा : 'जो सौ वर्ष तक जीनेवाला शूरवीर मनुष्य वेद का स्वाध्याय करता हुआ यज्ञ में तत्पर रहता है और कभी प्रमाद नहीं

करता वही इन्द्रलोक (शक्रलोक) में जाता है।' (१३. १०२, ३८. ३९)।" जो मनुष्य नित्य अग्नि में होम करता हुआ अग्नि की उपासना करता है वह हंस और सारसों से जुते हुये विमान को पाता है और इन्द्र-लोक में सुन्दरी स्त्रियों से घिरा हुआ निवास करता है (१३. १०७, १५. ३४)।

इन्द्रलोकाभिगमन से अर्जुन की इन्द्रलोक की यात्रा का तात्पर्य है (१. २, ५१)। देखिये **इन्द्रलोकाभिगमनपर्वन्**।

इन्द्रलोकाभिगमनपर्वन्, महाभारत के वनपर्व में ४२ से ५१ अध्यायों तक आनेवाले महाभारत के ३४ वें अवान्तरपर्व का नाम है। "लोकपालों के चले जाने पर अर्जुन ने देवराज इन्द्र के रथ का चिन्तन किया। उनके चिन्तन करते ही मातलि सहित वह महातेजस्वी रथ वहाँ आ गया। उस रथ में तलवार, भयङ्कर शक्ति, गदा, प्रास, वज्र, अशनि और भारी चक्र युक्त गोले रक्खे हुये थे। उसमें अत्यन्त भयङ्कर तथा प्रज्वलित मुख वाले विशालकाय सर्प भी विद्यमान थे। वह वायु के समान वेगशाली दस सहस्र श्वेत-पीत वर्ण अश्वों से युक्त था जिस पर वैजयन्त नामक इन्द्रध्वज फहरा रहा था। रथ से उतर कर मातलि ने अर्जुन से रथारूढ़ होने का निवेदन करते हुये बताया कि ऋषियों, गन्धर्वों, तथा अप्सराओं से घिरे हुये इन्द्र उन्हें (अर्जुन को) देखना चाहते हैं। अर्जुन ने पहले मातलि से उस रथ पर बैठने का निवेदन करते हुये कहा: 'यह सैकड़ों राजसूय और अश्वमेध यज्ञों द्वारा भी नहीं प्राप्त हो सकता; दक्षिणा देनेवाले महान् सौभाग्यशाली और यज्ञ-परायण भूपालों, देवताओं, अथवा दानवों के लिये भी इस उत्तम रथ पर आरूढ़ होना कठिन है; जिन्होंने तपस्या नहीं की है वे इस महान् दिव्य रथ का दर्शन या स्पर्श भी नहीं कर सकते; अतः आप पहले इस रथ पर आरूढ़ होकर अश्वों को नियन्त्रित कर लें, तब मैं इस पर बैठूँगा।' तदनन्तर अर्जुन ने गङ्गा में स्नान करके पवित्र हो विधि-पूर्वक मंत्र जाप किया और पितरों का तर्पण करके शैलराज हिमालय से विदा ली। इसके पश्चात् अर्जुन उस दिव्य रथ में बैठकर ऊपर की ओर जाने लगे। ऊपर जाकर उन्होंने सहस्रों अद्भुत विमान देखे। वहाँ न सूर्य प्रकाशित होते हैं और न चन्द्रमा। अग्नि की प्रभा भी वहाँ काम नहीं देती। वहाँ स्वर्ग के निवासी अपने पुण्यकर्मों से प्राप्त हुई अपनी ही प्रभा से प्रकाशित होते हैं। उन्होंने वहाँ प्रकाशमान तारों के रूप में छोटे और बड़े प्रकाश-पुञ्जों को भी देखा जो अपने-अपने अधिष्ठानों में अपनी ही ज्योति से देदीप्यमान थे। उन लोकों में वे सिद्ध राजर्षि वीर निवास करते थे जो युद्ध में प्राण देकर वहाँ पहुँचे थे। सूर्य के समान प्रकाशमान सहस्रों गन्धर्वों, गुह्यकों, ऋषियों, तथा अप्सराओं के समूहों को और उनके स्वतः प्रकाशित होनेवाले लोकों को देखकर अर्जुन को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मातलि ने बताया कि ये तारे वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं जो अपने-अपने लोकों में निवास करते हैं। तदनन्तर अर्जुन ने स्वर्ग के द्वार पर खड़े हुये गजराज ऐरावत को देखा, जिसके चार दाँत बाहर निकले हुये थे और जो कैलाश पर्वत के समान सुशोभित था। सिद्धों के लोकों से होते हुये और आगे बढ़कर महायशस्वी अर्जुन ने इन्द्रपुरी अमरावती का दर्शन किया। (३. ४२)।" "अमरावती पुरी में प्रवेश करने पर देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों, और महर्षियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अर्जुन का स्वागत-सत्कार किया। अर्जुन ने उन सबसे विधिपूर्वक मिल कर देवराज इन्द्र का दर्शन किया। जब अर्जुन ने अभिवादन कर लिया तब इन्द्र ने उन्हें अपने पास सिंहासन पर बैठा लिया। जिस प्रकार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उदित हुये सूर्य और चन्द्रमा आकाश की शोभा-वृद्धि करते हैं उसी प्रकार एक सिंहासन पर बैठे हुये देवराज इन्द्र और अर्जुन देवसभा को सुशोभित कर रहे थे। उस समय वहाँ तुम्बुरु आदि श्रेष्ठ गन्धर्व-गण सामगान के नियमानुसार अत्यन्त मधुर स्वर में गाथा-गान करने लगे। घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी आदि सत्तरह प्रमुख अप्सराओं के साथ सहस्रों अन्य अप्सरायें इन्द्रसभा में नर्तन करने लगीं। (३. ४३)।" "इन्द्र का अभिप्राय जानकर देवताओं और गन्धर्वों ने उत्तम अर्घ्य लेकर अर्जुन का यथोचित पूजन किया और उसके बाद देवताओं ने उन्हें इन्द्रभवन में पहुँचा दिया। वहाँ रहकर अर्जुन अस्त्रों की शिक्षा-ग्रहण करने लगे। उन्होंने इन्द्र के हाथ से वज्र तथा अशनि ग्रहण किया। अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर लेने पर इन्द्र के विशेष अनुरोध से अर्जुन वहाँ पाँच वर्षों तक रहे। उन्होंने चित्रसेन से सङ्गीत और नृत्य की शिक्षा भी ग्रहण की। चित्रसेन, जो कि अर्जुन के मित्र थे, अर्जुन को शिक्षा तो दे रहे थे किन्तु अर्जुन शीघ्र ही अपने भ्राताओं और माता के पास लौट जाने के लिये व्यग्र रहते थे। (३, ४४)।" "इन्द्र ने अर्जुन के नेत्रों को उर्वशी के प्रति आसक्त जानकर चित्रसेन गन्धर्व को आज्ञा दी कि वे उर्वशी को अर्जुन की सेवा में भेज दें। उर्वशी ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन का अपने प्रेमी के रूप में वरण किया। (३. ४५)।" "इन्द्र की आज्ञा पाकर शृङ्गार आदि करके अप्सरा उर्वशी अर्जुन के भवन में आई। उर्वशी को देखकर अर्जुन के नेत्र लज्जा से झुक गये और उन्होंने उसका गुरुजनोचित सत्कार किया। अर्जुन के व्यवहार को देखकर हतप्रभ उर्वशी ने इस प्रकार कहा: 'देवराज इन्द्र के इस मनोरम निवास स्थान में तुम्हारे शुभागमन के उपलक्ष में जब उस महान् उत्सव का आयोजन किया गया जिसमें रुद्र, आदित्य, अश्विन्, वसुगण, महर्षि, राजर्षि, सिद्ध, चारण, यक्ष और सर्पगण उपस्थित थे और गन्धर्वगण वीणावादन तथा अप्सरायें नृत्य कर रही थीं, तब तुम्हारे नेत्रों को मुझ पर आसक्त जानकर इन्द्र ने चित्रसेन के द्वारा मुझे तुम्हारे पास आने की आज्ञा दी। मैं स्वयं भी तुमसे अत्यधिक प्रेम करती हूँ।' अर्जुन ने कहा: 'मैं तुम्हें अपनी माता के समान समझता हूँ और मैं तुम्हें केवल इसीलिये देख रहा था क्योंकि तुम पौरव वंश की माता हो।' उर्वशी ने बताया कि पुरुवंश के जितने भी वंशज तपस्या करके स्वर्ग-लोक में आते हैं वे बिना किसी पाप के अप्सराओं के साथ रमण करते हैं। किन्तु अर्जुन ने पुनः शपथपूर्वक कहा कि वे उर्वशी को अपनी माता के समान ही मानते हैं। इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी ने अर्जुन को यह शाप दिया कि उन्हें पुरुषत्वहीन होकर स्त्रियों के बीच नर्तकी के रूप में समय व्यतीत करना पड़ेगा। यह शाप देने के पश्चात् उर्वशी वहाँ से चली गई। इन्द्र ने अर्जुन को बताया कि वनवास के तेरहवें वर्ष अज्ञातवास के समय उर्वशी का शाप सत्य होगा, किन्तु एक वर्ष के पश्चात् वे अपना पुरुषत्व पुनः प्राप्त कर लेंगे। अर्जुन के इस अत्यन्त दुष्कर और पवित्र चरित्र को सुन-कर मद, दम्भ, तथा विषयासक्ति आदि से रहित होकर श्रेष्ठ मानव स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। (३. ४६)।" "एक दिन ब्रह्मर्षि लोमश भ्रमण करते हुये इन्द्रभवन में पधारे। लोमश को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि क्षत्रिय होते हुये भी अर्जुन ने किस प्रकार देव-पूजित शक्र के स्थान को प्राप्त कर लिया है। उनके मनोभाव को जानकर शक्र ने बताया कि वास्तव में अर्जुन कौन हैं। उन्होंने यह भी बताया कि दनुपुत्र, निवातकवच नामक असुरगण, जो पाताल में निवास करते हैं, देवों का विनाश करने की योजना बना रहे हैं और कृष्ण अथवा अर्जुन के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उन असुरों का वध नहीं कर सकता। और यतः एक नगण्य कार्य होने के कारण मधुसूदन श्रीकृष्ण से यह कार्य सम्पन्न करने का निवेदन नहीं किया जा सकता क्योंकि उनकी शक्ति सम्पूर्ण विश्व को भस्म कर डालेगी, अतः अर्जुन ही असुरों का वध करेंगे। इन्द्र के निवेदन तथा अर्जुन के अनुमोदन पर महर्षि लोमश ने काम्यक वन में जाकर युधिष्ठिर को अर्जुन का संवाद दिया। लोमश ने कहा कि उनके द्वारा रक्षित होकर युधिष्ठिर तीर्थों में भ्रमण करें। (३. ४७)।" "जब धृतराष्ट्र ने व्यास के मुख से इन्द्रलोक में निवास करने के पश्चात् अर्जुन के लौटने का समाचार सुना तब संजय से अपने पुत्रों के लिये चिन्ता प्रगट की। (३. ४८)।" "किरातवेशी शिव के सम्बन्ध में अर्जुन और धृतराष्ट्र का संवाद। (३. ४९)।" "अर्जुन की पाँच वर्ष की अनुपस्थिति की अवधि में पाण्डवों ने अपने को तथा १०,००० ऐसे स्नातक ब्राह्मणों को भोजन कराया जिनमें से कुछ अग्निहोत्री और

कुछ अग्निहोत्र-रहित थे। भोजन के लिये राजा युधिष्ठिर पूर्वदिशा में, भीमसेन दक्षिण दिशा में, तथा नकुल, सहदेव पश्चिम एवं उत्तर दिशा में हिंसक पशुओं का संहार किया करते थे। (३. ५०)।" "पाण्डवों का यह अद्भुत एवं अलौकिक चरित्र सुनकर धृतराष्ट्र ने संजय के सम्मुख अपनी चिन्ता व्यक्त की। उन्हें भीम की लौहगदा का विशेष भय था। संजय ने यह भी बताया कि पाण्डवों के द्यूत में पराजित होने का समाचार सुनकर कृष्ण, धृष्टद्युम्न, विराट, धृष्टकेतु और कैकेयगण भी काम्यक वन में आकर पाण्डवों से मिले। संजय ने गुप्तचरों से उन लोगों के बीच हुये वार्तालाप को जान लिया था और उसे धृतराष्ट्र को बता भी चुके थे। संजय ने यह भी बताया कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथि होना तथा युद्ध में पाण्डवों की सहायता करना स्वीकार कर लिया है। बलराम, अक्रूर, गद, शाम्ब, प्रद्युम्न, आहुक, धृष्टद्युम्न, शिशुपाल का पुत्र, युयुधानु, कैकेय, पाञ्चाल, मत्स्य आदि ने भी कृष्ण के साथ यह घोषण की है कि हस्तिनापुर में रह कर अपने भ्राताओं के साथ युधिष्ठिर शासन करेंगे। (३. ५१)।"

इन्द्रवर्मन्, एक मालव राजा का नाम है जिसके अश्वत्थामा नामक हाथी का भीमसेन ने वध किया था (७. १९०, १५. ४९; १९३, ५६)।

इन्द्रविजय—"युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि इन्द्र और शची ने कैसे भयंकर दुःख प्राप्त किया था, शल्य ने कहा : पूर्वकाल में प्रजापति त्वष्टा ने इन्द्र के प्रति द्रोह-बुद्धि रखने के कारण एक तीन सिरवाला पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विश्वरूप था। वह अपने एक मुख से वेदों का स्वाध्याय करता था, दूसरे से सुरापान करता था, और तीसरे से दिशाओं की ओर इस प्रकार देखता था, मानों उन्हें आत्मसात कर लेगा। उस अमित तेजस्वी बालक का तपोबल देखकर इन्द्र सशङ्क हो उठे और उसे मोहित करने के लिये अप्सराओं को आज्ञा दी। अप्सराओं के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह बालक अपने तप से विचलित नहीं हुआ। तब इन्द्रने अपने वज्र के प्रहार से उसका वध कर दिया। यद्यपि वज्र के प्रहार से वह त्रिशिरा बालक मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा तथापि इन्द्र को शान्ति नहीं मिली, क्योंकि वे उसके तेज से संतप्त हो रहे थे। तब इन्द्र ने एक बढ़ई को त्रिशिरा के मस्तकों के टुकड़े-टुकड़े कर देने की आज्ञा दी। बढ़ई के बहुत समझाने पर इन्द्र ने कहा कि वे त्रिशिरा के वध से लगी ब्रह्म-हत्या से अपनी शुद्धि के लिये किसी अनुष्ठान का आयोजन करेंगे। उन्होंने बढ़ई से यह भी कहा कि त्रिशिरा के मस्तकों को काट देने पर मनुष्यगण हिंसा प्रधान तामस यज्ञों में पशु के सिर को बढ़ई के भाग के रूप में प्रस्तुत करेंगे। यह सुनकर बढ़ई ने अपनी कुठार से त्रिशिरा के तीनों सिरों को काट दिया। कट जाने पर उनके अन्दर से तीन प्रकार के पक्षी—कपिञ्जल, तीतर, और गौरैये—निकले। तब त्वष्टा ने वृत्र को उत्पन्न किया जो इन्द्र को निगल गया। तब देवताओं ने जृम्भिका की सृष्टि की। जम्हाई लेते समय जब वृत्रासुर ने अपना मुख फैलाया तब इन्द्र बाहर निकल आये। उसी समय से सब लोगों के प्राणों में जृम्भाशक्ति का निवास हो गया। त्वष्टा ने वृत्रासुर के तेज और बल की वृद्धि की जिससे त्रस्त होकर इन्द्र विमुख हो गये। उस समय सब देवता मन्दराचल के शिखर पर ध्यानस्थ होकर वृत्रासुर के वध की इच्छा से भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे। (५. ९)।" "ऋषियों और सम्पूर्ण देवताओं को लेकर इन्द्र भगवान् विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने इन्द्र सहित देवताओं से कहा : 'तुम लोग ऋषियों और गन्धर्वों के साथ वहीं जाओ जहाँ विश्वरूपधारी वृत्रासुर विद्यमान् है; तुम लोग उसके साथ सन्धि कर लो तभी उसे पराजित कर सकोगे।' विष्णु की आज्ञा पाकर देवताओं सहित इन्द्र ने वृत्रासुर के पास जाकर सन्धि का प्रस्ताव किया। वृत्रासुर ने सन्धि करने की शर्त के रूप में कहा : 'मैं देवताओं सहित इन्द्र के द्वारा न सूखी वस्तु से, न गीली वस्तु से, न पत्थर से, न लकड़ी से, न शस्त्र से, न अस्त्र से, न दिन में और न रात में ही मारा जाऊँ। इसी शर्त पर देवेन्द्र के साथ सदा के लिये मेरी सन्धि हो सकती है।' देवताओं ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया और तब से वे लोग सदैव वृत्रासुर से मिलने लगे। एक दिन समुद्रतट पर सन्ध्या समय वृत्रासुर को देखकर इन्द्र ने वज्र सहित समुद्र के फेन में प्रवेश करके वृत्रासुर को नष्ट कर डाला। वृत्रासुर की मृत्यु हो जाने पर देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग, तथा ऋषि इन्द्र की स्तुति करने लगे। परन्तु वृत्रासुर के मारे जाने पर विश्वासघात रूपी असत्य से अभिभूत होकर इन्द्र मन ही मन बहुत दुःखी हुये। त्रिशिरा के वध से उत्पन्न हुई ब्रह्महत्या ने उन्हें पहले ही घेर रक्खा था। फलस्वरूप इन्द्र बेसुध और अचेत होकर जल में विचरने वाले सर्प की भाँति छिपकर जल में ही निवास करने लगे। जब इन्द्र इस प्रकार अदृश्य हो गये तब पृथिवी के वृक्ष उजड़ गये, जङ्गल सूख गये, नदियों का स्रोत छिन्न-भिन्न हो गया, और सरोवरों का जल सूख गया। सब जीव अनावृष्टि के कारण क्षुब्ध हो उठे और जगत् में अराजकता के कारण अत्यन्त उपद्रव होने लगे। (५. १०)।" "तब ऋषियों, देवताओं, और देवेश्वरों ने मिलकर नहुष को अपनी-अपनी तपस्याओं से संयुक्त करके इन्द्र-पद पर अभिषिक्त किया। उन लोगों ने नहुष से कहा : 'देवता, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितर, गन्धर्व, और भूत जो भी आपके नेत्रों के सम्मुख आयेगा उसे देखते ही आप उसके तेज का हरण करके स्वयं समृद्ध हो जायेंगे।' इन्द्र पदपर अभि-षिक्त हो जाने पर नहुष कामभोग में आसक्त हो गये। वे देवोद्यानों में, नन्दन वन के उपवनों में, कैलाश में, हिमालय के शिखर पर मन्दराचल, श्वेतगिरि, सह्य, महेन्द्र तथा मलय पर्वत पर, एवं समुद्रों और सरिताओं में अप्सराओं तथा देवकन्याओं के साथ भाँति-भाँति की क्रीड़ायें करने लगे। विश्वावसु, नारद, गन्धर्व, और अप्सराओं के समुदाय तथा छः ऋतुयें शरीर धारण करके देवेन्द्र नहुष की सेवा में उपस्थित रहने लगीं। एक दिन नहुष ने इन्द्राणी शची को भी अपने महल में उपस्थित होने की आज्ञा दी। इस पर अत्यन्त दुःखी होकर शची ने बृहस्पति की शरण ली। बृहस्पति ने शची को शीघ्र ही इन्द्र से मिला देने का आश्वासन दिया। (५. ११)।" "यह सुनकर कि शची बृहस्पति की शरण में गई हैं, नहुष अत्यन्त क्रुद्ध हुये जिससे असुर, गन्धर्व, किन्नर, और महानागों सहित सम्पूर्ण जगत् भयभीत हो उठा। देवताओं ने नहुष से शची का विचार त्यागने का निवेदन किया, जिस पर नहुष ने इन्द्र द्वारा पूर्वकाल में गौतम-पत्नी अहल्या के सतीत्व नष्ट करने का स्मरण दिलाते हुये शची को अपनी सेवा में उपस्थित करने की आज्ञा दी। अन्ततः देवताओं ने नहुष को यह आश्वासन दिया कि वे इन्द्राणी को उनकी सेवा में उपस्थित करेंगे। परन्तु ब्रह्मा के कथन का उल्लेख करते हुये बृहस्पति ने शची को अपनी शरण से नहुष के पास जाने की आज्ञा नहीं दी। फिर भी, बृहस्पति ने शची को नहुष से कुछ समय की अवधि माँगने का परामर्श दिया जिससे देवगण भी सहमत हुये। (५. १२)।" "शची नहुष से थोड़ी और अवधि प्राप्त करके बृहस्पति के पास लौट आईं। तब अग्नि को आगे करके देवगण विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने कहा : 'इन्द्र यज्ञों द्वारा मेरी आराधना करें; वे अश्वमेध यज्ञ के द्वारा मेरी आराधना करके निर्भय होकर पुनः इन्द्रपद प्राप्त कर लेंगे।' विष्णु की बात सुनकर देवता, ऋषि और बृहस्पति उस स्थान पर गये, जहाँ इन्द्र छिपकर रहते थे। वहाँ इन्द्र की शुद्धि के लिये एक महान् अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान हुआ जो ब्रह्महत्या को दूर करने वाला था। इन्द्र ने वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथिवी, और स्त्री समुदाय में ब्रह्महत्या को वितरित कर दिया। इस प्रकार समस्त भूतों में ब्रह्महत्या का विभाजन करके शुद्ध हुये इन्द्र जब अपना स्थान ग्रहण करने के लिये स्वर्गलोक में गये तो वहाँ नहुष को देख कर अत्यन्त भयभीत हुये और पुनः सबकी आँखों से ओझल होकर विचरण करने लगे। इन्द्र के इस प्रकार पुनः अदृश्य हो जाने पर शची ने निशा देवी की उपासना की, जिससे उपश्रुति नामक देवी प्रगट हुई; शची ने पुनः उपश्रुति की स्तुति की (५. १३)।" "शची को अपने साथ लेकर उपश्रुति अनेक पर्वतों तथा हिमालय को लाँघकर उसके उत्तरभाग में जा पहुँची। तदनन्तर अनेक योजनों तक फैले हुये समुद्र के पास पहुँचकर

उन्होंने एक महाद्वीप में प्रवेश किया। वहाँ उन्हें एक सरोवर मिला जिसमें सहस्रों कमल खिले हुये थे। उस सरोवर के मध्यभाग में खिले एक कमल की नाल को चीरकर इन्द्राणी सहित उपश्रुति ने उसके भीतर प्रवेश किया और वहीं एक तन्तु में घुसकर छिपे हुये शतक्रतु इन्द्र को देखा। शची ने इन्द्र की स्तुति करके उनसे नहुष का वध तथा पुनः इन्द्रलोक प्राप्त कर लेने का निवेदन किया। (५. १४)।" "इन्द्र ने शची को बताया कि ऋषियों के हव्य और कव्य ने नहुष की शक्ति को अत्यधिक संवर्धित कर दिया है। उन्होंने शची से कहा : 'तुम एकान्त में नहुष के पास जाकर उनसे ऋषि-यान पर बैठकर अपने पास आने का निवेदन करो।' इन्द्र की आज्ञा से शची ने नहुष को इस प्रकार का आमन्त्रण दिया जिससे वे सहमत हो गये। तदुपरान्त शची ने बृहस्पति से इन्द्र का पता लगाने का आग्रह किया। बृहस्पति ने इन्द्र की प्राप्ति के लिये विधिपूर्वक अग्नि को प्रज्वलित किया और उसमें हविष्य की आहुति देकर अग्निदेव से इन्द्र का पता लगाने के लिये कहा। मन के समान तीव्रगति वाले अग्नि इन्द्र की खोज करके पलभर में बृहस्पति के पास लौट आये और बोले : 'मैं देवराज को संसार में कहीं नहीं देख रहा हूँ; केवल जल ही शेष रह गया है जहाँ मैंने उनकी खोज नहीं की है, क्योंकि जल में मेरी गति नहीं है। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, तथा पत्थर से लोहे की उत्पत्ति हुई हैं। इनका तेज सर्वत्र तो काम करता है, किन्तु अपने कारणभूत पदार्थों में आकर बुझ जाता है। अतः मुझसे जल में प्रवेश करने के लिये न कहें।' (५. १५)।" "तब बृहस्पति ने अग्नि की स्तुति करके वेदमन्त्रों द्वारा उनकी बलवृद्धि की। तदुपरान्त अग्नि ने इन्द्र का पता लगाकर बृहस्पति को सूचना दी। बृहस्पति ने देवर्षि और गन्धर्वों के साथ इन्द्र के पास जाकर उनके पुरातन कर्मों (नमुचि, शम्बर, बल, और वृत्र के वध से सम्बन्धित) का वर्णन करते हुये उनकी स्तुति की। तब इन्द्र धीरे-धीरे बढ़ने लगे और अन्त में अपने पूर्व-शरीर को प्राप्त करके बल-पराक्रम से सम्पन्न हो गये। अपने पूर्व-शरीर को प्राप्त करके इन्द्र ने पूछा कि विश्वरूप तथा वृत्रासुर का वध कर देने के पश्चात् अब और कौन सा कार्य बचा है। बृहस्पति ने बताया कि देवता और ऋषियों की शक्ति से संवर्धित होकर नहुष किस प्रकार महर्षियों को अपना वाहन बनाकर समस्त लोकों में भ्रमण करता है। बृहस्पति जब ऐसा कह रहे थे उसी समय लोकपाल कुबेर, यम वैवस्वत, और सोम तथा वरुण भी वहाँ आ पहुँचे। इन लोगों ने विश्वरूप तथा वृत्र के वध पर प्रसन्नता प्रगट की और नहुष के विरुद्ध इस शर्त पर इन्द्र की सहायता करने के लिये प्रस्तुत हुये कि वे भी यज्ञभाग के अधिकारी बना दिये जायँ। इन लोगों की बात सुनकर इन्द्र ने अग्नि को यज्ञभाग का अधिकारी, वरुण को जल का स्वामी तथा यम और कुबेर को उनके अपने-अपने स्थानों का अधिपति बना दिया। (५. १६)।" "जब इन्द्र देवताओं तथा लोकपालों के साथ बैठकर नहुष के वध का उपाय सोच रहे थे उसी समय महर्षि अगस्त्य ने वहाँ आकर इन्द्र से कहा : 'सौभाग्य की बात है कि आप विश्वरूप के विनाश और वृत्रासुर के वध से निरन्तर अभ्युदयशील हो रहे हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि आज नहुष भी देवताओं के राज्य से च्युत हो गये।' इन्द्र द्वारा नहुष के पतन का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने का आग्रह करने पर अगस्त्य ने कहा : 'बल के दर्प में भरा दुराचारी नहुष देवताओं पर सवारी करता था। निर्मल अन्तःकरण वाले महर्षि पापी नहुष का बोझ ढोते-ढोते अत्यन्त त्रस्त हो उठे थे। एक दिन महर्षियों ने नहुष से गायों के प्रोक्षण-विषयक वैदिक मन्त्रों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रश्न किया जिस पर उसने कहा कि वह वेद-मंत्रों को प्रमाण नहीं मानता। नहुष के ऐसा कहने पर ऋषियों ने बताया कि पूर्वकाल में महर्षियों ने वेद-मन्त्रों को प्रमाणभूत बताया है। यह सुनकर नहुष ने मुनियों के साथ विवाद करते हुये मेरे मस्तक पर पैर से प्रहार किया जिससे उसका समस्त तेज नष्ट हो गया। अतः मैंने उसे स्वर्ग से भ्रष्ट होकर दस सहस्र वर्षों तक महान् सर्प के रूप में पृथिवी पर पड़े रहने का शाप दे दिया। मैंने उससे यह भी बताया कि इस अवधि के पूर्ण हो जाने पर वह पुनः स्वर्ग प्राप्त कर लेगा।' तदनन्तर ऋषियों से घिरे हुये देवता, पितर, यक्ष, नाग, राक्षस, गन्धर्व, देवकन्यायें, अप्सरायें, सरितायें, सरोवर, शैल, और समुद्र अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुये (५. १७)।" "तत्पश्चात्, गन्धर्वों और अप्सराओं से स्तुति सुनते हुये इन्द्र ऐरावत पर बैठे। अग्नि, बृहस्पति, यम, वरुण, कुबेर, तथा सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सरायें भी उनके साथ चले। इन्द्र ने भगवान् अङ्गिरा का दर्शन किया और अङ्गिरा ने भी अथर्ववेद के मन्त्रों से इन्द्र का पूजन किया। अङ्गिरा से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें यह वर दिया : 'आप इस अथर्ववेद में अथर्वाङ्गिरस् नाम से विख्यात होंगे और आपको यज्ञभाग भी प्राप्त होगा।' इस प्रकार देवराज इन्द्र ने शची को प्राप्त करके पुनः धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना आरम्भ किया। (५. १८)।"

इन्द्रसुत=अर्जुन (५. १०५, ३४)।

१. **इन्द्रसेन,** राजा परिक्षित् के पाँचवें पुत्र का नाम है (१. ९४, ५५)

२. **इन्द्रसेन,** युधिष्ठिर के सारथी का नाम है। इसे युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को लाने के लिये भेजा था (२. १३, ४२)। युधिष्ठिर ने इसे अन्न आदि के संग्रह का कार्य सौंपा (२. ३३, ३०)। इसका पाण्डवों के साथ वनगमन (३. १, ११)। जब ऋषियों को नमस्कार करके पाण्डव तीर्थ-यात्रा के लिये प्रस्थित हुये तब इन्द्रसेन आदि चौदह से अधिक सेवक रथ लेकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे (३. ९३, २८)। पाण्डवों ने इसे राजा सुबाहु की राजधानी में ही छोड़ दिया (३. १४०, २७)। राजा सुबाहु की राजधानी में लौटकर पाण्डवगण इन्द्रसेन आदि परिचारकों से भी मिले (३. १७७, १४)। 'इन्द्रसेनादिभिः सूतैः', (३. २४३, ९)। 'इन्द्रसेना-दिभिः', (३. २५८, १५)। सारथि के रुप में इसका उल्लेख (३. २६९, १०. १६; २७१, १५) युधिष्ठिर ने कहा कि इन्द्रसेन आदि सेवकगण केवल रथों को ही लेकर शीघ्र द्वारका चले जाँय (४. ४, ३. ५८)। अभिमन्यु और उत्तरा के विवाह के समय इन्द्रसेन आदि सारथि भी रथ सहित वहाँ उप-स्थित हुये (४. ७२, २३)। 'इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान्', (११. २६, २५)। 'इन्द्रसेनादयस्तथा', (११. २६, २७)।

३. **इन्द्रसेन,** नल और दमयन्ती के पुत्र का नाम है (३. ५७, ४६; ६०, २३; ७२, ३४)।

४. **इन्द्रसेन,** एक कुरु-योद्धा का नाम है (७. १५६. १२२)।

१. **इन्द्रसेना,** नल और दमयन्ती की पुत्री का नाम है (३. ५७, ४६; ६०, २३; ७५, २४)।

२. **इन्द्रसेना,** नारायण की पुत्री और मुद्गल की पत्नी का नाम है (३. ११३, २४)। अपने सौन्दर्य के लिये विख्यात नारायण की पुत्री इन्द्रसेना ने अपने उस पति का अनुसरण किया जो १,००० वर्ष का था (४. २१, ११)

इन्द्राणी = शची, व० स्था०।

इन्द्रात्मज = अर्जुन (६. ६०, २२)।

इन्द्रानुज = कृष्ण (विष्णु), व० स्था०।

इन्द्राभ, धृतराष्ट्र के सातवें पुत्र का नाम है (१. ९४, ५९)।

इन्द्रावरज = कृष्ण (विष्णु), व० स्था०।

इन्द्रियं सर्वदेहिनां = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

इन्द्रोत, शुनकवंशी ऋषि का नाम है : 'इन्द्रोतः शौनको विप्रः', (१२. १५०, २)। 'इन्द्रोतं शौनकम्', (१२. १५०, ८)। इन्होंने पारिक्षित जनमेजय को धर्मोपदेश देकर उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया (१२. १५२, ३८)।

इन्द्रोत-पारिक्षितीय (म)—"भीष्म ने कहा : पूर्वकाल में परिक्षित् के पुत्र राजा जनमेजय (ये परिक्षित् और जनमेजय अर्जुन के पौत्र और प्रपौत्र नहीं वरन् प्राचीनकाल के राजा हैं) बड़े पराक्रमी थे, किन्तु उन्हें बिना जाने ही ब्रह्महत्या का पाप लग गया। इस बात को जानकर पुरोहित सहित सभी ब्राह्मणों ने जनमेजय को त्याग दिया। राजा चिन्ता से जलते हुये वन में चले गये। प्रजा ने भी उन्हें गद्दी से उतार दिया था जिससे वे

वन में दुःख से दग्ध होते हुये भी दीर्घकाल तक तपस्या में लगे रहे। राजा पृथिवी के प्रत्येक देश में घूम-घूम कर अनेक ब्राह्मणों से ब्रह्महत्या के निवारण का उपाय पूछने लगे। एक दिन राजा जनमेजय अपने पापकर्म से दग्ध वन में विचरते हुये कठोर व्रत का पालन करने वाले इन्द्रोत शौनक के पास जा पहुँचे। इन्द्रोत शौनक ने ब्रह्महत्या के कारण राजा की भर्त्सना करते हुये उन्हें यमलोक में जाकर अपनी शङ्का का समाधान करने के लिये कहा। (१२. १५०)।" "मुनिवर इन्द्रोत के ऐसा कहने पर भी जनमेजय ने विनम्रतापूर्वक कहा : 'निश्चय ही मुझे यमराज से घोर भय प्राप्त होने वाला है और यह बात मेरे हृदय में काँटे की भाँति चुभ रही है। मैं यह भी जानता हूँ कि जो क्षत्रिय अपने पाप के कारण यज्ञ के अधिकार से वंचित हो जाते हैं वे पुलिन्दों और शबरों की भाँति नरक में पड़े रहते हैं। अतः आप मेरी बाल-बुद्धि पर ध्यान न देकर जैसे पिता पुत्र पर स्वभावतः संतुष्ट होता है, उसी प्रकार मुझ पर भी प्रसन्न हों।' शौनक ने कहा : 'तुम्हें ब्राह्मणों की शक्ति का ज्ञान है; वेदों और शास्त्रों में जो उनकी महिमा उपलब्ध होती है उसका भी तुम्हें पता है; अतः तुम शान्तिपूर्वक ऐसा प्रयत्न करो जिससे ब्राह्मण जाति तुम्हें शरण दे सके। तुम्हें धर्मोपदेश देने की बात सुनकर मेरे सुहृद मुझ पर अत्यन्त रोष से जल उठेंगे और मुझे अधर्मज्ञ कहेंगे। अतः तुमसे मैं केवल यही प्रतिज्ञा करने के लिये कहूँगा कि भविष्य में तुम ब्राह्मणों से कभी द्रोह नहीं करोगे।' जनमेजय ने शपथपूर्वक यह वचन दिया कि वे मन, वाणी, और क्रिया द्वारा अब कभी ब्राह्मणों से द्रोह नहीं करेंगे। (१२. १५१)।" "इन्द्रोत ने पश्चाताप कर रहे उस राजा जनमेजय को हत्या के पाप से मुक्त होने की विधियों का उपदेश दिया। उन्होंने कुरुक्षेत्र के माहात्म्य के सम्बन्ध में ययाति के एक श्लोक, मनु के एक कथन, और सत्यवत् के एक श्लोक का उद्धरण देते हुये जनमेजय को महासरस् नामक तीर्थ में जाने का परामर्श दिया। उन्होंने बताया कि महासरस् नामक तीर्थ इतना अधिक पवित्र है कि भ्रूणहत्या का अपराधी उससे सौ योजन दूर रहने पर भी पाप-मुक्त हो जाता है। मनु ने बताया है कि अघमर्षण नामक मंत्र का जप करते हुये जो इस तीर्थ के जल में तीन बार गोता लगाता हैं उसे अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान करने का फल मिलता है। प्राचीन काल में देवताओं और असुरों को देवगुरु महर्षि वसिष्ठ ने पापमुक्त होने की विधि पर उपदेश दिया था। तदुपरान्त इन्द्रोत ने राजा जनमेजय से विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कराकर उनके पापों को नष्ट कराया। (१२. १५२)।"

१. इरा, कुबेर की सभा में उपस्थित होनेवाली एक अप्सरा का नाम है (२. १०, ११)।

२. इरा, ब्रह्मा के सभाभवन में उपस्थित होनेवाली एक देवी का नाम है (२. ११, ३९)।

इरामा, एक नदी का नाम है जिसका मार्कण्डेयजी ने भगवान् बालमुकुन्द के उदर में दर्शन किया था (३. १८८, १०४)।

इरावत्, अर्जुन के एक पुत्र का नाम है जिसने श्रुतायु के साथ युद्ध किया था (६. ४५, ६९)। पाण्डवसेना में इनके भी सन्नद्ध रहने का उल्लेख है (६. ५६, १६; ७५, १२)। विन्द और अनुविन्द ने इन पर आक्रमण किया; इन्होंने विन्द और अनुविन्द के साथ युद्ध करते हुये उन्हें पराजित किया (६. ८१, २७; ८३, १२. १३. १६. १९. २१. २३)। "इरावान् को अर्जुन ने नागराज कौरव्य की पुत्री के गर्भ से उत्पन्न किया था। नागराज की यह पुत्री सन्तान हीन थी। उसके मनोनीत पति का जब गरुड ने वध कर डाला तब कौरव्य ने उसे अर्जुन को समर्पित कर दिया। नागकन्या के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण इरावत् सदैव मातृकुल में ही रहा, जहाँ उसकी माता ही उसका पालन-पोषण करती रही। इरावत् के किसी दुरात्मा वयोवृद्ध सम्बन्धी ने अर्जुन के प्रति द्वेष रखने के कारण उनके इस पुत्र को त्याग दिया था। इरावत् ने बड़े होने पर जब सुना कि उसके पिता अर्जुन देवलोक गये हुये हैं तब वह भी शीघ्र इन्द्रलोक में जा पहुँचा। और स्वर्ग में अर्जुन को अपना परिचय दिया जिससे प्रसन्न होकर अर्जुन ने कहा : 'मेरे शक्तिशाली पुत्र ! युद्ध के अवसर पर तुम हम लोगों की सहायता करना।' अर्जुन की आज्ञा सुनकर इरावत् स्वर्ग से लौट आया और महाभारत युद्ध के समय पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध करने के लिये पुनः उपस्थित हुआ। (६. ९०, ७-१७)।" "इसने शकुनि के भ्राताओं के साथ युद्ध किया, और वृषभ को छोड़ कर अन्य सबका वध कर दिया। अलम्बुष ने इस पर आक्रमण करके इसका वध कर दिया जिस पर पाण्डव अत्यन्त दुःखी हुये। (६. ९०, ३०. ३२. ३४. ३६. ३८. ४१. ४२. ५४. ५५. ६०. ६२. ६३. ६७. ७०. ७२. ७३. ७६. ७७; ९१, १. २; ९६, १)।"

इरावती, एक नदी, वर्तमान रावी, का नाम है। वरुण की सभा में उपस्थित होने वाली नदियों में से एक यह भी है (२. ९, १५)। कृष्ण ने इसके तट पर भोज का वध किया था (३. १२, ३३)। भारतवर्ष की नदियों में इसका भी उल्लेख है (६. ९, १६)। 'रम्यामिरावतीम्', (८. ४४, १७)। उन नदियों के साथ इसका भी उल्लेख है जिनसे उमा ने परामर्श किया (१३. १४६, १८)। तु० की० ८. ४४, ३२।

१. इला, मनुवैवस्वत की पुत्री तथा पुरूरवस् की माता का नाम है। यह मनुवैवस्वत की आठवीं सन्तति थी (१. ७५, १६)। एक समय, इनको पुरूरवस् की माता तथा पिता दोनों ही कहा गया है (१. ७५, १८)। मनु की पुत्री तथा पुरूरवस् की माता होने का उल्लेख (१. ९५, ७)। इसने कार्तिकेय को फल-फूलों की भेंट अर्पित की थी (१३. ८६, २४)। इला बुध की पत्नी तथा पुरूरवस् की माता थी (१३. १४७, २६)।

२. इला, एक नदी का नाम है जिसमें युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों सहित स्नान किया था (३. १५६, ८)।

इलावृत, जम्बूद्वीप के मध्यवर्ती एक वर्ष (भूभाग) का नाम है (६. ६, ३८; गी० सं० में देखिये २. २८, ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

इलास्पद, एक तीर्थ का नाम है, जिसमें स्नान करने से दुर्गति का निवारण तथा वाजपेय यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त होता है (३. ८३, ७७)।

इलिल, एक पुरुवंशी राजा का नाम है। ये दुष्यन्त के पिता थे (गी० सं० में १. ७१, ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। इनकी माता का नाम रथन्तर्या था (१. ७४, १२५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। दुष्यन्त के पिता तथा माता के ये नाम दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार दिये गये हैं। उदीच्य पाठ के अनुसार इनके पिता का नाम 'ईलिन' तथा माता का नाम 'रथन्तरी' था (१. ९४, १७)।

इलोपहूत = कृष्ण (विष्णु), १२. ३४२, ६८।

इल्वल, एक असुर का नाम है, जो वातापि का भ्राता और मणिमती नगर का निवासी था (३. ९६, ४. ७. ११)। यह वातापि के मांस को ब्राह्मणों को खिला कर उनका वध कर दिया करता था (३. ९६, १३)। यह एक भयंकर दानव था, किन्तु अगस्त्य का वध करने में असफल रहा क्योंकि उन्होंने वातापि को पूर्णतया पचा लिया था; फलस्वरूप इसने अगस्त्य को प्रचुर धन का दान किया (३. ९८, १९. २०; ९९, १, ५. ६. ९. ११. १३)। उन असुरों में से एक जिनका छलपूर्वक वध किया गया था (९. ३१, १३)। तु० की० **असुर, दैतेय, दैत्य, दैत्येन्द्र, दानव**।

इषुप—देखिये **इषुपाद्**।

इषुपाद्, एक असुर का नाम है। दनु के पुत्रों में से एक (१. ६५, २५)। यह नग्नजित् के रूप में उत्पन्न हुआ था (१. ६७, २०)।

इष्ट = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

इष्टीकृत, एक यज्ञ का नाम है (३. १२९, १; २६०, ४)।

इष्वोत्तमभर्तृ = शिव (१०. ७, १०)।

ई

ई = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

ईजिक, भारत के एक जनपद का नाम है (६. ९, ५२)।

ईड्य = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ईरिन् , (बहु०) एक वंश, यमराज की सभा में सौ ईरियों के उपस्थित होने का उल्लेख (२. ८, २३)।

ईलिन् , पूरुवंशी महाराज तंसु के पुत्र का नाम है (१. ९४, १६)। इनकी पत्नी का नाम रथन्तरी था। उसके गर्भ से इनके दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु, तथा वसु नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुये थे (१. ९४, १७-१८)। तंसु और कालिङ्गी के पुत्र (१. ९५, २७)। इनकी पत्नी का नाम रथन्तरी था, तथा दुष्यन्त आदि इनके पाँच पुत्र थे (१. ९५,२८)।

१. ईश = ब्रह्मन् (१. ६४, ४५; ६. ३५, १५; १२. ३००, ५८)।

२. ईश = शिव (३. २३१, ५३; ४. ५६, ११; ७. ११३, १०; १२. २८४, १६; १३. १४, १. २२. १३८. १९२. २३१. २३३. ३३८. ३४८)।

३. ईश = विष्णु (नारायण, कृष्ण) 'ईशे च देवे नारायणे तथा', (१२. ३०१, २३)। १२. ३३५, ५। कृष्ण ने कहा 'मैं ईश हूँ', (१२. ३४२, ९०)। १२. ३४२, १२५; ३४३, १४। 'वार्यते स्वयमीशेन राजन्नारायणेन च', (१२. ३४८, १०)। १६. ४, २८।

४. ईश, सर्वेश्वर के लिये प्रयुक्त हुआ है (५. ४६, २६)।

५. ईश, एक विश्वेदेव का नाम है (१३. ९१, ३५)।

१. ईशान = ब्रह्मन् : १२. ३०२, १६। 'ईशानो ज्योतिरव्ययः', (१२. ३१२, १३)।

२. ईशान = शिव : 'तत्रेशानं समभ्यर्च्य', (३. ८५, २७)। 'शंकरं भवमीशानम्', (३. १०६, १२)। ३. १०९, ७। कुबेर के मित्र (३. २७४, १६)। ७. ८०, ४४. ५६। 'ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान्', (७. १२७, १)। ७. २०१, ६३. ७१; २०२, १०. ११. १०३; 'ब्रह्मेशानाविव', (८. १६, १९)। 'स्थाणुमीशानम्', (८. ३३, ४५)। ८. ३४, ३६. ७७; ३५, ४४। 'ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान्', (८. ४६, ३९)। ८. ८६, १४। 'ब्रह्मेशानौ', (८. ८७, ६८)। 'ब्रह्मेशानानुशासनम्', (८. ८७, ८४)। ९. १७, ४५; १०. ७, २। 'रुद्राणामपि चेशानं गोप्तारम्', (१२. १२२, ३०)। १२. २८१, ४३; २८४, ५७। सहस्रनामों में से एक (१२. २८४, ११६)। १२. ३४१, २४; ३४२, १३२; १३. १४, ६९. १३८. २३५. ३१६. ३३१. ३६३. ४०३. ४२०; १६, ६. ६६। सहस्र नामों में से एक (१३. १७, ७५)। १३. १७, १६१; १८, ९. ३६. ६२; १६०, ४०; १४. ८; २९।

३. ईशान = विष्णु (नारायण, कृष्ण) : १. १, २२। 'सोऽनिरुद्धः स ईशानः', (१२. ३३९, ४०)। १२. ३३९, ११७; ३४०, ५७; ३४२, ६७; ३४७, ३१; ३४९, ५८। सहस्र नामों में से एक (१३. १४९, २१)। १४. ४०, ५ (= महान् आत्मा)।

४. ईशान : ३. ३०, २२; ५. ३१, २; ४६, १५; १२. ३१६, १७।

ईशानाध्युषित, एक तीर्थ का नाम है (३. ८४, ८)।

ईशः पशूनां = कृष्ण (१३. १५८, १८)।

१. ईश्वर = ब्रह्मन् : 'ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वमेव प्रजापतिः', (६. १२, २९)। विश्वेदेवाः सहेश्वराः', (७. ७६, ४)। १२. ५९, २५।

२. ईश्वर = शिव : १. २, ५०; १६९, १०। गोपतिमीश्वरम्', (१. १७३, ३२)। १. १९७, ४५. ४६; २१५, २१; २. ४२, १३; ३. ४०, २८; २५२, ८; ७. ८१, २२; २०१, ६१; २०२, ४०. ११४. ११७. १४३; ८. ३४, ५१; ३५, ४; १०. ७, २. ६८। 'रुद्रं च प्रभुमीश्वरम्', (१२. १६६, १६; ३४१, २८)। 'ईशानमीश्वरम्', (१३. १४, ६९)। 'अनीश्वरभक्तः', (१३. १४, १८१)। १३. १४, २३४. २४६। विष्णु को उत्पन्न किया। (१३. १४, ३४७)। १३. १४, ३६७ 'पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम्', (१३. १६, ४)। १३. १६, ११. ३२; १७, १०. १८. २२। 'सहस्र नामों में से एक (१३. १७, ७५)। १३. १८, ६३; ७७. २९; ८५, १२३ (वरुण); १३. ८५, १२४; १६१, २८. २९; १४. ८, ३०।

३. ईश्वर = इन्द्र : 'हंसरूपेण चेश्वरः', (१. ६३, २१)। १. १७७, ३७; ९. ४३, ३६; १२. २२२, ३७; २२७, ११८. ११९। 'देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम्', (१७. ३, २६)।

४. ईश्वर = स्कन्द : 'अनलात्मजमीश्वरम्', (९. ४४, ११)। ९. ४६, ७५; १३: ८६, २६।

५. ईश्वर = विष्णु (नारायण, कृष्ण), : 'हरिं', (२. ३६, २०)। ३. १६३, २६; २०१, २९। 'केशवः', (३. २६३, १८)। 'हरिरीश्वरः', (३. २६३, २५)। 'विष्णुः', (५. ९७, ३)। 'केशवः', (१२. २०५, ७)। 'कृष्णं', (१२. २०९, १)। १२. २०९, ३६। 'हरिः', (१२. ३३७, ४०)। ईश्वर के रूप में अनिरुद्ध (१२. ३३९, ४१)। १२. ३४०, ३०। 'हरिः', (१२. ३४०, १०९)। १२. ३४६, २१; ३४७, १२; १३. १८, ६१; १२६, १। सहस्र नामों में से एक (१३. १४९, १७. २२)। १४. ५५, १४।

६. ईश्वर : ३. ३०, २१. २४. २५. २८. ३०. ३२. ४२; ३२, १. २१; ५. ३७, ४०; १०५, ४०; ६. ३७, २८; ३९, ८. १७; ४०, ८. १४। दण्ड के नामों में इनकी गणना (१२. १२१, ४१)। १२. २३१, ३०; २३२, २६; २३३, १; २८५, १३। 'अनीश्वरः', (१२. ३००, ३)। १२. ३०५, ३२; ३०६, ४१; ३१२, १५; १४. ३, २।

७. ईश्वर , राजा पूरु के द्वारा पौष्टी के गर्भ से उत्पन्न द्वितीय पुत्र का नाम है (१. ९४, ५)।

८. ईश्वर , एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्यों में से किसी के अंश से उत्पन्न हुआ था (१. ६७, ६५)।

९. ईश्वर , ग्यारह रुद्रों में से एक; ब्रह्माजी के पौत्र एवं स्थाणु के ११ पुत्रों में से एक (१. ६६, ३)। अर्जुन के जन्मोत्सव के समय रुद्रों के साथ इनकी उपस्थिति का वर्णन (१. १२३, ६९)।

१०. ईश्वर , एक विश्वेदेव (१३. ९१, ३७)।

ईश्वरेश्वर = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

ईहामृग (बहु०), पुलह के वंशजों के लिये प्रयुक्त हुआ है (१. ६६, ८)।

उ

उक्थ , एक अग्नि : 'उक्थो नाम महाभाग त्रिभिरुक्थैरभिष्टुतः', (३. २१९, २५)।

उक्थयज्ञ = कृष्ण (१२. ४३, १३)।

उच्चा , ऋषभकन्द का नाम (३. १९७, १७)।

१. उग्र , धृतराष्ट्र के पुत्रों में से एक (१. ६७, १०३; ११७, १२)। भीमसेन द्वारा इसका वध (६. ६४, २९. ३४)।

२. उग्र , एक यादव राजकुमार, जिसे पाण्डवों की ओर से रणनिमन्त्रण भेजा गया था (५. ४, १२)।

३. उग्र , कवि पुत्रों में से आठवें पुत्र का नाम है (१३. ८५, १३३)।

४. उग्र = शिव (१३. १७, १००), व० स्था०।

५. उग्र = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

उग्र , बहुवचन में प्रयुक्त एक जाति के लोगों का नाम है (१२. २९६, ८; १३. ४८, ७)।

उग्रक , एक नाग (१. ३५, ७)।

१. उग्रकर्मा , शाल्व देश के राजा का नाम है। इनका भीमसेन ने वध किया था (८. ५, ४२)।

२. उग्रकर्मा, केकय राजकुमार विशोक के सेनापति का नाम है जिसका कर्ण ने वध किया था (८. ८२, ४–५)।

उग्रतीर्थ, क्रोधवश दैत्य के अंश से प्रगट हुये एक क्षत्रिय राजा का नाम है (१. ६७, ६५)।

१. उग्रतेजस्, एक नाग, जो बलराम जी के परमधाम पधारने के समय उनके स्वागत के लिये आया था (१६. ४, १६)।

२. उग्रतेजस् = शिवः (सहस्र नामों में से एक १३. १७ ५७)।

उग्रदण्ड = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उग्रधन्वन् = स्कन्द (३. २३२, १७)।

उग्रयायिन्, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ११७, ११)।

१. उग्रश्रवस्, लोमहर्षण के पुत्र थे, जिन्होंने शौनक को महाभारत सुनाया था : इन्हें सौति भी कहते हैं (१. १, १)। 'लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः', (१. ४, १)। १. ४०, ५। उत्तरीय ऋषियों में से एक यह भी थे (१३. १६५, ४७)।

उग्रश्रवस् के निम्नलिखित पर्याय मिलते है :

*** पौराणिक**, व० स्था०।

*** लोमहर्षपुत्र** : १. १, १; ४, १।

*** लोमहर्षणि** (लोमहर्षण का पुत्र):१. १, ५. ८; २. ८४; ४. ३; ५, १।

*** सौति, सूत, सूतज, सूतनन्दन, सूतपूत्र**, व० स्था०।

२. उग्रश्रवस्—धृतराष्ट्र का एक पुत्र (१. ६७, १००; ११७, ९)। भीमसेन द्वारा इसका वध (७. १५७, १८)।

१. उग्रसेन, जनमेजय के एक भाई का नाम है (१. ३, १)।

२. उग्रसेन—एक देवगन्धर्व, मुनि नामक कश्यप की पत्नी का एक पुत्र है (१. ६५, ४२)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर इनकी उपस्थिति (१. १२३, ५५)। युद्ध देखने के लिये आये (४. ५६, १२)।

३. उग्रसेन, एक राजा का नाम है जो स्वर्भानु नामक असुर के अंश से अवतरित हुये थे (१. ६७, १३)।

४. उग्रसेन, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, १००, ११७, ९)

५. उग्रसेन, सोमवंशीय राजा अविक्षित् के पौत्र तथा परिक्षित् के पुत्र का नाम है (१. ९४, ५४)।

६. उग्रसेन, इनका दूसरा नाम आहुक था, ये वृष्णियों के राजा तथा कंस के पिता थे (१. २१९, ८)। 'पूज्यमानो यदुश्रेष्ठैरुग्रसेनमुखैः', (२. २, ३३)। ये ही (?) युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हुये थे (३. १५, १२)। 'वृष्ण्यन्धका उग्रसेनादयः', (५. २८, १२)। जब श्रीकृष्ण ने कंस का वध कर दिया तब उग्रसेन मथुरा के राजा बने (५. ४८, ७८)। इनका दूसरा नाम आहुक था (५. १२८, ३८)। 'बभ्रूग्रसेनयो राज्यं नाप्तुं शक्यं कथञ्चन', (१२. ८१, १७)। 'उग्रसेनस्य संवादं नारदे केशवस्य च', (१२. २३०, २. ३)। 'प्रययुस्तांस्तदा राजनुग्रसेनो न्यवारयत्। ततः पुराद्विनिष्क्रम्य वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा ॥', (१४. ८३, १५)। उन व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने मृत्यु के पश्चात् देवलोक में स्थान पाया (१८. ५, १७)।

७. उग्रसेन = जनक (३. १३४, १)।

उग्रसेनसुत = कंस (१. ६७, ६७; ५. १२८, ३८)

उग्रसेनानी = कृष्ण (१२. ४३, ९)।

उग्रात्मन् = कृष्ण (१२. ४७, ८१)।

१. उग्रायुध, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, ९९; ११७, ७)। ये द्रौपदी के स्वयंवर में गये थे (१. १८६, २)।

२. उग्रायुध, पाण्डवपक्षीय एक पाञ्चाल्य योद्धा का नाम है, जिसे कर्ण ने घायल किया था (८. ५६, ४४)

३. उग्रायुध, कौरवपक्ष के एक योद्धा का नाम है, जो युद्धक्षेत्र में मारा गया था (९. २, ३७)।

४. उग्रायुध = शिव (७. २०२, ४५; १२. २८९, १८)।

५. उग्रायुध, एक दुर्धर्ष चक्रवर्ती नरेश का नाम है, जिसका भीष्मजी ने किसी समय वध किया था (१२. २७, १०)।

उग्रायुधसुत—कौरवपक्ष का एक संशप्तक योद्धा, जिसका अर्जुन ने वध किया था (८. १९, ७)।

उग्रेश=शिव (३. १०६, १२)।

१. उच्चैःश्रवस्, एक दिव्य अश्व का नाम है। 'क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा', (१. २, ९१)। 'मथ्यमानेऽमृते जातमश्वरत्नमनुत्तमम्', (१. १७, १०२)। समुद्र-मन्थन के समय प्रगट हुआ था (१. १८, ३५)। उच्चैःश्रवस् के वर्ण के विषय में कद्रू और विनता की होड़ (१. २०, २)। 'जग्मतुस्तुरगं द्रष्टुमुच्चैःश्रवसमन्तिकात्', (१. २१, २)। 'उच्चैःश्रवा सोऽश्वराजः', (१. ५४, ६)। 'ध्यनदद्यथैवोच्चैःश्रवा हयः', (१. १३०, ४७)। समुद्र-मन्थन से इनकी उत्पत्ति (५. १०२, १२) 'उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि मामममृतोद्भवम्', (६. ३४, २७)। 'उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे। जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥', (७. ११, ३)। 'जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा॥ क्षेपिता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः।', (७. १९६, ३०–३१)। 'उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां', (८. ८, २४)। 'उच्चैश्रवा हयश्रेष्ठः', (९. ४५, १६)। 'उच्चैःश्रवसमप्यश्वं प्रापणीयं सतां विदुः', (१२. २३४, १५)। 'अभितो वर्तमानस्य यथोच्चैःश्रवस्तथा', (१४. ८७, १८)। तु० की० **अश्वराज**।

२. उच्चैःश्रवस्, अविक्षित के छठवें पुत्र का नाम है (१. ९४, ५३)।

उच्छिख, तक्षककुल में उत्पन्न एक नाग का नाम है जो जनमेजय के सर्पसत्र में भस्म हो गया था (१. ५७, ९)।

उच्छृङ्ग, विन्ध्य द्वारा स्कन्द को प्रदान किये गये एक पार्षद का नाम है (९. ४५, ४९)।

उञ्छवृत्ति : 'शिलोञ्छवृत्तिः', (३. २६०, ३)। 'उञ्छवृत्तिव्रते सिद्धः', (१२. ३६३, १)। 'उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः', (१४. ९०, ७)।

उञ्छवृत्त्युपाख्यानम्—"भीष्म ने कहा कि महर्षि नारद वायु के समान निर्बाध रूप से समस्त लोकों में भ्रमण करते रहते हैं। एक समय जब वे देवराज इन्द्र के यहाँ पधारे तब इन्द्र ने उनसे पूछा कि उन्होंने कोई आश्चर्यजनक घटना देखी है, अथवा नहीं। उस समय नारद ने इस कथा का वर्णन किया (१२. ३५२)।" "गङ्गा के दक्षिण तट पर महापद्म नामक नगर में एक सोमवंशी ब्राह्मण निवास करता था। वह एकाग्रचित्त और सौम्य-स्वभाव का मनुष्य था। अनेक पुत्रों को उत्पन्न करने के पश्चात् लौकिक कार्यों से विरक्त होकर उसने तीन प्रकार के धर्मों—वेदोक्त, शास्त्रोक्त तथा शिष्टाचीर्ण—पर मन ही मन विचार करना आरम्भ किया। किसी भी निर्णय पर न पहुँच सकने के कारण जब वह एक दिन अत्यन्त खिन्न हो गया था तब उसके यहाँ एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण अतिथि के रूप में आये (१२. ३५३)।" "ब्राह्मण ने अतिथि से पूछा : 'मैं गृहस्थधर्म को अपने पुत्रों के अधीन करके सर्वश्रेष्ठ धर्म का पालन करना चाहता हूँ। अतः आप बतायें कि मेरे लिये कौन सा मार्ग श्रेयस्कर है। भिक्षा-वृत्ति पर आधारित संन्यास धर्म में मेरी आस्था नहीं रह गई है।' अतिथि ने कहा : 'मेरा भी ऐसा ही मनोरथ है। मैं भी आपकी ही भाँति श्रेष्ठधर्म का आश्रय लेना चाहता हूँ, परन्तु स्वर्ग के अनेक द्वार (साधन) होने के कारण किसका आश्रय लिया जाय यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।' (१२. ३५४)।" "अतिथि ने कहा : 'मेरे गुरु ने इस विषय में जो तात्विक बातें बताई हैं उन्हीं का मैं तुमको उपदेश करूँगा। पूर्व कल्प में जहाँ प्रजापति ने धर्मचक्र प्रवर्तित किया था, सम्पूर्ण देवताओं ने जहाँ यज्ञ किया था, तथा जहाँ राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाता यज्ञ करने में इन्द्र से भी आगे बढ़ गये थे उसी नैमिषारण्य में गोमती के तट पर नागपुर नामक एक नगर है। उसी नगर में पद्म नामक महानाग निवास करता है। यह पद्म नामक नाग मन, वाणी और किया द्वारा कर्म, उपासना और ज्ञान के तीन मार्गों का आश्रय

लेकर सम्पूर्ण भूतों को प्रसन्न रखता है। तुम उसी के पास जाकर विधिपूर्वक अपना मनोवाञ्छित प्रश्न पूछो।' (१२. ३५५)।" "ब्राह्मण अतिथि की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और रात भर अतिथि के साथ मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करता रहा। दूसरे दिन अतिथि को विदा करके पद्म नामक नाग के आवास की ओर चल दिया। (१२. ३५६)।" "मार्ग में उसे एक मुनि ने नाग के घर का पता बताया। जब वह नाग के घर पर पहुँचा तब नागराज की परम सुन्दरी पतिव्रता पत्नी ने उसका स्वागत किया। नागपत्नी ने उसे बताया कि नागराज उस समय सूर्य का रथ ढोने के लिये गये हैं। प्रतिवर्ष उन्हें एक मास तक यह कार्य करना पड़ता है। उसने बताया कि नाग के लौटने में अब कुछ दिन ही शेष रह गये हैं। नागपत्नी की बात सुनकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने इस अवधि को गोमती के तट पर रहकर व्यतीत करने का निश्चय किया। (१२. ३५७)।" "वह ब्राह्मण गोमती के तट पर रहता हुआ निराहार तपस्या करने लगा। उसके भोजन न करने से वहाँ रहने वाले नागों को अत्यन्त दुःख हुआ। तदनन्तर नागराज के बन्धु-बान्धवों और स्त्री-पुत्रों आदि ने मिलकर उस ब्राह्मण से भोजन ग्रहण करने का आग्रह किया। वह उसकी तपस्या का छठा दिन था और उसने यह प्रण किया था कि वह आठ दिन तक निराहार रहेगा; उसके बाद भी यदि नागराज न आये तो वह अपना व्रत भङ्ग कर देगा। ब्राह्मण का वचन सुनकर वे सब नाग अपने घर लौट गये। (१२. ३५८)।" "नागराज के वापस लौटने पर उनकी पत्नी ने ब्राह्मण के आगमन के सम्बन्ध में उन्हें सूचना दी। (१२. ३५९)।" "पत्नी की बात सुनकर नागराज ने पूछा : 'वे ब्राह्मण कोई मनुष्य हैं या देवता ?' नागपत्नी ने कहा : 'अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाले वायुभोजी नागराज ! उन ब्राह्मण की सरलता से तो मैं यही समझती हूँ कि वे देवता नहीं हैं। आप अपने सहज रोष का परित्याग करके उन ब्राह्मण देवता का दर्शन कीजिये।' नाग ने कहा : 'मुझ में अहंकार के कारण अभिमान नहीं है, अपितु जाति दोष के कारण महान् रोष भरा हुआ है। तुमने मेरे उस रोष को वाणी रूपी अग्नि से जलाकर भस्म कर दिया है। रोष से बढ़कर मोह में डालने वाला मैं कोई दूसरा दोष नहीं देखता। इन्द्र से भी टक्कर लेनेवाला ब्राह्मण रोष के अधीन होकर ही श्रीराम के हाथ से मारा गया; कार्त्तवीर्य अर्जुन भी रोष के कारण ही परशुराम के द्वारा मारे गये। अतः मैं अपने क्रोध पर नियन्त्रण करके उन ब्राह्मण देवता का दर्शन करने जाता हूँ।' (१२. ३६०)।" "ब्राह्मण के पास जाकर नागराज ने उनकी तपस्या का कारण पूछा। ब्राह्मण ने बताया कि उसका नाम धर्मारण्य है और वह नागराज पद्म का दर्शन करने के लिये तपस्या कर रहा है। ब्राह्मण ने कहा : 'मैंने पद्म के स्वजनों से सुना है कि वे यहाँ से दूर गये हैं, अतः मैं इसलिये वेदों का पारायण कर रहा हूँ कि वे क्लेशरहित और सकुशल घर लौट आयें।' पद्म के यह बताने पर कि वही नागराज हैं, ब्राह्मण ने कहा : 'मैं विषयों से निवृत्त हो अपने आप में ही स्थित रहकर जीवात्माओं की परमगति स्वरूप परमब्रह्म परमात्मा की खोज कर रहा हूँ, परन्तु महान् बुद्धि युक्त गृह में आसक्त हुये इस चंचल चित्त की ही उपासना करता हूँ। इस समय मेरे मन में जो प्रश्न उठ रहे हैं आप उनका समाधान करें।' (१२. ३६१)।" "ब्राह्मण ने नागराज से पूछा : 'आप सूर्य के एक पहिये के रथ को खींचने के लिये जहाँ प्रतिवर्ष जाते हैं वहाँ आपने किसी आश्चर्यजनक वस्तु को देखा है या नहीं।' नागराज ने उन समस्त आश्चर्यों का वर्णन किया जिनके स्रोत सूर्य हैं। किन्तु उन्होंने बताया कि सर्वाधिक आश्चर्य की जो बात उन्होंने देखी थी वह यह थी कि पूर्वकाल में मध्याह्न के समय द्वितीय सूर्य के समान एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष आकाश को चीरता हुआ आकर सूर्य में समा गया। (१२. ३६२)।" "नागराज ने कहा कि उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछने पर सूर्य ने बताया कि वे तेजस्वी व्यक्ति उञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह के व्रत का पालन करने से सिद्धि को प्राप्त हुये एक मुनि थे जो दिव्य धाम में आ पहुँचे हैं। सूर्य ने बताया : 'उन दिव्य ब्राह्मण ने संहिता के मंत्रों द्वारा भगवान् शंकर का स्तवन किया था और उञ्छवृत्ति से प्राप्त अन्न को ही ग्रहण करते थे, इसीलिये उन्होंने उस गति को प्राप्त किया जो देवता, गन्धर्व, असुर और नाग भी प्राप्त नहीं कर सकते।' सूर्य के कथन का उल्लेख करते हुये नागराज ने बताया कि उञ्छवृत्ति से सिद्ध हुआ वह व्यक्ति अपनी इच्छानुसार सिद्ध-गति को प्राप्त हुआ और सूर्य के साथ रहकर समस्त पृथिवी की परिक्रमा करता रहता है। (१२. ३६३)।" "नागराज की बात सुनकर ब्राह्मण उञ्छव्रत का पालन करने का निश्चय करके वहाँ से बिदा हुआ। (१२. ३६४)।" "नागराज से बिदा लेकर उस ब्राह्मण ने च्यवन मुनि से उञ्छवृत्ति की दीक्षा ली। च्यवन ने राजा जनक के दरबार में महात्मा नारद से इस पवित्र कथा का वर्णन किया था। नारद ने इन्द्र से और तत्पश्चात् पूर्वकाल में समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों से भी इस शुभ कथा का वर्णन किया था। भीष्म ने बताया कि परशुराम के साथ युद्ध करने के समय वसुओं ने उनसे इस कथा का वर्णन किया था। उन्होंने यह भी बताया कि नागराज के उपदेश के अनुसार अपने कर्त्तव्य को समझकर वह ब्राह्मण दूसरे वन में जाकर उञ्छशिलवृत्ति से प्राप्त हुये परिमित अन्न का भोजन करता हुआ यम-नियम का पालन करने लगा। (१२. ३६५)।"

उज्जयन, विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक का नाम है (१३. ४, ५८)।

उज्जयन्त, सौराष्ट्र (काठियावाड़) के पिण्डारक क्षेत्र के अन्तर्गत एक महान् सिद्धिदायक पर्वत का नाम है (३. ८८, २१)।

उज्जानक, एक तीर्थ का नाम है : 'एष उज्जानको नाम पावकिर्यत्र शान्तवान्। अरुन्धतीसहायश्च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥', (३. १३०, १७)। उज्जानक तीर्थ में स्नान करके और आर्ष्टिषेण के आश्रम तथा पिङ्गा के आश्रम में स्नान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है (१३. २५, ५५)।

उज्जालक, मरुप्रदेश में स्थित एक समुद्र का नाम है : 'ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो बालुकापूर्ण उज्जालक इति स्मृतः ॥', (३. २०२, १६)। समुद्रे 'बालुकापूर्णे उज्जालक इति स्मृते', (३. २०४, ७)।

उडुप (ताराओं के अधिपति) = सोम : 'अपश्यद्वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्', (३, १४६, ८०)।

उडुपति = सोम (९. ३५, ६२; ५१, १)।

उडुराज् = सोम। 'नक्षत्राणामिवोडुराट्' (२. ३६, १७)। 'शुक्लपक्ष इवोडुराट्' (५. ३४, ५५)। 'यत्रोडुराड्यक्ष्मणा क्लिश्यमानः', (९. ३५, ४१)। 'घनैर्मुक्त इवोडुराट्', (१२. ५२, १८)। 'बालचन्द्रमिव', (१३. १४, २५२)। 'पौर्णमास्यमिवोडुराट्', (१४. ६४, ३)।

उड्र, दक्षिण भारत के एक जनपद का नाम है जिसे सहदेव ने विजित किया था (२. ३१, ७१)। उड्रनिवासी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर उपस्थित हुये थे (३. ५१, २२)। तु० की० **ओड्र**।

उड्रराज (उड्रों के अधिपति), युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हुए थे (२. ४, २४)।

उढर, देखिये **उड्र**।

उतङ्क, देखिये **उत्तङ्क**।

उतथ्य, एक ऋषि का नाम है जो अङ्गिरस् के द्वितीय पुत्र थे। (१. ६६, ५)। यह ममता के पति (१. १०४, ९), बृहस्पति के ज्येष्ठ भ्राता (१. १०४, १०) और दीर्घतमस् के पिता थे : जब दीर्घतमस् गर्भ में थे तब बृहस्पति ने ममता का सतीत्व भ्रष्ट किया था (१. १०४, २५)। एक अङ्गिरा के रूप में इनका उल्लेख है (१२. ९०, १-३; ९१, १. ५९; ३४१, ४९-५०; १३. ८५, १३०)। "वायु ने कहा : 'सोम ने अपनी पुत्री भद्रा को अङ्गिरस् वंशी उतथ्य को देने का निश्चय किया था। भद्रा को इसके लिए कठिन तपस्या करनी पड़ी थी। तदुपरान्त सोम के पिता अत्रि ने उतथ्य को आमन्त्रित करके भद्रा को उन्हें सौंप दिया। परन्तु पूर्वकाल

से ही वरुण इस बालिका पर आसक्त थे, अतः उन्होंने एक दिन जब वह यमुना में स्नान कर रही थी, उसका अपहरण कर लिया। अपहृत करके वरुण उसे अपने अद्भुत नगर में लाये जो ६,००,००० सरोवरों तथा अनेक भवनों और अप्सराओं इत्यादि से सुशोभित था। नारद से यह समाचार पाकर उतथ्य ने उनसे (नारद से) वरुण को अपनी पत्नी लौटा देने का सन्देश भेजा। वरुण के अस्वीकृत कर देने पर नारद ने उतथ्य को बताया 'वरुण ने मेरा गला पकड़ कर मुझे अपने भवन से बाहर निकाल दिया।' इस पर क्रुद्ध होकर उतथ्य ने जलों को रोक कर उनका पान कर लिया, पृथिवी को ६,००,००० सरोवरों को शुष्क करने के लिए विवश किया, सरस्वती को अदृश्य कर दिया और वरुणलोक को अपवित्र हो जाने का शाप दिया।' तब भयभीत होकर वरुण ने भद्रा को लौटा दिया जिससे प्रसन्न होकर उतथ्य ने लोकों और वरुण को कष्टमुक्त कर दिया। 'अतः तुम किसी ऐसे क्षत्रिय का नाम बताओ जो उतथ्य से श्रेष्ठ हो।' (१३. १५४, ९–१२. १६. १७. २०. २१. २५. २९. ३०. ३२)। तु० की० **५. अङ्गिरस्** और **२. अङ्गिरस।**

उतथ्यपुत्र = दीर्घतमस् (१. १०४, २१)।

उत्कल, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है। 'मेकलाश्चोत्कलैः सह', (६. ९, ४१)। कर्ण ने दुर्योधन के लिए इस जनपद को विजित किया था (७. ४, ८)। 'मेकलोत्कलकालिङ्गाः', (८. २२, २१)।

उत्कोचक, एक प्राचीन तीर्थ का नाम है, जहाँ धौम्य का आश्रम था (१. १८३, २)। 'उत्कोचकं तीर्थम्', (१. १८३, ६)।

उत्क्राथिनी, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, १६)।

उत्क्रोश, इन्द्र द्वारा प्रदत्त स्कन्द के एक पार्षद का नाम है (९. ४५, ३५)।

उत्तङ्क, एक ऋषि का नाम है (१. २, ८९) "एक समय की बात है—ब्रह्मवेत्ता आचार्य वेद ने यजमान के कार्य से बाहर जाने के लिये उद्यत हो अपने उत्तङ्क नामक शिष्य को अग्निहोत्र आदि के कार्य में नियुक्त करते हुए कहा : 'मेरे घर में मेरे बिना जिस किसी वस्तु की कमी हो जाय उसकी तुम पूर्ति कर देना।' आचार्य के बाहर चले जाने पर उत्तङ्क सेवा-परायण के रूप में गुरु-गृह में रहने लगे। एक दिन गुरु-पत्नी के आग्रह पर भी उन्होंने उसके साथ संसर्ग करना अस्वीकृत कर दिया। कुछ समय के पश्चात् जब आचार्य वेद अपने घर लौट आये तो उन्हें उत्तङ्क का वृत्तान्त मालूम हुआ जिससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुये। वेद ने उत्तङ्क को अपने घर लौट जाने की आज्ञा दी, परन्तु गुरु-दक्षिणा दिये बिना उत्तङ्क घर नहीं लौटना चाहते। उन्होंने गुरु से पूछा : 'मैं कौन सी वस्तु गुरु दक्षिणा में अर्पित करूँ।' गुरु ने कहा : 'तुम मेरी पत्नी से पूछो और जो वह बतायें वही वस्तु उन्हें भेंट कर दो।' गुरुपत्नी से पूछने पर उसने बताया कि वह राजा पौष्य की क्षत्राणी पत्नी के कुण्डलों को ही स्वीकार करेंगी। गुरुपत्नी की आज्ञा पाकर कुण्डल प्राप्त करने के लिये उत्तङ्क वहाँ से चल दिये। मार्ग में उन्होंने एक अत्यन्त विशालकाय बैल (ऐरावत) और उस पर बैठे एक विशालकाय पुरुष (इन्द्र) को देखा। उस पुरुष की आज्ञा से उत्तङ्क ने उस बैल का गोबर तथा मूत्र ग्रहण किया, क्योंकि उनके आचार्य भी पूर्वकाल में उसे खा चुके थे। पौष्य के भवन में आकर जब उत्तङ्क ने राजा की आज्ञा से क्षत्राणी का दर्शन करना चाहा तब वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ी, क्योंकि गोबर और मूत्र ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने अपने को भली प्रकार स्वच्छ नहीं किया था। पौष्य ने जब उनकी इस त्रुटि का स्मरण दिलाया तब उन्होंने सविधि आचमन आदि करने के पश्चात् पुनः अन्तःपुर में प्रवेश किया। इस बार उन्हें क्षत्राणी के दर्शन हुये और उससे उसके दोनों कुण्डल माँगकर उत्तङ्क गुरुगृह की ओर चले। मार्ग में नागराज तक्षक ने एक भिक्षुक के रूप में उत्तङ्क के कुण्डलों को चुरा लिया और उन्हें लेकर नागलोक चला गया। तब इन्द्र ने अपने वज्र से पृथिवी में एक छिद्र बनाया, जिससे होकर उत्तङ्क नागलोक तक पहुँचने में समर्थ हो सके। नागलोक में उत्तङ्क ने नागों की स्तुति की परन्तु जब वे उन दोनों कुण्डलों को प्राप्त न कर सके तो उन्हें वहाँ दो स्त्रियाँ दिखाई दीं जो सुन्दर करघे पर सूत के ताने में वस्त्र बुन रही थीं। उस ताने में उत्तङ्क मुनि ने काले और सफेद दो प्रकार के सूत और बारह अरों का एक चक्र भी देखा जिसे छः कुमार घुमा रहे थे। वहीं उन्होंने एक श्रेष्ठ पुरुष को भी देखा जो एक दर्शनीय अश्व पर बैठा था। उत्तङ्क ने उस पुरुष की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर उसने उत्तङ्क से कहा : 'इस अश्व की गुदा में फूँक मारो।' तदनुसार आचरण करने पर उस अश्व के समस्त छिद्रों से अग्नि की लपटें निकल कर नागलोक को भस्म करने लगीं। तब तक्षक ने उत्तङ्क को वह कुण्डल दे दिए और उसी अश्व पर बैठकर उत्तङ्क अपने गुरु के घर आये। उनके गुरु ने उन सब बातों की व्याख्या की जो उन्होंने अपनी यात्रा में देखी थीं। तदुपरान्त उत्तङ्क ने हस्तिनापुर में आकर जनमेजय से कहा : 'नागराज तक्षक ने आपके पिता की हत्या की है, अतः आप उस दुरात्मा से प्रतिशोध लीजिये। उसने आपके पिता को तो डसा ही साथ ही उस काश्यप नामक ब्राह्मण को भी लौटा दिया जो आपके पिता का उपचार करने के लिये आ रहे थे।' इस प्रकार उत्तङ्क ने राजा जनमेजय को सर्पयज्ञ करने के लिये प्रेरित किया (१. ३, ८३–८५. ८९. ९२–९४. ९६. ९८–१०२. १०७–१०९. ११३. ११५–११७. १२४. १२६–१२८. १३०. १३३. १४३. १५३. १५४, १५६–१६१. १७०. १७१. १७४. १७८. १८६–१८८)।" एक ऋषि के रूप में इनका उल्लेख (१. ५०, ३१. ५४; ३. २०१, ११. १२. १४. २४. २५)। इन्होंने भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करके उनसे वर प्राप्त किया (३. २०१, २७)। एक महर्षि के रूप में इनका उल्लेख (३. २०२, ९–११)। उन्होंने बृहदश्व से धुन्धु का वध करने का निवेदन किया परन्तु बृहदश्व ने इन्हें कुवलाश्व के पास भेज दिया (३. २०३, १. ५)। इनके आश्रम के निकट धुन्धु के आवास का उल्लेख है (३. २०४, ८. १०)। जब कुवलाश्व धुन्धु का वध करने चला तब उत्तङ्क भी उसके साथ हो लिये (३. २०४, ११. १३. ३८)। "जब श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से द्वारका लौटते समय मरुभूमि में प्रवेश किया तो उन्हें मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्क का दर्शन हुआ। उत्तङ्क ने श्रीकृष्ण से पूछा कि क्या वे कौरवों और पाण्डवों के घर जाकर उनमें परस्पर भ्रातृभाव स्थापित कर आये या नहीं। श्रीकृष्ण ने मुनि को बताया कि कौरवों और पाण्डवों में सन्धि नहीं हो सकी और समस्त कौरव गण बन्धु-बान्धवों सहित युद्ध में मारे गये। श्रीकृष्ण की बात सुनकर उत्तङ्क मुनि अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और कृष्ण को शाप देना चाहा। कृष्ण ने उत्तङ्क से कहा : 'मैं नहीं चाहता कि आप की तपस्या नष्ट हो। आपका तप और तेज बहुत बढ़ा हुआ है और बाल्यावस्था से ही आपने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, अतः आप मुझे शाप देकर अपनी तपस्या नष्ट न करें और मैं जो कुछ कहता हूँ उसे विस्तारपूर्वक सुनें।' (१४. ५३, ७. ९. १९. २०)।" "उत्तङ्क ने श्रीकृष्ण से अध्यात्म तत्त्व का वर्णन करने के लिये कहा जिसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने अपने को सृष्टि और प्रलय का कारण बताया। श्रीकृष्ण ने कहा : 'दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सरायें मुझ से ही उत्पन्न हुये हैं; सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, क्षर-अक्षर सब मेरे ही स्वरूप हैं; चारों आश्रमों के चार धर्म और वेदोक्त कर्म मेरे ही रूप हैं; सम्पूर्ण प्राणियों पर दया रूपी जो धर्म है वह मेरा परमप्रिय ज्येष्ठ पुत्र है और मेरे मन से उसका प्रादुर्भाव हुआ है; मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र हूँ; मैं जिस योनि में जन्म लेता हूँ उसमें धर्म और मर्यादा की स्थापना करता हूँ।' (१४. ५४)।" "उत्तङ्क ने श्रीकृष्ण से अपना चिरन्तन विश्वरूप दिखाने का अनुरोध करते हुये उनकी स्तुति की। श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर उत्तङ्क को अपने वैष्णव स्वरूप का दर्शन कराया और तदुपरान्त उन्हें यह वर दिया कि उन्हें जब जल की इच्छा होगी वे श्रीकृष्ण का नाम स्मरण करते ही उसे प्राप्त कर लेंगे। तत्पश्चात् एक दिन उत्तङ्क मुनि को

अत्यन्त प्यास लगी और वे जल की इच्छा से उस मरुभूमि में चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया। इतने ही में मुनि को मरुप्रदेश में कुत्तों के झुण्ड से घिरा हुआ एक नग्न चाण्डाल दिखाई पड़ा जिसके शरीर में मैल और कीचड़ जमा हुआ था। वह चाण्डाल अत्यन्त भयंकर था। उसने कमर में तलवार और हाथों में धनुष-बाण धारण कर रक्खा था। उसके नीचे पैरों के समीप एक छिद्र से प्रचुर जल की धारा गिर रही थी जिसे पीने के लिये उसने मुनि को आमन्त्रित किया। मुनि ने उस जल को अस्वीकृत करते हुये श्रीकृष्ण पर भी आक्षेप किया। इतने में वह चाण्डाल कुत्तों सहित वहाँ से अन्तर्धान हो गया। उसी समय श्रीकृष्ण ने वहाँ उपस्थित होकर उत्तङ्क को बताया कि उन्होंने इन्द्र को आज्ञा दी कि वे उत्तङ्क को अमृत पिलायें। परन्तु उन्होंने बताया कि इन्द्र चाण्डाल का रूप धारण करके ही उत्तङ्क को अमृत प्रदान करेंगे। तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने उत्तङ्क को वरदान देते हुये कहा : 'आपको जब जल पीने की इच्छा होगी तब मरुप्रदेश में जल से भरे हुये मेघ प्रगट होकर आपको सरस जल प्रदान करेंगे। पृथिवी पर इस प्रकार के मेघ उत्तङ्कमेघ के नाम से प्रसिद्ध होंगे।' (१४. ५५, १. ७. १०. १३–१५. १८. २२. २४. २६. २८. ३७)।" "महात्मा उत्तङ्क की तपस्या के सम्बन्ध में जनमेजय के प्रश्न करने पर वैशम्पायन ने कहा : 'उत्तङ्क मुनि अत्यन्त तेजस्वी और गुरुभक्त थे। उनके गुरु महर्षि गौतम ने अपने सहस्रों शिष्यों को विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात् अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु उत्तङ्क पर अधिक प्रेम होने के कारण वे उन्हें घर जाने की आज्ञा देना नहीं चाहते थे। क्रमशः उत्तङ्क गुरुगृह में ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो चले, परन्तु यह नहीं जान सके कि उनकी वृद्धावस्था आ गई है। एक दिन वन से लकड़ियों का भारी बोझ लेकर उत्तङ्क जब लौटे तो वे अत्यन्त श्रान्त हो गये। आश्रम में आकर जब वे उस बोझ को भूमि पर गिराने लगे तब चाँदी के समान उनकी श्वेत जटा भी लकड़ी में लिपट कर भूमि पर गिर पड़ी। अपनी उस अवस्था को देखकर उत्तङ्क अत्यन्त आर्तस्वर से रोने लगे। तब गुरु की पुत्री अपने पिता की आज्ञा पाकर विनम्रभाव से वहाँ आई और उसने मुनि के आँसुओं को अपने हाथों में ग्रहण कर लिया। परन्तु अश्रुविन्दुओं से उसके दोनों हाथ जल गये जिससे उसने उन्हें पृथिवी पर गिरा दिया, किन्तु पृथिवी भी उन अश्रुविन्दुओं को धारण करने में असमर्थ हो गई। गौतम के पूछने पर उत्तङ्क ने अपनी स्थिति का वर्णन किया। गौतम ने उन्हें अपने घर जाने की अनुमति दे दी। उत्तङ्क के गुरु दक्षिणा देने का आग्रह करने पर गौतम ने कहा कि वे उनकी सेवा तथा गुरुभक्ति के अत्यन्त आभारी हैं। फिर भी, गौतम ने कहा यदि उत्तङ्क सोलह वर्ष के युवक हो सकें तो वे उनके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देंगे। उत्तङ्क ने पुनः युवा बन कर गौतम पुत्री को पत्नी के रूप में ग्रहण किया। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा पाकर गुरु-पत्नी से पूछा कि उन्हें क्या गुरुदक्षिणा दें। गुरु-पत्नी अहल्या ने कहा : 'मैं तुम्हारी भक्ति से संतुष्ट हूँ। फिर भी यदि तुम राजा सौदास की रानी के दो दिव्यकुण्डल लाकर मुझे दो तो उससे तुम्हारी दक्षिणा पूर्ण हो जायगी।' गुरु-पत्नी की आज्ञा स्वीकार करके उत्तङ्क नरभक्षी राक्षस भाव को प्राप्त हुये राजा सौदास से उन कुण्डलों की याचना करने के लिये वहाँ से शीघ्रतापूर्वक प्रस्तुत हुये। उनके चले जाने पर गौतम को जब यह पता लगा तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा : 'तुमने यह अच्छा नहीं किया। राजा सौदास शापवश राक्षस हो गये हैं, अतः वे उस ब्राह्मण को अवश्य मार डालेंगे।' अहल्या ने यह बताते हुये कि उसने अनजान में ही उतङ्क को ऐसी आज्ञा दी, गौतम से उनकी रक्षा करने का निवेदन किया। उधर उत्तङ्क निर्जन वन में जाकर राजा सौदास से मिले।' (१४. ५६, १. २. ४. ६. ८. १४. १५. २०. २८. ३१. ३२. ३५)।" "वैशम्पायन ने बताया कि राजा सौदास राक्षस होकर अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे। उनकी मूँछ और दाढ़ी अत्यन्त बढ़ी हुई थी तथा मनुष्य के रक्त से रंगे हुये वे साक्षात् यम प्रतीत हो रहे थे। उत्तङ्क को देखकर सौदास ने कहा : 'बड़े सौभाग्य की बात है कि दिन के छठे भाग में आप स्वयं ही मेरे पास चले आये हैं, क्योंकि मैं इस समय आहार ही ढूँढ़ रहा हूँ।' उत्तङ्क ने कहा कि जो व्यक्ति गुरु-दक्षिणा एकत्र करने के लिये उद्योगशील हो उसकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। अन्त में राजा सौदास इस बात पर सहमत हो गये कि गुरु-दक्षिणा के रूप में कुण्डलों को गुरु-पत्नी के पास पहुँचाकर उत्तङ्क पुनः उनके पास लौट आयेंगे। तदुपरान्त सौदास ने उत्तङ्क को अपनी रानी मदयन्ती के पास भेजा जो वन में किसी निर्झर के पास विद्यमान थीं। उन्होंने यह भी बताया कि दिन के छठे भाग में, जब वे आहार की खोज में होते हैं, अपनी महारानी से नहीं मिलते। राजा की आज्ञा से उत्तङ्क ने महारानी मदयन्ती के पास जाकर कुण्डलों की याचना की। मदयन्ती ने कहा : 'आपको महाराज के पास से चिह्न स्वरूप कोई प्रमाण लाना चाहिये क्योंकि ये मेरे दोनों कुण्डल दिव्य हैं और देवता, यक्ष और महर्षि इसे प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। साथ ही यदि इन कुण्डलों को पृथिवी पर रख दिया जाय तो नाग इन्हें हड़प लेंगे। अपवित्र अवस्था में धारण कर लेने पर इन्हें यक्ष उड़ा ले जायेंगे, और यदि इन्हें पहन कर नींद लेने लग जाँय तो देवतागण बलात् छीन लेंगे। अतः जो देवता, राक्षस और नागों की ओर से सतर्क रहता है वही इन्हें धारण कर सकता है। ये दोनों कुण्डल रात-दिन सोना टपकाते रहते हैं और रात के समय ये नक्षत्रों की प्रभा को भी छीन लेते हैं। इन्हें धारण कर लेने पर भूख, प्यास, विष, अग्नि और हिंसक जन्तुओं का भी भय नहीं रहता। छोटे मनुष्य इन कुण्डलों को पहन लेने पर छोटे हो जाते हैं बड़े डील डौल वाले मनुष्य बहुत बड़े हो जाते हैं। अतः आप महाराज की आज्ञा से ही इन्हें लेने आये हैं इसका प्रमाण प्रस्तुत कीजिये।' (१४. ५७, ४. ६. १२. १४. १५. १७. १९. २०)।" "उत्तङ्क रानी की बात सुनकर सौदास के पास लौट आये। तब सौदास ने उन्हें एक चिह्न दिया जिसे लेकर उन्होंने कुण्डल प्राप्त किये। तदुपरान्त उत्तङ्क ने एक बार पुनः सौदास के पास आकर पूछा : 'राजन्! आपके उन गूढ़ वचनों का क्या अभिप्राय था जिन्हें आपने मुझे चिह्न स्वरूप रानी से कहने की आज्ञा दी थी।' उत्तङ्क की बात सुनकर सौदास ने कहा : 'मैं ब्राह्मणों को प्रणाम किया करता था किन्तु एक ब्राह्मण के शाप से ही मेरी यह दुर्गति हुई है। मैं मदयन्ती के साथ यहाँ रहता हूँ परन्तु मुझे इस दुर्गन्ति से मुक्ति पाने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। कोई भी राजा ब्राह्मण का विरोध करके न इस लोक में सुखी रह सकता है और न परलोक में। यही मेरे गूढ़ संदेश का तात्पर्य है।' उत्तङ्क ने राजा से कहा : 'आज यहाँ मेरा मनोरथ सफल हो गया और आप नरभक्षी राक्षस हैं, अतः ऐसी दशा में आपके पास मेरा पुनः लौटकर आना उचित है अथवा नहीं?' सौदास ने कहा कि यदि उचित बात ही कहनी हो तो वे यह कहेंगे कि उत्तङ्क को पुनः लौटकर नहीं आना चाहिये। कुण्डल लेकर उत्तङ्क जब गौतम के आश्रम की ओर बढ़ रहे थे तो उन्हें अत्यन्त जोर से भूख लगी। अतः उन्होंने उस काले मृगचर्म को जिसमें कुण्डल बँधे थे एक वृक्ष की शाख पर लटका दिया और स्वयं एक बेल के पेड़ पर चढ़ कर बेल तोड़-तोड़ कर गिराने लगे। एक बेल के आघात से वह मृगचर्म भूमि पर गिर पड़ा जिससे उसकी गाँठ खुल गई और ऐरावत वंशी एक नाग उन कुण्डलों को मुँह में लेकर एक बाँबी में घुस गया। सर्प द्वारा कुण्डलों का अपहरण होता देख उत्तङ्क वृक्ष से कूद पड़े और लकड़ी का डण्डा हाथ में लेकर उस बाँबी को पैंतीस दिनों तक खोदते रहे। उतङ्क नागलोक में जाने का मार्ग बनाने के लिये निश्चय करके धरती को खोदते जा रहे थे कि वहाँ ब्राह्मण के वेश में इन्द्र उपस्थित हुये जो उत्तङ्क के दुःख से दुःखी थे। उन्होंने बताया कि नागलोक वहाँ से सहस्रों योजन दूर

है, परन्तु उत्तङ्क इससे विचलित नहीं हुये। तब इन्द्र ने उत्तङ्क के डण्डे के अग्रभाग में अपने वज्र का संयोग कर दिया जिसके प्रहार से विदीर्ण होकर पृथिवी ने नागलोक का मार्ग प्रगट कर दिया। उस मार्ग से नागलोक में पहुँच कर उत्तङ्क ने वहाँ की विशालता देखी और उससे अत्यन्त हतोत्साहित हो गये। उसी समय उनके समक्ष एक अश्व प्रकट हुआ जिसकी पूँछ काली और सफेद, तथा मुख और नेत्र का रंग लाल था। उस अश्व ने उत्तङ्क से कहा : 'विप्रवर ! तुम मेरे इस अपानमार्ग में फूँक मारो। इस कार्य से तुम घृणा न करो क्योंकि गौतम के आश्रम में रहते तुमने यह कार्य किया था।' वह अश्व अग्नि थे, अतः उत्तङ्क ने उनकी आज्ञा का पालन किया जिसके परिणाम स्वरूप समस्त नागलोक गहनधूम से व्याप्त हो गया। त्रस्त होकर नागराज वासुकि सहित नागों ने उत्तङ्क को कुण्डल दे दिया, जिसे लाकर उन्होंने अहल्या को समर्पित किया। (१४. ५८, ३. १०. १२. ३१. ३३. ४०. ४४. ४७. ५६. ६०; ५९, १. २)। तु० की० **भार्गव, भृगूद्वह, भृगुकुलोद्वह, भृगुनन्दन**।

१. उत्तम, एक राजा का नाम है (२. ४४, २०)।

२. उत्तम (बहु०), एक जाति के लोगों का नाम है (६. ९, ४१)।

उत्तमपूरुष, परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है (१२. २१६, ८)।

उत्तमौजस् एक पञ्चाल राजा का नाम है जो युधामन्यु का भ्राता था (५. ५७, ३२); 'उत्तमौजा युधामन्युः', (५. १४१, २५)। 'गौतमायोत्तमौजसम्', (५. १६४, ६)। 'उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो', (५. १७०, ५)। 'युधामन्यूत्तमौजसौ', (५. १९४, १८; १९६, ३. १७)। अर्जुन के रथ के दाहिने पहिये की रक्षा करते हैं (६. २५, १९; १९, २०)। 'उत्तमौजाश्च वीर्यवान्', (६. २५, ६)। अर्जुन के रथ के दाहिने चक्र की रक्षा करते हैं (६. ९८, ४७)। 'उत्तमौजसमाहवे', (७. १०, ४०)। 'उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः', (७. २१, ५०)। 'विंशत्या चोत्तमौजसाम्', (७. २१, ५५)। उत्तमौजा के द्रोण के विरुद्ध युद्ध करने के लिये बढते हुये इनके अश्वों का वर्णन (७. २३, ८)। अङ्गद के साथ इनका युद्ध (७. २५, ३८)। 'उत्तमौजाश्च दुर्धर्ष', (७. ३५, ४)। 'पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम्', (७. ८३, ६; ८५, ३९)। 'चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ', (७. ९१, ३६)। 'चतुर्भिश्चोत्तमौजसम्', (७. ९२, २९)। 'उत्तमौजास्त्रिभिस्तथा', (७. ९२, ३०)। 'चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ', (७. १३०, २६)। 'उत्तमौजा संक्रुद्धः', (७. १३०, ३५)। 'पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः', (७. १३०, ३६)। युधामन्यु के भ्राता (७. १३०, ३७)। दुर्योधन द्वारा इनका पराजित होना (७. १३०, ४१)। 'उत्तमौजा युधामन्युः', (७. १३७, १५; १४६, १३७)। 'चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ', (७. १४७, ४९)। 'षड्भिरुत्तमौजसमाहवे', (७. १५६, ३७)। 'युधामन्यूत्तमौजसौ', (७. १७७, ३४; १७९, ५)। अन्य योद्धाओं के साथ अनेक शूरवीरों का वध करके ये कौरवों द्वारा मारे गये (८. ६, २४)। 'चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ', (८. ११, ३१)। 'उत्तमौजा युयुत्सुश्च', (८. ३०, २७)। कृतवर्मा ने इन पर आक्रमण किया (८. ६१, १४)। इन्होंने कृतवर्मा को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया (८. ६१, ५७)। कृतवर्मा द्वारा इनकी पराजय का उल्लेख (८. ६१, ५९)। 'पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ', (८. ६३, २४; ६७, १८)। इन्होंने सुषेण के साथ युद्ध किया (८. ७५, ९)। इनके द्वारा सुषेण का वध (८. ७५, १३)। 'युधामन्यूत्तमौजसमेव च', (८. ७९, ३६)। 'उत्तमौजा जनमेजयश्च', (८. ८२, १६)। 'शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम्', (८. ८२, ८१)। 'उत्तमौजा युधामन्युः', (९. १, ३१; ३०, ५३)। अश्वत्थामा द्वारा इनका वध (१०. ८, ३५)। अन्य राजाओं के साथ इनका दाह (११. २६, ३४)। 'भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ', (१८. २, १)। तु० की० **पाञ्चाल्य, सृञ्जय**।

१. उत्तर (इन्हें भूमिञ्जय भी कहते हैं) विराट के पुत्र का नाम है। ये द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित हुये थे (१. १८६, ८)। 'उत्तर उवाच', (४. ३६, १)। 'उत्तरं ब्रूहि कल्याणि', (४. ३६, १२)। 'उत्तर उवाच', (४. ३६, २०; ३७, २२)। 'स्वमेवोत्तरस्ततः', (४. ३७, २५)। 'उत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति', (४. ३७, ३१)। 'उत्तरं वीक्ष्य रथोत्तमे स्थितम्', (४. ३७, ३३)। सहोत्तरेणाद्य तदस्तु मङ्गलम्', (४. ३७, ३४)। 'उत्तर उवाच', (४. ३८, १०. २६)। 'उत्तर : सारथिं कृत्वा', (४. ३८, ३७)। 'व्यवसितुं किंचिदुत्तरम्', (४. ३८, ३९)। 'उत्तरं तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनञ्जय', (४. ३८, ४०)। 'उत्तर उवाच', (४. ३८, ४२)। 'समाश्वास्य मुहूर्तं तमुत्तरं भरतर्षभ', (४. ३८, ५०)। 'शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम्', (४. ३९, १)। क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर', ४. ४०, २)। 'उत्तर उवाच', (४. ४१, १; ४२, १; ४४, १. ७. १०)। 'अहं भूमिञ्जयो नाम नाम्नाऽहमपि चोत्तरः', (४. ४४, २३)। 'उत्तर उवाच', (४. ४५, १)। 'अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा त्वरावानुत्तरस्तदा', (४. ४५, ५)। 'उत्तर उवाच', (४. ४५, १०. १६. ३३)। 'उत्तरं सारथिं कृत्वा', (४. ४६, १)। 'प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः', (४. ४६, २) उत्तरश्चापि संत्रस्तः', (४. ४६, ९)। 'उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः', (४. ४६, १०)। 'उत्तर उवाच', (४. ४६, १४)। 'उत्तरश्चापि संलीनः', (४. ४६, २२)। 'उत्तरं मार्गमाणानाम्', (४. ४७, ८)। 'दिव्ययोगाच्च पार्थस्य हयानामुत्तरस्य च', (४. ५५, ६)। 'रथे तिष्ठन्तमुत्तर', (४. ५५, ४१) 'अर्जुनः जयतां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् (४. ५८, २)। क्षिप्रमुत्तर वाहय', (४. ५८, ९)। 'उत्तरश्च महारथः', (४. ६०, २७)। 'अब्रवीदुत्तरः पार्थम्', (४. ६१, ३)। 'अर्जुनः रथिनां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत्', (४. ६१, १६)। 'दुःशासनस्तु भल्लेन विद्ध्वा वैराटिमुत्तरम्', (४. ६१, ३८)। 'उत्तर उवाच', (४. ६७, ११)। 'जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य', (४. ६७, १५)। 'अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूतानाज्ञापयद्वचनात् फाल्गुनस्य', (४. ६७, २१)। 'उत्तरं परिपप्रच्छ', (४. ६८, ६)। 'उत्तरस्य परीप्सार्थम्', (४. ६८, ११)। 'अथोत्तरेण प्रहिता दूताः', (४. ६८, १७)। 'उपयान्तं तथोत्तरम्', (४. ६८, १८)। 'उत्तरः सह सूतेन कुशली', (४. ६८, १९)। 'अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च', (४. ६८, ५०)। बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः', (४. ६८, ५२)। 'उत्तरः प्रविशत्येको न प्रवेश्य बृहन्नला', (४. ६८, ५४)। 'पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः', (४. ६८, ५९)। 'उत्तर उवाच', (४. ६८, ६१)। 'कौरव्यं रणादुत्तरमागतम्', (४. ६८, ६७)। 'उत्तर उवाच', (४. ६९, १. १४)। जब कुरुगण विराट के पशुओं को लेकर भाग रहे थे तब अज्ञातवासी अर्जुन को अपना सारथि बनाकर उत्तर ने उनपर आक्रमण किया। अर्जुन ने यह बताते हुये कि वह कौन हैं सारथि के स्थान पर उत्तर को बैठाकर कुरुओं को पराजित कर दिया (४. ६९, १८)। 'पार्थान् दर्शयामास चोत्तरः', (४. ७१, १२)। 'उत्तर उवाच', (४. ७१, १३. १९)। 'उत्तरं प्रत्युवाच', (४. ७१, २२)। 'उत्तर उवाच', (४. ७१, २४)। 'यदा विराटः परवीरघाती ममत्तरे शत्रुनमूं प्रवेष्टा', (५. ४८, ३७ पर नीलकण्ठी देखिये)। 'विराटः सह पुत्राभ्यां शंखेनैवोत्तरेण च', (५. ५७, ६)। 'वैराटिरुत्तरः', (५. ५७, ३२; १७१, १)। 'वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम्। उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥', (६. ४५, ७७)। 'उत्तरश्चापि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः', (६. ४५, ७८)। 'अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः', (६. ४७, ३५)। 'उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा', (६. ४७, ४३)। 'विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः', (८. ६, ३७)। 'उत्तरं चाभिमन्युं च', (११. २०, ३४)। 'शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा', (१८. ५, १)। उन व्यक्तियों में से एक जो मृत्यु के पश्चात् देवत्व को प्राप्त हुये थे (१८. ५, १७)। तु० की० **भूमिञ्जय, कैकेयीनन्दिवर्धन, मत्स्य, मात्स्य, मत्स्यपुत्र, मत्स्यवीर, पृथिवीञ्जय, वैराटि, विराटपुत्र**।

२. उत्तर, उन राजाओं में से एक का नाम है जिनका अपने से श्रेष्ठों का अनादर करने के कारण विनाश हो गया था (२. २२, २४)।

३. उत्तर = विष्णु (सहस्रनामों में से एक)।

४. उत्तर = उपनिषद् : 'वेदः सखिलः सोत्तरो द्विजः', (१२. ३१८, १०)।

५. उत्तर, उत्तर भारत के एक जनपद का नाम है (६. ९, ६५)।

उत्तर कोशल, भीमसेन द्वारा विजित एक भारतीय देश का नाम है (२. ३०, ३)।

उत्तरज्योतिष, नकुल द्वारा विजित पश्चिम दिशा के एक नगर का नाम है (२. ३२, ११)।

उत्तरण = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उत्तरपाञ्चाल, एक जनपद का नाम है, जहाँ पृषत् की मृत्यु के बाद द्रुपद को राजा बनाया गया था (१. १३०, ४३)। कुछ समय के पश्चात् उत्तरपाञ्चाल एवं उसकी राजधानी अहिच्छत्रा पर द्रोण का अधिकार हो गया। यह प्रदेश गङ्गा के तट पर स्थित था (१. १३८, ७०-७६)।

उत्तरपारियात्र, उस पर्वत का नाम है जहाँ अर्जुन के लिये शुभाशंसा की गई थी (३. ३१३, ८)।

उत्तरमानस, एक पवित्र सरोवर का नाम है। 'महासरः पुष्कराणि प्रभासोत्तरमानसे', (१२. १५२, १२. २८)। यहाँ की यात्रा करने पर भ्रूण हत्यारा भी पाप से मुक्त हो जाता है (१३. २५, ६०)।

उत्तर-यथात्युपाख्यान(म्), देखिये **ययाति**।

१. उत्तरा, विराट की पुत्री, अभिमन्यु की पत्नी और परिक्षित् की माता का नाम है (१. १, १७१; २, २१४)। इसने परिक्षित् को जन्म दिया (१. ४९, १४)। 'विराट की पुत्री और अभिमन्यु की पत्नी (१. ९५, ३८; ४. ११, ८)। बृहन्नला (अर्जुन) को उत्तर का सारथि बनने के लिये सहमत करती है (४. ३७, २३. २८; ६६, १२; ६८, २६)। कौरवों के वस्त्र प्राप्त करती है (४. ६९, १६)। अभिमन्यु के साथ इसका विवाह हुआ (४. ७१, २३. ३४; ७२, ७. ३२)। 'उत्तरायै ददौ वस्त्रम्', (६. ९८, १२)। अभिमन्यु की मृत्यु पर श्रीकृष्ण ने इसे सान्त्वना दी (७. ७८, ४३)। देखिये ११. २०, ३०; १४. ६१, २८. ३६; ६२, ११; ६६, ५. १८. २२; ६७, ३; ६९, १. ५. १८; ७०, ६. ९; १५. १५, १०; २५, १५। तु० की० **वैराटी, विराटदुहितृ, विराटतनया, अभिमन्योर्भार्या**।

२. उत्तरा, उत्तर दिशा के लिये प्रयुक्त हुआ है (५. १११, १. २७)।

उत्तराग्नि, एक अग्नि का नाम है (३. २२१, २९)।

उत्तरापथ (उत्तर दिशा) : १२. २०७; ४३। बहु० में उत्तर दिशा के निवासियों के लिये प्रयुक्त हुआ है (६. १५, १७)।

उत्तरा : अषाढ़ा :, देखिये **आषाढ़**।

उत्तराः कुरवः, उत्तर कुरु नामक एक जाति का नाम है (१. १०९, १०)। इस जाति में स्त्रियों को लैङ्गिक स्वतंत्रता थी (१. १२२, ७)। उत्तर की यात्रा करते समय अर्जुन इनकी सीमा पर आये थे (२. २८, ११)। 'उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्यपोढं माल्यमम्बुभिः', (२. ५२, ६)। 'तेऽवतीर्य बहून्देशानुत्तरांश्च कुरूनपि', (३. १४५, १७)। 'उत्तराः कुरवस्तेन गच्छन्त्यथ यथासुखम्', (३. २३१, ९८)। अर्जुन ने इन्हें पराजित किया (५. २२, १२)। "नीलगिरि के दक्षिण तथा मेरुपर्वत के उत्तर भाग में उत्तर कुरुवर्ष है जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँ के वृक्ष सदा पुष्प और स्वादिष्ट फल से सम्पन्न रहते हैं। वहाँ के कुछ वृक्ष ऐसे हैं जो मनोवांछित फल प्रदान करते हैं; कुछ क्षीरी नामक वृक्ष हैं जो सदा अमृत के समान स्वादिष्ट दूध बहाते रहते हैं और उनके फलों में भी इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण प्रगट होते हैं। वहाँ के बालू के कण सुवर्णमय और भूमि मणिमय है। वहाँ की समस्त ऋतुयें सुखदायक होती हैं और भूमि पर कहीं भी कीचड़ का नाम नहीं होता। वहाँ देवलोक से भूतल पर आये हुये पुण्यात्मा ही जन्म ग्रहण करते हैं। ये सभी उत्तम कुल से सम्पन्न और देखने में अत्यन्त प्रिय होते हैं। वहाँ स्त्री-पुरुषों के जोड़े भी उत्पन्न होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ अप्सराओं के समान सुन्दर होती हैं और सभी लोग निरोग तथा प्रसन्नचित्त रहते हुये ११,००० वर्षों तक जीवित रहते हैं। वहाँ भारुण्ड नामक महाबली पक्षी होते हैं जिनकी चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। ये पक्षी वहाँ के मृत निवासियों का शव उठाकर ले जाते हैं और उन्हें कन्दराओं में फेंक देते हैं। जम्बू के फलों का जो रस नदी के जलों के रूप में परिणत हो जाता है वह मेरुगिरि की प्रदक्षिणा करता हुआ उत्तर कुरुवर्ष में पहुँचता है (६. ६, १३; ७, २. १३. २४)।" मृतयोद्धा-गण इसी क्षेत्र को प्राप्त होते हैं (११. २६, १७)। 'उत्तरान्वा कुरून्पुण्यानथवाऽप्यमरावतीम्', (१३. ५४, १६)। 'लोकाः कुरुषूत्तरेषु', (१३. ५७, ३३)। "गौतम ने कहा : 'जहाँ रमणीय आकृति वाले उत्तर कुरु के निवासी अपूर्व शोभा पाते हुये देवताओं के साथ रहकर-आनन्द का भोग करते हैं; अग्नि, जल और पर्वत से उत्पन्न हुये दिव्य मानव जिस देश में निवास करते हैं; जहाँ इन्द्र सम्पूर्ण कामनाओं की वर्षा करते हैं और जहाँ की स्त्रियाँ इच्छानुसार विचरण करने वाली होती हैं; जहाँ स्त्रियों और पुरुषों में ईर्ष्या का सर्वथा अभाव है वहाँ जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूँगा।' धृतराष्ट्र ने कहा : 'महर्षे ! जो समस्त प्राणियों में निष्काम हैं, जो मांसाहार नहीं करते, जो किसी भी प्राणी को दण्ड नहीं देते, स्थावर-जङ्गम प्राणियों की हिंसा नहीं करते, जिनके लिये समस्त प्राणी अपने आत्मा के ही तुल्य हैं, जो कामना, ममता और आसक्ति से रहित हैं, लाभ, हानि, निन्दा तथा प्रशंसा में जो सदैव समभाव रखते हैं, ऐसे लोगों के लिये ही यह उत्तर कुरु नामक लोक है; परन्तु धृतराष्ट्र को वहाँ भी नहीं जाना है।' (१३. १०२, २५-२८)।" 'अदृशयन्निव तदा कुरून्वै दक्षिणोत्तरान्', (१४. ७०, २१)। 'उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च यत्किंचिद्वसु विद्यते', (१४. ९२, २६)। 'केचिच्चाप्युत्तरान्कुरून्', (१५. ३३, १६)।

उत्तराः फल्गुन्यः, देखिये **फल्गुनी**।

उत्तराः प्रोष्ठपदाः, देखिये **प्रोष्ठपदा**।

१. उत्तराण = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

२. उत्तराण = शिव (१४. ८, १५)।

उत्तेजनी, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, ६)।

उत्थानः सर्वकर्मणाम् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उत्थित = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उत्पलावन, पूर्व में पाञ्चाल देश में स्थित इस स्थान पर विश्वामित्र ने एक यज्ञ किया था (३. ८७, १५)। यहाँ स्नान करने के फल का वर्णन है (१३. २५, ३४)।

उत्पलिनी, एक नदी का नाम है जहाँ तीर्थ यात्रा करते समय अर्जुन आये थे (१. २१५, ६)।

उत्पातक, एक तीर्थ का नाम है, जहाँ स्नान करने, पितरों को पिण्डदान करने, और बारह दिनों तक उपवास करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है (१३. २५, ४१)।

उत्सङ्ग = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. उत्सवसङ्केत (बहु०), एक जाति के लोगों का नाम है जिन्हें अर्जुन ने पराजित किया था (२. २७, १६)। नकुल ने इन्हें पराजित किया (२. ३२, ९)। तु० की० **ध्वजिन्युत्सवसङ्केत**।

२. उत्सवसङ्केत, दक्षिण दिशा के एक जनपद का नाम है (६. ९, ६१)।

उदकक्रीडन, एक स्थान नाम है (१. १२८, ३३)।

उदकपति = वरुण (५. ९८, १०)।

उदग्र = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उदधि = समुद्र (५. ११७, १०)।

उदपान, एक अथवा एकाधिक तीर्थों का नाम है (३·८४, ११०)। "श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम ने उदपान तीर्थ के लिये प्रस्थान किया, जो मङ्गलकारी आदि-तीर्थ है। उदपान वह तीर्थ है। जहाँ उपस्थित होने मात्र से महान फल की प्राप्ति होती है। सिद्ध पुरुष वहाँ औषधियों की स्निग्धता और भूमि की आर्द्रता को देखकर अदृश्य हुई सरस्वती को भी जान लेते हैं (९. ३५, ८९·९०)।" "बलराम जी सरस्वती नदी के जल में स्थित त्रित मुनि के उदपान तीर्थ में गये। इसी स्थान पर महातपस्वी त्रित मुनि ने उस कूप में ही रहकर जिसमें उनके दो भाई उन्हें छोड़कर चले गये थे, सोमपान किया था। त्रित ने अपने दोनों भ्राताओं को शाप दिया था। जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन ने इस कथा का वर्णन किया : 'पूर्वयुग में तीन सहोदर भ्राता थे जो तीनों ही मुनि थे। इनके नाम एकत, द्वित और त्रित थे। ये सभी महर्षि सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापति के समान सन्तानवान् और ब्रह्मवादी थे। इन लोगों ने तपस्या द्वारा ब्रह्मलोक पर विजय प्राप्त कर ली थी। इनकी तपस्या और त्याग से संतुष्ट रहकर दीर्घकाल के पश्चात् इनके पिता गौतम स्वर्गलोक चले गये। गौतम के यजमान जो राजा थे वे सब उनके स्वर्गवासी हो जाने पर उनके पुत्रों का ही आदर सत्कार करने लगे। एक बार यज्ञ करने के विचार से इन तीन महर्षियों ने अपने यजमानों से पशु आदि प्राप्त कर लेने के पश्चात् पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। त्रित मुनि आगे-आगे चल रहे थे और एकत तथा द्वित पीछे रहकर पशुओं को हाँकते जाते थे। पशुओं को देखकर एकत और द्वित के मन में यह विचार उठा कि त्रित को छोड़कर वे दोनों ही पशुओं को प्राप्त कर लें। रात्रि के समय जब तीनों भ्राता मार्ग में चले जा रहे थे तो उन्हें एक भेड़िया दिखाई दिया। भेड़िये को देखकर भागते हुये त्रित सरस्वती के तट पर स्थित एक अगाध कूप में गिर पड़े। त्रित के आर्तनाद को सुनकर भी उनके दोनों भ्राता उन्हें वहीं छोड़ कर चले गये। उस कूप में अपने को गिरा देख मृत्यु से भयभीत और सोमपान से वंचित त्रित ने कूप में जल की भावना करके उसी में संकल्प द्वारा अग्नि की स्थापना की और होता आदि के स्थान पर अपने को ही प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् उन्होंने ऋक्, यजुस् और साम मंत्रों का पाठ करते हुये यज्ञ किया। वेदमंत्रों के उस तुमुल नाद को सुनकर बृहस्पति ने देवताओं से त्रित के पास जाने के लिये कहा, अन्यथा क्रुद्ध होकर त्रित दूसरे देवताओं की सृष्टि कर लेंगे। त्रित ने यथोचित मंत्रों के साथ देवों का भाग उन्हें समर्पित किया। देवताओं ने त्रित को वरदान दिया। त्रित ने यह वरदान मांगा : 'मुझे आप लोग इस कूप से बचायें, तथा जो मनुष्य इसमें आचमन करे उसे यज्ञ में सोमपान करने वालों की गति प्राप्त हो।' त्रित के इतना कहते ही कूप में तरङ्ग-मालाओं से सुशोभित सरस्वती लहरा उठीं और अपने जल के वेग से मुनि को ऊपर उठा दिया जिससे वे बाहर निकल आये। तदुपरान्त त्रित ने देवताओं का पूजन किया। घर लौटकर त्रित ने अपने दोनों भ्राताओं को कठोर वाणी में शाप दिया देते हुये कहा : 'तुम दोनों महाभयंकर भेड़ियों का शरीर धारण करके इधर-उधर भटकते फिरोगे और तुम्हारी सन्तानों के रूप में गोलाङ्गूल, रीछ और बानर आदि पशुओं की उत्पत्ति होगी।' (९.३६. १.५.२९.५४)।"

उदय उस पर्वत का नाम है जहाँ सूर्योदय होता है (६.६९, १८; ८४, १६; ८.१२, २२; ६०, ४०; ९.१६, ३२; २०, ४०; १२.४५, १५) तु० की० **उदयाचल, उदयगिरि**।

उदयगिरि = उदय (१२.२९३, ४)।

उदयाचल = उदय (७.१८४, ४७)।

उदयेन्दु, कुरुओं के एक नगर का नाम है जहाँ श्रुतसोम का जन्म हुआ था (७.२३, २९)।

उदरशाण्डिल्य, इन्द्र की सभा में उपस्थित एक ऋषि का नाम है (२.७, १३)।

उदराक्ष, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९.४५, ६३)।

१. उदान, प्राण-वायुओं में से एक का नाम है : 'उदानमिति तं प्राहुः', (३.२१३, ८)। 'समानोदानयोर्मध्ये प्राणापानौ समाहितौ', (३.२१३, १२)। 'उदानादुच्छ्वसिति', (१२.१८४, २५)। 'उदान इति तं प्राहुः', (१२.१८५, ७)। 'प्राणापानौ तथोदानौ समानं व्यानमेव च', (१२.२००, १७)। 'व्यानोदानौ समानश्च', (१२.२१३, १७)। देखिये : ३०१, २७; ३२८, ३३.३८; १४.२०, १४.१६; २१, २५; २३, २.५.९.१२.१५.२०; २४, २.७.१३-१५.१७; ४२, ८ भी।

२. उदान = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

उदापेक्षिन्, विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम है (१३.४, ५९)।

उदारधी = विष्णु (सहस्रनामों में से एक)।

उदीच्य (बहु०), एक जाति के लोगों का नाम है। 'प्राच्योदीच्या दाक्षिणात्याश्च शूराः', (५.३०, २४; १६०, १०३; १०३; १६१, २१)। 'प्राच्योदीच्याश्च', (५.१९५, ७)। 'प्रतीच्योदीच्यमालवाः', (६.१०६, ७; ११७; ३३; ११९, ८१; ७.७, १५)। 'उदीच्या दाक्षिणात्याश्च', (७. १११, २९)। 'उदीच्याः कृतवर्मा च', (७.१५६, १२१)। युद्धभूमि में अर्जुन द्वारा इनका वध (८.५, ४९; ४५, ३०)। 'हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या', (८.७०, २०.३३; ९.१, २८)।

उदीर्ण = विष्णु (सहस्रनामों में से एक)।

उदुम्बर = विष्णु (सहस्रनामों में से एक)।

उद्दालक एक ऋषि का नाम है। = आरुणि पाञ्चाल्य, जिसके कारण इनका उद्दालक आरुणि नाम पड़ा (१.३, ३१)। इनके नाम का उल्लेख (१.८, २५)। जनमेजय के सर्प-सत्र के समय सदस्यों में से एक यह भी थे (१.५३, ७)। यह श्वेतकेतु के पिता थे (१.१२२, ९.२१)। शक्र की सभा में इनकी उपस्थिति का उल्लेख (२.७, १२)। उन मुनियों में से एक जो युधिष्ठिर की प्रतीक्षा कर रहे थे (३.८५, १२०)। इनके शिष्य कहोड ने इनकी पुत्री सुजाता के साथ विवाह किया था (३.१३२, ८.१६)। यह श्वेतकेतु के पिता थे (३. १३२, १७)। इनके यज्ञ के समय सरस्वती मनोरमा नदी के रूप में प्रगट हुई थी (९.३८, २४)। इन्होंने अपने एक शिष्य से श्वेतकेतु को उत्पन्न कराया (१२.३४, २२)। अपने पुत्र श्वेतकेतु को निर्वासित कर दिया (१२.५७, १०)।

उद्दालकि एक ऋषि का नाम है जो नचिकेता के पिता थे इन्होंने अपने पुत्र नचिकेता को यम के पास जाने के लिये कहा (१३.७१, २.३.७)।

उद्धव, एक ऋषि का नाम है। ये द्रौपदी के स्वयंवर में पधारे थे (१. १८६, १८)। रैवतक पर्वत के उत्सव में इनकी उपस्थिति का उल्लेख (१.२१९, ११)। ये सुभद्रा के लिये दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थ गये थे (१.२२१, ३०)। 'उद्धवो वा महाबुद्धिर्वृष्णीनामर्चितो नृप', (२.५०, ११)। शाल्व के चढ़ाई करने पर इनके द्वारा द्वारका नगरी की रक्षा का उल्लेख (३.१५, ९)। 'सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः', (५.१५७, १७)। वृष्णि-वंशियों से विदा लेकर उद्धव जी अपने तेज से पृथिवी आकाश को व्याप्त करते हुये प्रभास क्षेत्र से अन्यत्र चले गये। वृष्णिकुल के भावी विनाश को जानने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें वहाँ नहीं रोका (१६.३, ११-१३)।

१. उद्भव, एक राजा का नाम है जिन्हें पाण्डवों की ओर से रण-निमन्त्रण भेजा गया था (५.४, २३)।

२. उद्भव = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

उद्गस, एक जाति के लोगों का नाम है। नकुल और सहदेव इन्हें साथ लेकर धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित क्रौञ्चव्यूह की बाईं पाँख के स्थान में खड़े हुये थे (६.५०, ५३)।

उद्भिजाः = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

उद्भिद् = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

उद्यत्, एक पर्वत का नाम है (३.८४, ९३)।

उद्योग = उद्योगपर्वन्। 'अरणीपर्वरूपाढ्यो विराटोद्योगसारवान्', (१. १, ८९)। 'उद्योगः सैन्यनिर्याणम्', (१. २, ६३)। ६. ९८, ३७; १८. ६, ६१। तु० की० ६. ४३, ८६।

उद्योगपर्वन्, महाभारत के पाँचवें अवान्तरपर्व का नाम है। १. २, ५९ = सैन्योद्योगपर्वन्। १. २, २१७, २४२।

उद्रपारक, धृतराष्ट्र नाग के कुल में उत्पन्न एक नाग का नाम है जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हो गया था (१. ५७, १७)।

१. उद्वह, क्रोधवश संज्ञक दैत्य के अंश से उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा का नाम है (१. ६७, ६४)।

२. उद्वह, एक वायु का नाम है। जो सोम आदि ग्रहों का उदय करता है, मनीषी पुरुष शरीर के भीतर जिसे उदान कहते हैं, और जो चारों समुद्रों से जल को ऊपर उठाकर जीमूत नामक मेघों में स्थापित करता है तथा जीमूत नामक मेघों को जल से संयुक्त करके उन्हें पर्जन्य के हवाले कर देता है, वह महान् वायु उद्वह कहलाता है (१२. ३२८, ३८-४०)।

उन्मत्तवेशप्रच्छन्न = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उन्माथ, यमराज द्वारा स्कन्द को प्रदान किये गये दो पार्षदों में से एक का नाम है (९. ४५, ३०)।

१. उन्माद, पार्वती द्वारा स्कन्द को दिये गये पार्षदों में से एक का नाम है (९. ४५, ५१)।

२. उन्माद = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उन्मादन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उन्मादःसर्वभूतानां = कृष्ण (१२. ४७, ५१)।

उन्मुच, दक्षिण दिशा में रहने वाले एक ब्रह्मर्षि का नाम है (१२. २०८, २८) तु० की० **उन्मुचु**।

उन्मुचु, धर्मराज के सात ऋत्विजों में से प्रथम का नाम है (१३. १५०, ३४)।

उन्मेश = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उपकार = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उपकीचक (बहु०), कीचक के सेवकों के लिये प्रयुक्त हुआ है (= कीचक, (बहु०)) : ४. २३ ३३।

उपकृष्णक, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ५७)।

उपक्षय = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उपगहन, विश्वामित्र के पुत्र का नाम है (१३. ४, ५६)।

उपचित्र, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, ९५; ११७, ४)। भीमसेन द्वारा इसका वध (७. १३६, २२)।

उपजला, एक नदी का नाम है। इसके तट पर यज्ञ करके उशीनर ने इन्द्र से भी ऊँचा स्थान प्राप्त किया था (३. १३०, ३१)।

उपत्यक, पर्वत की तराई में स्थित एक भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ५५)।

उपदेशकर = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. उपनन्द, एक मृदङ्ग का नाम है : 'यस्य ध्वजाग्रे नदतो मृदङ्गौ नन्दोपनन्दौ', (३. २७०, ६)। तु० की० **३. उपनन्दक**।

२. उपनन्द, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है जिसका भीमसेन ने वध किया था (८. ५१, १९)।

१. उपनन्दक, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, ९६; ११७, ५; ६. ५१, ८; ७९, २२; ८. ५१, ७)। तु० की० **उपनन्द**।

२. उपनन्दक, एक नाग का नाम है (५. १०३, १२)।

३. उपनन्दक, एक मृदङ्ग का नाम है : 'मृदङ्गौ चात्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ', (७. २३, ८५)।

४. उपनन्दक, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ६४)।

उपनिषद् : 'साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया', (१. १, ६२)। 'मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति', (१. १, ११४)। 'चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदः', (१. २, ३८२)। 'साङ्गोपनिषदान्वेदान्', (१. ६४, १९)। 'गृहस्थोपनिषत्पुराणी', (१. ९१, ३)। 'वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः', (२. ५, २)। 'कृष्णाद्वैपायनात्तात गृहीतोपनिषन्मया', (३. ३७, १०)। 'साङ्गोपनिषदान्वेदांश्चतुराख्यानपञ्चमान्', (३. ४५, ८)। 'साङ्गोपनिषदान्वेदान्', (३. ९९, २६)। 'वेदाश्च सोपनिषदः', (३. ९९, ५९)। 'साङ्गोपनिषदः वेदान्', (३. २०६, ४)। 'वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः। दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा॥', (३. २०७, ६७)। 'अथर्ववेदप्रोक्तैश्च याश्चोपनिषदि क्रियाः', (३. २५१, २४)। 'वेदाः साङ्गोपनिषदः', (७. २०२, १०९)। 'रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः। सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः॥', (८. ८७, ४२)। 'निषत्सूपनिषत्सु', (१२. ४७, २६)। 'राजोपनिषदं ययातिः स्माह', (१२. ९३, १९)। 'न सामदण्डोपनिषत्प्रशस्यते', (१२. १०३, ४०)। 'वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदः', (१२. २३१, ७)। 'चतुर्थश्चौपनिषदो धर्मः', (१२. २४४, १५)। 'वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः। दमस्योपनिषद्दानं दानस्योपनिषत्तपः॥ तपस्योपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत्सुखम्। सुखस्योपनिषत्स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः॥', (१२. २५१, ११-१२)। 'चतुर्थोपनिषद्धर्मः', (१२. २७०, ३०)। 'वेदोपनिषदां गणैः', (१२. २८४, १२६)। 'वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः। दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम्॥', (१२. २९९, १३)। १२. ३१८, ३४। 'उपनिषदमुपाकरोत्', (१२. ३१८, ११२)। 'ननु नाम त्वया मोक्षः कृत्स्नः पञ्चशिखाच्छ्रुतः। सोपायः सोपनिषदः सोपासङ्गः सनिश्चयः।', (१२. ३२०, १६२-१६३)। 'साङ्गोपनिषदं शास्त्रम्', (१२. ३३५, ५४)। 'पुराणे सोपनिषदे', (१२. ३४१, ८)। 'सहोपनिषदान्वेदान्', (१२. ३४८, ५)। 'गवामुपनिषद्विद्वान्', (१३. ७८, ४)। 'वेदोपनिषदश्च', (१३.८४, ५)। 'वेदाश्च सोपनिषदः', (१३. ८५, ९२)। तु० की० **महोपनिषद्**।

१. उपप्लव, उत्पात (७. ११०, ६५)।

२. उपप्लव = शिव (सहस्रनामों में से एक)।

उपप्लव्य विराट राज्य के एक उपनगर का नाम है जो राजधानी के समीप स्थित था। 'उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु जिगीषया', (१. २, २१८)। 'आगम्य हस्तिनापुरादुपप्लव्यम्', (१. २, २३७)। 'उपप्लव्यं विराटस्य', (४. ७२, १४)। 'उपप्लव्यं स गत्वा', (५. ८, २५)। 'पाण्डुपुत्रान् उपप्लव्ये', (५. २२, १)। 'उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः', (५. २३, १)। 'उपप्लव्यादथागम्य', (५. ८४, १८)। 'उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः', (५. ८६, १)। 'जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानम्', (५. १३७, ३२)। 'उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः', (५. १४४, ४)। 'आगम्य हस्तिनापुरादुपप्लव्यमरिन्दमः', (५. १४७, १)। 'उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी', (५. १५१, ६०)। 'प्रतिज्ञातंमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः', (६. १०७, ३५)। 'उपप्लव्याच्छान्तिमिच्छन् जनार्दनः', (७. ८५, २१)। 'उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु', (९. ३५, ५)। 'आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप', (९. ३५, ८)। 'उपायातमुपप्लव्यं सह गाण्डीवधन्वना', (९. ९२, २३)। 'उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्', (९. ६२, ३१) 'उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा महदप्रियम्', (१०. ११, ५)। 'उपप्लव्ये मया सार्धं दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि', (१०. ११, १२)। 'उपप्लव्यगतां दृष्ट्वा प्रतवान्ब्राह्मणोऽब्रवीत्', (१०. १६, २)। 'यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः', (११. २५, ३४)। तु० की० **उपप्लव**।

१. उपमन्यु, आयोद धौम्य के शिष्य एक ब्राह्मण का नाम है (१.

३, २२)। "आयोद धौम्य ने अपने शिष्य उपमन्यु को गायों की रक्षा करने का आदेश दिया जिसका वह पालन करने लगा। उपमन्यु प्रतिदिन यह कार्य करते हुये सन्ध्या समय आकर गुरु को नमस्कार करता था। गुरु ने देखा कि वह काफी हृष्ट-पुष्ट हो गया था। गुरु के पूछने पर जब उसने बताया कि वह भिक्षा के द्वारा जीवन-निर्वाह कर रहा है। तब गुरु ने उससे कहा, 'मुझे अर्पण किये बिना ही तुम्हें भिक्षा का अन्न अपने उपयोग में नहीं लाना चाहिये।' उपमन्यु गुरु की आज्ञा का पालन करने लगा, परन्तु गुरु उसकी समस्त भिक्षा ले लेते थे और वह भिक्षा के बिना भी गायों की रक्षा करता हुआ हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उपमन्यु ने बताया कि भिक्षा अर्पित करने के पश्चात् वह दोबारा भिक्षा लेकर अपनी जीविका चलाता है। गुरु ने उससे दूसरी बार भिक्षा लेने का भी निषेध कर दिया। इसी प्रकार गुरु ने क्रमशः गायों के दूध से जीविन-निर्वाह करने, बछड़ों द्वारा अपनी माताओं के स्तनों का दूध पीते समय उगले हुये फेन का पान करने का निषेध कर दिया। तदुपरान्त भूखे रहकर गायों की रक्षा करते हुये उपमन्यु ने एक दिन अर्क के पत्तों का भक्षण कर लिया जिससे उसकी आँख की ज्योति जाती रही और वह अन्धा होकर इधर-उधर भटकता हुआ एक कुयें में गिर पड़ा। उसे ढूँढ़ते हुये आकर जब गुरु ने उसकी दशा देखी तब उसे अश्विनी कुमारों की स्तुति करने का परामर्श दिया। अश्विनी कुमारों की स्तुति करने पर वे उपमन्यु के सम्मुख प्रगट हुये और उसे एक अपूप खाने के लिये दिया। उपमन्यु ने अपने गुरु को निवेदन किये बिना उस अपूप को खाना स्वीकार नहीं किया। अश्विनी कुमारों ने बताया कि उसके गुरु ने भी एक बार उनकी स्तुति करके वैसा ही अपूप प्राप्त किया था, परन्तु उसे अपने गुरु को निवेदन किये बिना ही खा लिया था। अश्विनी कुमारों के यह कहने पर भी उपमन्यु ने गुरू को निवेदन किये बिना अपूप खाना स्वीकार नहीं किया। उसकी गुरु-भक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने कहा : 'तुम्हारे उपाध्याय के दाँत काले लोहे के समान हैं परन्तु तुम्हारे दाँत स्वर्णमय हो जायेंगे; तुम्हारे नेत्रों की ज्योति भी लौट आयेगी और तुम कल्याण के भागी होगे।' अश्विनी कुमारों से इस प्रकार वरदान पाकर उपमन्यु ने गुरु के सम्मुख आकर उन्हें नमस्कार किया। (१. ३, ३३. ३४. ३६. ४०. ४४. ४७. ५२. ५३. ५६. ७७)।"

२. उपमन्यु वैयाघ्रपद्य, एक ऋषि का नाम है (१३. १४, ४५)। श्रीकृष्ण इनके आश्रम पर आये थे और इन्होंने कृष्ण को शिव के सन्तुष्ट करने का परामर्श, और शिव के वरदान देने का वर्णन किया (१३. १४, ६५ और बाद)। "उपमन्यु ने कहा : 'सत्ययुग में एक महा यशस्वी ऋषि हो गये हैं जिनका नाम व्याघ्रपाद था। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ और मेरे छोटे भाई का नाम धौम्य है। एक दिन धौम्य के साथ खेलते हुये मैं पवित्रात्मा मुनियों के आश्रम पर आया। वहाँ मैंने जीवन में सर्वप्रथम दुही जा रही एक गाय के दूध को देखा जो स्वाद में अमृत के समान होता है। घर लौट कर मैंने बाल-स्वभाववश अपनी माता से दूध-भात खाने के लिये माँगा परन्तु घर में दूध का अभाव होने के कारण मेरी माता को अत्यन्त दुःख हुआ। फिर भी, माता पानी में आटा घोल कर लाई और उसे ही दूध कहकर हम दोनों भाइयों को पीने के लिये दे दिया। मैं अमृत के समान स्वादिष्ट दूध के स्वाद को जान चुका था, अतः मैं समझ गया कि वह दूध नहीं है। माता से ऐसा कहने पर उसने मुझे हृदय से लगाकर कहा : 'जो सदा वन में रहकर कन्दमूल और फल खाकर निर्वाह करते हैं उन पवित्रात्मा मुनियों को क्षीरौदन कहाँ मिलेगा। जो बालखिल्यों द्वारा सेवित दिव्य गंगा नदी के आश्रय तथा पर्वतों और वनों में रहते हैं उन मुनियों को दूध कहाँ मिलेगा। यहाँ सुरभि गाय की कोई सन्तान नहीं है, अतः इस जंगल में दूध का सर्वथा अभाव है और हम ऋषि-मुनियों के भगवान् शंकर ही एक मात्र आश्रय हैं।' तदुपरान्त मेरी माता ने मुझे शंकर की आराधना करने का आदेश दिया। मेरे पूछने पर मेरी माता ने मनीषियों के वचनानुसार भगवान शिव के अनेक रूपों का वर्णन किया। माता का उपदेश सुनकर मैं तपस्या का आश्रय लेकर भगवान् शंकर को संतुष्ट करने का प्रयास करने लगा। एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् भगवान् शंकर शक्र के रूप में महान् गजराज ऐरावत पर बैठकर मेरे सम्मुख प्रगट हुये। उन शक्र (इन्द्र) रूपी शिव ने जब मुझसे वर माँगने के लिये कहा तब मैंने महादेव के अतिरिक्त अन्य किसी से वर लेना स्वीकार नहीं किया। इन्द्र के कारण पूछने पर मैंने उनसे बताया : 'ब्रह्मवादी महात्मा जिन्हें सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, नित्य, एक और अनेक कहते हैं मैं उन्हीं शिव से वर प्राप्त करूँगा, क्योंकि उनसे श्रेष्ठ कोई अन्य नहीं है। भूलोक से लेकर महर्लोकों तक समस्त लोक-लोकान्तरों में, पर्वत के मध्यभाग में, सम्पूर्ण द्वीप स्थानों में, तत्त्वदर्शी पुरुष महादेवजी को ही स्थित बताते हैं। देवता, यक्ष, नाग और राक्षस, इनमें जब संघर्ष होता है और परस्पर एक दूसरे से विनाश का अवसर उपस्थित होता है तो उन्हें अपने स्थान और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले भगवान् शिव ही होते हैं। अन्धक आदि को वरदान देने और उनका विनाश करने में भगवान् महेश्वर को छोड़कर दूसरा कौन समर्थ है। भगवान् शंकर के लिङ्ग का ब्रह्मा आदि भी पूजन करते हैं और ब्रह्मा तथा पार्वती के लिङ्गों को ही धारण करते हैं। अतः मैं शंकर से ही वर अथवा मृत्यु प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ। मुझे महेश्वर से चाहे वर प्राप्त हो अथवा शाप मिले वह मुझ स्वीकार होगा परन्तु किसी अन्य देवता से सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल भी मिलें तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा।' जब मैंने अपने ये वचन समाप्त किये तब एक क्षण में ही वही ऐरावत हाथी वृषभ के रूप में प्रगट हो गया जिसके पीठ पर महादेव और उमा (शिव और उनके अस्त्रों, तथा पिनाक आदि का वर्णन है) विराजमान थे। शिव का पाशुपत अस्त्र अन्य अस्त्रों, जैसे ब्राह्म, नारायण, ऐन्द्र इत्यादि से भी श्रेष्ठ है। शंकर का त्रिशूल भी समस्त पृथिवी को विदीर्ण, सागर को सुखा और समस्त संसार का संहार कर सकता है। शंकर उस समय वह कुठार भी धारण किये हुये थे जिसे उन्होंने एक राम जामदग्न्य को दे दिया था। उस समय उनके चारों ओर ब्रह्मा आदि देवता खड़े हुये उनकी स्तुति कर रहे थे। मैंने भी उनकी स्तुति करके अर्घ्य समर्पित किया जिससे प्रसन्न होकर शिव ने मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण होने का वरदान दिया। एक बार मैंने पुनः शिव की स्तुति करके उनसे यह वरदान माँगा कि मेरे मित्र और सम्बन्धी सदैव दूध के साथ भोजन प्राप्त करते रहें। शिव ने इसे स्वीकार करते हुये कहा कि एक कल्प व्यतीत होने के बाद मुझे भी शिव का सखत्व प्राप्त होगा। यह कह कर देवगण वहाँ से अन्तर्धान हो गये। (१३. १४, ६५. १९३. २८७. ३३५. ३३९. ३७१; १५, १०. ११; १६, १. ६७. ७२; १७, २)।" "उपमन्यु ने श्रीकृष्ण को उन मंत्रों का उपदेश दिया जिनसे उन्हें शिव का दर्शन प्राप्त करने में सफलता मिली। तदुपरान्त उपमन्यु ने श्रीकृष्ण को शिव के उन सहस्र नामों का उपदेश किया जिन्हें उन्होंने तण्डि से सुना था (१३. १८, ६१ और बाद)।"

उपयाज, एक ब्रह्मर्षि का नाम है (१. १६७, ७. १०. ११. १४. २१. ३२. ३३)। याज और उपयाज ने द्रुपद को पुत्र प्राप्त कराने के लिये एक यज्ञ किया था (१. १६७, ३८)। 'याजोपयाज तपसा पुत्रं लेभे स पावकात्', (२. ८०, ४३)।

उपरिचर = चेदिराज वसु। कुछ लोग महाभारत का आरम्भ उपरिचर वसु की कथा से ही मानते हैं (१. १, ५२)। एक राजा के रूप में इनका उल्लेख (१. ६३, १)। चेदिराज उपरिचर वसु इन्द्र के दिये हुये स्फटिक मणिमय विमान में रहते हुये आकाश में ही निवास करते थे, और इस प्रकार ऊपर ही ऊपर चलने के कारण इनका नाम उपरिचर पड़ गया (१. ६३, ३४)। एक राजा के रूप में इनका उल्लेख (१. ६३, ६३)। यम के सभा भवन में इनके उपस्थित होने का उल्लेख (२.८,१०)। "भीष्म ने कहा : 'पहले की बात है इस पृथिवी पर इन्द्र के मित्र और भगवान् नारायण के विख्यात भक्त राजा उपरिचर पृथिवी पर शासन

करते थे। इन्होंने भगवान् नारायण के वरदान से भूमण्डल का साम्राज्य प्राप्त कर लिया था। ये उस सात्वत विधि से भगवान् नारायण का पूजन करते थे जो पहले सूर्य के मुख से प्रगट हुआ। इन्द्र इन्हें अपने साथ एक शय्या और एक आसन पर बैठाया करते थे। इनके घर में पाञ्चरात्र शास्त्र के मुख्य-मुख्य विद्वान् सदैव निवास करते थे। चित्रशिखण्डी नाम से विख्यात सप्तर्षियों (मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ) ने मेरु पर्वत पर एकमत हो कर एक उत्तम शास्त्र का निर्माण किया। ये सातों ऋषि प्रकृति (महत, अहङ्कार इत्यादि) के रूप और आठवें ब्रह्मा (अर्थात मूल प्रकृति) हैं। ये सब मिलकर ही इस सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं। इन ऋषियों ने अन्य ऋषियों के साथ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तपस्या करके भगवान् नारायण की तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर नारायण ने सरस्वती को इन लोगों के शरीर में प्रवेश करने की आज्ञा दी। तब इन तपस्वी ब्राह्मणों ने शास्त्र की रचना की और उसे करुणामय भगवान् को सुनाया। पुरुषोत्तम ने इस शास्त्र को चारों वेदों के समान प्रमाणभूत होने का आशीर्वाद दिया। नारायण ने कहा : 'जैसे मेरे प्रसाद से उत्पन्न ब्रह्मा प्रमाणभूत हैं, और जैसे क्रोध से उत्पन्न रुद्र, तुम सब प्रजापति, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि, सम्पूर्ण नक्षत्र, तथा अन्यान्य भूत नामधारी पदार्थ, और ब्रह्मवादी ऋषिगण अपने-अपने अधिकार के समान व्यवहार करते हुये प्रमाणभूत माने जाते हैं; उसी प्रकार तुम लोगों का यह शास्त्र भी प्रमाणभूत होगा। तुम्हारे इसी ग्रन्थ के अनुसार मनु स्वायम्भुव धर्मों का उपदेश करेंगे। शुक्राचार्य और बृहस्पति भी जब प्रगट होंगे तो वे इसी शास्त्र का प्रवचन करेंगे। तदुपरान्त प्रजापालक उपरिचर वसु बृहस्पति से तुम्हारे इसी शास्त्र का अध्ययन करेंगे, परन्तु इस राजा के दिवंगत होने के पश्चात यह सनातनशास्त्र सर्वसाधारण की दृष्टि से लुप्त हो जायगा।' इतना कह कर नारायण अन्तर्धान हो गये। फिर आदि कल्प के प्रारम्भिक युग में, जब बृहस्पति का प्रादुर्भाव हुआ तब उन्हें साङ्गोपाङ्ग वेद और उपनिषदों सहित इस शास्त्र को इन ऋषियों ने प्रचारित करने के लिये पढ़ाया और इसके बाद ये ऋषिगण तपस्या का निश्चय करके अपने अभीष्ट स्थान को चले गये। (१२. ३३५)।" "बृहस्पति के नाम की व्युत्पत्ति। राजा वसु उपरिचर बृहस्पति के प्रमुख शिष्य हुये और उन्होंने चित्र शिखण्डियों के बनाये हुये तन्त्रशास्त्र का बृहस्पति से विधिवत अध्ययन किया। वसु उपरिचर के अश्वमेध यज्ञ में बृहस्पति होतृ, और प्रजापति के पुत्र एकत, द्वित तथा त्रित सदस्य बने। इस यज्ञ में किसी भी पशु की वलि नहीं हुई। सन्तुष्ट होकर हरि ने केवल वसु से दृश्य तथा अन्य से अदृश्य रह कर यज्ञ में आकर अपना यज्ञ-भाग ग्रहण किया। इस पर क्रुद्ध हो कर बृहस्पति ने बड़े वेग से स्रुवा आकाश में फेंक दिया और बोले, 'मैंने जो यह भाग प्रस्तुत किया है उसे भगवान् को मेरे नेत्रों के सम्मुख प्रगट होकर ग्रहण करना चाहिये।' युधिष्ठिर ने पूछा कि भगवान् हरि ने क्यों अदृश्य रह कर ही अपना भाग ग्रहण किया। भीष्म ने कहा : 'राजा वसु और उनके सदस्य सब मिल कर क्रुद्ध बृहस्पति को मनाने लगे। उन लोगों ने कहा कि सतयुग में किसी को क्रोध नहीं करना चाहिये; भगवान् हरि भी क्रोध नहीं करते; हरि का दर्शन वही कर सकता है जिस पर वे कृपा करते हैं। तदुपरान्त ऋषिगण एकत, द्वित और त्रित ने बताया कि उन लोगों ने एक बार मेरु पर्वत के उत्तर और क्षीर सागर के तट पर सहस्रों वर्षों तक नारायण का दर्शन प्राप्त करने के लिये तपस्या की थी। उस समय एक शरीर रहित वाणी ने उन लोगों से क्षीर सागर के उत्तर भाग में स्थित उस श्वेत द्वीप में जाने के लिये कहा जहाँ के निवासी केवल नारायण के ही भक्त हैं। वहाँ पहुँच कर वहाँ के देवताओं के वैभव के चकाचौंध में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। तदुपरान्त उन लोगों ने पुनः एक सौ वर्षों तक तपस्या की जिससे उन्होंने उस द्वीप के निवासियों (पाञ्चरात्र आदि व्रतों से परिचित इन निवासियों का वर्णन किया गया है) का दर्शन किया। उस समय एक अशरीरी आकाशवाणी ने उनसे कहा : 'तुम लोगों ने श्वेत द्वीप के श्वेतकाय और इन्द्रियों से रहित पुरुषों का दर्शन किया। इन श्रेष्ठ द्विजों का दर्शन होने से साक्षात भगवान् का ही दर्शन हो जाता है। तुम लोग जैसे आये हो वैसे ही शीघ्र लौट जाओ। इस युग के व्यतीत होने पर जब धर्म में किञ्चित व्यतिक्रम आ जायगा और त्रेतायुग का आरम्भ होगा तब देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये तुम लोगों को ही सहायक होना पड़ेगा।' तदुपरान्त एकत आदि लौट आये। इस कथा को सुनकर बृहस्पति ने यज्ञ को पूर्ण किया। राजा वसु यज्ञ को पूर्ण करके प्रजा का पालन करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात एक ब्राह्मण के शाप से भ्रष्ट होकर ये पृथिवी के भीतर रसातल में समा गये, किन्तु वहाँ भी निरन्तर नारायण-मंत्र का जप करते हुये भगवान् की आराधना में तत्पर रहे। अतः नारायण की कृपा से वे पुनः ऊपर को उठे और भूतल से ब्रह्म-लोक में चले गये। (१२. ३३६)।" "युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि नारायण के भक्त होते हुये भी राजा वसु स्वर्ग लोक से गिर कर पृथिवी के नीचे रसातल में क्यों चले गये, भीष्म ने ऋषियों और देवताओं के बीच हुये संवाद-रूपी प्राचीन इतिहास को उद्धृत किया। उन्होंने बताया कि एक बार देवताओं ने कुछ ब्राह्मणों से कहा कि अज (बकरा) के द्वारा यज्ञ करना चाहिये। ऋषियों ने कहा कि श्रुति के अनुसार बीजों का ही नाम अज है; सत्ययुग में पशुओं का वध कैसे किया जा सकता है। उस समय वसु आकाश मार्ग से अपनी सेना और वाहनों के साथ कहीं जा रहे थे। उन्हें देखकर देवताओं और ऋषियों ने अपने संवाद में उन्हें मध्यस्थ बनाया। दोनों पक्षों से उनका मत ग्रहण करने के पश्चात वसु ने देवों का पक्षपात करते हुये यह निर्णय किया कि अज का अर्थ बकरा है और उसी के द्वारा यज्ञ करना चाहिये। इस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर ऋषियों ने वसु को स्वर्ग से नीचे गिराकर पृथिवी के भीतर रसातल में प्रवेश करने का शाप दे दिया। ऋषियों के शाप से वसु उपरिचर तत्काल पृथ्वी के विवर में प्रवेश कर गये। परन्तु नारायण की आज्ञा से उनकी स्मरणशक्ति ने उनका साथ नहीं छोड़ा। राजा की यह दशा देख कर देवताओं ने उनके पास आकर यह कहा : 'तुम जितने समय तक पृथिवी के विवर में रहोगे तब तक एकाग्रचित्त ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ में दी हुई वसुधारा की आहुति तुम्हें प्राप्त होती रहेगी, जिससे तुम्हें भूख और प्यास का कष्ट नहीं होगा।' तदुपरान्त देवता तथा ऋषिगण अपने-अपने स्थान को चले गये। वसु उपरिचर ने भगवान् विश्वक्सेन की पूजा आरम्भ की और नारायण के मुख से प्रगट हुये जपनीय मंत्रों का निरन्तर जप करने लगे। इस प्रकार पाताल के विवर में रहते हुये राजा उपरिचर पाँच समय पाँच यज्ञों द्वारा देवेश्वर श्रीहरि की आराधना करते थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर विष्णु ने गरुड़ को आज्ञा दी कि वे वसु को पुनः ब्रह्मलोक में पहुँचा दें। गरुड़ ने नारायण की आज्ञा का पालन करते हुये वसु को ब्रह्मलोक में पहुँचा दिया। (१२. ३३७)।" इनके नाम के संदर्भों के लिये देखिये १२. ३३५, १७; ३३६, ३. १५; ३३७, १७. २१. ३८।

उपवेणा, अग्नि की माता, एक नदी का नाम है (३. २२२, २४)।

उपवेद (बहु०) : ब्रह्मा की सभा में इनकी उपस्थिति का उल्लेख (२. ११, ३३)। शिव ने उपवेदों को लगाम बनाया (७. २०२, ७५)। 'सोपवेदोपनिषदः', (८. ८७, ४२)। 'वेदोपवेदेषु', (१२. १६७, ३१)।

उपशान्त = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उपश्रुति, एक देवी का नाम है (५. १३, २६. २७; १४, १. ३)। देवी उपश्रुति ने एक सरोवर के अन्दर स्थित कमलनाल के तन्तु में प्रविष्ट हुये इन्द्र को प्राप्त किया (५. १४, १२)। बृहस्पति ने शची को बताया कि वह उपश्रुति देवी का आह्वान करें, क्योंकि देवी उपश्रुति ही उन्हें इन्द्र का दर्शन करायेंगी (१२. ३४२, ४८)।

उपसुन्द, सुन्द के भ्राता एक राक्षस, का नाम है। 'सुन्दोपसुन्दयोस्तद्वदाख्यानं परिकीर्तितम्', (१. २, १२०)। 'सुन्दोपसुन्दौ हि पुरा भ्रातरौ', (१. २०८, १९)। 'सुन्दोपसुन्दावसुरौ', (१. २०८, २२)। 'सुन्दोपसुन्दौ दैत्येन्द्रौ', (१. २०९, ३)। 'सुन्दोपसुन्दौ तौ भ्रातरौ', (१. २०९, १८)। 'सुन्दोपसुन्दावूचतुः (१. २०९, २४)। 'जग्मुर्विषादं तत्कर्म दृष्ट्वा सुन्दोप-

सुन्दयोः', (१. २१०, २६)। 'सुन्दोपसुन्दयोः कर्म सर्वमेव शशंसिरे', (१. २११, ७)। ब्रह्मा ने सुन्द और उपसुन्द को मोहित करने के लिये उन दोनों के पास तिलोत्तमा को भेजा (१. २११, २०)। सुन्द और उपसुन्द ने समस्त विश्व को अपने अधिकार में कर लिया था, किन्तु कुछ समय के पश्चात् तिलोत्तमा के कारण युद्ध करते हुये ये दोनों भ्राता एक दूसरे के हाथ से मारे गये (१. २१२, १३. १६)। 'सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ', (९. ३१, १४)। 'उभौ सदृशकर्माणौ यथा सुन्दोपसुन्दयोः', (९. ५५, ३०)।

उपाङ्ग, : 'साङ्गोपाङ्गम्', (१. १००, ३८)। 'साङ्गोपाङ्गानपि यदि यश्च वेदानधीयते', (१२. ३१८, ५०)। 'वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे', (१२. ३३४, २५)। 'वेदानवाप्य चतुरः साङ्गोपाङ्गान्सनातनान्', (१२. ३४१, ५५)।

उपावृत्त, भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६. ९, ४८)।

उपेन्द्र = विष्णु : 'देवाः सोपेन्द्राः', (३. ३, ४१)। 'महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमम्', (५. ६०, २०)। 'इन्द्रोपेन्द्राविवामरौ', (६. ८३, ५७)। 'उपेन्द्रसदृशः', (६. ११२, ३८)। 'उपेन्द्रसदृशम्', (७. ७२, २३)। 'रुद्रोपेन्द्रविक्रमः', (६. १५६, ८२; १७५, ४९)। = कृष्ण (८. ३७, ३४)। 'रुद्रोपेन्द्रसमम्', (८. ७३, ३४)। 'ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ,' (९. ३४, १८)। १३. १०९, १६; १४९, ३० (सहस्र नामों में से एक)।

उपेन्द्रा, एक नदी का नाम है (६. ९, २७)।

१. उमा, एक देवी, हिमवत् की पुत्री, शिव की पत्नी का नाम है। 'चक्राशिरे पर्वतराजकन्यामुमां यथा देवगणाः समेताः', (१. १८७, ४)। 'महादेवः सहोमोत्र सदा गच्छति सर्वशः', (२. ११, ५१)। जाते हुये अर्जुन से द्रौपदी ने कहा कि ह्री, श्री, तथा उमा आदि देवियाँ मार्ग में उनकी रक्षा करें (३. ३७, ३३)। 'देव्या सहोमया श्रीमान्', (३. ३९, ४)। 'ततः शुभं गिरिवरमीश्वरस्तदा सहोमया', (३. ४०, २८)। 'सहोमया च भवति दर्शनं कामरूपिणः', (३. १३०, १५)। 'उमासहायो व्यालधृग्बहुरूपः पिनाकधृक्', (३. १६७, ४४)। 'उमायोन्यां च रुद्रेण शुक्रं सिक्तं महात्मना', (३. २३१, १०)। 'तस्मिन् रथे पशुपतिः स्थितो भात्युमया सह', (३. २३१, ३१)। 'उमा चैव महाभागा देवाश्च', (३. २३१, ६१)। उमापतिः पशुपतिर्यज्ञहा त्रिपुरार्दनः', (३. २७२, ७८)। युधिष्ठिर ने दुर्गा = उमा की स्तुति की, जिसके फलस्वरूप उमा देवी ने प्रत्यक्ष होकर वर प्रदान किया (४. ६)। 'अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च संबभुः', (५. १११, १०) 'उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः', (६. ६, २५)। = दुर्गा (व० स्था०), अर्जुन द्वारा इनकी स्तुति का उल्लेख (६. २३, ९)। 'उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान्', (७. २०२, ८४)। 'उमया सार्द्धं युष्माभिरमितद्युतिः', (७. २०२, ९२)। भगवान शिव उमा सहित देवताओं पर प्रसन्न हो गये जिससे इन्द्र की भुजा ठीक हो गई (७. २०२, १००)। उमा शची 'सिनीवाली', (९. ४५, १३)। 'उमा ददौ विरजसी वाससी रविसप्रभे', (९. ४६, ४९)। 'केचिन्महेश्वरसुतं केचित्पुत्रं विभावसोः। उमायाः कृत्तिकानां च गंगायाश्च वदन्त्युत', (९. ४६, ९९)। 'उमाभूषणतत्परम्', (१०. ७, ९)। यज्ञों में देवों द्वारा शिव को भाग देने का निषेध जानकर उमा को अत्यन्त सन्ताप हुआ (१२. २८३, २५. २८)। दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिये शिव ने उमा के समक्ष अपने मुख से एक भयंकर प्राणी प्रगट किया (१२. २८४, २९)। 'ततः प्रणम्य वरदं देवं देवीमुमां तथा', (१२. २८९, ३७)। 'हिमवतो गिरेर्दुहितरमुमां कन्यां रुद्रश्चकमे भृगुरपि च', (१२. ३४२, ६२)। 'पुलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम्', (१३. १४, २३५)। 'भगवान् देवदेवः सहोमया', (१३. १४, २४४)। 'शिरसा वन्दिते देवे देवी प्रीता ह्युमा तदा', (१३. १४, ४०६)। 'निरीक्ष्य भगवान् देवीं ह्युमाम्', (१३. १४, ४२७)। 'उवाचोमा प्रणिहिता', (१३. १५, ४. ७)। 'उमया सहितः प्रभुः', (१३. १६, ६७)। वर के रूप में शिव को प्राप्त करने के लिये उमा ने तपस्या की (१३. १९, २०)। 'ते महादेवमासीनं देवीं च वरदामुमाम्', (१३. ८४, ६२)। देवताओं ने शिव से अपने अमोघवीर्य को रोक लेने के लिये कहा जिससे कुपित होकर पार्वती ने उन्हें शाप दे दिया (१३. ८४, ६४) 'शङ्करस्योमया सार्धं संवादं प्रत्यभाषत', (१३. १४०, १)। देखिये १३. १४०, ३७. ४०. ४६; १४१, ९. १३. २०. २८. ३४. ६१. ९१; १४२, १. २०. ३४; १४३, १; १४४, १. १८. २८. ४१; १४५, १. ४३. ५४. ५८; १४६, १३. २२. ३३ भी। शिव और उमा का संवाद (१३. १४८, ५)। 'शंकरस्योमया सार्धं संवादः', (१३. १४८, ५१)। 'उमा जिज्ञासमाना', (१३. १६०, ३२)। 'ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः', (१३. १६०, ३६)। उमा सहायो भगवान्यत्र नित्यं महेश्वरः', (१४. ८, ३)। 'उमा देवीं विजानीध्वं नारीणामुत्तमां शुभाम्', (१४. ४३, १६)।

तु० कीं० उमा के निम्न पर्याय :

* **अम्बिका** : १३. १५०, २८।

* **आर्या** : ३. २३०, ४२।

* **काली** : १०. ८. ६९।

* **गिरिवरात्मजा** : ९. ४४, ३९।

* **गिरिसुता** : १३. १४०, ३१।

* **गौरी** : ३. ८४, १५१; ४. ७१, १७।

* **त्रिभुवनेश्वरी** : ४. ६, १।

* **दुर्गा,** व० स्था०।

* **देवी** : महाभारत में इनकी प्रशंसा की गई है (१. ६२, ३४)। कुबेर की सभा में इनकी उपस्थिति (२. १०, २२)। 'देव्या सहोमया', (३. ३९, ४)। अर्जुन ने शिव के साथ इनका दर्शन किया (३. ४०, ७२)। भीमा के उत्तम स्थान में स्नान करनेवाला व्यक्ति देवी का पुत्र हो जाता है (३. ८२, ८४–८५)। 'गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थे नरः शुचिः', (३. ८३, ९४)। ३. ८४, ९५। 'देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्', (३. ८३, १०२)। 'सानिध्यं तत्र राजेन्द्र रुद्रपत्न्याः कुरुद्वह। अभिगम्य च तां देवीं न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥', (३. ८३, १७०)। 'देव्याः स्थानं सुदुर्लभम्', (३. ८४, १३)। ३. ८४, १५. १८। एक तीर्थ (३. ८४, २३ ?) 'विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह', (३. ८४, १३५)। 'श्रीपर्वते महादेवो देव्याः सह महाद्युतिः',) ३. ८५, १९)। 'भगवान् स्थाणुर्देव्या सह', (३. १७४, १२)। 'आगम्य मनुजव्याघ्र सह देव्या परंतप। अभ्यभाषत सुप्रीतो भगवान गोवृषध्वज॥', (३. २२९, २६–२७)। 'दुर्योधन का नाभि से नीचे का, आधा शरीर पार्वती देवी ने पुष्पमय बनाया है (३. २५२, ७.८)। 'देवीं दुर्गाम्', (४. ६, १)। युधिष्ठिर द्वारा इनकी स्तुति (४. ६, ४. ६. ८. १२. १५. २२. २५)। ४. ६, २७. ३५। शिव को प्राप्त करने के लिये इन्होंने तपस्यायें कीं (५. १११, ९)। अर्जुन द्वारा इनकी स्तुति (६. २३, १८)। ७. २०२, ८३। 'अब्रवीत्तस्य बहुशो गुणान्देव्याः समीपतः', (८. ३४, ३७)। 'देवी गिरिवरात्मजा', (९. ४४, ३९)। ९. ४४, ४३; १२. १५३, १११; २८३, ३०; २८४, २. १४. १५. २३. २४. २७. ३१. ३४. ५१. ५४. २०६; २८९, ३४. ३७; २९२, १४। 'शैलराजसुता चैव देवी तत्राभवत्पुरा', (१२. ३२३, १२)। १२. ३२४, १८; १३. १४, ७२. २३४। 'स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः', (१३. १४, २७८)। १३. १४, ३८४। 'देव्याः सह महेश्वरः', (१३. १४, ३८५)। 'देवी प्रीता ह्युमा तदा', (१३. १४, १०६)। 'निरीक्ष्य भगवान् देवीं ह्युमाम्', (१३. १४, ४२७)। १३. १५, ९। 'तत्र देव्या तपस्तप्तं शङ्करार्थं सुदुश्चरम् अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः॥', (१३. १९, २०)। 'देव्या विवाहे निर्वृत्ते रुद्राण्या भृगुनन्दन। समागमे भगवतो देव्याः सहमहात्मनः॥', (१३. ८४, ६१)। 'महादेवमासीनं देवीं च वरदामुमाम्', (१३. ८४, ६२)। 'अयं समागमो देवो देव्याः सह तवानघ', (१३. ८४, ६३)। 'अमोघ तेजास्त्वं देव देवी चेयमुमा तथा (१३. ८४, ६४)। १३. ८४, ७०. ७६; १४०, ४५। 'ततो मुनिगणाः सर्वेस्तां देवीं प्रत्यपूजयत्। वाग्भिरङ्गभूषितार्थाभिः स्तवैश्चार्थे विशारदैः॥', (१३. १४१, २४)। 'शैलराजसुतां देवीम्', (१३. १४६, २५) 'उमां देवीं विजानीध्वं नारीणामुत्तमां शुभाम्', (१४. ४३, १६)।

* **देवेशी** : १२. २८४, २८।

* **पर्वतराजकन्या** : १. १८७, ४।

* **पार्वती** : 'रथेनादित्य वर्णेन पार्वत्या सहितः प्रभुः', (३. २३१, २९)। गौरी इत्यादि के द्वारा इनका अनुगमन (३. २३१, ४९)। सहितं देवम्', (७. ८०, ४०)। 'पार्वत्या सहितं प्रभुम्', (७. २०१, ७०)। ७. २०२, ८८. ९३। 'पार्वत्या च महेश्वरः', (१०. ७, ४६)। 'माहेश्वरी महादेवी प्रोच्यते पार्वती हि सा', (१४. ४३, १५)।

* **महाकाली** : १२. २८४, ३१।

* **महादेवी** , व० स्था०।

* **महाभीमा** : १२. २८४, ३१।

* **महेश्वरी** : १२. २८४, ३१।

* **माहेश्वरी** : १४. ४३, १५।

* **रुद्रपत्नी** : ३. ८३, १७०।

* **रुद्राणी** : ब्रह्मा की सभा में इनकी उपस्थिति (२. ११, ४१)। 'यथा रुद्रश्च रुद्राण्याम्', ५. ११७, १०)। १३. १९, ३१; ८४, ६१. ७३; ८५, ७; १३९, ९।

* **शर्वाणी** : १३. १५, ४।

* **शाकम्भरी**, व० स्था०।

* **शैलपुत्री** : ९. ४४, २३. ३५; १३. १४०, ५०; १४८, ४४।

* **शैलराजसुता** : १२. २८३, ७. २२; ३२३, १२; १३. १४०, ३६; १४६, २५।

दो पृथक् सूक्तों, ४. ६, ७–२६ और ६. २३, ४–१६, में उमा (दुर्गा) के निम्नलिखित नाम मिलते हैं :

आर्या, कपिला (६. २३, ४)। कराली, कात्यायनी (६. २३, ६)। कापाली (६. २३, ४)। काली (४. ६, १७; ६. २३, ४)। कुमारी (४. ६, ७; ६. २३, ४)। कृष्णाछविसमा (४. ६, ९)। कृष्णपिङ्गला (६. २३, ४)। कृष्णा (४. ६, ७. ९; ६. २३, ९)। कैटभनाशिनी (६. २३, ९)। कोकमुखा, कौशिकी (६. २३, ८)। चण्डा, चण्डी (६. २३, ५)। जया (४. ६, १६; ६. २३, ६)। जातवेदसी (६. २३, १०)। तारिणी (६. २३, ५)। दुर्गा (४. ६, २०. २६; ६. २३, ११)। धूम्राक्षी (६. २३, ९)। पीतवासिनी (६. २३, ८)। ब्रह्मण्या (६. २३, १०)। ब्रह्मविद्या (६. २३, ११)। मन्दरवासिनी (६. २३, ४)। महाकाली (४. ६, १७; ६. २३, ५)। महादेवी (४. ६, २२; ६. २३, १३)। महिषासुर-नाशिनी (४. ६, १५)। विजया (४. ६, १६) वरवर्णिनी (६. २३, ५)। विरूपाक्षी (६, २३, ९)। शाकम्भरी, श्वेता (६. २३, ९)। सावित्री (६. २३, १२)। सिद्धसेनानी (६. २३, ४)। स्कन्दमातृ (६. २३, ११)। हिरण्याक्षी (६. २३, ९)।

२. उमा=सावित्री (९. ४२, ३२)।

उमाधव, उमाकान्त=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उमापति=शिव, व० स्था०।

उमा-महेश्वर-संवाद : "नारद ने कहा : 'एक बार शिव उस हिमवत् पर्वत पर तपस्या कर रहे थे जहाँ सिद्ध और चारण निवास करते थे, जो नाना प्रकार की ओषधियों से सम्पन्न था, तथा जहाँ झुण्ड की झुण्ड अप्सरायें विचरण करती रहती थीं (वहाँ निवास करने वालों का विस्तृत वर्णन)। उस समय उमा (वर्णन) सम्पूर्ण तीर्थों के जलों से भरा हुआ सोने का कलश लिये हुये शिव के पास आई और आते ही उन्होंने मनोरंजनार्थ अपने दोनों हाथों से शिव के दोनों नेत्र बन्द कर दिये। शिव के दोनों नेत्रों के आच्छादित होते ही सम्पूर्ण जगत् सहसा अन्धकारमय हो गया। तदनन्तर क्षणभर में ही समस्त जगत् का अन्धकार दूर हो गया। भगवान् शिव के ललाट से अत्यन्त दीप्तिशालिनी महाज्वाला प्रगट हुई, क्योंकि उनके ललाट पर एक तृतीय नेत्र का आविर्भाव हो गया। उस तृतीय नेत्र से प्रगट हुई ज्वाला ने हिमालय पर्वत को जलाकर मथ डाला। पर्वत को दग्ध हुआ देखकर गिरिजा कुमारी उमा दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शंकर की शरण में गई। उनकी ऐसी दशा देखकर भगवान् शंकर ने हिमवान् पर्वत की ओर प्रसन्नतापूर्ण दृष्टि से देखा जिससे वह पर्वत पुनः अपने पूर्वरूप में आ गया। उमा ने भगवान् शंकर से ये प्रश्न किये : (१) आपके ललाट में तृतीय नेत्र क्यों प्रगट हुआ ? (२) आपका पूर्वदिशा का मुख चन्द्रमा के समान कान्तिमान् और देखने में प्रिय तथा उत्तर और पश्चिम दिशा के मुख भी 'इसी प्रकार कान्ति से युक्त हैं, परन्तु आपका दक्षिण दिशा का मुख इतना भयंकर क्यों है ? (३) आपके मस्तक पर कपिल वर्ण की जटायें कैसे उत्पन्न हुईं ? (४) आपका कण्ठ मोर के पंख के समान नीला कैसे हो गया ? (५) आपके हाथ में सदा पिनाक क्यों वर्तमान रहता है ? और (६) आप सदैव जटाधारी ब्रह्मचारी के वेश में क्यों रहते हैं ? शिव ने इन प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार कर लिया। (१३. १४०)।" "शिव ने कहा : 'पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने एक तिलोत्तमा नामक नारी की सृष्टि की जो मेरी परिक्रमा करने के लिये आई। वह सुन्दरी परिक्रमा करती हुई जिस-जिस दिशा की ओर गई उस-उस दिशा की ओर मेरा मनोरम मुख प्रगट होता गया। मैं तिलोत्तमा के रूप का दर्शन करने की इच्छा से योगबल से चतुर्मूर्त्ति एवं चतुर्मुख हो गया। अपने पूर्वदिशा वाले मुख से मैं इन्द्रपद का अनुशासन करता हूँ। उत्तर-वर्त्ती मुख के द्वारा तुम्हारे (उमा के) साथ वार्तालाप के सुख का अनुभव करता हूँ। पश्चिम दिशा का मेरा मुख सौम्य और सम्पूर्ण प्राणियों को सुख देने वाला है, तथा दक्षिण दिशा का मुख भयानक और रौद्र है, जो समस्त प्रजा का संहार करता है। मैं लोक हित के लिये जटाधारी ब्रह्मचारी के वेश में रहता हूँ और देवताओं के हित के लिये अपने हाथों में पिनाक रखता हूँ। पूर्वकाल में इन्द्र ने मेरी श्री प्राप्त करने की इच्छा से मुझ पर वज्र का प्रहार किया था। वह वज्र मेरा कण्ठ दग्ध करके चला गया जिससे मेरी श्रीकण्ठ नाम से ख्याति हुई। प्राचीन काल के दूसरे युग में सागर-मन्थन के समय मैंने तीनों लोकों के हित के लिये मन्थन से प्रगट विष का पान कर लिया और तभी से मैं नीलकण्ठ कहा जाने लगा।' पार्वती ने पूछा : 'अनेक आयुधों के रहते हुये आप पिनाक क्यों धारण करते हैं ?' शिव ने कहा : 'युगान्तर में कण्व नाम से प्रसिद्ध एक महामुनि ने दिव्य तपस्या आरम्भ की। मुनि की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जब उन्हें वर देने के लिये गये तब वहाँ उन्होंने एक बाँस देखा। उसी बाँस से उन्होंने दो धनुष बनाकर मुझे और विष्णु को दिया। मेरे धनुष का नाम पिनाक हुआ और विष्णु के धनुष का शार्ङ्ग। उस वेणु के अवशिष्ट भाग से एक तृतीय धनुष भी बना जिसका नाम गाण्डीव पड़ा।' पार्वती के यह पूछने पर कि उन्होंने अपने वाहन के रूप में वृषभ को क्यों चुना, शिव ने कहा : 'प्राचीन काल में ब्रह्मा ने सुरभि नामक एक गाय की सृष्टि की। एक दिन उसके बछड़े के मुँह से निकला हुआ फेन मेरे शरीर पर पड़ गया जिससे मैंने गायों को ताप देना आरम्भ किया और मेरे रोष से दग्ध हुई गायों के रंग नाना प्रकार के हो गये। तब उस समय ब्रह्मा ने मुझे शान्त किया और ध्वज चिह्न तथा वाहन के रूप में यह वृषभ मुझे प्रदान किया।' उमा के यह पूछने पर कि वह अनेक सुरम्य स्थानों को छोड़कर श्मशान भूमि (वर्णन) में क्यों निवास करते हैं, शिव ने बताया : 'मुझे श्मशान से बढ़कर अन्य कोई पवित्र स्थान दिखाई नहीं पड़ता और मेरे भूतगण भी श्मशान में ही रमते हैं।' उमा के यह पूछने पर कि उनके सिर पर जटा, कमर में बाघम्बर क्यों हैं और उनका रूप भी ऐसा रौद्र, भयानक, तथा घोर किसलिये है, शिव ने कहा : 'जगत् के समस्त पदार्थ शीत और उष्ण तत्त्वों में गुथे हुये हैं। सौम्य गुण की स्थिति विष्णु में है और आग्नेय की मुझ में। इस प्रकार विष्णु और शिव रूपी शरीर से सदा समस्त लोकों की रक्षा करता हूँ। मेरा भयानक आकृति वाला आग्नेय रूप सम्पूर्ण जगत् के हित में तत्पर रहता है।' उमा द्वारा धर्म का लक्षण पूछने पर शिव ने उसे बताया। उमा द्वारा चारों वर्णों के धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर शिव ने उसकी विस्तृत व्याख्या की। शिव ने बताया : 'जब-जब लोकों की सृष्टि होती है

ब्रह्मा तीन प्रकार के धर्म का विधान करते हैं जिनमें से प्रथम वेदोक्त धर्म है, जो सर्वोत्कृष्ट है, दूसरा स्मार्त धर्म है, और तीसरा शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित शिष्टाचार धर्म। ये तीनों धर्म सनातन हैं। सन्यासी चार प्रकार के होते हैं--कुटीचक, बहूदक, हंस, और परमहंस, जिनमें से प्रत्येक में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।' उमा द्वारा ऋषिधर्म की व्याख्या करने का आग्रह करने पर शिव ने कहा : 'प्रथम प्रकार के फेनप ऋषियों का धर्म उस अमृत के फेन को एकत्र करके पान करना है जिसका पूर्वकाल में यज्ञ करते समय ब्रह्मा ने पान किया था। द्वितीय प्रकार के वालखिल्य नामक ऋषि होते हैं जो सूर्य-मण्डल में निवास करते हैं। ये उञ्छवृत्ति का आश्रय लेकर पक्षियों की भाँति एक-एक दाना बीन कर जीवन-निर्वाह करते हैं; मृगछाला, चीर और वल्कल इनके वस्त्र होते है; इनमें से प्रत्येक का शरीर अङ्गुष्ठाग्र के बराबर होता है; ये लोग तपस्या से सम्पूर्ण पापों को दग्ध करके अपने तेज से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। एक अन्य प्रकार के ऋषियों को चक्रचर कहते हैं जो सोमलोक तथा पितृलोक के निकट निवास करते हैं। ये उञ्छवृत्ति से अपनी जीविका चलाते हैं। कुछ अन्य ऋषियों को सम्प्रक्षाल, अश्मकुट्ट और दन्तोलूखलिक कहते हैं जो सोमप और उष्णप होते हैं और देवताओं के निकट रहकर अपनी स्त्रियों सहित उञ्छवृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हैं, इत्यादि (शिव ने ऋषिधर्म का विस्तार से वर्णन किया)।' (१३. १४१)।" "उमा द्वारा वानप्रस्थ धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर शिव ने कहा : 'नियमों का पालन करते हुये वनवासी वानप्रस्थ साधु को नदी और वन से युक्त तीर्थों में जाकर ऋषिधर्म की दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक चित्त होकर परिचर्या आरम्भ करना चाहिये। सवेरे उठना, शौचाचार का पालन, देवताओं को नमस्कार, शरीर में गोबर का लेप लगाकर स्नान, दोष और प्रमाद का त्याग, अग्निहोत्र, शाक और मूल आदि का संकलन, आदि से इस धर्म की सिद्धि होती है। वानप्रस्थ को योगसाधन में तत्पर तथा वस्तुओं का न्यायानुकूल सेवन करना चाहिये। उसे वीर आसन में बैठना और चबूतरे पर सोना चाहिये। वानप्रस्थ मुनियों को शीततोयाग्नियोग का आचरण करना चाहिये। वानप्रस्थ को सदा वन में ही रहना और अग्निहोत्र और पञ्चमहायज्ञों का सेवन करना चाहिये, इत्यादि। इस प्रकार के वानप्रस्थ पुण्यमय ब्रह्मलोक तथा सनातन सोमलोक में जाते हैं।' उमा द्वारा मुनिधर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर शिव ने बताया : 'सभी वानप्रस्थ तपस्या में संलग्न रहते हैं, जिनमें से कुछ स्वच्छन्द विचरने वाले और कुछ अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ रहने वाले होते हैं। स्वच्छन्द विचरने वाले मुनि सिर मुड़ाकर गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, और जो स्त्री के साथ रहते हैं वे रात्रि के समय अपने आश्रम में ही निवास करते हैं। इन दोनों प्रकार के ऋषियों का महान् कर्त्तव्य तीन समय जल में स्नान करना, अग्नि में आहुति डालना, समाधि लगाना, सन्मार्ग पर चलना और शास्त्रोक्त कर्मों का अनुष्ठान करना होता है। मैंने ऊपर जो वानप्रस्थियों का धर्म बताया है उन सबका पालन करने से इन्हें तपस्या का पूर्ण फल मिलता है (विस्तृत वर्णन)।' उमा द्वारा यायावरों के धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर शिव ने उसका वर्णन किया। इसी प्रकार उमा ने वानप्रस्थ ऋषियों के अन्तर्गत चक्रधर ऋषियों और वैखानसों के धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न और शिव ने इनका विस्तार से वर्णन किया। वालखिल्यों का परिचय सुनने के उमा के आग्रह पर शिव ने कहा : 'वालखिल्यगण मृगचर्म पहनते हैं और शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों के प्रभावों से रहित हैं। तपस्या ही उनका धर्म है। उनके शरीर की लम्बाई एक अँगूठे के बराबर है। ये लोग समस्त प्रजावर्ग तथा सम्पूर्ण लोकों के हित के लिये तपस्या करते हैं।' उमा ने आश्रमधर्म में रत तपस्वी, राजकुमार, निर्धन, महाधनी आदि के कर्मों के सम्बन्ध में प्रश्न और शिव ने उसका विस्तृत समाधान किया। (१३. १४२)।" "उमा के प्रश्न करने पर शिव ने ब्राह्मणादि वर्णों की प्राप्ति में मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों की प्रधानता का प्रतिपादन किया। (१३. १४३)।" "उमा के प्रश्न करने पर शिव ने बन्धन-मुक्ति, स्वर्ग, नरक एवं दीर्घायु और अल्पायु प्रदान करने वाले शरीर तथा वाणी और मन द्वारा किये जाने वाले शुभाशुभ कर्मों का वर्णन किया। (१३. १४४)।" "उमा के प्रश्न करने पर शिव ने स्वर्ग और नरक, तथा उत्तम और अधम कुल में जन्म की प्राप्ति कराने वाले कर्मों की वर्णन करते हुये कहा : 'जो व्यक्ति ब्राह्मणों का सम्मान, दीन-दुःखियों को भोजन-वस्त्र आदि प्रदान करता है वह देवलोक में जन्म लेता है, और चिरकाल तक नन्दन वन में अप्सराओं के साथ रमण करता है। जो लोग दूसरों को दान देने में कृपण होते हैं, दीन-दुःखियों को देखकर उस स्थान से हट जाते हैं ऐसे अकर्मण्य और लोभी व्यक्ति नरक में पड़ते हैं। बहुत वर्षों के बाद नरक से छुटकारा पाने पर ये लोग स्वपाक और पुल्कस आदि निन्दित मनुष्यों के कुल में जन्म लेते हैं।' तदुपरान्त उमा के प्रश्न करने पर शिव ने बताया कि कुछ लोग बुद्धिमान् और कुछ अन्धे तथा रुग्ण आदि क्यों हो जाते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि कौन से कर्म निर्दोष हैं और कौन से सदोष। (१३. १४५)।" "नारद ने कहा : 'ऐसा कहकर शिव जी स्वयं भी पार्वती के मुख से कुछ सुनने की इच्छा करने लगे।' शिव ने पार्वती से कहा : 'तुम भूत और भविष्य की ज्ञाता और धर्म का आचरण करने वाली हो, अतः तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। तुमने ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, इन्द्र-पत्नी शची, विष्णु-पत्नी लक्ष्मी तथा अन्यान्य देव-पत्नियों का संग किया है; अतः मुझे स्त्री-धर्म का उपदेश करो।' उमा ने कहा : 'मैं स्त्री-धर्म का वर्णन कर सकती हूँ परन्तु ये नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थों के जल से सम्पन्न होकर आपके चरणों का स्पर्श करने के लिये यहाँ आ रही हैं, उनसे परामर्श करने के पश्चात् मैं स्त्रीधर्म का वर्णन करूँगी (नदियों का विस्तृत वर्णन)।' ऐसा कहकर उमा ने स्त्रीधर्म के ज्ञान में निपुण गंगा आदि उन समस्त श्रेष्ठ सरिताओं से स्त्रीधर्म के विषय में प्रश्न किया। उमा की इस उदारता पर गंगा ने उनकी प्रशंसा की। तदनन्तर उमा ने विस्तार से स्त्रीधर्म का वर्णन करते हुये कहा : 'धर्मपरायण स्त्री को अपने पति की देवता के समान सेवा और परिचर्या करनी चाहिये। जो सुन्दरी नारी पति के अतिरिक्त पुरुष नामधारी चन्द्रमा, सूर्य, और किसी वृक्ष की ओर भी दृष्टि नहीं डालती वही पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली होती है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्ते के थकावट से खिन्न पति की पुत्र के समान सेवा करती है वह धर्मफल की भागिनी होती है।' नारद ने कहा कि स्त्रीधर्म का विस्तार से वर्णन सुनने के पश्चात् शिव ने उमा की प्रशंसा की और वहाँ उपस्थित लोगों को विदा होने की आज्ञा दी। (१३. १४६)।" ऋषियों के पूछने पर शिव ने वासुदेव श्रीकृष्ण के माहात्म्य का वर्णन किया (१३. १४७)। "नारद ने कहा कि शिव द्वारा अपना सम्भाषण समाप्त करते ही आकाश में बिजली की गड़गड़ाहट और मेघों की गम्भीर गर्जना के साथ महान् शब्द होने लगा। उस समय उस रमणीय और सनातन देवगिरि पर ऋषियों को न तो शंकर दिखाई दिये और न भूतों का समुदाय ही। तब ब्राह्मणों ने तीर्थ यात्रा के लिये प्रस्थान किया और अन्य लोग जहाँ से आये थे वहीं लौट गये। (१३. १४८, १-४)।

उम्लोचा, एक अप्सरा का नाम है जो अर्जुन के जन्मोत्सव पर नर्तन-गायन के लिये आई थी (१.१२३, ६५)।

१. उरग : 'मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः', (१. ४, ५)। १. ५२, ३. ९; ५६, २१। 'गन्धर्वोरगरक्षसाम्', (१. ६७, १.१४६)। 'गन्धर्वोरगराक्षसान्', (१. ७५, २७)। 'गन्धर्वोरगराक्षसाम्', (१. १११, ३०)। 'निश्वासोरगो यथा', (१. १५१, २०)। 'पिशाचोरगदानवाः', (१. १७०, ६१)। 'तयोर्भयाद्द्रुवुस्ते वैनतेयादिवोरगाः', (१.२१०,१७)। 'पादस्पर्शामिवोरगः', (१. २२०, ३०)। 'व्यात्ताननमिवोरगम्', (१.२२१, ७५)। 'पिशाचोरगराक्षसान्', (१. २२८, ११)। 'देवगन्धर्वमनुष्योरगराक्षसान्', (३. ५३, २९)। 'पञ्चशीर्षा इवोरगाः', (३. ५७, ६)। तां तु दृष्ट्वा तथा ग्रस्तामुरगेणायतेक्षणाम्', (३. ६३, २७)। 'पिशाचोरगराक्षसान्', (३. ६४, ७)। 'पञ्चशीर्षाविवोरगौ', (३. ८०, १९)। 'मनुष्योरगगन्धर्वं', (३. १०४, २१)। 'असुरोरगरक्षांसि', (३. १०७, २५)।

'गन्धर्वोरगयक्षाश्च', (३. १०९, ८)। 'गन्धर्वोरगरक्षांसि', (३.१५७,१५)। 'सुपर्णश्चोरगादयः', (३. १५९, १९)। 'गन्धर्वोरगरक्षांसि', (३. १६०, २२)। 'गन्धर्वोरगरक्षसाम्', (३. १६८, ३०)। ३. १८०, ९। 'सयक्षोरगराक्षसम्', (३. १८८, ७३)। 'गन्धर्वोरगराक्षसान्', (३. १८९, ३०)। 'मनुष्योरगरक्षसाम्', (३. २०१, ४)। 'क्रुद्ध इवोरगः', (३. २१६, २४)। 'किन्नरोरगरक्षसाम्', (३. २२४, ८)। 'वपुष्मतीवोरगराजकन्या', (३. २६५, ३)। 'कृष्णोरगौ तीक्ष्णमुखौ', (३. २६८, ८)। 'सरः सुपर्णेन हृतोरगं यथा', (३. २६९, ५)। 'पिशाचोरगमानुषान्', (३. २७२, ४६)। 'तीक्ष्णविषो यथोरगः', (४. ७, २)। 'पञ्चशीर्षाविवोरगौ', (४.२२,५६)। 'श्वसमानानिवोरगान्', (४. ६४, ६)। 'चेष्टमान इवोरगः', (५.१०,४६)। 'किन्नरोरगराक्षसाः', (५. १५, १८)। 'तृणैश्छन्न इवोरगः', (५.७४,७)। 'गन्धर्वोरगराक्षसाः', (५. १२८, ४४)। भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः', (५.१३०,६)। ५. १३०, ३८। 'दीप्तास्यानुरगानिव', (५. १५१, २५)। 'मनुष्येषूरगेषु च', (५. १६९, १७)। 'जीर्णां त्वचमिवोरगः', (५. १७५, १९)। 'सर्वानुरगांश्च दिव्यान्', (६. ३५, १५)। 'पिशाचोरगराक्षसाः', (६. ४८, १३)। 'दण्डाहत इवोरगः', (६. ५४, ७४)। 'पिशाचोरगराक्षसाः', (६. ५८, ६)। 'खात् पतन्तमिवोरगम्', (६. ६१, २६)। 'गन्धर्वाश्च सहोरगैः', (६. ८१, ४१)। 'भयकरा उरगा इव', (६. ८७, २७)। 'पादस्पृष्टा इवोरगाः', (६. १०३, ६)। 'व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा', (७. ९, २८)। 'उरगोत्तमम्', (७. १४, ७९)। 'सयक्षोरगराक्षसाः', (७. ३३, ११)। 'दण्डाहत इवोरगः', (७. ४६, १४)। 'उरगसन्निभम्', (७. ४६, १६)। 'गन्धर्वोरगपक्षिणः', (७. ६२, १६)। 'देवासुरनरोरगाः', (७. ६९, १०)। ७. ७३, ४८। 'नासुरोरगराक्षसाः', (७. ७४, ११; ७५, १४)। 'निःश्वसन्ताविवोरगौ', (७. ७७, १)। 'पिशाचोरगराक्षसाः', (७. ७९, ३२)। 'सयक्षोरगराक्षसाः', (७. ९४, ३६)। 'भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः', (७. २००, १८)। 'उरगसन्निभाः', (७. १०६, ३२)। 'पञ्चशीर्षाविवोरगौ', (७. ११५, ५२)। 'उरगसंकाशैः', (७. १२१, ३७)। 'निःश्वसन्तविवोरगौ', (७. १३२, १०)। 'चेष्टमानं यथोरगम्', (७. १३३, ४२)। 'यक्षोरगराक्षसाः', (७. १४४, २४; १४७, ४२)। 'भग्नदंष्ट्र इवोरगः', (७. १५०, २)। 'रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः', (७. १५६, १७१)। 'निःश्वसद्भिरिवोरगैः', (७. १५८, ३)। 'मनुष्योरगरक्षसाम्', (७. १५८, ३५)। 'पिशाचोरगराक्षसैः', (७. १५८, ५१)। 'उरगसन्निभैः', (७. १५९, ८०)।' पदाक्रान्त इवोरगः', (७. १६०, ३०)। 'निःश्वसन्नन्नगो यथा', (७. १६०, ४१)। 'सयक्षोरगकिन्नराश्च', (७. १६३, १४)। 'पादस्पर्शमिवोरगः', (७, १७३, ३३)। 'संक्रुद्ध इव चोरगः', (७. १७६, ५)। 'सराक्षसोरगाः', (७. १८१, १९)। 'श्वसद्भिर्महोरगौ', (७. १८४, ४१)। 'नासुरोरगरक्षांसि', (७. १८५, २६)। 'संवष्टित इवोरगः', (७. १८८, ११)। 'वैनतेय इवोरगम्', (७. १९१, ३५)। 'पदाहत इवोरग',(७. १९३, ६८)। निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा', (७. १९३, ७०)। 'नासुरा न च राक्षसाः', (७. १९५, २३)। 'सासुरोरगमानवान्', (७. १९७, २०)। 'बिलमिवोरगः', (७. २००, ६७)। 'पञ्चास्यैरुरगैरिव', (८. १२, ६)। 'पञ्चास्योरगसन्निभान्' (८. १६, ७)। 'तार्क्ष्यहताविवोरगौ', (८. २०, ४७)। 'पादाक्रान्ता इवोरगाः', (८. ३१, ७)। 'सुपर्णवातप्रहृता यथोरगाः', (८. ८५. २०)। 'पिशाचोरगराक्षसाः', (८. ८७, ३७)। 'तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते', (८. ८९, २६)। '.रगोत्तमः', (८. ९१, ३०)। 'भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः', (८. ९३, ७)। 'शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः', (९. ३, ७)। 'वमन्ताबुरगाविव', (९. ५५, ३३)। निश्वसन्नुरगो यथा (९. ६४, ५)। 'बिलादीप्तमिवोरगम्', (१०. ६, १५)। 'देवदानवगन्धर्वमनुष्यपतगोरगाः', (१०. १२, १७)। 'गन्धर्वोरगराक्षसाः', (१२. ७२, २०)। 'भग्नपृष्ठाद्विवोरगात्', (१२. ८२, ५५)। 'मनुष्योरगरक्षांसि', (१२. ८९, २५)। 'समनुष्योरगवताम्', (१२. १२१, ५८)। 'गन्धर्वोरगराक्षसाः', (१२. २२४, २९)। पशुमृगोरगान्', (१२. २३२, १५)। 'मुक्तत्वच इवोरगः', (१२. २५०, ११)। 'पिशाचोरगराक्षसाः', (१२. २८४, ६)। 'पिशाचोरगराक्षसैः', (१२. २८३, ६३)। १२. ३००, ६०। 'पिशाचोरगराक्षसान्', (१२. ३३१, ५९)। 'उरगश्रेष्ठम्', (१२. ३६५, १)। 'सयक्षोरगरक्षसाम्', (१३. १४, २१३)। 'विषमिवोरगः', (१३. ३०, ५७)। 'मनुष्योरगरक्षसाम्', (१३. ३३, १५)। 'पितरोरगराक्षसाः', (१३. ५८, ८)। 'किन्नरोरगरक्षांसि', (१३. ५८, २९)। 'जीर्णं त्वचमिवोरगः', (१३. ६२, ६९)। 'किन्नरोरगराक्षसाः', (१३. ८३, ८)। 'देवाः सर्पिमहोरगाः', (१३. ८३, ३०)। गन्धर्वोरगराक्षसाः' (१३. ८४, ५०)। 'गन्धर्वोरगराक्षसाम्', (१३. ८७, ४)। १३. ९८, २५। 'देवयक्षोरगनृणाम्', (१३. ९८, ५५)। 'सयक्षोरगराक्षसम्', (१३. १४३, १३५)। 'दैत्यानुरगान्दानवांश्च', (१३. १५८, १७)। 'राक्षसानुरगांश्च', (१३. १५८, २५)। 'गन्धर्वोरगरक्षसाम्', (१४. ४३, १४)। 'देवदानवभूतानां पिशाचोरग रक्षसाम्। नरकिन्नरयक्षाणां सर्वेषामीश्वरः प्रभुः', (१४. ४४, १५)।

२. उरग, एक भारतीय जनपद का नाम है (६. ९, ५४)।

उरगा, एक नगर का नाम है : 'उरगवासिनं चैव रोचमानम्', (२, २७, १९)।

उरगपति = कौरव्य (१४. ८१, ५)।

उरगात्मजा, नागराज की पुत्री उलूपी का नाम है (१४. ७९, १०)।

उरुक्रम = विष्णु (कृष्ण) : 'हृषीकेश उरुक्रमः', (३. १८९, ३५)। = कृष्ण (१२. ४३, ८)।

उर्वरा, एक अप्सरा का नाम है जिसने कुबेर-भवन में अष्टावक्र के स्वागत में नृत्य किया था (१३. १९, ४४)।

१. उर्वशी, पुरूरवस् की पत्नी एक, अप्सरा का नाम है। 'यथोर्वशीं प्राप्य पुरा पुरूरवा', (१. ४४, १०)। प्रधान अप्सराओं के साथ इसका उल्लेख (१. ७४, ६८)। पुरुरवस् की पत्नी के रूप में इसका उल्लेख (१. ७५, २३)। उर्वशी के गर्भ से पुरूरवस् द्वारा आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु, और शतायु नामक छः पुत्र उत्पन्न हुये (१. ७५, २५)। अर्जुन के जन्मोत्सव पर इसने गायन किया था (१. १२३, ६६)। कुबेर की सभा में नृत्यगान करनेवाली अप्सराओं में से एक यह भी है (२. १०, ११)। इन्द्र की सभा में इसकी उपस्थिति (३. ४३, २९)। उर्वशी अर्जुन पर आसक्त हो गई परन्तु अर्जुन के अस्वीकृत करने पर उसने उन्हें स्त्री होने का शाप दे दिया (३. ४५, १. २. ४. १४; ४६, १. १७. १९. २१. २२. ४२. ४८. ४९. ५१. ५२. ५६)। 'तस्य रेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम्', (३. ११०, ३५)। 'उर्वश्यां च पुरूरवाः', (५. ११७, १४)। 'तथा भागीरथी गंगा उर्वशी चाभवत् पुरा', (७. ६०, ६; १२. २९, ६८)। 'उर्वशी पूर्वचित्तिश्च', (१२. ३३२, २१)। 'उर्वश्या वचनं श्रुत्वा शुक्रः परमधर्मवित्', (१२. ३३२, २५)। कुबेर के आवास में इनका अन्य अप्सराओं के साथ उल्लेख (१३. १९, ४४)। 'उर्वशी मेनका रंभा', (१३. १६५, १५)।

२. उर्वशी, एक तीर्थ का नाम है (१३. २५, ४६)। तु० की० **उर्वशीतीर्थ।**

३. उर्वशी, भगीरथ के ऊरु पर बैठने के कारण गंगाजी का एक नाम है (७. ६०, ६)।

उर्वशी तीर्थ, एक तीर्थ का नाम है जहाँ यात्रा करने पर मनुष्य पूजित होता है (३. ८४, १५७)।

उर्वी, पृथिवी का एक नाम है (१२. ४९, ७३)।

१. उलूक, शकुनि के पुत्र, कैतव्य का नाम है। 'उलूकस्य प्रेषणम्', (१. २, २४०)। ये द्रौपदी के स्वयंवर में पधारे थे। (१. १८६, २२)। 'कर्ण उलूकोऽथ विविंशति', (५. ४७, ९)। नकुल ने इनके साथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट की थी (५. ५७, २३)। 'उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान् सहसोमकान् (५. १६०, ६)। 'उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम्', (५. १६०, ६५)। 'उलूक नकुलं ब्रूहि' (५. १६०, ७०)। 'शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम', (५. १६०, ७८)। 'प्रहस्योलूकमब्रवीत्', (५. १६०, ८०)। 'उलूक न भयं तेऽस्ति', (५. १६१, ३)। 'उलूक उवाच', (५. १६१, ६)। 'उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्', (५. १६२,

१. ९)। 'उलूकस्य तु तद्वाक्यं पापं दारुणमीरितम्। श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाप्यमार्जयत्', (५. १६२, ११)। 'हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत्', (५. १६२, १९)। उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम', (५. १६२, ३८)। 'उलूके प्रापयिष्यामि यद्वक्ष्यति सुयोधनम्', (५. १६२, ४३)। 'उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोर्जितम्', (५. १६२, ४८)। 'उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम्', (५. १६२, ५२; १६३, २४)। ५. १६३, ३१–३७. ४१. ४२. ४५.४९-५१। दुर्योधन ने इन्हें राजदूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजा (५. १६४, १)। इन्होंने चेदिराज के साथ युद्ध किया (६. ४५, ७८. ७९)। 'सहदेव का इन पर आक्रमण (६. ७२, ५)। 'उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत्', (६. ७९, ७)। अर्जुन द्वारा विद्ध होते हैं (७. १७१, ३६)। अर्जुन से युद्ध करते हुये शकुनि इनके रथ पर आरूढ हो गये (७. १७१, ३९)। युद्धस्थल में द्रोणाचार्य के मारे जाने पर अन्य योद्धाओं के साथ ये भी समराङ्गण से विमुख हो गये (७. १९३, १४)। 'कैतव्यानामधिपः', (८. ७, १९)। कर्ण द्वारा निर्मित मकरव्यूह के नेत्रों के स्थान में शकुनि तथा उलूक स्थित थे (८. ११, १५)। युयुत्सु के साथ इनका युद्ध हुआ (८. २५, १–३. ६. ८. ९. १२)। गान्धारदेशीय योद्धाओं से सेवित शकुनि और उलूक व्यूह की रक्षा कर रहे थे (८. ४६, १२)। पतत्रि के भ्राता होने का उल्लेख (८. ४८, ३०)। 'उलूकः सौबलश्चैव', (८. ५४, १)। सहदेव द्वारा इन पर आक्रमण (८. ६१, १२. ४२)। उलूक रथ से कूद कर त्रिगर्तों की सेना में सम्मिलित हो गया (८. ६१, ४४)। सात्यकि द्वारा अश्वों के वध कर देने पर शकुनि उलूक के रथ पर सवार हो गये (८. ६१, ४९)। मृतक योद्धाओं के साथ इनका उल्लेख (९. १, २६)। सेना सहित नकुल और सहदेव युद्धभूमि में शकुनि और उलूक का सामना करने के लिये उपस्थित थे (९. ८, ३३)। अन्य योद्धाओं के साथ शल्य की रक्षा करते हैं (९. ११, ३५) नकुल के साथ युद्ध करते हैं (९. २२, २८. २९)। दुर्योधन की सेना के वीर सैनिकों में इनकी गणना का उल्लेख (९. २७, १७)। शकुनि के साथ भीमसेन और सहदेव पर आक्रमण करते हैं (९. २८, ३. २९)। सहदेव द्वारा इनकी मृत्यु (९. २८, ३३)।

तु० की० निम्नलिखित पर्याय :

*** कैतव** : १. १८६, २२; ५. १६३, २४।

*** कैतव्य** : ५. ५७, २३; १६०, ६; १६१, १; १६२, २. ५. ६. ५०. ५१; १६३, १. २. ९. २४. २९. ४५. ५४; ९. १, २६ (इनकी मृत्यु); २, ४१; ८, २८।

*** शकुनि** : ८. २५, ५

२. उलूक, एक नाग (नीलकण्ठी के अनुसार एक यक्ष) का नाम है जिसके साथ गरुड ने युद्ध किया था (१. ३२, १९)।

३. उलूक एक या एकाधिक ऋषियों का नाम है। 'उलूकाश्रमे', (५. १८६, २६। शरशय्या पर पड़े हुये भीष्म को घेर कर खड़े होने वाले लोगों में से एक यह भी थे (१२. ४७, ११)। ये विश्वामित्र के पुत्र थे (१३. ४, ५१)।

४. उलूक, उलूकों के राजा बृहन्त का नाम है। 'उलूक सहितो', (२. २७, १०)।

५. उलूक, उत्तर में स्थित एक भारतीय जनपद का नाम है (२. २७, ५)। अर्जुन ने इसे विजित किया था (२. २७, ११)।

६. उलूक (बहु०) काकी की सन्तति से तात्पर्य है (१. ६६, ५७)।

उलूकदूतागमन : 'उलूकदूतागमनं पर्वामर्षविवर्धनम्', (१. २, ६५)।

उलूकदूतागमनपर्वन्, महाभारत के ६४वें अवान्तर पर्व का नाम है जो उद्योग पर्व के १६० से १६४ अध्यायों तक आता है। "जब पाण्डवों ने हिरण्यवती के तट पर अपना पडाव डाला तब कौरवों ने भी विधिपूर्वक दूसरे स्थान पर शिविर बनाया। उस समय दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि को बुलाकर गुप्त मन्त्रणा की और शकुनि-पुत्र उलूक को सोमकों और केकयों सहित पाण्डवों के पास अपमानजनक सन्देश लेकर जाने के लिये कहा। दुर्योधन ने उलूक से कहा : 'तुम युधिष्ठिर के सामने जाकर कहना कि धर्मात्मा होते हुये वह अधर्म में लिप्त हैं। वह धर्म की पृष्ठभूमि में सम्पूर्ण जगत् का विनाश देखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में तुम उनसे उस दुष्ट बिलाव की कथा भी कहना जो धर्माचरण के बहाने अपने आश्रित समस्त चूहों का भक्षण करने लगा।' इसी प्रकार दुर्योधन ने पाण्डवपक्ष के अन्य लोगों के लिये भी अपमानजनक संदेश दिये। (५. १६०)।" "उलूक ने पाण्डवों के शिविर में पहुँच कर भरी सभा में दुर्योधन का संदेश सुनाया। (५. १६१)।" "उलूक की बातों को सुनकर पाण्डवगण अत्यन्त क्रुद्ध हुये। श्रीकृष्ण ने उलूक से चले जाने के लिये कहा, परन्तु उसने एक बार पुनः अपने शब्दों को दुहराया जिससे पाण्डवगण और भी क्रुद्ध हो उठे तथा भीम ने दुःशासन का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार सहदेव आदि ने भी दुर्योधन के लिये अपना रोष-पूर्ण संदेश दिया। सहदेव ने कहा कि वे शकुनि के सामने ही उलूक की हत्या करने के पश्चात् शकुनि का भी वध कर डालेंगे (५. १६२)।" "अर्जुन ने कहा कि भीष्म का आश्रय लेकर युद्ध का आवाहन करने वाले दुर्योधन को उसमें सफलता नहीं मिलेगी, क्योंकि वे स्वयं भीष्म का वध करेंगे। शिखण्डी ने भी कहा कि उसका जन्म ही भीष्म के विनाश के लिये हुआ। धृष्टद्युम्न ने बताया कि वे मित्रों तथा अनुचरों सहित द्रोणाचार्य का वध करेंगे। उलूक ने लौट कर दुर्योधन से पाण्डवों का संदेश कहा। कर्ण और दुर्योधन ने अपनी सेना को सूर्योदय के साथ ही युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाने का आदेश दिया। (५. १६३)।" "पाण्डवों की सेना का भी युद्ध-भूमि में पदार्पण और धृष्टद्युम्न के द्वारा योद्धाओं की अपने-अपने योग्य विपक्षियों के साथ युद्ध करने के लिये नियुक्ति। (५. १६४)।"

उलूत, एक जनपद का नाम है (६. ९, ५४)।

उलूपी, नागराज कौरव्य की पुत्री और अर्जुन की पत्नी का नाम है। वनवास के अवसर पर मार्ग में ही अर्जुन और उलूपी का संगम हो गया था (१. २, १२२)। उलूपी अर्जुन पर आसक्त होकर उन्हें कौरव्य के प्रासाद में ले गई (१. २१४, १३. १६. १८. २४)। 'असूयमाणा भर्त्तारौ-वींमुलूपी समुपागमत्', (१४. ७९, ८)। 'उलूपीं प्राह वचनम्', (१४. ७९, १०)। 'उलूपी मां निबोध त्वं मातरं पन्नगात्मजम्', (१४. ७९, ११)। 'उलूपीं पन्नगसुतां दृष्ट्वेदं वाक्यमब्रवीत्', (१४. ८०, २)। 'उलूपी पश्य भर्त्तारं शयानं निहितं रणे', (१४. ८०, ३)। 'देवीमुलूपीं पन्नगात्मजाम्', (१४. ८०, ८)। 'उलूपि साधु पश्येमं पतिं निपतितं भुवि', (१४. ८०, १२)। 'पश्य नागोत्तमसुते', (१४. ८०, ३१)। 'उलूपी चिन्तयामास तदा सञ्जीवनं मणिम्', (१४. ८०, ४२) 'उलूप्या सह तिष्ठन्तीम्', (१४. ८०, ५७)। 'नागेन्द्रदुहिता चैवमुलूपी', (१४. ८०, ५९)। उलूपी ने अर्जुन को पुनरुज्जीवित कर दिया (१४. ८०, ६१)। 'उलूपी नागकन्या', (१५. १, २३; १०, ४६)। उलूपी गंगा में प्रविष्ट हो गई (१७. १, २७)। अनुमानतः यह इरावत् की माता थीं (६. ९०)। तु० की० **भुजगात्मजा, भुजगेन्द्रकन्या, भुजगोत्तमा, कौरवी, कौरव्यदुहितृ, कौरव्यकुलनन्दिनी, पन्नगनन्दिनी, पन्नगसुता, पन्नगात्मजा, पन्नगेश्वरकन्या, पन्नगी, उरगात्मजा** : तु० की० **कौरव्य** भी (देखिये बहु०, नाग)।

उल्मुक, एक वृष्णिवंशी राजकुमार का नाम है जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुआ था (२. ३४, १६)। प्रभासक्षेत्र में पाण्डवों से मिलने के लिये आये हुए वृष्णिवंशियों में यह भी थे (३. १२०, १९)। धृतराष्ट्र को युद्ध में उल्मुक आदि वृष्णिवंशी वीरों के आने की सम्भावना से भय हुआ (७. ११, २८) 'सारणेन च वीरेण निशठेनोल्मुकेन च', (१४. ६६, ४)।

उल्मुच्, देखिये **उन्मुच्**।

उशङ्गव, यम की सभा में बैठनेवाले एक राजा का नाम है (२.८,२६)।

उशनस्, देखिये **१. शुक्र**।

१. उशीनर, एक प्राचीन राजा का नाम है जिनका संजय ने वर्णन किया है (१. १, २३३)। 'उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबि,' (१. ९३, १८)। 'उशीनरस्य राजर्षेः', (१. ९९, २२)। यम की सभा में इनकी उपस्थिति (२. ८, १४)। 'उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादित्यरिच्यत',

(३. १३०, २१)। बाजरूपी इन्द्र और कबूतर रूपी अग्नि ने उशीनर की परीक्षा ली; **तु० की० शिवि** द्वारा कथित प्रमुख कहानियाँ (३. १३१, २३. २७. ३२)। इन्होंने भोजनगर में निवास करते हुए ययातिकन्या माधवी के गर्भ से शिवि नामक पुत्र उत्पन्न किया (५.११८,९.१६.१७)। इन्होंने शुनक से खड्ग प्राप्त किया तथा इनसे भोज ने उस खड्ग को प्राप्त किया (१२.१६६,७९)। इन्हें गोदान से स्वर्ग की प्राप्ति हुई (१३.७६,२५)। तु० की० २. **उशीनर।**

२. उशीनर = वृषदर्भ (१३.३२,२२)।

३. उशीनर, एक वृष्णिवंशी राजकुमार का नाम है, जो द्रौपदी के स्वयम्बर में उपस्थित हुआ था (१.१८६, २०)।

४. उशीनर, एक जाति के लोगों का नाम है, जिनका अर्जुन ने वध किया था (८.५,४८)। ये लोग सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों में कुशल एवं बलशाली होते हैं (१२.१०१,४)। उशीनर देश के क्षत्रिय ब्राह्मणों की कृपादृष्टि से वञ्चित होने के कारण शूद्र हो गये (१३.३३,२२)।

उशीनर सुत = ८. शैब्य (= शिवि) : ७.१०,६६।

उशीरबीज, युधिष्ठिर इत्यादि के द्वारा लाँघे गये उत्तर दिशा में स्थित एक पर्वत का नाम है (३.१३९,१)। उशीरबीज में सुवर्णमय सरोवर स्थित हैं जहाँ मरुत्त ने यज्ञ किया था (५.१११,२३)।

उषा, बाणासुर की पुत्री का नाम है। इसके साथ गुप्त रूप से अनिरुद्ध का विहार, बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध का निग्रह तथा श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर को जीत कर अनिरुद्ध एवं उषा का द्वारका आनयन (गीता सं० २.३८,२९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ पृ० ८२१ से ८२४ तक)।

१. उषङ्गु, पश्चिम दिशा में निवास करने वाले एक ऋषि का नाम है (१२.२०८,३०;१३.१६५,४१)।

२. उषङ्गु = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

३. उषङ्गु, देखिये **ऋषङ्गु।**

उष्ट्रकर्णिक, एक भारतीय जनपद का नाम है जिसे सहदेव ने दूतों द्वारा ही वश में कर लिया था (२.३१,७१)।

उष्ट्रजिह्व, स्कन्द के एक योद्धा का नाम है (९.४५,६२)।

उष्ण, क्रौञ्चपर्वत के निकट स्थित एक देश का नाम है (६.१२,२१)।

उष्णप, देखिये **उष्मप।**

उष्णरश्मि = सूर्य (३.३०३,१)।

उष्णीगङ्ग, एक तीर्थ का नाम है (३.१३५,७)।

उष्णीनाभ एक विश्वेदेव का नाम है (१३.९१,३४)।

उष्णीषिन् = शिव (१३.१७,४४;१४.८,१६)।

उष्मन्, एक अग्नि का नाम है (३. २२१, ४) तु० की० : 'ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम्', (३. २१३, ११; १२. १८५, १२ भी)।

उष्मपाः, पितरों और ऋषियों के एक वर्ग का नाम है (२.८,२१)। 'उष्मपानां देवानां निवासः', (५. १०९, २)। 'मरुतश्चोष्मपाश्च', (६.३५, २२)। 'उष्मपाः सोमपाश्चैव', (१२. २८४, ८; १३. १८, ७४; १४१, १०५)।

ऊ

ऊर्जयोनि, विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक का नाम है (१३. ४,५९)।

ऊर्जस्कर, अग्नि के लिए प्रयुक्त हुआ है (३. २२१, ६)।

ऊर्जस्पति = महापुरुष (महापुरुषस्तव)।

ऊर्जित, ऊर्जितशासन = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्णनाभ, धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम है (१. ६७, ९६; ११७, ५)।

ऊर्णायुस्, एक देव गन्धर्व का नाम है, जो अर्जुन के जन्मोत्सव के समय उपस्थित हुआ था (१. १२३, ५५)। इसका मेनका के प्रति अनुराग (५. ११७, १६)।

ऊर्ध्वं खम् इव मेनिरे = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वकेश = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वग = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वगात्मन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

उर्ध्वदंष्ट्रकेश = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वबाहु, एक ऋषि का नाम है, जो धर्मराज के सात ऋत्विजों में से पाँचवे थे (१३. १५०, ३४)। दक्षिण दिशा में निवास करने वाले ऋषियों में से एक यह भी थे (१३. १६५, ४०)।

ऊर्ध्वभाज, एक अग्नि का नाम है, जो बृहस्पति के पाँचवे पुत्र थे (३. २१९, २०) = वडवाग्नि ?

१. ऊर्ध्वरेतस् = युधिष्ठिर का सम्मान करने वाले एक ऋषि का नाम है (३. २६, २४)।

२. ऊर्ध्वरेतस् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वलिङ्ग = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्ववर्त्मन् = कृष्ण (१२. ४३, ११ 'कृष्णवर्त्मन्' पाठ है)।

ऊर्ध्ववेणीधरा, स्कन्द की अनुचरी मातृका का नाम है (९. ४६, १८)।

ऊर्ध्वशायिन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्ध्वसंहनन = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऊर्मिला, यम की पत्नी का नाम है : 'धूमोर्णया यमः', (५. ११७, ९)।

ऊर्व, एक तेजस्वी भृगुवंशी ऋषि का नाम है, जिन्होंने त्रिलोकी के विनाश के लिए एक भयंकर अग्नि की सृष्टि की और उसे समुद्र में डाल कर बुझा दिया। ये च्यवन के पुत्र और ऋचीक के पिता थे (१३. ५६, ४) तु० की० **और्व।**

ऊष्मप, एक गण का नाम है, जो यमसभा में यमराज की उपासना करता है (२. ८, ३०)।

ऊष्मा, पाञ्चजन्य नामक अग्नि के पुत्र का नाम है (३. २२१, ४)।

ऋ

ऋक्षसहस्रमितेक्षण = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. ऋक्ष, धूमिनी के गर्भ से उत्पन्न अजमीढ के एक पुत्र का नाम है। ये संवरण के पिता थे (१. ९४, ३२. ३४)।

२. ऋक्ष, अरिह द्वारा आङ्गेयी सुदेवा के गर्भ से उत्पन्न एक राजा का नाम है (१. ९५, २४)। इनकी पत्नी का नाम ज्वाला तथा पुत्र का नाम मतिनार था (१. ९५, २५)।

३. ऋक्ष (बहु०), मृगमन्दा की सन्तान (रीछों) के लिये प्रयुक्त हुआ है (१. ६६.६२)।

४. ऋक्ष (बहु०) नक्षत्र-मण्डल के लिये प्रयुक्त हुआ है (१३. १४, ३७ ; १४. ४४, २)।

ऋक्षदेव, शिखण्डी के पुत्र का नाम है। इनके घोड़े सफेद और लाल रंग के सम्मिश्रण से पद्म के समान वर्ण वाले थे (७. २३, २४. २५)।

ऋक्षपुत्र, = संवरण (१. १७१, १२)।

ऋक्षवत्, दक्षिण दिशा में स्थित एक पर्वत का नाम है (३.६१,२१)। भारतवर्ष के सात कुलपर्वतों में इसकी गणना (६. ९, ११)। 'अस्ति पौरवदायादो विदूरथसुतः प्रभो। ऋक्षैः संवर्धितो विप्र ऋक्षवत्यथ पर्वते ॥', (१२. ४९, ७६)। 'पुरश्च पश्चाच्चा यथा महानदी तमृक्षवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा', (१२. ५२, ३२)।

१. ऋक्षा, सोमवंशीय महाराज आजमीढ की चतुर्थ पत्नी का नाम है (१. ९५, ३७)।

२. ऋचा, स्कन्द की अनुचरी एक मातृका का नाम है (९. ४६, १२)।

ऋग्यजुःसामधामन्=कृष्ण (१२. ४७, १२)।

ऋग्वेद : ये ब्रह्मा की सभा में उपस्थित होते थे (२. ११, ३२)। इनकी नारायण से उत्पत्ति हुई है (३. १८९, १४)। शिव के रथ के पीछे चलने वालों में एक यह भी थे (८. ३४, ४४)। ऋग्वेद में कृष्ण के नामों की गणना कराई गई है (१२. ३४१, ८)। इनको कृष्ण के साथ समीकृत किया गया है (१२. ३४२, ९७)। 'ऋग्वेदपाठपठितं व्रतमेतद्धि दुश्चरम्', (१२. ३४८, २२)। 'ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः', (१३. ३०, ५९)। 'ऋग्वेदश्चागमत्तत्र पदक्रमविभूषितः', (१३. ८५, ९०)।

ऋच् (बहु०), (ऋग्वेद के श्लोक) : 'ऋचो यजूंषि सामानि', (१. १, ६६ ; २९, ३५)। 'ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः', (१. ७०, ३७)। ३. २६, ३। 'ऋग्यजुःसामसंभवै', (३. ४३, १८)। ३. ८२, ९६। 'न सामऋग्यजुर्वर्णाः क्रिया नासीच्च मानवी', (३. १४९, १४)। 'अनृचः', (३. १४९, २८)। 'ऋगेका वृणुते यज्ञम्', (३. ३१३, ५४)। ५. ४३, ३. ४)। 'अनृचः', (५. ४३, ४२)। ५. ४४, २८। 'ऋक् साम यजुरेव च', (६. ३३, १७)। ९. ३६, ३४ ; ११. २६, ४०। 'ऋग्यजुःसामसहितैर्ऋचोभिः', (१२. ५२, २२)। 'ऋग्यजुःसामविद्', (१२. ६०, ४३)। 'अनृग्यजुरसामा च', (१२. ६०, ४४)। १२. ६०, ४७। 'ऋग्यजुःसामसंपन्नाः', (१२. ७६, ३)। 'ऋक्सामसंधान्', (१२. २०१, ८)। १२. २०६, १६. १८। 'अनृचः', (१२. २२८, ६६)। १२. २३२, ३३। 'ऋक्सामवर्णाक्षरतः', (१२. २३५, १)। 'अनृचो द्विजः', (१२.२३६,६)। 'ऋक्सामसु', (१२. २३८, ८)। 'ऋक्सहस्राणि', (१२. २४६, १४)। १२. २५१, २ ; २६८, २६. ३७ ; २९२, १३. १७। 'ऋग्यजुःसामगः', (१२. ३०९, १५)। 'यजुर्ऋक्सामभिः', (१२. ३३५, ४०)। चतुर्वेदोद्गताभिस्तमृग्भिः', (१२. ३४०, १११)। 'ऋग्भिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्मणि बह्वृचाः', (१३. १६, ४७)। १३. ९३, २५। 'वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः', १३. १३९, ४६; १४१, २४)। १४. २५, १६; १६. ४, २८। तु० की० **ऋग्वेद**।

१. ऋचीक, विवस्वान् के स्वरूपभूत द्वादश सूर्यों में से एक का नाम है (१. १, ४२)।

२. ऋचीक, एक ऋषि का नाम है जो भृगु के वंशज तथा जमदग्नि और शुनःशेफ के पिता थे (१. २, ६)। इन्हें और्व का पुत्र और जमदग्नि का पिता कहा गया है (१. ६६, ४७)। इन्होंने वरुण से प्राप्त करके एक सहस्र अश्वों का दहेज देकर सत्यवती के साथ विवाह किया था (३. ११५, २१. २५. ३०)। रामजामदग्न्य के पितरों के रूप में इनका उल्लेख (३. ११७, १०)। सत्यवती के साथ इनके रमण का उल्लेख (५. ११७, १४)। इन्होंने सत्यवती के लिये एक सहस्र अश्वों को दहेज में दिया (५. ११९, ४. ६)। ऋचीक सहित रामजामदग्न्य के पितरों ने परशुराम को भीष्म के साथ युद्ध करने से विरत करने का प्रयास किया (५. १८५, २३)। "गाधि ने अपनी कन्या सत्यवती का भृगुपुत्र ऋचीक के साथ विवाह कर दिया। भृगुवंशी ऋचीक ने अपनी पत्नी सत्यवती को एक चरु खाने को दिया, और तपस्या में तत्पर हो गये। इसी समय तीर्थयात्रा करते हुए राजा गाधि अपनी पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम पर आये। सत्यवती ने भूल से अपना चरु अपनी माता को दे दिया और माता का चरु स्वयं खा लिया, परिणामस्वरूप सत्यवती ने एक ऐसा गर्भ धारण किया जो क्षत्रियों का विनाश करने वाला था। उस गर्भगत बालक को देखकर भृगुश्रेष्ठ ऋचीक ने सत्यवती को बताया कि उसका पुत्र अत्यन्त क्रोधी और क्रूरकर्मा होगा। उन्होंने यह भी बताया कि उनका संकल्प इस प्रकार का पुत्र उत्पन्न करने का नहीं था। सत्यवती ने ऋचीक से कहा कि उसका पौत्र तो भले ही उग्र स्वभाव का हो जाय परन्तु पुत्र शान्त स्वभाव का ही मिलना चाहिये। ऋचीक ने उसे यह वरदान दिया जिससे सत्यवती से जमदग्नि ने जन्म लिया और जमदग्नि से क्षत्रिय-हन्ता परशुराम उत्पन्न हुए (१२. ४९, ७. ९. १२. १३. १७. २३. २५. २८. ३१)।" इन्हें जमदग्नि का पिता कहा गया गया है (१२. २०८, ३३)। राजा द्युतिमत् ने ऋचीक को अपना साम्राज्य देकर स्वर्गलोक प्राप्त किया (१२. २३, ३३)। इनके आत्मज के रूप में शुनःशेफ का उल्लेख (१३. ३, ६)। इन्होंने वरुण से प्राप्त एक सहस्र अश्वों को दहेज में देकर सत्यवती से विवाह किया ; जमदग्नि और विश्वामित्र की उत्पत्ति (१३. ४, ८. ९. ११. १६. १८. २४. २९. ६१)। च्यवन ने भविष्यवाणी की कि ऊर्व से उत्पन्न होकर ऋचीक गाधि की पुत्री सत्यवती से विवाह करेंगे (१३. ५६, ७)। द्युतिमत् ऋचीक को अपना साम्राज्य देकर सर्वोत्तम लोकों को चले गये (१३. १३७, २३; १५०, ७९)। ऋचीक आदि पितरों ने रामजामदग्न्य को क्षत्रियों का संहार करने से विरत करने का प्रयास किया (१४. २९, २०)। तु० की० **भार्गव, भार्गवर्षभ, भृगुशार्दूल, भृगुनन्दन, भृगुपुत्र, भृगुसत्तम, भृगुसुत, ब्रह्मर्षि, विप्रर्षि।**

३. ऋचीक, भूमन्यु के छठवें पुत्र का नाम है। इनकी माता का नाम पुष्करिणी था (१. ९४, २४)।

ऋचीकनन्दन=रामजामदग्न्य (३. ९९, ४२)।

ऋचीकपुत्र=जमदग्नि (३. ११८, १० (?) ; १२९, ७ (?) ; १३. १६५, ४५)।

१. ऋचीकतनय=शुनःशेफ (१२. २९२, १३)। तु० की० १३. ३, ६।

२. ऋचीकतनय=जमदग्नि (१३. १५०, ३९)।

ऋचेयु, रौद्राश्व के दस पुत्रों में से प्रथम पुत्र, एक राजा, का नाम है (१. ९४, १०)। = अनाधृष्टि, ये मतिनार के पिता थे तथा ये ही भूमण्डल के सम्राट् हुये (१. ९४, १२)। (१. ९४, ८ में ये अन्वग्भानु के साथ एकात्मक प्रतीत होते हैं)।

ऋणमय=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऋत, एकादश रूद्रों में से एक का नाम है (१३. १५०, १२)।

ऋतम्=कृष्ण (१२. ४७, ३५)।

१ ऋतधामन्=महापुरुष (१२. ३३८ में १९ वाँ नाम)।

२. ऋतधामन्=कृष्ण (नारायण) : १२. ३४२, ६९।

ऋतवः पद्=स्कन्द (३. २३२, १२)।

ऋतस्य कर्तृ=स्कन्द (३. २३२, १७)।

ऋता=सरस्वती (?) : 'ऋता भजासुता सा मे सत्या देवी सरस्वती' (१२. ३४२, ७५)।

१. ऋतु=शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. ऋतु=विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

३. ऋतु (बहु०) : 'ऋतवः', (९. ४५, १२. १५)।

४. ऋतु (बहु०) = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

ऋतुपर्ण, अयोध्या के एक राजा का नाम है (३. ६०, २५)। ये नल को द्यूतक्रीडा की शिक्षा देंगे (३. ६६, २०)। इन्होंने बाहुक बने हुए नल की अपने यहाँ अश्वाध्यक्ष के पद पर नियुक्ति की (३. ६७, १. ४. ५. ८)। ये दमयन्ती के द्वितीय स्वयंवर में आमन्त्रित किये गये थे (३. ७०, ३-५. २३. २७)। इनका अपने सारथि नल के साथ दमयन्ती के द्वितीय स्वयंवर में विदर्भदेश को प्रस्थान (३. ७१, १. ८. १२. १८. ३५)। नल को अक्षविद्या की शिक्षा देते हैं (३. ७२, १८. २८. २९)। इनका कुण्डिनपुर में प्रवेश तथा भीम के द्वारा इनका स्वागत (३. ७३, १. १७. १९. २०. २२. ३५ ; ७४, ११ ; ७५, १०)। 'कोसलायामृतुपर्णनिवेशने', (३. ७६, २८)। बाहुक वेशधारी नल का दमयन्ती से मिलन सुनकर ऋतुपर्ण अत्यन्त प्रसन्न हुये (३. ७७, ८)। इन्होंने नल से अश्वविद्या की शिक्षा प्राप्त की (३. ७७, १८)। ऋतुपर्ण के अयोध्या चले जाने पर राजा नल ने कुछ समय तक कुण्डिनपुर में निवास किया (३. ७७, २०)।

ऋतुस्थला, स्वर्ग की प्रधान ग्यारह अप्सराओं में से एक का नाम है। इसने अर्जुन के जन्मोत्सव पर नृत्य किया था (१. १२३, ६५)।

ऋतेयु, एक ऋषि, वरुण के सात ऋत्विजों में से एक का नाम है (१३. १५०, ३६)।

ऋत्वन्, अर्जुन के जन्मोत्सव पर पधारने वाले एक देवगन्धर्व का नाम है (१. १२३, ५७)।

ऋद्ध = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

ऋद्धि, कुबेर की पत्नी का नाम है : 'यथा चद्धर्या धनेश्वरः', (५. ११७, ९)। 'ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च', (१३. १४६, ४)। 'सह ऋद्धया धनेश्वरः', (१३. १६५, ११)।

ऋद्धिमान्, गरुड़ द्वारा मारे गये एक महानाग का नाम है (३. १६०, १५)।

ऋभु से ऋभु नामक देवताओं के गण से तात्पर्य है; ये देवताओं द्वारा भी आराधित होते हैं (३. २६१, १९)। 'ऋभवो मरुतश्चैव देवानां चोदितो गणः', (१२. २०८, २२)।

ऋश्यशृङ्ग, देखिये **ऋष्यशृङ्ग**.

ऋषद्गु, एक राजा, वृजिनीवत के पुत्र तथा चित्ररथ के पिता, का नाम है (१३. १४७, २९)। पूना संस्करण में 'उषङ्गु' पाठ है।

१. ऋषभ, धृतराष्ट्र के कुल में उत्पन्न एक नाग का नाम है (१. ५७, १७)।

२. ऋषभ, एक प्राचीन तपस्वी ऋषि का नाम है। ब्रह्मा की सभा में इनकी उपस्थिति का उल्लेख (२. ११, २४)। ये ऋषभकूट पर निवास करते थे (३. ११०, ८)। 'इतिहासं सुमित्रस्य निर्वृत्तमृषभस्य च', (१२. १२५, ८)। 'ऋषभो नाम विप्रर्षिः', (१२. १२७, १)। 'ऋषभ उवाच', (१२. १२८, ३)। ऋषभ और सुमित्रा के बीच संवाद (१२. १२८, २५)।

३. ऋषभ, एक वृषभरूपधारी राक्षस का नाम है। बृहद्रथ ने गिरिव्रज में इसका वध किया तथा इसकी खाल से तीन नगाड़े बनाये गये (२.२१,१६)।

४. ऋषभ, एक तीर्थ का नाम है (३. ८५, १०)।

५. ऋषभ, दक्षिण समुद्र-तटवर्ती एक पर्वत का नाम है (३. ८५, २१)। 'तत्रैव ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके', (५. ११२, २२)। यहाँ शाण्डिली निवास करता था (५. ११३, १)।

६. ऋषभ, एक प्राचीन राजा का नाम है। इन्हें भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है (६. ९, ७)। शासनकर्त्ता प्राचीन असुर राजाओं में इनका भी उल्लेख है (१२. २२७, ५१)।

७. ऋषभ, एक राजकुमार का नाम है जो द्रोणनिर्मित गरुडव्यूह के हृदय-स्थान में खड़ा किया गया था (७. २०, १२)।

८. ऋषभ = शिव (७. २०१, ६३)।

९. ऋषभ एक द्वीप का नाम है (९. ३८, २६)। तु० की० **ऋषभद्वीप**।

ऋषभकूट = हेमकूट (३. ११०, ८)।

ऋषभकेतु = शिव (१२. १६६, ४५)।

ऋषभद्वीप, एक स्थान का नाम है : 'ऋषभद्वीपमासाद्य मेध्यं क्रौञ्च-निषूदनम्', (३. ८४, १६०)।

ऋषयःसप्त, देखिये बहुवचन में **सप्तर्षि**।

१. ऋषिक, एक राजर्षि का नाम है जो दानवों के सरदार, 'अर्क', के अंश से उत्पन्न हुये थे (१. ६७, ३२. ३३)।

२. ऋषिक, एक उत्तरीय जनपद का नाम है। अर्जुन ने इसे अपनी दिग्विजय के समय विजित किया था (२. २७, २५-२७)। 'कम्बोजा ऋषिका', (५. ४, १८)। 'ऋषिका विदर्भाः', (६. ९, ६४)। इसे कर्ण ने मुख्यतया दुर्योधन को कर देने की दृष्टि से विजित किया था (८.८,२०)।

ऋषिकुल्या (बहु०), एक नदी एवं प्राचीन तीर्थ का नाम है (२. २८, ४ ; ३. ८४, ४८. ४९ ; ६. ९, ४७ ; १३. १६५, २६)।

ऋषिगिरि, मगध की राजधानी गिरिव्रज के समीपवर्ती एक पर्वत का नाम है (२. २१, २)।

ऋषिलोक—पाणिखात में स्नान करने से व्यक्ति को ऋषिलोक की प्राप्ति होती है (३. ८३, ९०)। ऋषिकुल्या में स्नान करने वाला व्यक्ति भी ऋषिलोक को प्राप्त करता है (३. ८४, ४९)। 'ऋषिलोकं च सोऽगच्छत् भगीरथ इति श्रुतम्', (१३. १०३, ५)।

ऋष्यमूक, एक पर्वत का नाम है। इसके शिखर पर मार्कण्डेय ने श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन किया थी (३. २५, ९)। राज्य से वाली द्वारा निष्कासित सुग्रीव से राम का मिलन इसी पर्वत पर हुआ (३. १४७, ३०)। इसी के समीप पम्पासरोवर स्थित है (३. २७९, ४४)। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के साथ राम की मैत्री हुई (३. २८०, ९)।

ऋष्यशृङ्ग, एक मुनि का नाम है जो विभाण्डक के पुत्र थे। 'ऋष्यशृङ्गस्य चरित्रम्', (१. २, १६८)। ब्रह्मा की सभा में इनकी उपस्थिति (२. ११, २३)। "कश्यप गोत्रीय महात्मा विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने अपनी तपस्या के प्रभाव से इन्द्र द्वारा वर्षा कराई थी। तेजस्वी ऋष्यशृङ्ग मृगी के पेट से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने राजा लोमपाद के राज्य में वर्षा कराकर राजा को प्रसन्न किया, जिससे प्रसन्न होकर राजा ने अपने पुत्री शान्ता का इनके साथ विवाह कर दिया (३. ११०, २३-२६)।" "युधिष्ठिर द्वारा ऋष्यशृङ्ग के जन्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर लोमश ने कहा : कश्यप गोत्रीय विभाण्डक मुनि ने एक बड़े कुण्ड में प्रविष्ट होकर घोर तपस्या आरम्भ की। एक दिन जब वे जल में स्नान कर रहे थे तब उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया। उसी समय प्यास से व्याकुल एक मृगी ने जल सहित उस वीर्य का पान कर लिया और गर्भवती हो गई। वह मृगी पूर्व जन्म में एक देवकन्या थी। ब्रह्मा ने उसे यह वचन दिया था कि वह मृगी होकर एक मुनि को जन्म देने के पश्चात् उस योनि से मुक्त हो जायगी। इसीलिये विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग का जन्म मृगी के पेट से हुआ। ऋष्यशृङ्ग के सर पर एक सींग थी इसलिये उनका यह नाम पड़ा। ऋष्यशृङ्ग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सदैव वन में ही निवास करते थे और उन्होंने अपने पिता के अतिरिक्त अन्य किसी भी मनुष्य को पहले कभी नहीं देखा था। इन्हीं दिनों अङ्गराज लोमपाद का एक ब्राह्मण के साथ मिथ्या व्यवहार करने के कारण समस्त ब्राह्मणों ने त्याग कर दिया था और इसीलिये इन्द्र ने उनके राज्य में वर्षा भी बन्द कर दी थी। एक श्रेष्ठ ब्राह्मण के परामर्श से इन्होंने अपने पापों का प्रायश्चित करके ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। तदनन्तर राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे ऋष्यशृङ्ग को अपने राज्य में बुलाने के सम्बन्ध में परामर्श किया। मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार राजा लोमपाद ने एक वेश्या तथा अनेक सुन्दर स्त्रियों आदि को वन में ऋष्यशृङ्ग के पास भेजा (३. ११०, २७-५८)।" "उस वेश्या ने नाव पर एक सुन्दर आश्रम बनाया जिसके चारों ओर सुन्दर फल-पुष्पों के वृक्ष थे। उसने उस नाव पर स्थित आश्रम को विभाण्डक मुनि के आश्रम से थोड़ी दूर पर बाँध दिया। जब उसे यह पता लग गया कि विभाण्डक मुनि आश्रम पर नहीं हैं तब उसने अपनी वेश्या-पुत्री को मुनि के आश्रम पर भेजा। मुनि के आश्रम पर जाकर उसने ऋष्यशृङ्ग से कुशल समाचार पूछा और ऋष्यशृङ्ग ने उसे सत्कार-पूर्वक आसन पर बैठाया, और फल इत्यादि खाने के लिये दिया। वेश्या ने बताया कि वह अपने धर्म के अनुसार मुनि के अर्घ्य और पाद्य का स्पर्श नहीं करेगी। फिर भी, उसने बताया कि वह उनका आलिङ्गन करेगी। तदनन्तर उस वेश्या ने ऋष्यशृङ्ग को अत्यन्त सुन्दर और अमूल्य भक्ष्य-पदार्थ, सुगन्धित मालायें, सुन्दर वस्त्र और अच्छी श्रेणी के पेय आदि प्रदान किये। साथ ही मुनि के साथ क्रीडा तथा आलिङ्गन आदि के द्वारा उसने ऋष्यशृङ्ग के हृदय में काम का संचार कर दिया और तदुपरान्त अग्निहोत्र का बहाना बना कर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई। उसके चले जाने पर ऋष्यशृङ्ग अत्यन्त व्यथित हो उठे। थोड़ी देर के पश्चात् विभाण्डक मुनि ने आकर ऋष्यशृङ्ग की खिन्न दशा को देखा और उनसे पूछा कि आश्रम में कौन आया था (३. १११)।" ऋष्यशृङ्ग ने बताया कि आश्रम में एक जटाधारी ब्रह्मचारी आया था जिसका शरीर सुवर्ण के समान और नेत्र कमल के सदृश थे। उसकी सारी जटायें एक सुनहली रस्सी में गुथीं हुई थीं। उसके शरीर पर सुन्दर आभूषण थे। ऋष्यशृङ्ग ने वेश्या का पूर्ण वर्णन

करते हुए विभाण्डक से उसी के पास जाने की अनुमति माँगी (३.११२)।" "विभाण्डक ने अपने पुत्र की बात सुनकर उससे बताया कि वह आगन्तुक एक राक्षस था। तदनन्तर विभाण्डक स्वयं उस आगन्तुक की तीन दिनों तक स्वयं खोज करते रहे किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद जब विभाण्डक मुनि विधि के अनुसार पुनः फल लाने के लिये आश्रम से बाहर गये तब वेश्या ऋष्यशृङ्ग को लुभाने के लिये उनके आश्रम पर आई। उसे देखते ही ऋष्यशृङ्ग ने कहा: 'मेरे पिता जी जब तक लौटकर नहीं आते तब तक हम दोनों आपके आश्रम पर चलें।' इस प्रकार उस वेश्या ने ऋष्यशृङ्ग को नाव पर लाकर नाव को खोल दिया और उन्हें महाराज लोमपाद के पास ले आई। लोमपाद ने एक नाव्याश्रम का निर्माण करके ऋष्यशृङ्ग को उसी में रखा। इस प्रकार, राजा लोमपाद ने विभाण्डक-पुत्र ऋष्यशृङ्ग को अन्तःपुर में ठहरा दिया। सहसा उसी क्षण इन्द्र देव ने वर्षा आरम्भ कर दी। प्रसन्न होकर लोमपाद ने अपनी पुत्री शान्ता का ऋष्यशृङ्ग के साथ विवाह कर दिया। जब विभाण्डक मुनि ने आश्रम पर लौटकर अपने पुत्र को नहीं देखा तो उन्होंने राजा लोमपाद पर सन्देह करके राजा तथा उसके नगरवासियों को भस्म कर देने के उद्देश्य से चम्पा नगरी की ओर प्रस्थान किया। उनके क्रोध को शान्त करने के लिये राजा ने मार्ग में स्थान-स्थान पर बहुत से गाय-बैल रखवा दिये और किसानों द्वारा खेतों की जुताई आरम्भ करा दी। विभाण्डक मुनि के आगमन-पथ में राजा ने अनेक पशु तथा वीर पशुरक्षक भी नियुक्त कर दिये और उन्हें आदेश दिया कि जब महर्षि विभाण्डक उनसे पूछें तब वे सब हाथ जोड़ कर महर्षि को यह उत्तर दें: 'ये सब आपके पुत्र के ही पशु हैं; खेत भी उन्हीं के जोते जा रहे हैं; और हम सब लोग भी आपके आज्ञापालक दास हैं।' इस प्रकार विभाण्डक मुनि को प्रसन्न किया गया। राजधानी में आकर विभाण्डक ने अपने पुत्र को देवराज इन्द्र के समान ऐश्वर्य-सम्पन्न देखा। उन्होंने अपने पुत्र को आज्ञा दी कि वह एक पुत्र उत्पन्न करके पुनः आश्रम में आ जाय। ऋष्यशृङ्ग ने पिता की आज्ञाका पालन किया और ज्यों ही उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ वे पिता के आश्रम में लौट आये। शान्ता भी उनके साथ आश्रम पर आई और उसी प्रकार अपने पति की सेवा करती रही जिस प्रकार नारायणी इन्द्रसेना महर्षि मुद्गल की सेवा करती थी। (३. ११३)।" ऋष्यशृङ्ग के नाम के लिये देखिये: ३. ११०, २३. २७. ३१. ३३. ३८. ३९. ४७. ५१. ५३. ५७; १११, ८. ९. १३. १४. १६-१९; ११२, १; ११३, ६. ७. ११. २२. २४। 'लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्वा सुतां प्रभुः। ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वकामैरयुज्यत॥', (१२. २३४, ३४)। 'ऋष्यशृङ्गश्च काश्यपः', (१२. २९६, १४)। १३. १३७, २५ (= कुछ अन्तर के साथ १२. २३४, ३४)।

ए

एक = हिरण्यगर्भ (१२. ३०२, १९)।

एकचक्र, कश्यप और दनु के पुत्र एक असुर का नाम है (१. ६५ २५)। ये पृथिवी पर प्रतिविन्ध्य नाम से विख्यात राजा हुए (१. ६७. २१)।

एकचक्रा, एक प्राचीन नगरी का नाम है (१. २, १०७; ६१, २६. २७; ९५, ७२. ७३; १६५, ११)। एकचक्रा नगरी में कुन्ती देवी ने अपने पाँचों पुत्रों के साथ कुछ समय तक एक ब्राह्मण के यहाँ निवास तथा भीम ने बकासुर का वध किया (१. १५७, १. २; १६४, १२)। 'आगतानेकचक्रायाः सोदर्यानेकचारिणः', (१. १८४, ४)। 'एकचक्रायामभिमुखाः संवृता ब्राह्मणव्रजैः', (३. १२, १११)। 'ततोऽगच्छन्नेकचक्रां पाण्डवाः संशितव्रताः', (३. १२, ११२)। 'मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने', (५. १२८, १४)।

एकचन्द्रा, स्कन्द की अनुचरी, एक मातृका का नाम है (९. ४६, ३०)।

एकचूडा, स्कन्द की अनुचरी, एक मातृका का नाम है (९. ४६, ५)।

एकजट, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ५८)।

एकत, एक ऋषि का नाम है जो द्वित और त्रित के भ्राता थे—९. ३६, ८. १४. २०. २१. २८; १२. २०८, ३१; ३३६, ६. २०. ६०; ३३९, १२. ८६; ३४१, ४६। बाण-शय्या पर पड़े हुए भीष्म को देखने के लिए उपस्थित हुये ऋषियों में से एक यह भी थे (१३. २६, ७)। देखिये १३. १५०, ३६; १६५, ४२ भी।

एकत्वचा, स्कन्द की अनुचरी, एक मातृका का नाम है (९. ४६, २४)।

१. एकपद् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

२. एकपद् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

एकपर्वतक (?), एक पर्वत का नाम है: 'एक पर्वतके नद्यः क्रमेणैति', (२. २०, २७)।

एकपाद (बहु०), एक जनपद का नाम है (२. ५१, १८)।

एकलव्य, एक निषाद राजकुमार का नाम है जो क्रोधवशगणों से उत्पन्न अवतारों में से एक था (१. ६७, ६३)। "उन सहस्रों राजकुमारों में से निषादराज हिरण्यधनुस् का पुत्र एकलव्य भी एक था जो धनुर्वेद की शिक्षा के लिये द्रोणाचार्य के पास आये थे। एक नैषादि होने के कारण जब द्रोणाचार्य ने इसे शिष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया तब इसने वन में जाकर द्रोण की एक मिट्टी की प्रतिमा के सम्मुख शस्त्र चलाने की कला का अभ्यास आरम्भ किया और उसमें अत्यन्त प्रवीण हो गया। एक दिन राजकुमारों का कुत्ता भौंकता हुआ इसके समीप आया तो इसने उसके मुख में सात बाण मार दिये। इस प्रकार मुख में सात बाणों से विद्ध वह कुत्ता जब पाण्डवों के पास लौटा तो उन लोगों ने उसे मारने वाले धनुर्धर के लक्ष्य-वेध की शुद्धता की अत्यन्त प्रशंसा की। यह धनुर्विद्या में अर्जुन से आगे न बढ़ जाय इसलिये द्रोणाचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप में इससे इसके दाहिने हाथ का अगूँठा माँग लिया (१. १३२, ३१, ४५. ४७. ५१. ५२. ५४. ५५. ५७)। देखिये २. ३७, १४ भी। उन राजाओं में से एक जो राजसूय के समय युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हुये थे (२. ५३, ८)। उन राजाओं में से एक जिनके पास पाण्डवों को निमन्त्रण भेजना था (५. ४, १७)। भगवान कृष्ण उस निषादराज एकलव्य को, जो दूसरों के लिये अजेय था, सदैव युद्ध के लिये ललकारा करते थे। वही एकलव्य श्रीकृष्ण के हाथ मारा जाकर प्राणशून्य हो उसी प्रकार रण-शय्या में सो गया जैसे जम्भ नामक दैत्य स्वयं ही वेगपूर्वक पर्वत पर आघात करके प्राण-शून्य हो महानिद्रा में निमग्न हो गया था (५. ४८, ७७)। श्रीकृष्ण ने निषादों सहित इसका वध किया (७. १८०, ३२)। 'एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः', (७. १८१, १९)। 'निषादराज्ञो विषयमेकलव्यस्य अभिमवान्', (१४. ८३, ७)। 'नैषादिमेकलव्यं च चन्द्रे कालिङ्गमागधान्', (१६. ६, ११)। तु० की० **नैषादि, निषाद, निषादराज**।

एकलव्यसुत, एकलव्य के पुत्र का नाम है। इसे अर्जुन ने विजित किया था (१४. ८३, ८)।

एकव्यूहविभाग = विष्णु (नारायण): १२. ३४८, ५७।

एकशीर्षन् = शिव (सहस्र नामों में से एक)।

१. एकशृङ्ग, पितरों के एक वर्ग का नाम है। ये ब्रह्मा जी की सभा में उपस्थित होते थे (२. ११, ४७)।

२. एकशृङ्ग = विष्णु (कृष्ण): १२. ३४०, १०६। विष्णु का यह नाम होने की व्युत्पत्ति: 'एकशृङ्गः पुरा भूत्वा वराहो नन्दिवर्धनः। इमां चोद्धृतवान्भूमिमेकशृङ्गस्ततो ह्ययम्॥' (१२. ३४२, ९२)।

एकहंस, एक तीर्थ का नाम है। यहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है (३. ८३, २०)।

१. एकाक्ष, कश्यप और दनु के पुत्र, एक असुर का नाम है (१. ६५, २९)।

२. एकाक्ष, स्कन्द के एक सैनिक का नाम है (९. ४५, ५८)।

३. एकाक्ष = शिव (१३. १६१, २)।

एकात्मन् = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

एकानङ्गा, यशोदा की पुत्री तथा श्रीकृष्ण की बहन का नाम है। इसी के निमित्त श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया था (गीता प्रेस संस्करण : २. ३८, २९ के बाद दाक्षिणात्यपाठ, पृष्ठ ८२० कालम २)।

एकानंशा = कुहू (३. २१८, ८)।

एकान्तदर्शन = महापुरुष (१२. ३३८ में १९९ वाँ नाम है)।

एकासन—युधिष्ठिर को कर देने वाले जनपदों में इसका भी उल्लेख है (२. ५२, ३)।

एडी, स्कन्द की अनुचरी, एक मातृका का नाम है (९. ४६, १३)।

एतावर्णौ = नर और नारायण : 'एतावर्णाविवर्णौ च विश्रुतौ', (३. ९०, १३)। नीलकण्ठी में इस प्रकार अर्थ किया गया है : 'एता कृष्णमृगी तद्वर्णौ कृष्णौ नरनारायणावित्यर्थः। वस्तुतस्त्ववर्णौ वर्णा लोहितशुक्लकृष्णाः रजःसत्वतमांसि तद्रहितौ'।

एरक, कौरव्य कुलोत्पन्न एक नाग का नाम है (१. ५७, १३)।

एलपत्र = एलापत्र (५. १०३, १०)। शिव ने एलपत्र और पुष्पदन्त को अपने रथ के जूये की कीलें बनाया (७. २०२, ७३)।

एलपुत्र, देखिये **एलपत्र**।

एलापत्र, एक नाग का नाम है : १. ३५, ६; ३८, १. १७; ३९, १. ८. ११।

एलविल, देखिये **ऐलविल**।

ऐ

ऐक्ष्वाकी, सुहोत्र की पत्नी तथा आजमीढ की माता का नाम है (१. ९४, ३०)। तु० की० **सुवर्णा इक्ष्वाकुकन्या**।

१. ऐक्ष्वाकु = भगीरथ (१२. २९, ६९)।

२. ऐक्ष्वाकु = सगर (१२. २९, १३०)।

३. ऐक्ष्वाकु = त्रिशङ्कु (१३. ३, ९)।

ऐन्द्र : 'ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे', (१. १२३, ६)। 'ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः', (४. ६३, ८)। 'देवा भीताः शक्रमकामयन्त त्वया त्यक्तं महदैन्द्रं पदं तत', (५. १६, २३)। 'सभामैन्द्रीम्', (११. ८, २१)। 'ऐन्द्रो राजन्य उच्यते', (१२. ६०, २०)। 'ऐन्द्रो धर्मः क्षत्रियाणाम्', (१२. १४१, ६४)। 'अहमैन्द्राच्च्युतः स्थानात्त्वमिन्द्रः प्रकृतो दिवि', (१२. २२७, ७१)। 'ऐन्द्रं समाविशद्वज्रं लोकसंरक्षणे रतः', (१२. २८१, ३२)। 'ऐन्द्रीं तु दिशमास्थाय शैलराजस्य धीमतः', (१२. ३२७, २५)। 'नहुष ऐन्द्रं पदमध्यास्ते', १२. ३४२, ४७)। 'ब्रह्मान्नारायणच्चैन्द्रादाग्नेयादपि वरुणात्', (१३. १४, २६१)। 'ऐन्द्रात् स्थानात्', (१३. ९९, २४; १०७, ७९)। जो व्यक्ति प्रातःकाल की संध्या—ऐन्द्रीं सन्ध्याम्—करके सूर्य के सम्मुख खड़ा होता है उसे समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है और साथ ही वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है (१३. १२६, १५)। 'ऐन्द्रं वाक्यम्', (१४. १०, ४)।

ऐन्द्रद्युम्न आख्यान : १. २, ५५. १९३।

ऐन्द्रद्युम्नि = जनक (३. १३३, ४)।

ऐन्द्राग्न (इन्द्र और अग्नि से सम्बन्धित) : 'ऐन्द्राग्न्यौ वै भागः', (५. १६, ३२)।

ऐन्द्राग्नेय : १२. १४१, ९५।

ऐन्द्राग्न्य : 'ऐन्द्राग्न्येन विधानेन', (१२. ६०, ३९)।

ऐन्द्रि = अर्जुन : 'ऐन्द्रिर्नरस्तु भविता यस्य नारायणः सखा', (१. ६७, ११६)। 'ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति', (१. १३५, ७)। 'ऐन्द्रिरिन्द्रावरजप्रभावः', (१. १८८, २०)। 'ऐन्द्रिः स्थिरमना', (३. ३८, १३)। 'सम्मोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम्', (४. ६६, ८)। 'ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले', (६. ४९, १६)।

ऐन्धन, धौम्य द्वारा वर्णित सूर्य के १०८ नामों में से एक (३. ३, १९)।

१. ऐरावण, इन्द्र के हाथी का नाम है। 'ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृता धृतः', (१. १८, ४०)। 'हस्तिष्वैरावणो वरः', (४. २, १७)। 'ऐरावणो नागराजो', (५. ९९, १५)। 'ऐरावणसमा युधि', (७. ११२, ३५)। 'ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे दैत्याः पुराः वासवस्येव राजन्', (९. २०, ६)। 'नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम्', (९. २०, १२)। 'चतुर्दन्तं सुदान्तं च वारणेन्द्रं श्रिया वृतम्। आरुह्यैरावतं शक्रस्त्रैलोक्यमनुसंययौ॥' (१२. २२७, १०)। तु० की० **ऐरावत**।

२. ऐरावण, कुबेर की सभा में उपस्थित होने वाले एक सर्प का नाम है (२. ९, ८)।

१. ऐरावत, इन्द्र के हाथी ना नाम है। 'ऐरावतो नागराट्', (१. ३, १६७)। 'ऐरावतः सुतस्तस्या देवनागो महागजः', (१. ६६, ६३)। 'ततो मुहूर्ताद्भगवानैरावतशिरोगतः। आजगाम सहेन्द्राण्या शक्रः सुरगणैर्वृतः', (३. ४१, १३)। 'ऐरावतं चतुर्दन्तं कैलासमिव शृङ्गिणम्', (३. ४२, ४०)। 'ऐरावतं समास्थाय', (३. १९३, ९)। 'महानागो चित्रश्चैरावतश्च', (३. २२५, २३ (?))। 'आरुह्यैरावतस्कन्धं प्रययौ', (३. २२७, ३)। इसकी दो घंटियों का नाम वैजयन्ती है (३. २३१, १८)। ऐरावतं समास्थाय शक्रश्चापि सुरैः सह', (३. २३१, ३३)। 'ऐरावतं समारुह्य द्विपेन्द्रं लक्षणैर्युतम्', (५. १८, १)। ऐरावत पाताल से शीतल जल लेकर मेघों में स्थापित करता है, जिसे देवराज इन्द्र भूतल पर बरसाते हैं (५. ९९, ७)। 'ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः', (५. १६७, ३८)। 'दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः', (६. १२, ३३)। 'ऐरावतं गजेन्द्राणाम्', (६. ३४, २७)। 'मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम्', (६. ६२, ४६)। विश्व के हाथियों में से एक यह भी है (६. ६४, ५६)। 'ऐरावतस्थो मघवान् वारिधारा इवानघ', (६. ९५, ३४)। 'ऐरावतकुले', (७. १२१, २६)। 'नागानैरावतोपमान्', (७. १४८, ४९)। 'द्विपमैरावतप्रख्यम्', (९. २०, २)। 'ऐरावतः सानुचरः', (९. ४५, १५ (?))। 'ऐरावतस्कन्धमधिरुह्य श्रिया वृतः', (१२. २२३, १२)। 'तमैरावतमूर्धस्थं प्रेक्ष्य', (१२-२२७, १२)। अपश्यं क्षणेनैव तमैवैरावतम्', (१३. १४, २३९)। इनको कृष्ण के साथ समीकृत किया गया है (१३. १५८, ३८)।

२. ऐरावत, एक नाग का नाम है। 'य ऐरावतराजानः सर्पाः समितिशोभनाः', (१. ३, १३४)। 'ऐरावतोद्भवा', (१. ३, १३५)। 'इच्छेत्कोऽर्कांशुसेनायां चर्तुमैरावतं विना', (१. ३, १३७)। 'ऐरावतज्येष्ठभ्रातृभ्यो', (१. ३, १३९)। 'ऐरावतस्तक्षकश्च', (१. ३५, ५)। 'ऐरावतप्रभृतिभिः', (१. ३७, २)। 'ऐरावतकुलाद्', (१. ५७, १२)। 'ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः', (१. २१४, १८)। 'पिंजरको नागश्चैरावतस्तथा', (५. १०३, ११)। सुमुख नामक नाग ऐरावत कुल में उत्पन्न हुआ था (५. १०३, २३)। ५. १०४, १०। 'नागेन तथैवैरावतेन च', (५. १०९, २०)। 'ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना', (६. ९०, ८)। 'प्रदीप्तमैरावतवंशसंभवम्', (८. ९०, २२)। 'ऐरावत कुल में उत्पन्न एक नाग (१४. ५८, २५)। 'ऐरावतसुतेनेह तवानीते हि कुण्डले', (१४. ५८, ४२)। 'ऐरावतनिवेशनम्', (१४. ५८, ५०)।

३. ऐरावत (बहु०), ऐरावत के प्रकार के नागों का नाम है जो अर्जुन के पक्ष में थे (८. ८७, ४४)।

४. ऐरावत, एक वर्ष का नाम है (६. ६, ३७)। "शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर समुद्र के किनारे ऐरावत नामक वर्ष है। अतः इन शिखरों से संयुक्त यह वर्ष अन्य वर्षों की अपेक्षा उत्तम है। वहाँ सूर्यदेव ताप नहीं देते और न वहाँ के मनुष्य वृद्ध ही होते हैं। नक्षत्रों सहित चन्द्रमा वहाँ ज्योतिर्मय होकर सर्वत्र व्याप्त सा रहता है। वहाँ के मनुष्य कमल की सी कान्ति तथा

वर्ण वाले होते हैं। उनके विशाल नेत्र कमल दल के समान सुशोभित होते हैं। वहाँ के मनुष्यों के शरीर से विकसित कमलदलों के समान सुगन्ध प्रगट होती है। उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता, तथा उनकी सुगन्ध प्रिय लगती है। वे आहार-रहित और जितेन्द्रिय होते हैं। वे सभी देवलोक से च्युत हैं। उनमें रजोगुण का सर्वथा अभाव होता है। वे १३,००० वर्षों की आयु तक जीवित रहते हैं। (६. ८, ११-१४)।"

ऐरावतपथ, चन्द्रमा के उत्तरी भाग का नाम है (३. १६२, ३४)।

१. ऐल=पुरूरवस : इनके छः पुत्र उत्पन्न हुये (१. ७५, २४)। 'ऐल-वंशविवर्धनाः', (१. ९४, ६४)। यमराज की सभा में इनकी उपस्थिति का उल्लेख (२. ८, १६)। 'ऐलस्येक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते', २. १४, ४)। 'ऐलवंश्याश्च ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपः', (२. १४, ५)। 'पुरुरवसमैलम्', (२. ७८, १७)। 'ऋषभस्य तथैलस्य', (६. ९, ७)। 'पुरुरवस ऐलस्य संवादं मातरिश्वनः', (१२. ७२, २)। 'ऐल उवाच', (१२. ७२, ९)। 'ऐलकश्यपसंवादम्', (१२. ७३, ६)। 'ऐल उवाच', (१२. ७३, ७)। 'पापैः पापे क्रियमाणे हि चैल ततो रुद्रो जायते देव एष', (१२. ७३, १७)। 'ऐल उवाच', (१२. ७३, १८. २०. २२. २४)। 'पृथुरैलो मयो भीमः', (१२. २२७, ४९)। ये ब्राह्मणों के आशीर्वाद देने पर स्वर्गलोक को प्राप्त हुये थे (१३. ६, ३१)। कार्तिक मास में मांस का भक्षण न करने वाले राजाओं के साथ इनका उल्लेख है जिसके फलस्वरूप इन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया (१३. ११५, ७४)। सफलता के लिये जिनके नामों का कीर्त्तन करना चाहिये उनमें से एक यह भी हैं (१३. १५०, ४९)। प्रातः-सायं स्मरण करने योग्य राजाओं के साथ इनका उल्लेख (१३. १६५, ५२. ५७)।

२. ऐल : १३. ३४, १७ ; तु० की० **ऐन**।

ऐलवंश : १. ९४, ६४।

१. ऐलविल=कुबेर। 'उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम्', (५. १०२, १०)। कैलास पर्वत पर निवास करते हैं (५. १११, २०)। 'तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत', (५. १३९, १४)। इन्होंने कुबेरतीर्थ में महान् तपस्या करके धनाध्यक्ष का पद प्राप्त किया और वहीं उनके पास धन और निधियाँ पहुँच गईं', (९. ४७, २५)।

२. ऐलविल=दिलीप (७. ६१, १)।

३. ऐलविल, एक प्राचीन राजा का नाम है जिन्होंने भरत से खड्ग प्राप्त करके उसे धुन्धुमार को दे दिया था (१२. १६६, ७६)।

ऐश्वर : 'रूपमैश्वरम्', (१२. ३३, १८)। 'रूपं वरदमैश्वरम्', (१२. ३४७, ७५)। 'सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वरं विधिमास्थितः', (१२. ३४७, ९४)।

१. ऐषीक, विशेषण 'नाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम्। क्रुद्धेनैषीकमवधीद्यन गर्भम्', (१. १, २१३)।

२. ऐषीक—महाभारत-वृक्ष की, स्त्रीपर्व और ऐषीकपर्व, छाया हैं (१. १, ९०)। 'ऐषीकं पर्व', (१. २, ७३)। 'सौप्तिकैषीके संबद्धे पर्वण्युत्तम-तेजसी', (१. २, ३१२)।। 'घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत्पुनः', (१८. ६, ६७)।

ऐषीकपर्वन्, महाभारत के ८४ वें अवान्तर पर्व का नाम है। "धृष्ट-द्युम्न के सारथि ने, रात्रि को सोते समय जो संहार किया गया था, उसका समाचार धर्मराज युधिष्ठिर को सुनाया। पुत्रों और पाञ्चालों के वध का समाचार सुनकर युधिष्ठिर अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार गिरते देखकर सात्यकि ने पकड़ लिया। भीम आदि ने भी युधिष्ठिर को सहारा दिया। चेतना लौटने पर शोकाकुल युधिष्ठिर ने विलाप करते हुए नकुल से कहा : 'जाकर मन्दभागिनी राजकुमारी द्रौपदी को उसके मातृपक्ष की स्त्रियों के साथ यहाँ लिवा लाओ।' नकुल को इस प्रकार आज्ञा देकर युधिष्ठिर विलाप करते हुये पुत्रों के उस युद्धस्थल में गये जो भूतगणों से भरा हुआ था। उस अमङ्गलमय स्थान में प्रवेश करके उन्होंने अपने पुत्रों, सुहृदों और सखाओं को रक्त-रंजित हो पृथिवी पर पड़े देखा। इस करुण दृश्य को देखकर उनकी संज्ञा लुप्त हो गई और वे अपने साथियों सहित पृथिवी पर गिर पड़े (१०. १०)।" "उसी समय उपप्लव्य नगर से द्रौपदी नकुल के साथ वहाँ आई और विलाप करती हुई युधिष्ठिर के सम्मुख भूमि पर गिर पड़ीं। भीम ने द्रौपदी को सान्त्वना दी। उस समय रोती हुई द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा : 'यदि आप आज रणभूमि में पराक्रम प्रकट करके सम्बन्धियों सहित पापाचारी अश्वत्थामा का वध नहीं कर देंगे तो मैं प्राय (अनशन) करके अपना प्राण त्याग दूँगी।' युधिष्ठिर ने द्रौपदी को अपना दुःख भूलने के लिये कहा और बताया कि अश्वत्थामा भाग कर दुर्गम वन में चला गया है। द्रौपदी ने अश्वत्थामा को मारकर उसके मस्तक में जन्म के साथ ही स्थित मणि को लाने पर पुनः जोर देते हुये भीमसेन से उसका वध करने का विशेष अनुरोध किया। भीमसेन, नकुल को अपना सारथि बना कर अश्वत्थामा के रथ-चक्रों के चिह्न का अनुसरण करते हुये उसे ढूंढने निकले (१०. ११)।" "कृष्ण ने युधिष्ठिर से भीमसेन की रक्षा-व्यवस्था करने का आग्रह किया क्योंकि अश्वत्थामा के पास ब्रह्मशिरस् नामक ऐसा अस्त्र था जो समस्त शत्रुओं का विनाश कर सकता था। (१०. १२)।" "कृष्ण को साथ लेकर पाण्डवगण भीमसेन के पीछे चले। उस समय अर्जुन और युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के रथ में ही बैठे थे। उस रथ में काम्बोज अश्व सन्नद्ध थे : शैब्य दाहिनी ओर, सुग्रीव बाईं ओर, मेघपुष्प और बलाहक पार्श्व भाग में स्थित थे। उसका ध्वज विश्वकर्मा द्वारा निर्मित और माया के समान ऊंचा उठा हुआ था जिस पर गरुड़ विराजमान थे। ये तीनों नरश्रेष्ठ शीघ्र ही भीम के पास आ पहुंचे, परन्तु क्रोध से प्रज्वलित भीम को रोक नहीं सके। भीम भागीरथी के तट पर गये जहाँ उन्होंने व्यास आदि अनेक महर्षियों के साथ अश्वत्थामा को बैठे हुये देखा। क्रुद्ध भीम तथा उनके पीछे कृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन को आते देख अश्वत्थामा ने एक सींक उठा कर दिव्यास्त्र का स्मरण किया और 'यह अस्त्र समस्त पाण्डवों का विनाश कर डाले', ऐसा कहकर उसने उस दिव्यास्त्र को छोड़ दिया। (१०. १३)।" "उस समय कृष्ण ने अर्जुन को द्रोणाचार्य से प्राप्त उस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने का आग्रह किया जो समस्त अस्त्रों का निवारण कर सकता था। उस समय प्रकृति में भयंकर अपशकुन प्रगट होने लगे। उन दोनों अस्त्रों के तेज के बीच उस समय नारद तथा व्यास लोकों की रक्षा करने के लिये खड़े हो गये। (१०. १४)।" "अर्जुन ने अपने अस्त्र को लौटा लिया; परन्तु अश्वत्थामा अपने अस्त्र को लौटाने में असमर्थ रहा, क्योंकि वह अस्त्र ब्रह्मतेज से प्रगट हुआ था। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है वह यदि उसका एक बार प्रयोग करके उसे पुनः लौटाने का प्रयास करे तो वह अस्त्र सगे सम्बन्धियों सहित उसके ही सर को काट लेगा। व्यास ने पहले ब्रह्मशिरस् अस्त्र का प्रयोग न करके अर्जुन की सराहना करते हुये कहा : 'जिस देश में एक ब्रह्मास्त्र को दूसरे उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र से दबा दिया जाता है उसमें बारह वर्षों तक वर्षा नहीं होती।' व्यास ने अश्वत्थामा से कहा : 'तुम्हारे सर में जो मणि है उसे पाण्डवों को दे दो जिसके बदले में तुम्हें पाण्डव भी प्राणदान दे देंगे।' अश्वत्थामा ने वह मणि पाण्डवों को दे दी जिसको धारण करने पर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देवता, दानव अथवा नाग, किसी से भी किसी तरह का भय नहीं रहता। साथ ही अश्वत्थामा ने अपने ब्रह्मास्त्र को पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं पर गिरा दिया (१०. १५)।" "श्रीकृष्ण ने बताया कि उपप्लव्य में एक व्रतवान् ब्राह्मण ने उत्तरा से यह कहा था : 'जब कौरववंश परिक्षीण हो जायगा, तब तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा और इसीलिये उस शिशु का नाम परिक्षित होगा।' अश्वत्थामा ने कहा कि उसका वचन झूठा नहीं हो सकता। कृष्ण ने बताया कि उत्तरा का गर्भस्थ बालक मृत ही जन्म लेगा, किन्तु बाद में उसे लम्बी आयु प्राप्त हो जायगी। उन्होंने यह भी बताया कि अश्वत्थामा को ३००० वर्षों तक अकेले ही पृथिवी पर भ्रमण करना होगा और उसे किसी के साथ भी बातचीत करने का सुख नहीं मिल सकेगा; उसके शरीर से पीव और रक्त की दुर्गन्ध निकलती रहेगी, जिसके कारण उसे दुर्गम स्थानों का ही आश्रय लेना पड़ेगा और वह समस्त रोगों से पीड़ित होकर इधर-उधर भटकता रहेगा। परिक्षित दीर्घ आयु प्राप्त करके

कृपाचार्य से सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करेगा और धर्म में स्थित होकर ६० वर्षों तक पृथिवी का पालन करेगा। कृष्ण ने बताया कि अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध हुये उत्तरा के पुत्र को वे स्वयं जीवित कर देंगे। श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को जो शाप दिया उसका व्यास ने समर्थन किया। तदनन्तर पाण्डवों को मणि देकर अश्वत्थामा उदास मन से उन सबके देखते-देखते वन में चला गया। पाण्डव-गण भी मणि लेकर कृष्ण, व्यास, और नारद के साथ द्रौपदी के पास आये जो प्राय में स्थित थी। भीम ने द्रौपदी को सान्त्वना दी। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से अश्वत्थामा की मणि को अपने मस्तक पर रखने के लिये कहा (१०. १६)।" "युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पाण्डवों की सेना का विनाश करने में अश्वत्थामा की सफलता का रहस्य पूछा। कृष्ण ने बताया कि महादेव अश्वत्थामा की सहायता करते थे। कृष्ण ने कहा कि जब ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना की इच्छा की तब उन्होंने रुद्र को देखा और उनसे ही समस्त भूतों की सृष्टि करने का आग्रह किया। ब्रह्मा का निवेदन सुनकर रुद्र ने अपनी स्वीकृति प्रदान की और जल में प्रवेश करके महान् तप करने लगे। इधर दीर्घकाल तक उनकी प्रतीक्षा करके ब्रह्मा ने अपने संकल्प से दूसरे सर्वभूत स्रष्टा को उत्पन्न किया। इस स्रष्टा ने दक्ष आदि प्रजापतियों तथा सात प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न किया। सृष्टि होते ही समस्त प्रजा क्षुधा से पीड़ित होकर प्रजापति को ही खा जाने की इच्छा से उनकी ओर दौड़ी। जब प्रजा प्रजापति को अपना आहार बनाने के लिये उद्यत हुई तब वे ब्रह्मा की शरण में आये। ब्रह्मा ने उन प्रजाओं को अन्न और ओषधि आदि स्थावर वस्तुयें जीवन-निर्वाह के लिये दीं और अत्यन्त बलवान् हिंसक जन्तुओं के लिये दुर्बल जङ्गम प्राणियों को ही आहार निश्चित कर दिया। तदनन्तर प्रजा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। जब प्राणि-समुदाय की भली-भांति वृद्धि हो गई, और ब्रह्मा भी सन्तुष्ट हो गये तब रुद्र जल से बाहर निकले और प्रजा की सृष्टि हुई देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपना लिङ्ग काटकर फेंक दिया जो उसी रूप में पृथिवी पर प्रतिष्ठित हो गया। रुद्र ने ब्रह्मा से बताया कि उन्होंने जल में तपस्या करके प्रजा के लिये अन्न प्राप्त किया है, और वे अन्न रूप ओषधियाँ प्रजाओं के ही समान निरन्तर विभिन्न अवस्थाओं में परिणित होती रहेंगी। ऐसा कह कर क्रोध में भरे हुये महा तपस्वी महादेव उदास मन से मुञ्जवान् पर्वत पर तपस्या के लिये चले गये। (१०. १७)।" "सत्ययुग बीत जाने पर देवताओं ने वैदिक प्रमाण के अनुसार यज्ञ की कल्पना की। उस समय देवता भगवान् रुद्र को यथार्थ रूप से नहीं जानते थे, अतः उन्होंने रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की। रुद्र ने पाँच प्रकार के यज्ञों में से दो से एक धनुष का निर्माण किया और उसे लेकर ब्रह्मचारी के वेश में देवताओं के यज्ञ-स्थल पर आये। उस समय पृथिवी को अत्यन्त व्यथा हुई और पर्वत भी काँपने लगे। रुद्र ने भयंकर बाण के द्वारा उस यज्ञ के हृदय में आघात किया जिससे अग्नि सहित यज्ञ मृग का रूप धारण करके वहाँ से भाग निकला। रुद्र ने आकाश में भी उस यज्ञ का पीछा किया। यज्ञ के वहाँ से हट जाने पर देवताओं की चेतना लुप्त हो गई। उस समय कुपित हुये त्र्यम्बक (रुद्र) ने अपने धनुष की कोटि से सविता की दोनों भुजायें काट डालीं, भग की आँखें फोड़ दीं, और पूषा के सारे दाँत तोड़ डाले। त्रस्त देवताओं द्वारा प्रेरित हुई वाणी ने रुद्र के धनुष की प्रत्यञ्चा काट डाली। तदनन्तर देवता यज्ञ को साथ लेकर धनुष रहित रुद्र की शरण में गये जिससे प्रसन्न होकर रुद्र ने अपने क्रोध को समुद्र में स्थापित कर दिया। वही क्रोध बडवानल बनकर निरन्तर समुद्र के जल का शोषण करता रहता है। तदुपरान्त रुद्र ने भग को आँखें, सविता को दोनों भुजायें, पूषा के दाँत और देवताओं को यज्ञ प्रदान कर दिया। देवताओं ने भी समस्त हविष्यों में से रुद्र के लिये भाग निश्चत कर दिया। (१०. १८)।।"

ओ

ओघरक्षस्, (कृष्ण वासुदेव) : 'मुरं हत्वा विनिहत्यौघरक्षो निर्मोचनं चापि जगाम वीरः', (५. ५८, ८३)।

अघोरथ, २. ओघवत् के पुत्र का नाम है (१३. २, ३८)।

१. ओघवत्, कौरव पक्ष के एक योद्धा का नाम है जो युद्ध में मारा गया था (८. ५, ४२)।

२. ओघवत्, नृप के पितामह का नाम है। ये ओघरथ और ओघवती के पिता थे (१३. २, ३८)।

१. ओघवती, एक नदी का नाम है (६. ९, २२)। सात सरस्वतियों में से एक (९. ३८, ४)। कुरु के यज्ञ के समय कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी ओघवती नदी के नाम से प्रसिद्ध हुई (९. ३८, २७)। पाण्डवों ने इसके तट पर निवास किया था (९. ६२, ३९)। भीष्म जी ओघवती के तट पर बाण शय्या पर पड़े थे (१२. ५०, ७)। तु० की० **२. ओघवती।**

२. ओघवती, २. ओघवत् की पुत्री, तथा सुदर्शन की पत्नी का नाम है। इन्होंने कुरुक्षेत्र में निवास किया (१३. २, ३८-४०)। इन्होंने अतिथिसत्कार के लिये ब्राह्मण-रूपधारी धर्म को आत्मसमर्पण कर दिया (१३. २, ४२. ४७. ४९.५२. ५९)। ये अपने शरीर से ओघवती नामक नदी हो गई (१३. २, ८४)।

१. ओङ्कार=महापुरुष (महापुरुषस्तवे)।

२. ओङ्कार=शिव (सहस्रनामों में से एक)।

१. ओजस्= विष्णु (सहस्रनामों में से एक)।

ओड्, एक देश का नाम है, जहाँ के राजा भेंट देने के लिये युधिष्ठिर के यज्ञ में पधारे थे, (२. ५१, २३) तु० की० **उड्र** (बहु०)।

१. ओषधी, (बहु०), देवगणों का नाम है (१. ६६, ४०)।

२. ओषधी =शिव (सहस्रनामों में से एक)।

ओषधीपति=सोम (३. ३, ७)।

औ

औक्थ्य, एक साम का नाम है (३. १३४, ३६)।

औड्र (बहु०), भारतवर्ष के एक जनपद का नाम है (६. ९, ५७)।

औतङ्क (विशेषण : 'औतङ्कीं गुरुवृत्तिं' (१४. ५६, ३)।

औत्तानपाद : 'ध्रुवस्यौत्तानपादस्य', (१३. ३, १५)।

औदका, उस स्थान का नाम है, जहाँ नरकासुर ने सोलह सहस्र कन्याओं को कैद कर रक्खा था। नरकासुर का यह अन्तःपुर मणिपर्वत पर बना था। जल की सुविधा से सम्पन्न होने के कारण इस स्थान का नाम 'औदका' रक्खा गया था। मुर दानव इसका संरक्षण करता था (गी० सं० में २. ३८ पर दाक्षिणात्य पाठ पृ० ८०५, कालम १)।

औदुम्बर (बहु०), युधिष्ठिर को भेंट देने वाले क्षत्रिय जाति के लोगों का नाम है (२. ५२, १३)।

औद्दालक, एक तीर्थ का नाम है (३. ३. ८४, १६१)।

औद्दालकि : श्वेतकेतु का नाम है (३. १३२, १. ३)। एक ऋषि का नाम है (९. ३८, २२)। उत्तर के ऋषियों में से एक यह भी हैं (१३. १६५, ४५)।

औद्भिद, कुशद्वीप के प्रथम वर्ष का नाम है (६. १२, १२)।

औद्र (बहु०), अर्जुन द्वारा विजित एक जाति के लोगों का नाम है (१४. ८३, ११)।

औपनिषद : 'चतुर्थश्चौपनिषदो धर्मः', (१२. २४४, १५)।

औरग—'विषयानौरगान्', (१२. ३०१, ६)।

औरसिक (बहु०), एक जाति के लोगों का नाम है जिन्हें श्रीकृष्ण ने विजित किया था (७. ११, १६)।

और्व, एक ऋषि का नाम है (१. ५१, १६)। ये च्यवन मुनि और आरुषी के पुत्र थे। अपनी माता की ऊरु (जाँघ) फाड़कर प्रगट होने के कारण ये और्व कहलाये (१. ६६, ४६)। इनके जमदग्नि आदिक सौ पुत्र थे (१. ६६, ४९)। 'और्व इति विप्रर्षिरुरुं भित्वा व्यजायत', (१. १७९, ८)। 'और्व उवाच', (१. १८०, १)। इन्होंने अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल दिया (१. १८०, २१)। महर्षि और्व ने माता के ऊरु में गुप्त रूप से निवास करते हुए देवकार्य सिद्ध किया (३. ३१५, १८)। भृगु के सात पुत्रों में से ये चतुर्थ हैं (१३. ८५, १२८)। वायु ने कहा : 'तालजङ्घ नामक महान् क्षत्रिय वंश का अकेले तपस्वी ब्राह्मण और्व ने संहार कर दिया।' (१३. १५३, ११)।

और्व आख्यान : १. २, ११२।

और्वोपाख्यान (म्)--अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर कुपित हुये शक्ति-नन्दन पराशर को शान्त करने के लिये वसिष्ठ ने उन्हें और्वोपाख्यान सुनाया : "भृगुवंशी ब्राह्मणों के यजमान राजा कृतवीर्य ने सोमयज्ञ की समाप्ति पर उन अग्रभोजी भार्गवों को विपुल धन और धान्य देकर सन्तुष्ट किया। कृतवीर्य के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके वंशजों को किसी तरह द्रव्य की आवश्यकता आ पड़ी। भृगुवंशी ब्राह्मणों के पास धन है यह जानकर वे सभी राजपुत्र भार्गवों के पास याचक बनकर गये। उस समय कुछ भार्गवों ने अपनी धनराशि को धरती में गाड़ दिया था, और कुछ ने क्षत्रियों से भय समझकर अपना धन ब्राह्मणों को दे दिया। तदनन्तर किसी क्षत्रिय ने अकस्मात् धरती खोदते-खोदते किसी भृगुवंशी के घर में गड़ा हुआ धन पा लिया।" इस पर क्रुद्ध होकर क्षत्रियों ने तीखे बाणों से समस्त भार्गवों, तथा उनके गर्भस्थ बालकों का भी संहार करना आरम्भ किया। उस समय भय से त्रस्त होकर एक भार्गव-स्त्री अपने गर्भ को जाँघ में छिपाकर हिमवत् पर्वत में जा छिपी (१७९, ३ के अनुसार इसने १०० वर्षों तक अपने गर्भ को जाँघ में छिपाकर रक्खा था)। भयभीत होकर एक ब्राह्मण स्त्री ने यह समाचार क्षत्रियों को बता दिया। इस पर क्षत्रिय लोग उस गर्भ की हत्या करने के लिये उसके पास गये। ब्राह्मणी का वह गर्भस्थ शिशु जाँघ फाड़कर बाहर निकल आया और मध्याह्न के प्रचण्ड सूर्य की भाँति उसके तेज ने क्षत्रियों के नेत्रों की ज्योति का हरण कर लिया। इन क्षत्रियों ने अपनी खोई हुई दृष्टि को पुनः प्राप्त करने के लिये उस शिशु की माता से प्रार्थना की और अपने पापकर्म से विरत होने का आश्वासन दिया (१. १७८)।" "उस ब्राह्मणी ने क्षत्रियों से अपनी दृष्टि-प्राप्ति के लिये उसी शिशु से प्रार्थना करने के लिये कहा। क्षत्रियों ने उस बालक से अपनी ज्योति पुनः प्राप्त की और वहाँ से चले गये। इसी बालक का नाम और्व पड़ा, क्योंकि वह अपनी माता के ऊरु को फाड़कर उत्पन्न हुआ था। और्व ने अपने पूर्वजों का सम्मान करने के लिये समस्त लोकों का विनाश करने का निश्चय किया। इन्होंने अत्यन्त घोर तपस्या द्वारा अपनी शक्ति की वृद्धि करते हुये देवता, असुर और मनुष्यों सहित लोकों को संतप्त कर दिया। तदनन्तर उनके समस्त पितरों ने पितृलोक से आकर और्व से इस प्रकार कहा : 'अपना क्रोध रोको और समस्त लोकों पर प्रसन्न हो जाओ। अपनी आयुयों में अत्यन्त वृद्धि हो जाने पर जब हम लोग खिन्न हो गये तब हम लोगों ने स्वयं ही क्षत्रियों से अपना वध कराने की इच्छा की। आत्महत्या करनेवाला पुरुष शुभ लोकों को प्राप्त नहीं करता, अतः हमने विचार करके अपने ही हाथों अपना वध नहीं किया।' (१. १७९)।" "जब और्व ने बताया कि उनकी प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं होनी चाहिये तब पितरों ने उनसे कहा : 'तुम्हारे क्रोध से उत्पन्न हुयी जो यह अग्नि समस्त लोकों को अपना ग्रास बनाना चाहती है उसे तुम जल में छोड़ दो, क्योंकि समस्त लोक जल में ही प्रतिष्ठित हैं।' तब और्व ने अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल दिया, जो आज भी विशालकाय अश्वी के मुख की आकृति धारण करके महासागर के जल का पान करती रहती है। (१. १८०)।" "यह सुनकर विप्रर्षि पराशर ने अपने क्रोध को समस्त लोकों का पराभव करने से रोक लिया। तदनन्तर पराशर ने राक्षस-सत्र का अनुष्ठान किया और राक्षस जाति के वृद्धों तथा बालकों को उसमें भस्म करने लगे। महर्षि वसिष्ठ ने, यह सोचकर कि उनकी दूसरी प्रतिज्ञा को भङ्ग करना उचित नहीं है, उन्हें राक्षसों के वध से नहीं रोका। उस यज्ञ को समाप्त करने की इच्छा से महर्षि अत्रि वहाँ पधारे। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महाक्रतु ने भी राक्षसों के जीवन की रक्षा के लिये वहाँ पदार्पण किया। यह देखकर कि अनेक राक्षसों का विनाश हो चुका है, पुलस्त्य ने कहा : 'तुम्हारे पिता शक्तिधर्म के ज्ञाता थे परन्तु उनकी मृत्यु उनके अपने अपराध से ही हुई। कोई भी राक्षस उनका भक्षण नहीं कर सकता था। अपने शाप से ही उन्हें अपनी मृत्यु देखनी पड़ी। विश्वामित्र तथा राजा कल्माषपाद भी इसमें निमित्तमात्र ही थे। इस समय तुम्हारे पिता, शक्ति, स्वर्ग में आकर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। अतः अब इस यज्ञ को छोड़ दो।' तब पराशर ने उसी समय अपने यज्ञ को समाप्त कर दिया और यज्ञाग्नि को उत्तर दिशा में हिमालय के निकट विशाल वनों में छोड़ दिया। वह अग्नि आज भी वहाँ सदैव प्रत्येक पर्व के अवसर पर राक्षसों, वृक्षों और पत्थरों को जलाती हुई देखी जा सकती है (१. १८१)।"

औशनस : 'औशनसं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्', (३. ८३, १३५)। 'ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः। कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः) ९. ३९, ४)। 'सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा', (९. ३९, १६)। 'औशनसेऽतीर्थे', (९. ३९, १८)। 'औशनसं शास्त्रम्', (१२. १२२, ११; ३३५, ४६)। 'लोकमौशनसं दिव्यम्', (१३. १०७, ९४)।

औशनसी = देवयानी (१. ८१, १८; ७. ६३, ६)।

औशिज, एक प्राचीन धर्मज्ञ मुनि का नाम है जो युधिष्ठिर की सभा में विराजते थे (२. ४, १७)।

१. औशीनर = शिबि। 'शिबिरौशीनरः', (१. ९३, ६. १७; १८६, १६; ३, ९४, १७; १९४, २। 'औशीनरः साधुशीलो भवतो वै महीपतिः', (३. १९४, ५)। 'शिबिमौशीनरम्', (३. १९७, १)। 'शिबिरौशीनरः', (३. १९८, २; २०८, ७)। 'शिबिरौशीनरो यथा', (३. २९४, १७)। 'शिबिरौशीनरस्य', (५. ९०, १९; १२१, १०; १२२, ८; ६. ९, ७)। 'औशीनराच्छैब्यात्', (७. १०, ६९)। 'शिबिमौशीनरम्', (७. ५८, १)। 'तावतीरददद्गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे', (७. ५८, ७)। 'गच्छ पुण्यकृतां-ल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा', (७. १४३, ४७)। 'शिबिमौशीनरम्', (१२. २९, ३९)। 'तावतीः प्रददौ गाः स शिबिरौशीनरोऽध्वरे' (१२. २९, ४२)। इन्होंने किसी ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपने शरीर और अपने प्रिय पुत्र का दान कर दिया था, जिससे ये स्वर्गलोक चले गये (१२. २३४, १९)। 'शिबिरौशीनरोऽङ्गानि', (१३. ११५, ७०)। 'शिबिरौशीनरः प्राणान् प्रियस्य तनयस्य च। ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितोगतः', (१३. १३७, ४ तु० की० १२. २३४, १९) 'शिबिरौशीनरो नृपः', (१४. ९०, १००)।

२. औशीनर (उशीनरों से सम्बन्धित) : 'जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम्', (५. ११८, २)।

औशीनरि, उशीनर के पुत्र शिबि का नाम है जो यमराज की सभा में उपस्थित होते थे (२. ८, १४)।

औशीनरी, उशीनर देश की एक शूद्र जातीय कन्या का नाम है। गौतम ने इसके गर्भ से काक्षीवत् आदि पुत्रों को उत्पन्न किया (२. २१, ५)।

औषदश्वि : १. ९३, १. २६।

औषध = विष्णु (सहस्र नामों में से एक)।

औषधि (बहु०) : 'वृक्षाश्चौषधिभिः सह', (९. ४५, १६)। 'औषधिभिः फलैस्तथा', (१३. १०, २२)।

औषिज = काक्षीवत्। 'औशिजश्चैव कक्षीवान्', (१२. २०८, २७; १३. १५०, ३०; १६५, ३७)।

औष्णीक, एक प्राचीन देश का नाम है, जहाँ के राजा युधिष्ठिर के पास भेंट लेकर आये थे (२. ५१, १७)।